मीराँ सुधा-सिन्धु

लेखक-संग्राहक-सम्पादक :

स्वामी आनन्द स्वरूप

मीराँ सुधा-सिन्धु

श्री मीराँजी की जीवनी, उनके पदों का वृहत् संग्रह, पदों के शब्दार्थ-भावार्थादि पदानुगत विभिन्न भावों की भूमिकाएँ एवं स्फुट लेख आदि

लेखक-संग्राहक-सम्पादक :

स्वामी आनन्द स्वरूप

प्रकाशक :

श्री मीराँ प्रकाशन समिति,

भीलवाड़ा (राजस्थान)

प्रकाशक :
श्री मीराँ प्रकाशन समिति,
भीलवाड़ा (राजस्थान)

प्रथमावृत्ति, ३००० प्रतियाँ
श्रावण वि. सं. २०१४
मूल्य १३) रु०

मुद्रक :
त्रिलोकीनाथ मीतल
अग्रवाल प्रेस, मथुरा.

स्नेहार्द्रे सरल स्वभाव रुचिरे
श्री अन्नपूर्णाऽभिधे
यद् बिन्दु निहितस्त्वया प्रियसुते
बाल्ये मदीये हृदि ।
वृद्धिं सैव गतोऽजनीशकृपया
मीराँ सुधा-सिन्धुकः
भक्त्या त्वच्चरणेऽर्प्यतेऽद्य जननी
स्वर्गेऽपि ते स्यान्मुदे ।

हे स्नेहार्द्र हृदये ! सरल और सुन्दर स्वभाववती मातः श्री अन्नपूर्णे ! बाल्यावस्था में, हे पुत्रवत्सले ! तुमने मेरे हृदय में श्रीमती प्रेममयी मीराँ के पद-गान द्वारा उनके प्रति जो अनुपम भक्ति-बिन्दु निहित किया था, वही अब प्रभु कृपा से उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त हुआ 'मीराँ सुधा-सिन्धु' के रूप में साकार हो उठा है; उस तेरी प्रिय वस्तु को माँ, मैं अपनी हार्दिक, भक्ति-प्रेम और श्रद्धा के साथ आज तुम्हारे पवित्र चरण कमलों में इस अटल विश्वास के साथ समर्पित करता हूँ कि स्वर्ग में भी यह तुम्हारी भक्तात्मा के लिये आनंदायक हो ।

तुम्हारा लाड़ला बालक
आनंदस्वरूप
(दत्तात्रेय विट्ठलराव वडनेरकर)

मातेश्वरी! तुम्हारी श्रद्धामयी मीराँ के इतस्ततः बिखरे पद-पुष्पों को गूँथ कर बनाई हुई 'मीराँ सुधा-सिन्धु' रूप माला तुम्हारी साक्षी में आज मीराँ के परम प्रियतम गिरिधर गोपाल को धारण कराता हूँ, तथा पदों के भावार्थ, भाव-भूमिका, मीराँ गुण गान तथा उनकी जीवनी रूप एक छोटी सी अन्य पुष्प-मालिका भी उन्हीं राज राजेश्वरी, श्यामसुन्दर की प्रेम पात्री श्री मीराँ महाराणी के कण्ठ में अनन्य श्रद्धापूर्वक पहनाता हूँ। यह देखकर तुम्हारे हृदय में अवश्य ही प्रसन्नता होगी। अबोध बालक के द्वारा यथा-तथा बनी हुई कैसी भी कृति का कौतुक माता के सिवाय और कौन कर सकता है! इस विश्वास-भावना से तो बालक का उत्साह और भी द्विगुणित हो उठता है।

सदा भगवद्भाव में चित्तवृत्ति बनी रहने की आशीर्वाद-भीख की याचना करने वाला—

तुम्हारा बालक

आनंद

मंगलाचरण

★

वंशी विभूषित करान्नव नीरदाभात्,
पीताम्बरादरुण बिम्ब फला धरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दु सुन्दर मुखादरविंद नेत्रात्,
कृष्णात् परं किमपि तत्वमहं न जाने ॥

जिनके कर कमल वंशी से शोभायमान हैं, नूतन नील जलधर के समान जिनके श्री अंग की कान्ति है, जिन्होंने पीताम्बर को धारण किया है, जिनके अधरोष्ठ बिम्बफल तुल्य अरुण आभा लिये हुए हैं और मुखमण्डल पूर्णेन्दु बिम्ब के सदृश सुन्दर शोभायमान है, उन कमल नेत्र श्री कृष्णचंद्र से बढ़ कर मैं और कोई तत्व नहीं जानता ।

जिसने वास्तव में ही प्यारे श्यामसुन्दर की उस सुन्दरातिसुन्दर और परम मधुर सुधामयी बाँकी झाँकी को समझ लिया है, अथवा उस परम आनंद मय अनुभव को पा लिया है उस धन्य, महाभाग के लिये अन्य किसी तत्व को जानना रह ही कहाँ जाता है !

कैसी विचित्र है नाथ तुम्हारी लीला व अपरंपार माया ! जिस समय जिससे जो कार्य करवाना चाहते हो उससे उस समय वही कार्य करवा लेते हो और सब कुछ करते धरते भी सबसे निर्लेप हो । कहते हैं तुम्हारी इच्छा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल पाता, तब यह कार्य मैं करता हूँ, यह मैंने किया अथवा यह मैं करूँगा, जीव की इस अहंकारोक्ति का मूल्य ही क्या !

मीराँ-चरित्र लेखन कार्य की अवधि में प्रारम्भ से लेकर अंत तक बार-बार ऐसी विपरीत व बाधक परिस्थितियाँ आती रहीं जिससे कि एक बारगी तो इस कार्य से संन्यास लेने तक की भी मनोवृत्ति हो चुकी थी। फिर भी इस पर्वत तुल्य कार्य में तुमने मुझे ही निमित्त बनने को बाध्य किया और शनैः शनैः परिस्थिति को सानुकूल बनाते हुए, आनन्दस्वरूप के अन्तर्हृदय में निराकार व सूक्ष्म रूप से रही हुई मीराँ-सुधा-तरंगिणी को बड़े ही विलक्षण ढंग से तुमने 'मीराँ-सुधा-सिन्धु' जैसा विशाल व साकार रूप देकर अन्त में संसार में प्रकट करके ही छोड़ा। इस पर भी तुम अलिप्त और न्यारे के न्यारे! बलिहारी है तुम्हारी माया की!

प्यारे श्यामसुन्दर! तुम्हारे प्रेम की मस्ती में आनंद विभोर हुई तुम्हारी जिस सहयोगिनी शक्ति को तुमने इस मृत्यु-लोक में भेजा था, वह तो अपना उत्कृष्ट लीलाकार्य करके पुनः तुममें मिल गई, पर उसकी यथोपलब्ध स्मृति-सामग्री से उसका यह भाव भरा शब्द-चित्र बनाकर तुम्हारे सन्मुख उपस्थित करने का दास को चाव हो आया है! बिगड़ी को बनाने के तुम्हारे समर्थ विरद के भरोसे पर ही इस टूटी-फूटी रचना को बनाने का दुःसाहस कर बैठा हूँ। यह भी पूर्ण विश्वास है कि भला अपनी प्रियतमा के गुणगान किस प्रेमी प्रियतम को नहीं सुहाते! श्री राधामहाराणी के गुणगान तो क्या उनके प्रेम पूर्वक किये गये केवल नामोच्चारण मात्र से ही तुम कैसे मुग्ध हो जाते हो यह भी क्या कहने की बात है!

मीराँ भी तो उन्हीं के अंश से अवतरित हुई तुम्हारी ही तो महाशक्ति प्रेमाधिकारिणी, और लाडिली प्रियतमा है।

उन्हीं की पद्य रचना तथा जीवन-प्रसङ्गों पर यथा मति जो कुछ भी लिख डाला है उस पर अपनी प्रेमपात्री ही के गुणगान के नाते तथा बाल-चापल्य ही समझ एक बार भी मुस्करा दोगे प्यारे, तो कृतार्थ हो जाऊँगा ।

हे दयामय ! तुम्हारी ही इच्छा से सब कुछ होता है; जो भी होता है सब अच्छे ही के लिये, प्रत्येक कार्य में तुम ही तुम दीखो और मेरा अहम्यता तुम में विलीन हो जाय–बस हृदय में यही विवेक बना रहे नाथ !

अन्त में श्री चरण कमलों में मीराँ के शब्दों में यही प्रार्थना है—"चरण सरण है दासी तुम्हारी, पलक न कीजै न्यारी" कृपा की यह भीख दे दोगे न प्यारे !

तुम्हारा ही जो समझो

आनन्द

श्री मीराँ देवी के चरण कमलों में

★

हे कल्याणी ! सांसारिक मनोवृत्ति द्वारा ली गई परीक्षा में अविचल रह कर, सब कुछ शान्ति से सहते हुए तुमने सदा सबका मंगल ही चाहा। तुम्हारी भक्ति व प्रेम की भागीरथी के प्रवाह में अनेकों जीव अवगाहन कर तर गये ! तुम्हारे नाम में ही अलौकिक प्रेरणादायिनी शक्ति है। सर्वदा प्रपंचरत व स्वार्थी संसारी जन भला तुम्हें कैसे पहचान सकते हैं। तुम्हारे अपूर्व तेज से महासाम्राज्य सत्ता भी काँप गई। नारी जाति में जन्म लेकर भी तुम सामान्य अबला ही न रह कर जगत्वंद्य विभूति हो गईं, संत महात्माओं में सिरमौर सिद्ध हुईं। चारों ओर तुम्हारा जयजयकार हो रहा है। अजर अमर हो गया तुम्हारा यश, तुम्हारा नाम व तुम्हारी प्रेम साधना। अपने प्राण प्यारे श्यामसुन्दर के मंगलाति मंगल और मधुराति मधुर परम पावन नाम में क्या शक्ति होती है इसका तुमने संसार को भली-भाँति परिचय दिखा दिया। तुम्हारे लिए विष सुधा बन गया, साँप शालिग्राम और रत्नहार, शूलों की शय्या कमल पुष्पों की शय्या हो गई। भूतात्माओं ने तुम्हारे दर्शन से सद्-गति पाई। कहाँ तक गावें तुम्हारी महिमा !

हे आनन्दमयी ! दास को तो श्यामसुन्दर के साथ तुम्हारे नाम का व तुम्हारी लीला-स्मृति का ही आधार है।

पता नहीं कितने जन्मों तक आँख-मिचौनी चलती रही, अन्ततोगत्वा इस जन्म में तो तुम्हारा संकेत आधार दास ने पा

ही लिया, जैसा कि तुमने अपनी रचना 'श्री नरसी जी के माहिरे' के अंतिम छन्द में लिखा है:—

यह कहत गावत सुनत समुझत परम पद नर पावही।
कलिकाल श्री आनंदरूपा दास मीराँ गावही ॥

इस 'नरसीजी के माहिरे' की कथा जो कहेंगे, सुनेंगे और समझेंगे वे परम पद को प्राप्त होंगे। प्रथम पंक्ति का यह अर्थ तो स्पष्ट है किंतु दूसरी पंक्ति के 'इस कलिकाल में मीराँ दासी श्री आनंदस्वरूप भगवान के गुणगान करती है' इस अर्थ के अतिरिक्त, 'इस कलिकाल में दास आनंदस्वरूप मीराँ का गुण-गान करेगा' क्या यह संकेत अथवा भविष्यवाणी इससे ध्वनित नहीं होती ?

संसार भले ही इसे भावुकता कहकर दुर्लक्ष कर दे पर योगदर्शन रहस्य के तत्वानुसार मानस-सृष्टि के संस्कार विश्लेषण द्वारा अनुभूत ज्योति के प्रमाण की ओर दुर्लक्ष कैसे किया जा सकता है! इसका रहस्य तो पूर्ण रूप से तुम अथवा तुम्हारे श्यामसुन्दर ही जानते हैं, देवी ! अस्तु !

अब तत्व की बात भी तुमसे निवेदन कर दूँ !

हे कृष्ण प्रिये ! तुम्हारे स्वरचित पद्यरूप प्रेमोद्यान में से जो भी प्राप्त हो सके, पुष्पों को चयन कर तथा उन्हें गूँथकर बनाया हुआ हार तुम्हारे गिरधर गोपाल को पहनाने जा रहा हूँ। साथ ही साथ मेरी छोटी सी श्रद्धावाटिका से भी कुछ फूलों के पद, शब्दार्थ-भावार्थ-भूमिका रूप एक छोटी सी माला बनाकर तुम्हें भी धारण करा रहा हूँ। परंतु श्यामसुन्दर के

अनन्त भक्त हैं देवी! क्षण-क्षण में प्रेमी भक्तों द्वारा उन्हें अनंत भेंटें समर्पित की जाती होंगी, अतएव उनके अनन्त ब्रह्मांडों की अनन्त लीला-प्रसङ्गों में से किस किस की उन्हें स्मृति रहे। तथापि तुम तो उनकी प्रेयसी हो! तुम्हारा व उनका तो प्रत्यक्ष सम्बन्ध है! इसलिये तुम्हारे साथ जब कुञ्ज-बिहारी मदनमोहन विहार करते हों उस समय युक्ति पूर्वक, हे पतितपावनी! तुम दोनों प्रिया प्रियतम को पहनाई गई माला के संकेत से इस अकिंचन को भी याद करा देना! तब वे लीलाधारी अपनी व तुम्हारी माला को निहार कर, तुम्हारे प्रेम के अधिकार के कारण, तुम्हारी रुचि का संकेताधार पाकर अवश्य ही मुस्करा देंगे। बस उस मुस्कराहट से ही दास का बेड़ा पार हो जायगा, जन्म--कर्म सार्थक हो जायगा।

इस कृपा की भिक्षा तुम्हारे दास—इस याचक की-झोली में डाल दोगी न आनंदमयी?

तुम्हारी कृपा का याचक

चरण कमलों का दासानुदास

तुम्हारा—

आनन्द

प्राक्कथन

★

श्याम श्याम प्रियतम इति व्याकुला व्याहरन्ती
प्रेमासक्त्या सजल नयनाऽऽलोकयन्ती दिगन्तम् ।
गोपीभावा विरह विकला कृष्णचंद्रैकचित्ता
मीराँदेवी जयति नितरां राधिका तुल्य रूपा ॥

जो सदा व्याकुल होकर 'हे श्याम, हे श्याम, हे प्रियतम !' इन वचनों का उच्चारण करती रहती है, जो प्रेमासक्ति से सजल नेत्रों द्वारा प्रिय दर्शन के हेतु उत्कण्ठित-सी चारों ओर निहारा करती है एवं जो गोपीभाव में ओत प्रोत व विरह में बेचैन हुई निरंतर अपने प्राण प्यारे एक मात्र श्रीकृष्णचंद्र का ही चित्त में स्मरण करती रहती है, उस श्रीमती राधारानी के समान रूप-गुणवती श्री मीराँदेवी की सर्वदा जय हो ।

शास्त्रों में तथा अपने अनुभव के अनुसार संत महात्माओं ने भिन्न-भिन्न अनेकानेक साधन बताये हैं, किन्तु सबका लक्ष्य तो एक ही है । चित्त वृत्ति जितनी ही अधिक सांसारिक विषयों की ओर झुकेगी एवं रजोगुण तमोगुण में उलझेगी, संसार का बन्धन उतना ही अधिक दृढ़ होता जायगा और जितनी वह भगवदाभिमुखी होगी उतनी ही शीघ्रता से वह प्रभु के निकट ले जायगी । संसार के चिन्तन से दुःख और भगवच्चिंतन से सुख की प्राप्ति होती है । यही विवेक, अखिल विश्व के सकल साम्प्रदायिक साधनों का रहस्य व सार भी है । संत-चरित्र का मनन व चिंतन भी भगवच्चिंतन एवं महान् सत्संग है ।

उपर्युक्त लक्ष्य को हृदय में रखते हुये "निज गिरा पावन करन कारन राम जश तुलसी कह्यो" । तथा 'स्वान्तः सुखाय' के अनुसार विश्व विभूति व संत शिरोमणि श्रीमती मीराँ देवी के जीवन-प्रसंग तथा पदादि विषय पर लिखने को प्रवृत्त हुआ हूँ ।

स्वर्गीया भक्ति मती माता जी के प्रभाव के कारण बचपन से ही 'मीराँ' नाम के प्रति आकर्षण हुआ था । तब माताजी को मीराँ का पद गाते हुए सुनकर मन में कई प्रकार की कल्पनाएँ एवं विचार होने लगते थे । और जब 'मीराँ के प्रभु गिरधर नागर' यह छाप आती तब तो छोटे से मस्तिष्क में एक ऐसा सुन्दर काल्पनिक चित्र सा खिंच जाता मानो मेरा कल्याण चाहने वाली मीराँ मेरा हाथ पकड़ कर मन्दिर में 'श्री गिरधर नागर' ठाकुरजी के आगे ले जाकर उनके दर्शन करा रही हो ।

समय बीतने के साथ यह भावना इतनी प्रबल हो उठी कि अस्वस्थ होने पर विचार तंद्रा में ऐसा आभास होता मानो मीराँ माता मेरे निकट बैठ कर मेरा सिर सहला रही है और मुझे उसके कर कमलों के मातृ-वत्सलता भरे कोमल स्पर्श से अत्यन्त सुख प्राप्त हो रहा है । इस भावना से मुझे दुःख में भी बड़ी ही सान्त्वना मिलती रही ।

शनैः शनैः इस प्रकार चित्त में ऐसी श्रद्धा जम गई कि मीराँ के पदों के गाने व सुनने की ओर विशेष रुचि होने लगी और कहीं कोई मीराँ के जीवन का प्रसंग सुनने को मिलता तो हृदय में प्रेम-भावना की लहरें उमड़ पड़तीं और उस भाव सृष्टि में विचरते समय परिस्थिति का भी ध्यान नहीं रहता ।

माता-पिता के देहान्त के पश्चात् गृह त्याग कर भ्रमण करते करते हिमालय में बद्रिकाश्रम की ओर चला गया। परमात्मा की कृपा से वहाँ पर एक सिद्ध-योगीराज-श्रीसद्गुरु देव के अति दुर्लभ दर्शन प्राप्त हुए। प्रभु इच्छा से कुछ काल उनकी शरण में रहने पर, हृदय के अन्तस्तल में बहते हुये भाव-स्रोत के अनुकूल भक्ति समन्वित उनके योग-तत्व के उपदेशों का लाभ प्राप्त हुआ।

पश्चात् वहाँ से लौटते समय 'मीरांबाई का देश' मेवाड़-चित्तौड़ को देखने की प्रेरणा हुई। इसी उद्देश्य से तब चित्तौड़ होता हुआ इतस्ततः विचरण करते हुये कुम्हलगढ़ दुर्ग की ओर चला गया।

राजस्थान बाहर के बहुत से लोगों को मेवाड़ के लिये भ्रम होता है कि मारवाड़ जैसा यह भी एक शुष्क और रेतीला प्रदेश होगा। परन्तु मेवाड़ में तथा यहाँ के वन-पर्वतों में घूमने पर यही अनुभव होता है कि राजस्थान भर में विशेष कर एक मेवाड़ ही ऐसा देश है जहाँ विपुल प्रमाण में झीलें, तालाब व सरोवरादि जलाशय विद्यमान हैं व जहाँ के पहाड़ों में स्थान-स्थान पर जल के अखण्ड स्रोत बहते हैं और वनश्री भी अद्भुत है।

पौराणिक काल से जहाँ के वन-पर्वतों में अनेकों ऋषि-महर्षि, साधु-संत, व योगी-मुनि तपश्चर्या व साधना करते आये तथा पुरुषार्थी वीरों के रक्त से सींची हुई जहाँ की रज-रज प्राचीन गौरव-गाथाओं की स्मृति हृदय में जाग्रत करती हो एवं मीराँ देवी की भक्ति व प्रेम की साधना जहाँ विपत्ति रूप

कसौटी में भी अविचल रह कर पनपती रही, उस पवित्र वीर भूमि एवं तपोभूमि के दर्शन कर हृदय हरा भरा हो गया और न जाने क्यों इस भूमि के प्रति हृदय में कुछ आत्मीयता का भाव उदय हुआ।

कुछ समय तो कुम्भलगढ़ दुर्ग और केलवाड़े के बीच एक पर्वतीय विकट वन प्रदेश में स्वयम्भू कुण्ड से निर्गत एवं अखण्ड रूप से बहते हुये निर्झर के निकट पर्णकुटी में काल-यापन किया जो स्थान 'आनन्द वन' नाम से प्रसिद्ध है।

सर्व प्रथम वहीं पर मीराँ पर कुछ लिखने की प्रेरणा हुई। जिसके चरण कमलों में बहुत पहले से ही गुरू भाव रहा हो, उस प्रातः स्मरणीया तथा भक्ति व प्रेम मार्ग की आचार्या श्रीमती मीराँ देवी के गुण-गान करने का विचार उस रमणीय वन में बड़ा ही कल्याणकारी एवं आनन्द प्रद प्रतीत हुआ।

उस समय में यथा लब्ध मीराँ-साहित्य-सामग्री पर से 'मीराँ बाई' नामक एक छोटी सी नाटिका लिख डाली किन्तु इससे हृदय को संतोष नहीं हुआ क्योंकि मन तो पूर्णरूप से मीराँ के लीला सुधा–सिंधु में डूब जाना चाहता था।

पश्चात् कुछ वर्ष मेवाड़ में विचरण करने के अनन्तर स्थिरता की परिस्थिति में मीराँ के प्रति श्रद्धा-भावना ने पुनः आंदोलन मचाना आरम्भ किया तब सहज ही विचार तरंगें लहराने लगीं,—महापुरुषों के जीवन चरित्र को तो उसी योग्यता के महापुरुष ही भली भाँति समझ सकते हैं। साधारण मानस में, संत-हृदय, संत-जीवन और संत-लीला को यथार्थ रूप से हृदयंगम करने की क्षमता ही कहाँ, लिखने की बात तो दूर रही!

भला जिसकी मातृभाषा हिन्दी नहीं, भाषा का अभ्यास नहीं, लेखन-शैली का अनुभव नहीं, साहित्य क्षेत्र में प्रवेश नहीं, ऐतिहासिक गति नहीं और मीराँ सम्बन्धी आवश्यक साहित्य-सामग्री भी पर्याप्त नहीं, उस व्यक्ति का जीवन में प्रथम बार मीराँ जैसी विभूति पर कुछ लिखने का विचार करना यह अनधिकार चेष्टा नहीं तो और क्या !

उपर्युक्त अनेक विचार मन में मँडराकर विकल करने लगे। अंत में केवल भक्ति व भावना की दृष्टि से मीराँ का स्वतंत्र रूप से भाव-चरित्र लिखना विचार लिया। वास्तव में देखा जाय तो मीराँ की भक्ति, प्रेम, त्याग, अनन्य निष्ठा, संत-श्रद्धा व सेवाभाव आदि को लेकर तो किसी के भी दो मत नहीं हैं। सन्तों के जीवन-प्रसंगों से उनकी बनाई वाणी और उपदेशों से संसारी जनों को आत्म-कल्याण के लिये आवश्यक साधन-विधि प्राप्त हो ही जाती है, यही नहीं उनके नाम और जीवन लीला के गुण गान से ही मुमुक्षु जनों का उद्धार हो जाता है। यह सोचकर भक्ति व प्रेम का लक्ष्य रखकर मीराँ के जीवन-प्रसंगों पर बहुत से पृष्ठ लिख डाले परन्तु लिखते-लिखते फिर यह अनुभव हुआ कि जब तक ऐतिहासिक दृष्टि से मीराँ की जीवनी का कोई स्थूल ढांचा अथवा कुछ अंश में एक निश्चित रूप-रेखा नहीं बन पाती तब तक कुछ लिखना दुःसाहस होगा। तब जितना भी भाव चरित्र लिखा गया था उसे वैसा ही अधूरा छोड़कर मीराँ के सम्बन्ध में यथा शक्ति अन्वेषण एवं जहाँ कहीं से प्राप्त हो पदों को एकत्रित करने की ओर प्रवृत्त हो गया। किन्तु कार्य करते करते कई बाधाओं की परिस्थिति का अनुभव

पाकर एकबार तो इस प्रवृत्ति के प्रति वैराग्य होकर इसे त्याग देने जैसा निराशात्मक भाव भी मन में आगया।

अन्वेषण वह भी ऐतिहासिक दृष्टि से, कितना कठिन है और इसके लिये, परिश्रम, समय, प्रवास तथा जनता के सहयोग की कितनी अधिक आवश्यकता होती है सो तो भुक्त भोगी के ही अनुभव का विषय है। साधारण लोक-मानस को तो इस कार्य की वास्तविकता का एवं दुष्करता का सहज अनुमान ही नहीं हो सकता। भिन्न-भिन्न विद्वान लेखकों द्वारा, मीराँ जीवन प्रसंगों को लेकर लिखे गये साहित्य पर घिरे हुए अनेकानेक मतभेदों के बादलों को बिखेर कर यथार्थता का साक्षात्कार पाने की क्षमता के तथा ऐतिहासिक प्रमाणों की कसौटी पर कसकर मीराँ जी के संदिग्ध जीवन-घटनाओं व कालक्रम को निर्णयात्मक स्वरूप देने की शोधक-अन्वेषक बुद्धि के एवं मूलतः मीराँ सम्बन्धी प्रामाणिक साहित्य के अभाव में अपनी यह प्रवृत्ति मुझे वामन होकर चाँद को छूने जैसी प्रतीत होने लगी।

पूर्णरूप से तो मीराँ के जीवन का प्रामाणिक इतिहास कहीं भी उपलब्ध नहीं। मूल श्री नाभाजी के भक्तमाल के आधार से कर्नल टॉड द्वारा लिखी हुई मीराँ की जीवनी, जोधपुर के स्व० मुंशी देवीप्रसाद के द्वारा यथा साध्य अन्वेषण पूर्वक लिखे हुए जीवन-वृत्त, महाराष्ट्र व गुजरात के इतिहासान्वेषी विद्वानों के लेख व पुस्तकों तथा शेष किम्बदन्तियों एवं मीराँ के पदानुगत भावों के आधार पर अब तक भारत के अनेकानेक लेखकों द्वारा लेख, नाटक- जीवनी आदि मीराँ-साहित्य बहुत कुछ लिखा गया है, किन्तु मीराँ जी के जीवन-प्रसङ्गों तथा घटना काल

निर्णय के सम्बन्ध में विद्वान लेखकों में प्रायः मत भेद ही रहा है। यह केवल मीरांबाई के विषय में ही नहीं अपितु प्राचीन व मध्यकालीन अधिकतर सन्त-महात्माओं के सम्बन्ध में भी यह बात लागू है। हो सकता है उस युग में स्वयं अपना जीवन-चरित्र लिखने की प्रणाली रूढ़ नहीं होगी जैसा कि वर्तमान युग में है। संभव है संत-महात्माओं के उपदेशों का एवं उनकी मधुर, शिक्षाप्रद व कल्याणकारी जीवन-लीला का प्रत्यक्ष आनन्द लूटने में ही तत्कालीन जनता इतनी अधिक मग्न हो जाती रही होगी कि उस अलौकिक सुख सोपान से नीचे उतर कर, उनकी जीवन-घटनाओं एवं काल सम्वतादि के नीरस विषयों पर शब्दों में कुछ लिखना उन्हें रुचिकर नहीं प्रतीत हुआ होगा। परन्तु वे रसिक जनता-गण अपना आनंद-रसास्वादन करते हुए भी किञ्चित् त्याग पूर्वक भविष्य कालीन लोगों के लिए थोड़ा-सा भी यदि कुछ लिख जाते तो आज सन्त महात्माओं के जीवन-रहस्य के मौलिक तत्वों के अभाव में एवं इतिहास के अन्धकार में निराधार टटोलने की नौबत नहीं आ पाती।

समय के प्रवाह के साथ-साथ मीराँ साहित्य पर शनैः शनैः आवरण चढ़ता ही चला गया। इस परिस्थिति में मौलिक और क्षेपक का विवेक रखना भी अति कठिन हो गया।

इस प्रकार अनुकूल परिस्थिति के अभाव में ज्यों-ज्यों मीराँ-लेखन कार्य में विलम्ब होता गया त्यों-त्यों मीराँ की जीवनी व पदावली को शीघ्रातिशीघ्र साकार रूप में देखने की इच्छा रखने वाले मेरे बहुत से हित-चिन्तक मित्र एवं भक्त गण

अधीर हो उठे। परन्तु मैं समझता हूँ कि यह उनका मीराँ व मेरे प्रति प्रेम और श्रद्धा का ही द्योतक है।

पहले तो मीराँ के भाव-चरित्र को, जो कि थोड़ा बहुत लिखकर उसे अधूरा ही छोड़ दिया था, पूरा लिखकर सर्व प्रथम उसे प्रकाशित करने का विचार था। परन्तु मीराँ के पदों का संग्रह विशाल प्रमाण में हो जाने से और तत्सम्बन्धी साहित्य भी थोड़ा बहुत प्राप्त हो जाने से इन सब के प्रकाशन के पश्चात् ही निश्चिन्तता से भाव-चरित्र के कार्य को हाथ में लेने का विचार सुविधा जनक जान पड़ा। अतएव 'मीराँ-सुधा-सिन्धु' के ही लेखन कार्य में पूर्णरूप से दत्तचित्त हो गया।

पद जिस रूप में जहाँ से प्राप्त हुए वैसे ही रहने दिये हैं। केवल उन पदों की, जो कि देहाती लोगों द्वारा उनकी परंपरा से कंठस्थ होते आये हैं और जिनमें अशिक्षित ग्रामीणों की भाषा-संस्कार के कारण अक्षर घिसते-घिसते शब्द में जहाँ कहीं किञ्चित् विकृति प्रतीत हुई वहीं सहज मात्रा आदि से, सुधारने जैसा स्वल्प परिवर्तन मात्र किया गया है, इससे अधिक नहीं।

पदावली में कहीं कहीं ऐसे भी सुन्दर, सरल भाव पूर्ण पद आये हैं कि जिनके चरणों में अतुक व विसंगति आदि का दोष दिखाई पड़ता है परन्तु इन त्रुटियों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है।

मीरांबाई की इस रचना का नाम 'मीराँ-सुधा-सिन्धु' रखा गया है। सरल पदों में भाव-गांभीर्य एवं विशाल प्रमाण में

पदों का संग्रह होने के कारण सिन्धु तो है ही पर यह खारा नहीं। इस पद-सिंधु में तो भगवद् भक्ति व प्रेम की ऐसी मधुर रसमयी सुधा भरी हुई है जो मृतात्माओं में प्राणों का संचार करने वाली संजीवनी एवं सर्वदा नवशक्ति व आनंद प्रदायिनी है।

मीराँ साहित्य की इस प्रथम पुस्तक 'मीराँ-सुधा-सिन्धु' में मीराँ के १३१२ पद, उनके शब्दार्थ-भावार्थ, मीराँ की जीवनी, पदों के भावानुसार भूमिकाएँ एवं आवश्यक कुछ लेख आदि भी दिये गये हैं।

कुछ साहित्यिक दृष्टिबिंदु से लिखी जाने के एवं इसके कलेवर आदि के भी बढ़ जाने के कारण कदाचित सर्व साधारण जनता को सुगम न हो सके अतएव इस पुस्तक के साथ ही 'मीराँ-सुधा-लहरी' नामक एक अन्य छोटी पुस्तक भी प्रकाशित की जा चुकी है जिसमें श्री मीराँ की जीवनी एवं सुन्दर चुने हुए पदों का संग्रह आदि महत्व का साहित्य 'मीराँ-सुधा-सिन्धु' में से छाँट कर दिया गया है।

इस 'मीराँ-सुधा-सिन्धु' के पश्चात् मीराँ-साहित्य की वह पुस्तक प्रकाशित होगी जो ऐतिहासिक दृष्टिकोण को लिये हुए होगी। जिसमें मीराँ संबंधी अन्वेषण कार्य को लेकर मुझे कहाँ—कहाँ जाना पड़ा, किन-किन मीराँ-साहित्य-प्रेमी महाशयों से मिलना हुआ, मीराँ के मन्दिर कहाँ-कहाँ हैं आदि प्रश्नों पर विवेचन एवँ जिसमें मीराँ के उपास्य-स्वरूपों के तथा मंदिर आदि स्थानों के चित्र भी यथा संभव दिये जायँगे। इसके अतिरिक्त मीराँ-जीवन प्रसंगों के विवादास्पद प्रश्नों पर भी यथा शक्ति प्रकाश

डाला जायगा एवं मीराँ-साहित्य-सामग्री जो भी जहाँ कहीं से प्राप्त हुई है सब प्रकाशित की जावेगी ।

तत्पश्चात् वह पुस्तक प्रकाशित होगी जो मीराँ के भाव-चरित्र को लिखते-लिखते अधूरी रह गई है ।

प्रभु कृपा से यदि परिस्थिति सानुकूल रही तो क्रम से एक-एक पुस्तक यथा शीघ्र प्रकाशित हो सकेगी । इनके अतिरिक्त और भी साहित्य सुविधानुसार शनैः शनैः प्रकाशित होता जायगा ।

अंत में पाठकों से अनेकानेक त्रुटियों के लिये क्षमा प्रार्थनीय है ।

भीलवाड़ा,
आषाढ़ शु०-१५
गुरु पूर्णिमा सं० २०१४ वि०

संत चरण रज
आनंदस्वरूप

कृतज्ञता-प्रकाशन

★

मूकं करोति वाचालं पङ्गु लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानंद माधवम्॥

कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ परब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचंद्र की सर्वदा जय हो जिनकी अहैतु की कृपा ही का फल यह 'मीराँ-सुधा-सिन्धु' अब भक्त-जन-संसार के समक्ष प्रस्तुत है।

तदनंतर प्यारे श्यामसुन्दर की प्रेयसी भक्त-शिरोमणि प्रेममयी श्री मीराँ महारानी के चरण कमलों में बारम्बार प्रणाम हो जिनकी अव्यक्त प्रेरणा-प्रद संत-आत्मा को ही यह श्रेय है जो यह सुधा-सिंधु लहरा उठा है।

मीराँ-साहित्य के अन्वेषण, संकलन एवं प्रकाशन कार्य में मुझे कई सज्जनों, संस्थाओं एवं पुस्तकों आदि से सहयोग व सहायता प्राप्त हुई। जहाँ से कुछ मीराँ-साहित्य एवं पद-सामग्री प्राप्त हुई, उनका मुख्यतः नामोल्लेखन इस प्रकार है:—

सर्व श्री—जस्टिस रमाप्रसाद जी मुखर्जी कलकत्ता, स्व० रामगोपाल जी पुरोहित (उनके पिता स्व० पं० हरिनारायणजी पुरोहित के संग्रह में से) जयपुर, प्रो० मंजुलालजी मजमूदार बड़ौदा, पं० केशवराम काशीराम शास्त्री अमदावाद, श्रीमती हीराँबेन पाठक बम्बई, पुस्तकाध्यक्ष नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, प्रो० उदयसिंह जी भटनागर उदयपुर, हैडमास्टर ए. वी. गुजराती स्कूल (गुजराती काव्य दोहन के पद) कलकत्ता।

उपर्युक्त महानुभावों का मैं हृदय से आभारी हूँ। साथ में सर्व श्रीसत्यनारायणजी नाथानी भीलवाड़ा, पूषालाल जी मानसिंह का

भीलवाड़ा, मगनीराम जी बांगड़, रामकुमार जी अग्रवाल कलकत्ता, शिवकुमार जी धानुका कलकत्ता एवं रामनिवास जी माछर इत्यादि यथाशक्ति आर्थिक सेवा-सहायता करने वाले सज्जनों को भी मैं अपनी ओर से हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

श्री पं० चन्द्रभूषण जी शास्त्री (सुवाणा) का भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने तीन संस्कृत श्लोक बना दिये और संशोधन कार्य में भी सहयोग दिया।

भाई श्री मोतीलाल जी मालीवाल ने समस्त पदों की पांडु-लिपि व एक मुद्रण के लिये परिष्कृत प्रतिलिपि बनाई, रायपुर (मेवाड़) के भक्त जनों ने भी लेखन कार्य में सहयोग दिया, भाई कल्याणमल जी कचोल्या द्वारा ग्रा. सरेड़ी से व श्रीमती भगवतीदेवी जी के द्वारा देवगढ़ से पद प्राप्त हुए, इसके अतिरिक्त भाई श्री बंशीलाल जी सामरिया आदि रायला के भक्त जनों ने भी कई प्रकार से सहयोग दिया है।

श्रीमान् सत्यनारायण जी नाथानी की श्री मीराँ जी के प्रति बड़ी श्रद्धा-भक्ति और उनके पदादि-साहित्य के प्रति सर्वदा हार्दिक रुचि रही है और समय-समय पर तन-मन-धन से सहयोग देकर उन्होंने मीराँ-साहित्य-सेवा कार्य को शिथिल नहीं पड़ने दिया।

परन्तु उपर्युक्त सब सज्जनों को मैं अपने ही मानता हूँ और अपनों को धन्यवाद कैसा ! कदाचित् उन्हें भी इसे स्वीकार करने में आपत्ति होगी। अतएव उन सबको मैं हृदय से आशी-र्वाद करता हूँ कि प्रभु कृपा से उनकी यह श्रद्धा व सेवा-भावना दिनोंदिन वृद्धिंगत होती रहे।

और भी मेरे बहुत से हितचिंतक व भक्तजन हैं जिनके नाम स्थानाभाव के कारण नहीं दे पाया हूँ। उन्हें मैं भूला नहीं हूँ। उनकी श्रद्धा प्रेम व सेवा-भावना कदापि भूलने की वस्तु नहीं।

अंत में अग्रवाल मुद्रणालय मथुरा के संचालक, ब्रज के सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्रीमान् प्रभुदयाल जी मीतल एवं उनके सुपुत्र श्री त्रिलोकीनाथ जी मीतल के आत्मीयतापूर्ण व्यवहार को भी मैं नहीं भूल सकता जिससे प्रकाशन कार्य में सुविधा प्राप्त होती रही और यह विशाल ग्रंथ सुन्दर रूप में तैयार हो सका।

—आनन्द स्वरुप

मीराँ क्या है ?

★

आज से लगभग ४५० वर्ष पूर्व मृत्युलोक में अवतार धारण करने वाली एवं अपने पवित्र और मधुर प्रभाव से सारे विश्व के गगन मंडल को आलोकित करने वाली थी वह श्री राधिका महारानीजी की परम प्रिय पात्री।

संसार में रह कर भी जो संसार से अनासक्त रही, यही नहीं संसार की उग्र ज्वालाओं में भी अपने आपको चंदन समान शीतल रख कर अपनी स्वाभाविक उदारता से जिसने संसार को प्रेम, कल्याण और शांति का पाठ पढ़ाया।

भगवत्प्रेम में रंगी हुई वह एक ऐसी राजमहिला थी कि जिसने अपने प्रभु श्यामसुंदर के लिये सामाजिक बंधन व लोक-कुल-रीति को नगण्य समझ कर पैरों में घुंघरू बांध कर नृत्य करके अपने गिरिधर गोपाल को रिझाया था।

उपर्युक्त सामाजिक वज्र बंधन को तोड़ने जैसी स्वतन्त्र, साहसभरी एवं क्रान्तिकारिणी वृत्ति के कारण अत्यन्त रुष्ट हुये राणा द्वारा अनेकानेक प्रयत्न किये जाने पर भी तनिक भी अपने निश्चय से न डिगने वाली वह वीराङ्गना थी जिसका बाल ही बाँका नहीं हुआ। इसके विपरीत वह तो कुंदन की भांति और भी अधिक चमकने लगी।

जिसकी भक्ति और प्रेम बालपन से ही शनैः शनैः विकसित होते हुए उस पराकाष्ठा तक पहुँच गये कि अंत में श्री द्वारिकाधीशजी को अपनी पाषाण प्रतिमा को चैतन्यमयी

बनाकर तद्द्वारा उसे अपने में समा लेना पड़ा। भगवान् के साक्षात् श्री अंग में ही वह अंतर्हित हो गई।

साहित्यिक क्षेत्र के उच्चकोटि के कवियों की पंक्ति में सुशोभित होने की योग्यतावाली वह विदुषी थी, जिसके पद सारे भारत के मंदिरों में गाये जाते हैं एवं सत्संग-उपदेश व प्रेमभाव पूर्ण उन मधुर पदों को गा-गा कर अनेकों नर नारी तर गये, तर रहे हैं, और तरते रहेंगे।

जिसने राजस्थान, वृंदावन, गुजरात और द्वारिका आदि की यात्रा के समय, अपने दर्शन, कीर्तन व सत्संग से अनेकों जीवों का उपकार किया तथा सर्वत्र साधु-महात्माओं ने जिसकी लोक-मान्यता स्वीकार करली।

जिसकी संगीत कला में यह अलौकिक प्रभाव था कि मल्हार राग गाने से मृतक सजीव हो उठता था। जिसमें लोक मानस को विमुग्ध कर उसे शांति और कल्याण के राजमार्ग पर अग्रसर कराने का विलक्षण सामर्थ्य था और जिसकी कोकिल कंठी संगीत-सुधा मृत्यु लोक के जीवों के लिये प्रत्यक्ष संजीवनी थी।

जिसकी ऐसी अपूर्व तेजस्विता थी कि, किसी स्त्री का मुख न देखने का प्रण करने वाले वृंदावनवासी जीव गोस्वामी जैसे प्रकाण्ड पण्डित व संत को भी उसके मार्मिक, निर्भीक व यथार्थ उत्तर को सुनकर अपना प्रण तोड़ने को बाध्य होना पड़ा।

उस प्रेम योगिनी और भक्ति की आचार्या की योग्यता

किसी अनुभवी, ज्ञानी, वेदान्ती और योगी से किसी प्रकार न्यून नहीं थी। उसके ज्ञान व निर्गुण-रहस्यवाद के पद इसका सहज प्रमाण है।

जिसका ऐसा सार्वभौम माहात्म्य है कि मेवाड़ देश व मेड़ता (मरु-भूमि) आज भी उसके नाम के पीछे मीरांबाई के देश माने जाते हैं।

आर्य महिला का भव्य आदर्श, मेवाड़ की परम विभूति, वृन्दावन की माधुरी, सकल संत समाज की भूषण, श्यामसुन्दर की परम प्रेयसी तथा 'प्रेमवश भगवान भक्त के आधीन हो जाते हैं', इस सत्य का संसार को साक्षात्कार कराने वाली वह थी दिव्य स्वयं सिद्धा !

आज भी वह भवताप-तप्त संसारी जीवों के लिये कलि-कल्मष-हारी सुधा का झरना है।

भगवद् साधन विहीन और संसार ग्रस्त दरिद्रियों के लिये वह भक्ति की अनंत निधि है।

पाप-ग्रस्त जीवों को शीतलता प्रदान कर उन्हें प्रेम प्लावित कर देने वाली वह शरद पूर्णिमा की पूर्णोज्ज्वल ज्योत्स्ना है।

पथ-भ्रष्टों को मार्ग सुझाने वाली एवं अज्ञानांधकार को दूर कर उनके हृदय प्रदेश पर प्रेमालोक बरसाने वाली वह दिव्य ज्योति है।

प्रभु के पाद-पद्मों में समर्पित हुआ भगवत्प्रेम वाटिका का वह दिव्य सुमन है, जिसके आनंदमय एवं पवित्रतम मधुर सौरभ से सहस्रों जीव अपूर्व प्रेरणायें पाकर आत्मोन्नति के पथ पर अग्रसर होते हैं।

वह भगवती भागीरथी है जो श्री विष्णु चरण से प्रकट होकर श्री शंकर की विशाल जटा में समा गई अर्थात् श्री चार-भुजानाथ (विष्णु) तीर्थ स्थान के माहात्म्य वाले, मेड़ता रूप विष्णु चरण से निकली हुई मीरा रूप भागीरथी, श्री एकलिंगजी भगवान् की महिमा वाले चित्तौड़ रूप, शिवजी की जटा में समा गई और तत्पश्चात् संसार के कल्याण के लिये देश-प्रदेश में बहती हुई अन्त में सागर में जाकर समा गई, अर्थात् मेवाड़ छोड़कर श्री वृन्दावनादि तीर्थों में विचरती हुई मीराँबाई अन्त में श्री द्वारिकाजी में श्री रणछोड़रायजी के श्री विग्रह रूप सिंधु में विलीन हो गई।

वह है श्यामसुन्दर की अभिन्न हृदया, प्रेम-प्रभा, सौन्दर्य-सुषमा तथा आनंद-सुधा का सिंधु एवं लेखक के लिये तो मीराँ सर्वस्व है जिस पर सर्वस्व ही न्यौछावर है !

'मीराँ देवी' कितना सुन्दर नाम ! कितना माधुर्य है इस नाम में !' इस नाम के स्मरण होते ही अनायास भावुक मानस-पटल पर यह स्वरूप-छटा अङ्कित हो जाती है :—

गौर कान्तियुक्त अपूर्व लावण्य से दमकता हुआ मुखमंडल, अपने प्रियतम के प्रेम-मद में छके हुये सुन्दर विशाल नयन कमल, तंबूरा बजाते हुये गा-गाकर एवं नृत्य कर अपने गिरधर गोपाल को रिझाती हुई, सिर की दोनों ओर तथा पीठ पर विस्तृत लंबे गहरे कृष्ण केश, प्रवाल रंग के पतले ओष्ठ द्वय, हाथ पाँव सुन्दर सुडौल, क्षीण कटि युक्त अत्यन्त सुकुमार काया !

हृदय-प्रदेश को आलोकित करने वाली ऐसी सौंदर्यमयी प्रतिमा के दर्शन करते हुये कभी तृप्ति नहीं होती ! कैसा प्रभाव

शाली और मनोमुग्धकारी व्यक्तित्व है !! मानों सूर्य-प्रभा द्वारा उस मुख-मण्डल पर दैदीप्यमान लावण्य छिड़का गया है। नेत्रों में प्रति-क्षण इस प्रकार एक न्यारी ही आनन्दमयी झलक चमकती है मानों बिजली की दिव्य चंचलता ने उन नेत्रों का आश्रय लिया हो ! विधाता ने मधुरता और मृदुता का सार लेकर मानों उस कण्ठ स्वर का निर्माण किया है। ऐसी अनुपम व दिव्य श्री अङ्गकान्ति है मानो चन्द्रमा की शीतल स्निग्ध व शुभ्र ज्योत्स्ना का उस देह पर उबटन लगा हो और कृष्ण-प्रेम-सुधा की अनन्त धाराओं से परिप्लावित समस्त अङ्गोपाङ्गों के रोम-रोम में मानों आनंदमयी सुधा-संजीवनी व्याप्त हो।

श्री मीराँ-प्रशस्ति

★

नीराँ शिरे प्रयाग जल, वीराँ शिरे जयमल्ल ।
कोहिनूर हीराँ शिरे, मीराँ शिरे महिल्ल ।।

नाम रहेगो काम से, सुनो सयाने लोय (लोग) ।
मीराँ सुत जायो नहीं, शिष्य न मूँड्यो कोय ।।

साधु संतों की एक साखी है:—

हुओ धने सूं दादु बधतो, दादू सूं करमा दुरस ।
करमा मीरे कबीर नामदे, साराँ सूँ मीराँ सरस ।।

सदृश गोपिका प्रेम प्रगटि कलि जुग हि दिखायो ।
निरअंकुश अति निडर रसिक जस रसना गायो ।।
दुष्टनि दोष बिचारि मृत्यु को उधम कीयो ।
बार न बाँको भयो गरल अमृत ज्यौं पीयो ।।
भक्ति निसान बजाय के काहू तैं नाहिन लजी ।
लोक-लाज कुल शृङ्खला तजि मीराँ गिरधर भजी ।।

—नाभादास

को मीराँ सम परम दयाल ।
श्री हरि भक्ति सुलभ जिहि कीन्ही घर-घर या कलिकाल ।।०।।
देखि विविध दुख सों जग व्याकुल, सहसा हिय भरि आयो ।
धरि नर तनु जग आई सरल शुचि, भक्ति पन्थ प्रकटायो ।।१।।
जन हित तजि कुल लाज प्रेम सों, नाची गिरधर आगे ।
परत नैन जलधार निरखि जन, हिय हरि सों अनुरागे ।।२।।

पियो घोर हालाहल विष हूँ, हरि चरणामृत मानी ।
भयो सुधा हू सों फलदायक, जाहिर जगत कहानी ।।३।।
लखि पढ़ि सुनि सुचरित मीराँ के, तरेउ हजारन पापी ।
अमल प्रेम की ध्वजा विश्व मह, अविचल मीराँ थापी ।।४।।
अतिशय नीच दुष्टहु के सिर, करुणा करि कर फेरी ।
लीन्ही लाय प्रेम युत उर सौं, नेकु न कीन्हीं देरी ।।५।।
निज भगिनी सम जानि दया करि, प्रेम हिये उपजायो ।
कर गहि करुणा कर कर अर्पी, सुन्दर वदन दिखायो ।।६।।
बरस करोर करौं तब सेवा, तऊ उऋण मैं नाहीं ।
'चन्द्रकला' तेरे चरणाम्बुज, बिलसहु मम उर मांहीं ।।७।।

—पं० शोभालाल शास्त्री दशोरा

श्री मीराँ का चीरः—

भक्ति का कपास 'जगदीश' बोया जाट धना,
दादू धुनिया ने धुन साफ कर छोड़ा था ।
कर्मा जाटिनी ने किया कात कात सूत त्यार,
कबीर कुनिन्द मढ़ा चारू चीर चौड़ा था ।।
नामदेव छीपा ने बिछाय भाव वेदी पर,
नाय नाय भाव भक्ति रंग में निचोड़ा था ।
देय कर तारी फिर तारो गिरधारी कहि,
सोई चीर मीराँ मतवारी तूने ओढ़ा था ।।

जय देवी प्रेम दया की । जय हो मीराँ माता की ।।०।।
जन लज्जा कुल मर्यादा । निंदा स्तुति जनहि प्रवादा ।।

तजि मान व्यर्थहि विवादा। प्रभु प्रेम सुधा पी छाकी ॥१॥
मीराँ को गरल पिलायो। पुनि उग्र भुजंग पठायो॥
प्रभु भक्ति प्रभाव दिखायो। हारी सत्ता राणा की ॥२॥
इक हाथ लियो इकतारा। दूजे कर ली करतारा॥
पग घुँघरू की झनकारा। करि प्रेम नृत्य नहिं थाकी ॥३॥
जग पावन नाम प्रचारा। पापी जीवों को तारा॥
भई अमर कीर्ति संसारा। जन गावे स्तुति महिमा की ॥४॥
संतन में सिर मणि सोहे। गुण रूप दिव्य मन मोहे॥
नातो यह पूरव को है। 'आनन्द स्वरूप' कृपा की ॥५॥

विषय-सूची

*

प्रथम खण्ड

द्वितीय खण्ड

चित्र-सूची

★

प्रथम खंड

★

मीरांबाई की जीवनी

भारत का राजकीय व धार्मिक वातावरण

आज से प्रायः ४५० वर्ष पूर्व जब कि भक्त शिरोमणि मीराँदेवी ने इस पृथ्वी तल पर अवतार धारण किया तब भारत वर्ष की राजकीय परिस्थिति बड़ी ही डावाँडोल और अनियमित थी। दिल्ली के तख्त पर लोदीवंश का बादशाह सिकंदरशाह राज्य कर रहा था। मेवाड़ में महाप्रतापी राणा संग्रामसिंह चित्तौड़ के महाराज्य के स्वामी थे। आपने अपूर्व रण-कौशल, महा-पराक्रम और बुद्धि-शक्ति के बल पर किसी दिन सारे भारत-वर्ष के शासन-सूत्र को स्वाधीन करने की उनके हृदय की महत्वा-कांक्षा थी। इसी आशय को हृदय में पोषित करते हुये वे पुरुषार्थी राणा तत्सिद्ध्यर्थ प्रयत्न में संलग्न थे। सिकंदरशाह के शासन से असंतुष्ट कुछ सरदारों के षडयंत्र से उधर भारत की सीमा पर जहीरुद्दीन बाबर दिल्ली के तख्त को हड़पने के लिए तैयारियाँ कर रहा था। यों भारत के रंगमंच पर निकट भविष्य में किसी नये नाटक के खेले जाने के चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे थे।

भारत में मुसलमानी शासन के कारण हिंदू-मुसलमान परस्पर सम्पर्क में आने लगे। हिन्दू-वेदान्त का मुसलमानों पर

और मुसलमानी अद्वैतवाद का हिन्दुओं पर भी प्रभाव पड़ा। धीरे-धीरे एक नया आन्दोलन चलते चलते सूफी-मत का प्रचार होने लगा और एकेश्वरवाद तथा भक्ति की हिन्दुओं में चर्चा होने लगी। परिणाम रूप १५ वीं शताब्दी में कई संत-महात्मा ऐसे हो गये जिन्होंने यही उपदेश किया कि ईश्वर एक है और भिन्न-भिन्न धर्म उसके पास पहुँचने के लिये केवल मार्ग रूप हैं तथा नीच से नीच मनुष्य भी भक्ति को अपना कर परम गति को, प्राप्त कर सकता है। रामानंद, कबीर, नानक, वल्लभाचार्य, चैतन्य आदि महापुरुषों ने यही उपदेश किया।

भारत सदा से आध्यात्मिक दृष्टि से विश्व का गुरु बना रहा है। भारत से और देशों ने कुछ न कुछ सीखा है। जीवनोपयोगी आवश्यक सभी क्षेत्रों में यह कभी पीछे नहीं रहा। सोलवीं शताब्दी से १८ वीं शताब्दी तक तो भारत के सभी प्रांतों में संत महात्माओं की प्रधानता थी या यों कहा जाय कि यह मध्य काल संतों ही का युग था।

बंगाल में १२ वीं शताब्दी में भक्त कवि जयदेव ने जो गीत-गोविंद द्वारा ब्रजभाव की राधा-कृष्ण के प्रेम की अमृत-स्रोतस्विनी बहाई थी, चौदहवीं शताब्दी में ब्रज-भाव के प्रेमी बिहारी कवि विद्यापति ने उसी की मधुर लहरियों में अपने आपको परिप्लावित कर दिया और उसी अनुभूत आनंदास्वाद के कुछ अमृत-कण काव्य द्वारा विश्व में बिखेर दिये।

गुजरात में ब्रज-प्रेम में पगले परम भक्त नरसिंह मेहता ने श्री राधा कृष्ण-रति के उन्माद में आत्म विभोर भगवान् के रास विलास में साक्षात् अनुभव करने का अधिकार पाया था,

और आपने अनेकानेक पद कवितादि रचनाओं द्वारा जन-गण-मन के आत्म-कल्याण के लिये परम मधुर पथ का प्रदर्शन किया था।

महाराष्ट्र में सन्त ज्ञानदेव, निवृत्तिनाथ, सोपानदेव, मुक्ताबाई, नामदेव, जनाबाई आदि सन्त महात्मागण भगवत्प्रेम और आत्म ज्ञानादि का प्रचार करते हुए साधारण जीवों को सरल मुक्ति का पथ निर्देश करते रहे। सारांश कि भारत के विभिन्न प्रांतों में किसी न किसी रूप से धार्मिक वातावरण बना हुआ था।

मीरांबाई के जन्म के समय काशी के श्री वैष्णव सम्प्रदाय के आदि अधिष्ठाता स्वामी श्री रामानन्द के शिष्यों का बोलबाला था। यह स्वामीजी राम के उपासक थे और वैष्णव-धर्म का प्रचार करते थे। इन्होंने 'श्री अथवा रामनन्दी संप्रदाय' चलाया। इनके उपदेश में एक विशेषता थी। ये कहते थे कि जाति-पांति मोक्ष-प्राप्ति में बाधक नहीं हो सकती। 'जात पांत पूछे ना कोय, हरि को भजे सो हरि का होय'। इसी सिद्धान्त को लेकर श्री रामानन्द स्वामी ने सामान्य जन समाज के सभी वर्णों के लोगों की मोक्ष प्राप्ति के उद्देश्य से 'आचार्य सम्प्रदाय' में से यह 'साधारणी सम्प्रदाय' उत्पन्न किया था। इसलिये इनके शिष्यों में शूद्र लोग भी थे।

सन्त कबीर, रैदास, पीपाजी, दादूजी आदि रामानन्द जी के शिष्यों में प्रत्येक में कुछ अपनी विशेषता थी। स्वामी रामानन्दजी से भक्ति की दो धारायें बहनें लगी या यों कहिये सगुण और निर्गुण भक्ति की धारायें जो बहुत प्राचीन काल से वैष्णव समाज और नाथ संप्रदाय द्वारा बहती आई व जो धीरे-धीरे

शिथिल पड़ती जाती थीं उन्हें फिर नया बल प्राप्त हुआ । संत कबीर निगु ण पंथ के अगुआ रहे । इस निगु णवाद के उगम से, उस साधना के परिचायक, गगन मंडल, शून्य शिखर, सुरता, समाधि, बंकनाल, सुषुम्ना, भंवर, गुफा आदि आदि शब्द तत्संप्रदाय वाणी में व भाषा में प्रचलित होने लगे । संतों के विचरने से राजस्थान में भी धीरे-धीरे इस मत का प्रचार होता रहा जिसका प्रभाव कुछ मीरांबाई पर भी पड़ा जो उनके पदों में कहीं-कहीं देखा जाता है ।

इस समय पंजाब में गुरु नानक अवतरित हो चुके थे और बंगाल में श्री गौर चन्द्र (श्री चैतन्य महाप्रभु) का उदय हो चुका था । पंजाब में गुरु नानक से एकेश्वरवाद का प्रचार हुआ और बंगाल में श्री चैतन्य देव ने राधा कृष्ण के प्रेम व भक्ति की मंदाकिनी इस प्रकार बहादी कि जिसकी धाराओं ने वहाँ के प्रवर्तित 'शाक्त' मत को भी निष्प्राण-सा कर दिया ।

महाप्रभु श्री बल्लभाचार्य द्वारा भी पुष्टि संप्रदाय की नींव डाली जाकर उनके शिष्यगण द्वारा उस पर निर्माण कार्य होने लगा था ।

इधर राजस्थान के क्षितिज में प्रगट होकर मीरांबाई ने भी ऐसी भक्ति की भागीरथी बहाई कि जिसके पुण्य मय स्रोत में अनेकों नरनारी अवगाहन करके पावन हो गये । केवल राजस्थान में अथवा समूचे भारतवर्ष में ही नहीं अपितु सारे विश्व में देवी-मीराँ का नाम अजरामर हो गया । सारे ब्रह्मांड भर में उसका कीर्ति-सौरभ फैल गया तथा विश्व के विभिन्न साहित्य और भक्ति-क्षेत्र में उसने अमिट स्थान पा लिया ।

मीराँ का पितृवंश

महाराणा लाखाजी का एक विवाह मारवाड़ की राजकुमारी हंसादेवी से हुआ था । वास्तव में तो मारवाड़ के राजकुमार रणमल अपनी लघु भगिनी की सगाई राणा लाखाजी के पुत्र कुंवर चुंडाजी से निश्चित करने के हेतु नारियल ले आये थे। परन्तु विधि को कुछ और ही करना था । रणमल ने राजसभा में उपस्थित होकर उपरोक्त प्रस्ताव जब राणा के सन्मुख रखा उस समय कुंवर चुंडाजी उपस्थित नहीं थे । अपने पुत्र की सगाई के प्रस्ताव को सुनकर राणा ने अपनी श्वेत दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए विनोद भाव से कहा कि, हमारे भी कुंवर जैसी अवस्था तथा काले केश होते तो ऐसे खिलौने को प्राप्त करने में हम भी भाग्यशाली होते । कहते हैं कि राजकुमार चुंडाजी ने यह बात सुनी तो सगाई के प्रस्ताव को उन्होंने यह कह कर अस्वीकार कर दिया कि चाहे किसी भी भाव से पिताजी ने उपरोक्त वचन कहे हों पर मारवाड़ की राजकुमारी अब मेरी माता ही बनने योग्य है । विनोद भाव से क्यों न हो परन्तु जब पिताजी का मन जिस राजकुमारी पर चला गया सो उसे पत्नी रूप में मैं कदापि स्वीकार नहीं कर सकता । इस पर महाराणा ने कुंवर को बहुत समझाया पर वे अपने निश्चय पर अटल रहे और उन्होंने वह दस्तूर (सम्बन्ध-सामग्री) अपने पिता महाराणा के भेंट करने को रणमल को विवश किया । रणमल के यह कह कर---कि आपके युवराज होते हुये मेरी बहिन की संतति मेवाड़ की उत्तराधिकारी नहीं हो सकती है---असमर्थता प्रकट करने पर कुंवर चुंडाजी ने यह प्रतिज्ञा की, कि मैं अथवा

मेरी संतति कोई भी मेवाड़ की राजगद्दी पर नहीं बैठेगी । इसके पश्चात् महाराणा के साथ उस सम्बन्ध के निश्चित होजाने की राजसभा में घोषणा की गई ।

इस प्रकार महाराणा का हंसादेवी से विवाह होगया और उससे मोकलदेव नामक पुत्र की प्राप्ति हुई । कालान्तर में छोटे कुंवर को युवराज पद देकर, चुंडाजी को उसका रक्षक और प्रबंधक नियुक्त कर महाराणा गयाजी चले गये, जहाँ यवनों द्वारा उत्पीड़ित यात्रियों की रक्षा के निमित्त होने वाले संघर्ष में काम आये ।

अब मोकल जी चित्तौड़ का राणा बना । उसके मामा रणमल ने जो बहिन के नाते चित्तौड़ में ही रहता था—अनुकूल अवसर पाकर शनैः-शनैः राठौड़ों के पक्ष को सबल बना लिया । इस परिस्थिति से बड़े कुंवर चुंडाजी ने राजमाता को परिचित किया; परन्तु रणमल ने इसके विपरीत चुंडाजी के ही मन में कपट होने की बात बहन को समझाई । भोली महाराणी ने भाई की बहकावट से चुंडाजी को देश निकाला दे दिया । जाते-जाते भी चुंडाजी अपनी सौतेली माता को जब भी आवश्कता पड़ने पर सूचना मिलते ही सहायता देने का वचन देते गये । उनके जाने से रणमल का अच्छा दाँव लगा । सीसोदियों के राज्यसिंहासन पर धीरे-धीरे राठौड़ों के अधिकार के लिये षड़यंत्र रचा जाने लगा । राजमाता भी समझ गई, परन्तु विवश थी । अन्त में उसने चुंडाजी को गुप्त सन्देश भेजा, जिसे पाकर चुंडाजी सेना लेकर चित्तौड़ आये और कुछ संघर्ष के अन्त में उन्होंने रणमल को परास्त किया और राणा मोकल को सुरक्षित किया । राव

रणमल मारा गया और उसका एक पुत्र जोधाजी भागकर मारवाड़ चला गया।

वहाँ जोधाजी ने अपने नाम पर वि० सं० १५१५ में नगर बसाया, जो 'जोधपुर' नाम से प्रसिद्ध है।

जोधाजी के चतुर्थ पुत्र दूदाजी ने (जन्म वि० सं० १४६७) अपने पराक्रम से वि० सं० १५१८ में मेड़ता का पुनरुद्धार किया और उसे राजधानी बना कर नये ढंग से नगर का निर्माण किया। उन्होंने राजमहल, दूदासर नामक सरोवर और श्री चारभुजानाथ का भव्य मन्दिर आदि बनवाये। यह बड़े भक्त थे। श्री चतुर्भुजनाथ का उन्हें इष्ट था। ये ही राव दूदाजी मीराँ के पितामह थे। इनके पाँच पुत्रों में ज्येष्ठ वीरमदेव हुए (जन्म वि० सं० १५३४) और छोटे पुत्र का नाम रत्नसिंह था। ये ही रत्नसिंह मीराँ जैसी साध्वी और प्रभु की अनन्य भक्त पुत्री के पिता कहलाने के भाग्यशाली हुए।

राव दूदाजी से मेड़तिया शाखा चली। मेड़तिया राठौड़ वीरता में सानी नहीं रखते थे इसलिये यह कहावत मारवाड़ में प्रसिद्ध है—'जानरा उदा और मरणारा दूदा'। बरात में शोभा के लिये उदावत राठौड़ और युद्ध में कट मरने के लिये मेड़तिये राठौड़ हुआ करते हैं।

जन्म

राव दूदाजी के छोटे कुंवर रत्नसिंह बड़े पराक्रमी, सात्विक वृत्ति के और भक्त थे। दूदाजी ने उन्हें निर्वाह के लिए मेड़ता राज्य से कुड़की, बाजोली आदि बारह गाँवों की जागीर प्रदान

की थी। रत्नसिंह विशेषकर कुड़की में ही रहा करते थे। लोगों की इन पर बड़ी श्रद्धा थी। इनका विवाह झाला राजपूत सुरतानसिंह की कन्या वीरकुंवरी से हुआ था। रत्नसिंह की यह धर्मपत्नी बड़ी सुशीला, साध्वी तथा भक्ति परायणा थी। इनके जब गर्भ रहा तब दूदाजी ने अपने राजपुरोहित को कुड़की भेज दिये। उनकी इच्छानुसार पुरोहित राजमहल में नित्य श्रीमद्-भागवत की कथा सुनाते, थोड़ी देर भजन कीर्तन भी होता। राजवधू वीरकुंवरी प्रेम पूर्वक एकाग्रचित्त से कथा-भजन सुनती और इस सत्संग का पूर्ण लाभ लेती।

इस प्रकार समय बीतने पर (वि० सं० १५५६ के लगभग) एक दिन मंगल मुहूर्त में बालिका ने जन्म लिया। क्षण भर में ये शुभ समाचार सर्वत्र फैल गये। राजपुत्र के समान इस राजकुमारी का जन्मोत्सव मनाया जाने लगा। चारों ओर वाद्यध्वनि होने लगी। नगर भर में मंगलाचार होने लगे। जन्म के समय बालिका के अपूर्व तेजोमय मुखमंडल को देख कर उसका नाम 'मिहिराँ बाई'—मीरांबाई (मिहिर = सूर्य) रक्खा गया। राज-ज्योतिषी द्वारा पुत्री की जन्म कुंडली में पड़े अपूर्व ग्रहों और लक्षणों को सुनकर माता-पिता के आनन्द का पार नहीं रहा।

पूर्व जन्म सम्बन्ध

मीरांबाई के लिये कहते हैं कि वह या तो राधा, ललिता, चंपकलता अथवा किसी गोपी का अवतार थी। वास्तव में मीरांबाई पूर्व जन्म में क्या थी यह तो वही या उसके प्यारे श्यामसुन्दर ही जानते हैं। परन्तु यह तो निश्चितरूप से कहा जा

सकता है कि मीरांबाई का सम्बन्ध द्वापर युग की गोपांगना से अवश्य है। उसके पदों से भी यह सिद्ध होता है। इस सम्बन्ध में एक बड़ी प्रभावशाली, रोचक और रसीली किम्वदन्ती किसी भक्त योगी-सिद्ध महात्मा से बरसाने में सुनने में आई थी। वह इस प्रकार है :—

(पूर्व जन्म की मीराँ) किसी बरसाने की गोपी का विवाह नंदगाँव के कृष्ण सखा किसी गोप से हुआ था। वह गोप जब गौना लेने बरसाने गया तब उस गोपी की माता ने उपदेश दिया कि सावधान रहना बेटी, नंदगाँव में कृष्ण कन्हैया बड़ा ही नटखट चंचल है। उसका यह प्रभाव है कि उसे एक बार देख लेने के बाद किसी कार्य में जी नहीं लगता और मन उसके वश में हो जाता है, इसलिये उससे बचे रहना। उसके सन्मुख न कभी जाना, न कभी घूंघट ही खोलना। मार्ग में संकेत नामक स्थान और प्रेम सरोवर के निकलने के बाद नंदगाँव की सीमा पर जब उनका रथ आया तब सहसा श्री कृष्ण कन्हैया प्रकट होकर बोले, क्यों सखा भाभी को ले आया ? भाभी का नेक मुंह तो दिखला दे। सखा ने कहा—लाला कन्हैया तेरे से कहा परदा, रथ को परदो उठा कर तू ही देख ले। तब श्री कृष्ण रथ पर चढ़ गये। बाहर से कृष्ण की बातें सुनकर माता की शिक्षा के अनुसार पहले से ही सावधान होकर वह गोपी घूंघट खींच कर बैठी थी। कृष्ण ने उसे प्रथमवार मुखावलोकन की प्रथानुसार कुछ भेंट देने के लिये कहकर मुख देखने की इच्छा प्रकट की; परन्तु वह टस से मस न हुई। इस पर यह कहते हुये कि "तू कहा बतावेगी तू ही मेरो मूंडो देखेगी" रथ से कूद पड़े। कुछ दिनों बाद

इन्द्र ने कोप कर ब्रज को बहाने के हेतु प्रलय ढहाया तब श्रीकृष्ण चन्द्र ने गिरिराज को अपनी अंगुली पर उठाया और अत्यन्त व्याकुल होकर गोप, गोपी, गौवें आदि सबों ने दौड़-दौड़ कर श्रीगिरिराज की छाया में आश्रय लिया तब उस बरसाने वाली गोपी को भी प्राण बचाने के लिये बाध्य होकर वहाँ जाना ही पड़ा। "आपद् काले मर्यादा नास्ति" के अनुसार ऐसे भयंकर प्रसंग में मर्यादा का पालन स्वाभाविक ही नहीं हो पाता; इस-लिये अन्यान्य गोप वधुओं की भाँति उस बरसाने वाली गोपी की भी लज्जा न रह सकी और वह माता की शिक्षा भूल गई और भयभीत हरिणी की भाँति उसकी आँखें इधर उधर देखती हुई कृष्ण पर जा लगी और सहज ही उसके मन में विचार परम्परा होने लगी---कैसा सुन्दर मुख कमल, श्याम स्वरूप, पीतांबर धारी, घुंघराले बाल, मोर मुकुट, हाथ में बंशी, सुकुमार होते हुए भी वज्र समान गिरिराज को अपनी नन्ही-नन्ही सी अंगुली पर उठाये कन्हैया आज ब्रज की रक्षा कर रहा है। कैसा पुरुषार्थी है। अपने प्राण बचाने को ऋषि मुनि आबाल वृद्ध नर-नारी और पशु-पक्षी आदि भी आज जिसका मुँह ताक रहे हैं, क्या उसी का मुँह देखने के लिये माँ ने निषेध किया था। अहो! कैसी आत्मघातिनी शिक्षा! इतने दिन व्यर्थ ही गये मेरे जो इनके दर्शन नहीं किये। मन में यह भाव आते ही श्यामसुन्दर की ओर टकटकी लगी हुई आँखों से प्रेमाश्रु की धारा बहने लगी। उसकी आँखें घटने वाली घटनाओं का चित्रपट देख रही थीं, चतुर्भुज रूप धारी कृष्ण के दिव्य दर्शन हो रहे थे। दो हाथों से बंशी बजा रहे हैं, एक हाथ नंद बाबा के कंधे पर है और एक हाथ पर पहाड़ उठा रक्खा है।

उसे पश्चात्ताप हुआ । रथ पर चढ़ कर स्वयं मेरा मुंह देखने के लिये आये हुये इन मननोहन श्यामसुन्दर गिरवरधारी परम प्रभु की अवहेलना कर मैंने कैसा घोर अपराध किया। गोपी का हृदय उमड़ आया, हाथ जोड़ कर रोते-रोते उसने क्षमा मांगते हुये कहा, हे प्रभो ! इस अबोधिनी के अपराध को भूल जाओ और इसे अपना कर अपने चरणों में स्थान दो। मेरा सर्वस्व आपके न्यौछावर है। उस गोपी की ओर निहारते हुए श्री कृष्ण भगवान के नेत्रों में चमक आई और होठों पर मुसकान छा गई, तब उसे श्री मुख द्वारा शब्दोच्चारण सुनाई दिया—इस शरीर द्वारा तूने मेरा अपमान किया है इसलिये इस देह से तू मुझको प्राप्त नहीं हो सकती, दूसरे किसी जन्म में अवश्य ही तेरी साधना सफल होगी और तू मुझे प्राप्त होगी।

कहते हैं वही गोपी मेड़ते में जन्म लेकर मीराँ बनी क्योंकि पूर्व जन्म में जिस घूंघट व लोक लाज कुल मर्यादा के कारण प्रभु के दिव्य दर्शन व परम लाभ से वंचित रही इसीलिये इस जन्म में घूंघट के प्रति अरुचि व लोक लाज कुल मर्यादा का विरोध आदि के भाव उसके पदों में दृष्टिगत होते हैं। पद के अन्त में 'गिरधर' की छाप लगाने का भी मुख्य उद्देश्य यही था कि उसके हृदय में वही गिरिवरधारी की छवि समाई हुई थी ।

श्री गिरिधर गोपाल-प्रतिमा की प्राप्ति

मीराँ का जन्म होने के बाद कुछ ही महीनों में दूदाजी ने रत्नसिंह को कुड़की से सहकुटुम्ब मेड़ते बुलवा लिया। पौत्री का सुन्दर मुख कमल देख कर दूदाजी की प्रसन्नता का ठिकाना न रहता। वे मन ही मन कहते-जिस बच्ची ने गर्भावस्था में ही समग्र

भागवत की कथा सुनी, ध्रुव, प्रह्लाद जैसे परम भक्तों का चरित्र श्रवण किया, तथा ब्रज गोपियों के प्रेम-रसामृत का आस्वादन किया, न जाने विधाता ने उसका भविष्य किन रंगों में चित्रित किया होगा।

अब मीराँ का लालन-पालन दूदाजी की देख रेख से होने लगा। जैसे-जैसे बड़ी होने लगी उसके संस्कार भक्तिमय बनते जा रहे थे। माता तथा दादा जी का अनुकरण कर वह भी बगीचे से पुष्प चुन लाती, ठाकुर जी को तिलक करती, भोग लगाती, आरती उतारती तथा अपनी छोटी अंगुलियों से माला फेरती हुई तुतली बोली में जाने क्या क्या गुनगुनाया करती। कभी कोई भजनानन्दी साधु-संत वहाँ आ जाते तो दादाजी के पास बैठ कर वह बड़े प्रेम से व एकाग्रता से भजन सुनती।

चन्द्रमा की कला की भाँति जैसे मीराँ बढ़ने लगी वैसे-वैसे उसकी विलक्षणताएं संसार को विदित होने लगीं। उसके सुन्दर रूप की बातें सुनकर मेड़ते के बाहर से भी अनेकों नर-नारी उसके दर्शन को आया करते। तुतली बोली सुन कर माता पिता के आनन्द का पार नहीं रहता था। उसकी अनुकरण शक्ति, तीव्र बुद्धि और शनैः शनै विकसित होते हुए विलक्षण गुणों को देख-देख कर राव दूदाजी अपने जीवन को सफल समझते हुए अपनी पौत्री के लिए आशीर्वादात्मक मंगल भावना किया करते। शनैः शनैः भक्त राव दूदाजी के भक्ति भरे संस्कारों का मीराँ पर अद्भुत प्रभाव पड़ता जा रहा था।

मीराँ जब ५ वर्ष की हुई तब राव दूदाजी अपने साथ रत्नसिंह व मीराँ आदि को लेकर गुजरात में श्री डाकोरजी की यात्रा को चले। वहाँ नगर के बाहर किसी संत के स्थान

पर दर्शन को गये, जहाँ संत की अपनी उपासना की गिरिधर गोपाल की मूर्ति को देख कर मीराँ का मन मचल उठा। उसे उस प्रतिमा को देख कर लगा जैसे वह गिरधर गोपाल उसके जन्म-जन्म के साथी हो। वह गिरधर गोपाल को लेने की हठ कर बैठी। दूसरी प्रतिमा मंगवा देने के लिए माता पिता ने तथा राव दूदाजी ने उसे बहुत ही समझाया पर वह न मानी। संत को जो भी न्यौछावर हो लेकर मूर्ति देने के लिए समझाया परन्तु वे अपने उपासना के ठाकुरजी भला कैसे देते! मीराँ ने अन्न जल त्याग दिया और ठाकुरजी के लिये रोती बिलखती रही। सब के लिए यह एक बड़ी समस्या हो पड़ी। तीन दिन तक मीराँ ने कुछ खाया नहीं। तीसरी रात्रि को संत को स्वप्न में गिरधर गोपाल के दर्शन हुए। उन्होंने कहा—यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो मेरी प्रतिमा उस बच्ची को दे देना जिसने मेरे लिए अन्न जल त्याग रक्खा है। वह मेरी बड़ी भक्त है।

दूसरे ही दिन संत ने राव दूदाजी के डेरे पर जाकर वह प्रतिमा मीराँ के हाथों में देदी। तभी मीराँ का रोना आनन्द की हँसी में परिणत हुआ। तभी से मीराँ अपने गिरधर गोपाल की नित्य पूजा करती। शनैः शनैः उसका कृष्णानुराग बढ़ने लगा। मेड़ता वापस लौटने के बाद तो उसे अपने गिरिधर गोपाल के लाड़ लड़ाने की पूरी अनुकूलता मिल गई।

श्री डाकोरनाथ के दर्शन तथा वहाँ के सत्संग का प्रभाव मीराँ के बाल मानस पर स्थाई रूप से ऐसा जम गया था कि भविष्य के जीवन प्रसंगों के सम्बन्ध में उसके बनाए कुछ पदों में भी उसकी झलक दिखाई देती है।

मीराँ के भाई जयमल

युवराज वीरमदेव बड़े ही बलिष्ठ और साहसी वीर थे। वि० सं० १५५३ में इनका विवाह चित्तौड़ के राणा रायमल जी की पुत्री गोरज्या कुमारी से हुआ था। इस सम्बन्ध से मेवाड़ और मेड़ता के दोनों राज्यों में घनिष्ठ प्रीति और मित्रता हो गई। अपनी सीसोदिन ताई महिला समाज में जब अपने पितृ कुल चित्तौड़ के वीर नर-नारियों की गुण-गौरव-गाथा सुनाती तब मीराँ भी बड़ी ही भाव पूर्ण दृष्टि से अपनी ताई की ओर देखती हुई एक नई कल्पना सृष्टि में रम जाती।

कुछ काल बीतने पर वि० सं० १५६४ की आश्विन शुक्ला ११ के दिन वीरमदेवजी के भँवर जयमल का जन्म हुआ। पाँच वर्ष की मीराँ ने जब अपने चचेरे भाई छोटे जयमल को देखा तब न जाने उसे क्या क्या भाव उमड़ आए। वह उसे अपने नन्हे नन्हे कोमल हाथों में लेकर प्यार करने लगी फिर कोई भजन गुनगुनाने लगी और अपने ठाकुरजी के उसे दर्शन भी करा दिये।

कहते हैं कि मीराँ के माता पिता को मीराँ के पहले एक पुत्र भी हुआ था जिसका नाम गोपालसिंह रखा गया और जो २ वर्ष जीवित रह कर चल बसा था। यह भी किंवदंती सुनी जाती है कि मीराँ की एक छोटी बहन थी जिसका नाम अनोपा बाई था और वह भी अधिक जीवित नहीं रही थी।

मीराँ के भाई (चचेरे-ताऊ के) तो जयमल ही प्रसिद्ध हैं। अपनी वीरता तथा भक्ति के कारण वह जगत्प्रसिद्ध हो गये। दिल्ली के मुगल बादशाह अकबर ने जब चित्तौड़ पर चढ़ाई की तब

इन्हीं जयमल को दुर्ग रक्षा का उत्तरदायित्व सौंप कर राणा उदयसिंह कुम्भलगढ़ की ओर चले गये थे। उसी युद्ध में जयमल, पत्ता तथा कल्लाजी आदि वीरपुङ्गव ने अपने पराक्रम की पराकाष्ठा करते हुए वीर गति पाई तथा विश्व में अमर यश को प्राप्त हुए।

भक्ति-प्रेमाङ्कुर

मीराँ सात वर्ष की हो चुकी। एक बार चाँदनी भरी रात्रि में वह माता के निकट अपने गिरधर गोपाल को लिए हुए बैठी थी। मन्द-मन्द वायु की लहरियों के साथ दूर से शहनाई की आवाज कानों पर टकराने लगी। दोनों ही महल के झरोखे पर से देखने लगीं। एक बरात आ रही थी। मीराँ ने देखा, बाजे बज रहे थे, कई लोगों के बीच में घोड़े पर एक मनुष्य बैठा था जिसने सुन्दर नये-नये वस्त्राभूषण पहन रखे थे। मीराँ का कौतूहल बढ़ा। उसने माता से पूछा—माँ यह घोड़े पर बैठा हुआ कौन है? माता ने बड़े लाड़ से बेटी को उत्तर दिया—यह वर है बेटी, यहाँ के नगर सेठ की कन्या से अभी इसका विवाह होगा। मीराँ ने कुछ सोच कर फिर पूछा—मेरा वर कौन है माँ! माता ने गिरधर गोपाल की ओर अंगुली निर्देश कर सहज कौतुक से विनोद पूर्ण उत्तर दिया—तेरे वर ये ही गिरधर गोपाल हैं, क्या ये तुझे पसंद हैं बेटी? "हाँ माँ, मुझे ये बहुत पसंद हैं।" यह कह कर मीराँ ने बड़े ही प्रेमपूर्वक अपने ठाकुरजी को अपने हृदय से लगा लिये और प्रेम भरी दृष्टि से निहारा। थोड़ी देर में मीराँ ने फिर प्रश्न किया—माँ! मेरा विवाह कब

होगा ? माता ने कहा—तू बड़ी हो जायगी तब तेरा विवाह करेंगे बेटी। परंतु मीराँ को लगा कि वर वहीं है और कन्या अर्थात् वह स्वयं भी, तब फिर विवाह में विलम्ब क्यों ? इसी बात पर उसने हठ करली और तब खेल-खेल में माता ने भी अपनी बेटी का विवाह गिरधर गोपालजी की प्रतिमा से करा दिया। अब मीराँ के चित्त में पूर्ण रूप से जम गया कि गिरधर गोपाल ही उसके पति, प्रियतम और सवस्व हैं। उसकी यह भावना दृढ़ होती गई। श्रीराधा और गोपी की प्रेम-भरी लीला कथाओं को सुनते उसे ऐसा अनुभव होने लगा कि वह भी कोई गोपी अथवा राधा है। वह इसी कल्पना और भावना की सृष्टि में विचरा करती।

शिक्षा-साधना

राव दूदाजी ने मीराँ की पढ़ाई के लिए राज-पुरोहित को नियुक्त किया था। मीराँ की ऐसी कुशाग्र बुद्धि और तीव्र स्मरण शक्ति थी कि एक बार जो सुनती और बोलती वह उसे कंठस्थ हो जाता।

वह मिट्टी के खिलौने बनाती जिसमें अपने गिरधरगोपाल की प्रतिमा की प्रतिछवि बनाती। चित्रकला में भी उसकी बहुत अधिक रुचि थी। वह भगवान श्यामसुन्दर के और उनकी लीला के बड़े ही सुन्दर चित्र आलेखन करती और अपनी टूटी-फूटी भाषा में वह पद रचना भी बनाकर प्रभु को प्रेम से सुनाती। नित्य नया पद बनाकर प्रभु को अर्पण करने का उसका नियम था।

एक दिन कोई योग पारंगत संत विचरते हुए मेड़ते आये। दूदाजी ने श्रद्धा व सत्कार पूर्वक उन्हें श्री चतुर्भुजनाथ के मंदिर

में ठहराया। रात्रि को उनके भजन सत्संग का लाभ राव दूदाजी आदि राज-परिवार के साथ-साथ प्रजा-जनों ने भी लिया। संत संगीत-शास्त्र के आचार्य थे। मीराँ शांत भाव से व एकाग्रचित्त से इस आनन्द को अपने छोटे-से परन्तु विलक्षण मस्तिष्क में समाती रही।

रात्रि को सहसा संत निद्रा से जाग उठे। किसी के गाने का मधुर स्वर उनके कानों पर टकरा रहा था। उन्होंने ध्यान पूर्वक सुना तो मंदिर से लगे महल के रणवास में से स्वर आ रहा था। उन्हें बहुत ही आश्चर्य हुआ कि, सत्संग के समय जिस राग-ताल में उन्होंने पद गाया था, ये स्वर व शब्द पूर्ण रूपेण वैसे के वैसे थे। कंठ भी अत्यन्त कोमल व मधुर था। पुजारी से उन्होंने जान लिया कि वह मीराँ गा रही थी। संत हृदय में प्रसन्न हो गये।

दूसरे दिन संत के मुख से सब बातें सुनकर और उनके भाव को तथा मीराँ की योग्यता को जान दूदाजी ने मीराँ को संगीत की शिक्षा देने का निश्चय किया। तदनुसार उसे संगीत व योग की भी शिक्षा दी जाने लगी। वह प्रेम से भगवान के मधुर गुण-गान करती और उनके आगे भावमय नृत्य करती। उसकी विलक्षण प्रतिभा को देख कर उसे शिक्षा देने वाले गुरुजन यही समझते कि वह सर्व-विद्या-गुण-कला जन्म से ही सीख कर आई है और वे तो केवल निमित्त मात्र ही थे।

राव दूदाजी के वहाँ, पुष्कर के निकट मेड़ता होने से विचरते हुए संत-महात्मा आया करते। इसलिए प्रायः नित्य सत्संग हुआ करता, जिसका पूर्णरूपेण मीराँ को भी लाभ मिला करता।

एक बार गुरु-पूर्णिमा के उपलक्ष्य में भजन-सत्संग के लिये मीराँ द्वारा निमंत्रित सखियों को एकत्रित हुई देख कर माता वीरकुंवरी ने पूछा—आज इन्हें बुला कर भजन करने का क्या कारण है ? क्या भजन गा गाकर ही आयु पूरी करनी है ? मीराँ—क्या भगवान का भजन करने के लिए भी किसी कारण की आवश्यकता होती है माँ ? जो जन्म लेकर इस भव बंधन में आता है उसे उससे मुक्त होने के लिये यत्न करने का भी अधिकार है। फिर आज गुरुपूर्णिमा भी तो है। गुरु चरणों की शरण लिए बिना ज्ञान कहाँ। गुरु पूजा का आज विशेष माहात्म्य है। माता—तू किस गुरु की पूजा करेगी बेटी ? मीराँ—मेरे गिरधर गोपाल ही तो सब चराचर विश्व के आदि गुरु हैं। इन्हीं की सेवा पूजा कर, इनके गुण गान कर आज का उत्सव मनायेंगी और वैसे तो हरीच्छा से आज जो कोई संत आवेंगे वह मेरे गुरु समान ही होंगे।

मीराँ ने श्यामकुंज सजाया; सुन्दर झाँकी बनाई और राज-पुरोहित को बुलवा कर गिरधर गोपाल का विधिवत् पूजन किया।

सायंकाल को सहसा विचरते हुए संत रैदास मेड़ते में आये। उच्चकोटि के उन महात्मा का नाम तो सबने सुन रखा था; परन्तु उनके दर्शन का अवसर पहले कभी मिला नहीं था।

राव दूदाजी ने बड़े प्रेम से उनका स्वागत किया। रात्रि को भजन सत्संग का कार्यक्रम रखा गया; जिसका नगर के नर-नारियों ने भी लाभ लिया। दूदाजी के साथ मीराँ ने गुरु भाव से संत को प्रणाम कर उनका आशीर्वाद लिया।

मीराँ की प्रार्थना पर प्रभु इच्छा हुई तो फिर कभी मिलने का वचन देकर रैदास जी वहाँ से विचर गये।

इस प्रकार सत्संग से मीराँ की भक्ति-योग-ज्ञान आदि में शनैः शनैः प्रगति होने लगी और इस प्रकार विदुषी, कवयित्री और रूप-गुण-भक्ति-मति मीराँ का नाम चहुँ ओर प्रसिद्ध होने लगा।

पूर्व संस्कार-जागृति

अब मीराँ की अवस्था तेरह वर्ष की हो चुकी। उसकी साधना में पर्याप्त प्रगति हो चुकी थी। गीता-भागवतादि शास्त्रों के मनन पूर्वक अध्ययन से प्रेम और भक्ति के रहस्य भरे तत्व का प्रत्यक्ष अनुभव उसे होने लगा। योग व भक्ति इन दोनों की सामञ्जस्य भरी शिक्षा व साधना से हृदय में विवेक का उदय होकर उसे अपना जीवन-पथ स्पष्ट रूप से दिखाई देता था। योग द्वारा चित्त एकाग्र कर भक्ति द्वारा भगवान की सुन्दर व मधुर लीला का अनुभव करना उसके लिये सरल व सहज हो गया। संगीत की शास्त्रोक्त साधना भी उसकी परिपक्व हो गई थी। वह नये पद बना कर मधुर राग-रागिनी में गाकर अपने गिरधर गोपाल को रिझाती, वीणा के तारों की कोमल झंकार से उनके हृदय को हिलाती और सुन्दर भावमय नृत्य द्वारा उन्हें मोह लेती। उसकी सखियाँ और दासियाँ जिन्होंने उसकी संगति से संगीत में पर्याप्त योग्यता प्राप्त करली थी, वाद्यादि बजा कर अपनी स्वामिनी का साथ करती। मीराँ ने अपने जीवन का चरम लक्ष्य अपने प्यारे गिरधर गोपाल को अपने बना कर उन्हीं में विलीन हो जाना ही निश्चित कर लिया था। संसार की ओर

बातों के लिये उसके मस्तिष्क में स्थान ही नहीं था। उन मदन-मोहन लीला पुरुषोत्तम की मधुर ब्रजलीला-रसास्वादन में कभी तो सारी रात बीत जाती परन्तु उसके प्राणों को तृप्ति ही नहीं होती।

एक बार मीराँ अपने गिरधर गोपाल की सेवा कर रही थी कि वीरमदेव का पुत्र अष्ट वर्षीय बालक जयमल वहाँ आया; और ठाकुरजी के दर्शन करने लगा। जहाँ मीराँ को सेवा-पूजा के लिये राव दूदाजी ने महल के ऊपर एक पृथक् कक्ष बनवा दिया था। उसका नाम उसने 'श्याम-कुञ्ज' रक्खा था। वहीं वह गिरधर गोपल की सेवा करती, व सुन्दर सजावट के साथ नई-नई झाँकियाँ बनाती। ठाकुरजी के लिए शृङ्गार भी स्वयं बनाती। ठाकुरजी की ओर एक टक निहारते हुए सहज भाव से जयमल ने प्रश्न किया—बहन तुम्हारे ठाकुरजी को गिरधर गोपाल क्यों कहते हैं? मीराँ ने कहा—जब इन्द्र ने कोप करके ब्रज पर घोर वर्षा का प्रलय मचाया तब सब प्राणियों की रक्षा के लिए श्री कृष्णचन्द्र ने गिरिराज गोवर्धन को उठा कर अपनी अंगुली पर धारण किया था इसी से इनका नाम गिरधर हुआ...... आगे वह कुछ कह न सकी, मौन हो गई। उसने नेत्र मूँद लिये और आँसू की धारा बहने लगी। न जाने किन भाव तरंगों में वह बह रही थी। जयमल ने घबरा कर मीराँ का हाथ पकड़ कर पूछा—तुम क्यों रोती हो बहन, तुम्हें क्या हो गया। परंतु वह तो 'हे श्यामसुन्दर, प्राणाधार' कह कर मूर्छित होगई। समाचार पाते ही दूदाजी राजपुरोहित आदि सब वहाँ आ गये और उसे सावधान करने की चेष्टा में लगे। जब उसकी मूर्च्छा हटी तब उसने आस पास में दृष्टि डाल कर कहा—मैं कौन हूँ,

मैं यहाँ कैसे आगई, मेरे मनमोहन कहाँ गये ! बहुत देर बाद वह पूर्ववत् स्थिति में आई ।

एक बार उसके जन्म-दिवस पर माता की बहुत इच्छा थी कि प्यारी बेटी को उबटनलगाकर स्नान करावें, सुन्दर वस्त्राभूषणों से सजावें,परन्तु वह मीराँ ने स्वीकार नहीं किया । यही नहीं किसी से मन मिलाकर उसने बात भी नहीं की । दूदाजी जब आकर उसे समझाने लगे तब विरक्त-भाव से उसने कहा—दादाजी जहाँ किसी भी स्थिति की स्थिरता नहीं, सुख केवल दुःख की भूमिका मात्र है ऐसे विषमता भरे संसार में वर्ष गाँठ का आनंद मनाने का क्या अर्थ है ? इसी जन्म में हम ऐसी स्थिति की शोध क्यों न करें जहाँ नित्य सुख ही सुख है । दुःख, चिंता, भय आदि क्लेशों का नाम निशान तक देखने को न मिले । क्यों नहीं हम प्रभु के प्रेम में अपने आपको खो देवें । यह कर्ण-कटु ध्वनि मुझे नहीं सुहाती, इन बाजों को बंद करवा दो, दादाजी !

मीराँ की इस प्रकार की परिस्थिति कभी-कभी होते देखकर उसकी माता को विशेष चिंता होने लगी । उसको लगा कि बेटी का विवाह कर देना ही एक मात्र उसके सुख का उपाय है ।

विवाह चर्चा

प्रसङ्गवश दूदाजी ने मीराँ के विवाह की चर्चा चलाई तब बीच में ही दादाजी के चरण स्पर्श कर मीराँ ने कहा—अब आप कुछ न कहिये दादाजी ! इन पूज्य चरणों की शपथ लेकर कहती हूँ कि मैं आपसे दूर न होऊँगी । भगवदुपासना, संत सेवा

सत्सङ्ग से मुझे वञ्चित करने की कोई भी बात आप कभी न सोचें। अब तो इस त्रिभुवन मोहिनी माधुरी छवि में मेरे प्राण अटक गए हैं। मन वचन कर्म अब तो बिक गये हैं, इन्हीं अरुण कोमल चरणारविंदों में। मेरे गिरधर गोपाल की कृपा रूप वर्षा में मेरे रोम-रोम भींज रहे हैं। इस सुख से मुझे छुड़ाने का प्रसङ्ग न लावें। मैं यही भिक्षा आप से चाहती हूँ।

दूदाजी के नेत्रों में जल भर आया। उन्होंने उसी समय आये हुये अपने पुत्रों को सुना दिया कि सुकुमारी मीराँ का मुख-मण्डल मलिन होने जैसी कोई बात वे नहीं करेंगे। उनकी देह के न रहने पर जो श्री चारभुजानाथ की इच्छा होगी, वही होगा।

इस प्रसङ्ग से वीरकुंवरी की चिंता और बढ़ गई। बेटी को अपने गिरधर गोपाल के सिवाय और कुछ सुहाता नहीं। दादाजी अपनी पोती को नाराज करना नहीं चाहते और मीराँ के पिता भी अपने पिता की हाँ में हाँ मिलाना ही अपने कर्त्तव्य की इति-श्री समझते हैं। तो क्या बेटी आजीवन अविवाहित रहेगी? भला स्त्री जाति के लिए यह क्या निन्दनीय बात नहीं। केवल मीराँ को संतुष्ट रखने से ही कैसे काम चलेगा। लोगों का मुँह थोड़े ही बन्द किया जा सकता है। ऐसी बातों में क्या बेटी की राय पूछनी पड़ती है। ... दिन-प्रतिदिन बढ़ते हुए भजन-कीर्तन-संत-समागम व सत्सङ्ग के संस्कार क्या उसके भावी जीवन में बाधक नहीं होंगे। बार-बार इन विचारों के कारण वह अशांत रहा करती।

एक बार वीरमदेव की धर्म-पत्नी मीराँ के पास गई। उस के पास एक बड़ी पुस्तक देख कर मीराँ ने सहज पूछा—"यह क्या ?" पुस्तक उसके हाथ में दे दी गई। पुस्तक के मुख पृष्ठ पर श्रीकृष्ण का चित्र देख कर प्रसन्नता से उसने पुस्तक खोली। प्रथम पृष्ठ पर ही किसी का चित्र था। उस पर दृष्टि पड़ते ही एक क्षण के लिए चौकन्नी होकर 'यह कौन है' कहकर तत्काल उसने पुस्तक वापस लौटा दी। युवराज्ञी ने कुछ गंभीरता से कहा— इस चित्र से इस प्रकार घबराने की क्या बात है? यह चित्तौड़ के महाराणा साँगाजी के बड़े कुंवरजी का चित्र है। देख बेटी, इसमें और भी कैसे-कैसे सुन्दर व वीर राजकुमारों के चित्र हैं। इतनी पढ़ी लिखी को यह नासमझी शोभा नहीं देती मीराँ! इस पर मीराँ ने झुंझला कर स्पष्ट सुना दिया—मैं आपसे क्षमा चाहती हूँ भाभा साहब, आप इन चित्रों को ले जाइये। मेरी देखने की इच्छा नहीं है। मैं अपने गिरधर गोपाल की सेवा से ही संतुष्ट हूँ। मीराँ के इस हठीले स्वभाव से मन में कुछ रुष्ट होकर युवराज्ञी वापस लौट गई।

अद्वितीय रूप लावण्य सम्पन्ना अपनी प्यारी बेटी को यौवन काल की ओर अग्रसर होती हुई देख किस माता को उसके विवाह के संबंध में चिन्ता न होगी! वीरकुंवरी की मनः-स्थिति भी अधिकाधिक चिन्ता जनक होती थी। उसने अब स्वयं बेटी को एक बार दृढ़ता से समझाने का निश्चय किया।

एक बार मीराँ ठाकुर सेवा कर रही थी कि माता आगई। प्रभु की सेवा करते हुए अपने ही भाव में बहते हुए मीराँ ने कहा—तुम कुछ देरी से आई माँ। अभी-अभी भोर में ही मेरे

गिरधर गोपाल ने यहाँ आकर बंशी बजाई, न जाने किन पुण्यों के फलस्वरूप उन्होंने यह कृपा की इस दासी पर। हे मेरे श्यामसुन्दर, ऐसी माधुरी चखा कर फिर मुझे अकेली छोड़ कर कहाँ चले गये नाथ! यह कहते कहते मीराँ के नेत्रों से आँसू की झड़ी लग गई। माता आगे बढ़ उसके आँसू पोंछने लगी। सिर पर हाथ जाते ही वह चौंक पड़ी; बोली—यह क्या बेटी यह चोट कैसे आई। मीराँ निरुत्तर रही। माता समझ गई कि भावावस्था में गिर पड़ने से ही यह लगी है। वह झुँझला कर उसे समझाने लगी। विवाह की बात चलते ही मीराँ ने कहा, ऐसा न कहो माँ, मेरा विवाह तो गिरधर गोपाल के साथ कभी का हो चुका है। वे ही अब मेरे तन, मन और प्राणों में रम रहे हैं, मेरे हृदय मंदिर में प्रतिष्ठित हो चुके हैं। अब दूसरी बात सुनकर ही कलेजा काँप उठता है:—

> ऐसे वर को के बरूँ, जो जनमें मर जाय।
> वर वरिए गोपालजी, म्हारो चुड़लो अमर ह्व जाय॥

माँ! प्रेम, रूप, गुण, वैभव और सकल ऐश्वर्यों के भंडार मेरे इन गिरधर गोपाल से बढ़ कर ऐसा और कौन है जिससे प्रेम का संबंध जोड़ा जा सकता है। इस नाशवान मर्त्य-लोक के पाप-ताप-दग्ध तथा सदा भय व्याधि ग्रस्त जीवों से भी कहीं प्रेम का नाता जोड़ा जा सकता है?

बेटी की बातों को सुनकर माता अपने हृदयावेग को नहीं संभाल सकी। उसके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी—'हाय रे निष्ठुर विधाता! जहाँ ऐसी सुकुमारता, ऐसे अलौकिक गुण व ऐसा देव दुर्लभ रूप लावण्य वहाँ ऐसा निर्मोही हृदय! माता

ने मीराँ को कई प्रकार से समझाया । माता को अधिक रोती हुई मीराँ देख नहीं सकीं । उसने कहा—रोओ मत माँ । बुरा न लगाओ । तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध अब मैं कुछ न कहूँगी । जिस बात से तुम प्रसन्न रहोगी उसी में मैं अपनी प्रसन्नता समझ लूँगी । शांत हो जाओ माँ ! पल भर में मीराँ के अद्-भुत संयम ने जादू का-सा प्रभाव डाल दिया । माता के हृदय को शांति हुई । बेटी के सिर पर हाथ फेरते हुए उसने कहा—तू बड़ी सयानी है मीराँ ! बड़भागी होगा वह जो ऐसी सुलक्षणा मेरी लाड़ली का हाथ पकड़ेगा ।

माता के जाने के पश्चात् मीराँ अपनी प्यारी दासी मिथुला के गले लिपट गई । उसकी आँखों से सावन-भादों की झड़ी लग गई । मिथुला अपनी स्वामिनी की देह पर अत्यन्त आत्मीय भाव से हाथ फेरने लगी । यह दासी किसी पूर्व संस्कारवश उसे आ मिली थी । अपने जीवन की बागडोर मीराँ को सम्हला कर उसकी शरण में निश्चिंत हो गई थी ।

राव दूदाजी का स्वर्गवास

राव दूदाजी ने अस्वस्थता के कारण राजकीय एवं व्यावहा-रिक बातों में विचार करना कभी से छोड़ रखा था । विशेषकर मीराँ के मुख से भजन सुनना ही उन्हें अधिक प्रिय था ।

एक बार मीराँ का सुन्दर भावमय पद सुनकर दूदाजी बड़े ही प्रभावित होकर गद्गद् स्वर से कहने लगे—बेटी, बचपन में तूने गिरधर गोपाल को लेने के लिए हठ किया था तब मैंने उसे तेरा केवल बाल-चापल्य ही समझा था परन्तु अब मैं अनुभव

करता हूँ कि तेरे द्वारा हमारा मेड़तिया वंश अवश्य उज्ज्वल हो जायगा। आज नहीं तो जब कभी संसार तुझे पहिचाने बिना न रहेगा······। बीच में ही मीराँ बोल उठी—मेरी प्रशंसा न कीजिये दादाजी, मैं जो कुछ हूँ, सब आप ही की तपश्चर्या का फल है। अब आप अधिक न बोलिये, दादाजी! शरीर में कष्ट होता है। दुर्बलता के कारण मन्दस्वर में वे कहने लगे—यही बोलने का समय है बेटी, बोल लेने दो। बेटा वीरम! मेरी शक्ति लाओ। दूदाजी की शैय्या के पास रखी हुई तलवार वीरम-देव ने दादाजी के हाथ में दी तब उन्होंने उसे कोष मुक्त कर उसे सिर झुकाया। बेटा—किसी की स्वाधीनता छीनने वाले अत्याचारी असुरों का बलिदान देकर शक्ति-माता की उपासना करते हुये प्रजा की रक्षा करना। यह शक्ति तुम्हें सौंप जाता हूँ। वीरमदेव ने नत-मस्तक हो तलवार ले ली और उसे कोष बद्ध कर पिताजी के चरण-स्पर्श किये। कुछ काल पश्चात् हाथ में माला लेकर मीराँ को देते हुए कहा—यह तुझे दे जाता हूँ मीराँ, यह किसी संत का प्रसाद है; इसके योग्य तू ही है। मीराँ ने उसे लेकर दादाजी के चरणों में प्रणाम किया।

इसके बाद दूदाजी ने मीराँ को नूतन वस्त्रालङ्कार तथा जयमल को वीर वेश में देखने की इच्छा प्रकट की। तदनुसार व्यवस्था की गई। अपने होनहार पौत्र जयमल को तलवार, ढाल व भालादि शस्त्र-सज्जित योद्धा वेश में देखकर दूदाजी की आँखें चमक उठीं। मीराँ के सुन्दर वस्त्र भूषण युक्त परम सौन्दर्य से ऐसी प्रभा छिटक रही थी मानों साक्षात् महालक्ष्मी प्रकट हो आई हो। दूदाजी के नेत्रों में जल भर आया। दोनों के सिर पर

हाथ धरकर उन्होंने आशीर्वाद दिया, तुम दोनों के शौर्य व भक्ति से मेड़तिया कुल का यश सारे विश्व में गाया जावे। भारत की भक्त-माला में तुम दोनों उज्ज्वल मणि होकर विश्व में चिरकाल के लिये प्रकाशमान होते रहो। श्री चतुर्भुजनाथ की छत्र-छाया तुम पर सदैव बनी रहे।

रात्रि को दूदाजी की अवस्था अधिक गिरने लगी और ब्राह्म-मुहूर्त्त में मीराँ के मुख से अन्तिम भजन सुनकर—मुख से राम-राम का उच्चारण करते हुये दूदाजी चेतना शून्य हो गये। उनका जीवन प्रदीप बुझ गया।

वि० सं० १५७२ में मेड़ता के स्वाधीन राज्य संस्थापक तथा समस्त मेड़तिया शाखा के पूर्वज वीर शिरोमणि व परम वैष्णव भक्त राव दूदाजी राठौड़ अपनी ७५ वर्ष की आयु में इस मृत्यु-लोक को छोड़ गये।

सगाई

दूदाजी के गोलोक वास के पश्चात उनके ज्येष्ठ पुत्र राव वीरमदेव मेड़ते की राजगद्दी पर आये। राज्याभिषेक के समय इनकी आयु ३८ वर्ष की थी। राव वीरमदेव बड़े बुद्धिमान, प्रतापशाली और राजनीतिज्ञ नरेश थे। गद्दी पर बैठने के पश्चात् उन्होंने अपने कनिष्ट भ्राता रत्नसिंह की पुत्री मीरांबाई का संबंध मेदपाटेश्वर महाराणा संग्रामसिंह के ज्येष्ठ पुत्र महाराज कुमार भोजराज के साथ जोड़ने के विषय में पत्र व्यवहार आरम्भ किया। इस समय तक मीराँ की अवस्था १४ वर्ष के निकट हो चुकी थी।

राव वीरमदेव के प्रयत्नों के फलस्वरूप राजकुमारी मीराँ की सगाई निश्चित करने के लिए चित्तौड़ के महामंत्री और राज्य पुरोहित अपनी धर्मपत्नी सहित मेड़ते आये परन्तु मीराँ को इसमें कोई रुचि नहीं। फाग के दिन होने से उसने तो उस दिन फाग खेलने का आयोजन किया था। उसकी कई सखियाँ व दासियाँ उसके साथ इस आनन्द में भाग लेने नगर बाहर के बगीचे में एकत्रित हो गईं। उस सुन्दर उद्यान में कदम्ब के एक विशाल वृक्ष के नीचे चबूतरे पर एक शुभ्र संगमरमर के सुन्दर सिंहासन पर गिरधर गोपाल को सजाकर विराजमान कराया गया। नगर की स्त्रियाँ भी इस उत्सव को देखने गई थीं।

ठाकुरजी का पूजन हुआ। मीराँ ने अपने प्यारे गिरधर पर गुलाल उछाली। स्वर्ण पिचकारी द्वारा उन पर रंग डाला। उसके पश्चात् सब सखियाँ परस्पर में रङ्ग-रङ्ग की गुलालें उछालने लगीं। रङ्ग-बिरंगे बादलों की भाँति आकाश गुलालों से भर गया। सब गोपियों में राधा रानी के समान मीराँ अपनी सखियों में अनुपम शोभा पा रही थी। कुछ काल पश्चात् मीराँ ने होरी गवाना आरम्भ किया। वह ज्यों गवाती त्यों सब सखियाँ भी गिरधर गोपाल के चारों ओर घूमर लेती हुई गाती जाती थीं और उत्साह में डोलती हुई अपनी मस्ती में नृत्य करती थीं। पश्चात् वे पिचकारियाँ चलाकर रङ्ग खेलने लगीं और साथ में गाने लगीं। चारों ओर रङ्ग की धूम मच गई। मेड़ते की महिलाओं ने जीवन में प्रथम बार ही इस परमानंद को लूटा। विविध रङ्गों से वस्त्र और प्रेम रङ्ग से हृदय सब सखियों

के भींज गये थे। इसके पश्चात् गिरधर गोपाल को लेकर सब के साथ मीराँ निकट के दूदासर पर गई। वहाँ ठाकुर जी को स्नान करा कर थोड़ी देर परस्पर जल क्रीड़ा करने बाद सब जल से बाहर निकलीं और नये सुन्दर वस्त्र पहन कर गाती हुई वापस बगीचे में लौट आईं। मीराँ ने अपने ठाकुर जी को फिर बहुत ही उत्तम शृङ्गार धारण कराया। रङ्ग बिरङ्गी सुन्दर व सुगन्धित पुष्प मालाएँ धारण कराईं। विविध प्रकार के मिष्ठान्न का भोग लगाया व फिर ताम्बूल अर्पण किया। तत्पश्चात् सखियों ने मीराँ के हाथ में फूलों के गजरे, गले में फूल मालाएँ तथा उसके सुन्दर घने कृष्ण केशों में फूलों की लटकनें आदि फूलों के आभूषणों से ही उसे सजाया। तब सब सखियों ने अपने पैरों में घूँघरू बाँध लिये और अपनी योग्यतानुसार डफ, खंजरी, वीणा, मृदङ्ग, तम्बूरा, करताल और चङ्ग आदि वाद्य मीराँ के गाने के साथ-साथ बजाने लगीं। अन्य सखियों ने अपने हाथ में छोटी-छोटी लकड़ी की डंडियें ले लीं। तब मीराँ अपने मधुर कण्ठ से गाने लगी और सखियाँ भी उस गाने की कड़ियों को दुहराने लगीं। सब वाद्य स्वर-ताल में बजने लगे। उनके ताल में डंडियों की मधुर ध्वनि होने लगी। थोड़ी देर में समा बँध गया। अपूर्व संगीत, सुन्दर नृत्य, घूँघरू की मुनि मनहारी झनकार, मधुर वाद्य-ध्वनि आदि से वातावरण बड़ा ही मन मोहक प्रभावशाली हो गया। हृदय में एक मस्ती सी छा गई। मानों मृत्यलोक पर बैकुण्ठ उतर आया। इस परमानंद के प्रवाह में बहते हुए किसी को समय का भी ध्यान नहीं रहा।

इधर इन सखियों का आनन्दोत्सव अब समाप्ति पर ही था कि मीराँ की माता चित्तौड़ की पुरोहितानी को लेकर वहाँ

आईं। मीराँ ने ब्राह्मणी को प्रणाम किया। चित्तौड़ की पुरोहितानी उसे एकटक देखती ही रह गई। मीराँ के अथाह रूप-लावण्य-सिन्धु में उसकी चित्त वृत्ति गोते लगाने लगी। अवश्य ही उसके हृदय में यही विचार परम्परा चली होगी—क्या मृत्युलोक में भी ऐसा रूप-सौन्दर्य संभवत हो सकता है? क्या यह कोई देवकन्या है? चित्तौड़ के युवराज तो क्या सारे भूमण्डल पर भी इसके योग्य वर मिलना असम्भव है। कैसी अलौकिक कान्ति, कैसा अद्भुत आकर्षण, कैसी सुधा भरी दृष्टि। ऐसी परम सुलक्षणा कन्या का हमारे चित्तौड़ में संबंध होना निःसंशय हमारे पूर्व पुण्यों का ही फल है।

जब ठाकुर-प्रसाद वितरण करती हुई एक सखी पुरोहितानी को प्रसाद देने गई तभी उसे परिस्थिति का भान हुआ।

वीरकुंवरी जब पुरोहितानी के साथ वापस लौटी तब मीराँ के साथ आई हुई सब सखियाँ व महिलाएँ बिखर गईं।

नगर में मीराँ की सगाई के उपलक्ष्य में नगारे, शहनाई आदि बाजे बज रहे थे और घर-घर में श्रीफल तथा मिठाइयाँ बाँटी जा रही थीं। परन्तु मीराँ के हृदय की वास्तविक स्थिति को भला जान ही कौन सकता था।

मीराँ का श्वसुर कुल-सीसोदिया वंश

प्राचीन काल से भारत में राज्य करने वाले मुख्यतः तीन क्षत्रिय वंश हैं। सूर्य वंश, चन्द्र वंश और यदुवंश। इन तीनों में भी सूर्यवंश अधिक प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित माना जाता है। मांधाता, हरिश्चन्द्र, दिलीप, भागीरथ, अम्बरीष, रघु और

दशरथ आदि बड़े-बड़े धर्मात्मा, पराक्रमी, भगवद्भक्त, तेजस्वी और वीर राजा भी इसी कुल में हुये और भगवान रामचन्द्र, जैनों के तीर्थंकर ऋषभदेव और बुद्धदेव ने भी इसी कुल में अवतार लिया, जिससे इस वंश का गौरव बढ़कर यह संसार पूज्य बन गया।

भगवान रामचन्द्र के ज्येष्ठ पुत्र ही मेवाड़ राजवंश के मूल पुरुष हैं। इसी वंश में वि० सं० ६२५ के लगभग मेवाड़ में गुहिल नामक एक प्रतापी राजा हुआ जिसके नाम से यह गुहिल वंश कहलाने लगा। आगे चलकर इस वंश की एक शाखा सीसोदा ग्राम में रही इसलिए उस शाखा वाले सीसोदिया कहलाने लगे। मेवाड़ के महाराणा इसी सीसोदिया शाखा के वंशज हैं।

वि० सं० ६२५ से अब तक की अवधि में कितने ही परिवर्तन हो गए। समय ने कितने ही पलटे खाये। कई राज्य उदय और अस्त होगये। कई हिंदू राज्यों ने यवनों की प्रबल शक्ति के आगे सिर झुका कर अपना स्वातंत्र्य और अपनी कुल मर्यादा को उनके चरणों में समर्पित कर दिया। एक मात्र चित्तौड़ के सबसे प्राचीन राजवंश ने ही अनेक सङ्कट सहकर भी अपने स्वातंत्र्य, अपने कुल की मान-मर्यादा व अपने गौरव के लिए ऐश्वर्य और सुख सम्पति को भी न्यौछावर कर दिया किंतु अपनी टेक से वह विचलित नहीं हुआ। इतने वर्षों तक सुख दुःख की अनेक परिस्थितियों को सह कर भी एक राजवंश ने एक ही प्रदेश पर शासन किया हो; ऐसा दृष्टान्त सम्भव है, संसार भर में क्वचित् ही मिलेगा। भारतवासी हिन्दू और नरेश-गण सभी

मेवाड़ के महाराणा को पूज्य भाव की दृष्टि से देखते हुए उन्हें हिन्दुआ-सूरज कहते हैं।

राजा गुहिल के पश्चात इस वंश में नागादित्य व शीलादित्य आदि प्रतापी राजा हुए। शीलादित्य की चौथी पीढ़ी में बापा रावल हुए जिन्होंने आठवीं शताब्दी में अपने बाहुबल के प्रताप से चित्तौड़ में अपना राज्य स्थापित किया। वह विजयी और प्रतापी राजा हुए। धीरे धीरे वह एक स्वतन्त्र व विशाल राज्य के स्वामी बन गये।

बापा रावल की २६ वीं पीढ़ी में रावल रणसिंह (कर्णसिंह) चित्तौड़ की गद्दी पर आये। इनसे दो शाखायें फूटीं। एक रावल और दूसरी राणा। रावल चित्तौड़ के स्वामी थे और राणा शाखा वाले सीसोदा ग्राम के जागीरदार थे जो पीछे चल कर सीसोदिया कहलाये। रावल शाखा की समाप्ति अलाउद्दीन खिलजी के चित्तौड़ छीनने पर हुई और तब से राणा शाखा वाले इस गद्दी के स्वामी हुए।

रावल रणसिंह (कर्णसिंह) की नवीं पीढ़ी में रावल रत्नसिंह चित्तौड़ के अधिपति हुए। यह रावल शाखा के अन्तिम शासक थे। इनकी राणी सिंहल द्वीप की राजकुमारी पद्मिनी परम सुन्दरी थी। उस समय के दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी ने पद्मिनी के अलौकिक सौन्दर्य की कीर्ति सुन कर उसकी प्राप्ति के लिये आकाश पाताल एक कर छोड़ा, परन्तु राजपूतों के आगे उसकी एक न चली। अन्त में उसने कपट पूर्वक रत्नसिंह को कैद किया तब पद्मिनी ने 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' की नीति के अनुसार बड़ी चातुरी से अपने पति को बन्धन से

मुक्त करा लिया जिससे अत्यन्त क्रोधित होकर फिर उसने चढ़ाई की। घोर संग्राम हुआ। रावल रत्नसिंह लड़ते लड़ते वीरगति को प्राप्त हो गये। रत्नसिंह के मरने पर सीसोदिया के राणा लच्मणसिंह ने सेना का नेतृत्व किया, परन्तु जब जीतने की कोई आशा न रही तब केसरियाँ करने को उद्यत हुए। एक विशाल चिता में पद्मिनी तथा अनेकों राजराणियों के जौहर करने के पश्चात् सब राजपूत निश्चिन्त होकर पराक्रम की परमावधि करते हुए लड़े, परन्तु सबके सब वीर गति को प्राप्त हुए। अपने पुत्र खीजरखाँ को चित्तौड़ सौंपकर अलाउद्दीन दिल्ली चला गया। राणा लच्मणसिंह का आठवाँ पुत्र जो युद्ध से हट कर केलवाड़ा चला गया था सीसोदा की जागीर का स्वामी हुआ। उसके पश्चात् हमीर (राणा लच्मणसिंह के ज्येष्ठ पुत्र अरिसिंह का पुत्र) गद्दी पर आया। उसने अपने बाहुबल से पूर्वजों के चित्तौड़ के राज्य पर फिर अधिकार कर लिया।

हमीर के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र क्षेत्रसिंह गद्दी पर आया। उसके पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र राणा लाखाजी वि० सं० १४३९ में चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठा। उसके पश्चात् मोकलजी व तत्पश्चात् कुम्भाजी को राजगद्दी मिली।

महाराणा कुम्भा महान प्रतिभाशाली हुए। वे बड़े ही कला रसिक थे। चित्रकला, नाट्य, साहित्य, संगीत, शिल्पकला, संस्कृत-भाषा, युद्ध विद्या और राजनीति में बड़े ही प्रवीण थे। उन्होंने दिल्ली, मालवा और गुजरात के सुलतानों को युद्ध में परास्त कर बहुत-सा प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया।

महाराणा कुम्भाजी के ज्येष्ठ पुत्र उदाने राज्य के लोभ से अपने पिता की हत्या कर दी जिससे वह इतिहास में 'उदा हत्यारा' के नाम से कुख्यात है। इससे असंतुष्ट होकर सरदारों व प्रजाजनों ने विद्रोह किया जिसमें उदा हार कर भाग गया। तब उसके छोटे भाई रायमल को राज गद्दी मिली।

रायमल के बाद राणा संग्रामसिंह मेवाड़ के स्वामी हुए। इनके समय के हिन्दू राजाओं में ये सबसे अधिक सामर्थ्यवान् एवं प्रतापी नरेश थे। इनके समय में मेवाड़ की सीमा आगरे तक जा मिली थी।

राणा संग्रामसिंह के ज्येष्ठ पुत्र थे भोजराज। ये अपने पिता के समान ही बड़े साहसी व वीर थे। सुगठित देह और गौर वर्ण के ये स्वरूपवान राजकुमार बड़े ही विचारवान और धीर स्वभाव के थे। राजकीय विषयों में भी इनके विचारों की पूछ होती थी। ये स्पष्ट वक्ता और बड़े ही स्वदेशाभिमानी थे। इन्हीं के साथ मेड़ते के राव वीरमदेव जी ने मीराँबाई की सगाई निश्चित की थी।

विवाह

विवाह के कुछ दिन पहले मीराँ ने बड़ी ही कठिनाई से अंगों में उबटन व पीठी लगवाना स्वीकार किया। वि० सं० १५७३ की अक्षय तृतीया का दिन उदय हुआ। इसी दिन मीराँ का विवाह होना निश्चित हुआ था। सायंकाल तक चित्तौड़ से बरात आने वाली थी। प्रातःकाल जब माता मीराँ के पास गई तब वह प्रसन्न हृदय से पद गा रही थी। सहज माता ने पूछा—

तुझे प्रसन्न देख कर मेरा चित्त आज बहुत ही प्रसन्न है, बेटी ! आज तेरे विवाह का दिन है। ऐसे ही प्रसन्न रहना। गिरधर गोपाल की तुझ पर पूर्ण कृपा है। मीराँ—अवश्य माँ, तभी तो गत रात्रि में ही स्वप्न में उन्होंने मेरे साथ विवाह किया और मेरा हाथ पकड़ कर मुझे संसार सिन्धु में डूबने से बचा लिया है। माता को आश्चर्य हुआ; बोली—यह कैसे ? मैं नहीं समझी बेटी ! मीराँ ने कहा—जमुनाजी में स्नान कर रही थी, माँ ! सहसा बंशी की तान सुनाई दी। उस ओर झाँका तो कुछ आगे कदम्ब की जमुना-जल पर झुकी हुई डाली पर बैठा हुआ वही नंदनंदन बंशी बजा रहा था। उसे देखते ही रह गई। तब शरीर की सुधि न रहने से घाट की सीढ़ी पर से पैर फिसल गया और जल प्रवाह में बहने लगी। वह साँवरा उसी डाली से जमुना-जल में कूद पड़ा और अपने हाथ से मेरा हाथ पकड़ कर मुझे बचा लिया। लज्जा के मारे मैं उसकी ओर पूरा देख भी नहीं सकी। मेरे गीले वस्त्र देख कर उसने अपना दुपट्टा मेरी ओर फेंका। उसके नेत्रों में जाने क्या था, बार-बार उसे देखते रहने की ही इच्छा होती थी। कैसे कहूँ माँ उनकी बातें। 'कुछ कहने की आवश्यकता नहीं' झुँझला कर माता ने कहा। वह समझ गई कि मीराँ का पागलपन और भी अधिक भड़क उठा है। निराश व चिन्तित होकर मीराँ से कुछ भी न कहती हुई माता वापस लौट गई।

सायंकाल माता ने अपनी लाड़ली बेटी को शृङ्गार कराया उस समय उसने माता को अप्रसन्न न करने के लिये दिये गये अपने पूर्व वचनानुसार कोई हठ नहीं की। विवाह के निमित्त

बनवाये गये मूल्यवान और सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण उसे पहनाये। पैरों में महावर लगाया। आँखों में काजल आँजा। भाल पर कुंकुम बिन्दिका लगाई। बालों में मोती पोये। देवकन्या समान सुन्दर व सजी हुई मीराँ की बड़ी ही मन मोहक शोभा देखकर स्वयं माता भी मोहित सी होगई। वह मन-ही-मन कहने लगी—कैसी अनुपम रूप-राशि! जिसे देखकर देवता भी मोहित हो जाँय ऐसी यह मेरी लाड़ली अब तक भी कैसी भोली ही रह गई। अपनी असीम आकर्षण-शक्ति को यह नहीं पहचानती। और कोई होती तो अपने इस अद्वितीय लावण्य के प्रभाव द्वारा न जाने क्या-क्या कर डालती।

मीराँ ने आज गिरधर गोपाल को भी सजाया। श्यामकुञ्ज भी तोरण पुष्पों से सजाया गया।

दिन भर के प्रवास परिश्रम से थके हुए सूर्य भगवान रात्रि भर विश्रान्ति के लिए पश्चिम दिशा में क्षितिज के नीचे उतरने की तैयारी कर रहे थे और उनके रिक्त स्थान की पूर्ति के लिये मानों नूतन सूर्य उदय हुआ हो त्यों चित्तौड़ के सूर्यवंशी महाराज कुमार की बरात बड़े ही ठाट बाट के साथ मेड़ते की सीमा पर आती हुई दृष्टिगोचर हुई। नगारे बजने लगे। नगर में बड़ी ही चहल-पहल मच गई। नर-नारियों के उत्साह का पार नहीं रहा। इस अपूर्व समारंभ को देखने के लिये गाँव-गाँव से आये हुए लोगों का एक बहुत बड़ा समुदाय एकत्र हो गया। जहाँ-तहाँ मनुष्य-ही-मनुष्य दिखाई देते थे।

देखते ही देखते बरात ने नगर में प्रवेश किया। वीरमदेव ने बरातियों का यथोचित स्वागत किया और उनके ठहरने, भोजन एवं मनोरंजन का समुचित प्रबन्ध किया।

संयुक्त वंशवृक्ष

राठोड़ वंश
जोधपुर

तथा

गुहिलोत वंश
चित्तौड़
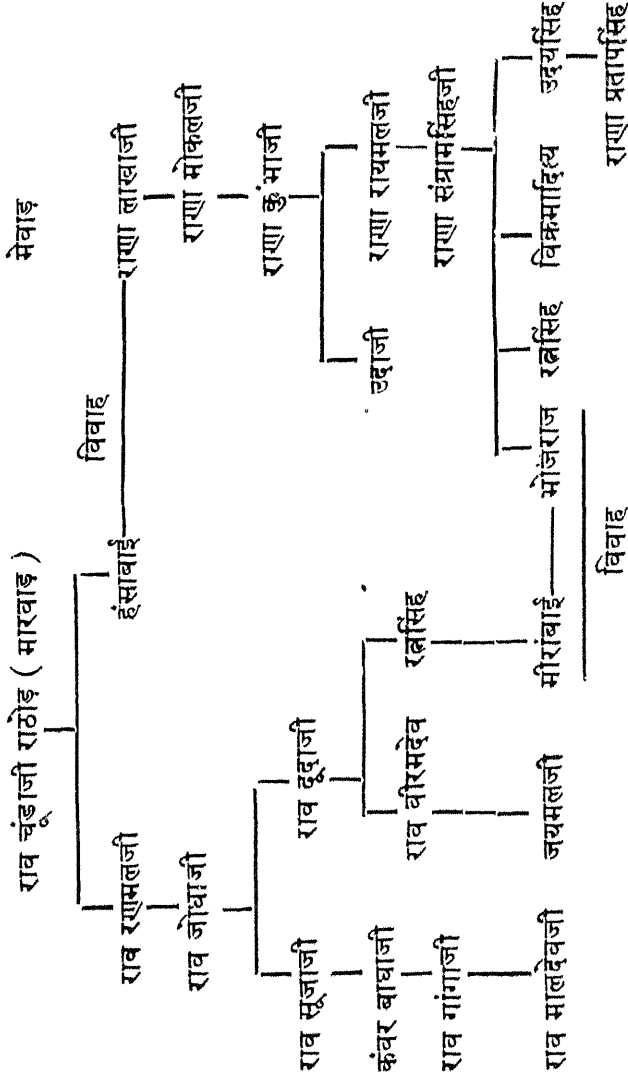
लग्न मण्डप में ले जाने के पूर्व वीरकुँवरी मीराँ को कुछ आवश्यक सूचनाएँ देने श्याम कुञ्ज में आई। जब वह बार-बार उसे घूँघट रखने की सावधानी रखने के लिये समझाती रही तब अरुचि के भाव से कुछ झुँझला कर उसने कहा—घूँघट की बाधा क्यों पटकती हो, देख लेने दो न, माँ! जी भर कर मेरे सुन्दर वर को! वे तो मेरे ही हैं फिर परदा कैसा? इस अज्ञान रूप घूँघट का ही तो परिणाम है जो जीव जन्म-जन्म तक अपने प्राणाधार—स्वामी से बिछुड़ा हुआ रहता है।

माता को यह अच्छा न लगा। उसके साथ आई हुई स्त्रियाँ भी कानाफूँसी करने लगीं। ज्यों-त्यों कर उसे घूँघट में रहने के लिये मना लिया।

सत्वर ही मीराँ मण्डप में लाई गई। पाणिग्रहण का समय आ गया। इसी समय मीराँ की सखी ने गिरधर गोपाल के स्वरूप को वर राजा की एक ओर छोटे से सिंहासन पर पधरा दिया। सबने यह देखा, परन्तु कोई कुछ न बोला। सब जानते थे कि मीराँ की आज्ञा से ही यह कार्य हुआ है। वर वधू हाथ में माला लिये खड़े थे। उनके बीच में अंतर्पट लिये राज-पुरोहितादि सुयोग्य ब्राह्मण मङ्गलाष्टक बोलते हुए बीच-बीच में 'शुभ लग्न सावधान' आदि विधि-मन्त्रों का उच्चारण करते जाते थे। मण्डप के बाहर शहनाई व नगारे आदि वाद्यों का मङ्गल-घोष हो रहा था। महिलाएँ मधुर कण्ठ से गीत गाती थीं।

अन्तर्पट हटते ही मीराँ ने श्री गिरधर गोपाल के गले में वरमाला धारण करा दी। सखियों ने पुष्प वृष्टि की। राजकुमार

यह देख कर स्तब्ध-से ही रह गये। इसी समय पुरोहितानी ने मीराँ के खाली हाथों में दूसरी माला देकर उसे वर राजा के गले में डालने को कहा। तब उसने वर राजा के गले में माला पहनाई। तत्पश्चात् वर-वधू का हस्त-मिलन हुआ।

वर-वधू के वस्त्रों के छोर में गाँठ लगने के बाद भाँवर लेते समय जब राजकुमार आगे बढ़े तो उनका वस्त्र तनिक खिंच-सा गया। उन्होंने उस ओर झाँक कर देखा तो एक सखी सिंहासन से ठाकुरजी लेकर मीराँ को दे रही है। इस प्रकार यह सप्तपदी का संस्कार पूरा हुआ।

मध्य रात्रि के समय प्रथा के अनुसार वर-वधू के परस्पर मिलन के लिये मीराँ को किसी निर्धारित कक्ष में ले जाने के लिये दासी को आज्ञा हुई। तब पूछने पर मीराँ ने उससे कहा—कैसी पगली है! मेरे श्यामसुन्दर कृपा करके इस दासी को दर्शन देने न जाने किस क्षण में पधार जाँय! उनके लिये ही तो यह शयनगृह सजा रखा है। अब और कहीं मैं जा ही कैसे सकती हूँ।

मीराँ श्याम कुञ्ज में तम्बूरा बजाती हुई सुन्दर रागिनी में गाकर अपने प्यारे श्यामसुन्दर को रिझा रही थी। धीरे-धीरे उसकी और सखियाँ व दासियाँ भी उसके निकट आ गईं और गाती हुई वीणा, मृदंग, तानपूरा, करताल आदि विविध वाद्य बजाने लगीं और वातावरण अपूर्व आनन्द मय बन गया।

मीराँ को ले जाने के लिए राजमहिलायें श्यामकुञ्ज के द्वार तक आकर ठहर जातीं। वहाँ का रङ्ग-ढङ्ग देख कर कोई वापस चली जाती तो कोई वहीं देखने के लिये ठहर जातीं। मीराँ की

माता भी बेटी के आनन्द में भङ्ग होने जैसी कोई बात करने का साहस नहीं कर सकी।

उधर मीराँ का सङ्गीत के साथ नृत्य भी पूरे रङ्ग में आ गया था। नृत्य करती हुई मीराँ पदानुगत मधुर भाव के अपने हाव-भाव-कटाक्ष युक्त सुन्दर अभिनय द्वारा अपने प्रियतम को रिझा रही थी। प्राण प्यारे से मिलने की उसकी उत्कंठा चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी। वायु मण्डल में शृङ्गार रस बह रहा था। मीराँ के झाँझर की झनकार में देवताओं का भी भान भुला देने जैसी अद्भुत मोहनी थी।

सहसा मीराँ के नेत्र अन्तरिक्ष में ताकने लगे। उसका नृत्य व गाना रुक गया। श्यामकुञ्ज में प्रकाश का सागर उमड़ पड़ा। इस दिव्य झलक से और सबकी सब चकाचौंध होकर मूर्च्छित-सी हो गई। सकल इन्द्रियाँ विचार शक्ति भी उनकी स्तम्भित हो गई। मीराँ के सन्मुख उसके गिरधर गोपाल प्रकट हो गये। उसे वंशी का मधुर स्वर सुनाई दिया। मंद मुस्कराते हुए साक्षात्-मन्मथ मन्मथ श्यामसुन्दर एक-एक डग मीराँ की ओर बढ़ने लगे। अब मीराँ अपने को रोक न सकी। 'मेरे प्राणाधार, प्यारे' कहती हुई वह अपने चितचोर से जाकर लिपट गई। उन्होंने भी अपनी जनम-जनम की बिछुड़ी हुई प्रियतमा को हृदय से लगा लिया। मीराँ की प्रेम साधना सफल हो गई। मीराँ और उसके गिरधर गोपाल, प्रिया और प्रियतम, लाड़िली और लाल परस्परः मिलन माधुरी में—उस परम आनन्द की समाधि में तद्रूप हो गये। चहुँओर के वातावरण में ऐसी अलौकिक नीरवता छा गयी मानों समस्त प्रकृति का संचालन कार्य ही रुक गया हो।

भोर में जब सखियाँ, दासियाँ व महिलाओं ने जागृत होकर देखा तो पलङ्ग पर श्वेत शय्या पर मीराँ अचेत सोई हुई थी। उसका शृङ्गार अव्यवस्थित था, उसकी वेणी खुल कर पुष्प तथा उसके घने काले लम्बे केश बिखर गये थे।

अरुणोदय के समय सावधान होकर मीराँ ने आँखें खोलीं; परन्तु स्मृति द्वारा भुक्तानुभव के आनन्द-सुधा रस का आस्वादन करते हुए पुनः बन्द कर दीं।

जब वीरकुँवरी ने मीराँ को जगाया तब 'माँ' कह कर वह माता से लिपट गई और माता भी अपनी बेटी का सिर सहलाती हुई उससे प्यार करने लगी।

चित्तौड़ प्रस्थान

मीराँ का विवाह समारम्भ बड़ी ही धूमधाम से निर्विघ्नता पूर्वक समाप्त हो जाने के बाद मीराँ के साथ बरात के वापस चित्तौड़ लौटने का समय उपस्थित हो गया। मीराँ अब अपने माता-पिता, साथियों और अपनी मातृ-भूमि मेड़ता को छोड़ कर सुसराल जायगी इसलिये सबके हृदय में उदासी छाई है, आँखों में बार-बार जल भर आता है। मीराँ ने सब सखियों को समझाया; बेटी के शरीर पर अपना हाथ फेरती हुई माता का वात्सल्य हृदय उमड़ पड़ा, आँसू पौंछती हुई वह कहने लगी—जिस अमूल्य रत्न की वर्षों तक प्राणों से भी अधिक समझ कर मैं रक्षा करती आई थी वही आज मुझ से छीना जा रहा है। क्या करूँ, कन्या तो पराया धन है। बेटी, तेरे रूप लावण्य से ये महल जगमगाते रहे, परन्तु अब तेरे बिना इन सूने महलों

में मैं कैसे रह सकूँगी। सूना श्यामकुञ्ज देख कर कैसे धीरज रखूँगी बेटी, मेरे नयनों की ज्योति, मेरे प्राणों की पुतली, अब तेरे बिना मैं अंधी-सी हो जाऊँगी, अब न जाने तुझे मैं कब देखूंगी या नहीं! माता फूट-फूट कर रोने लगी। तब मीराँ ने उसे धैर्य बँधाया। फिर हृदय का भाव आँखों में लाकर कहने लगी—मुझे अब तुम्हारा प्रेम कहाँ मिलेगा, माँ! मेरी कोई बात कभी अच्छी नहीं लगती तो भी अपने प्रेम के कारण मुझे दुःख न होने देने के हेतु से कुछ कहती नहीं। इसी कारण मैं अब तक गिरधर गोपाल की सेवा निःशंक भाव से करती रही। मैंने भी केवल तुम्हारे हृदय को व्यथा होती देख कर ही इस विवाह के विरोध में अधिक कुछ नहीं कहा। जो होना था, हो चुका। मेरे गिरधरलाल की यही इच्छा होगी माँ। परन्तु अब जाते समय तुमसे एक याचना करती हूँ, स्वीकार करोगी न माँ?

मीराँ को हृदय से लगा कर माता ने कहा—बेटी! तेरे लिये ऐसी कौनसी बात है कि जो मैं नहीं कर सकती। बोल बेटी! तेरी क्या इच्छा है? मीराँ—माँ, मुझे धन-सम्पत्ति, वैभवादि कुछ नहीं चाहिये; परन्तु अब तक जिनकी मैं सेवा-पूजा करती रही, जिनके नाना प्रकार से लाड़-लड़ाये और जो मेरे तन में, मन में व रोम-रोम में समा चुके हैं उन श्यामसुन्दर के बिना मैं अपना जीवन कैसे बिताऊँगी? उनके बिना तो संसार में मेरे लिये अंधकार ही है। मुझे अपने गिरधर गोपाल को साथ में ले जाने दो माँ, यही तुम से माँगती हूँ।

मीराँ के नेत्रों से जल टपकने लगा। बेटी की आँखों से अश्रुधारा बहती देखकर माता का हृदय द्रवित हो गया। वह बोली—

अपने ठाकुरजी को अपने साथ भले ही ले जा बेटी, परन्तु उनके पीछे पगली होकर ससुराल में अपने कर्त्तव्य को मत भूल जाना। वहाँ सब के प्रिय होकर रहना। अपनी सेवा से पति को अपने आदर भरे व्यवहार से सास, ननँद को प्रसन्न रखना और दास दासियों पर सदा दया की दृष्टि रखना।

मीराँ के पिता रत्नसिंह बेटी से मिले, उसे हृदय से लगा कर प्यार किया व बोले—ससुराल में ठीक ढङ्ग से रहना बेटी, माता पिता को यश अपयश मिलना सुसराल में कन्या के बनाव पर ही अवलंबित है। अधिक क्या कहूँ, तू समझदार है मीरा! यह जोशी पुरोहित तेरे साथ चित्तौड़ जा रहे हैं। पुरोहितजी, ध्यान रखना, फूल जैसी कोमल मेरी बेटी को किसी प्रकार का कष्ट न हो, यह कह कर रत्नसिंह आँखें पोंछने लगे।

बालक जयमल सहित वीरमदेव भी आये, मीराँ को प्यार करते हुए बोले—बेटी, सुसराल में ऐसे रहना जिससे पितृकुल और पतिकुल दोनों का ही यश बढ़े। कहते-कहते उनका गला भर आया और नेत्रों से जल की दो बूंदें टपक पड़ीं।

मीराँ ने जयमल को प्यार किया। उसके सिर पर हाथ रख कर मन ही मन उसे आशीर्वाद दिया। पश्चात् राजमन्दिर के पुजारी ने श्री चरणामृत और प्रसादी भेंट की।

मीराँ ने अपने प्यारे गिरधर गोपाल को उठाकर अपने हाथ में लिये, उन्हें छाती से लगाया तब कुछ क्षण वह भावावेश में आ गई। दासी अपनी स्वामिनी को सम्भालती रही। यह देख वीरकुंवरी ने कहा—मिथुला, मेरी बेटी की ऐसी अवस्था होने पर सम्भाल रखती रहना। तुझे इसी लिए मैं इसके साथ भेज

रही हूँ। यह अभी निरी भोली भाली है। मेरी बेटी को कभी अकेली मत रहने देना।

बरात लौटने की व्यवस्था हो गई। मेड़तिया राजकुल की ओर से किये गये स्वागत-सत्कार से चित्तौड़ राजकुल के बराती लोग पूर्ण सन्तुष्ट थे।

दहेज में मीराँ को बहुत धन, अमूल्य वस्त्राभूषण और बहुत-सी दास-दासियाँ तथा और भी वैभव सामग्री दी गई।

हाथियों का दल मस्ती में झूम रहा था। स्वदेश जाने की उमंग में अश्व समूह हिन-हिना रहा था। नगारे, शहनाई और तुरही आदि बाजे बज रहे थे।

सब सखियों, दासियों, नर-नारियों तथा माता—पिता आदि बड़े बूढ़ों के चरणों में प्रणाम करती हुई उनसे बिदा लेकर मीराँ अपने गिरधर गोपाल के साथ पालकी में बैठ गई। तब बड़ी धूम-धाम से वाद्य ध्वनि और जय घोष के साथ बरात मेड़ते से विदा हुई।

बरात दृष्टि से ओझल होते ही महल के झरोखे से झाँकती हुई वीरकुँवरी के नेत्रों के आगे अंधकार-सा छागया। व्याकुल होकर व्यर्थ ही श्यामकुञ्ज में मीराँ को ढूंढ़ने का प्रयास करती हुई वह अचेत हो पृथ्वी पर गिर पड़ी।

सब राज्य तथा प्रजा के नर नारियों के हृदय रूप खजाने में छिपा हुआ अमूल्य धन दिन-दहाड़े डंके की चोट जैसे डाकुओं का कोई समूह लूट ले गया हो, त्यों मेड़ते की दशा हो गई। मीराँ को खोकर मेड़ता निष्प्राण, निश्चेष्ट सा होकर दुःख सागर में डूब गया।

ससुराल की परिस्थिति

पति-गृह जाने के बाद चित्तौड़ राजकुल रीति के अनुसार राजकुमार और राजवधू को जोड़े के साथ कुलदेवी पूजने को जाना आवश्यक था। मीराँ को कहा गया तब उसने अस्वीकार करते हुए यह कहा कि मेरे देवी-देवता सब कुछ मेरे गिरधरलाल हैं। इन्हें छोड़ कर और किसी को मैं पूजना नहीं चाहती। सास-नणँद आदि बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों ने अपने सुहाग के लिये कुलदेवी पूजने को चलने के लिये मीराँ को बहुत समझाया, परन्तु उसने कह दिया कि मेरा सुहाग तो सदा अचल है। जिसे अपने सुहाग में शंका होवे भले ही कुलदेवी पूजें।

इस घटना से चित्तौड़ के राजघराने की महिलाओं में असंतोष फैल गया। उन्हें कल्पना भी नहीं थी कि ऐसी सुन्दर, पढ़ी लिखी, भक्ति भाव में रहने वाली और नई आई हुई राजवधू इस प्रकार स्पष्ट रूप से यहाँ की परम्परा से चलती आई धार्मिक रूढ़ि का अनादर व गुरूजनों का अपमान करेगी। मीराँ के प्रति अब उन्हें अरुचि होने लगी।

युवराज भोजकुमार भी उसके व्यवहारों से खिन्न रहा करते थे, किन्तु धीरे-धीरे मीराँ की वास्तविक मनःस्थिति को जान लेने के बाद उनके असंतोषादि भाव सब हट गये। यही नहीं उन्हें मीरांबाई के प्रति स्नेह होने लगा। एक बार वार्तालाप के प्रसंग में सांसारिक विषयों की आवश्यकता हो तो दूसरा विवाह करने और नहीं तो उसके परमार्थ पथ में सहयोगी बनने के मीराँबाई के प्रस्ताव को सुनकर उन्हें अपना कर्त्तव्य स्पष्ट हो गया। उन्होंने

मीराँ के भजन-भाव में हाथ बँटाने का निश्चय कर लिया और इस प्रकार मीरांबाई का मार्ग निष्कंटक हो गया। भोजराज ने मीरांबाई के लिये कुम्भ श्याम के मन्दिर के पास एक छोटा सा मन्दिर भी सेवा-सत्संग के लिये बनवा दिया।

महाराणा संग्रामसिंह की ओर से तो मीरांबाई को कभी किसी प्रकार से बाधा नहीं हुई। उन्हें अपनी पुत्रवधू के प्रति बड़ा ही आदर भाव था और उसकी बुद्धि, चातुरी, ज्ञान, भक्ति आदि के प्रति बड़ी श्रद्धा थी।

मीरांबाई की सास को पहले-पहले बहू के प्रति कुछ कटु-भाव रहे, परन्तु अन्त में पुत्र-वधू के प्रेम, भक्ति, सौजन्य, नम्रता, सेवा आदि गुण-शील को देख व अनुभव कर वह भी उससे प्रेम करने लगी और उसे किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचाने की सावधानी रखने लगी।

मीरांबाई की एक नणँद ऊदाबाई नाम की थी। वह अपनी भाभी मीरांबाई से ईर्षा करती थी। उसकी ससुराल ईडरगढ़ में थी। गुजरात के सुल्तान के अधीनस्थ अहमदनगर जिलाधीश यवन हाकिम ने चढ़ाई कर जब ईडर परगना ले लिया, वहाँ का राजा रायमल सहायता के लिये चित्तौड़ राणा संग्रामसिंह के पास आया। तब राणा ने उसे सहायता देने के साथ-साथ अपनी कुंवरी ऊदाबाई का विवाह भी उसके साथ कर दिया था, परंतु चहुँ ओर अशान्ति का वातावरण होने से ऊदाबाई विशेषकर चित्तौड़ में ही रहा करती। मीरांबाई के चित्तौड़ में आने के पश्चात् उसके रूप गुणादि तेजोमय व्यक्तित्व को देख कर ऊदाबाई के मन में प्रेम के स्थान पर डाह होने लगा। संसार में सदा से नणँद

भौजाई का परस्पर में कलह का नाता चला आता है, उसी श्रेणी में वह उतर आई और अकारण ही वह मीरांबाई का अनादर और अपमान करने पर तुली रहती। यह सब कुछ होते हुए भी मीरांबाई अपनी ओर से उससे सदा प्रेम का ही व्यवहार करती।

परिस्थिति परिवर्तन

संसार में कभी एक सी परिस्थिति नहीं रहा करती। स्थिरता का प्रकृति का सिद्धान्त ही नहीं। विवाह के पश्चात् ७–८ वर्ष तक ही युवराज भोजराज मीरांबाई के साथ रहे। पश्चात् उनका स्वर्गवास हो गया और मीरांबाई का एक बड़ा आधार चला गया। मीरांबाई संसार की दृष्टि से विधवा हुई, परन्तु वह तो अखण्ड सुहागिन थी। उसका भजन, साधन, सत्संग वैसा ही पूर्ववत् चलता रहा।

इसके पश्चात् कुछ ही वर्षों में जहीरूद्दीन बाबर ने दिल्ली पर चढ़ाई की। इब्राहीम लोदी हार गया—मारा गया और दिल्ली के सिंहासन पर बाबर का अधिकार हुआ। इसके कुछ काल पश्चात् राजपूतों के साथ भी उसका घोर युद्ध हुआ। राजपूत सेना का—जिसमें कई राजा, महाराजा एकत्रित हुए थे—नेतृत्व राणा संग्राम-सिंह ने किया था। देश के—भारत के—दुर्भाग्य से बाबर की विजय हुई। राणा संग्रामसिंह के मस्तक में विषैले बाण के लगने से उन्हें रणक्षेत्र से हटाया गया जिससे राजपूती सेना हताश होगई। इसके अतिरिक्त राजपूतों में परस्पर फूट, ईर्षा और अव्यवस्था का भी बड़ा कारण था कि जिससे वे परास्त हुए। अनुकूल अवसर पाकर राणा संग्रामसिंह ने जो जयपुर के बसवा ग्राम में

ले जाये गये थे, पुनः राजपूतों को संगठित कर बाबर से लोहा लेने का प्रयत्न किया, परन्तु इसी प्रयत्न में, युद्ध से ऊब उठे हुए कुछ दुष्ट राजपूतों ने षड़यंत्र कर राणा को विष दे दिया और इस प्रकार वि० सं० १५८४ में महान राणा संग्रामसिंह का देहान्त हुआ।

राणा संग्रामसिंह के पश्चात् भोजराज के छोटे भाई रत्नसिंह राज्यारूढ़ हुए; परन्तु ४ वर्ष राज्य करने के पश्चात् गृह कलह के कारण वे भी वि० सं० १५८५ में मारे गये। राणा रत्नसिंह के समय भी मीरांबाई को कोई कष्ट नहीं हुआ न उसके जीवन-क्रम में कोई बाधा ही उपस्थित हुई।

राणा रत्नसिंह के देहान्त के पश्चात् राणा विक्रमादित्य गद्दी पर आया। भूतपूर्व महाराणा संग्रामसिंह के हाड़ी रानी से दो पुत्र हुए थे, विक्रमादित्य और उदयसिंह (सुप्रसिद्ध महाराणा प्रताप के पिता)।

राणा विक्रमादित्य बड़ा ही दुर्गुणी था। उसके गद्दी पर आने से राज्य की परिस्थिति सर्वथा बदल गई। मीरांबाई के यथार्थ मानस को, उसके भक्ति-भाव को समझने वाले भोजराज, राणा संग्रामसिंह और रत्नसिंह के जैसा विशाल एवं उदार हृदय भी उसने नहीं पाया था।

मीराँ के पिता रत्नसिंह मेड़तिया भी बाबर के साथ के युद्ध में मारे गये थे और उसकी माता का भी स्वर्गवास उसके मेड़ता छोड़ने के पश्चात् कुछ काल में ही हो चुका था। इस कारण संसार की दृष्टि से मीरांबाई अब तो सर्वथा एकाकिनी हो गई थी।

विक्रमादित्य बड़ा ही दुष्ट प्रकृति का था। उसकी कुटिल नीति से राज्य में भी अव्यवस्था फैल गई और प्रजाजन तथा ठिकाने के सरदार व जागीरदार आदि लोग भी सब असंतुष्ट हो गये। ऊदाबाई को अब मन-चाहा संयोग मिल गया क्योंकि विक्रमादित्य ऊदाबाई को बहुत मानता था और राज्य-व्यवस्था में भी उसकी राय लिया करता था।

नणँद उदाबाई के भाभीके प्रति रहे हुए ईर्ष्या-डाह, क्रोध आदि हृदय के सूक्ष्म भाव अब शनैः-शनैः साकार रूप धारण करने लगे।

अब तक तो मीराँबाई का भक्ति-भाव निर्विघ्न चलता आया। परन्तु विक्रमादित्य के हाथ में शासन-सूत्र आने के बाद अब विघ्न-बाधाएँ मीरांबाई की उपासना में उपस्थित होने लगीं। कुछ तो अपनी अविचार दुर्बुद्धि के कारण और कुछ अपनी कुचक्री मित्र-मण्डली की बहकावट के कारण विक्रमादित्य को मीरांबाई का साधु-संतों के दर्शन-सत्संग करना भजन,गाना, तम्बूरा बजाना व ठाकुरजी के आगे नृत्य करना आदि अखरने लगा। साधु संतों से तो वह बहुत ही चिढ़ता था। गद्दी पर आते ही प्रथम ऊदाबाई की राय से उसने मीरांबाई के भजन-सत्संग-साधु-दर्शन आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिये। साम, दामादि नीति से काम लेने का उसने निश्चय कर लिया। प्रथम दासियों को, पश्चात् ऊदाबाई को, मीराँबाई को समझाने के लिये भेजा कि कुल को कलंक लगाने वाले गाने-नाचने साधु-संगति आदि कार्यों को वह सर्वथा छोड़ दें। परन्तु मीरांबाई भला अपनी नित्य की भक्ति-साधना को कैसे छोड़ती। उसने अपने नित्य के कार्यक्रम में

किंचित भी त्रुटि नहीं होने दी। ऊदाबाई ने उसे बहुत कुछ बुरा भला कहा धमकाया, परन्तु मीरांबाई अपने स्वीकृत पथ से तनिक भी विचलित नहीं हुई।

राणा विक्रमादित्य द्वारा मीरांबाई पर अत्याचार संकट परम्परा-भक्ति परीक्षा-प्रभुकृपा

जब किसी भी रीति से मीरांबाई नहीं मानी तब राणा ने कुछ कठोरता पूर्वक समझाने का निश्चय किया। ऊदाबाई ने भी यही राय दी।

योजनानुसार पहले तो षड़यंत्र करके ऊदाबाई ने रात्रि में मीरांबाई की गिरधर गोपाल की मूर्ति चुराली और राणा को जाकर दे दी। राणा ने उसे राजोद्यान में भूमि खुदवा कर उसमें गड़वा दी। वही सब अनर्थ का मूल है और उसके खो जाने पर मीरांबाई आप ही ठिकाने आ जायगी, राणा की यही समझ थी; परन्तु प्रातःकाल पता चलते ही मीरांबाई ने जब विरह भाव से करुण स्वर से तानपूरा-करताल बजाकर प्रभु से प्रार्थना की तब गिरधर गोपाल की वही मूर्ति सिंहासन पर प्रकट हो गई। उसने अपने प्यारे को हृदय से लगा लिया।

षड़यंत्र के विफल होने पर राणा ने मीरांबाई को काल कोठरी में रखा जहाँ साँप, बिच्छू व गोयरे आदि जंतुओं की कमी नहीं थी। इस प्रकार गिरधर गोपाल से उसे पृथक करा दिया। दासियों के मिलने पर भी प्रतिबंध लगा दिया। उसे खाने के लिये भी नहीं दिया जाता था। परन्तु वहाँ भी प्रभु-प्रेम की छत्र छाया में वह सुरक्षित रही। संत सखुबाई और जना-

बाई के लिये भीड़ पड़ने पर साकार हो स्वयं सेवा करने वाले भगवान ने मीरांबाई को किसी बात की कमी नहीं पड़ने दी। सातवें दिन द्वार खुलवाने पर राणा ने देखा, मीरांबाई पहले से भी अधिक तेजस्विनी दिखाई दी।

तब राणा ने मीरांबाई के स्थान पर चौकी व पहरे लगवा दिये और जिस प्रकार लंका में अशोक बाटिका में रखी हुई सीता को दुःखित व आतंकित कर देने के लिये रावण ने दुष्टा राक्षसियों को नियुक्त किया था त्यों उसने चंपा व चमेली नामक दो दासियों की अधीनता में और कुछ ऐसी कठोर हृदय की भयंकर रूप वाली दासियों को भी वहाँ नियुक्त कर दी। उन्हें यह भी आज्ञा दे दी गई कि मीरांबाई को अनेक उपाय द्वारा कष्ट दिया करें। परन्तु उन में त्रिजटा के समान इन दासियों में भी चंपा व चमेली नाम की दो दासियाँ थी जो पहले से ही कुछ भले स्वभाव की थीं और मीरांबाई के दर्शन-सहवास में आकर पूर्णरूप से साधू-स्वभाव वाली बन गई थीं; जिनके नियं-त्रण में रहने वाली दुष्ट दासियाँ कुछ नहीं कर सकती थीं।

जब साधारण उपायों से काम नहीं चलता देखा तब दुष्ट राणा ने अपनी भाभी मीरांबाई को प्राणदण्ड देने का निश्चय किया। ऊदाबाई भी भाभी को किसी भी प्रकार झुकाना चाहती थीं, परन्तु जब वैसा नहीं कर सकी तब अन्त में सत्ता के कुटिल प्रयोग द्वारा उसे अब मारने के निश्चय पर तुल गई थी। राणा ने ऊदाबाई की व अपने बीजावर्गी वैश्य मंत्री की राय से दयाराम पंडा के साथ श्री द्वारकाधीश के चरणामृत के नाम से विष का प्याला मीरांबाई के पास भेजा। ऊदाबाई भी पीछे-पीछे हो ली।

दासियों ने अपनी स्वामिनी को बहुत रोका कि कपट पूर्वक यह विष भेजा गया है, परन्तु मीरांबाई ने तो चरणामृत मान कर उस विष के कटोरे को अपने हाथ में ले लिया और प्रभु से इस कृपा के लिये प्रार्थना करने लगी। ऊदाबाई भी अन्ततः नारी ही थी। अपने हाथ में विष कटोरे को लिए बड़े ही भक्ति-भाव से प्रेम पूर्वक भगवद्भजन करती हुई भाभी को उसने देखा तब सहसा उसके कुत्सित हृदय में ज्योति प्रकट हुई। उसे अपने हृदय में लगा वह कितनी नीच, अधम है और भाभी कितनी पवित्र और ऊपर उठी हुई है। यह सुन्दर भाव उसके हृदय में उदय तो हुआ पर यह झुँझलाहट भी उसके मन की कम नहीं थी कि भाभी को मृत्यु स्वीकार है पर अपना हठ छोड़ना नहीं। उसकी जय और अपनी पराजय पर ऊदाबाई को खीज हुई—मिथ्या, अहंकार का आवरण आया, परन्तु अन्त में उसके हृदय में पश्चाताप हुआ और जब मीरांबाई ने बिष का प्याला अपने होठों से लगाया तब तो ऊदाबाई उस ओर दौड़ पड़ी और चिल्लाई—भाभी ! मत पियो यह जहर है। परन्तु मीरांबाई के कंठ में एक घूंट तो जा चुका था फिर भी सुनकर मुसकराते हुए उसने बड़े ही प्रेम से कहा—ऊदाबाई ! क्यों चिन्ता करती हो, प्रह्लाद को तो बिष कह कर उसकी माता ने पति आज्ञा से उसे पिलाया और उसने प्रसन्नता से पी लिया तो फिर यह तो भगवान श्यामसुन्दर के चरणामृत के नाम से आया हुआ विष ही क्यों न हो उसे पीते हुए भला मुझे तनिक भी शंका क्यों होनी चाहिये। यह कह कर मीरांबाई सारा विष पी गई। तब क्षण भर के लिये तो मानों अपने अनन्य भक्त का विष अपने अंग में समा लिया हो त्यों ठाकुरजी की प्रतिमा भी नीली सी

पड़ गई। सारांश कि–'विषमप्य मृतायते क्वचित्' (रघु० सर्ग० ८ श्लो० ४६)–के अनुसार प्रभु की इच्छा से मीरांबाई के लिये विष भी अमृत समान हो गया और। उसका बाल भी बाँका नहीं हुआ।

जब विष ले जाने वाले व्यक्ति ने मीरांबाई के विष-पान के पश्चात् खाली कटोरा ले जाकर राणा को घटी हुई घटना से परिचित किया तब क्रोधावेश में आकर उसने राजवैद्य को बुलवाया जिसने मीरांबाई के लिये विष प्रस्तुत किया था। राणा के पूछने पर उसने कहा कि विष साधारण नहीं था, घोर हलाहल था। उसे पी कर कोई भी प्राणी बच नहीं सकता, परन्तु जब उसने सुना कि विष पी लेने पर मीरांबाई का बाल भी बाँका नहीं हुआ तब उसे आश्चर्य हुआ। क्रोधित राणा ने उसे कटोरे की शेष एक दो बूँदें पीकर विष की तीव्रता का प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थित करने को बाध्य किया। मृत्यु के भय से वह टालमटोल करने लगा तब राणा ने बलपूर्वक उसकी जिह्वा पर विष की बूँदें डलवाई और अल्पकाल में ही वैद्यराज के प्राण परलोक की ओर प्रयाण करने को उद्यत हो गये।

उड़ते-उड़ते ये समाचार नगर भर में फैल गये। प्रजा में हाहाकार मच गया। राजवैद्य के मृतवत् शरीर को उसकी स्त्री, माता आदि कुल की स्त्रियाँ कुछ भले मनुष्यों की राय से मीरांबाई के महल पर ले गये। सारी परिस्थिति को जान लेने पश्चात् मीरांबाई ने तंबूरा लेकर राग मल्हार छेड़ा कुछ विशेष प्रकार से स्वरों के आरोह-अवरोह लेते हुए, मधुर अलाप के साथ वह मल्हार में भगवद् गुणगान करने लगी। उस अपूर्व संगीत

के प्रभाव से धीरे धीरे राजवैद्य ने आँखें खोली, फिर उठके खड़े होकर मीरांबाई के चरणों में गिर गया और सदा के लिए वह उसका दास बन गया। मल्हार राग गाकर मृतक को भी सजीव करने वाले मीरांबाई के इस चमत्कारी व दिव्य संगीत की प्रशंसा चारों ओर फैलने लगी।

इस चमत्कारिक घटना का—इस प्रत्यक्ष भक्ति की महिमा का ऊदाबाई पर ऐसा विलक्षण प्रभाव पड़ा कि उसी क्षण से वह अपना मिथ्याभिमान छोड़ कर मीरांबाई की शिष्या हो गई। उसे आत्मग्लानी हुई और चिन्तन करते हुए उसने यह अनुभव किया कि :—

मैं बौरी अबला रही, डरी किनारे बैठि।
जिन ढूँढा तिन पाइयां, गहिरे पानी पैठि॥
प्रेम तो ऐसो चाहिए, जस मजीठ को रंग।
धोये से छूटत नहीं, जाय जिया के संग॥

ऊदाबाई ने भाभी के आगे आत्म-समर्पण कर दिया। राणा के लिए अब तो और भी विकट समस्या हो गई ; क्योंकि मीरांबाई मरी भी नहीं और उसने अब तो ऊदाबाई की प्रकृति को ही बदल दिया। वह अब मीरांबाई के निकट रह कर भक्ति-भाव से उसकी सेवा और भजन-सत्संग करने लग गई। राणा उस पर भी खीज उठा।

राणा ने तब मालिन के साथ फूल और शालिग्राम के नाम से पिटारे में दो काले नाग भेजे। भगवान का नाम लेकर मीरां-बाई ने उसे खोला। उसमें एक तो शालिग्राम मिले और एक नाग फण उठा कर बाहर आया और मीरांबाई के शरीर पर

चढ़, उसके गले में लिपट कर, फण उठा कर सिर पर डोलने लगा ; फिर हार के जैसा कंठ के आस-पास लपेटा लेकर देखते देखते ही रत्न हार बन गया ।

अपने षडयंत्र में असफल होने से झुँझलाए हुए राणा ने वन में से एक व्याघ्र पकड़वा मंगाया और तीन दिन तक उसे भूखा रख कर तब कोट के अहाते के भीतर, एक ओर तो व्याघ्र का पिंजरा मँगवाया और दूसरी ओर मीरांबाई को बुलवाया । मीरांबाई उस घेरे में चली गई तब उस व्याघ्र को पिंजरे के बाहर खुला निकलवाया। क्षुधातुर व्याघ्र दहाड़ता हुआ 'छलांग मार कर मीराँ के निकट आया । मीरांबाई को इसकी कल्पना तक नहीं थी फिर भी धैर्य पूर्वक भगवद्-स्मरण करते हुए उसने कहा--- अहो मेरे श्यामसुन्दर, आज क्या इस नरसिंह रूप में दासी को दर्शन देने पधारे हो नाथ ! इस प्रकार पूरे वेग से धंसकर जबड़ा फाड़ कर आता हुआ व्याघ्र मीरांबाई के निकट आकर शान्त हो गया। सिर नीचे झुका कर, पूछ पैरों में दबाता हुआ वह मीरांबाई के चरणों के निकट आकर पालतू श्वान के जैसे शान्ति से बैठ गया । तब मीरांबाई ने दासी को पुकार कर कहा—मेरे ठाकुरजी आज नरसिंह रूप में पधारे हैं, शीघ्र पूजा की सामग्री ले आओ । राणा और उसके कपटी साथी जो कोट के ऊपर से देख रहे थे, आश्चर्य विमूढ़ हो गये । मीरांबाई ने वनराज को कुंकुम तिलक किया और लाल कनेर के पुष्प चढ़ाये । तब तो राणा को पूरा विश्वास हुआ कि मीराँ अवश्य हीं मंत्र-तंत्रादि में निपुण है । 'हारयो जुगारी बमणूं रमे' इस गुजराती कहावत के अनुसार राणा और दूसरे उपाय

सोचने लगा और उधर 'ज्यों-ज्यों भींजे कामरी, त्यों-त्यों भारी होय' के अनुसार विपत्ति में मीरांबाई का भगवद् प्रेम अधिकाधिक उज्ज्वल होता जाता था।

राणा ने लोहे के तीक्ष्ण शूलों की सेज बनवा कर, ऊपर कपड़ा बिछवा कर मीरांबाई के पास यह कहलवा कर भेजा कि शय्या जिस पर श्रीद्वारिकाधीशजी की प्रसादी का कपड़ा बिछाया गया है; उसके लिये भेजी गई है सो रात्रि को वह उसी पर शयन करे। मीरांबाई जब भगवान का नाम लेकर, अपने गिरधरलाल को साथ में लेकर शय्या पर चढ़ी तो उस कपड़े के नीचे कमल के फूल बिछे हुए पाये गये।

यह सुन कर आग बबूला हुए राणा ने मीरांबाई को भूत-महल में निवास दिया। जिस पुराने महल में भूतों का वास माना जाता था और उसी भय से वहाँ कोई नहीं रहता था, उस जन-शून्य भूत-भवन में रहने से अवश्य ही मीरांबाई का अन्त हो जायगा, राणा यही समझ रहा था; परन्तु मीरांबाई जैसी प्रभु की अनन्य भक्त के पवित्र सानिध्य से, उसके भक्ति के व भजन के प्रभाव से एक ही रात्रि में मीराँ को डराने आये हुए सब भूतात्माओं की ही मुक्ति हो गई।

एक दिन उड़ते हुए समाचार राणा के कान पर आये कि मांडु का सुल्तान और उसका दीवान दोनों हिन्दू साधु के भेष में मीरांबाई के दर्शन करने तथा उसका अपूर्व संगीत सुनने आये थे और उसके गिरधर गोपाल के लिये अमूल्य रत्न-हार तथा कुछ स्वर्ण मुद्राएँ भी भेट कर गये थे। गुप्तचर ने भी इस बात का अनुमोदन किया।

यह सुन कर राणा की स्थिति कंस जैसी हो गई। कंस को जहाँ तहाँ अपना काल कृष्ण ही कृष्ण दिखाई देता था। विक्रमादित्य को भी मीरांबाई अपनी महान सत्ता की अवरोधक और दुर्भेद्य किले जैसी अगम्य, अविचलित और अपने सामर्थ्य व मान का मर्दन करने वाली प्रतीत होने लगी। उसे कुल की मर्यादा मिट्टी में मिली सी दिखाई देने लगी। ज्यों प्रह्लाद को मारने के लिए प्रयोग पर प्रयोग किये गये पर वह प्रभु की कृपा से अभेद्य और निर्भय ही रहा—इसके विपरीत हिरण्यकशिपु की मनःस्थिति ही अधिकाधिक वैरभाव भरी, भयभीत, चञ्चल और क्रोधावेशयुक्त होती गई–त्यों आज विक्रमादित्य भी वैराग्नि की ज्वाला में जल रहा था। उसे नींद भी नहीं आती। उसका क्रोध पराकाष्ठा को पहुँच गया।

अन्त में राणा ने स्वयं मीरांबाई को मारने का निश्चय किया। वह योग्य अवसर की ताक में रहा। एक रात्रि को उसके गुप्तचर ने आकर उसे कहा कि मीरांबाई अपने कक्ष में किसी पुरुष से बातें कर रही है। यह सुन कर क्रोधान्ध हो राणा उसकी दृष्टि में कुल कलंकिनी मीरांबाई को मारने के लिये हाथ में खड्ग लेकर वहाँ गया। द्वार बन्द था। खोलने को कहा पर जब कोई उत्तर न मिला तब राणा ने लत्ता प्रहार द्वारा किवाड़ को तोड़ डाला और भीतर देखता है तो मीरांबाई के सिवाय और कोई नहीं। गर्ज कर राणा ने पूछा 'बोल तेरा वह जार कहाँ गया, उसे तूने कहाँ छिपा रखा है कुलटा!' परन्तु मीरांबाई तो अपनी ही धुन में थी। गह चौकन्नी होकर इधर-उधर देखती हुई बोली—वे कहाँ चले गये? अभी तो यहीं

थे ! मेरे साथ चौपड़ खेले, मेरा नैवेद्य स्वीकार किया और प्रेम की बातें करते हुए सुधा-धाराओं में न्हला रहे थे। राणा तुम आये और वे चले गये। तनिक पहले आते तो तुम्हें भी उनके दर्शन हो जाते। कैसी उनकी वह कृष्ण कमनीय व घुंघराली अलकावलि, वह मोर मुकुट, वह उनकी बाँकी छटा और उनकी वह मुरली की माधुरी तान और उनके······। 'बस करो तुम्हारी बातें'—कड़क कर राणा कहने लगा—'मुझे सीधी रीति से कहती हो या नहीं, वह कहाँ है ? आज तुम दोनों को मेरे खड्ग का स्वाद चखा कर अन्तिम निर्णय कर देता हूँ।' यह कह कर बड़बड़ाता हुआ राणा इधर-उधर ढूँढ़ने लगा। दाँत होठ चबाकर शय्या पर उसने दृष्टि डाली तो वहाँ दुपट्टा ओढ़े हुए किसी को सोते हुए पाया। भयंकर अट्टहास करता हुआ राणा आगे बढ़ा और खड्ग से दुपट्टे को उठाया तो एक भयंकर नरसिंह रूप को देखा। राणा से भी अधिक भयंकर अट्टहास करते हुए उस स्वरूप ने कूद कर आगे धँस कर, तीक्ष्ण नख वाले दोनों हाथ, राणा को पकड़ने को फैलाये त्यों ही—'अरे बाप रे' चिल्लाता हुआ भयभीत राणा भाग कर कमरे से बाहर हो गया। जब वह कुछ स्वस्थ हुआ तब फिर उसका क्रोध उमड़ आया और क्रोध से काँपते हुए उसने मीरांबाई को उसके कमरे के बाहर बुलवाया और 'तेरे जैसी कुलघातिनी नारी का जीवित रहना ही इस पृथ्वी पर भार रूप है,' अब तुझे मैं ही स्वयं मार कर इस कलंक को मिटा कर ही रहूँगा, यह कह कर ज्यों ही वह मीराँ पर खड्ग का प्रहार करने उद्यत हुआ त्यों ही उसने एक मीराँ के स्थान पर दो मीराँ को देखा। किंचित् घबरा कर किस मीराँ को

मारूँ, इस विचार में पड़ता है, उतने तो दो की चार मीराँ हो गई। राणा ठिठक जाता है और फिर देखता है तो सहस्त्रों मीराँ ही मीराँ उसे अपने चारों ओर दिखाई देने लगीं। अनेकों मीराँयें हँसती हुईं नजर आने लगीं। राणा के हाथ से तलवार गिर पड़ी, वह सिर पर हाथ पटकने लगा और 'हाय पिशाचनी' कहकर वहाँ से पगला सा लड़खड़ाता हुआ भाग कर अपने महल में चला गया।

मेवाड़ त्याग—मेड़ता गमन व त्याग

कहते हैं कि मीराँबाई पर जब राणा का अत्याचार बढ़ने लगा तब उसने गो० तुलसीदासजी को अपनी परिस्थिति विदित कराते हुए उनसे अपने कर्त्तव्य के सम्बन्ध में परामर्श माँगा, तब गोस्वामीजी ने "जाके प्रिय न राम वैदेही, सो त्यागिये कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही" यह पद तथा एक सवैया लिख भेजा। इस प्रकार देश त्याग करने का विचार मीराँबाई कर ही रही थी कि राणा ने भी, जो कुछ दिनों से चिन्ता और भय के मारे अस्वस्थ हो चला था, मीराँबाई के लिये आज्ञा प्रकाशित की कि मीराँबाई अविलम्ब मेवाड़ देश का त्याग करे। मीराँबाई ने भी इस भूमि में अन्न जल न लेने का निश्चय करके चित्तौड़ छोड़ा। चित्तौड़ वासियों को इससे बड़ा ही दुःख हुआ, परन्तु विवश थे। बहुत भारी संख्या में नगर के नर-नारी आबाल वृद्धादि आँसू बहाते हुए उसे पहुँचाने सीमा तक चले गये।

मेवाड़ छोड़कर मीराँबाई की इच्छा डाकोरजी जाने की थी, परन्तु राव वीरमदेव तथा जयमल का मेड़ते चलने के लिये

अत्यन्त आग्रह होने से वह अपनी दासियों के साथ मेड़ते गई। ऊदाबाई ने अपनी भाभी के साथ जाने के लिये बहुत आग्रह किया, परन्तु मीराँ ई ने उसे फिर बुला लेने की आशा देकर वहीं रहने के लिये कहा। मेंड़ते में राव वीरमदेव और उनके युवराज जयमल ने मीराँबाई को बड़े ही प्रेम से रक्खा। जयमल को अपनी ज्येष्ठ भगिनी मीराँबाई पर बहुत श्रद्धा थी। मीराँबाई के सत्संग से बालपन से जयमल में भक्ति के संस्कार बोये गये थे, जिन्होंने भविष्य में जयमल को महान् भक्त भी बना दिया।

मेड़ते में मीरांबाई का सत्संग चलता रहा, परन्तु मेड़ते में भी अधिक समय तक शान्ति से रहना उसके भाग्य में नहीं लिखा था क्योंकि जोधपुर के राव मालदेव और मेड़ते के राव वीरमदेव के परस्पर के सम्बन्ध बिगड़ जाने से तनातनी हुई जिसका परिणाम युद्ध हुआ। अन्ततोगत्वा मीरांबाई ने मेड़ता भी छोड़ दिया। उसके जाने बाद मेड़ता राव वीरमदेव के हाथ से चला गया तब वे लोग भी अजमेर की ओर चले गये और मेड़ते पर राव मालदेव का अधिकार हो गया।

प्रवास

मीरांबाई का नाम सुन सुन कर गाँव गाँव से अनेकों नर-नारी जहाँ जहाँ वह जाती उसका दर्शन करने आया करते थे। यही नहीं बड़े बड़े जागीरदार-नरेश तथा सन्त-महात्मा भी उसके दर्शन कर अपने को धन्य समझते।

प्रवास में भी मीरांबाई की साधु-सेवा-सत्संग एवं भजन-कीर्तन होते जाते थे।

एक बार किसी साधु के मन में मीरांबाई के प्रति बुरा भाव आया। पूर्ण यौवनवती, अलौकिक रूप-लावण्य व गुणवती फिर साधु सन्तों की सेवा करने वाली, मीरांबाई से वह एकान्त में मिलना चाहता था। अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिये वह योग्य अवसर की ताक में रहता था। एक दिन अनुकूल समय देख-कर अकेली मीरांबाई जहाँ बैठी थीं, वहाँ जाकर उसने कहा कि श्रीकृष्ण ने मुझे स्वप्न में तुम्हारे लिये सन्देश कहलाया है कि, हे मेरी प्रेयसी, तुम्हारे भक्ति-प्रेम से मैं बहुत प्रसन्न हो गया हूँ और मेरी ओर से मेरे इस अन्तरङ्ग भक्त को तुम्हारे पास भेजता हूँ। इनकी शरीर सेवा द्वारा मनोकामना पूर्ण करने से अवश्य ही मैं सन्तुष्ट हो जाऊँगा। मीरांबाई ने शान्ति से कहा—अच्छी बात है महाराज! प्रभु की दासी पर बड़ी कृपा है। आप स्नान, भोजनादि से निवृत्त हो जाइये बाद में जैसा आप कहेंगे वैसा किया जायगा।

स्नान, भोजनादि के पश्चात् मीरांबाई ने दासी को खुले चौक में पलंग बिछाने को कहा। तब उस शय्या पर बैठ मीरां-बाई ने उस साधु से कहा—पधारिये महाराज, और अपनी इच्छा पूर्ण कीजिये। उस साधु ने निकट जाकर मीरांबाई के कान में कहा—एकान्त में चलना चाहिये। यह सुनकर सहज सात्विक आवेश से पर शान्त भाव से मीरांबाई ने कहा—महात्माजी ऐसा कौनसा स्थान है जहाँ कोई भी न हो अथवा पूर्णतया एकान्त हो। सूर्यादि देवतागण-धर्म और सर्व व्यापी परमात्मा सदा सर्वदा जीवों के प्रत्येक कार्य के साक्षी हैं। जब भगवान् ही की आज्ञा है तो छिपाव की क्या आवश्यकता है। यह सुनकर उप-

स्थित साधु-सन्त एवं ग्रामवासी लोग वास्तविक बात को जान गये और उस साधु को दण्ड देने लगे तब उसने क्षमा माँगी और मीरांबाई के पवित्र सत्संग से उसका जीवन पलट गया और वह अपनी दुर्वृत्तियों को छोड़कर सत्य अर्थ में साधु बन गया।
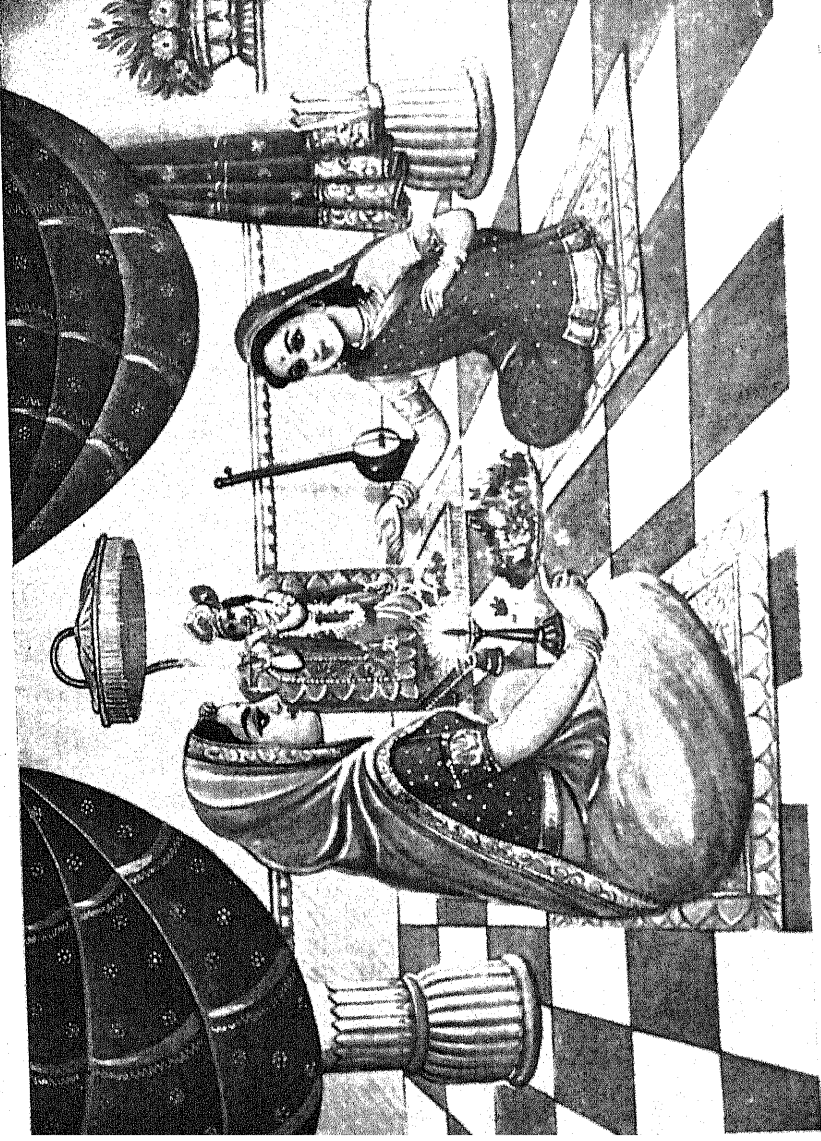
मीराँ के सत्सङ्ग में सम्मिलित होने वाले साधु-सन्तादि, नर नारी (भक्त) श्रद्धा पूर्वक मीराँ के भजनों को उसकी दासी द्वारा, जो अपनी स्वामिनी के पदों को समय-समय पर लिखकर एकत्रित किया करती थी, प्राप्त कर अपने साथ ले जाते थे तथा सुन-सुन कर भी याद कर गाने लग जाते। इस प्रकार मीराँ के भजनों का देश-विदेश में प्रचार होने लगा।

एक बार गुप्तचर द्वारा राणा ने सुना कि जहाँ मीरांबाई जाती है वहीं जङ्गल में भी मङ्गल हो जाता है। मीरांबाई के नाम में वह जादू है कि लोग खिंचे हुए उसके दर्शन को दौड़े आते हैं और उसकी सेवा में तत्पर रहते हैं। नित्य सत्संग, भगवच्चर्चा, नाम संकीर्तन आदि होते हैं और इस प्रकार गाँव-गाँव, नगर-नगर, वन-वन में व मन्दिर-मन्दिर में जहाँ-जहाँ मीरांबाई जाती लोग उसके दर्शन कर धन्य हो जाते हैं और उसके सत्संग से ही अपना जीवन सफल समझते हैं। परन्तु, विवेक हीन उस अविचारी राणा के चित्त में यह सुनकर विक्षोभ ही हुआ। मीरांबाई, जिसका पद किसी समय महाराणी का था, उसका इस प्रकार लोगों के सम्मुख नाचना, गाना, बैठना, बोलना उसकी दृष्टि में पाप था तथा उसके इस प्रकार के निर्लज्ज व्यवहार से राजकुल में कलङ्क लगना अधिकाधिक प्रमाण में बढ़ता जा रहा था। एक प्रकार से मीरांबाई धीरे-धीरे चित्तौड़ के

जगत् प्रसिद्ध सूर्यकुल की अपकीर्ति का साधन बनती जारही थी। यह तभी मिटेगा जब मीरांबाई पृथ्वी पर से ही उठ जायगी।

यह निश्चय कर राणा ने दूत के साथ मीरांबाई को पत्र लिख भेजा कि यदि हमारे कुल में तुम कलङ्क रूप बनना नहीं चाहती और मेरे ज्येष्ठ भ्राता भोजराज और पूज्य पिताजी की परलोक गत आत्मा को वास्तव में शान्ति देना चाहती हो तो नदी में डूब कर मर जाओ। पत्र पढ़कर मीरांबाई ने किसी को कुछ कहा नहीं और प्रवास में किसी अरण्य में जब इन यात्रियों का डेरा नदी के तट पर लगा था तब एक रात्रि में सब को सोते हुए छोड़कर वह एक निकट की ऊँची चट्टान पर चढ़ी। नीचे अथाह जल द्रुत वेग से बह रहा था। उसने चहुँ ओर झाँका और तब श्यामसुन्दर, श्रीकृष्ण, हे गिरधरगोपाल! यह नाम स्मरण करती हुई वह भयङ्कर प्रवाह में कूद पड़ी।

जब यह मूर्च्छावस्था से जागृत हुई उसे याद आया कि श्याम सुन्दर जल में खड़े थे और उन्होंने उसे अपने हाथों में लेकर किनारे उतार दिया था। वृन्दावन जाने का भी संकेत हुआ था। अपने प्रियतम के मधुर स्पर्श से वंचित होने से व्याकुल होकर उन्हें कुछ प्राथना करने लगी थी, भगवान् अन्तर्ध्यान होगये और वह विरह ताप से मूर्छित हो गिर पड़ी थी।

जागृत होते ही मीराँ ने देखा उसकी दासियाँ तथा कुछ साधु-सन्त उसे घेरे हुए बैठे हैं। मैं कहाँ हूँ ? उसने पूछा। तब दासी ने कहा कि रात्रि को सहसा मेरी आँखें खुल गईं और देखा तो आपकी शय्या खाली है। मैं चारों ओर ढूँढ़ने लगी त्यों ही दूर चट्टान पर आपको खड़े देखा तब आपको पुकारती

ही रह गई और आप नदी में कूद पड़ीं। यह तो अच्छा हुआ कि भगवान् की कृपा से कहीं चोट नहीं आई और इसी किनारे पर लग गई। आपको तब डेरे पर ले आये और तभी से बराबर आपको जागृत करने की चेष्टा हम सब कर रहे हैं। यह गिरधरगोपाल की ही कृपा है जो आपकी मूर्च्छा अब दूर होगई है।

श्री वृन्दावन धाम में

अपने भजन-सत्संग, दर्शनादि से अनेक जीवों का उद्धार करती हुई मीरांबाई वृन्दावन पहुँची।[1]

ब्रजभूमि के दर्शन से उसके हृदय में आनन्द समाता नहीं था। वहाँ की गौएँ, मधुर यमुना जल, कदम्ब वृक्ष, श्याम तमाल आदि ब्रजरस वैभव की सामग्री को देख-देख कर उसे अपनी पूर्व जन्म की स्मृति जागृत होने लगी। गौएँ बड़े प्रेम से रम्भाती हुई उसके निकट आ आकर उसे सूँघने लगतीं मानो कोई खोई हुई वस्तु फिर से पाई हो। गोप ग्वाल उसके लिये दूध ले आते, गोप वधुएँ मीरांबाई के भजन-नृत्य में भाग लेतीं। मीराँ का भजन-सत्संग, उसका कृष्ण प्रेम, विरह भाव में अश्रुमोचन, प्रेमोन्माद आदि बातों को देख-देख कर वृन्दावन के नर-नारी समझने लगे कि यह अवश्य ही कोई पूर्व जन्म की गोपी व राधा का अवतार है।

चारों ओर से स्त्री-पुरुषों के झुण्ड के झुण्ड मीरांबाई के दर्शन को आते, उसकी पूजा करते और उसकी जय जयकार बोलते। विरह में डूबी हुई मीराँ को शरद पूर्णिमा की मध्य रात्रि में निःकुञ्ज में भगवान् श्यामसुन्दर

के और उनकी रास लीला के भी दर्शन हुए, यही नहीं नरसिंह मेहता के समान वह स्वयं भी उसमें सम्मिलित हुई हो ऐसा उसने अनुभव किया। वह कृत्यकृत्य हो गई, उसका जीवन कृतार्थ हो गया।

जीव गोस्वामी और मीरांबाई

वृन्दावन वास की अवधि में एक बार मीरांबाई ने सुना कि यहाँ श्रीचैतन्य महाप्रभु के शिष्य श्रीरूप और सनातन गोस्वामीजी के भतीजे श्रीजीव गोस्वामी रहते हैं। वे बड़े ही धुरन्धर पंडित और ज्ञानी हैं। यह सुनकर मीरांबाई उनके दर्शन को गई परन्तु उसे दर्शन नहीं हुए क्योंकि वे महात्मा पर्दे के भीतर थे। उनके शिष्य ने बाहर आकर कहा कि "आपको गोस्वामीजी के दर्शन नहीं हो सकेंगे क्योंकि स्वामीजी महाराज कभी प्रकृति रूप स्त्री मात्र का मुख नहीं देखते" यह सुनकर कुछ मुस्करा कर मीरांबाई ने निर्भीकता से उस शिष्य को सुना दिया कि—तुम्हारे गुरू महाराज को कह देना कि मैं समझती थी कि 'वासुदेवः पुमनेकः स्त्रीमयमितरज्जगत्' (श्री भागवत)। ब्रज में तो वासुदेव, कृष्ण, ही एक मात्र पुरुष और शेष सब गोपियाँ हैं। परन्तु आश्चर्य है कि आज दूसरे भी कोई उनके पट्टीदार पुरुष प्रकट हुए हैं जो इस ब्रज में स्त्री का मुँह नहीं देखना चाहते। ठीक है—गोस्वामीजी पुरुष हैं तो मैं भी दूसरे पुरुष से मिलना नहीं चाहती। पुरुषत्व के अभिमानी से भाषण भी करना मैं नहीं चाहती। यदि स्वरूप को पहचानते तो गोस्वामीजी कभी ऐसा नहीं कहते कि मैं पुरुष हूँ। जब तक पूर्ण ब्रह्म से भिन्नता है तब तक सबके सब स्त्री हैं।

यह व्रज और विशेषकर वृन्दावन तो श्री गोपीश्वरी राधारानी की राजधानी है। इस वृन्दावन में श्रीकृष्णचन्द्र ही एक मात्र पुरुष हैं बाकी सर्व प्रकृति। यहाँ रहकर यदि साधना करनी है तो श्री राधा और गोपियों की शरण लेकर ही सफल हो सकती है नहीं तो जिन्हें अपने पुरुषपन का अहङ्कार हो उन्हें चाहिए कि वे इस व्रजभूमि के बाहर कहीं जाकर साधना किया करें।

पर्दे के भीतर उन गोस्वामीजी महाराज ने भी मीरांबाई के मार्मिक और ज्ञान भरे वचन सुने। वे समझ गये कि यह कोई सामान्य स्त्री नहीं, कोई पहुँची हुई उच्चकोटि की आत्मा है। उसी क्षण उनका अहङ्कार गल गया और वे पर्दे के बाहर निकल आये और मीरांबाई के चरणों में गिर पड़े। मीरांबाई ने उनका बड़ा आदर किया। विशेष कर श्री चैतन्य महाप्रभु के शिष्य होने के नाते मीरांबाई को उनसे मिलकर बड़ा ही आनन्द हुआ। श्री चैतन्य महाप्रभु का नाम, उनके गुण-गान और उनकी अवतारिक दिव्यता आदि बहुत सी बातें, श्री पुष्करजी व मेड़ता होकर वृन्दावन जाने वाले महाप्रभु के किसी दक्षिणी भक्त के मुख से उसने पहले से सुन रखी थीं। श्री गौराङ्ग महाप्रभु के प्रति जो सुन्दर भाव मीरांबाई के हृदय में भरे हुए थे इस वातावरण में उमड़ आये तब उसी भाव में बहते हुए उसने 'अब तो हरी नाम लौ लागी' यह उनकी प्रशंसा में पद बनाया।

वृन्दावन से श्री द्वारिकापुरी की ओर जाने के लिये उसे प्रभु की ओर से संकेत मिला। तब उसने उस ओर प्रस्थान किया।

श्रीद्वारिकावास

मार्ग में तीर्थ यात्रा, सन्त दर्शन व सत्संग करती हुई मीराँ-बाई श्री द्वारिकापुरी पहुँच गई।

उधर मीरांबाई के मेवाड़ देश छोड़ जाने के पश्चात् वहाँ की परिस्थिति सर्वथा विपरीत हो गई। राणा विक्रमादित्य को बन-वीर (राणा संग्रामसिंह के बड़े भाई पृथ्वीराज की पासवान का पुत्र) ने मार डाला और वह स्वयं राणा बन बैठा और उदयसिंह (विक्रमादित्य के छोटे भाई) को भी मारने गया था तब पन्नाधाय ने उदयसिंह को गुप्तरूप से केलवाड़ा की ओर भिजवा दिया और उसके नाम से अपने पुत्र का बलिदान देकर उसकी रक्षा की। अवसर पाकर सब जागीरदारों को व सरदारों को एकत्रित कर उनकी सहायता से बनवीर को परास्त कर उदयसिंह चित्तौड़ के राज्यसिंहासन पर बैठा।

मीराँ के जाने से मानों भगवान् ही रूठ गये हों त्यों मेवाड़ में अशान्ति बढ़ती ही चली, लोगों को चैन नहीं था। व्याधियाँ भी फैलने लगीं। नये-नये उपद्रव होने लगे और प्रजा त्राहि-त्राहि करने लगी। तब राणा उदयसिंह और प्रजाजनों ने मिल-कर मीरांबाई को वापिस लौटा लाने का संकल्प किया। उन्हें यह निश्चय हो गया कि मीरांबाई को अपमान पूर्वक देश निकाला देने से ही देश की यह परिस्थिति हुई है। उन्होंने कुछ जागीर-दार तथा पुरोहितादि ब्राह्मणों को मीरांबाई को वापस लौटा लाने के लिये भेज दिये।

मीरांबाई के पीहर मेड़ते में भी परिस्थिति परिवर्तित हो चुकी

थी। अपना खोया हुआ मेड़ते का राज्य राव वीरमदेव ने अपने पराक्रम से वापस ले लिया परन्तु (वि० सं० १६००) में राव वीरमदेव का देहान्त हो गया तब राव जयमल मेड़ते की गद्दी पर आसीन हुये। गद्दी पर आते ही उन्होंने अपनी बहन मीरांबाई को द्वारिका से लिवा लाने के लिये अपने विश्वासपात्र राजकर्मचारी और प्रजाजनों को भेज दिया।

इस प्रकार पीहर और ससुराल दोनों राज्यों की ओर से मीरांबाई को पुनः सत्कार पूर्वक वापस बुलाने का प्रबन्ध किया गया।

तदनुसार ये लोग सब द्वारिकापुरी पहुँच गये और उन्होंने मीरांबाई को सब परिस्थिति से परिचित कराते हुए वापस लौट चलने के लिये अत्यन्त आग्रह पूर्वक अनुरोध किया। मीरांबाई के लिये यह धर्म सङ्कट हो गया। अब उसकी इच्छा द्वारिका छोड़ कर और कहीं भी जाने की नहीं थी। वहीं सत्संग-भजन कीर्तन करते हुए अन्तिम क्षण में सदा के लिये प्रभु की परम कृपा का सौभाग्य पाने को ही अब उसकी एक मात्र इच्छा थी।

आनंद स्वरूप की प्राप्ति—सारूप्य मुक्ति

मीरांबाई ने जब उन लोगों का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया तब जागीरदार, राजकर्मचारी, ब्राह्मणादि प्रजाजनों ने सत्याग्रह आरम्भ किया। जब तक मीरांबाई वापिस न लौटेगी तब तक अनशन करने की उन्होंने प्रतिज्ञा ले ली और वहीं धरना देकर बैठ गये। मीरांबाई ने सबको बहुत समझाया परन्तु सब व्यर्थ हुआ। अन्त में मीरांबाई ने सब को कहा कि इस परिस्थिति

में मेरे कर्त्तव्य के लिये मैं निज मंदिर में जाकर श्री द्वारिकाधीश की आज्ञा ले आती हूँ, तब तक आप लोग यहीं भजन करते रहें।

यह कहकर मीरांबाई निज द्वार के भीतर चली गई और द्वार बन्द कर दिया। भगवान् से प्रार्थना की—हे मेरे श्याम-सुन्दर! जीवन भर विरहाग्नि में दहकती रही अब तो नाथ पधार कर इस जन्म-जन्म की आपकी दासी को कण्ठ लगाओ प्यारे! अब क्यों देर हो रही है नाथ!

पश्चात् उसने अपने पैरों में घूँघरू बाँध लिये। हाथ में करताल ली और पद गाते हुए नृत्य करने लगी। उसके स्वरों में करुणा, प्रेम, शृङ्गार आदि भावों की झलक थी। उसके नृत्य में हृदय का उफान था। अन्तिम 'मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मिल बिछुड़न मत कीजे हो' यह चरण उसने गाया तब उसके नेत्रों में प्रेमाश्रु आये, कण्ठ गद्गद् हो गया, नेत्रों में आतुरता और उसके रोम-रोम में दिव्यता छा गई। उसकी प्रिय मिल-नोत्कण्ठा चरम सीमा तक पहुँच गई। तब सहसा श्री द्वारिका-धीश की पाषाण-प्रतिमा चैतन्यमयी हो गई। साक्षात् श्री कृष्ण-चन्द्र प्रकट हो गये। उसी क्षण आपही दीपक प्रकट हो गये, शङ्ख ध्वनि तथा घड़ियाल व घंटानाद होने लगा। अंतरिक्ष से पुष्प-वृष्टि होने लगी। मीरांबाई को अपने प्यारे की बाँसुरी की मधुर तान सुनाई दी। वहाँ फैले हुए दिव्य प्रकाश में एक टक प्रभु को निहार रही थी कि भगवान् ने हाथ पसारे व साथ ही शब्द सुनाई दिये-आओ मेरी प्यारी मीराँ! दूसरे क्षण दौड़कर वह प्रभु के निकट पहुँच गई और श्यामसुन्दर ने उसे अपने हृदय से लगा लिया—अपने दृढ़ बाहुपाश में बाँध लिया। अपने

प्रियतम बाँकेबिहारी की ओर बाँकी दृष्टि से निहारती हुई मीरां-बाई मुसकरा रही थी। वह परमानन्द विभोर होकर अपनी सुध-बुध खोती जा रही थी। ज्यों जल में गिर जाने पर लवण धीरे-धीरे जल के साथ एक रूप हो जाता है त्यों मीरांबाई शनैः शनैः प्रभु में विलीन हो गई। प्रभु ने उसे अपने सारे अङ्गों में समा लिया। भगवती मीरांदेवी की अवतार-लीला समाप्त हो चुकी, उसने सारूप्य मुक्ति पा ली अर्थात् अपने आनंद-स्वरूप को प्राप्त हो गई।

उसी क्षण मानों आँधी के प्रबल झोंके से मन्दिर के कपाट खुल गये। झालर-घण्टा, घड़ियाल, शङ्खादि बजने की व दुन्दुभी झड़ने की ध्वनि सुनाई देने लगी। लोग इस चमत्कार से—भक्त की भक्ति के अपूर्व प्रभाव से—किंकर्त्तव्यविमूढ़ से हो गये थे। पुजारी को सर्व प्रथम प्रेरणा हुई और ज्योति प्रकटा कर उसने भगवान् की आरती उतारी।

अन्त में सबने 'भगवती मीराँ माता की जय' त्रिवार जय-कार किया जो चहुँ ओर गूंज उठा।

सहसा प्रभु के स्वरूप की ओर लोगों की सूक्ष्म दृष्टि हुई तब उनके ध्यान में आया कि मीरांबाई की साड़ी का पल्ला, प्रभु के मुख कमल के नीचे एक ओर बगल के पास लटक रहा था। सब उपस्थित भक्त जन समझ गये कि मीरांबाई अब तो ऐसे स्थान पर पहुँच गई है कि फिर कभी वापस आने की नहीं। भक्त-भगवान् एक रूप हो गये हैं। वे विवश होकर अपने देश लौट गये।

मीराँ को निज लीन किय,
नागर नन्दकिशोर ।
जग प्रतीत हित नाथ मुख,
रह्यो चूनरी छोर ॥

बोलो भक्त और भगवान् की जय ।

मीरांबाई के काव्य पर साधारण दृष्टि

★

काव्यालापाश्च ये केचिद् गीत काव्यखिलानि च ।
शब्द । मूर्तिधरस्यैते विष्णोरंशाः महात्मनः ।।

जो भी काव्यालाप तथा समस्त गीत पद्यादि हैं, वे सब शब्द मूर्तिधारी महात्मा—भगवान् विष्णु के ही अंश हैं ।

कान्पृच्छामः सुधा स्वर्गे निवसामो वयं भुवि ।
किंवा काव्यरसः स्वादुः किंवा स्वादीयसी सुधा ।।

सुधा स्वर्ग में है और हम लोग धरातल पर रहते हैं तब किसे पूछें कि काव्य में अधिक रस है या सुधा अधिक स्वादयुक्त है ।

मनुष्य के हृदय में जब करुणा, वीरता आदि रसों के और प्रेम, आनन्द व भक्ति आदि के सुख वा दुःख भरे भाव उमड़ते हुए जब अपने में नहीं समाते—उत्ताल तरङ्गों में लहराने लगते हैं, तब उसके मस्तिष्क में एक अद्भुत सृजन—शक्ति का प्रादुर्भाव होता है जो अनायास ही एक न्यारी व थोड़े ही शब्दों में बहुत भावों को ली हुई परिभाषा में व्यक्त होने लगती है । उस परिभाषा को ही कविता कहते हैं ।

अधिकतर संत-महात्मा, उपदेशक व भक्त जन आदि इसी प्रेरणात्मक परिभाषा में—कविता-(पद्यादि) में अपने उपदेश, वाणी व भगवद्लीला आदि ग्रथित कर गये ।

मीरांबाई के भी, अपने अनुभव, उपदेश, भगवद्लीला, अपनी विरहमयी साधना के भाव, प्रार्थना एवं व्रजभाव में तन्मय होकर किये हुए प्रलाप आदि सब पदों में ही वर्णित हैं ।

गुजराती भाषा की एक कहावत है कि 'ज्यां न पहोंचे रवि त्यां पहोंचे कवि'। जहाँ सूर्य की गति नहीं वहाँ कवि की गति होती है अर्थात् पृथ्वीतल पर रहते हुए भी स्वर्गादि लोकों में भी कवि की गति है। स्थूल जगत में रहते हुए भी उसका सूक्ष्म सृष्टि से सम्बन्ध है। ऐसा व्यापक बुद्धिमान कवि, असाधारण भाव एवं कल्पना के पंख फैलाकर ऊँची उड़ानें भरता है।

कवि में अद्भुत सामर्थ्य होता है। वह भावनात्मक एवं शाब्दिक सृष्टि का निर्माता है। यदि वह भावुक हृदय, एवं भक्त-कवि होगा तो भगवान् को भी वश में कर लेता है।

प्राचीन कवियों की वन्दना करते हुए कवि भवभूति ने अपने उत्तररामचरित के प्रारम्भ में यह प्रार्थना की है:—

"विन्देम देवतां वाचममृतामात्मनः कलाम्।"

'अमृत स्वरूपा और आत्मा की कला ऐसी देवगिरा को हम पावें।'

अर्थात्—

कविता अमृत स्वरूप है, क्योंकि लौकिक जगत से परे किसी अलौकिक जगत में विचरता हुआ कवि, एक ऐसी अपूर्व भावना और कल्पनाओं की रस भरी व, चैतन्यमयी सृष्टि का निर्माण करता है कि जिसका संजीवनी के समान लोक मानस पर अमोघ प्रभाव पड़ता है।

कविता आत्मा की कला है क्योंकि इस नश्वर जगत के परे उस अविनाशी सत्ता का वह संकेत करती है और आत्मा परमात्मा संबन्धी धार्मिक भावों एवं तत्वों को हमें प्रदान करती है जिससे मानव-जीवन आत्मोन्नति की ओर अग्रसर होता है।

कविता देववाणी इसलिये है कि वह आदिकाल से देवी सरस्वती के रूप में पूजी जाती है क्योंकि वह दिव्य भावना, दिव्य ज्योति एवं दिव्य ज्ञान का साक्षात्कार कराती है।

काव्य, नाटक, गीत, भावगोत एवं गद्यगीत आदि सकल साहित्य के रचनाकार व कवियों की उक्त प्रवृत्ति का मूल उद्देश्य 'स्वान्तःसुखाय' वा आत्मानुभूति की भावना को लेकर होता है अथवा यों कहा जाय कि वास्तव में स्वानुभूति के आधार पर ही साहित्य का निर्माण होता है, उसकी अभिव्यक्ति का आधार भले ही भिन्न हो। अनुभूतियों से प्रेरणा पाकर की गई काव्य, नाटकादि रचना अथवा अभिनय, पाठक वा प्रेक्षक की अनु-भूतियों के साथ एक रूपता को पाने से हृदय में एक अपूर्व सुख का अनुभव होता है। वह साहित्य ही क्या जो आत्मानुभूति-प्रेरित न हो और जो जन-मानस को प्रभावित न कर सके।

ईसवी सोलहवीं शताब्दी में हिन्दी साहित्य की श्रेष्ठ रचनाएँ हुईं जिनमें वैष्णव साहित्य और विशेष कर कृष्ण भक्ति के साहित्य का अधिकतर ब्रजभाषा में निर्माण हुआ।

बारहवीं शताब्दी में बंगाल के रसिक-भक्त-कवि जयदेव ने 'गीत गोविंद' की रचना की जिसमें श्री राधाकृष्ण की मधुरलीला के, संयोग-वियोगादि विलक्षण भावों से परिपूर्ण, संगीतमय सुन्दर छन्दों द्वारा अपूर्व, उज्ज्वल शृङ्गार रस की लहरें बहादी। उस सुधा लहरियों के मादक बिन्दुओं को पीकर, गुजरात में नरसिंह मेहता, बंगाल में चण्डीदास तथा महाप्रभु श्री कृष्णचैतन्य, विहार में विद्यापति, ब्रज में सूरदासादि और मारवाड़-मेवाड़ में मीरांबाई आदि देश-देश के रसिक भक्तों ने, प्रेमोन्मत्त होकर उस

राधाकृष्ण लीला का मधुर रस सर्व साधारण जनता को भी पिलाया।

मीरांबाई के पहले विद्वद्वर महाराणा कुँभाजी (मीराँ के श्वसुर-महाराणा संग्रामसिंह के पितामह) ने 'गीत गोविंद' पर 'रसिक प्रिया' नामक संस्कृत में टीका लिखी थी। सारांश यह है कि उस ब्रजभावात्मक प्रेम की यहाँ तक पहुँची हुई सुधा लहरी ने मीराँ को भी दिव्य रस से सिञ्चित किया हो, इसमें संदेह नहीं। फिर वह तो पूर्व जन्म की गोपी-श्यामसुन्दर की जन्म-जन्म की दासी थी। उसके पदों में भी ये सब भाव व्यक्त हैं।

मीराँ सगुणोपासिनी थी। उसकी उपासना विष्णु के कृष्ण स्वरूप की थी। उसके नारी-हृदय में दाम्पत्य भाव था इसलिये कृष्णानुराग के आवेश में उसके पदों में दाम्पत्य-रति की ही विशेष रूप से अभिव्यक्ति हुई है। श्यामसुन्दर ही उसके परम प्रियतम-प्राणनाथ और स्वामी हैं और उसकी भाव सृष्टि में वही उनकी परम प्रियतमा, राधा अथवा गोपी है।

भले ही कहीं साहित्यिक दृष्टि से मीराँ की कविता बहुत ऊँची नहीं मानी जाती हो अथवा सूर वा तुलसी की समानता न कर सकती हो परन्तु उसके पदों में जो नारी-सुलभ कोमलता व हृदय की मीठी तथा सरस वेदना भरी है वह औरों में नहीं। हृदय से निःसृत उसकी सरल और सहज वाणी में ऐसा विलक्षण चमत्कार है कि सामान्य जन-मानस तक उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। मीराँ के अतिरिक्त ऐसा कोई विरला ही भक्त-कवि होगा जिसके पद (वाणी) समस्त संसार के कोने कोने में गुंजित होते हों। मीराँ के पद आत्मानुभूतियों से परिपूर्ण होने

के कारण ही लोक-मानस को एवं भावुक हृदय को हठात् विमुग्ध कर देते हैं।

मीराँ ने कोई कविता बनाने की चेष्टा नहीं की परन्तु उसके प्रेम के उफान ने अनायास ही कविता का रूप ले लिया जिसमें सरसता, प्रासादिकता, मधुरता, कोमलता, सरलता एवं तन्मयता आदि ओत-प्रोत होकर प्रास, अनुप्रास, उपमा, अलंकार, उत्प्रेक्षा, दृष्टांत एवं रूपक इत्यादि गुण आपही उसकी कविता में उतर आये हैं। उसकी भावना लोक की अनुभूतियाँ सहज स्फुरित होकर शब्द रूप साकार होकर पद बन गये हैं। उसके पदों में संयोग व वियोग भी है जिसमें प्रतीक्षा, अन्तर्व्यथा, विह्वलता और प्रेम की भाव-तद्रूपता भी व्याप्त है क्योंकि श्री चैतन्य-महाप्रभु के समान मीराँ में भी विरह के भाव और अवस्थाएँ प्रकट होती रही थीं।

जोगिनी-सी मीराँ ने संसार को त्याग कर भी सांसारिक भावों में सरस शृङ्गार-उज्ज्वल रस परिपूर्ण विरह-मिलन का दिव्य गान गाया। वैरागिनी व तपस्विनी होकर भी उसकी साधना का मूल अंग प्रेम था।

परमात्मा आनंदस्वरूप है। प्राणिमात्र उस आनंद की प्राप्ति के लिये चेष्टा करता है, उसी के अनुसन्धान में लगा हुआ है। परमात्मा अनंत है और उसकी सृजन-संहारात्मक प्रकृति लीला भी अचिन्त्य है। बुद्धिमान व विचारवान् मानव अपनी सीमित बुद्धि-शक्ति द्वारा उस असीम को पाने की व उसके रहस्य को समझने की लालसा रखता है परन्तु यह उसके लिये एक जटिल समस्या हो जाती है। गुणातीत को भला गुणाश्रित मन, बुद्धि

अथवा तर्क द्वारा समझना कैसे संभव हो सकता है। फिर भी येन केन प्रकारेण प्राणी जैसा भी उसका वर्णन स्वतन्त्रता पूर्वक करता जाता है। यह निर्गुणवाद ही रहस्यवाद है।

संत कबीरादि मध्यकालीन संतों की वाणी में अधिकतर इसी रहस्यवाद की झलक दिखाई देती है। मीराँ के पदों पर भी यह प्रभाव है। परन्तु उसका रहस्यवाद शुष्कता को लेकर नहीं अपितु मधुर रस से छलकता हुआ व्यक्त होता है जिसमें उसके प्यारे श्यामसुन्दर की माधुरी प्रतिबिम्बित हुई दिखाई पड़ती है।

मीरांबाई के काव्य में, गोपी व राधाभाव के उलाहना तथा व्यङ्ग, अद्भुत कल्पनाशक्ति, करुणा से हृदय को द्रवित कराने वाला प्रबल विरहभाव, हृदय में खलबली मचाने वाला भावना प्रधान लीला वर्णन तथा प्रभावोत्पादक उपदेश आदि विविध भाव प्रचुरता एवं भाव-नाविन्य दिखाई देता है।

मीराँ के पदों में शांत, करुणा, श्रृङ्गारादि रसों का समावेश है किंतु विरह (करुणा) रस की प्रधानता देखी जाती है। वास्तव में प्रेम का प्रधान अङ्ग विरह ही है। उसका सारा जीवन भी तो अपने प्रियतम श्री श्यामसुन्दर के प्रेम एवं विरह में ही तड़पते बीता है। उसके पदों में जो रस भरी–मीठी व्यथा है वह ऐसी अनूठी है मानों उसने अपना हृदय ही निकाल कर बाहर रख दिया हो। उसकी उपासना दाम्पत्य भाव की होने से पदों में भक्ति और श्रृङ्गार, दोनों का सम्मिश्रण तो स्वाभा–विक ही है किंतु उसका श्रृङ्गार लौकिक-सा दिखाई देने पर भी अलौकिक व पवित्र है। साथ ही साथ उसमें अनन्त, शाश्वत तथा निर्मल प्रेम की अनोखी झाँकी है। उसके शब्दों में मर्माहत करने की तथा उच्च प्रेरणात्मक शक्ति है।

भक्त सूरदास अथवा अन्य पुरुष कवियों ने गोपियों की भावनाओं एवम् विप्रलम्भ के वर्णन को उतारा अवश्य है परन्तु ऐसा करने में उन्हें अपने पुरुष-मानस में गोपी के माध्यम को अर्थात् काल्पनिक स्त्रीस्वरूप को स्वीकार करना पड़ा है। जब कि मीरांबाई तो नारी ही थी; यही नहीं स्वयं भुक्त-भोगिनी भी थी। उसे इस प्रकार काल्पनिक आधार की कोई आवश्यकता ही नहीं हुई। उसने जो कुछ भी लिखा स्वयं अनुभूत था। अतएव उसकी अनुभूति भरी पद रचना में ऐसी सजीवता व विशेषता आई है जो कि औरों में नहीं। उसकी रचना को पढ़ते-पढ़ते कोई तर्क-वितर्क नहीं होता। एक मात्र मीराँ ही उसमें गोपी-भाव से ओत-प्रोत सी दिखाई देती है।

मीरांबाई के पद परम प्रासादिक होने से सबको इनसे रस व आनंद प्राप्त होता है। सरल होने पर भी ऐसी भाव-गांभीर्यता है कि साहित्य-रसिकों को वे परम रुचिकर लगते हैं। कुछ पदों में ज्ञान–योगादि के ऐसे विलक्षण निर्गुण भाव भरे हैं कि रहस्य–वादियों के लिये भी रसमय होगये हैं। संगीत की दृष्टि से तो ये बड़े ही उच्चकोटि के हैं क्योंकि कविता के साथ-साथ मीरां–बाई का संगीत में भी पूरा अधिकार था अतएव पद भी विविध छंदों एवं तालों में रचित होकर बड़े ही सुन्दर और गेय बने हैं और लोक-प्रिय भी हैं।

मीराँ की उपासना

*

त्रिरूप भङ्ग पूर्वकं नित्य दास नित्य कान्ता भजनात्मकं
वा प्रेमैव कार्यम् प्रेमैव कार्यम् ।। ना० भ० सू० ६६ ।।

तीन (स्वामी, सेवक और सेवा) रूपों को भङ्ग कर नित्य दास भक्ति से या नित्य कान्ता भक्ति से प्रेम ही करना चाहिये, प्रेम ही करना चाहिये ।

प्रेम एक परो धर्मः प्रेम एव परंतपः ।
प्रेम एव परं ज्ञानं प्रेम एव परागतिः ।।

वैसे तो परमात्मा अनन्त है इसलिये उसकी प्राप्ति के साधन भी अनन्त हैं किन्तु ज्ञान, योग, कर्म एवं भक्ति आदि भिन्न साधन की दृष्टि से उपासना दो प्रकार की मानी जाती है, १—निराकार वा निर्गुण उपासना । २—साकार वा सगुण उपासना ।

भक्ति मार्ग-यह सगुण उपासना का साधन है ।

सगुण उपासना में भी अनेकानेक मत-मतान्तर तथा सम्प्रदाय हैं । भगवान् श्री विष्णु के राम व कृष्णादि अवतारों की उपासना वैष्णव धर्म की मानी जाती है । श्री कृष्ण को उपास्य मानने वालों में भी भिन्न-भिन्न भाव व सिद्धान्त हैं । महाप्रभु वल्लभाचार्य ने श्रीकृष्ण की बालस्वरूप की उपासना युक्त पुष्टि-मार्ग स्थापित किया । श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्री राधाकृष्ण के दिव्य भावानुभूतियों के आनन्दावेश व विरहार्णव में डूबते उतराते, कृष्ण-भक्ति का व विशेष कर भगवन्नाम का संसार को दिव्य

सन्देश प्रदान किया। श्री हित हरिवंशजी ने 'श्रीराधावल्लभ' सम्प्रदाय की एक प्रथक् शाखा चलाई जिसमें श्री राधिका जी को विशेष रूप से मान्यता दी गई।

भक्ति मार्ग के श्रवण, कीर्तनादि नवधाभक्ति एवं शान्त दास्यादि पंचभावात्मिका भक्ति के साधनों में से विशेषकर मीराँ जैसी श्री कृष्णोपासिका नारी के लिये तो मधुरभाव—कान्ताभाव ही एक ऐसा साधन उपादेय है जिसमें सभी भावों और सभी रसों का समावेश हो जाता है। इस मधुरातिमधुर दाम्पत्यरति में प्रेम की पराकाष्ठा होकर प्रिया-प्रियतम अथवा भक्त और भगवान्, रसभरी व आनन्दमयी एकरूपता को पाते हैं। बिना प्रेम के तो इस मार्ग में प्रवेश ही नहीं।

श्री गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है,—

'हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रकट होइ मैं जाना॥'

वास्तव में प्रेम ही एक सर्वश्रेष्ठ साधन है। कोई कितना ही क्यों न पांडित्य, कला व गुण सम्पन्न हो पर उसमें यदि प्रेम नहीं तो सब व्यर्थ है। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डनायक परमात्मा-भगवान् एक मात्र प्रेम के ही वश होते हैं, यही क्या प्रेम ही भगवान् है और प्रेम ही आनन्दस्वरूप है। प्रेम का आत्यंतिक उत्कर्ष केवल मधुर-रति में ही होता है।

इस प्रेम के साधन में अहंकार बाधक होता है। निरन्तर दर्शन व मिलन की मधुर लालसा, आशा व उत्कंठा से प्रेम की उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है।

तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव शृणोति
तदेव भाषयति तदेव चिन्तयति॥ (ना.भ. सू.५५)

इस प्रेम को पाकर प्रेमी इस प्रेम को ही देखता है, प्रेम को ही सुनता है, प्रेम का ही वर्णन करता है और प्रेम का ही चिंतन करता है।

दाम्पत्य वा सखी भाव में भी 'तत्सुख सुखित्व' की भावना ही श्रेष्ठ है क्योंकि आत्मसुखेच्छा से प्रियतम से प्रेम करना तथा स्वयं को व प्रियतम को भी सुखी बनाने के लिये प्रेम करना, यह कोई सर्वोत्तम भावना नहीं। इसलिये 'तत्सुखेच्छा' अर्थात् केवल प्रियतम के सुख के लिये ही, तन मन आदि सर्वस्व त्याग पूर्वक, उनसे प्रेम करने की भावना ही मधुर-रति में सर्वोत्कृष्ट है। यह मधुर-रति ही मीराँ की साधना है।

ज्यों मुसलमानों के सूफी-सम्प्रदाय में ईश्वर को माशूक (प्रेमिका) और अपने को आशक (प्रेमी) मान कर साधना की जाती है, त्यों ठीक इसके विपरीत मधुर-रति अथवा कान्ता-भाव में श्री कृष्ण को अपने प्रियतम और अपने को उनकी प्रेयसी सखी अथवा प्राणवल्लभा दासी मानकर उपासना की जाती है। भक्ति मार्ग का यह एक सुन्दर व सर्व-रस-परिपूर्ण श्रेष्ठ साधन है। वैसे नारी को तो इस कान्ताभाव से उपासना करने का जन्मसिद्ध अधिकार है। पर कहीं कहीं पुरुष साधक भी इस भाव से भक्ति करते हैं, कोई प्रच्छन्न रूप से तो कोई स्त्रीवेश को अपना कर प्रकट सखी भाव से।

वास्तव में स्त्री-पुरुष का परस्पर का प्रेम-अनुराग, और सब आकर्षणों से अधिक तीव्र होता है। उसी भाव से प्रियतम से मिलने की जो आवेशात्मक भावना होती है वही मधुर-रति का रहस्य है। सांसारिक भाव स्थूल तक ही सीमित रहता है किंतु

आत्मिक भावना तो, सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्वों में स्वैर संचार करती हुई बिन्दु-सिन्धुवत् अपने मधुरातिमधुर परम आनन्दस्वरूप स्वामी व प्रियतम से तद्रूपता को पाकर ही शेष होती है।

मीराँ की उपासना में उसकी भाव-तद्रूपता, उसके राधाभाव के पदों से प्रतीत होती है। अपने को राधा मानकर उसने विलक्षण भाव-प्रदर्शन किया है। भगवान् श्री कृष्ण की चिर-संगिनी, लीला सहायिका व अभिन्न शक्ति श्री राधा यह और कोई नहीं, समस्त प्रेम और शृङ्गार केन्द्रित होकर घनीभूत हुआ स्वरूप ही है।

मीराँ के प्रियतम प्यारे श्री कृष्ण हैं। उसकी उपासना के उपकरण हैं, लौकिक दीखता हुआ भी अलौकिक प्रेम, दिव्य शृङ्गार एवं मिलन-वियोग जनित आनन्दानुभूति व विरहोन्माद।

मीराँ के पदों में पूर्व-जन्म का संकेत

१—विरह में—पूरब जनम को कंत, पूर्व जन्म के साथी, पूरबला संजोग, आदि अंत का मित्र।

२—स्वजीवन में—गिरधर मिल्या पूर्व जनम के भाग, आज काल की मैं नहीं राणा जद यो ब्रह्मांड छायो।

३—प्रार्थना विनय में—पूर्व जन्म की प्रीत हमारी।

४—निश्चय में—पूर्व ले घरबास, भव भव का भरतार, प्रीत पुराणी, आदु बैरागण नार, जनम जनम भरथार, भाग पूर्व रो जागो।

५—वर्षा में—पुरबलो वर।

६–प्रेमालाप में–पूर्व जन्म के बोल ।

७–दर्शनानंद में–मारा ओलगिया घर आया ।

८–ब्रजभाव में–पिछले जनम का कौल, पूरब जनम की मैं हूँ गोपिका अध बिच पड़ गयो झोल रे ।

१४–जोगी में–पूर्व जनम का कौल, पूरब जनम का लेख ।

इत्यादि······ ॥

प्रभु के प्रति पतिभाव के शब्द प्रयोग

१–विरह में–पिया बिन, हरि सेज सीधासी, प्यारो-कन्त, स्वामी म्हारा, नाथ मैं थारी ।

२–स्वजीवन में—दुलहो श्री भगवान, गिरधरजी भरतार, वर पायो गिरधारी, मीराँ उनकी नार, गिरधर साँचा पति छै, गिरधर सेजाँ आया ।

३–प्रार्थना-विनय में—प्रीतम प्यारा, थाँरी होय के······।

४–निश्चय में—वर वरिए साँवरो, पिव के पलंगा जा पौढूँगी, अखंड वर ने वरी, वर पायो छे रूडो, श्यामसुन्दर भरतार, परणीशुं प्रभुजी नी साथ, कृष्ण कंथ-भरतार ।

६-प्रेमालाप में–छाने ये वर वर्यो, छोटा कन्त मोहे दीना ।

७–दर्शनानन्द में—साजन घर आया, मन अंछ्या वर पावण ।

८–ब्रजभाव में—वर पायो दीनानाथ, श्री कृष्ण मारो वर छै, गोविन्द वर पाया है, सुरता चाली रे विष्णु वर ने वरवा ।

९–सत्संग-उपदेश में–पिया मुंडे बोलो, साँवरिया वरनी साथे ।

१२—नाम-माहात्म्य में—मीराँ दासी रावली अपनी कर जानी हो ।

१३—होरी में—अश्यो वर पायो किशोरी, प्रीतम के सँग होरी गाऊँ ।

१४—जोगी में—मैं पतिवरता पीव की हो, मोल लयी चेरी, अपणाँ पिया संग हिल मिल खेलूँ ।

इत्यादि······॥

जनम जनम की दासी होने का भाव

१—विरह में—दासी जनम जनम की, जनम मरण रा साथी, आदि अन्त का मिंत, दासी थारी जनम जनम की, जनम जनम की मैं थारी ।

२—स्वजीवन में—भो भो रो भरतार, जनम जनम रो पति परमेश्वर ।

३—प्रार्थना विनय में—जन्मो जन्म नी दासी, जनम जनम की दासी तेरी, जनम जनम रा संगी॥

४—निश्चय में—भव भव का भरतार आदि ।

६—प्रेमालाप में—मैं तो दासी थांरी जन्म जन्म की ।

८—ब्रजभाव में—जनम जनम के नाथ, जनम जनम की दासी ।

९—सत्संग-उपदेश में—दासी कर राखिया, स्याम तुम्हारी दासी ।

१३-होरी में—जनम जनम की चेली आदि ।

१४-जोगी में—जनम जनम को साहिब मेरो, वाही सों लौं लागी ।

१५-मुरली में—मैं दासी तोरे जनम जनम की ।

इत्यादि······।

——
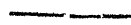
मीरांबाई की योग्यता

मीरांबाई के नाम से केवल भारत ही नहीं अपितु सारा विश्व परिचित है। बड़े बड़े उच्चकोटि के प्रमुख-संत-महात्माओं में उनका स्थान है। यही नहीं, यह कहना भी अतिशयोक्ति नहीं होगी कि मीरांबाई जैसी लोक मान्यता कदाचित् ही किसी सन्त को मिली हो।

अवश्य ही चैतन्य महाप्रभु और मीरांबाई के जीवन की कई घटनाओं में अद्भुत साम्य पाया जाता है। जैसे चैतन्य महाप्रभु को श्री कृष्ण का अवतार कहा जाता है तो मीरांबाई राधा अथवा गोपी का अवतार मानी जाती है। दोनों ही के जीवन में श्री कृष्ण भक्ति की मधुर भाव की उपासना रही। दोनों ही ने एक ही बार श्री वृन्दावन धाम के दर्शन किये फिर दूसरी बार कभी नहीं गये। ज्यों श्री चैतन्यदेव अन्त तक श्री जगदीशपुरी में ही रहे, त्यों मीरांबाई श्री द्वारिकापुरी में ही रही। ज्यों श्री चैतन्यदेव के लिये कहा जाता है कि वे श्री जगन्नाथ प्रभु में अंतर्हित हो गये, त्यों मीरांबाई भी श्री द्वारिका-धीश में समा गई। दोनों एक ही समय में व प्रायः समान वर्ष संसार में रहे। श्री चैतन्य महाप्रभु गृह त्याग कर सन्यास लेकर विचरते रहे, त्यों मीरांबाई भी स्वजनों को छोड़कर विचरती रही। दोनों ही कृष्ण प्रेम में, विरह में रोये, तड़पे, बिलखे और छटपटाते रहे। दोनों ही प्रेम के अवतार थे।

यह सब कुछ होते हुए भी श्रीचैतन्यदेव की तथा तत्साम्प्र-दायिक साहित्य की प्रसिद्धि विशेषकर उनके तत्साम्प्रदायिक अनुयायियों में तथा पढ़े लिखे व धार्मिक साहित्य में रुचि रखने वाले लोगों में ही है, परंतु मीरांबाई की तो शिक्षित व भक्त समाज के साथ-साथ देश-प्रदेश के साधारण अशिक्षित जन-समाज आबाल वृद्ध नर-नारियों में भी फैली हुई है।

कई प्रधान तीर्थ स्थानों में मीरांबाई की स्मृति में मंदिर बने हैं और श्री कृष्ण की मूर्ति के साथ उनकी मूर्ति की भी पूजा होती है। विश्व की किसी भी भाषा का धार्मिक साहित्य ऐसा नहीं होगा जिसमें मीरांबाई की चर्चा न हुई हो। विद्वद्-समाज और हिन्दी साहित्य क्षेत्र में मीरांबाई के पदों और रचनाओं का बहुत आदर है। शास्त्रों का सार तथा ज्ञान, रहस्य भक्ति, प्रेम आदि भाव अपने सरल पदों में लाकर उन्होंने गागर में सागर भर दिया है। सारे भारत में उनके संगीतमय पदों की रसभरी तरंगे लहराती हैं। भारत का क्वचित् ही कोई कोना बचा होगा जहाँ उनका कीर्ति-सौरभ नहीं पहुँच पाया हो। संत समाज और भक्त जनों की भजन मंडलियों में ढोलक, खंजरी और तम्बूरे के साथ बड़े ही प्रेम से उनके पद गाये जाते हैं और घर घर में महिलाओं के कोमल कंठ द्वारा उनका सुमधुर पद-संगीत सुनाई देता है। गुजरात में आश्विन नवरात्रि की शरद् रात्रियों में महिला समाज द्वारा गरबा-उत्सव मनाकर श्री आदि शक्ति-देवी कालिका माता को रिझाने की जो सुन्दर, आकर्षक और मंगल धार्मिक प्रथा है उसमें भी मीरांबाई के पदों व गरबियों का अपूर्व स्थान है। उनकी गरबियों को तो वहाँ इतनी अधिक लोकमान्यता प्राप्त है कि उनके बिना उत्सव में पूरा रंग ही नहीं जम पाता। शूद्रादिकों के समाज में भी एकतारा व मंजिराओं के साथ उनके निर्गुण आदि भावों के पद बड़े ही चाव से गाये जाते हैं। सारांश यह है कि धनी-गरीब, गृहस्थी-त्यागी, नर नारी एवं आबाल वृद्ध सभी में मीरांबाई के पद अत्यन्त लोक प्रिय हुए हैं।

मन्दिर-मन्दिर में 'मीराँ के प्रभु गिरधर नागर' छाप वाले पदों की, भक्ति और प्रेम भरी मीराँ की वाणी गूँजती है और जिह्वा-जिह्वा उनकी लीला-गुण-गान करती है। मीरांबाई के

पदों को गा-गाकर अनेकों जीव इस भवसागर से तर गये, तर रहे हैं और तरते रहेंगे।

मीराँ प्रभु की अनन्य भक्त तो थी ही पर साथ में वह बड़ी बुद्धिमती व चतुर भी थी। कहा जाता है कि एक बार चित्तौड़ के राज दरबार में किसी नरेश द्वारा भेजा हुआ दूत आया और एक पत्र राणा को दिया। राणा संग्रामसिंह ने पत्र खोलकर देखा तो उसमें केवल 'सा' यह अक्षर लिखा हुआ था। राणा की समझ में कुछ नहीं आया। उसने प्रधान मंत्री से पूछा पर उसकी भी समझ में नहीं आया। युवराज भोजराज तथा प्रजाजनों से भी पूछा गया पर कोई उसे समझ न सके। तब राणा ने अपनी पुत्रवधू मीराँ के पास इसे भेजा। मीरांबाई ने उसे पढ़कर कुछ विचार कर कहा कि जिस राजा ने यह पत्र भेजा है वह राणा से मिलना चाहता है। दर्शन की लालसा प्रकट करते हुए 'सा' यह अन्तिम अक्षर लिखा है। राणा प्रसन्न हो गये और पत्र भेजने वाले राजा को भी उत्तर मिलते ही पूर्ण विश्वास हो गया कि राणा के राज्य में बुद्धिमानों की कोई कमी नहीं।

ज्यों मेवाड़ में प्राचीन काल से यह प्रथा चली आ रही है कि राखी (रक्षाबन्धन श्रा. शु. १५) के दिन श्रवणकुमार का चित्र लोग अपने गृह द्वार पर चिपका कर अथवा बनाकर उसकी पूजा करते हैं त्यों ऐसा सुना जाता है कि मेवाड़ में लगभग ४०-५० वर्ष पहले राधा अष्टमी के दिन मीराँ तथा उसके गिरिधर के चित्र की घर-घर पूजा होती थी।*

सङ्गीत शास्त्र में जो 'मियाँ का मल्हार' नामक राग प्रसिद्ध है उसके लिये कहते हैं कि 'मीराँ का मल्हार' यह मूल नाम था जो घिसते घिसते 'राँ' का 'याँ' अपभ्रंश रह गया।*

---

*उपर्युक्त बातें मध्यभारत के प्रसिद्ध साहित्यकार पं० श्री माखन लाल जी चतुर्वेदी से विदित हुई हैं।

जिसके नाम के पीछे मेवाड़ देश संसार में मीरांबाई के देश के नाम से प्रसिद्ध है, उस राजकुल रमणी रत्न मीरांबाई की प्रेम और भक्ति भरी अमरगाथा के अंश को पृथक् कर लेने पर तो वीर प्रसविनी मेवाड़ भूमि का इतिहास अधूरा और एकांगी रह ही जायगा। अपने अद्भुत पराक्रम से शत्रु के कलेजों का कँपाने वाले और राष्ट्र के लिये हँसते हँसते अपने को बलिवेदी पर चढ़ा देने वाले वीरों की तथा बड़े साहस और प्रसन्नता पूर्वक धधकती अग्नि ज्वालाओं में कूद कर जौहर करने वाली मेवाड़ी वीराङ्गनाओं की अपूर्व गाथाओं से भरे हुए, मेवाड़ के इतिहास में, देवी मीरांबाई का स्थान भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राजसत्ता द्वारा बार-बार प्राणघातक-हिंसात्मक प्रयोग किये जाने पर भी काया वाचा मनसा अहिंसात्मक भावों को अपना कर अपने सत्याग्रह से विचलित न होने वाली, तथा संसार की तमोगुणी व मृत्यु से भी अधिक त्रासदायक उग्र-दावाग्नि की भयंकर लपटों के बीच निर्भय और अडिग रहकर जीवन-यापन करने वाली मीरांबाई की दिव्यता उन वीरों तथा वीरांगनाओं से किसी प्रकार कम नहीं है।

मीरांबाई की प्रतिभा अद्भुत थी। वह पढ़ी लिखी थी। संस्कृत भाषा का उसे पर्याप्त ज्ञान था। गीता-भागवत का उसका अभ्यास अधिकार पूर्ण था एवं उसका संगीत शास्त्र का अभ्यास भी चरम सीमा तक पहुँचा हुआ था। भिन्न-भिन्न देशों में प्रवास व तीर्थ-पर्यटन के काल में तथा अधिकतर भिन्न भाषा-भाषी साधु-सन्तों के सत्संग से उसकी गुजराती, हिन्दी एवं ब्रज आदि की भाषाओं में भी पूरी गति थी।

द्वितीय खंड

*

मीराँ के समस्त पदों पर भूमिका

*

मीरांबाई के पदों को विभिन्न भावों के अनुसार १६ विभागों में विभाजित किया है। पद संख्या के साथ विभागों का क्रम इस प्रकार है:—

विभाग संख्या	विभाग नाम	पद संख्या	विभाग संख्या	विभाग नाम	पद संख्या
१	विरह	१६२	९	सत्संग-उपदेश	९६
२	स्वजीवन	८१	१०	अभिलाषा	१६
३	प्रार्थना-विनय	११७	११	सत्गुरु-महिमा	२२
४	निश्चय	९३	१२	नाम-माहात्म्य	२४
५	वर्षा	४१	१३	होरी	४७
६	प्रेमालाप	६५	१४	जोगी	३३
७	दर्शनानन्द	६५	१५	मुरली	३८
८	व्रजभाव	३७८	१६	प्रकीर्ण	३४

१६ विभागों में कुल पद १३१२ हैं जिनमें गुजराती भाषा के २६७ हैं।

प्रत्येक विभाग के प्रारम्भ में, उसके भावों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने वाली भूमिका भी दी गई है।

पदों की भाषा

मीरांबाई के पद भिन्न भाषाओं में देखने को मिलते हैं। उनका पीहर मेडता और सुसराल चित्तौड़ होने से मारवाड़ी,

मेवाड़ी अथवा राजस्थानी भाषा में सबसे अधिक पद होना तो स्वाभाविक ही है। इसके अतिरिक्त श्री द्वारिकापुरी जाते समय गुजरात में होते हुए स्थान-स्थान पर ठहरने व रहने से तत्प्रादेशिक प्रभाव के कारण बहुत से गुजराती भाषा के पद भी पाये जाते हैं। कई पद ब्रजभाषा व हिन्दी के भी हैं। कहीं किसी पद पर पूर्वी व पंजाबी भाषा की छाया भी देखी जाती है जो कि गाते-गाते शब्दों के घिसते जाने से गाने वाले की मातृ-भाषा में आपही ढल कर आई हुई प्रतीत होती है।

मीरांबाई की रचनाएँ

१ नरसीजी का माहेरा	२ गीत-गोविंद की टीका
३ राग-गोविंद	४ सोरठ के पद
५ राग-मल्हार	६ गरबी गीत
७ राग बिहाग	८ फुटकर पद

उपर्युक्त रचनाएँ मीरांबाई की स्वकृत मानी जाती हैं परंतु सभी उपलब्ध नहीं। नरसीजी का माहेरा, सोरठ के पद, गरबी गीत व राग विहाग के एवं फुटकर पदों में से कुछ अंश पाया जाता है।

राम

महात्मा श्री रामानन्द के शिष्य कबीर, दादूदयाल व रैदास आदि संतों की निराकार-घट-घट व्यापी राम की उपासना के कारण उनकी वाणी में प्रचलित 'राम' आदि शब्दों का प्रभाव मीराँ के पदों पर भी पड़ा जिससे उसके पदों में कई स्थान पर 'राम' शब्द आया है—यथा—

राम मिलण के काज, राम मिलण को घणो उमावो, राम रिझाऊँ, राम-खुमारी, राम मिलण की आस, राम मिलन कद होय, रमताराम, मेरो मन राम हि राम, राम रसिया, रमैया, राम नाम रस पीजै, राम रतन धन, राम नाम की जहाज, आदि-आदि ।

संत महिमा

श्री कृष्ण के सगुण रूप की व मधुर-रति की मीराँ की उपासना थी परन्तु उसके मूल में सत्संग, संत समागम की दृढ़ श्रद्धायुक्त अखंड साधना थी । इसलिये उसके पदों में यत्र तत्र साधु संतों की महिमा के शब्द आये हैं यथा—

रमस्याँ साधां री साथ, साध हमारे सिर धणी साधू मायर बाप, मीराँ की प्रीत लगी सन्तों से, पीहरियो साधां मांय, साधु हमारी आतमा, साधूडां रे संग सुख पास्यां, संतन पर तन मन वारौं, साधां को मंडल सुहावणो, सेवा करस्यां साध की, साधु वरणे वास, संतनी साथे फरिये, साधां संग रहूँगी, संतन ढिंग बैठि बैठि लोक लाज खोई, साधाँ के संग मैं भटकी, रामजी रा साधवा, साधु ही पीहर-सासरो, रमस्यां साधां री लार, म्हारै साधां रो इक्त्यार, सब संतन के मन भाई, 'साधू आये पावणा, मीराँ तो संतों में मिल गई, आदि आदि ।

हरिजन

सत्संगी वृत्ति वाले भक्त जनों व कहीं संतों के अर्थ में मीराँ ने कहीं-कहीं 'हरिजन' शब्द का प्रयोग किया है यथा—

हरिजना ने हरि मिले, हरिजन हरि ने ओलखे, मीराँ कूँ हरिजन मिल्या, हरिजन मिलावौरी, हरिजन धोबिया, टलशे हरिजनां नां अंतर ना उचाट, आदि आदि।

मीराँ के पदों में उल्लिखित देवी-देवता, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवतानुत राम व कृष्ण के एवं प्राचीन, मध्यकालीन संतों तथा तीर्थ स्थानों के नाम व प्रसंगादि—

पौराणिक देवी-देवता व भक्तादि—सरस्वती, नारद, प्रह्लाद, अजामील, गणिका, ध्रुव, बलि, वामन, नरसिंह, मार्कण्डेय, सनकादि, शुकदेव, हरिश्चन्द्र, गजराज, विट्ठल, श्री अंबाजी आदि।

रामायण—राम, सीता, भरत, अहिल्या, गिद्ध, शबरी, आदि।

महाभारत—पाण्डु, अर्जुन, द्रोपदी, द्रोण, विदुर, भीष्म, भँवरी अंडा प्रसंग आदि।

श्रीकृष्ण लीला सम्बन्धी—ऊखलबंधन, कालीय मर्दन, कुब्जा कंस, गोवर्धन धारण, राधा, पूतना, चन्द्रावली, सत्यभामा, रुक्मिणी, ललिता, सुदामा, शिशुपाल, रासलीला, चीरहरण, उद्धव-गोपी प्रसंगादि।

प्राचीन भक्त—गोपीचन्द, भर्तृहरि, जयदेव, रंकाबंका, पुण्डरीक, बोडाणा।

मध्यकालीन सन्त—कबीर, करमाबाई, नरसी भगत, कुँवर-बाई, नामदेव, पीपा, रैदास, सदना, सेनभक्त, धनाभगत, श्री चैतन्य महाप्रभु, तुलसीदास आदि।

तीर्थादि—गङ्गा, यमुना, जगन्नाथ, डाकोरादि।

प्रभु वाचक नाम

मीराँ ने अपने उपास्यदेव व परम प्रियतम श्री कृष्ण के बहुत से नामों का प्रयोग किया है, यथा—

कनैया, गिरिधरलाल, गोपाल, घनश्याम, सुन्दरश्याम, श्याम, श्यामसुन्दर, अन्तर्यामी, अहीर, अवधूत, अखंडवर, अविनाशी, ओलगिया, चितचोर, छैलछबीला, जोगी, ठाकुर, धूतारा, नटवर, नंदनन्दन, नखराला, रंगीला प्राण, साँवरा, नावलियो, प्यारे, प्रीतम, पिया, पूरणब्रह्म, बंसीवाला, बनवारी, बाँकेबिहारी, भरतार, मनमोहन, मदनमोहन, मुरलीवाला, रमताराम, रणछोड़, रमैया, रसिक साँवरो, राधावर, व्हाला, हरि, श्रीवृन्दावनचन्द, सतगुरु, साजन, साहिब, साँईं, स्वामी आदि आदि ।

उर्दू शब्द

मीराँ के पदों में, तत्कालीन प्रचलित यावनी भाषा के प्रभाव से कई स्थान पर उर्दू-अरबी, फ़ारसी के शब्द आये हैं, यथा—

अरज, असमानी, कबीला, कुरबान, कुदरत, कौल, खजाना, खलक, खत, खाक, खातिर, खानाजाद, ख्याल, खूबी, खुमारी, गरज, गरीब निवाज, गश्त, गुलाम, जहर, जबाव, जमाना, जिन्दगानी जुलम, जुल्फां, जंजीर, तकसीर, तमाशा, दरिया, दाग, दामन, दिल, दिवानी, दीदार, दुलहा, दौलत, नजर, दुनिया, नादान, नाजिर, नूर पेश, फौज, बेहद, बेहाल, बेदर्दी, बन्दे, बन्दगी, मरजी, मिजाज, मुल्ला, मुजरा, मेहेर, मोहब्बत, यारी, रैयत, वसीला, सिलाम, हरामी, हरदम, हजूरी, हाजिर आदि ।

मीराँ के पदों में भिन्न प्रकार की लगी हुई छाप

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर ।।
मीराँ कहे हरि हरि अविनाशी ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनाशी ।।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर ।।
बाई मीराँ कहे हरि हरि अविनाशी ।
बाई मीराँ के प्रभु हरि अविनाशी ।।

दास मीराँ लाल गिरधर, दासी मीराँ शरण श्याम की, बाई मीराँ की विनती, मीराँ गिरधर, मीराँ कहे, मीराँ दासी श्याम की, मीराँ तो गिरधर के शरणे, बाई मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण व्हाला, मीराँ कूँ प्रभु गिरिधर मिलिया, मीराँ कहे मैं दासी रावरी, मीराँ के प्रभु रामजी, मीराँ ना स्वामी, मीराँ के आनन्द, आदि आदि ।

मीराँ की प्रेम-साधना (पद विभागों के क्रम से)

मीराँ का सारा जीवन अपने प्यारे श्यामसुन्दर के 'विरह' में बीता । अपना सर्वस्व प्रभु को समर्पण करके, भक्ति और प्रेम मार्ग पर जब वह स्वतंत्रता पूर्वक विचरने लगी तब उसके 'स्वजीवन' की परिस्थिति उसकी साधना में बाधक हुई । उसने तब सच्चे हृदय से भगवान से 'प्रार्थना-विनय' की और उस भगवत्कृपा के विश्वास पर दृढ़ 'निश्चय' कर लिया और बाधक

तत्वों की उपेक्षा करती हुई अपने पथ पर अग्रसर होती रही। इन्द्र पूजा के विरोध में श्री कृष्ण द्वारा श्री गोवर्धन पूजा चालू की जाने से ज्यों क्रोधित होकर इन्द्र ने ब्रज पर प्रलय 'वर्षा' की त्यों कुटिल राज सत्ता का विरोध करने से मीराँ पर राणा द्वारा विपत्तियों की परम्परा ढ़हने लगी। फिर भी वह अविचलित रही और उसकी साधना अविच्छिन्न रूप से चलती रही। वह अपनी भावना की सृष्टि में अपने प्रियतम से 'प्रेमालाप' करती रही और निरन्तर इस प्रकार भाव मग्न रहने से, 'ध्याने ध्याने तद्रूपता' के अनुसार उसे ध्यान में, स्वप्न में व कभी जाग्रतावस्था में भी अपने प्यारे का 'दर्शनानन्द' प्राप्त होने लगा जिसकी पराकाष्ठा शनैः शनैः 'बृजभाव' के तादात्म्य में पूर्वानुभूतियों के साक्षात्कार में हुई क्योंकि पूर्व जन्म की द्वापर युग की वह गोपी थी। इस आनन्दानुभव की स्थिति की, सांसारिक कुटिल मनोवृत्तियों से रक्षा के लिये उसने संत समागम एवं संत महात्माओं के 'सत्संग-उपदेश' द्वारा विवेक का आश्रय ग्रहण किया। परन्तु उसकी 'अभिलाषा' कोई साधारण नहीं थी। चिर-विरहावस्था का अन्त करके अपने आनन्दस्वरूप श्यामसुन्दर में समा जाने की थी। इसलिये उसने श्यामसुन्दर को ही अपने परम गुरू मानकर उसी भावावेश में उसने 'सत्गुरू-महिमा' का गुणगान किया। उसकी निरन्तर साधना के फलस्वरूप 'नाम माहात्म्य' के अपूर्व प्रभाव से उसे बाहर भीतर एक मात्र श्यामसुन्दर की ही झाँकी दिखाई देने लगी। तब उस प्रेम-रस की बाढ़ में उसने भावना के झूले पर झूलते हुए अपने प्रीतम के साथ विरह मिलन की 'होरी' खेली। उसके प्राणाधार रसिक

शिरोमणि, सुन्दरवर, श्यामसुन्दर उस राधाभावमयी मीराँ को प्रेम का न्यारा ही रसास्वादन कराने के लिये 'जोगी' के भेष में उसके पास आये क्योंकि वह भी उनके पीछे सर्वस्व का त्याग कर जोगिन जो बन गई थी। इस प्रकार प्रेम रस की पराकाष्ठा में श्री राधाभाव में तद्रूप हो जाने पर उसे श्री वृन्दावन बिहारी का 'मुरली' द्वारा मधुर मिलन का प्रेम सन्देश सुनाई दिया और वह तब अपने प्राणनाथ, श्यामसुन्दर-अपने आनन्द-स्वरूप में विलीन हो गई। श्यामसुन्दर को नाना प्रकार की रस-लीला अनुभव के जो उसके हृदय में 'प्रकीर्ण' भाव थे सभी इस अंतिम प्रय मिलन के आनन्द सुधा सिन्धु में डूब गये। भक्त और भगवान एकाकार हो गये।

कहीं-कहीं मीराँ के पद अथवा पदों के चरण, सन्त कबीर, सूरदास एवं चन्द्रसखी के पदों से व चरणों से मिलते जुलते दिखाई देते हैं।

———

समस्त पदों की
वृहद्-सूची

❀

क्रम संख्या	पद की टेर	विभाग	वि. संख्या	पद संख्या
१	अँखियाँ प्यारी लागी रे	प्रेमालाप	६	३८
२	अँखियाँ में लाली छा	ब्रजभाव	८	५०
३	अँखियाँ श्याममिलन की	विरह	१	७७
४	अखंड वर ने वरी	निश्चय	४	२०
५	अच्छे मीठे चाख चाख	प्रकीर्ण	१६	७
६	अच्छा लेहु ब्रजवासी	ब्रजभाव	८	१४७
७	अजब सलुणी मरधा	,,	,,	२१४
८	अजाण्या माणस नो संग	सत्संग उ०	६	८४
९	अजीये ललाजू आज	ब्रजभाव	८	२५१
१०	अटकी मैं नाहिं रहूँगी	निश्चय	४	५९
११	अणजायो वर वरिये रे हो	,,	,,	४७
१२	अनी होरे रंग बेनी	ब्रजभाव	८	३१९
१३	अपणाँ करम ही का खोट	विरह	१	१३८
१४	अपणा गिरधर कै कारणै	स्वजीवन	२	५९
१५	अपणे करम को वो छै	ब्रजभाव	८	१८९
१६	अपनी गरज हो मिटी	,,	,,	११३
१७	अपने मन को बस करे	सत्संग उ०	६	४१
१८	अब क्यों करे रे मूर्ख	,,	६	३८
१९	अब कोऊ कुछ कहो दिल	निश्चय	४	६६
२०	अब कोऊ कैसे कहो दिल	,,	,,	६७
२१	अब तुम देखो माई	वर्षा	५	२९
२२	अब तेरो दाव लग्यो है	सत्संग उ०	६	६९
२३	अब तो निभायाँ सरेगी	प्रार्थना वि०	३	५२

क्रम संख्या	पद की टेर	विभाग	वि. संख्या	पद संख्या
१६५	कहां बसियो कान्हा	प्रेमालाप	६	४२
१६६	कहीं देखेरी घनश्यामा	ब्रजभाव	८	१०६
१६७	कहेवा देने कहान	"	"	२७४
१६८	कहो तो गुण गाउं	अभिलाषा	१०	१३
१६९	कहो ने उधव गुण	ब्रजभाव	८	१७६
१७०	कहो मनडा केम वारीए	"	"	२७८
१७१	कृपा भई सतगुरू अपने की	सतगुरू म०	११	१
१७२	कृष्ण करो जजमान	प्रार्थना वि०	३	३६
१७३	कठण थया रे माधव	ब्रजभाव	८	७३
१७४	कृष्ण पीऊ मेरी	प्रेमालाप	६	२०
१७५	कृष्ण मेरी नजर	"	"	३६
१७६	कांई थारो लागै छै गोपाल	स्वजीवन	२	४०
१७७	कांई मिस आया छो	ब्रजभाव	८	१८१
१७८	कांकरी मारे धूतारो	"	"	२४
१७९	कागद म्हारो लेजो	"	"	१३१
१८०	कागल कोय लेइ जाय	"	"	५३
१८१	कानजी बिना केम चाले	"	"	३३७
१८२	काना कांकडी मत मार	"	"	३७४
१८३	काना चालो मारे घेर	"	"	५४
१८४	कानी मखे देखन जाउँ	"	"	३६
१८५	कानुडा तारी मोरली	मुरली	१५	२०
१८६	कानुड़े कामण कीधां	ब्रजभाव	८	२८
१८७	कांनुडे ते गेलडा	"	"	३१६
१८८	कानुडे वन मां लुंटी	"	"	२७६
१८९	कानुड़ो मित्र अमारो	निश्चय	४	७८
१९०	कानुड़ो शुं जाणे मारी	ब्रजभाव	८	५८
१९१	कानो भयो रे दूर को	"	"	२३२
१९२	कान्हा कांकडली मत मारो	"	"	३१२

क्रम संख्या	पद की टेर	विभाग	वि. संख्या	पद संख्या
४५४	तुम बिन स्याम सुने	प्रार्थना वि०	३	७३
४५५	तुम रे कारण सब सुख	विरह	१	२५
४५६	तुम सुणौ दयाल	प्रार्थना वि०	३	१४
४५७	तुमसों तो मन	,,	३	७४
४५८	तुम छ्याँही रहो राम	,,	,,	७५
४५९	तुलसाँ की माला हिवड़ै	स्वजीवन	२	४६
४६०	तुही तुही याद साँवरा	प्रार्थना वि०	३	६८
४६१	तू मत बरजे माइड़ी	स्वजीवन	२	३
४६२	तेरा मेरा जियड़ा	,,	२	४७
४६३	तेरी बंसी में कछु टोना	मुरली	१५	३५
४६४	तेरे साँवरे मुख पर वारी	ब्रजभाव	८	६७
४६५	तेरो कहान कालो माई	,,	८	१८
४६६	तेरो कोई नहिं रोकणहार	निश्चय	४	३५
४६७	तेरो गुण ना बिसरूँ	प्रेमालाप	६	२५
४६८	तेरो दिल कुबजाँ सों राजी	ब्रजभाव	८	१३०
४६९	तेरो मरम नहिं पायो	जोगी	१४	१
४७०	तेरो रूप देख लटकी	दर्शनानंद	७	५३
४७१	तेरो रूप देख लटकी	,,	,,	६१
४७२	तैं दरद नहिं जान्यूं	विरह	१	१४३
४७३	तैं मेरी गैंद चुराई	ब्रजभाव	८	२५८
४७४	तोड़ी टूटे नाय सखी	ब्रजभाव	८	१०५
४७५	तोड़ी नहीं टूटे रे मोहन की	ब्रजभाव	८	१४०
४७६	तोती मैना राधा कृष्ण	सत्संग उ०	९	५८
४७७	तोरी साँवरी सुरत नंदलालजी	दर्शनानंद	७	१६
४७८	तोसों लाग्यो नेह रे	विरह	१	२१
४७९	थाँने काँई काँई कह	प्रार्थना वि०	३	१२
४८०	थाँने बरज बरज मैं हारी	स्वजीवन	२	८
४८१	थाँरी छब प्यारी लागे	दर्शनानंद	७	२०
४८२	थाँरी बोली लागे म्हाँने	ब्रजभाव	८	१३८

क्रम संख्या	पद की टेर	विभाग	वि. संख्या	पद संख्या
६८६	बनाजी थाँरी अँखियाँ	ब्रजभाव	८	२३५
६८७	बरजी मैं काहू की नाँहि	निश्चय	४	३६
६८८	बरसादो राम पानी	वर्षा	५	२८
६८९	बरसै बदरिया सावन की	,,	,,	३३
६९०	बलीहारी रसीया गिरधारी	ब्रजभाव	८	८२
६९१	बस गई राधे प्यारी	,,	,,	३२३
६९२	बसौ मेरे नैनन में नन्दलाल	अभिलाषा	१०	१
६९३	बहियां मोरी छोड़ोजी	ब्रजभाव	८	१०३
६९४	बहियां जो ग्रही रे	,,	,,	२१
६९५	व्रज मां क्यम रे'वाशे'	,,	,,	२६
६९६	व्रज मां केम रे'वाशे'	,,	,,	२९
६९७	बृज में काना धूम मचाई	होरी	१३	१५
६९८	ब्रह लहर तन मांइ उठै	विरह	१	१०३
६९९	ब्रीज मां नाव्या फरीने	,,	,,	६२
७००	बाँके साँवरिया ने घेरी	ब्रजभाव	८	१७१
७०१	बाँसुरी सुनौंगी मैं तो	मुरली	१५	१४
७०२	बाई अमे पकडी	प्रेमालाप	६	५९
७०३	बाई म्हारे नैना रावल	जोगी	१४	२८
७०४	बागन मों नंदलाल चलेरी	ब्रजभाव	८	७१
७०५	बाजन दे गिरधरलाल	मुरली	१५	१०
७०६	बाजुबन्द भूली हूँ जी	ब्रजभाव	८	१०४
७०७	बाटड़ली निहारूंजी	,,	,,	२३८
७०८	बात क्या कहूँ नागर नट की	,,	,,	१४८
७०९	बादल देख डरी	वर्षा	५	११
७१०	बादलियां आई बरसे	,,	,,	२१
७११	बाना रो बिड़द दुहेलो रे	प्रार्थना वि०	३	८१
७१२	बालापन में बैरागन	ब्रजभाव	८	२२०
७१३	बाला मैं बैरागण हूँगी	निश्चय	४	१३
७१४	बावरी कहै रे साधो	प्रेमालाप	६	४५

क्रम संख्या	पद की टेर	विभाग	वि. संख्या	पद संख्या
७४४	भरमारी रे बानाँ मेरे सत्गुरु	सत्गुरु महिमा	११	६
७४५	भला रे तुम यहीं रहो राम	दर्शनानन्द	७	५४
७४६	भली जु बनी बृषभान	ब्रजभाव	८	३६२
७४७	भवनपति तुम घर	विरह	१	५१
७४८	भाभी बोलो वचन विचारी	स्वजीवन	२	७
७४९	भाभी मीराँ कुल ने लगाई	,,	,,	२३
७५०	भार तु धणी नी दीन	ब्रजभाव	८	३०५
७५१	भावना को भूखो साँवरो	प्रार्थना वि०	३	६२
७५२	भींजे म्हाँरो	वर्षा	५	६
७५३	भूली मोतन को हार	ब्रजभाव	८	४०
७५४	भैया मोरे भाग जागे	सत्संग उ०	६	३२
७५५	भैया तेरी नैया को पार	ब्रजभाव	८	२२६
७५६	भोलानाथ दिगंबर यह	प्रकीर्ण	१६	३४
७५७	भोलानाथ दिगंबर शंभु	,,	,,	१५
७५८	मंदिरिया में दीपक जोय	ब्रजभाव	८	१६०
७५९	मंदिरये पधारो श्याम	प्रार्थना वि०	३	२१
७६०	मंदिरया में दीवड़ा बिना	सत्संग उ०	६	१८
७६१	मचकारा मँदिरिया माहें	ब्रजभाव	८	२८२
७६२	मचकाला मंदिरिये आव	दर्शनानन्द	७	६०
७६३	माछीड़ा होडी हलकार	ब्रजभाव	८	२८०
७६४	मत आवै रे नंदका	,,	,,	२४१
७६५	मत कर माधोजी की	,,	,,	२४०
७६६	मत डारो पिचकारी	होरी	१३	५
७६७	मतवारो बादल आए रे	वर्षा	५	१०
७६८	मथुरा के कान मोही	ब्रजभाव	८	७८
७६९	मथुरा मां जावा ने	,,	,,	३५६
७७०	मथुरा जावो तो थांने	,,	,,	१६५
७७१	मदनगोपाल नंदजी को लाल	,,	,,	१५२
७७२	मदरोसो बोल मोरा	वर्षा	५	७

क्रम संख्या	पद की टेर	विभाग	वि. संख्या	पद संख्या
८६०	में तो रामजी रंगीला	निश्चय	४	६२
८६१	में तो रामजी रतन	सत्गुरू म०	११	२२
८६२	मेड़तियारा कागद आया	स्वजीवन	२	५३
८६३	मेरी कानाँ सुणऽजौजी	प्रार्थना वि०	३	५६
८६४	मेरी चूनर भिजोवै	होरी	१३	३४
८६५	मेरी माई नेन नी	ब्रजभाव	८	१०१
८६६	मेरी लाज तुम रखवैया	प्रार्थना वि०	३	४४
८६७	मेरे अँगना में मुरली	मुरली	१५	२१
८६८	मेरे घर आवो सुंदर	विरह	१	२६
८६९	मेरे जीअ (जीया) ऐशी	निश्चय	४	७७
८७०	मेरे तो आज सांचे	प्रार्थना वि०	३	६६
८७१	मेरे तो एक राम नाम	निश्चय	४	४२
८७२	मेरे तो एक राम सिया	प्रकीर्ण	१६	१३
८७३	मेरे तो गिरधर गोपाल	निश्चय	४	१०
८७४	मेरे नैनाँ निपट बँकट	दर्शनानन्द	७	१
८७५	मेरे प्यारे गिरधारी जी	प्रार्थना वि०	३	८२
८७६	मेरे प्रीतम प्यारे राम	विरह	१	४३
८७७	मेरे मन राम नामा बसी	निश्चय	४	५५
८७८	मेरे सांवरिया मैं तुम्हसे	स्वजीवन	२	२६
८७९	मेरे सिर राम गरीब निवाज	निश्चय	४	४४
८८०	मेरो मन बसिगो	ब्रजभाव	८	२०१
८८१	मेरो मन राम हि राम	नाम मा०	१२	५
८८२	मेरो मन लागो हरिजी सूं	निश्चय	४	६
८८३	मेरो मन हर लीनो	दर्शनानन्द	७	१४
८८४	मेरो मन हरि सूं जोरयो	निश्चय	४	३६
८८५	मेली देने कान	ब्रजभाव	८	८५
८८६	मेलो नी मावा मारगडो	ब्रजभाव	८	२२६
८८७	मेहा बरसवो करे रे	वर्षा	५	१
८८८	मैं अपने सैयाँ सँग साँची	निश्चय	४	४०

क्रम संख्या	पद की टेर	विभाग	वि. संख्या	पद संख्या
१०३४	राम नाम उर धार्यो	स्वजीवन	२	५७
१०३५	राम नाम धन खेती	नाम माहात्म्य	१२	२०
१०३६	राम नाम मेरे मन	,,	,,	२
१०३७	राम नाम रस पीजै	,,	,,	४
१०३८	राम नाम साकर कटका	,,	,,	८
१०३९	राम नो राम नो राम नो	निश्चय	४	८१
१०४०	राम मिलण के काज	विरह	१	७०
१०४१	राम मिलण रो घणो	,,	,,	५२
१०४२	राम रंग धता लागो ए मांय	निश्चय	४	३१
१०४३	राम रंग लाग्यो म्हारा मन को	,,	,,	६९
१०४४	राम रंग लागो मेरे दिल को	,,	,,	११
१०४५	राम रतन धन पायो	नाम माहात्म्य	१२	१९
१०४६	राम रमकड़ुं जड़ियुं	स्वजीवन	२	१३
१०४७	राम राखे तेम रहीये	ब्रजभाव	८	१५०
१०४८	राम सनेही साँवरियो	निश्चय	४	६४
१०४९	राम सीतापति तारी	प्रार्थना वि०	३	४२
१०५०	रास रच्यो बंसीवट	ब्रजभाव	८	३६५
१०५१	री मेरे पार निकस गया	सत्गुरू महिमा	११	६
१०५२	रुक्मणी री लाज राखो	प्रकीर्ण	१६	१४
१०५३	रूड़ी ने रंगीली रे बहाला	मुरली	१५	१५
१०५४	रूप देख अटकी तेरो रूप	दर्शनानन्द	७	३९
१०५५	रेंटिया ने किस विध	सत्संग उ०	९	२५
१०५६	रे पपइया प्यारे कबको	विरह	१	१००
१०५७	रे लगनी तो हरिवर थी	निश्चय	४	७६
१०५८	रे साँवलिया म्हाँ रै	वर्षा	५	३
१०५९	रैण यहीं रह जाओ	विरह	१	४१
१०६०	लगन कौ नांव न लीज्यो	सत्संग उ०	९	२३
१०६१	लग रहना लग रहना	,,	,,	९
१०६२	लगी टेर मुरली की	प्रार्थना वि०	३	१११

क्रम संख्या	पद की टेर	विभाग	वि. संख्या	पद संख्या
११५०	सखी मैं तो श्याम	ब्रजभाव	८	९
११५१	सखी म्हारो कानूड़ो	प्रेमालाप	६	२
११५२	सखी री लाज बैरण	ब्रजभाव	८	१०
११५३	सजन सुध ज्यों जानों	प्रार्थना वि०	३	८९
११५४	संताँ, काल रमीज्यो	सत्संग उ०	९	८०
११५५	सत्संग नो रस चांख	सत्संग उ०	९	६६
११५६	सब जग रूठड़ा	निश्चय	४	४९
११५७	सवां ही मिल हरि	नाम मा०	१२	१३
११५८	समझ डारो ने	होरी	१३	१८
११५९	सहेलियाँ साजन घर	दर्शनानन्द	७	११
११६०	सहेल्यां म्हांने रघुवर	प्रकीर्ण	१६	२४
११६१	सहेल्यो उद्धोजी आया	ब्रजभाव	८	२४७
११६२	सांइयां अरज बंदी की	प्रार्थना वि०	३	६१
११६३	सांइयां सुणज्यौ अरज	विरह	१	८०
११६४	सांचा बोलो सांवरिया	ब्रजभाव	८	२२८
११६५	साँचो प्रीति ही को	निश्चय	४	६५
११६६	साँभलोजी मारी बात	ब्रजभाव	८	१५१
११६७	सांवरा की गाली जल	"	"	१६१
११६८	सांवराजी ! तुम लग मेरी	प्रार्थना वि०	३	१०४
११६९	साँवराजी ने कह दीज्यो	होरी	१३	१२
११७०	साँवराजी से मिलणो किस	विरह	१	३८
११७१	साँवराजी हो चूड़े	ब्रजभाव	८	२६१
११७२	साँवरा ठाड़ी रहूँ	प्रेमालाप	६	३७
११७३	साँवरा ने देख्याँ म्हारो	ब्रजभाव	८	६१
११७४	सांवरा बिन नींद	विरह	१	१६१
११७५	साँवरा म्हारी प्रीत	प्रार्थना वि०	३	१५
११७६	साँवरिया अब वृजदेश	ब्रजभाव	८	३०८
११७७	सांवरिया के संग	होरी	१३	४६
११७८	साँवरिया प्यारा में	अभिलापा	१०	१५

क्रम संख्या	पद की टेर	विभाग	वि. संख्या	पद संख्या
१२३७	स्वामी सब संसार के	सत्संग उ०	६	२
१२३८	स्वारथ नी रे सगाई	,,	,,	८१
१२३९	हत्ती घोड़ा महाल	,,	,,	३४
१२४०	हमने सुणी छै हरी	प्रार्थना वि०	३	५८
१२४१	हम परदेशी पंछी	निश्चय	४	८०
१२४२	हमरे रौरे लागलि	,,	,,	५३
१२४३	हमरो प्रणाम बाँके	ब्रजभाव	८	२०५
१२४४	हमारे मन राधा-श्याम	निश्चय	४	७२
१२४५	हमारो चीर दे बनवारी	ब्रजभाव	८	१५४
१२४६	हरि के चरणों में चित	स्वजीवन	२	१५
१२४७	हरि को भजन नित	सत्संग उ०	६	६५
१२४८	हरि गुण गावत	निश्चय	४	२८
१२४९	हरि तुम काहे को प्रीत	ब्रजभाव	८	५
१२५०	हरि तुम हरो जन की	प्रार्थना वि०	३	१८
१२५१	हरि नाम बिना नर	नाम माहात्म्य	१२	६
१२५२	हरि नाम से नेह	,,	,,	६
१२५३	हरि बिन कूण गती मेरी	विरह	१	१०
१२५४	हरि बिन ना सरै री	,,	,,	५०
१२५५	हरि बिन मोरी कौन	प्रार्थना वि०	३	२९
१२५६	हरि मने पार उतार	,,	,,	६८
१२५७	हरि मारे हृदये रहेजो	,,	,,	११४
१२५८	हरि मेरे जीवन प्रान	,,	,,	२
१२५९	हरि मेरे नयनन में	,,	,,	६३
१२६०	हरि, म्हांरी सुणज्यौ	,,	,,	३८
१२६१	हरि रा भजन में मनड़ो	निश्चय	४	२६
१२६२	हरि रा मंदर मांहे	स्वजीवन	२	७४
१२६३	हरिवर मुक्यो केम जाय	विरह	१	१४५
१२६४	हरि सों विनती करौं	होरी	१३	१
१२६५	हरी आव देखे सखी	वर्षा	५	४०

भक्तमाला में तुम दोनों उज्ज्वल मणि होकर प्रकाशमान होते रहो [पृ० ९७

विभाग १ विरह

जीव की चरमगति, घटाकाश व मठाकाश के आवरण के हटते ही, उनके महदाकाश में विलीन हो जाने के समान, प्रापंचिक आवरण के हटते ही परमात्मा में समा जाना ही है। तब तक उस परमानंद से वंचित जीव के लिये, विरह में तड़फते हुए आत्मोन्नति के पथ पर अग्रसर होते जाना ही एक मात्र साधन है।

उस परम अवलम्ब--उस सम्पूर्ण परात्पर परमात्मा के विरह का अनुभव होना यह भगवत्कृपा का ही लक्षण है।

* भूमिका *

★

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम् ।
शून्यायितं जगत्सर्वं गोविन्द विरहेण मे ।।

श्री० चै० शि०

प्राण प्यारे श्रीगोविन्द के विरह में, निमेष जितना समय (पलक मारने जितना) एक युग समान हो गया है, मेरे नेत्रों से निरंतर वर्षा की धाराएँ छूटती रहती हैं और यह सम्पूर्ण संसार मेरे लिये सूना सा प्रतीत होता है ।

कहाँ मोर प्राणनाथ मुरली वदन
कहाँ करों काहाँ पाओं व्रजेन्द्रनन्दन ।
काहा रे कहिब, केवा जाने मोर दुःख,
व्रजेन्द्रनन्दन बिना फाटे मोर बुक ।।

हाय ! मेरे प्राणनाथ, मुरलीधर कहाँ हैं ? क्या करूँ, कहाँ जाऊँ ? मेरे प्यारे व्रजेन्द्रनन्दन को मैं कहाँ पा सकूंगा ? मैं अपनी विरह वेदना किससे कहूँ ? कहूँ भी तो मेरे दुःख को जानेगा ही कौन ? उन प्यारे व्रजेन्द्रनन्दन प्राणधन के बिना मेरा हृदय फटा जा रहा है ।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः । गीता १५-७ ।

हे अर्जुन ! इस देह में यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है ।

सारांश यह है कि यह जीवात्मा शिव का अथवा परमात्मा का अंश है और परमात्मा आनन्दस्वरूप है इसलिये जीव मात्र आनंद प्राप्ति के लिये सर्वदा प्राणप्रण से प्रयत्नवान् है । जल में प्रहार करने पर विभक्त से होते दिखाई देने वाले दोनों जल

भाग ज्यों पुनः द्विगुणित वेग से परस्पर में मिल जाने को धँसते हैं, तद्वत् प्रिय विरह में तड़पता हुआ जीव येन केन प्रकारेण अपने आनंदस्वरूप की प्राप्ति के लिये नाना चेष्टाएँ करता है। जिसने एक मात्र प्राणप्यारे भगवान की ही शरण ले ली है, उस विरही भक्त की छटपटाहट तो शनैः शनैः वृद्धि-गत होती हुई, उस सीमा तक पहुँच जाती है जब कि उसे अपनी देह की भी सुधि नहीं रह पाती और शरीर में भी विरह जन्य व्याधि विशेष के लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

साहित्य में विरह भाव को व्यक्त करने वाला एक मात्र करुण रस है।

एको रसः करुण एव निमित्त भेदात्
भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्त बुद्बुद तरंगमयान् विकारा
न्नम्भो यथासलिलमेवतु तत्समग्रम्॥

एक ही करुण रस निमित्त भेद से विभक्त हुआ पृथक्-पृथक् परिणामों को प्राप्त करता है। वस्तुतः सभी रसों में वह एक ही करुण रस मौलिक है जैसे आवर्त, बुद्बुद और तरंग आदि रूपों को प्राप्त करने वाला जल सर्वत्र एक ही है।

इस रस मर्मज्ञ जनों की उक्ति के अनुसार साहित्य के सब रसों में एक मात्र करुण रस ही प्रधान माना जाता है। संस्कृत साहित्य में यह श्लोक प्रसिद्ध है—

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्राप्यस्ति शाकुन्तला।
तत्राप्यङ्कश्चतुर्थश्च तत्र श्लोकश्चतुष्टयम्॥

अतएव यहाँ सर्वोत्तम माने गए इन चार श्लोकों में केवल विरह भाव युक्त करुण रस ही ओत-प्रोत है।

मन को अनुभूत होने वाले जो अनेकानेक भाव हैं उनमें प्राणीमात्र को विशेष रूप से प्रभावित करने वाले सुख व दुःख के भाव ही मुख्य हैं और उनमें भी दुःख का–करुण रस का भाव ही अधिक हृदयस्पर्शी है। इसलिये काव्य, नाटक व दृश्य आदि देखने, सुनने व पढ़ने में जहाँ कहीं भी विरह–करुण रस का भाव आता है, भावुक हृदय वाले व्यक्ति उस रस-प्रवाह में बह जाते हैं। उनके नेत्रों से अश्रुपात होता है, रोमाञ्च खड़े होते हैं और कंठ गद्‌गद्‌ हो जाता है। कवि भवभूति का 'उत्तर राम चरित्र' ग्रंथ इसका ज्वलंत प्रमाण है। कहा भी है—'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते'। किसी अंग्रेज कवि ने भी कहा है कि—Our sweetest songs are those that tell of sadest thought अर्थात् हमारे मधुरतम गीत वे हैं जो अत्यंत करुणामयी भावना से ध्वनित होते हैं।

जिनके प्रति अनन्य प्रेम, उत्कट श्रद्धा, अनुराग, गुण विशेष के प्रति आकर्षण और ममत्व हो जाता है उस व्यक्ति के वियोग में, हृदय में जो एक वेदना वा टीस का अनुभव होता है, उस अन्तर्व्यथा के भाव को विरह कहते हैं। परमात्मा-भगवान एवं वीतरागी महापुरुष–संत महात्मा के पक्ष में विरह प्रशंसनीय व उपादेय है।

विरह—व्याधि का जो अनुभव ले चुका वास्तव में उसका जीवन कृतार्थ होगया। कितने ही संत–महात्मा इस विरह सिंधु में डूबे, रोये, तड़पे, बिलखे और वास्तव में उन्होंने ही एक अपूर्व सुख का आस्वादन किया और अपने मानव–जन्म को कृतार्थ कर लिया।

प्रेम और विरह का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिसने प्रेम के क्षेत्र में पैर रखा उसे विरह की अग्नि में जलना ही होगा। आत्यंतिक ममत्व ही प्रेम है। जिस पर प्रेम होता है वह अपना ही बना रहे हृदय की यही चाहना हुआ करती है। इस चाहना की पूर्ति तक व्याकुल होकर रोना, सिसकना और तड़पना ही एक मात्र विरही साधक की साधना होती है। अपने प्यारे से मिलन होना ही संयोग है और बिछड़ना ही वियोग है। वियोग की स्थिति ही विरह है।

श्री पातञ्जल योगसूत्र, श्री गीताजी, सांख्यसूत्र और श्रीभागवतादि शास्त्र पुराणों में मन को वश में करने के लिये 'अभ्यास' और 'वैराग्य' का साधन बताया है जो विरह की स्थिति में आप ही आप सध जाता है; क्योंकि जिसके चित्त में एक मात्र श्यामसुन्दर बस गये हैं उसे सांसारिक किसी वस्तु के प्रति न तो मोह रह पाता है न अपने प्यारे के सिवा अन्य किसी के प्रति आकर्षण ही। विरह भाव जैसे-जैसे बढ़ता जाता है त्यों मन का अहंकार नष्ट होता जाता है और इस प्रकार हृदय सर्वथा निष्कपट व सरल होकर भक्त अपना सर्वस्व अपने प्रियतम को समर्पण कर देता है। वह अपना सब कुछ देकर अपने प्यारे को सुखी देखना चाहता है। वह देता ही जाता है अथवा वह देना ही जानता है। लेना तो कभी चाहता ही नहीं। वह स्वयं ही उनका बन जाता है और तब उसके प्रियतम को भी उसका होना ही पड़ता है। इस प्रकार धीरे धीरे यह द्वैतभाव मिटता जाता है और अन्त में दोनों को एक हो जाना पड़ता है क्योंकि जब तक पृथकत्व है तब तक कदापि सुख-चैन से नहीं रहा जायगा। एक होकर ही विरह-साधना शेष होती है यथा--

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं ।
प्रेम गली अति साँकरी, ता में दो न समाहिं ।।

श्री देवर्षि नारद ने भी भक्ति सूत्र ८२ में 'परमविरहासक्ति' को भक्ति का एक प्रकार बताया है ।

विरह वास्तव में स्वयंभू रस है । किसी से सीखा नहीं जाता । जिसके हृदय में अटूट लगन है, प्रियतम के दर्शन की आतुर उत्कंठा का उफान है, जिसके नेत्रों की निरंतर जल बरसाने की क्षमता है और जो आत्म बलिदान के लिये सर्वदा तत्पर है, वही 'विरही' कहलाने का अधिकारी है । क्योंकि—

उर में दाह प्रवाह दृग, रह रह निकले आह ।
मर मिटने की चाह हो, यही विरह की राह ।।

अपने प्यारे के विरह में चाहे कितने ही तड़पते रहने पर भी, उनकी प्रतीक्षा करने में व उनके मिलन की आशा में जो एक प्रकार का सुख प्राप्त होता है वह उनके प्रत्यक्ष मिलन में नहीं क्योंकि मिलन के समय पुनः उनसे बिछड़न की आशंका हृदय को निश्चिन्त नहीं बना सकती । किसी कवि ने यथार्थ ही कहा है,—

'सङ्गम विरह विकल्पे वरमिह विरहः न सङ्गमस्तस्य ।
सङ्गे सैव तथैकः त्रिभुवन मपि तन्मयं विरहे ।।'

मिलन और विरह के विकल्प में प्रिय का 'विरह' ही श्रेष्ठ है, मिलन उतना नहीं क्योंकि मिलन में तो वह एक ही दृष्टिगत होता है किन्तु विरह में तो त्रिभुवन ही तन्मय प्रतीत होता है और भी—

प्रेम पाश जो बँध गये, फिर नहिं टूटत तार ।
तड़पत सिसकत है तऊँ, सुमिरत बारंबार ॥

विरह में दूर होते हुए भी आत्मिक दृष्टि से तो दोनों की एकता सधी हुई रहती है । उनका प्रेम तो अखंड होता है क्योंकि दोनों के ही हृदय प्रेम-पाश में आबद्ध हो चुके हैं और घायल हैं ।

विरह किसी सच्चे प्रेमी के हृदय में ही प्रकट होता है अथवा यों कहा जाय कि प्रभु कृपा से ही किसी प्रेमी-भक्त विशेष पर यह उनकी देन है, तभी कहा है,—

जिस पर तुम हो रीझते, क्या देते जदुवीर ।
रोना धोना सिसकना, आहों की जागीर ॥

विरह में मधुर वेदना और मधुर स्मृति की एक ऐसी सृष्टि का निर्माण हुआ करता है कि जिसमें प्रेम का शुद्ध व वास्तविक स्वरूप झलकने लगता है और उस छटपटाहट में एक विलक्षण व अनिर्वचनीय आनंद का अनुभव होता है । तड़पते व रोते हुए हृदय में भी एक सात्विक संतोष का भाव छाये रहता है क्योंकि जिसे कभी भुलाया नहीं जा सकता वह और कोई नहीं अपना ही है चाहे जितनी दूर ही क्यों न बसता हो । संक्षेप में यही कि विरह में ही प्रेम अधिकाधिक उज्ज्वल होता जाता है और विरह में ही प्रेम की रक्षा होती है ।

स्व० विश्वकवि रविन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों में एक विरहिणी के हृदयोद्गार देखिये—'Come to my heart and see His face in tears.' अर्थात् मेरे हृदय के निकट आकर आँसुओं में उसकी छवि देख लो ।

देवी मीरांबाई का सारा जीवन अपने प्रियतम श्यामसुन्दर के विरह में ही व्यतीत हुआ था। उनकी जीवन-साधना का मुख्य अङ्ग विरह ही था यही नहीं, अपने प्यारे से एकरूपता को पाने अथवा श्री द्वारिकाधीश के श्री विग्रह में समाजाने पर्यन्त के उसके जीवन में उसे, प्रेम-विरह की सभी अवस्थाओं का अनुभव हो चुका था, जो उनकी वाणी वा पदों पर से जाना जा सकता है।

यह पद-विभाग विरह भाव का होने से, इसके सब पद विरह के तो हैं ही पर इसके अतिरिक्त ब्रजभाव में ३२, जोगी में १३, वर्षा में ११, होरी में ६, सत्गुरु-महिमा में ४, प्रार्थना में २, एवं प्रेमालाप के विभाग में १ इस प्रकार कुल मिलाकर ७० अन्य पद भी विरह के हैं।

इस विभाग के ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ११४, १३७, १४५, १४६, १४७, १५३, १५४ व १५८ ये १३ पद गुजराती भाषा के हैं और ११० वें पद पर कुछ पूर्वी भाषा का प्रभाव है।

सं० १६, २४, ३४, ७३, १०२, १३६ व १५८ ये ७ पद निर्गुणी भाव-ज्ञान के हैं।

'विरह' पर और संतों के अनुभव-वचन

अपने बस वह ना रही, फँसी विरह के जाल।
चरनदास रोवत रहै, सुमर सुमर गुन ख्याल॥
पी पी कहते दिन गया, रैन गई पिय ध्यान।
बिरहीन के सहजे सधै, भगति जोग तप ग्यान॥
(चरनदास)

बिरह बड़ो बैरी भयो, हिरदा धरे न धीर।
सुरत सनेही ना मिले, तब लगि मिटै न पीर॥
कबीर हँसना दूर कर, रोने से कर चित्त।
बिन रोये क्यों पाईये, प्रेम पियारा मीत॥
(कबीर)

जब विरहा आया दई, कडुवै लागैं काम।
काया लागी काल व्है, मीठा लागा नाम॥
(दादू दयाल)

सुन्दर बिरहिनि अधजरी, दुःख कहै मुख रोई।
जरि बरि के भसमी भई, धुवाँ न निकसै कोई॥
(सुन्दरदास)

बिरह अगिन तन तूल समीरा, स्वास जरइ छन माँह सरीरा।
नयन स्रवहिं जल निज हित लागी, जरइन पाव देह बिरहागी॥
(तुलसीदास)

'विरह' मीराँ की वाणी में

प्रेमतत्व का मूल आधार विरह है। बिना विरह के प्रेम, बिना प्राण के शरीर के समान शून्य है। विरह में ही प्रेम का वास्तविक रसास्वादन होता है।

विरह प्रायः तीन प्रकार का माना गया है:—१ भावी विरह, २—वर्तमान विरह, ३—भूत विरह।

(१) अपना प्रियतम भविष्य में अपने को छोड़कर चला जायगा इससे हृदय में जो एक प्रकार की व्यथा हुआ करती है यह भावी विरह। मिलनावस्था में भी भावी प्रिय-वियोग की आशंका बनी रहती है। जैसे जैसे दिन-रात्रि व घड़ी-पल व्यतीत होते हैं वैसे वैसे यह भाव तीव्र होता जाकर हृदय को रह रह कर बेचैन बना डालता है।

(२) अपना प्रियतम अभी जा रहा है उस समय में हृदय के भीतर जो व्यथा होने लगती है वह वर्तमान विरह। प्रियतम के सान्निध्य में भला आनन्द का कोई पार है! समय कैसा आनन्द से व्यतीत हुआ! आनन्द के दिन कैसे शीघ्रता से सरक गये। उनके मन मोहक दर्शन, उनके मधुर स्पर्श और आनन्द भरे मिलन के सुधा रसास्वादन में संसार का अस्तित्व ही मिट जाता था! आज वे ही जाने को तत्पर हैं। अपना सर्वस्व और स्वयं को भी जब उन्हें न्यौछावर कर दिया तब वे हमारे होकर भी हमसे पृथक् हो रहे हैं, अभी आँखों से ओझल हुए जा रहे हैं, हाय! अब क्या होगा! मन में इस प्रकार के विचार उमड़ कर हृदय धड़कने लगता है, रोम रोम में मानो बिच्छू डङ्क मार रहे हैं या कलेजे के कोई टुकड़े कर रहा है अथवा हृदय के दो टुकड़े कर एक को बरबस कोई अपने साथ खींच ले जा रहा है ऐसी भीतर ही भीतर निरन्तर तड़पन होती है जो असह्य हो उठती है।

३—छोड़कर गये हुए प्रियतम की प्रतीक्षा करते-करते जो हृदय में वेदना उठती है, वह भूत विरह। परस्पर प्रेम-रज्जु में बँधे हुए दोनों प्रेमी जन, एक दूसरे से पृथक् होकर भले कितने भी दूर जाँय, उस विरहावस्था में भी वे भाव-बन्धन से कदापि छूट नहीं सकते। वह राग-बन्धन तो अमर हो चुका। विरह में प्रियतम की मधुर लीला स्मृति ही जीवन का अवलम्ब होता है। परन्तु वे स्वप्निल अनुभव कभी कभी अत्यधिक जाग्रत होकर हृदय में इस प्रकार प्रेम का उफान ला देते हैं कि अपने प्रियतम को प्रत्यक्ष देखे बिना मन मानता नहीं, धैर्य

छूट जाता है फिर भी उस निराशा में भी प्रेमी आशा के झूले पर झूलने लगता है कि कभी तो वे आवेंगे ही। और कुछ नहीं तो दूर से ही कभी उनके दर्शन हो जाँय। इस परिस्थिति में न मरना होता है न जीना ही। इस प्रकार हृदय की व्यथा बढ़ते बढ़ते भिन्न-भिन्न अवस्था को प्राप्त होती जाती है। विरह की वे दस अवस्थाएँ इस प्रकार कही जाती हैं :—

चिन्तात्र जागरोद्वेगो तानवं मलिनाङ्गता।
प्रलापो व्याधिरुन्मादो मोहो मृत्युर्दशा दश॥
(उज्ज्वल नीलमणि)

१—चिन्ता, २—जागरण, ३—उद्वेग, ४—कृशता, ५—मलिनता, ६—प्रलाप ७—व्याधि, ८—उन्माद, ९—मूर्च्छा १०—मृत्यु।

मीरांबाई ने भी अपनी विरहावस्था की भिन्न मनोदशाओं का उल्लेख यत्र तत्र अपने विरह के पदों में किया है।

१—चिन्ता—निरन्तर अपने प्रियतम के ही विचार तथा प्रत्येक कार्य करते समय उन्हीं के संकल्प विकल्प चलते रहना अर्थात् मन को चिन्तन करने को अन्य कोई विषय ही नहीं मिलता हो उस विकलता भरी स्थिति को 'चिन्ता' कहते हैं। यथा—

(१) चित्त चढ़ी वह माधुरी मूरत उर बिच आन अड़ी।
आली री मेरे नैनन बान पड़ी॥

(९) तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, कर धर रही कपोला॥
(११)कहा करौं कित जाऊँ मेरी सजनी,लाग्यो है विरह सतावना॥
(१४) तुम बिन रह्यो ई न जाय॥

(३७) रह्यो नहीं जावे, साँवरो म्हाँने चिताँ घणो आवे रे ॥

२–जागरण—नेत्रों में बसी हुई प्यारे की साँवरी छवि एक क्षण के लिये भी कदापि दूर नहीं होती। जब मन और आँखें निरन्तर प्यारे को ही देखते रहते हैं तब भला नींद को ठौर कहाँ। एक कोष में दो तलवारें कैसे समा सकती हैं। यही 'जागरण' अवस्था है। यथा—

(१२) नींदडली नहिं आवै सारी रात ॥

(१६) नैण न लगे कपाट ॥

(४६) अँसुवन की माला पोवे, तारा गिण गिण रैण बिहानी॥

(१४०) ऐसी ऐसी चाँदनी में पिया घर नांई ॥

(१६१) श्याम बिना मेरी सेज अलुणी ॥

३–उद्वेग—जैसे जैसे अपने प्यारे की चिन्तन द्वारा कामना की जाती है वैसे वैसे उनके बिना प्राणों में जो अकथनीय हूक उठा करती है, यही 'उद्वेग' है। यथा—

(२२) ऊँची चढ़ चढ़ पंथ निहारू, रोय रोय अँखियाँ राती ॥
आकुल व्याकुल फिरूँ रैन दिन, तुम बिन फटत हियो ॥

(४७) ये दोउ नैण कह्यो नहीं माने नदियाँ बहै जैसे सावन की।
कहा करूँ कछु नहिं बस मेरो पाँख नहीं उड़ जावन की॥

(८८) पिहुकी बोलि न बोल पपैया ॥

४–कृशता—प्रियतम के निकट न होने पर खाने पर रुचि भला कैसे हो सकती है! नींद नहीं, खाना नहीं, फिर अहर्निश

चिन्तन करने से देह का दुर्बल हो जाना भी स्वाभाविक है यही 'कृशता' है। यथा—

(१५) यूं तन पल पल छीजै हो ॥
(१६) खान पान मोहि नेक न भावै ॥
(३३) बिरहन भूरै श्याम ने।
(३९) खान पान सुध बुध सब बिसरी
(७२) आँगलियारी मूँदड़ी (म्हारे) आवण लागी बाँहि ॥

५–मलिनाङ्गता—तन, मन, प्राण और बाह्य शृङ्गारादि सब कुछ प्यारे के सेवा-सुख के लिये ही तो है। वे ही जब नहीं तब देह, वसन और केशादि की स्वच्छता की ओर ध्यान जा ही कैसे सकता है! इस अव्यवस्थितता का नाम ही 'मलिनाङ्गता' है। यथा—

(९) तुमरे कारण सब रंग त्यागा, काजल तिलक तमोला ॥
(६८) रहूँगी बैरागण होय ॥

६–प्रलाप—प्यारे के विरह में जो प्राणों को छटपटाहट होती है उसके बढ़ जाने से वाणी पर भी नियन्त्रण नहीं रह पाता और तब उस आवेश में भीतर के भाव असम्बद्ध व पागल की सी बातों के रूप में व्यक्त होते हैं, यही 'प्रलाप' है। यथा—

(४१) रैण यहीं रहजाओ चन्दाजी,के जा म्हारा पियाजी की बात॥
(६३) जोसीड़ा जोस जुओ ने········· ॥
(६१) जो मैं ऐसा जाणती रे प्रीत किये दुख होय। नगर ढँढोरा फेरती रे प्रीत करो मत कोय ॥
(७२) काढ़ कलेजो मैं धरूँ रे कौआ तू ले जाय। ज्याँ देसाँ म्हारो पिय बसैरे वे देखै तू खाय ॥

७--व्याधि---प्यारे का वियोग असह्य हो जाने से एवं निद्रा व आहार के अभाव में ज्वरादि व्याधि होना अनिवार्य हो जाता है। यथा---

(६१) म्हारो दरद न जाने कोय ॥
(७२) पाना ज्यूँ पीली पडोरे लोग कहे पिंडरोग ॥
(७३) दरद की मारी बन बन डोलूँ बेद मिल्यो नहीं कोय।
मीराँ की प्रभु पीड़ मिटै जब बेद साँवरियो होय ॥
(८६) व्याप रियो तन रोग ॥

८---उन्माद---काया वाचा मनसा जब प्यारे में तन्मयता हो जाती है तब व्याधि की दशा में आवेशातिरेक से प्रेमी की चेष्टाएँ न समझने जैसी, विलक्षण होजाती हैं, यही 'विरहोन्माद' है। यथा---

(१२) भई हूँ दिवानी तन सुध भूली, कोई न जानी म्हारी बात ॥
(७२) छिन मंदिर छिन आंगणे रे, छिन छिन ठाडी होय ॥

६---मोह--विरहावेश की पराकाष्ठा होने के बाद जब सकल इन्द्रियों में एक प्रकार की जो शिथिलता आती है, वही 'मोह' है। यथा---

(८) कहा करूँ कितजाऊँ मोरी सजनी, कठिन विरह की धार ॥
(१८) व्याकुल प्राण धरत नहीं धीरज ॥
(२६) कल न परत पल हरि मग जोवत, भई छ मासी रैन ॥
(३६) श्याम बिना उब गये दोनों दगरा ॥

१०---मृत्यु---प्रियतम के पीछे उपर्युक्त अवस्था हो जाने

पर भी आशा-पूर्ति का कोई लक्षण नहीं तब शरीर में प्राणों का रहना असह्य हो जाता है। प्रिय-विरह-वेदना के आगे मृत्यु भी अधिक सुख कर होने लगती है, यही 'मृत्यु' अवस्था है यथा–

(१) कैसे प्राण पिया बिन राखूँ, जीवन मूल जड़ी ॥
(१२) तलफ तलफ जिव जाय हमारो। मरण जीवन उन हाथ ॥
(२३) तुम मिलिया बिन तरस तरस तन जाय ॥
(३५) मैं हरि बिन क्यों जिऊँरी माई ॥
(४१) कनक कटोरा में जहर जो भरीयो,तुम्हारे हाथ पिलाजाओ
(६०) ले कटारी कण्ठ चीरूँ करूँगी आपघात
(७७) करवत लूँ जाय कासी ॥

१-विरह के पद

★

अनन्यता १

आली री मेरे नैणाँ बाण पड़ी ॥०॥
चित्त चढ़ी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन अड़ी ॥ १ ॥
कब की ठाड़ी पंथ निहारूँ, अपने भवन खड़ी ॥ २ ॥
कैसे प्राण पिया बिन राखूँ, जीवन मूल जड़ी ॥ ३ ॥
मीराँ गिरधर हाथ बिकानी, लोग कहै बिगड़ी ॥ ४ ॥

विनय २

आवो मन मोहनाजी मीठा थाँरा बोल ॥०॥
बालपणाँ की प्रीत रमइयाजी, कदे नहिं आयो थाँरो तोल ॥१॥
दरसण बिन मोहि जक न पड़त है, चित्त मेरो डावाँडोल ॥२॥
मीराँ कहै मैं भई रावरी, कहो तो बजाउँ ढोल ॥३॥

प्रेमालाप ३

सोवत ही पलका में मैं तो। पलक लगी पल में पिव आये॥०॥
मैं जु उठी प्रभु आदर देण कूँ।
जाग पड़ी पिव ढूँढ न पाये ॥१॥
वस्तु एक जब प्रेम की पकरी।
आज भये सखियन से भाये ॥२॥
और सखी पिव सोइ गमाये।
मैं जु सखी पिव जागि गमाये ॥३॥
आज की बात कहा कहुँ सजनी।
सुपना में हरि लेत बुलाये ॥४॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
सब सुख होय स्याम घर आये ॥५॥

प्रार्थना ४

कभी म्हाँरी गली आव रे, जिया की तपत बुझाव रे
म्हाँरे मोहना प्यारे ॥०॥
तेरे साँवले बदन पर, कई कोट काम वारे ।
तेरा खूबी के दरस पै, नैन तरसते म्हाँरे ॥१॥
घायल फिरूँ तड़पती, पीड़ जाने नहिं कोई ।
जिस लागी पीड़ प्रेम की, जिन लाई जाने सोई॥२॥
जैसे जल के सोखे, मीन क्या जिवें बिचारे ।
कृपा कीजे दरस दीजे, मीराँ नन्द के दुलारे ॥३॥

प्रार्थना ५

पिया अब घर आज्यो मेरे, तुम मोरे हूँ तोरे ॥०॥
मैं जन तेरा पंथ निहारूँ, मारग चितवत तोरे ॥१॥
अवध बदीती अजहुँ न आये, दुतियन सूँ नेह जोरे ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु कबरे मिलोगे, दरसन बिन दिन दोरे ॥३॥

प्रार्थना ६

तुम आज्यो जी रामा, आवत आस्याँ सामा ॥
तुम मिलियाँ मैं बहु सुख पाउँ, सरैं मनोरथ कामा ॥१॥
तुम बिच हम बिच अंतर नाहीं, जैसे सूरज घामा ॥२॥
मीराँ के मन और न माने, चाहे सुन्दर स्यामा ॥३॥

तीव्रता ७

परम सनेही राम की नित ओळूँ रे आवे ।
राम हमारे हम हैं राम के, हरि बिन कछु न सुहावै ॥

आवण कह गये अजहुँ न आये, जिवड़ो अति उकलावै।
तुम दरसण की आस रमैया, कब हरि दरस दिखावै।।१।।
चरण कँवल की लगनि लगी नित, बिनु दरसण दुख पावै।
मीराँ कूँ प्रभु दरसण दीज्यौ, आणंद बरण्यूँ न जावै ।।२।।

तीव्रता ८

स्याम सुंदर पर वार । जीवड़ो मैं वार डारूँगी, हाँ ।।०।।
तेरे कारण जोग धारणा, लोक लाज कुल डार ।
तुम देख्याँ बिन न कल पड़त है, नैन चलत दोउँ वार।।१।।
कहा करूँ कित जाउँ मोरी सजनी, कठिन विरह को धार ।
मीराँ कहै प्रभु कबरे मिलोगे, तुम चरणा आधार ।।२।।

प्रार्थना ९

साजन घर आओ नी मीठां बोलां ।
कदकी ऊभी मैं पंथ निहारूँ, थाँरे आयाँ होसी भला ।।०।।
आओ निसंक, संक मत मानो, आयाँ ही सुख रहेला ।
तन मन वार करूँ न्यौछावर, दीज्यो स्याम मोय हेला ।।१।।
आतुर बहुत विलम मत कीज्यो, आयाँ ही रंग रहेला ।
तुमरे कारण सब रंग त्याग्या, काजल तिलक तमोला ।।२।।
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, कर धर रही कपोला ।
मीराँ दासी जनम जनम की, दिल की घुंडी खोला ।।३।।

विनय १०

हरि बिन कूण गती मेरी ।
तुम मेरे प्रतिपाल कहिये, मैं रावरी चेरी ।।०।।
आदि अंत निज नाँव तेरो, हीया में फेरी ।
बेर बेर पुकार कहूँ प्रभु आरति है तेरी ।।१।।

यौ संसार विकार सागर बीच में घेरी ।
नाव फाटी प्रभु पाल बाँधो बूड़त है बेरी ॥२॥
बिरहणि पिव की बाट जोवै राखल्यो नेरी ।
दासि मीराँ राम रटत है मैं सरण हूँ तेरी ॥३॥

तीव्रता ११

हे मेरो मन मोहना आयो नहीं सखी री ॥०॥
कैं कहुँ काज किया संतन का । कै कहुँ गैल भुलावना ॥१॥
कहा करौं कित जाउँ मेरी सजनी । लाग्यो है बिरह सतावना ॥२॥
मीराँ दासी दरसण प्यासी । हरि चरणा चित लावना ॥३॥

तीव्रता १२

नींदड़ली नहिं आवै सारी रात, किस विधाँ होय परभात ॥०॥
चमक उठी सपने सुध भूली, चंद्रकला न सोहात ।
तलफ तलफ जिव जाय हमारो, कब रे मिले दीनानाथ ॥१॥
भई हूँ दिवानी तन सुध भूली, कोई न जानी म्हारी बात ।
मीराँ कहै बीती सोई जानै, मरण जीवण उन हाथ ॥२॥

उत्कंठा १३

पिया बिनि रह्योई न जाइ ॥०॥
तन मन मेरो पिया पर वारूँ, बार बार बलि जाइ ॥१॥
निस दिन जोऊँ बाट पिया की, कबरे मिलोगे आइ ॥२॥
मीराँ के प्रभु आस तुमारी, लीज्यौ कंठ लगाइ ॥३॥

तीव्रता १४

प्रभुजी थें कहाँ गया नेहड़ो लगाय ॥०॥
छोड़ गया अब कोन बिसासी, प्रेम की बाती बलाय ॥१॥

बिरह समँद में छोड़ गया छो, नेह की नाव चलाय ।।२।।
मीराँ के प्रभु कबरे मिलोगे, तुम बिन रह्योइ न जाय ।।३।।

विनय १५

साजन सुध ज्यूँ जाणो ज्यूँ लीजै हो ।।०।।
तुम बिन मोरे और न कोई । क्रिया रावरी कीजै हो ।।१।।
दिन नहिं भूख रैण नहिं निंदरा । यूँ तन पल पल छीजै हो ।।२।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । मिल बिछुड़न मत कीजै हो ।।३।।

प्रतीक्षा १६

आवो मन मोहना जी जोउँ थाँरी बाट ।।
खान पान मोहि नेक न भावै नैणन लगे कपाट ।।१।।
तुम आयाँ बिन सुख नहीं मेरे दिल में बहोत उचाट ।।२।।
मीराँ कहै मैं भई रावरी छाँडो नाँहिं निराट ।।३।।

प्रार्थना १७

आय मिलौ मोहि प्रीतम प्यारे । हमको छाँड भये क्यूँ न्यारे ।।०।।
बोहोत दिनन की बाट निहारूँ ।
तेरे ऊपर तन मन वारूँ ।।१।।
तुम दरसन की मो मन मांही ।
आय मिलौ कर कृपा गुसाईं ।।२।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
आय दरस द्यो सुख के सागर ।।३।।

विनय १८

गोबिंद कबहुँ मिलै पिया मेरा ।।०।।
चरण कँवल को हँस हँस देखूँ, राखूँ नैणां नेरा ।।१।।

निरखण कूँ मोहि चाव घणेरो, कब देखूँ मुख तेरा ॥२॥
व्याकुल प्राण धरत नहीं धीरज, मिल तूँ मीत सबेरा ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, ताप तपन बहु तेरा ॥४॥

ज्ञान १६

पिया मोहि आरत तेरी हो ।
आरत तेरे नाम की मोहिं सांझ सबेरी हो ॥०॥
या तन को दिवला करूँ मनसा की बाती हो ।
तेल जलाऊँ प्रेम को बालूँ दिन राति हो ॥१॥
पटियाँ पारूँ गुरू ज्ञान की बुधि माँग सँवारूँ हो ।
पीया तेरे कारणे धन जोबन गारूँ हो ॥२॥
सेजड़िया बहु रंगिया चंगा फूल बिछाया हो ।
रैण गई तारा गिणत प्रभु अजहुँ न आया हो ॥३॥
आया सावण भादवा वर्षा ऋतु छाई हो ।
स्याम पधारया सेज में सूती सैन जगाई हो ॥४॥
तुम हो पूरे साइयाँ पूरा सुख दीजे हो ।
मीराँ व्याकुल बिरहणी अपनी कर लीजे हो ॥५॥

उत्कंठा २०

नैन ललचावत जिवरा उदासी ।
साँवल बन में बाजे साँवल की बाँसी ॥१॥
रैन में सैन में मोरा नैना न लागे ।
प्रीतम के स्वास आवे कुसुम-सुबासी ॥२॥

तीव्रता २१

तोसों लाग्यौ नेह रे प्यारे नागर नँदकुमार ।
मुरली तेरी मन हरचो, बिसरचो घर-व्यौहार ॥०॥

जब तें श्रवननि धुनि परी, घर अँगणा न सुहाय ।
पारधि ज्यूँ चूकै नहीं, म्रिगी बेधि दइ आय ॥१॥
पानीं पीर न जानई ज्यों, मीन तड़फ मरि जाय ।
रसिक मधुप के मरम को नहीं, समुझत कमल सुभाय॥२॥
दीपक को जो दया नहिं, उड़ि-उड़ि मरत पतंग ।
मीराँ प्रभु गिरधर मिले, जैसे पाणी मिलि गयौ रंग ॥३॥

अनन्यता २२

म्हारे जनम-मरण रा साथी । थाँने नहिं बिसरूँ दिन राती ॥०॥
थाँ देख्याँ बिन कल न पड़त है, जाणत मेरी छाती ।
ऊँची चढ़-चढ़ पंथ निहारूँ, रोय-रोय अँखियाँ राती ॥१॥
यो संसार सकल जग झूठो, झूठा कुल रा न्याती ।
दोउ कर जोड़्याँ अरज करूँ छूं, सुण लीज्यो मेरी बाती ॥२॥
यो मन मेरो बड़ो हरामी, ज्यूँ मदमातो हाथी ।
सतगुरू हाथ धरचो सिर ऊपर, आँकुस दै समझाती ॥३॥
पल-पल पिव को रूप निहारूं, निरख-निरख सुखपाती ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ चित राती ॥४॥

तीव्रता २३

रमइया बिन रह्योइ न जाय ॥०॥
खान पान मोहि फीको-सो लागे, नैणा रहे मुरझाय ॥१॥
बार बार मैं अरज करूँ छूँ, रैन गई दिन जाय ॥२॥
मीराँ कहै हरि तुम मिलियाँ बिन, तरस तरस तन जाय ॥३॥

ज्ञान २४

स्याम तेरी आरति लागी हो ।
गुरू परतापे पाइया तन दुरमति भागी हो ॥०॥

या तन को दियना करों मनसा करों बाती हो।
तेल भरावों प्रेम का, बारों दिन राती हो ॥१॥
पाटी पारों ज्ञान की मति माँग सँवारों हो।
तेरे कारन साँवरे धन जोबन वारों हो ॥२॥
या सेजिया बहु रंग की बहु फूल बिछाये हो।
पंथ मैं जोहों स्याम का अजहूँ नहिँ आये हो ॥३॥
सावन भादों ऊमड़ो बरषा रितु आई हो।
भौंह घटा घन घेरि के नैनन झरि लाई हो ॥४॥
मात पिता तुमको दियो तुम ही भल जानो हो।
तुम तजि और भतार को मन में नहिं आनों हो ॥५॥
तुम प्रभु पूरन ब्रह्म को पूरन पद दीजै हो।
मीराँ व्याकुल बिरहनी अपनी करि लीजै हो ॥६॥

प्रार्थना २५

तुमरे कारण सब सुख छोड़या अब मोहि क्यूँ तरसावौ हो।
विरह-विथा लागी उर अंतर सो तुम आय बुझावौ हो ॥१॥
अब छोड़त नहीं बणै, प्रभुजी हँस कर तुरत बुलावौ हो।
मीराँ दासी जनम-जनम की अँग सूं अंग लगावौ हो ॥२॥

प्रार्थना २६

मेरे घर आवो सुंदर श्याम ॥०॥
तुम आयाँ बिन सुख नहीं मेरे, पीरी परी जैसे पान ॥१॥
मेरे आसा और न स्वामी, एक तिहारो ध्यान ॥२॥
मीराँ के प्रभु वेग मिलो अब, राखोजी मेरो मान ॥३॥

विनय २७

गोविंद गाढ़ा छौ जी दिलरा मिंत ॥०॥
बाट निहारुँ, पंथ बुहारुँ, ज्यों सुख पावे चित्त ॥१॥

मेरा मन की तुम ही जाणों, मेरो ही जीव निचंत ॥२॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनाशी, पूरव जनम को कंत ॥३॥

तीव्रता   २८

साजन वेगा घर आज्यो हो ।
आदि अंत का मिंत हो, हमकू सुख लाज्यो हो ॥०॥
हरि बिन सूरति कहाँ धरुँ, निश मारग जोउँ हो ।
तेरे कारन साईयाँ भरी नींद न सोऊँ हो ॥१॥
अविनाशी आया सुणूँ, जब नौ निध पाउँ हो ।
साईब सूँ मन माईलो, दुख टेर सुनाउँ हो ॥२॥
वा बिरिया कब होवसी, कोई कहे सनेसा हो ।
मीराँ कहे इस बात का, मोई खरा अंदेसा हो ॥३॥

तीव्रता   २६

दरस बिन दूखण लागे नैन ।
जब से तुम बिछुड़े मेरे प्रभुजी, कबहुँ न पायो चैन ॥०॥
सबद सुणत मेरी छतियाँ काँपै, मीठे लागै बैन ।
विरह-कथा का सूँ कहूँ सजनी, बह गई करवत ऐन ॥१॥
कल न परत पल हरि मग जोवत, भई छमासी रैन ।
मीराँ के प्रभु कबरे मिलोगे, दुख मेटण सुख दैन ॥२॥

प्रार्थना   ३०

प्यारे दरसन दीज्यो आय, तुम बिन रह्यो न जाय ॥०॥
जल बिन कमल चंद बिन रजनी,
ऐसे तुम देख्याँ बिन सजनी ।
आकुल व्याकुल फिरुँ रैन दिन,
विरह कलेजो खाय ॥१॥

दिवस न भूख नींद नहिं रैना,
मुख सूँ कथत न आवे बैना।
कहा कहूँ कछु कहत आवे,
मिल कर तपत बुझाय ॥२॥
क्यूँ तरसावो अंतरजामी,
आय मिलो किरपा कर स्वामी।
मीराँ दासी जनम जनम की,
पड़ी तुम्हारे पाय ॥३॥

प्रतीक्षा ३१

माई री मोसूँ पिया बिन रह्यो न जाय ॥०॥
तन मन मेरो पिया पर वारूँ, बार बार बलि जाय ॥१॥
निशदिन जोउँ बाट पिया की, कबरे मिलेगो आय ॥२॥
मीराँ के प्रभु आस तुम्हारी, लीज्यो कंठ लगाय ॥३॥

तीव्रता ३२

गोविंद आवौ न सब सुखरासी, आवोजी मुक्त विलासी।
अब की बेर प्रभु दरसण दीज्यो, सखियाँ करत मेरी हाँसी ॥०॥
सब सणगार सजे तन उपर, हरि बिन लगत उदासी।
जाँका दुख की जेही जाणें, औरों के मन हाँसी ॥१॥
आँबा की डाल कोयल एक बैठी, बोलत सबद उदासी।
मेरा मन में ऐसी आवे, करवत लूँगी जाय कासी ॥२॥
उ दिन मोकूँ कैसो होयगा, हरि मेरी सेज सिधासी।
मीराँ के प्रभु कबरे मिलोगे, सुख की रैण बिहासी ॥३॥

तीव्रता ३३

कोई कहियो रे विनति जाई कै। म्हारा प्राण पियारा नाथ ने ॥०॥
जा दिन के बिछुरे मन मोहन। कल न परत दिन रात ने ॥१॥

देस विदेस संदेस न पूगै । बिरहन भूरै श्याम ने ॥२॥
दिल रो दरद दिल ही इक जानै ।
और न जाने दूजो बात ने ॥३॥
मीराँ दरशण कारण भूरै ।
ज्यूँ बालक भूरै मात ने ॥४॥

ज्ञान   ३४

गली तो चारों बंद हुई, मैं हरि से मिलूँ कैसे जाय ॥०॥
ऊँची नीची राह रपटीली, पाँव नहीं ठहराय ।
सोच-सोच पग धरूँ जतन से, बार-बार डिग जाय ॥१॥
ऊँचा नीचा महल पिया का, म्हाँ सूँ चढ़्यो न जाय ।
पिया दूर पंथ म्हाँरो झीणो, सुरत झकोला खाय ॥२॥
कोस-कोस पर पहरा बैठ्या, पैंड-पैंड बट मार ।
या विधना कैसी रच दीनी, दूर बसायो म्हाँरो गाँव ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सतगुरु दई बताय ।
जुगन-जुगन से बिछड़ी मीराँ, घर में लीनी लाय ॥४॥

तीव्रता   ३५

मैं हरि बिन क्यों जिऊँ री माइ ॥०॥
पिव कारण बौरी भई ज्यूँ काठहि घुन खाइ ।
ओखद मूल न सँचरै मोहि लाग्यो बौराइ ॥ १ ॥
कमठ दादुर बसत जल में जलहि ते उपजाइ ।
मीन जल के बिछुरै तन तलफि करि मरि जाइ ॥२॥
पिव ढूँढ़ण बन-बन गई कहुँ मुरली धुनि पाइ ।
मीराँ के प्रभु लाल गिरधर मिलि गये सुखदाइ ॥३॥

विनय ३६

श्याम बिना उब गये दोनों दगरा ॥०॥
चार पहर बीती मानों चार युग बीत्या ।
घट गई रजनी होय गया फिगरा ॥१॥
आज ही तो श्याम म्हाँने सपना में मिलिया ।
खुल गया नैण ठरक गया कजरा ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर ।
बेर बेर करूँ थाँ सूँ मुजरा ॥३॥

प्रेमालाप ३७

रह्यो नहीं जावें, साँवरो म्हाँने चिताँ घणो आवे रे ॥०॥
मीठां मीठां बोल, बोल मन मोह्या ।
पल-पल छिन-छिन चिताँ घणो आवे रे ॥१॥
मोहन बेण बजावे अधर पर ।
माधुरी मुरत बिन और नहीं भावे रे ॥२॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
आपको रूप प्रभु आप बतावो रे ॥३॥

व्याकुलता ३८

साँवरा जी से मिलणो किस विध होय ॥०॥
मनखा जनम पदारथ पायो,
भजन बिना दियो खोय ।
आठ पहर धंधा में खोयो तीन पहर रह्यो सोय ॥१॥
चाँदणी रात चटक रह्या तारा रैण रही घड़ी दोय ।
जो हरि आवता जाणती सजनी देती मन्दर खोल ॥२॥
खोलूँगी चीर बधाउँगी जटा घर-घर अलख जगाय ।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरख निरख गुण गाय ॥३॥

तीव्रता ३६

देखो सहियाँ हरि मन काठो कियो ॥०॥
आवन कह गयो अजहुँ न आयो।
करि करि वचन गयो ॥१॥
खान पान सुध बुध सब बिसरी।
कैसे करि मैं जियों ॥२॥
वचन तुम्हारे तुमही बिसारे।
मन मेरो हर लियो ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर।
तुम बिन फटत हियो ॥४॥

प्रार्थना ४०

पिया इतनी बिनती सुण मोरी, कोइ कहियो रे जाय ॥०॥
औरन सूं रस बतियाँ करत हो, हमसे रहे चितचोरी ॥१॥
तुम बिन मेरे और न कोई, मैं शरणागत तोरी ॥२॥
आवण कह गये अजहुं न आये, दिवस रहे अब थोरी ॥३॥
मीराँ कहै प्रभु कबरे मिलोगे, अरज करूँ कर जोरी ॥४॥

प्रलाप ४१

रैंण यहीं रह जाओ चंदाजी,
केजा म्हारा पियाजी की बात ॥०॥
कनक कटोरा में जहर जो भरीयो,
तुम्हारे हाथ पीला जाओ ॥१॥
चुन चुन चंदन चीता बनाई।
तुम्हारे ही हाथ जला जाओ ॥२॥
जल बल हुई भसम की ढेरी।

बादल होय बुहा जाओ ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
तन की तपन बुझा जाओ ॥४॥

प्रार्थना ४२

तुम आईयो कृपा निधान नाथ बेगही ।
नाथ बेग ही जी अब राखो बिरहण जल्दी ॥०॥
मेरे द्वार आगे आये प्रभु निकस क्यूँ गये ।
दीन के दयालजी कठोर क्यूँ भये ॥१॥
बिरहण तो भई है कारी नागनी डसी ।
मूरति महाराज की—म्हारा हिया में-बसी ॥२॥
दिवला मेरे हाथ लियां बाट जोवती ।
मेरे नाथ हू न आये सारी रैण रोवती ॥३॥
पिया मैं के दरश बिना फिरूँ डोलती ।
मीराँ तो तिहारी प्रभु नाम बोलती ॥४॥

अन्तर्व्यथा ४३

मेरे प्रीतम प्यारे राम कूँ लिख भेजूँ रे पाती ॥०॥
स्याम सनेसो कबहूँ न दीन्हों, जानि बूझ गुझ बाती ॥१॥
डगर बुहारूँ पंथ निहारूँ, रोई रोई अँखियाँ राती ॥२॥
रात दिवस मोहि कल न पड़त है हियो फटत मेरी छाती ॥३॥
मीराँ के प्रभु कबरे मिलोगे पूर्व जनम के साथी ॥४॥

अन्तर्व्यथा ४४

पतियाँ मैं कैसे लिखूँ, लिखि ही न जाई ॥०॥
कलम धरत मेरो कर कंपत, हिरदो रहो घर्राई ॥१॥
बात कहूँ मोहि बात न आवै, नैन रहे झर्राई ॥२॥

किस विध चरण कमल मैं गहि हौं, सबहि अंग थरांई ॥३॥
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, सब ही दुख बिसराई ॥४॥

अन्तर्व्यथा   ४५

प्रीतम कूँ पतियाँ लिखूँ कउवा तू लेजाइ।
जाइ प्रीतमजी सूँ यूँ कहै रे थाँरी बिरहणि धान न खाइ ॥१॥
मीराँ दासी व्याकुली रे पिव पिव करत बिहाइ।
बेगि मिलो प्रभु अंतरजामी तुम बिन रह्यो हि न जाइ ॥२॥

ज्ञान   ४६

नगर सारो सूतो एजी ए माय।
मैं बिरहण बैठी जागूँ री ॥०॥
के तो जागे नगरी को राजा।
ऊठ सवेरे वोई न्याव तोड़े राज ॥१॥
के तो जागे बालूड़ारी माता।
पलक पलक वोई बालू राखे राज ॥२॥
के तो जागे जंगल माँही जोगी।
ऊठ सबेरे रामधुन लागे राज ॥३॥
के तो जागे चकवा जो चकवी।
ऊठ सबेरे वोई चेजे लागे राज ॥४॥
के तो जागे टाँडा रो नायक।
ऊठ सबेरे वोई टाँडो लादे राज ॥५॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर।
हरि के चरणा में चित लाग्यो राज ॥६॥

तीव्रता   ४७

कोइ कहियौ रे प्रभु आवन की।
आवन की मन भावन की ॥०॥

आप न आवै लिख नहिं भेजै
बाण पड़ी ललचावन की ॥१॥
ए दोउ नैण कह्यो नहिं मानै
नदियाँ बहैं जैसे सावन की ॥२॥
कहा करूँ कछु नहिं बस मेरो
पाँख नहीं उड़ जावन की ॥३॥
मीराँ कहै प्रभु कब र मिलोगे
चेरी भइ हूँ तेरे दाँवन की ॥४॥

अन्तर्व्यथा ४८

पतिया ने कूण पतीजे । म्हारो अँसुवा सूँ अँचरो भीजे ॥०॥
झूठी पतिया लिख कर भेजे । क्या लीजे क्या दीजे ॥१॥
ऐसा है कोई बाँच सुणावे, म्हें बाँचूं तो तन छीजे ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित दीजे ॥३॥

बारामासी ४९

किस विध बाँचूँ श्याम पतियाँ मोहन की ॥०॥
चार चार महिना साँवरा लग्यो ऊनाळो ।
अब ऋतु आई साँवरा पंखा ढोळन की ॥१॥
चार चार महिना साँवरा लग्यो चोमासो ।
अब ऋतु आई साँवरा वर्षा आवन की ॥२॥
पतियाँ बाँचत मेरी छतियाँ जलत है ।
नेण झरे अब नदियाँ सावन की ॥३॥
चार चार महिना साँवरा लग्यो सियाळो ।
अब ऋतु आई साँवरा दुपटा ओढ़न की ॥४॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर।
अब ऋतु आई साँवरा घर तो आवन की ॥५॥

तीव्रता		५०

हरी बिन ना सरै री माई।
मेरा प्राण निकस्या जात। हरी बिन ना सरै री माई ॥०॥
मीन दादुर बसत जळ में जळ से उपजाई।
तनक जळ से बाहर कीना तुरत मर जाई ॥१॥
कान लकरी बन परी काठ घुन खाई।
ले अगन प्रभु डार आये भसम हो जाई ॥२॥
बन-बन ढूँढत मैं फिरी माई सुधि नहिं पाई।
एक बेर दरसण दीजे सब कसर मिटि जाई ॥३॥
पात ज्यों पीळी पड़ी अरु बिपत तन छाई।
दासि मीराँ लाल गिरधर मिल्या सुख छाई ॥४॥

प्रार्थना		५१

भवन पति तुम घर आज्यो हो।
बिथा लगी तन माँहिने (म्हारी) तपत बुझाज्यो हो ॥०॥
रोवत-रोवत डोलता सब रैण बिहावै हो।
भूख गई निदरा गई पापी जीव न जावै हो ॥१॥
दुखिया कूँ सुखिया करो मोहि दरसण दीजै हो।
मीराँ व्याकुल बिरहणी अब बिलम न कीजै हो ॥२॥

प्रतीक्षा		५२

राम मिलण रो घणो उमावो, नित उठ जोऊँ बाटड़ियाँ।
दरस बिना मोहि कछु न सुहावै, जक न पड़त है आँखड़ियाँ ॥१॥
तड़फत तड़फत बहु दिन बीते, पड़ी बिरह की फाँसड़ियाँ।

अब तो बेग दया कर प्रीतम, मैं छूँ थारी दासड़ियाँ ॥२॥
नैणा दुखी दरसण कूँ तरसै, नाभि न बैठे साँसड़ियाँ ।
रात दिवस हिय आरत मेरो, कब हरि राखै पासड़ियाँ ॥३॥
लगी लगन छूटण की नाहीं, अब क्यूँ कीजै आँटड़ियाँ ।
मीराँ के प्रभु कब र मिलोगे, पूरो मन की आसड़ियाँ ॥४॥

प्रलाप ५३

जाओ हरि निरमोहिया जाणी थाँरी प्रीत ॥०॥
लगन लगी जद प्रीत और ही, अब कुछ अँवली रीत ॥१॥
इमरत पाइ के विष क्यूँ दीजै, कूँण गाँव की रीत ॥२॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, अपणी गरज के मीत ॥३॥

तीव्रता ५४

मैं बिरहणि बैठी जागूँ, जगत सब सोवैरी आली ॥०॥
बिरहणि बैठी रंगमहल मैं, मोतियन की लड़ पोवै ।
इक बिरहणि हम ऐसी देखी, अँसुवन की माला पोवै ॥१॥
तारा गिण गिण रैण बिहानी, सुख की घड़ी कब आवै ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मिलके बिछुड़ न जावै ॥२॥

वैराग्य ५५

चालाँ वाही देस प्रीतम, चालाँ वाही देस ॥०॥
कहो कसूमल साड़ी रँगावाँ । कहो तो भगवाँ भेस ॥१॥
कहो तो मोतियन माँग भरावाँ । कहो छिटकावाँ केस ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । सुणज्यो बिड़द नरेस ॥३॥

प्रेमपंथ ५६

प्रीत नहीं कीजे,एजी हो प्रीत नहीं कीजे । बिछुरत नैणा झरीजे॥०॥
पतिंग जो प्रीत करी दीपक सें । सनमुख देह जरीजे ॥१॥

मृग जो प्रीत करी रागन सें । सर पर बाण सही जे ॥२॥
भँवर जो प्रीत करी कलियन सें । उनको छांड कठे रीजे ॥३॥
मीराँ के हरि गिरधर नागर । हरिके चरण चित दीजे ॥४॥

जोगन भाव ५७

ऐसी लगन लगाय कहाँ तूँ जासी ॥०॥
तुम देखे बिन कल न पड़त है । तड़फ तड़फ जिव जासी ॥१॥
तेरे खातिर जोगण हूँगी । करवत लूँगी कासी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । चरण कँवल की दासी ॥३॥

तीव्रता ५८

होजी हरि कित गये नेह लगाय ॥०॥
नेह लगाय मेरो मन हर लीयो रस भरी टेर सुनाय ॥१॥
मेरे मन में ऐसी आवै मरूँ जहर बिस खाय ॥२॥
छाड़ि गये बिसबास घात करि नेह केरी नाव चढ़ाय ॥३॥
मीराँ के प्रभु कबरे मिलोगे रहे मधुपुरी छाय ॥४॥

प्रेमलगन ५९

कठण लगन की प्रीत रे, जिन लागी सोई जाने ॥०॥
प्रीत करी कछु रीत ना जाणी । छोड़ चले अधबीच ॥१॥
दुःख की वेळा कोई काम न आवे । सुख के सब है मीत ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । आखिर जात अहीर ॥३॥

तीव्रता ६०

माई म्हारी हरिजी न बूझी बात
पिंड माँसूँ प्राण पापी निकस क्यूँ नहीं जात ॥०॥
पट न खोल्या मुखाँ न बोल्या, साँझ भई परभात ।
अबोलणा जुग बीतण लागो, तो काहे की कुसलात ॥१॥
सुपन में हरि दरस दीन्हों मैं म जाण्यूँ हरि जात ।

नैण म्हारा उघड़ आया रही मन पछतात ॥२॥
रैण अँधेरी बिरह घेरी, तारा गिणत निस जात।
ले कटारी कंठ चीरूँ, करूँगी अपघात ॥३॥
आवण आवण होय रह्यो रे नहिं आवण की बात।
मीराँ व्याकुल बिरहणी रे बाल ज्यूँ बिललात ॥४॥

व्याकुलता ६१

घड़ी एक नहिं आवड़े, तुम दरसण बिन मोय।
तुम होमेरे प्राणजी, कासूँ जीवण होय ॥०॥
धान न भावै नींद न, बिरह सतावै मोय।
घायल सी घूमत फिरूँ रे, मेरो दरद न जाणै कोय ॥१॥
दिवस तो खाय गमाईयो रे, रैण गमाई सोय।
प्राण गमाया झूरताँ रे, नैण गमाया रोय ॥२॥
जो मैं ऐसा जाणती रे, प्रीति कियाँ दुख होय।
नगर ढँढोरा फेरती रे, प्रीत करो मत कोय ॥३॥
पंथ निहारूँ डगर बुहारूँ, ऊभी मारग जोय।
मीराँ के प्रभु कबरे मिलोगे, तुम मिलियाँ सुख होय ॥४॥

विरहालाप ६२ (गुज०)

बीज मां नाव्या फरीने, गोपीनो वा'लो बीज मां नाव्या फरीने ॥०॥
गामरे गोकुळीयुं मे'ली मथुरां पधार्या वा'लो,
जइ वर्या कुबजा कारी ने ॥१॥
सातरे दिवस नो हरि वायदो करी ने गया छो,
खट मास थया छे हरि ने ॥२॥
सातसे गोपीनी साथे रास रच्यो छे वा'ला,
उभा मुख मोरली धरीने ॥३॥

बाइ मीराँ के प्रभु गीरधर ना गुण वा'ला,
चरण कमल चित हरीने ॥४॥

प्रतीक्षा

६३ (गुज०)

क्यारे आवशे घेर कान रे, जोसीडा जोस जुओ ने ॥०॥
देहीओ अमारी वा'ला दुर्बळ थइ छे रे,
थइ गइ थाकेली प्राण रे ॥१॥
वृंदा ते वन मां वा'ले रास रच्यो छे रे,
सहस्र गोपी मां एक का'न रे ॥२॥
बाइ मीराँ के प्रभु गीरधर ना गुण, भावे मळ्या भगवान रे ॥३॥

प्रार्थना

६४ (गुज०)

मारा प्राण पातळिया वहेला आवो रे,
तमरे विना हुं तो जनम जोगण छुं ॥
नाभि कमळ थी सुरता रे चाली,
जइने तखत पर रास रचीला रे ॥०॥
सुखमना नाडी एनी सेज बिछावे,
ते दी रंग भीना छे रासधारी ।
तमरे विनानुं मारे अंतर अंधारूं रे,
मारा जगना जीवन वहेला आवो रे ॥१॥
साचुं घरेणुं मारे तुं छे रे शामळीया रे,
अवर घरेणुं मारे हाथ नहि आवे रे ।
कुंवरबाइ नां जेदी मामेरां पूर्यां,
तेदी छाब भरीने वहेला आवो रे ॥२॥
सावरे सोनाना हरि ना वावा शीवडावुं रे,
प्रीतमजी ने प्रणाम करीने ।

विठ्ठलराय जेदी वरवाने आव्या,
तेदीना विंटाणा छे वरमाळे रे ॥३॥
कागळीया नो जेदी कटको न होतो रे,
मसरे मोंघी रे जेदी लेखण न होती रे।
वाहला विदुर ते जइने एटलु' कहेजो रे,
तमे एक वार मळवाने, वहेला आवो रे ॥४॥
मधुरी नाद नी मोरली रे वागे रे,
सुरतीया मां राधाजी जागे रे।
मीराँ नो स्वामी जेदी गीरधर मळशे,
तेदी दासीनां दुःखडां भागे रे ॥५॥

वियोग-व्यथा ६५ (गुज०)

अबोला सीद लो छो, मारा राज, प्राण जीवन प्रभु मारा ॥०॥
अमे तो तमारां तमे तो अमारा, टाळी दोष शीद दो छो रे।
अमे तो तमारी सेवा करीए, सुख लइने दुःख दो छो रे ॥१॥
जेणे पोतानी मासी मारी, तेनो शो विश्वास रे।
अमृत पाइने उछेर्यां वाहला,
विखडां घोळी घोळी शीद पाओ छो रे ॥२॥
उंडा कुवामां उतर्यां वाहला, वरत वाढी शुं जाओ छो रे।
मीराँ के प्रभु गीरधर नागर, चरण कमळ चित रोहो छो रे ॥३॥

विरहालाप ६६ (गुज०)

पिया कारण रे पीळी भइ रे, लोक जाणे घट रोग।
छप छपलां में कंइ करूं, मोइ पियु ने मिलन लियो जोग रे ॥०॥
नाडी वैद्य तेडाविया रे, पकड़ धंधोळे मोरी बांह।
एरे पीडा परखे नहि, मोरे करक काळजडानी मांह रे ॥१॥

जाओ रे वैद्य घेर आपने रे, मारूं नाम ना लेश ।
हुं रे घायल हरि नाम नी रे, माइ केड ओषद ना देश रे ॥२॥
अधर सुधा रस गागरी रे, अधर रस गोरस लेश ।
बाइ मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, फरीने अमीरस पीवेश रे ॥३॥

अंतर्वेदना ६७

सखी मेरी नींद नसानी हो ।
पिय को पंथ निहारत सिगरी रैण बिहानी हो ॥०॥
सखियन मिलकर सीख दई मन एक न मानी हो ।
बिन देख्याँ कल नाहिं पड़त जिय ऐसी ठानी हो ॥१॥
अंग अंग व्याकुल भई मुख पिय पिय बानी हो ।
अंतर वेदन विरह की कोई पीर न जानी हो ॥२॥
ज्यूँ चातक घनकूँ रटै मछळी जिमि पानी हो ।
मीराँ व्याकुल बिरहणी सुध बुध बिसरानी हो ॥३॥

तीव्रता ६८

मैं जाण्यो नाहीं प्रभु को मिलण कैसे होय री ॥०॥
आये मेरे सजना फिर गये अंगना ।
मैं अभागण रही सोय ॥१॥
फारूँगी चीर करू गळ कंथा ।
रहूँगी बैरागण होय री ॥२॥
चुडियाँ फोरूँ माँग बखेरूँ ।
कजरा मैं डारूँ धोय री ॥३॥
निस वासर मोहि विरह सतावै ।
कल न परत पळ मोय री ॥४॥
मीराँ के प्रभु हार अविनासी ।
मिल बिछड़ो मत कोय री ॥५॥

स्वजीवन ६६

घड़ी नहीं बिसरयो जाय, रटूँ हरिनाम ॥०॥
गाना से पीली पडी राणा लोग कहे पिंड रोग।
घायल सूँ घुमतो फिरै खबर न जाणी कोय ॥१॥
वैद बुलायो चित्तौड़ से पकड़ बताओ वाँरी बाँय।
तुम जाओ बीरा वैद का नाड़ो री गम नाँय ॥२॥
लक्ष्मी नारायण देवरे बैठ्यो शिशोदिया रो साथ।
मीराँ नाचे प्रेम से छोडी कुल की लाज ॥३॥

तीव्रता ७०

राम मिलण के काज सखी, मेरे आरति उर में जागी री ॥०॥
तडफत-तडफत कळ न परत है, विरह बाण उर लागी री।
निसदिन पंथ निहारूँ पिव को,पलक न पल भरि लागी री ॥१॥
पीव-पीव मैं रटूँ रातदिन, दूजी सुध बुध भागी री।
विरह भुजँग मेरो डस्यो है कलेजो, लहर हळाहळ जागी री ॥२॥
मेरी आरति मेटि गोसांई, आय मिलौ मोहि सागी री।
मीराँ व्याकुल अति उकळाणी,पिया की उमँग अति लागी री ॥३॥

उत्कंठा ७१

थे कहो ने जोशी म्हारे राम मिलण कद होशी ॥०॥
जो जोशी मोहे प्रभु मिले तो, हीरा जडावुँ तेरी पोथी ॥१॥
जो जोशी प्रभु ना मिले तो, जुठी पडे तेरी पोथी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, राम मिले सुख होशी ॥३॥

तीव्रता ७२

नातो नाम को जी म्हाँसूँ तनक न तोड़यो जाय ॥०॥

पानाँ ज्यूँ पीळी पड़ी रे लोग कहैं पिंड रोग ।
छाने लाँघण म्हैं किया रे राम मिलण के जोग ॥१॥
बाबळ बैद बुलाइया रे पकड़ दिखाई म्हाँरी बाँह ।
मूरख बैद मरम नहिं जाणे कसक कळेजे माँह ॥२॥
जा बैदाँ घर आपणे रे म्हारो नाँव न लेय ।
मैं तो दाझी बिरह की रे तू काहे कूँ औषद देय ॥३॥
माँस गळ-गळ छीजिया रे करक रह्या गळ आहि ।
आँगळियाँ री मूदड़ी (म्हारे) आवण लागी बाँहि ॥४॥
रह रह पापी पपीहड़ा रे पिव को नाम न लेय ।
जे कोई बिरहण साम्हले तो पिव कारण जिव देय ॥५॥
खिण मंदिर खिण आँगणे रे खिण खिण ठाड़ी होय ।
घायल ज्यूँ घूमूँ खड़ी (म्हारी) बिथा न बूझै कोय ॥६॥
काढ़ कलेजो मैं धरूँ रे कौआ तू ले जाय ।
ज्याँ देसाँ म्हारो पिव बसै रे वे देखै तू खाय ॥७॥
म्हारे नातो नाँव को रे और न नातो कोय ।
मीराँ व्याकुळ बिरहणी रे (हरि) दरसण दीजो मोय ॥८॥

ज्ञान ७३

हे री मैं तो प्रेम दिवानी मेरो दरद न जाणै कोय ॥०॥
सूली ऊपर सेज हमारी सोवण किस विध होय ।
गगन मंडल पर सेज पिया की किस विध मिलणा होय ॥१॥
घायल की गति घायल जाणै जो कोइ घायल होय ।
जौहरी की गति जौहरी जाणै दूजा न जाणै कोय ॥२॥
दरद की मारी बन-बन डोलूँ बैद मिल्या नहिं कोय ।
मीराँ के प्रभु पीर मिटे जद बैद साँवळिया होय ॥३॥

वियोग ७४

किसने देखा कनैया प्यारा मुरली वाला ॥०॥

जमुना के नीर तीर धेनु चरावे ।
खाँदे कामलिया काला ॥१॥

मोर मुकुट पीतांबर शोभे ।
कुण्डल झलकत लाला ॥२॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
भक्तन के प्रतिपाला ॥३॥

वियोग ७५

कित गयो जादू करके वो पिया ॥०॥

नँद नँदन पिया कपट जो कीनो । निकल गयो छल करके ॥१॥
मोर मुकुट पीताँबर शोभे । कबु ना मिले अंग भरके ॥२॥
मीराँ दासी शरण जो आई । चरन कमल चित धरके ॥३॥

प्रार्थना ७६

थे म्हारी सुध ज्यूं जाणूं ज्यूं लीज्यौ ॥०॥

आप विना मोहि कछु न सुहावै, वेगो ही दरसण दीज्यो ॥१॥
मैं मंदभागण, करम अभागण, ओगण चित मत दीज्यो ॥२॥
विरह लगी पल छिन न लगत है, यों तन यूं ही छीज्यौ ॥३॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी देख्यां प्राण पतीज्यौ ॥४॥

तीव्रता ७७

अँखियाँ श्याम मिलन की प्यासी ॥०॥

आप तो जाय द्वारका छाये लोक करत मेरी हाँसी ॥१॥
आँब की डारी कोयल बोले बोलत सबद उदासी ॥२॥
मेरे तो मन में ऐसी आवत है करवत लूँ जाय कासी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल की दासी ॥४॥

तीव्रता ७८

विरहिनि बावरी री भयी ॥०॥
सूने भवन पर ठाढ़ी होइ कै टेरत आह दयी ॥१॥
दिन नहिं भूख रैनि नहिं निंदरा भोजन भावन गयी ॥२॥
लेकर अचरो अंसुवा पूंछै ऊघरि गात गयी ॥३॥
मीराँ कहै मनमोहन प्यारे जातां कछु न कही ॥४॥

तीव्रता ७९

को विरहनि को दुख जांणै हो ।
जा घट विरहा सोई लखि है कै कोइ हरिजन मांनै हो ॥०॥
रोगी आतर वैद वसत है वैद ही ओखद जांणै हो ।
विरह करद उरि अंतरि मांही हरि बिन सब सुख कांनै हो ॥१॥
दुगधा आरण फिरै दुखारी सुरत वसी सुत माँनै हो ।
चात्रग स्वाति बूँद मन माँही पीव पीव उकलांणै हो ॥२॥
सब जग कूड़ो कंटक दुनिया दरध न कोइ पिछांणै हो ।
मीराँ के पति आप रमइया दूजो नहिं कोइ छाँनै हो ॥३॥

प्रार्थना ८०

सांइय, सुणज्यौ अरज हमारी ।
मया करौ, महल्यां पग धारो, मैं/खानाजाद तुम्हारी ॥०॥
तुम विन प्राण दुखी, दुखमोचन, सुधि बुधि सबै विसारी ।
तलफ तलफ उठि उठि मग जोऊँ, भयी व्याकुलता भारी ॥१॥
सेज सिंघ ज्यूं लगी प्राण कूँ, निस भुजंग भइ भारी ।
दीपग मनहुं दुहूं दिसि लागी, विरहिनि जरत विचारी ॥२॥
जब के गये अज हूं नहिं आये, विलंबे कहां मुरारी ।
मीराँ के प्रभु, दरसण दीज्यौ, तुम साहिब हम नारी ॥३॥

प्रार्थना ८१

तुम आवोजी प्रीतम मेरे, नित विरहिणि मारग हेरै ॥०॥
दुख मेटण सुख दाइक तुम हौ किरपा करि ल्यौ ने रे ॥१॥
बहुत दिनाँ की जोऊँ मारग अब क्यूँ करो रे अँबेरे ॥२॥
आरत अधिक कहूँ किस आगै आज्यौ मित सबेरे ॥३॥
मीर दासी तुम चरनन की हम तेरे तुम मेरे ॥४॥

व्याकुलता ८२

साजन, म्हारी सेझड़ली कब आवै हो ।
हँसि हँसि बात करूँ हिड़दा की तब जिवड़ो जक पावै हो ॥०॥
पाचूँ इंद्री वसि नहिं मोरी घन ज्यूँ धीर धरावै हो ।
कठिन विरह की पीड़ गुसाँईं मिलि करि तपत बुझावैं हो ॥१॥
या अरदास सुणो हरि मेरी विरहिणी पलो विछावै हो ।
तलफ तलफ नित करताँ पिय पिय अमी रस अंग न समावै हो ॥२॥
मीराँ लगनि लगी तुझ चरणाँ जग सूँ होई निरदावै हो ।
ऐसी वोखद कर हरि हमसूँ विरहिणि विथा गुमावै हो ॥३॥

प्रार्थना ८३

म्हारा ओलगिया, घर आज्यो जी ।
सुख दुख खोलि कहूँ अँतर की, वेगा वदन बताज्यो जी ॥०॥
च्यारि पहर च्यारूँ जुग बीत्या, नैणाँ नींद न आवै जी ।
पूरण ब्रह्म अखँड अविनासी, तुम । विन विरह सँतावै जी ॥१॥
नैणाँ नीर आभ ज्यूँ झरणा, ज्यूँ मेघा झड़ लाया जी ।
रतवँती इत राम कँत विन फिरत वदन विलखाया जी ॥२॥
साधू सजन मिलै सिर साटै तन मन करूँ बधाई जी ।
जन मीराँ नै मिलौ कृपा करि जनमि जनमि मितराई जी ॥३॥

नश्वय ८४

माँई मैं तो गोविन्द मित्र कियो ॥०॥
अली सुत प्रीत करी जल सुत सूँ संकट आई गह्यो ॥१॥
पतंग प्रीत करी दीपक से बाँका जीवा सूँ गयो ॥२॥
मृगा जो प्रीत करी नाद से सन्मुख बाण सह्यो ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणां चित दियो ॥४॥

बारामासी ८५

घनश्याम पिया बिना अब न जीयुँ री ॥०॥
अब तो सखी री अगम अगण लागा अगहन मास ।
सब सखियाँ मिल करत विलाप ।
हमारा साजन तो बसे परदेश, लखूंगी पतियाँ भेजुँ सनेस ॥१॥
अब तो सखी री पोष सकल बन व्याप्यो शी।
थर हर काँपे राधे को शरीर ।
हर बिना जीवड़ा को जाड़ो न जाय, कैसा रखूँ जीव ने समझाय ॥२॥
अब तो सखी माघ मास ऋतु आई बसंत ।
अजहुँ न आये हमारा कंत ।
अब तो बस्या री द्वारका में जाय, कुबजा के संग प्रीत लगाय ॥३॥
अब तो सखी री फागन फाग रमे सब कोय ।
मैं निशिदिन खोयो जोय ।
धन धन उन कुबजा को भाग, हमारा पिउ संग वा खेले फाग ॥४॥
अब तो सखी री चेत सकल बन फूल्यो केत ।
अजहुँ न आये मेरे श्याम विशेष ।
कठण कठोर हिया के श्याम, उनके चरण मेरा जीवड़ा लोभान ॥५॥
अब तो सखी री तपण लग्या री बैसाखा बन ।
छन छन छीजे राधे को तन ।

सब सखियाँ तो महेल के ब्हार, में अभागण अचला डार ॥६॥
अब तो सखी री जेठ चलत लू ताती लिपात ।
कैसे चलेगो पियू मेरा बाट ।
या छोड़वा की नहीं है भेष, सर पर छूटा लाँवा केश ॥७॥
अब तो सखी री अषाढ़ मास घन गरजत घोर ।
रटत विहंग पपैया टूकत मोर ।
सब सखियाँ तो गावे मँगलाचार, राधेजी ऊभा महेल के ब्हार ॥८॥
अब तो सखी री सावण बूँदज बरसो मेह ।
हमारा पियाजी तो छाँड्यो खाँच्या नेह ।
अब तो बस्या री द्वारका में जाय, हरि बिन जीवड़ो अकारथ जाय ।९।
अब तो सखी री आयो री भाद्रवो गहर गँभीर ।
चट आये बिदरा उमँग आये मेह ।
चमके दामिनी डरावे जीव, कोई बतावो हमारा पीव ॥१०॥
अब तो सखी री आसोजाँ बूँद बरसत जोय ।
सीप समंदर मोती होय ।
राधेजी पहर्या नथ के माँय, म्हाँसी अभागण और न कोय ॥११॥
अब तो सखी री कार्तक में हरि मलणा किया ।
आण मिल्या री हमारा पिया ।
मीराँ ने हरि मिलिया श्याम, उनके चरण मेरा जीवड़ा लोभान ॥१२

अन्तर्व्यथा ८६

श्याम बिन कौन पढ़े मोरी पाती ?
श्याम बिना मेरो घर अँधियारो, दीपक चुग गई बाती ॥०॥
अँसुअन नैनन ज्योति बहाई, कारी-धौरी एक बनाई ।
चिंता चाह लगन सब छूटी, पाथर भई मोरी छाती ॥१॥

बालापन में नेह लगायो, पाय उन्हें सब कुछ बिसरायो ।
ऐसे बिरह की जो सुध होती, काहे न उन संग जाती ।।२ ।।
विष भेजो चाहे प्राण निकारो, ना निकसे मन से वह कारो ।
अब तो सब जग जाने मीराँ, मोहन की मदमाती ।।३।।

उत्कंठा ८७

उड़ जावो म्हारी सोन चड़ी ।।०।।
काहे से मंडाऊँ थारी आँख पाँखड़ी, काहे से
मंडाऊँ थारी चौंच जड़ी ।।१।।
रूपा से मंडाऊँ थारी आँख पाँखड़ी,
सोना से मंढाऊँ थारी चौंच जड़ी ।।२।।
कह म्हारी चिड़िया सुगन की बातां,
कद आवेला म्हारा श्याम धणी ।।३।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
बाट जोऊं थारी कदकी खड़ी ।।४।।

विरहालाप ८८

पिहु की बोलि न बोल पपैया ।।०।।
तेरे बोलना मेरा जी डरत है । तन मन डावां डोल ।।१।।
तोरे बिना मोकूं पीर आवत है । जियरा करूंगी मैं मोल ।।२।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । कामनी करत कलोल ।।३।।

विरहालाप ८९

गोविंदा गिरधारी आवो थाने जोग,
आपरा वाल्या टोना दे छे लोग ।
छैल तो बिहारी आवो आपने जोग,
आपरा घाल्या टोना दे छे लोग ।।०।।

सावण आवण कर गया, कर गया कोल अनेक ।
गिणतां गिणतां घिस गई मारी आंगलियां री रेख ।। आपरा. १।।
लांबा पाना आमली जी सांवरा, तीखा पान खजूर ।
जिण पर चढ़ कर देखती थी सांवरा, नीड़ा बसो एक दूर ।।२।।
हाथ चंटियों पग पावड़ी जी सांवरा, घूंघर वाला केश ।
इन गलियन होय नीसरयाजी, कर नटवा को भेष ।।३।।
विरह विथा को क्या कहूँ सजनी, व्याप रियो तन रोग ।
मीरां बाई के प्रभु गिरधर नागर, ये पूरबला संजोग ।।४।।

बारामासी ६०

मोरी नैया पड़ी मझधार पार अब कोन लगावेगो ।।०।।
चार चार महिना लग्यो उनालो गरमी की ऋतु आई ।
आप श्याम बिना चँवर कोन ढुलावेगो ।।१।।
चार चार महिना लग्यो चोमासो वर्षा ऋतु आई ।
आप कृष्णजी बिना बंगळा कोन चुनावेगो ।।२।।
चार चार महीना लग्यो सियाळो शरदी की ऋतु आई ।
आप साँवरिया बिना दुपट्टा कोन ओढावेगो ।।३।।
मीरां बाई के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणाँ गुण गावोगे ।।४।।

विरहालाप ६१

सखी मोरी कोई तो मिलादो घनश्याम ।
सांवरा री ओंल्यूँ आवे रे कोई तो हरि मिला दो ।।०।।
मोहनी डार मेरो मन हर लीनो
मोहन की प्रीत मोसे सही न जावे री ।।१।।
द्वारका जाय बिराज रहे तो पतियाँ बेग न पठावे री ।।२।।
श्यामसुंदर थारी कर कर ओल्यूँ नैणाँ नीर भर आवे री ।।३।।

सखी मोहे हरि आन मिले तब अति आनन्द मन भावे री ॥४॥
मीराँ हर दम रटे हरि को आस उसी को लगावे री ॥५॥

विरहालाप ९२

मैं बैरागण बैठी जागूं नगर सारो सूतो री आली ॥०॥
केतो री जागे नगरी रा राजा जब जागे जब राज साधे ॥१॥
केतो री जागे टांडा रो नायक जब जागे जब टांडा लादे ॥२॥
केतो री जागे बाळुडा री माता जब जागे जब बाळु हुलरावे ॥३॥
केतो री जागे जंगल रो जोगी जब जागे जब जोग साधे ॥४॥
बाई मीरां के प्रभु गिरधर नागर प्रभु चरणा चित छाजे ॥५॥

प्रेमालाप ९३

थारी तो म्हारे गरज घणी ओ दीनानाथ
ओळुंडो घणी आवे जी ॥०॥
म्हारा अंतरजामी बृजराज के दर्शन दीजो जी ॥१॥
भूखां भोजनियां नी भावे नींदड़ली नी आवे जी ।
म्हाने कब मिलसी ओ बृजराज आनन्द बहु आवे जी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर लाल के दर्शन दीजो जी ।
म्हारा अंतरजामी दीनानाथ के हिये चांपी लीजो जी ॥३॥

तीव्रता ९४

मोसे दुखिया को लोग सुखिया कहत है ॥०॥
ऐसो री अरीलो कन्त दियो री विधाता मोको ।
सेज हूँ न आवे प्यारो न्यारो ही रहत है ॥१॥
चढ़ूंगी अटारी भारी झांकूंगी हजार बार ।
पिया बिन मोहि सारी रैन या अंधारी है ॥२॥
दिन तो वो यूं ही गयो रैन तो बिहानी आय ।
बिरह के बान मानो हिय में लगत है ॥३॥

तारा तो अंगार भया शूलीसी तो सेज भई ।
पिया को पलंग मानो आग ज्यूं जलत है ॥४॥
विरह सों जल रही हिय की सुधि न रही ।
मीराँ प्रभु मिलन की आशा से जियत है ॥५॥

तीव्रता ६५

डारि गयो मनमोहन पासी ॥०॥
आबा की डालि कोइल इक बोलै,
मेरो मरण अरु जग केरी हाँसी ॥१॥
बिरह की मारी मैं बन बन डोलूँ,
प्रान तजूँ करवत ल्यूँ कासी ॥२॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी,
तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी ॥३॥

तीव्रता ६६

पपइया रे पिव की वाणि न बोल ।
सुणि पावेली बिरहणी रे थारी राळेली पाँख मरोड़ ॥०॥
चाँच कटाऊँ पपइया रे ऊपर कळो र लूण ।
पिव मेरा मैं पीव की रे तू पिव कहै स कूण ॥१॥
थारा सबद सुहावणा रे जो पिव मेळा आज ।
चाँच मंढाऊँ थारी सोवनी रे तू मेरे सिरताज ॥२॥
प्रीतम कूँ पतियाँ लिखूँ रे कागा तूँ ले जाय ।
जाइ प्रीतमजी सूँ यूँ कहै रे थाँरि बिरहण धान न खाय ॥३॥
मीराँ दासी ब्याकुळी रे पिव-पिव करत बिहाय ।
बेगि मिलो प्रभु अंतरजामी तुम बिन रह्यौ न जाय ॥४॥

जोगनभाव　　　　　　६७

पिय बिन सूनो छै जी म्हारो देस ॥०॥
ऐसो है कोई पिव कूँ मिलावै तन मन करूँ सब पेस ॥१॥
तेरे कारण बन बन डोलूँ कर जोगण को भेस ॥२॥
अवधि बदीती अजहुँ न आए पंडर हो गया केस ॥३॥
मीराँ के प्रभु कब र मिलोगे तज दियो नगर नरेस ॥४॥

बारामासी　　　　　　६८

पिया मोहि दरसण दीजै हो।
बेर-बेर मैं टेरहूँ या किरपा कीजै हो ॥०॥
जेठ महीने जळ बिना पंछी दुख होई हो।
मोर असाढाँ कुरळहे घन चात्रग सोई हो ॥१॥
सावण में झड़ लागियो सखि तीजाँ खेलै हो।
भादरवै नदियाँ बहै दूरी जिन मेलै हो ॥२॥
सीप स्वाति ही झेलती आसोजाँ सोई हो।
देव काती में पूजहे मेरे तुम होई हो ॥३॥
मंगसर ठंढ बहोती पड़ै मोहि बेगि सम्हालो हो।
पोस महीं पाला घणा,अबही तुम न्हालो हो ॥४॥
महा महीं बसंत पंचमी फागाँ सब गावै हो।
फागुण फागाँ खेल हैं बणराय जरावै हो ॥५॥
चैत चित्त में ऊपजी दरसण तुम दीजै हो।
बैसाख बणराइ फूलवै कोयल कुरळीजै हो ॥६॥
काग उडावत दिन गया बूझूँ पंडित जोसी हो।
मीराँ बिरहण ब्याकुली दरसण कद होसी हो ॥७॥

तीव्रता　　　　　　६९

बंसीवारा आज्यो म्हारे देस, थारी साँवरी सुरत व्हालो बेस ॥०॥

आऊँ-आऊँ कर गया साँवरा, कर गया कौल अनेक ।
गिणता-गिणता घस गई म्हारी, आँगळियाँ री रेख ॥१॥
मैं बैरागिण आदि की जी, थाँरे म्हारे कदको सनेस ।
बिन पाणी बिन साबुण साँवरा, होय गई धोय सपेद ॥२॥
जोगण होय जंगल सब हेरूँ, तेरा नाम न पाया भेस ।
तेरी सुरत के कारणे म्हें धर लिया भगवाँ भेस ॥३॥
मोर-मुगट पीतांबर सोहै घूँघरवाळा केस ।
मीराँ के प्रभु गिरधर मिलियाँ दूनो बढ़ै सनेस ॥४॥

तीव्रता १००

रे पपइया प्यारे कब को वैर चितारयो ॥०॥
मैं सूती छी अपने भवन में, पिय-पिय करत पुकारयो ॥१॥
दाध्या ऊपर लूण लगायो, हिवड़ो करवत सारयो ॥२॥
उठि बैठो वा वृच्छ की डाली, बोल बोल कंठ सारयो ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ चित धारयो ॥४॥

अन्तर्व्यथा १०१

लागी सोही जाणै, कठण लगण दी पीर ॥०॥
विपति पड्याँ कोइ निकटि न आवै, सुख में सबको सीर ॥१॥
बाहरि घाव कछू नहिं दीसै, रोम रोम दी पीर ॥२॥
जन मीराँ गिरधर के ऊपर, सदकै करूँ सरीर ॥३॥

ज्ञान १०२

सासरियो सतलोक में पीहरियो साधां मांय ।
असल गुलाली को चूड़लो पेरयो पियाजी थाँरे राज ॥०॥
हरि बिना रह्यो न जाय, गुरां बिना तरियो न जाय ।
म्हें छूँ री रामरूड़ी ॥१॥

पाना सेती म्हैं पीळी रे लोग जाणे पंड रोग ।
लोग बिचारा क्या जाणे म्हारे हरि मिलण केरो जोग ॥२॥
बाप ने बेद बुलाविया पकड़ बताई मोरी बांय ।
थूं घर जारे बेटा बेद का म्हारे दरद कलेजा के मांय ॥३॥
सजन बजाराँ सांचरचा सामां मिल गया सेण ।
सजन संदेसो म्हारा श्याम को रूळ रूळ मन चारूं मेळ ॥४॥
साथ सहेलियां रे भूमके पाणयूं गई रे तलाव ।
और जनावर उड़ गया म्हांने हँसले राखो बलमाय ॥५॥
दूरी द्वारका री चाकरी नेड़ा बसोनी मारा राम ।
बाई मीराँ की बीनती म्हाने भवसागर मों उबार ॥६॥

विरहालाप १०३

ब्रह लहर तन मांइ उठै । काया कुं सोषन हारो ॥
ओषद पुरी कोई मूलन मांगै । लागत नहीं भारी ॥०॥
राम हमारे गारड़ू है । जीव कौ प्रान अधारो ।
उन आयां मेरे पीर हर हैं । उनको पतियारो हो ॥१॥
मन हमारो प्रभू मोहि लियौ तुम उलाँवत है घारो ।
दासी मीराँ राम भजि करि । विष कियो न्यारो ॥२॥

प्रार्थना १०४

आव साजनियां बाट मैं जोऊँ, तेरे कारण रेण न सोऊं ॥०॥
जक न परत मन बहुत उदासी,
सुन्दर स्याम मिलो अविनासी ॥१॥
तेरे कारण सब हम त्यागे,
खान पान पै मन नहिं लागे ॥२॥
मीराँ के प्रभु दरसण दीज्यौ,
मेरी अरज काँन सुण लीज्यो ॥३॥

प्रार्थना १०५

गोविन्दा ने आण मिलाज्यो जी।
सैयां माँरी यतनि अरज पहुंचाज्यो जी ॥०॥
विनति तो कीजो म्हांरी पायन परिके,
सारी सुध जणाज्यो जी ॥१॥
विरह विथा की वेदन कीज्यो मारी,
तन की तपत बुझाज्यो जी ॥२॥
मीराँ हरि हित सुं हिय उमग्यो है,
मारी अरज मत बिसराज्यो जी ॥३॥

तीव्रता १०६

पीया कूं बतादे मेरे। तेरा गुण मानूंगी ॥०॥
ऐसा है कोय आण मिलाये। तन मन धन कुरवानूं जी ॥१॥
रक्त रत्ति भर ना रय्यो मैं। पीरी भई जैसे पानूंजी ॥२॥
ब्रिहा मोकूं आन सतावै। कोयल सबद सुहानूंजी ॥३॥
लाल बिना व्याकुल भई मीराँ। प्रगट होत नहीं धानूंजी ॥४॥

विरहालाप १०७

पियाजी थे तो प्रेम कटारी मारी ॥०॥
जिनको पीव परदेस बसत है। सो क्यूँ सोवै नारी ॥१॥
मकन मिन नही भावत आँकुस दे दे हारी ॥२॥
जैसे भवंगत तजत कांचरी। सो गत भई है हमारी ॥३॥
बिन दरसण कल नाहिं परत है। तुम हम दीये बिसारी ॥४॥
मीराँ के प्रभू तुमारे मिलन कूँ चरण कँवल पर वारी ॥५॥

प्रतीक्षा १०८

प्रभु आयां रे बीते छ रंग भर रजनी श्रो रंग भर रजनी ॥०॥

कबकी ठाडी ठाडी बाट निहारूं रे

मदन कुबान नहीं जाय रे सखो ॥१॥

वेग पधार मिलो मीराँ को

तुम बिन बीते षट मास रजनी ॥२॥

मीराँ को प्रभु दरस दियो है

चरण कमल लिपटाय रही ॥३॥

विरहालाप १०६

माई मेरे नैनन बान परी री ॥०॥

जा दिन नैनां श्याम न देखों, बिसरत नाहीं घरी री ॥१॥

चित बस गई साँवरी सूरत, उर तें नाहीं टरी री ॥२॥

मीराँ हरि के हाथ बिकानी, सरबस दे निबड़ी री ॥३॥

तीव्रता ११० (पूर्वी)

मैं तो लागि रहों नँदलाल से ॥०॥

हमरे बाटहिं दूज न यार । लाल लाल पगिया झिन झिन बार ॥१॥

साँकर खटुलना दुइजन बीच ।

मन कइले वरषा तन कइले कीच ॥२॥

कहाँ गइले बछरू कहँ गइलीं गाय ।

कहँ गइलें धेनु चरावन राय ॥३॥

कहँ गइलीं गोपी कहँ गइलें बाल ।

कहँ गइले मुरली बजावनहार ॥४॥

मीराँ के प्रभु गिरधर लाल ।

तुम्हरे दरस बिन भइल बेहाल ॥५॥

प्रार्थना १११

ऐसे जन जाण न दीज्ये हो ।

आतो मिलो सहेलड़याँ वाताँ सुख लीज्ये हो ॥०॥

नैन सलूने साँई थाँ देख्याँ सूँ जीज्ये हो ।
तन धन जोबन वारि कै नछरावल कीज्ये हो ॥१॥
आरत अपनी कारणें वाँके पाँई परीज्ये हो ।
चंदन केरां रूँख ज्यूँ चरणा लपटीज्ये हो ॥२॥
हाथ जोरि विनति करूँ मेरी अरज सुणीज्ये हो ।
मीराँ व्याकुल विरहणी जाकू दरसण दीज्ये हो ॥३॥

जोगनभाव ११२

करूणा सुणो स्याम मेरी । मैं तो होय रही चेरी तेरी ॥०॥
दरसण कारण भई बावरी बिरह-बिथा तन घेरी ।
तेरे कारण जोगण हूँगी दूँगी नग्र बिच फेरी ॥
कुंज सब हेरी-हेरी ॥१॥
अंग भभूत गले मृगछाला यो तन भसम करूँ री ।
अजहुं न मिल्या राम अबिनासी बन-बन बीच फिरूँ री ॥
रोऊँ नित टेरी टेरी ॥२॥
जन मीराँ कूँ गिरधर मिलिया दुख मेटण सुख भेरी ।
रूम रूम साता भइ उर में मिट गई फेरा फेरी ॥
रहूँ चरननि तर चेरी ॥३॥

अंतर्व्यथा ११३

थे तो पलक उघाड़ो दीनानाथ, मैं हाजिर-नाजिर कदकी खड़ी॥०॥
साजनियाँ दुसमण होय बैठ्या, सबने लगूँ कड़ी ।
तुम बिन साजन कोई नहिं है, डिगी नाव मेरी समँद अड़ी ॥१॥
दिन नहिं चैन रैण नहिं निंदरा, सूखूँ खड़ी खड़ी ।
बाण बिरह का लाग्या हिये में, भूलूँ न एक घड़ी ॥२॥
पत्थर की तो अहिल्या तारी, बन के बीच पड़ी ।
कहा बोझ मीराँ में कहिये, सौ पर एक धड़ी ॥३॥

अनन्यता   ११४ (गुज०)

नयना ठरया छे तमने जोई ने छबीलो लाल ॥०॥
जे दिनना मोहन तमे गया छो ते दिन वीत्या मने रोई ने ॥१॥
लोक लज्जा मर्यादा मूकी ने रही छूं मोहन वर ने मोही ने ॥२॥
तमे वियोगे हूं त्रणे भुवन मां ए मां न दीठा बीजा कोई ने ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण चरण कमल चित प्रोईने ॥४॥

विकलता   ११५

सूती पड़ी थी साँवरा अपणे भवन में बाण विरह का मार्या रे
दो नैणाँ भर जादू कैसे डारा रे ॥०॥
घायल की गति घायल जाणे काईं जाणे वैद बिचारा रे ॥१॥
घड़ीरे घड़ीरे साँवरा घायल डोले सीस भुजा धड़ न्यारा रे ॥२॥
मीरांबाई गावे प्रभु गिरधर नागर प्रभु चरणाँ में चित्त लाया रे ॥३॥

तीव्रता   ११६

पिया तेरा पंथ अति भारी, कटारी प्रेम की मारी ॥०॥
पिया तेरा पंथ नहि पाउं, कहो मैं किसीविध आऊँ ॥१॥
भादव रैण अपियारी, पिया बिन क्यूं जीवे प्यारी ॥२॥
अजासूत बाघ बिच बंध्या, पपीहा प्राण सर संध्या ॥३॥
भई मैं हार ही हरदी, पीरी जैसे पान रे हरदी ॥४॥
मीराँ कहे कबै आवोगे, मेरा प्राण तुम बचावोगे ॥ ५॥

प्रेम-उलाहना   ११७

गिरधर रूसणूं जी कणों गुन्हां ॥०॥
कछुइक ओगुण काढो म्हांमैं, म्हे भी कानां सुणां ॥१॥
मैं तो दासी थारी जनम जनम की, थे साहिब सुगणां ॥२॥
कांईं बात सूं करचो रूसणूं, क्यों दुख पावो छो मनां ॥३॥

किरपा करि मोहि दरसण दीज्यो, बीते दिवस घणां ॥४॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, थारो ही नांव भणां ॥५॥

प्रेम-रहस्य ११८

तुम देख्यां बिनि कल न परत है,भली ए बुरी कोई लाख कहो जी ॥०॥
नेह को पैंडो बोहोत कठण है,
च्यारि कही दस और कहोजी ॥१॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी,
प्रीत करी तौ बोल सहो जी ॥२॥

विरहालाप ११६

दासी म्हांरा मारूड़ा मारूजी से कहना ।
मोय नींद न आवे नैना ॥०॥
जे मेरा गोविंद दूर बसत है, मोय सँदेशो देना ॥१॥
जे मेरा गोविंद गाली देवे, सनक सनक सुन लेना ॥
जे मेरा गोविंद बैन बजावे, प्रेम मगन होय कहना ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरन कमल चित देना ॥४॥

उत्कंठा १२०

दरस बिन दूखन लागे नैन ॥०॥
पिया मिलन की है मन मांही, कल न पड़त दिन रैन ॥१॥
कबहु मिलैंगे प्रीतम प्यारे, अधर धरे मृदु बैन ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बिन देखे नहिं चैन ॥३॥

तीव्रता १२१

नींद नहिं आवैरी सारी रात ॥०॥
करवट लेकर सेज टटोलूं (रूँ) पिया नहीं मोरे साथ ॥१॥
सगली रैन मोये तड़फत बीती, सोच सोच जिया जात ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आन भयो परभात ॥३॥

तीव्रता १२२

पलक न लागै मेरी, स्याम बिन ॥०॥
हरि बिन मथुरा ऐसी लागै, शशि बिन रैन अँधेरी ॥१॥
पात पात बृन्दावन ढूँढ्यो, कुंज कुंज ब्रजकेरी ॥२॥
ऊँचे खड़ै मथुरा नगरी, तलै बहै जमुना गहरी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणन की चेरी ॥४॥

विरहालाप १२३

पाछो रथ फेरो द्वारका-हारा ॥०॥
सूरज तलफै चंदा तलफै, तलफै नौलख तारा ॥१॥
गऊ भी तलफै बच्छा भी तलफै, तलफै गुवाल बिचारा ॥२॥
जोगी भी तलफै, जंगम तलफै, तलफै तपसी सारा ॥३॥
गंगा भी तलफै जमुना भी तलफै, तलफै समदर खारा ॥४॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, तुम जीते हम हारा ॥५॥

विरहालाप १२४

पिया की खुमार मैं तो बावरी भई ये माय ॥०॥
अमल न खायो आयो मोंकूँ, यो इचरज देखो भार (अपार) ॥१॥
या तन की मैं वीणा बजाऊँ, रग रग बाँधू तार ॥२॥
समझ बूझ मिल जाय दुलारो, जद रीझै रिझवार ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल बलिहार ॥४॥

विरहालाप १२५

प्यारी हट मांड्यौ छै जी मांझल रात ॥०॥
कबकी ठाढी अरज करत हूँ, होइ जासो परभात ॥१॥
तलफत तलफत बौहौ दिन बीते, कबहुँ न बूझी बात ॥२॥
जबके गये म्हारी सुधि नहीं लीनी, तुम बिन फीको(म्हारो)गात ।३।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, कर मींडत पछितात॥४॥

विनय १२६

प्रीत मत तोड़ो गिरधरलाल ॥०॥
नदियां गहरी नाव पुरानी, अध बिच में कांई छोड़ो ॥१॥
तुमही साहूकार तुमही बौहोरा, व्याज मूल मत जोड़ो ॥२॥
साँवरिया कै कारणै मैंने बाग लगायो, काची कलियाँ मत तोड़ो ।३।
साँवरिया कै कारणै मैं सेज बिछाई, सूनि सेज मत छोड़ो ॥४॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, इमरत में विष मत घोरो ॥५॥

प्रार्थना १२७

बैद बण आयजो स्वामी म्हारा, व्याकुल भयो है सरीर ॥०॥
मोर मुकुट कट काछनी रे बाला, केसर खोर चढायजो ।
शंख चक्र गदा पद्म बिराजे, भुज भर अंग लिपटायजो ॥१॥
ज्यां श्री चरणाँ से म्हारो दुख जासी, चरण खोल जल पायजो ॥२॥
दरद दिवानी मीराँ बैद साँवलियो, सूतीनै आण जगायजो ।
मीराँ तो दासी थारी जनम जनम की, चरण कमल चित लायजो ।३।

तीव्रता १२८

मन हमारा बाँध्यो माई । कँवल नैन अपने गुन ॥०॥
तीखण तीर बेध शरीर दूरि गयो माई ।
लाग्यो तब जान्यों नहीं अब न सह्यो जाई ॥१॥
तंत मंत औषद करउ तऊ पीर न जाई ।
है कोऊ उपकार करे, कठिन दर्द री माई ॥२॥
निकट हो तुम दूरि नहीँ, बेगि मिलो आई ।
मीराँ गिरधर स्वामी दयाल, तन की तपति बुझाई री माई ॥३॥

प्रेमलगन १२९

मैं थांरे गुण रीझी हो रसिक गोपाल ॥०॥
निस बासर मोय आस तिहारी, दरसन द्यो नंदलाल ॥१॥

माता भी मोहित सी हो गई [पृ० ३६

सो मद भगत करो जिन साधो, मत बिसरो नंदलाल ।
काहू के चंदो काहू के मंदो, काहूके उर में माल ।
प्रेम भरी मीराँ जिन गरजै, हिरदै गिरधरलाल ॥२॥
(येक) घडी घडी पल मोये जुग सम बीतत, होगई हाल बेहाल ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, छुट गई जग जंजाल ॥३॥

विनय १३०

मोरे प्यारे गिरिवरधारीजी, दासी क्यों बिसार डारी ॥०॥
द्रोपदी की लाज राखी सब दुख से निवारी ।
प्रल्हाद पैज पारी नृसिंह देहधारी ॥१॥
भिलणी के भूंटे बेर खाये कछु जात ना विचारी ।
कुबजा सों नेह लाया और गौतम की नारि तारी ॥२॥
प्यासी फिरौं दरस बिन तलफौं मोहे काहे बिसारी ।
मीराँ को दरसन दीजे गिरिधर अपनी ओर निहारी ॥३॥

तीव्रता १३१

मोहन आवन की कोई कीजो रे । आवन की मन भावन की ॥०॥
आप न आये पतियां न भेजे । ये बाताँ ललचावन की ॥१॥
बिन दरसन व्याकुल भई सजनी । जैसी बिजलिया सावन की ॥२॥
कहा करूँ कित जाउँ मोरी सजनी। पांख हुए तो उड़ जावन की ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । इच्छा लागी हरि पावन की ॥४॥

प्रेम १३२

म्हारो मन मोह्यो छै जी स्याँम सुजाँण ॥०॥
माधुरी मूरत सुंदरी सूरत, जाणे कोटिक भाँण ॥१॥
पाग कसूमल केसरया जामू, सोहै कुंडल काँन ॥२॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, तुम बिन तलफत प्राँण ॥३॥

प्रेमलगन १३३

म्हारो मन मोहि लीनों माई हे जसोदा के नन्दन ॥०॥
तनक बाँसुरिया श्रवननि में धुनि परी अधिक दुख दंदन ॥१॥
कछु न रही सुधि बुधि मति सजनी, परी हौं प्रेमरस फंदन ॥२॥
आठ जाम मोहि कल न परत है, ज्यों भुजंग बिन चन्दन ॥३॥
भूली लाज काज सुनि सजनी, परचो अधिक रस फंदन ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, करि राखो भुज बंधन ॥५॥

विनय १३४

लाग रही औसेर कान्ह तोरी लाग रही औसेर ॥०॥
दरसण दीजे किरपा कीजे, कहाँ लगाई (एती) बेर ॥१॥
दिन नहिँ चैँन रैन नहिँ निद्रा, बिरह विथा लई घेर ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सुणज्यो म्हारी टेर ॥३॥

विरहालाप १३५

वै न मिले जिनकी हम दासी ॥०॥
पात पात वृन्दावन ढूंढ्यो ढूँढि फिर सगरी मैं कासी ॥१॥
कासी कौ लोग बड़ो बिसवासी मुख मैं राम बगल मैं फांसी ॥२॥
आधी कासी मैं बांमण बणियाँ आधी कासी बसें संन्यासी ॥३॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी हरि चरणां की रहौं मैं दासी ॥४॥

ज्ञान १३६

सखी तैने नैना गमाय दिया रोय ॥०॥
बालापन की चटक चुँदरिया, दिन दिन मैली होय ॥१॥
बालपने लड़किन सँग खेली, रंग रूप दियो खोय ॥२॥
वाही सोच मीराँ भई दिवानी, दरद न जानै कोय ॥३॥
लेनहार लेनकूं आये, लेचल लेचल होय ॥४॥
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, बैद साँवरिया होय ॥५॥

तीव्रता   १३७ (गुज०)

केने पूछां केने रे पूछां शामळियानां समाचार बाई केने पूछां ॥०॥
आड़ारे डुंगर पहाड़ घणा रे वाला, वालीड़ा वसिया दरिया पार ॥१॥
नैंण झरेने कच्छवा भींजे रे व्हाला, हरखे ने टूटे माल्यो हार ॥२॥
सूंवां तो म्हांने निन्द्रा न आवे व्हाला, ऐ जागतड़ानां जंजाळ ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, हरि चरणांमें म्हारो ध्यान॥४॥

हृदयव्यथा   १३८

अपणाँ करम ही का खोट, दोष काँई दीजेरी आली ॥०॥
मैं तासूँ बूझूँ कोई न बतावै, सबही बटाऊ लोग।
सुणजोरी मोरी संग की सहेली, बाट चलत लगी चोट ॥१॥
अपणां दरद कूँ सब कोई जाणैं, पर दुख कूँ नहिं कोई।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, बच चरण की ओट ॥२॥

संतमहिमा   १३९

आज्यो आज्यो गोविन्दा म्हारे म्हैल, निहाराँ थारी बाटड़ली खड़ी जी,
म्हारै आज्यो ॥०॥
तन का त्यागूँ कापड़ाजी, ऊगंते परभात।
खड़ी जोवती राह में जी, सतगुरू पोंछे आय।
पियालो लियाँ हाजिर खड़ीजी ॥१॥
साधु हमारी आतमा जी, हम साधुन की देह।
रोम रोम में रम रही जी, ज्यूं बादल में मेह।
सुरत हरि नाम से लगी जी ॥२॥
मीराँ हरि की लाडिली जी, तुम मीराँ के स्याम।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, दरसण द्यो म्हारे राम।
सुरत निज नाम से लगी जी ॥३॥

तीव्रता १४०

ऐसी ऐसी चांदनी में पिया घर नांई ॥०॥
चार पहर दिन सोवत बीत्या, तडपत रैन बिहाई ॥१॥
मैं सूती पिया अपने म्हैल में, सालूडा में आई सरदाई ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरष निरष गुण गाई ॥३॥

तीव्रता १४१

ओळूँडी लगाई गयो है ब्रज को बासी कब मिलि जासी हे ॥०॥
चंपेलेरी डाल कोयलिया बोलै हे, बोलत वचन उदासी हे ॥१॥
गोकुल ढूँढे वृन्दावन ढूंढ्यो, ढूंढी मथुरा कासी हे ॥२॥
रैणि दिवस मछली ज्यूं तलफां, तलफ तलफ जिवड़ो जासी हे ॥३॥
जै कोई प्रभुजी नै आंण मिलावै, छूटत प्राण बचासी हे ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरिजी मिल्यां दुख जासी हे ॥५॥

प्रेमोत्कंठा १४२

ओळूं थारी आवै हो महाराजा अविनासी हे म्हांनै
कब दरस दिखासी ॥०॥
विरह वियोगन बन बन डोलूं, करवत ल्यूँगी कासी ॥१॥
निसदिन ऊभी पंथ निहारूं, कब मोहि धीर बंधासी ॥२॥
कृपा करो म्हारै भवन पधारो, नहिं यो जिवड़ो जासी ॥३॥
मैं मंदभागण काहे को सरजी, पिया मोसूं रहत उदासी ॥४॥
तुम हो हमारे अंतरजामी, मैं (थारा) चरणां री दासी ॥५॥
मीराँ तो कुछ जाणत नांही, पकड़ी टेक निभासी ॥६॥

तीव्रता १४३

तैं दरद नहिं जान्यूं, सुनि रै बैद अनारी ॥०॥
तू जा बैद घर आपणैं रे, तुझे खबर मोरी नांहीं ।
मोरे दरद को तू मरम न जाणैं, करक कलेजा रै मांहीं ॥१॥

प्रांण जांण का सोच नहीं मोहि, नाथ दरस द्यौ आरी ।
तुम दरसण विनि जीव यूं तरसै, ज्यूँ जल बिनि पनवारी ॥२॥
कहा कहूं कछु कहत न आवै, सुणिज्यौ आप मुरारी ।
मीराँ के प्रभु कबरे मिलोगे, जनम जनम की मैं थारी ॥३॥

तीव्रता १४४

देख्या कोई नंद के लाला, बताद्यौ बंसरी वाला ।
मेरो मन लेगयो हेली, लगी तन मैं तालाबेली ॥०॥
लगी कोई कान थैं दूती, तजी मोहि सेज में सूती ।
विरह का बाण भर मारचा, कलेजा छेद कर डारचा ॥१॥
देख्यां बिन जीव अति तरसै, नैनों में नीर अति बरसै ।
जहाँ ऊ कान्ह कारो री, मुझे ले जाय डारो री ॥२॥
तज्या सब खांन पानी री, नहीं मेरी पीड़ जानी री ।
मोहन मोहन पुकारूं री, सोवन सिर केस सँवारूँ री ॥३॥
ढूंढ्या बन बाग सारा री, मिल्या नहीं प्राण प्यारा री ।
हेली हरिजन मिलावौ री, मीराँ के प्राण बचावौ री ॥४॥

विनय १४५ (गुज०)

हरिवर मुक्यो केम जाय, हवे मुजथी हरिवर मुक्यो केम जाय॥०॥
नंदकंवर साथे नेडलो बंधायो, प्राण गये न छुटाय ॥१॥
घेली कीधी मने गोकुळना नाथे, मोरलीना शब्द सुणाय ॥२॥
बालारेपणथी प्रीति बंधाई, हैये थी केम बिसराय ॥३॥
मैयर तज्युं ने तज्युं सासरीयुं, त्याग्यां छे सर्व सगाय ॥४॥
बांह ग्रह्यानी लाज राखजो दयालु, स्नेही ने दुःख न देवाय ॥५॥
आ अवसर हरि आवी मळो तो, व्रहेनी अग्नि ओलाय ॥६॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, दरशन द्यो व्रजराय ॥७॥

आत्मकथा १४६ (गुज०)

लावो लावो कागळीओ दोत, के लखीए हरी ने रे।
तेमा शीओ हमारो वांक, के नाव्या फरीने रे ॥०॥
वहाला अमृत भोजनीआ आज, जमाड्या अमने रे।
हवे वीखडां घोळी मा पाओ, घटे नही तमने रे ॥१॥
वहाला प्रेम पछेडो आज ओढाड्यो अमने रे।
हवे दईने पाछो न लीओ, घटे नही तमने रे ॥२॥
व्हाला कुंजगलनमां रास रमाड्या अमने रे।
हवे तजीने चाल्या मा जाओ, घटे नहीं तमने रे ॥३॥
वहाला भले मळ्या भगवान, के दर्शन दीधां रे।
एम बोल्या मीरांबाई, के प्रेमरस पीधां रे ॥४॥

विरहालाप १४७ (गुज०)

क्यारे मळसे कान्ह, जोशीडा जोश जुवो ने ॥०॥
देह तो वहाला दुरबळ थई छे, जेवा पाकेल पान ॥१॥
सुख तो वहाला सरसव जेटलुं, दुःख तो दरीया समान ॥२॥
सेजलडी वहाला सुनी रे लागे, रजनी युग समान ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमळ मां ध्यान ॥४॥

रुचिवैचित्र्य १४८

कोण जाणे पराये मनकी, हांरे कोण जाणे पराये मन की ॥०॥
चोर रैन अंधीयारी चहावे, आस करत पर धन की ॥१॥
साधु रैन चांदनी चहावे, टेर करत भजन की रे ॥२॥
हीरा की पारख जवेरी जाने, मोट सहत शीर घन की ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, घर तजी भई मैं वन की रे ॥४॥

प्रलाप १४६

श्याम बतादे मोरली वाला ॥०॥
मोर मुकुट पीतांबर शोभे, भाल तिलक गले माला ॥१॥
एक बन ढूंढी सब बन ढूंढी, कहाँ न पायो नंदलाला ॥२॥
जोगण होऊँगी, बैरागण हो, पहेरूंगी मृगछाला ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, पीया प्रेम का प्याला ॥४॥

उत्कंठा १५०

मिलणो किस विध होय ॥०॥
चाँदनी रात छटक रह्या तारा, रजनी रही घडी दोय ॥१॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, हृदये राख्यो परोय ॥२॥

विनय १५१

थारा चरण कमल की दासी नजर भर न्हालो लालजी ॥०॥
चार मास ऊन्हालो निकल्यो चार मास बरसालो ।
अठे टालो देगयाजी आयो रतन सियालो ॥१॥
इत गोकुल उत मथुरा नगरी अध बिच जमुना रो नालो ।
विण नाले राधाजी झूले नित आवे नखरालो ॥२॥
थे छो सबला म्हें छां निबला नहीं मिलन को सारो ।
किरपाकर प्रभु मंदिर पधारो जब जाणू पतियारो ॥३॥
आप बिना म्हारे हिवड़े अंधारो आप करो उजियालो ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर बिना अगन मति जालो ॥४॥

उत्कंठा १५२

साजन वेगा घर आज्यो हो ॥०॥
आदि अंत का मित्र हो, हमको सुख लाजो हो ॥१॥
अविनाशी आया सुनूं, जब नव निधि पाऊँ हो ।

साहिब सूं मन माहिलो, दुख टेर सुनाऊँ हो ॥२॥
वा बिरियां कब होवसी, कोई कहे सँदेशा हो ।
मीराँ कहे इस बात का मोहिं, खरा अँदेशा हो ॥३॥

प्रेम-व्याधि १५३ (गुज०)

मारे मन वीठल रहो रे वशी मारे मन वीठल रहो रे वशी ॥०॥
कांहांनुडो कालो नाग छे रे, मारे काळजडेरे डशी ॥१॥
ओशडीआं अळगा करो रे, मुने शीदने पाओ छो घशी ॥२॥
ओ पेला दुरीजन लोकडाँरे, मारी वात न जांणे कशी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, तारा चरण कमल ने घशी ॥४॥

प्रेम-व्याधि १५४ (गुज०)

कमलनयन आपने । गुन मन हमारूँ बांध्युँ ॥०॥
मोहनलाल मुख विशाल नयण बाण साध्युँ ॥१॥
तीर तीखा वेध्यु शरीर, माई ।
लागति नही जान्युं, अब न सह्यु जाई ॥२॥
तंत मंत ऊषध करूं तुहि पीर जाई ।
हि कोऊ उपगार कारन कठिन दुर दुमाई ॥३॥
कठिनहि पण दुख नाही बिगि मिलु आई ।
मीराँ प्रभु गिरधर मिलि तन की ताप बुझाई ॥४॥

प्रलाप १५५

नींद तोहि बेचो री आली । जो कोई गाहक होय ॥०॥
पसे सेर जो टके पसेरी, रूपये के मन दोय ॥१॥
आयेरी सजनी फिर गये अंगना, मैं बैरन रही सोय । २॥
सोवत सोवत सब दिन खोये, दियो जमानो खोय ॥३॥
हे निद्रा तू वा घर जा री, रामभक्त ना होय ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, राखोंगी नैन समोय ॥५।

उत्कंठा १५६

आवोने पधारो जोशी आंगनीये बिराजो ।
खोल दिखाओ थारी पोथी ॥०॥
साव सोनारो पाटड़लो बिछाऊँ ।
हीरा जडाऊँ थारी पोथी ॥१॥
खीर खांड रा थाने भोजन जीमाऊँ ।
न्यूत जिमाऊँ थारा गोती ॥२॥
जरी कुंजर का थारा वस्त्र सीमाऊँ ।
दिख्णा दिवाऊँ थाने मोती ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
रामजी मिल्या फते होसी ॥४॥

तीव्रता १५७

मैं कैसे जाउँ, श्यामनगर घर दूर ॥०॥
रैण अंधारी बीजल चमके, नदीयां वहे जल पूर ॥१॥
नदियां गहिरी नाव पुराणी, खेवटीयो भकभूर ॥२॥
तेरे तो कारण जोगण हुई रही, सीरमांहे घाली है धूर ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, मीलणो आप हजूर ॥४॥

ज्ञान १५८ (गुज०)

लाग्यो मारो गिरधारी शुं ध्यान, वेरागण हुं थई ।
चाल्यो जानी गमार, तारे मारे शानी सगाई ॥०॥
उभी छे एक नार, दीठे जाणे दुबळी ।
कांतो एनुं पियरीयुं परदेश, कां तो एने सासुलडी ॥१॥
नथी मारूं पियरीयुं परदेश, नथी मुने सासुलडी ।
मारे वरवुं विठ्ठल ने साथ, तेनी जोउं वाटलडी ॥२॥

डोलरनां दश फूल, चंपा केरी एक कळी ।
मुरख नी सारी रेन, चातुरनी एक घडी ॥३॥
पर रे नारी साथे प्रीत तलसरानी तापणी ।
वाढीने अरपे शीश तोय न थाय आपणी ॥४॥
सोळ पेयां शणगार माथे ओढे पांभडी ।
धणीने दरबार मीरांबाई बोल्यां घरभणी ॥५॥

व्याकुलता १५९

अरीकित जाउंरी सखीरी मेरा पिया बिना जीवरो उदास ॥०॥
बोलत कोयल कूक पुकारी, जैसे कंठ गल पास ॥१॥
जैसे चातक पीव पीव बोले, जीवन चाहत प्यास ॥२॥
कुरनां ईंडा समदर मेले, कुरलत उंचे सास ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, तन मन तमरे पास ॥४॥

व्याकुलता १६०

अलप तलप मारो जीवरो तलपे, कोई दिन राम मिलावे ॥०॥
बार बत्रीश रसोई बनावे, अन्न कीधुं नहि भावे ॥१॥
सेज सज्जन ! बिना मोहन सूनो, नयणे नींदा न आवे ॥२॥
बाई मीराँ ते वास गिरधर, चरण कमल चित आवे ॥३॥

तीव्रता १६१

सांवरा बिन नींद न आवे, आवे री मेरो जीवड़ो अकुलावे ॥०॥
श्याम बिना मेरे जग में अंधेरो, दीपक दाय न आवे ।
श्याम बिना मेरी सेज अलूणी, जागत रैन डरावे ।
दगन झर ल्यावे री ल्यावे ॥१॥
विरह की मारी सब जग हेरूं, जे कोई श्याम मिलावे ।
विरह नाग मेरी काया डसत है, लहर लहर जिय जावे ।
जड़ी घस ल्यावे री ल्यावे ॥२॥

सुण सुण री मेरी बगड़ पडोसण, जे कोई श्याम मिलावे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मोहन मोहन भावे।
कदे घर आवे री आवे ॥३॥

तीव्रता १६२

डार गयो रे गले मोहन फाँसी ॥०॥
उँचीसी अटाली पर मेहुँडा बरसत, बूँद लगी जसी तीर की गाँसी।१
आँबुवा की डाली पर कोयल बोलत, बोलत बचन उदासी ॥२॥
आपन ज्याकर द्वारका छाये, म्हारो तो मरनो भयो थारी भई हाँसी।३
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, थे तो मारा ठाकुर मैं तो थारी दासी४

पदों के शब्दार्थ-भावार्थ-विशेष आदि

१—आली=सखी । नैणाँ=आँखों को । बाण=स्वभाव, आदत । चितचढ़ी=हृदय में बस गई । आन अड़ी=आकर जम गई । जीवन मूल जड़ी=प्राणाधारतत्व, औषधि ।

पाठान्तरः—

नैणां बान पड़ी, सैयां मोहे दरश दिखाई ।।०।।
भजन करूं ध्यान इनको करुं में, अपने भवन अड़ी ।।२।।
कैसे मैं राखूँ प्रान पिया बिन, जीवन मूल जरी ।।३।।
प्राणपिया को पंथ निहारूँ, जीवन बुटी जड़ी ।।३।।

यह अधिक चरण भी पाया जाता है:—

जब देखूँ तब जीऊँ मेरी सजनी । सरबस दे निबरी ।।

२—कदे……तोल=तुम्हारी वास्तविकता का कभी पार नहीं पाया । जक=चैन । रावरी=आपकी । बजाऊँ ढोल=घोषित करूँ ।

३—पलका में=पलंग पर और सखीं……गमाये=विषय ग्रस्त अन्य संसारी जन अज्ञान रूपी निद्रा मग्न रह कर प्रभु को खो देते हैं तब अहर्निश भगवच्चिन्तन के फलस्वरूप स्वप्न में साक्षात् पाये हुए प्रभु को मैं जग कर खो देती हूँ ।

४—सोखे=सूखने पर ।

सारे पद का पाठ भेदः—

कभी गली हमारी आवरे, मेरे जिया की तपत बुझावरे ।
नँद जू के प्यारे लाल, तेरे साँवरे बदन पर कई कोटि काम वारे ।।०।।
तेरियाँ जुलफाँ दिल दियाँ, कुल फाँजी दोउ नैन है सतारे ।
तेरा खुबी के दरश पै लाल, नयन तरसते हमारे ।।१।।
पिया पिया करै पपोहरा रे, निशिदिन सो याद तेरी ।
मेरे साँवरे सलोने मोहन, आशा दरशन केरी ।।२।।

घायल फिरूँ दरश की, पीर जाने नहिं कोई।
मोहे लागी चोट प्रेम की, जिन लागी जानै सोई ॥३॥
जैसे जल के सोख हुए, मीन क्या जीवैं बिचारे।
कृपा कीजो दरशन दीजो, मीराँ माधो नन्द दुलारे ॥४॥

५—जन=दासी। मारग चितवत=प्रतीक्षा करती हूँ। बदीती=बीत गई। दुतियन सूँ=औरों से। नेह जोरे=प्रेम जोड़ा। दोरे=कष्ट-दायक।

६—आस्याँ=आवेंगी। सामा=सन्मुख। सरैं=पूर्ण होते हैं। घामा=उष्णता, प्रकाश।

७—ओळूँ=याद। जिवड़ो=प्राण। उकळावै=विकल, बेचैन है। वरण्यूँ न जावै=वर्णन नहीं किया जा सकता है।

८—जीवड़ो·········डारूँगी=प्राणों को न्यौछावर कर दूँगी। डार=त्याग दी। वार=वारि, जल।

९—मीठां बोलां=मधुर बातें करेंगे। कदकी=कभी की। उभी=खड़ी। रहेला=रहेगा। मोय=मुझे। हेला=पुकार। घुंडी=ग्रन्थी, रहस्य। तन······न्यौछावर=सर्व प्रकार से आत्मसमर्पण करती हूँ। तुमरे·········त्याग्या=तुम्हारे बिना सब शृँगार-बनाव त्याग दिये। कर·········कपोला=बाट देखती देखती हार गई।

पाठान्तरः—प्रथम चरण पूर्वार्द्ध—

आवो निसंक संक नहीं कीजे, हिलमिल के रँग घोलां।
(अन्तिम) मीराँ प्रभु गिरधर बिन देख्याँ, छिन माँसाँ छिन तोलाँ ॥

अधिक चरणः—

श्यामसुन्दर मोहे दरशण दीज्यो, चन्द्रमुखी के ढ़ोला।
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, बंशी अधर धरोला।
साँझ पड़्यां गउवन के पीछे, ठमके पाँव धरोला ॥

१०—आदि······फेरी=निरन्तर तुम्हारे ही नाम की माला हृदय में फेरा करती हूँ। आरति=तीव्रोत्कण्ठा, लगन। बेरी=बेड़ा,

नाव । नेरी=निकट । पाल=हवा की गति को अनुकूल बनाने में सहायक, ऐसा नाव के बीच के स्तम्भ पर बँधा हुआ कपड़ा ।

पाठान्तर:—

नेह समँद बीच नाँव परी बैली, नहिं लगै बहि जात है बेरी।
लाज को लंगर टूट गयो है, बूझत हूँ बिन दामन चेरी।
अबतो पार लगावो नहीं (तो) प्रभु, लोग हँसैंगे बजाइ हथेरी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मेरी सुधि लीज्यौ प्रभु आय सबेरी ।।

११—समान भावात्मक:—हृदय के अंतस्तल से बार बार पुकारने पर भी जब प्रभु प्रकट होकर दर्शन नहीं देते हैं तब भक्त को सहज ही सात्विक झुँझलाहट होती है उसी भाव में मीरांबाई ने यह पद गाया है। महाराष्ट्र के सन्त कवि तुकाराम भी इसी प्रकार के उपालम्भ के भाव अपने मराठी अभंग नामक छन्द में व्यक्त करते हैं:—

कोठें गुंतलासी योगिया चे ध्यानीं । आनंद कीर्तनी, पंढरीच्या ।।
काम शेष शयनीं सुखे निद्रा आलीं । कानी न पड़ती बोल माझे ।।
काय पडलें तुज कोणाचें संकट । दूरी पंथ वाट न चालवे ।।इत्यादि०।।

बाती बलाय=ज्योति जला करके ।

१५—रैण=रात्रि । छीजें=क्षीण होता जाता है । मिल बिछुड़न=मिलकर विछोह—वियोग ।

१६—नेक=तनिक भी । कपाट=द्वार, पलक । उचाट=विकलता, बेचैनी । निराट=निराश्रित, निराधार ।

१८—चाव=चाह, उत्कंठा । घणेरो=अधिक । मीत=मित्र । सबेरा=शीघ्र । ताप तपन=अन्तर्व्यथा । बहुतेरा=अधिक ।

पाठान्तर—तृतीय चरण पूर्वार्द्ध:—"पिया मिलन कूँ हुई हूँ उदासी" ।

अधिक चरण:—ब्याकुलताते भई तनु देही सिर पर जम का घेरा ।

१९—आरत=लगन, व्यथा । दिवला=दीपक । बालूँ=जलाऊँ । पटियाँ पारूँ=केश सँवारूँ । गारूं=गलाऊँ । सेजड़िया=शय्या । चंगा=सुन्दर । सैन=शयन, संकेत ।

२१—पारधि=व्याध । बेधि·········आय=आकर बींध डालता है। मधुप=भ्रमर। मरम=मर्म। सुभाव=स्वभाव। जैसे······रंग=जिस प्रकार जल और रंग मिलने पर एक रूप हो जाते हैं।

विशेष:—एक बार प्रभु की अलौकिक रूप-सुधा को चख लेने के पश्चात् उनके विरह में प्रेमी की अन्त:सृष्टि में जो उफान वा विलक्षण छटपटाहट होती है उसके भुक्त भोगी सभी अनन्य प्रेमी भक्त गण वही अपना स्वानुभव, स्वरचित पद-काव्यादि रचनाओं में करते आये हैं। महाराष्ट्र के संत तुकाराम ने इस पद के दूसरे चरण के पूर्वार्द्ध के "पानी पीर न जानई ज्यों, मीन तड़फ मरि जाय"-इस भाव को अपने मराठी अभंग में 'जीवना वेगळी मासोळी, तैसा तुका तळ मळी' (अर्थात् जल से पृथक् की गई मछली के समान तुकाराम तड़फ रहा है) इन शब्दों द्वारा दरसाया है इसी प्रकार अपने प्रीतम की रूप-माधुरी का एक बार आस्वादन कर लेने के पश्चात् पुन: उसके लिये तरसती हुई श्री युगल प्रियाजी भी इसी पद के तीसरे चरण के पूर्वार्द्ध के भाव में ही पुकार उठती है—'सीखी कहाँ निठुरता एती, दीपक पीर न लावै। गिरि गिरि मरत पतंग जोति में, ऐसेहु खेल सुहावै।

पद—३५-५० को भी विचारिये।

२२—राती=लाल,। कुलरा न्याती=पारिवारिक स्वजन। यो मन·········समझाती मत्त गजराज के समान मेरा मन बड़ा ही विषयाभिमुख एवं चंचल है परन्तु सद्गुरू का कृपा हस्त अपने सिर पर पाकर, उसी अंकुश द्वारा ही उसे समझा कर ठिकाने लाती हूँ।

पाठान्तर:—

६ वीं पंक्ति में 'हरामी' के स्थान पर 'कुचाली'।

विशेष:—संसार में भगवद् प्राप्ति के जो भी साधन हैं वास्तव में वे सब चित्त के स्थिर करने के ही साधन हैं।'चित्त की स्थिरता'और'भगवद साक्षात्कार' ये दोनों एक ही स्थिति के भिन्न शब्द-प्रयोग हैं। श्री पातंजल योग सूत्र के सू० २ 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।' और सू० ३ 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।' में इसका पूरा रहस्य समाया है। सर्वत्र व्यापी परमात्मा को

ढूँढना कैसा। वास्तव में मन को प्रभु साक्षात्कार का अनुभव कराने योग्य बनाने ही के लिये साधन किया गया है। यदि मन अपने आधीन होगा तो आत्मोन्नति के पथ में सर्व प्रकार से सहायता रूप ही होगा और विपरीत रहा तो उसके समान बाधक भी दूसरा कोई नहीं। मनही के कारण संसार का सब विस्तार है "मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः।" मनकी चंचलता की ओर संकेत करते हुए श्री गीताजी में अर्जुन ने भगवान् से पूछा है—'चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम्। तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्' ॥ गीता ६–३४ ॥ हे कृष्ण! यह मन बड़ा चञ्चल और प्रमथन स्वभाव वाला है तथा बड़ा दृढ़ और बलवान् है, इसलिये उसका वश में करना मैं वायु की भाँति अति दुष्कर मानता हूँ। तब भगवान् मन को वश में करने के लिये 'अभ्यास और वैराग्य' का साधन बताते हुए आदेश करते हैं कि:—'असंशय महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्। अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते' ॥ ६–३५ ॥ हे महाबाहो! निःसंदेह मन चञ्चल और कठिनता से वश में होने वाला है, परन्तु हे कुन्ती पुत्र अर्जुन! अभ्यास और वैराग्य से ही उसे वश में किया जाता है। श्री गीताजी ही नहीं अपितु श्री मद्भागवत, योग और सांख्य सूत्रादि सभी शास्त्रों में मन पर नियंत्रण पाने के लिये एक मात्र 'अभ्यास एवं वैराग्य' यही साधन बताया है।

चेतः पशुमशुभपथं प्रधावमानं निराकर्तुं-
वैराग्य मेकमुचितं गलकाष्टं निर्मितं धात्रा।

वास्तव में मन रूप पशु को अहितकर पथ पर दौड़ने से रोकने के लिये विधाता ने वैराग्य रूप गलकाष्ठ की उचित ही व्यवस्था निर्माण की है।

देखिये, मीरांबाई ने भी उपरोक्त साधन का क्या ही सरसता पूर्वक अवलंबन किया है। जिन्हें अपना जन्म-मरण का साथी मानती है उनके बिना व्याकुल हुई मीरांबाई उनसे मिलने को तथा उन्हीं में अपना अखंड ध्यान बनाये रखने को बहुत चाहती है परन्तु, जैसा कि स्वयं उसने कहा है:—'यो मन मेरो बड़ो हरामी, ज्यूँ मदमातो हाथी।' मन जब अपने लक्ष में अंतराय रूप हो जाता है तब वह शास्त्रोक्त

'अभ्यास और वैराग्य' के साधन को ग्रहण करती है। 'तत्रस्थितौ यत्नोऽभ्यासः' योग सूत्र–समाधिपाद सू० १३ के अनुसार अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिये यत्न करना ही अभ्यास है और,—'द्रष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम्' समाधिपाद सू० १५ के अनुसार जिसकी भुक्त और योग्य विषयों में वितृष्णा अर्थात् अनासक्ति हो गई उस पुरुष की वासनाओं के वशीकार का नाम 'वैराग्य' है। स्त्री, अन्न, पानादि को विषय कहते हैं। वे सब भुक्त होने के पश्चात भी पुनः पुनः भोग की वासनाओं को उत्पन्न करते हैं। यही दृष्ट विषय वासना है। अनुश्रविक विषय वे हैं जिनका अभी तक भोग नहीं हुआ परन्तु कालान्तर में भोग होने की संभावना है–स्वर्ग सुखादि– उन पर भी तीव्र वासना हुआ करती है। इन सब वासनाओं के वशीभूत न होकर वासनाओं को अपने वशीभूत कर लेने का ही नाम वैराग्य है। सन्त तुकाराम ने अपने एक मराठी अभंग में प्रभु से वर मांगते हुए गाया है:—

'हें चिदान देगा देवा, तुझा विसर न व्हावा।
गुण गाईन आवड़ीं, हें चि माझी सर्व जोड़ीं॥
न लगें मुक्ति, धन, सम्पदा, संत संग देईं सदा।
तुका ह्मणें गर्भवासीं, सुखें घालावें आम्हांसीं॥

'हे प्रभो, मुझे यही वरदान दो कि तुम्हारा कभी विस्मरण न हो, प्रेम से तुम्हारे गुणगान किया करूँ, धन और संपदादि वैभव मुझे नहीं चाहिये, बस सर्वदा संतों का संग हुआ करे। तुका कहता है कि इतना देकर फिर भले ही सुख से मुझे किसी भी जीव-योनि में जन्म मिले।' अब मीरांबाई की साधना देखिये! तुकाराम के जैसे उसे भी मुक्ति का कोई विशेष मोह नहीं। उसने श्रीकृष्ण ही को जो जन्म-मरण का साथी मान लिया फिर उसे भव-व्याधि का भय ही क्यों! 'थाँने नहिं बिसरूँ दिन राती' का तात्पर्य वह प्रभु का रात्रि दिन में कभी भी विस्मरण नहीं होने देती अर्थात् उसके हृदय में अपने प्रियतम का अखंड स्मरण बना रहता है। 'ऊँची चढ़ चढ़ पंथ निहारूँ' से यह भाव व्यक्त होता है कि स्वीकृत भक्ति पथ में क्रम, क्रम से प्रगति करती हुए अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होती जा रही है जैसा कि मीरांबाई ने कहा है:—

'रोय रोय अँखियाँ राती' यह स्थिति निष्पाप और निर्दोष हृदय की द्योतक है। भगवत्प्रेम में साधक को रोना तभी आता है जैसे जैसे उसका चित्त पश्चात्ताप पूर्वक निर्मल-विकार रहित होता जाता है, उसे भगवन्नाम द्वारा प्रभु कृपा का आनंदानुभव प्राप्त होता जाता है एवं पूर्ण रूप से भगवद् भाव में तद्रूप होने के लिये अधीर होता जाता है। यही सब मीरांबाई का अभ्यास और वैराग्य के लिये तो उसने स्पष्ट रूप से कह दिया है:—'यो संसार सकल जग झूँठो, झूठा कुलरा न्याती।' यही नहीं, 'दोउ कर जोड्यां अरज करत हूँ, सुण लीज्यो मेरी बाती' अर्थात् वह इस मिथ्या संसार से इतनी ऊब उठी है कि दो दो हाथ जोड़ कर उससे अपना पिंड छुडाने के लिये प्रभु से प्रार्थना करती है। इस साधना में अपने मन को जब बाधक होता देखती है तब वह सद्गुरू-शरणागति का कैसा सुन्दर और समर्थ अवलंब ग्रहण करती है। इस प्रकार सद्-गुरू के सत्संग-उपदेश रूप अंकुश द्वारा अपने मन को वह अनुकूल बना कर अन्त में 'पल पल पिव को रूप निहारूँ, निरख निरख सुख पाती' इस आनन्दमय और मधुर अनुभव का साक्षात्कार कर लेती है।

महात्मा कबीरदास भी मनको समझाते हुए उसे डाँट सुनाते हैं:-

हाथी होय तो जंजीर घड़ाऊँ, चारों पैर बँधाऊँ।
होय महावत तेरे पर बैठूँ, अंकुश लेके चलाऊँ
मन तोहे केहि विधि कर समझाऊँ। आदि आदि।

मन रूप मत्त गजेन्द्र को दोनों ही अंकुश द्वारा वश में करने की चेष्टा करते हैं, परन्तु ध्यान देने योग्य है कि जहाँ कबीरदास मन को अपने पुरुषार्थ से बलपूर्वक कठोरता से अंकुश लगाते हैं वहाँ मीरांबाई अहंकार रहित होकर सद्गुरू-वरद-हस्त रूप अमोघ अंकुश द्वारा किस प्रकार युक्ति पूर्वक कोमल ताड़ना का प्रयोग करती है—

विचारिए:—

मारा जन्म संगाथी जदुराये रे, गिरवरधारी रे।
तारी मूर्ति वसीछे उर मांह्यरे, न मेलुं घड़ी न्यारी रे॥

भक्त कवि दयाराम (गुजराती)

पाठान्तरः—

म्हारा पुरव जनमरा साथी, थाँसे नहिं भूलौं दिनराती ॥०॥
यो मन मेरो बड़ो हरामी, जाणे तो मकनो हाथी ।
सत गुरू हस्त धरयो सिर उपर, अंकुश दे दे चलाती ॥३॥
मीरांबाई के साँवरो गिरधर, सुण लीज्यो म्हारी बाती ।
हाथी जोड़ कर म्हें करूँ विनती, भौ भौ की म्हें दासी ॥४॥

अधिक चरणः—

यो संसार हाट को मेलो, सांझ पड़या उठ जासी ।
घेलो राणाजी मान्यो नहीं रे, अमरापुर ले जाती ॥

२४—गुरू......भागी हो=गुरू प्रताप से भगवदानुभव पाकर दुर्मति नष्ट हो गई। दियना=दीपक। या तन को.........राती हो=प्रेम रूप तेल से भरे इस तन रूप दीपक में मनकी बत्ती बनाकर उसे रात्रि दिन जलाती हूँ। अर्थात् काया, वाचा, मनसा भगवत्प्रेम में निरन्तर लवलीन रहती हूँ। पाटी पारों=केश सँवारूँ। पाटी......वारां हो=ज्ञान के मर्म को और सात्विक भावों को ग्रहण कर उन पर मनन और निदिध्यासन करती हुई अपना सर्वस्व प्रभु को समर्पण कर देती हूँ।

विशेषः—यह निगुर्णी भाव का पद है। सत्‌गुरू की कृपा से नर जन्म को सार्थक करने के लिये आवश्यक कर्त्तव्य-ज्ञान के उदय होने पर उस पथ पर अग्रसर होने वाले साधक को किस प्रकार अत्यन्त कठिन विरहावस्था का अनुभव करना पड़ता है, इसमें वही भाव प्रदर्शित किये हैं। विरहाग्नि में शरीर का क्षीण होना, मन छीजा करना एवं निद्रा का छूट जाना पद के प्रथम चरण में बताया है। दूसरे में तड़फते हुए मन को ज्ञान द्वारा धैर्य देने और प्रभु को आत्मसमर्पण करने का भाव है। तीसरे में प्रभु के स्वागत में तत्पर साधक दर्शनोत्कंठा की सीमा पर पहुँच जाता है। चौथे में असह्य प्रतीक्षा में निरन्तर आँसू की झड़ी लगी रहने की स्थिति है। पाँचवा चरण अनन्यता का सूचक है एवं छठवें में प्रभु पद की प्राप्ति के लिये प्रार्थना अथवा एक बार अपने प्रियतम में मिलकर सदा के लिये वियोग-व्यथा से मुक्त हो जाने के लिये विरही हृदय की पुकार है।

पद पाठान्तरः—

सांज सवेरी गिरधारी आरत थांरी ॥०॥
आं तन के दिवलो करूं । मन सारी बाती ।
तेल सिचाऊँ प्रेमरो । बालूं दिन राती ॥१॥
सेज सिणगास्या ढोलिया । आछा पुष्प बिछाइया ।
अभी जोई बाटड़ी । अजनऊ पधारिया ॥२॥
सावन भादोवो लुल्यो । वर्षा ऋतु आई ।
बीज झला मल हो रही । नैना झड़ा लाई ॥३॥
माय बाप सब हेरिया । आपहि भल जाणु ।
राघव रामजी बिना भरतार । दूजो हिरदे नहीं आणु॥४॥
आप ही पूरण पूरिया पूरो । जस लीजो ।
मीराँ व्याकुल होय रही । आपणी कर लीजे ॥५॥

२७—गाढ़ा = दृढ़, कठोर। छौ = हो। दिलरा = मनके । मिंत = मित्र। निचंत = निश्चिंत। पूरव = पूर्व। कंत = स्वामी, पति।

२८—सूरति = ध्यान। अविनाशी........सुनाउँ हो = प्रभु को आये हुए सुनूँगी तो नव निधि पा ली समझूँगी, तब उनसे अपने हृदय के अंतस्तल की मर्म वेदना उन्हें सुनाउँगी। वा विरिया = वह घड़ी। सनेसा = सन्देश । वा विरिया........अंदेसा हो = ऐसी घड़ी कब आवेगी जब कोई आकर श्यामसुन्दर का सन्देश सुना दें, परन्तु इसी बात का मुझे पूरा संशय है।

२६—बैन = वचन। बह गई........ऐन = पूरी करवत चल गई हों त्यों विरह-व्यथा असह्य हो उठी। मग = मार्ग। भई......रैन = विकल होकर प्रतीक्षा करते हुए रात्रि भी छः महीने जैसी लम्बी हो जाती है।

३४—रपटीली = फिसलने जैसी। झकोला खाय = झूमती है। पैंड-पैंड = पग पग पर। बटमार = लुटेरे से। जुगन........लाय =

युगों से पृथक् हुई मीराँ को लाकर प्रभु ने अपने निज धाम में स्थान दिया।

पाठान्तरः—

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सतगुरू दिया बताय।
जुगन जुगन से बिछड़ी मीराँ, घर लीन्हों मैं पाय ॥४॥
(लीन्हीं कंठ लगाय)

भावार्थः—गली तो·········कैसे जाय=प्रभु से-प्रियतम से मिलने की तीव्रोत्कंठा होने पर भी बीच में अनेकानेक बाधायें हैं जिनमें ४ प्रधान है। बाधायें क्या हैं, प्रभु के पादपद्मों तक पहुँचने के अथवा मानव जीवन की कृतार्थता के लिये जो ४ प्रकार के साधन प्राप्त होने चाहिये वे सुलभ नहीं हो पा रहे हैं इसलिये बाधायें। सांसारिक मायाजाल और मोहादिक प्रपंच के कारण धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये ४ पुरुपार्थ नहीं सध पाते, ज्ञान, कर्म, भक्ति और योग में से किसी मार्ग का अवलंबन नहीं हो पाता, विवेक, वैराग्य, षड्सम्पति और मुमुक्षुता ज्ञान के इस साधन चतुष्ट्य को धारण करने की क्षमता नहीं और प्रेमा-भक्ति के ४ मुख्य अंग—नाम, रूप, लीला व धाम की साधना भी नहीं बन पड़ती, तब प्रभु की प्राप्ति कैसे सम्भव हो और परमार्थ पथ पर किस प्रकार प्रगति हो! इन्हीं भावों को मीरांबाई ने बड़ी ही रहस्यमयी और सरस पद्धति से इस पद में व्यक्त किया है। जीव जाकर हरि से कैसे प्राप्त हो जब कि, (१) बीच की राह निष्कंटक और सरल नहीं (२) प्रियतम का रंगमहल समतल भूमि पर बना हुआ नहीं और न सुगम ही है, (३) मार्ग में स्थान स्थान पर पेहरे और लुटेरों के कारण मार्गाव-रोध का भय है, (४) प्रियतम का स्थान अत्यधिक दूर है। ये चारों बातें प्रतिकूल होने से प्रिय मिलन के कार्य में रुकावट उपस्थित करती हैं। ऊंची नीची·········डिग जाय=प्रथम बाधा राह की, जोकि इस प्रकार फिसलने जैसी बनी है कि पैर टिक ही नहीं पाता बड़ी सावधानी से पैर रखने पर भी बार बार खिसकता जाता है अर्थात् लोभ, मोह, तृष्णादि बाह्य सांसारिक प्रलोभन इस प्रकार मायिक और प्रभावशाली हैं कि मन को बार बार चंचल और विचलित कर देते हैं। ऊँचा

नीचा""""""खाय=दूसरी बाधा प्रियतम का महल जोकि बहुत दूर उँचे और ऐसे ऊबड़ खाबड़ स्थान पर बना है कि उस कठिनतम पथ से चलकर अन्त तक ऊपर चढ़े जाना अत्यन्त ही दुष्कर है, यहाँ तक कि बीच बीच में 'आगे चलें कि पीछे हटें' चित्त में यह व्यामोह होने की आशंका रहा करती है अर्थात् ध्यान के समय पूर्व संस्कार बीज प्राणों की गति में एक रूप होकर चित्तवृत्ति को स्थिर कर देते हैं जिससे अधःपतन होने का भय बना रहता है। कोस कोस""""मार=तीसरी बाधा मार्ग में स्थान स्थान पर पहरे लगे हैं और लुटेरों द्वारा लुटने का भी भय है अर्थात् साधन में शरीर व्याधि आलसादि रजोगुणी व तमोगुणी संस्कार प्रवृत्ति भी अन्तराय रूप है। या विधना""""""गाँव=चौथी बाधा प्रियतम का गाँव सुदूर प्रदेश में है अर्थात् भव बन्धन कारक संस्कार मिट जाने जितनी अवधि तक साधन को अविच्छिन्न रूप से निरन्तर निभाते जाना अत्यन्त कष्ट साध्य है। मीराँ""""लाय=अन्त में मीरांबाई कहती है कि सतगुरू की कृपा से गलियों के द्वार खुल गये और प्रभु ने तब जन्म जन्म से बिछड़ी हुई मीराँ को अपना कर उसे अपना सान्निध्य प्रदान किया अर्थात् सतगुरु की शरण लेने से और उनके उपदेशानुसार आचरण व साधन द्वारा ही जन्म जन्म का बिछुड़ा हुआ जीव परमात्मा को प्राप्त होता है।

विशेषः—यह निर्गुण भाव का पद है। मीरांबाई के अन्यान्य कई पदों की भाँति इसमें भी रहस्यवाद झलक रहा है। अष्टांग योग ही की साधना विधि के अनुसार इसमें बड़े ही सुन्दर, रहस्यमय और भाव-भरे शब्दों में जीवात्मा की परमात्मा से मिलने की प्रक्रिया प्रदर्शित की गई है। जीव परमात्मा से मिलना चाहता है परन्तु काम-क्रोधादि रजोगुणी व तमोगुणी वृत्तियों तथा चारों ओर मोह व मायाजाल के कारण उसे साधन पथ पर अग्रसर होना अत्यन्त दुष्कर हो जाता है। अन्त में सतगुरू की शरण में जाने से ही वह जन्म-मरण के-चक्र से मुक्त होकर अपने आनंद स्वरूप को पा लेता है। सारे पद का यही मथितार्थ है।

गूढार्थः—आत्मसाक्षात्कारेच्छुक साधक संसार में सभी प्रकार से साधन के प्रतिकूल परिस्थिति को देख कर अर्थात् सब ओर से प्रगति

के द्वार रुद्ध पाकर व्याकुल होकर वह पुकार उठता है—'गलितो ·········जाय'। योग साधन के अभ्यासी को सर्वप्रथम यम-नियम सम्पन्न होना चाहिये। यम-नियम का पालन न करने वाले को त्रिकाल में भी योग की प्राप्ति नहीं हो पाती। सर्वदा व सर्वत्र किसी के भी द्वारा अविच्छिन्न रूप से इनका पालन किये जाने पर ये महाव्रत कहलाते हैं। सभी संप्रदायों में इनका महत्व माना है। यहाँ तक महिमा है कि सम्पूर्ण योग को न साधकर केवल यम-नियम का ही पूर्ण रूप से आचरण किया जाय तब भी मानव-जीवन संसार में महान आदर्शभूत होता हुआ कृतकृत्य हो जाता है। इनके साधन के समय में आने वाली बाधाओं से बचने के लिये उपर्युक्त सू० ३३ और ३४ में बड़ी ही मार्मिक युक्ति बताई है। इन्हीं सब बातों की ओर लक्ष्य करके ही प्रथम चरण में कहा गया है:—ऊँची नीची·········डिग जाय। स्थान्युपनिमन्त्रणे संङ्गस्मयाकरणं पुनरनिष्ट प्रसङ्गात्॥ यो० सू० विभूति० सू० ५१ के अनुसार साधन काल में क्रमशः पांचभौतिक, पंच तन्मात्रिक, पञ्चभाव और तीन गुण सम्बन्धी विषयों का अर्थात् इन चार स्थानों का और वहाँ के देवताओं का साक्षात्कार होता है, इन्हें स्थानियां का उपनिमंत्रण कहते हैं। चाहे किसी का साक्षात्कार हो उस समय उसके संग का आनन्द लेना ठीक नहीं क्योंकि इससे पुनवरि अनिष्ट की सम्भावना होती है। चरम लक्ष्य तक पहुँचने पर्यंत यदि उत्तरोत्तर गुण-वितृष्णा (वैराग्य) होती गई तो कुल वासनाओं के शेष हो जाने से वह विराम-प्रत्यय, निवृत्तिमार्ग कहलाता है-(समाधि-सू० १८) परन्तु जैसा कि ऊपर कहा जा चुका, विषयों के साक्षात्कार में योगी यदि आसक्त हो गया तो 'भव प्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम्' (यो० सू० समाधि १९) के अनुसार उसका भव-प्रत्यय अर्थात् संसारासक्ति-कारक प्रवृत्ति मार्ग होता है। इन्हीं सब भावों को लेकर मीरांबाई ने दूसरे चरण में गाया है, उचा नीचा·········झकोला खाय।

"व्याधिस्त्यानसंशय प्रमादालस्या विरतिभ्रान्ति दर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थित-तत्त्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥३०॥"

रोग, चित्त की अकर्मण्यता, सन्देह, असावधानता, जड़ता, विषय वासना, भ्रमदृष्टि, साधन में सिद्धि न होना और चित्त की अस्थिरता—ये सब चित्त को विक्षिप्त करने वाले अन्तराय हैं।

दुःखदौर्मनस्याङ्ग मेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः ॥३१॥

साधन काल में शरीर में दुःख होना, साधन जमता नहीं जानकर हताश होना, शरीर का स्थिर न रहपाना और श्वास-प्रश्वास का चलना, ये सब पूर्वोक्त बाधाओं के सहकारी हैं"।

साधन काल में उपर्युक्त जो सब विघ्न आते हैं उनकी ओर संकेत करते हुए तृतीय चरण पूर्वार्द्ध में बताया है 'कोस······बटमार'।

इन सब अंतरायों का समाधि० सू० २६ और ३२ के अनुसार '(प्रणव) नामजप' और 'एक तत्वाभ्यास' के साधन द्वारा ही निरोध करना होता है। यह साधन अत्यन्त कठिन होने से तथा अन्नमय, प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय शरीरों के संयमन होने पर्यंत इसे निभाना अत्यन्त दुष्कर और कष्ट साध्य होने से ही तृतीय चरण-उत्तरार्द्ध में कहा है, 'या विधना·········गाँव।'

सतगुरू की कृपा से दृढ़ साधना द्वाराजन्म जन्मांतर पर्यन्त अनेकानेकायोनियों में भटकता फिरनेवाला जीव अन्त में अपने लक्ष्य को पा लेता है। जीवात्मा का यही कैवल्य लाभ है। 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।' समाधि० सू० ३ के अनुसार इस समय जीवात्मा द्रष्टा बना हुआ अपने आनन्द स्वरूप में स्थित हो जाता है। इसी के लिये कहा है—मीराँ·········लाय॥

३५—घुनखाई=कीड़ा लगता है। औखद=औषधि। औखद······सचरै=औषधि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कमठ=कछुवा। कमठ······मरि जाइ=कछुआ, मेंडक और मछली सब एक साथ जल में ही बसते हैं और जल में ही उत्पन्न होते हैं, परन्तु जल के प्रति अपनी जिस अनन्य लगन के कारण जल से बिछुड़ते ही ज्यों मछली तड़प-तड़प कर प्राण त्याग करती है वह बात औरों में नहीं।

विशेषः—

चक्रवाक पक्षी वियोगें बाहती। जाले मज प्रति तैसें आतां।
जीवना वेगळें मत्स्य तळमळती जाले। मज प्रति तैसें आतां॥

चक्रवाक युगल की, रात्रि में वियोग की अवस्था में जो व्याकुलता भरी स्थिति होती है अथवा जल से बाहर किये जाने पर ज्यों मछली

तड़पती है, मेरी भी वही स्थिति हो रही है। महाराष्ट्र के भक्त कवि संत नामदेव के उपरोक्त अभंग में मीराँ जैसी ही भाव तीव्रता की अनुभूति व्यक्त होती है।

मौ बिरहिन की बात हेली बिरहिन होर जानि है।
या तनकूं बिरहा लगोरी हेली ज्यूं घुन लागो काठ।
निसदिन खाये जातु है, देखूँ हरि की बाट ॥
(महात्मा चरणदास)

उपर्युक्त चरण के साथ मीराँ के इस पद का (प्रथम चरण-उत्तरार्द्ध) कैसा चमत्कारिक भावसाम्य ही नहीं अपितु शब्द साम्य भी है सो देखने योग्य है।

श्री नारदभक्ति सूत्र में प्रेम रूपा भक्ति का लक्षण नारद मत से यह बताया है कि:—नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारिता तद्विस्मरणे परम व्याकुल तेति [नारद भक्ति सूत्र १६]। 'देवर्षि नारद के मत से अपने सब कर्मों को भगवान के अर्पण करना और भगवान का थोड़ासा भी विस्मरण होने से परम व्याकुल होना ही भक्ति है।' मीराँ के 'मैं हरिबिन क्यों जीयूंरी माय।' इस सारे पद में यही भाव झलक रहा है। वास्तव में सुंदरातिसुंदर और मधुरातिमधुर उन प्यारे श्यामसुन्दर की अपूर्व प्रभामयी और सुधामयी छटाके अनुपम दर्शन हो जायँ तो फिर संसार में और ऐसी आनंदमयी कौन स्थिति है जो उसका विस्मरण करा सके। जिसने एक बार भी उनकी बाँकी छटा का—उस दिव्य-रूप-सुधा का आस्वादन कर लिया क्या उसका फिर कभी सांसारिक वस्तु में चित्त लग सकता है!

मीराँ के पद २१ और ५० (इसी विभाग में) को भी विचारिये।

३६—पाठभेद:—टेर-हरिमन वज्र कियो री सजनी।

४१—**विशेष:**—विरही जनों की सृष्टि सर्वथा न्यारी ही हुआ करती है। प्रियतम के विरह में उन्हें सभी बातें विपरीत हो जाती हैं, यहाँ तक कि शीतल, कोमल और सुधामयी रश्मियों युक्त चन्द्रमा भी उन पर अग्नि वर्षा करता सा उन्हें प्रतीत होता है। साहित्यिक संसार में सुधाकर का बहुत अधिक महत्व है। इस पद की विशेपता यह है कि

इसमें रजनी नाथ की भर्त्सना न कर उसके साथ मित्रता युक्त व्यवहार किया गया है। सूर्य और चन्द्र इन दोनों को नित्य, सनातन और अखंड प्रवासी माना जाता है। प्रियतम चाहे कितने ही दूर क्यों न हों उन पर तथा उनके स्थान पर इनकी दृष्टि पड़े बिना नहीं रह सकती। इसीलिये ज्यों महाकवि कालीदास के 'मेघदूत' में यक्ष ने मेघों को दूत बनाकर उनके द्वारा अपनी प्रियतमा के पास संदेश भेजा था त्यों मीरांबाई ने यहाँ चन्द्रमा को संदेश वाहक बनाया है। प्रथम तो पियाजी की बातें उससे सुनने के लिये उसका आव्हान किया है, परन्तु उससे जब कोई संतोषकारक उत्तर नहीं प्राप्त हुआ और प्रियतम के वज्र हृदय के द्रवित होने का कोई प्रमाण नहीं प्राप्त हुआ तब निशानाथ के साथ उसे यह करुण सन्देश भेजने को बाध्य होना पड़ा है।

भावार्थ:—कनक कटोरे·········पिला जाओ=जब वैसे ही श्यामसुन्दर के बिना प्राणों का देह में रहना असम्भव सा हो रहा है और सब बातें विष सम–अरुचिकर हो गई हैं तब उससे तो यह कहीं अधिक श्रेयस्कर है कि प्रियतम अपनी रूप माधुरी एक बार अंतीम क्षण में चखाते हुए स्वयं अपने ही हाथ से उसे विष का प्याला पिला जायँ। चुन चुन······जला जाओ=श्यामसुन्दर के बिना झुर झुर कर विरहाग्नि में जल मरने की अपेक्षा तो क्या ही अच्छा हो कि अंतिम घड़ी में अपने मधुरातिमधुर और देवदुर्लभ दिव्य दर्शन और स्पर्श कराते हुए प्रियतम स्वयं अपने ही हाथों से उसे जला जायँ। जल बल······बुहा जाओ= और जब जलकर इस देह की भस्म हो जाय तब स्वयं श्याम-घन वर्षा बरसाकर उस अपने शीतल और कोमल प्रवाह के साथ साथ उसे बहा देना ताकि विरहाग्नि से बनी भस्म अन्त में शीतल और मधुर स्पर्श द्वारा कृत-कृत्य हो जायँ। मीराँ······बुझा जाओ=मीरांबाई कहती है– हे प्रभो, हे प्रियतम श्यामसुन्दर! तुम्हारे बिना मेरे हृदय में जो विरह-ज्वालायें भभक रही हैं, कृपा कर उन्हें किसी भी प्रकार से सदा के लिये शान्त कर देना, या तो साक्षात् प्रकट होकर अपने ही हाथ से इस देह का अन्त ला करके अथवा साक्षात् दर्शन देकर इसे अपने हृदय से लगा कर इसके विरह-ताप को मेटकर।

देखिये पद–विभाग–१४–जोगी–प० सं० १५।

४३—जानि······बाती=बीती बात को—किसी रहस्य को लेकर ही उन्होंने मौन धारण कर रखा है ।

४४–पद पाठान्तरः—

पतियां में कैसे लखुं । लिख्यौ री न जाय ॥०॥
कलम भरत मेरो कर कंपत है । नैन रहै झड़ लाय ॥१॥
बात कहूँ तो कहत न आवे । जीव रयों डर राय ॥२॥
बिपत हमारी देख तुम चाले । हरी यो हरिजी सूं जाय ॥३॥
मीरॉं के प्रभु सुख के सागर । चरण की कवल रखाय ॥४॥

अन्य पाठान्तरः—

कैसे लिखूँ में सजनी, पतियां लिखी न जाय ॥०॥
कलम भरत मेरो कर कंपत है, शब्द से हिरदो भराय ॥१॥
बात कहुँ तो मोरी जिव्हा चलत ना, नैणा से आंसु व्हाय ॥२॥
किस विध सुमरूं ध्यान धरूं में, कंपे मोरी काय ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, ये दुःख ना बिसराय ॥४॥

४५–पिव······बिहाइ=प्रिय प्रतीक्षा में ज्यों त्यों कर काल व्यतीत करती है ।

विशेषः—इधर मीराँ कौए के साथ पत्रिका भेजती है उधर विद्यापति की गोपी भी अपनी पत्रिका किसी के साथ भेजने को व्याकुल है:—

के पतिआ लए जाएत रे मोरा पियतम पासे
हिय नहिं सहए असह दुख रे भेल साओन मास ॥

४६—तोड़े=तोलता है, जाँचता है । बालूडारी=बालक की । चेजे लागे=चुगने लग जाते हैं । टाँडा=वालध–व्यापार की वस्तुओं से लदे हुए बैलों आदि पशुओं का समूह ।

भावार्थः—संसार के प्राणी दिन भर के परिश्रम के पश्चात् जब रात्रि को सो जाते हैं तब विरहिणी ही एकमात्र प्रिय चिन्तन में बैठी बैठी जगा करती है । इसके अतिरिक्त वैसे तो प्रजा रञ्जन की चिन्ता में राजा, बार बार रोते हुए नन्हें बच्चों को सम्हालने वाली माता, एकान्त

शान्ति में भगवद् भजन करने वाले योगी-मुनि व साधु-संत, प्रिय-विरह की व्यथा में चकवा-चकवी और अपने योग-क्षेम की तथा अपने टाँडे की रक्षा की चिन्ता में बनजारे लोग भी रात्रि को जगा करते हैं परन्तु प्रातः काल होते ही ये सभी तो अपने अपने व्यवसाय में लगकर रात्रि की जागरण-व्यथा को भूल जाते हैं, परन्तु एकमात्र बेचारी विरहिणी ही ऐसी है कि जिसे न दिन में चैन न रात्रि में ही।

४७—बाण=स्वभाव। दाँवन की=दामन, पल्ला।

पद पाठान्तर:—

दोई दोई नेण कीयो नहीं माने,
नदियां रे उलटी सावन की।
कोई कहदो सांवरियो,
मारे घर आवन की ॥०॥
हां ये म्हारी हेली संगवाली से'ली,
पांख नहीं उड़जावा की ॥१॥
दुखडारी वात सांवरा कणी आगे ना कूँ (कहूँ),
नहीं औरां ने सुणावा की ॥२॥
आप न पधारो पतियां न लिख भेजो,
ये बातां ललचावा की ॥३॥
बाई मीराँ के हरि गिरधर नागर,
दासी बन जावूं हरि चरणां की ॥४॥

और भी-'लिख......भेजै' के स्थान पर 'पतियाँ न भेजै'। ३-चरण पूर्वार्द्ध—'कहा कहूँ कित जाऊं मोरी सजनी'।

इस पद के तृतीय चरण पर विचारिये:—

मन करे तहाँ उड़ि जाइअ
जहाँ हरि पाइअ रे।
प्रेम-परस मनि जानि
आनि उर लाइअ रे॥
(विद्यापति)

४८—पतीजे = विश्वास करेगा। अंचरो = आँचल, पल्ला। क्या ······ दीजे = ऐसी मिथ्या बात में क्या धरा है।

४६—ऊनालो = ग्रीष्म ऋतु। ढोलन की = झलने की। पतियाँ ··· सावन की = पत्र पढ़ते समय, उसमें प्रियतम के आगमन के समाचार न पाकर, विरहाग्नि तीव्र हो उठी और नेत्रों से श्रावण की भरी नदियों के समान अश्रु धारा बह रही हैं। सियालो = शीत काल।

भावार्थः—मीरांबाई ने इस पद में पूर्वानुभूत गोपी भाव व्यक्त किया है। बृन्दावन को शीघ्र लौटने का वचन देकर जब से श्रीकृष्ण मथुरा पधार गये हैं तब से गोप ललनायें उनके विरह में दिन गिन रही हैं। प्रतीक्षा करते करते ग्रीष्म के पश्चात् वर्षा और तत्पश्चात् शरद आदि ऋतु परंपरा का कोई अन्त नहीं आता है। बीत रही अवधि में जबकि ऋतु विशेष के अनुकूल विविध प्रकार से उनकी सेवा करने के भाव हृदय में उमड़ उमड़ कर आते हैं तब उस परिस्थिति में, उनकी ओर से आई हुई पत्रिका, जिसमें कि उनके पुनरागमन का कोई सन्देश नहीं, गोप सुन्दरी उसे धैर्य पूर्वक पढ़ने का साहस ही कैसे कर सकती है!

५०—कान ····· होजाई = जैसे घुन खाई हुई बन में पड़ी लकड़ी को अग्नि सहज ही जला डालती है, वैसे ही सुदीर्घावधि से प्रिय विरह में छीज छीज कर अत्यन्त क्षीण हुई काया, प्रभु के दर्शन बिना अब तो शीघ्र ही भस्म होना चाहती है। पद-२१ और ३५ को भी विचारिये।

५२—उमावो = उमंग, उत्कंठा। नाभि न ········· साँसड़ियाँ = हृदय में श्वास नहीं ठहर पाता। आरत = तीव्र उत्कंठा। आँटड़ियाँ = आँट, उपेक्षा।

५३—पाठभेदः—(टेर) जाओ हरि निरमोहड़ारे। चरण-१, 'अब ····· रीत' के स्थान पर 'अब क्यों भये नचीत।'

५६—**विशेषः**—ब्रजभाव के परम रसिक महाकवि सन्त सूरदास भी प्रेमपथ पर चलते हुए यही अनुभव पाकर अपने तड़फते हुए हृदय से गा उठते हैं:—

प्रीति करि काहु सुख न लह्यो ॥०॥
प्रीति पतंग करी दीपक सों। आपै प्राण दह्यो ॥१॥

अलि सुत प्रीत करी जल सुत सों। करि मुख माँहि गयो ॥२॥
सारंग प्रीति करी जो नाद सों। सन्मुख बान सह्यो ॥३॥
हम जो प्रीति करी माधव सों। चलत न कछू कह्यो ॥४॥
सूरदास प्रभु बिन दुख दूनो। नैनन नीर बह्यो ॥५॥

श्री गोस्वामी तुलसीदास भी इसी में अपना स्वर मिलाकर संसारी-प्राणियों को चेतावनी देते हैं:—'काहू से नेह न करिये हो, नेह किया नीका नहीं, बिन पावक जरिये हो।'

मीराँ और सूरदास इन दोनों के पदों में इतना अधिक साम्य है कि भाषा की दृष्टि से कुछेक अक्षरों को छोड़ कर शेष पद प्रायः एकसा ही प्रतीत होता है। दोनों के ही प्रेम का लक्ष्य श्यामसुन्दर है।

गोस्वामी जी ने भी जीवन को कृत-कृत्य कराने वाले नेह की परिभाषा का स्पष्टीकरण कर दिया है:— तुलसि तन मन अरपि के निज नाम उचरिये हो।'

प्रेम क्या है वास्तव में सर्व भावेन अपने प्रेम पात्र को आत्म-समर्पण करने अथवा अपनी अनन्य लगन को निभाने के लिये अपने आप को न्यौछावर कर देने की साधना मात्र है।

पद में दिये गये पतंग, मृग और भ्रमर के दृष्टान्त सनातन काल से संसार में प्रचलित हैं। वास्तव में प्रेम-पथ के पथिक के लिये ये ही सच्चे मार्ग दर्शक हैं। इनकी अनन्यता, लगन, प्रेम और आत्मसमर्पण आदि अद्‌भुत गुणों के ही कारण ये साहित्य संसार में अमर हैं। दीपक को एक बार देख लेने के पश्चात् फिर पतंग कदापि धैर्य नहीं रख सकता। अपने आपको भस्मसात् कर देने पर्यन्त पुनः पुनः उड़ उड़ कर दीपक पर गिर पड़ने की ही उसकी एक मात्र साधना होती है। मनुष्य प्राणी से सदा चौकन्ना और भयभीत रहने वाला सरल भोला हरिण, एक बार सङ्गीत मय नाद के सुन लेने के पश्चात् अपनी चंचल प्रकृति को भूल कर एकाग्र चित्त हो स्वयं ही मृत्यु मुख में धँसता हुआ व्याध के बाण को सहकर अन्त में काल के वशीभूत होता है। इसी प्रकार कलि कलि पर मँडराने वाला भ्रमर, आसक्त होकर एक बार जब कमल पर बैठता है

तो फिर उसे, सूर्यास्त के समय कमल के मूँदे जाने की भी कोई सुधि नहीं रहती। कमल में बन्द हो जाने पर उसमें छिद्र करके बाहर निकलना भी इसलिये वह नहीं चाहता कि कहीं अपने प्रेम पात्र को तनिक भी व्यथा न हो। अन्त में किसी जल विहार करने वाले गजराज के द्वारा वह नष्ट हो जाता है।

जायसी ने भी यही कह दिया है:—प्रेम-पंथ जो पहुँचे पारा।
बहुरि न मिलै आइ एहि छारा॥

प्रेम-प्राप्ति का मूल्य बताते हुए महात्मा कबीर कहते हैं:—

प्रेम न बाड़ी नीपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचे, सीस देई ले जाय॥
जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं हम नाहिं।
प्रेम-गली अति साँकरी, तामें दो न समाहिं॥

वास्तव में इस प्रेम-गली में दो के लिये अवकाश ही नहीं। 'ध्याने ध्याने तद्रूपता' अथवा 'कीट-भृंग' न्याय से अन्त में अपने प्रियतम में मिलकर एकाकार होकर ही प्रेमी की साधना शेष होती है।

प्रेम मार्ग की सूक्ष्मता और दुर्गमता की ओर संकेत करते हुए भक्त कवि बोधाजी ने क्या ही सरस और सारगर्भित विवेचन किया है:-

अति छीन मृनाल के तारहु तें, तेहि ऊपर पाँव दै आवनो है।
सुई-बेह तें द्वार सँकीन, तहाँ परतीतिं कौ टाँडो लदावनो है॥
कवि 'बोधा' अनी घनीनेज हु तें, चढ़ि तापै न चित्त डगावनो है।
यह प्रेम को पंथ करार महा, तरवार की धार पै धावनो है॥

देवर्षि नारद रचित 'भक्ति सूत्र' में 'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्' इस ५१ वें सूत्र से लेकर ५५ वें सूत्र तक 'प्रेम' का जो स्वरूप बताया है वह भी बड़ा ही मननीय है।

५७—करवत=पूर्व काल में काशी में करवत लेने से (करवत द्वारा मस्तक कटवाने से) मुक्ति मिलने की प्राचीन काल से मान्यता चली आती थी।

५८—छाड़ि........चढ़ाय=प्रेम जोड़कर अध बीच में ही छोड़ गये। मधुपुरी=मथुरापुरी।

पाठ भेद:—

कित हू गये नेह लगाइ ॥०॥
प्रीति लगाइ मेरो मन हर लीनो, रस भरि टेर सुनाइ ॥१॥
हमसे बैर प्रीति कुबजा सें, हमैं न कहूँ सुहाइ ॥२॥
मेरे (तो) मन में ऐसी आ, मरूँगी जहर विष खाइ ॥३॥
हम कूँ छाँड़ गये बिसवासी, विरह की नाव चढ़ाइ ॥४॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनाशी, रहे मधुपुरी छाइ ॥५॥

५९—आखिर........अहीर=प्रेम में फँसाकर, हमें परवश बनाकर बीच में ही छोड़ जाना, यह क्या कोई समझदारी का अथवा कुलिनता का लक्षण है? अन्त में (श्यामसुन्दर) अपनी जाति पर ही तो गये—आखिर जाति के लक्षण थोड़े ही छिप सकते हैं।

६०—बाल=बालक। बिललात=बिलकती है।

विशेष:—आत्यंतिक विरह की स्थिति में जीना भी भार रूप हो जाता है पर जब पापी प्राण पिंड में से सहज निकलते नहीं तब कटारी किंवा विषादि बाह्य प्रयोग द्वारा हठ पूर्वक प्राणान्त करने की इच्छा अनिवार्य हो उठती है। देखिए, मीरांबाई के जैसे श्री राधा भी सूरदासजी के शब्दों में यही प्रलाप करती है:—

अब या तनहि राखि का कीजै।
सुनुरी सखी श्यामसुन्दर बिनु। बांटि विषम विष पीजै॥
दुसह वियोग विरह माधव के। कौन दिन हि दिन छीजै॥
सूरदास प्रीतम बिन राधे। सोचि सोचि मन खीजै॥

चरण० २ पर विचारिये:—

सपनेहु संगम पाओल,
रंग बढ़ाओल रे।

से मोरा बिहि बिघटाओल,

निन्द ओ हेराएल रे ॥ (विद्यापति)

६१—आवड़े=चैन पड़ता। ढँढोरा फेरती=डुग्गी पिटवाती।

विशेषः—प्रियतम के बिना विरहिणी के अन्तस्तल में रह रह कर ऐसी कसक उठा करती है कि उसे किसी भी स्थिति में चैन नहीं पड़ता। न खाना भाता है न नींद ही आती है। निरन्तर प्रतीक्षा ही प्रतीक्षा में व्याकुल हो झुर झुर कर, रो रोकर जब तन, मन, प्राण और नेत्र क्षीण हो जाते हैं तब उस असह्य अन्तर्व्यथा की परिस्थिति में, प्रीति करके आपत्ति मोल लेने के लिये हृदय में मधुर आत्म-ग्लानि युक्त निराशात्मक भाव हठात् कभी उदय हो जाय तो कोई आश्चर्य जनक नहीं है।

विचारिए:—

सोच फिकर सें भइ मैं बावरी नैंन गमाया साधां जोय जोय।
कहा तो करूँ रे मेरा पियु नहिं पाया, नयन गमाया साधां रोय रोय।

(कबीर)

६२—नाव्या फरीने=फिर से नहीं लौटे। मे'ली=छोड़कर। जई=जाकर।

६४—पातळिया=प्रीतम। वहेला=शीघ्र। जइ ने=जाकर। नाभि ......रचीलारे=कुंडलिनी शक्ति के जागृत होने के बाद प्राण शक्ति जब धीरे धीरे भृकुटी चक्र में जाकर ठहरती है तब नाना प्रकार के विचित्र दृश्य दिखाई देते हैं। सुखमना=सुषुम्ना। एनी=उसकी सुखमना......रासधारी=प्राण शक्ति सुषुम्ना में स्थिर होने के बाद ही हृदय के भीतर परमात्मा का व उनकी दिव्य लीलाओं का अनुभव होता है। घरेणुं=आभूषण। अवर=अन्य। मामेरां पूर्या=माहेरा किया। छाब......आवो रे=सामग्री लेकर शीघ्र पधार गये। साव= शुद्ध। शीवडावुं=सिलाऊँ। विंटाणा छे वरमाळेरे=वरमालाओं से लिपटे गये। कागळीयानो......न होती रे=उस दिन (उस समय में) कागद, स्याही और लेखिनी आदि लेखन सामग्री दुर्लभ थी। एटलुं= इतना। मधुरी......जागेरे=मधुर मुरली ध्वनि को सुनती हुई श्री राधा

की चित्त वृत्ति प्रिय प्रतीक्षा में सदा ही जाग्रत रहा करती है। भागे= मिटेंगे।

६५—अबोला=मौन। सीद=क्यों। लो छो=लेते हो। मारा= मेरे। अमे······अमारा=हम तुम्हारी हैं और तुम हमारे हो। टाळो= उपेक्षा कर। दो छो=देते हो। अमे······दुःख दो छो रे=हमारी की हुई सेवा का सुख लेकर भी हमें तो दुःख ही देते हो। जेणे=जिसने। पोतानी=अपनी। शो=क्या। पाइ ने=पिलाकर। उछेर्यां=पाला पोषा। विखडां=विष। अमृत······पाओ छो रे=प्रेमामृत पिलाकर जीवन दिया फिर अब विरह रूप विष क्यों पिलाते हो वरत=बाँस। वाढ़ी =काट कर। उंडा······जाओ छो रे=प्रेम रूप गहरे जल में हमें उतार कर अब हमारे जीवन के उस आधार को क्यों छीन लेते हो, ऐसे क्यों निर्मोही बन गये हो।

६६—छपछप लां······करूँ=मैं बात को क्यों छिपाऊँ। तेड़ाविया=बुलाये गये। धंधोळे=ढूँढ़ता है। पकड़······बाँह=मेरा हाथ पकड़ कर नाड़ी को टटोलता है। काळजड़ानी=कलेजे के। लेश= लेना। केड़ो लेइ=पीछा करके। नादेश=मत देना। अधर सुधा······ लेश= (और कोई औषधि न लेकर केवल) प्रियतम के अधर रूप गागर में से अधर-रस रूप गोरस ही लूँगी। पीवेश=पीऊँगी।

६७—**विशेष:**—शब्दों के कुछ हेर-फेर के साथ गो० तुलसीदास का भी ऐसा ही एक निम्न पद मिलता है:—

सखिरि मेरी नींद नसानी हो।
पीव को पंथ निहारते सब रैन बिहानी हो ॥०॥
सब सखियन मिलि सीख दई, मन एक न मानी हो।
बिन दरसन कल ना परे, जिव ऐसी जानी हो। ॥१॥
अंग छीन व्याकुल भई मुख मधुरी वाणी हो।
अन्तर वेदन विरह की पिया पीर न जानी हो ॥२॥
ज्यों चातक घन कों जपे मछली बिन पानी हो।
तुलसी पिव को बिनु मिले, सुधि बुधि बिसरानी हो ॥३॥

श्री युगल प्रियाजी भी अत्यन्त विरहाकुल होकर इसी स्वर में पुकार उठती है :—

नयननि नींद हिरानी,
व्याकुल व्हे सुध बुध सब भूली, हरी विरह की आग में।
जुगल प्रिया हरि सुध हू न लीन्हीं, कहा लिखी या भाग में ॥

७०—सागी=साक्षात्।

७१—पाठ भेद :—

तुम कहो ने जोशी मोहे राम मिलन कब होशी ॥०॥

(नया चरण)

पिया मिलन बिन झुरी झुरी, दुःख चिता करी शोषी ॥

७२—बाबल=पिता अथवा कहीं ताऊ भी। छीजिया=क्षीण हो गया। करक=हड्डियाँ। गळ आहि=गले में आकर। आँगळियाँरी=अंगुलियों की। मूदड़ी=अँगुठी। साम्हले=सुनेगी। खिण=क्षण। ज्याँ देसाँ=जिस देश में।

भावार्थः—माँस·········बाँहि=श्यामसुन्दर के आत्यन्तिक विरह में अन्नादि के प्रति सर्वथा अभाव हो जाने के कारण काया ऐसी क्षीण-कंकाल (हड्डियों का ढाँचा) हो गई कि अंगुली में पहनी अंगुठी हाथ में आने लगी। काढ़·········खाय=विरहाग्नि में जलते हुए मेरे कलेजे को, हे काग ! प्रियतम के समक्ष ले जाना और उनको मेरा हृदय बताकर भले ही खा जाना।

विशेषः—इस पद के चरण १ व २ से तुलना करिये:—

पिय कारन पियरी भई हो लोग कहैं तन रोग।
छह छह लांघन मैं कियो रे पिया मिलन के जोग ॥
कबीरा बैद बुलाइया, पकरि कै देखी बाहँ।
बैद न वेदन—जानइ, करक—करेजे माहँ ॥

(कबीर)

७३ भावार्थः—योग साधन में सुषुम्ना नाड़ी का बहुत अधिक महत्व

है। सुषुम्ना मेरु दण्ड में रहती है। शूली सी खड़ी उस सुषुम्ना के उच्च स्थान अर्थात् शून्य-शिखर-गगन मंडल पर चित्तवृत्ति के स्थिर होने पर ही साधक को इष्ट सिद्धि होती है। इसी को लक्ष्य करके मीरांबाई कहती है:—'सूली········विध होय' और 'गगन········मिलणा होय।'

पाठान्तर:—अंतिम 'मीराँ को दुख तब ही मिटैगो'।

अधिक चरण :—'सुख संपत में सब कोई साथी,
विपत पड्याँ नहिं कोय॥

विशेष:—वास्तव में प्रेमी के हृदय की कसक को उसके अथवा उसके प्रियतम के सिवा और जान ही कौन सकता है!

किसी प्रेमी गुजराती कवि ने क्या ही सुन्दर और यथार्थ कहा है:—

'प्रलापो प्रेमीना दिलना सनम जाणे धणी जाणे।
तूंहि तूंहि नाद घायलना घवाया होय ते जाणे॥
विलापो जानकीजीना बुझे शुं लोक लंकाना।
पिछाने कोई हनुमाना खरेखर रामजी जाणे॥१॥
मीराँ ना प्रेम आँसू ने कठिन राणो जी शुं जाणे।
बनेलूँ घेलूँ ए जाणे खरेखर कृष्णजी जाणे॥२॥

प्रेमी के प्रलापों को एकमात्र उसका प्रियतम अथवा जीवन-सर्वस्व-स्वामी ही जान सकता है। प्रेमी के तड़फते हुए हृदय से जो निरंतर अपने प्रियतम के नाम की पुकार हुआ करती है उसे तो केवल वही जान सकता है जो प्रेम-बाण के लगने से घायल हो चुका हो। भगवान रामचन्द्रजी के लिये श्री जानकी जी के विलापो को—उनके विरह के मर्म को, लंका के लोग समझ ही कैसे सकते हैं, थोड़ा बहुत हनुमानजी जान सकते हैं और पूर्ण रूप से तो एकमात्र राम ही जानते हैं। श्रीकृष्णानुरागिणी मीराँ के प्रेमाश्रू को भला पाषाण हृदय राणा जान ही क्या सकता है। उसी के जैसा कोई पगला हृदय ही उस प्रेम-रहस्य को जान सकता है और पूर्णरूपेण तो एकमात्र श्यामसुन्दर ही जान सकते हैं।

धना भक्त भी यही कहते हैं:—'राम बाण वाग्यां होय ते जाणे।'

प्रेम से घायल हृदय घायल की गति को जान तो सकता हैं, परन्तु न तो वह अपने न अन्य किसी घायल के हृदय की परिस्थिति को समझ सकता है।

पूछा जो मैंने दर्दे मुहुब्बत से 'मीर' को।
रख हाथ उसने दिल पै टुक इक रो दिया॥

प्रेम की कसक कोई कहने-सुनने की वस्तु नहीं। 'मूकास्वादनवत्' (नारद भक्ति सूत्र ५२) इसकी स्थिति है।

प्रेम घाव दुख जानन कोई। जेहि लागे जानै पै सोई॥
(जायसी)

उपचार के लिये घायल मीराँ बन बनमें ढूँढती फिरती है पर,

प्रेम बान जेहि लागिया, औषध लगत न ताहि।
सिसकि-सिसकि मरि-मरि जियै, उठै कराहि कराहि॥
(कबीर)

न उसे औषधि ही मिलती है और न कोई ऐसे वैद्य ही प्राप्त होते हैं जो उसका ठीक ठीक उपचार कर सके। भव-व्याधिग्रस्त संसारी जनों के पास प्रेम-व्याधि की औषधि हो ही कैसे सकती है। मीराँ का उपचार तो 'मीराँ की प्रभु पीड़ मिटै जब वैद्य साँवरियो होय' एक मात्र श्यामसुन्दर ही कर सकते हैं। वे ही सच्चे वैद्य हैं। वे ही प्रियतम साक्षात् आकर जब दर्शन दें तभी उसकी व्याधि समूल मिट जाती है।

७६—देख्यां·········पतीज्यौ=दर्शन होने पर ही प्राणों को शान्ति होगी।

पाठभेद:—

थे मेरी सुध ज्यूं जाणौं ज्यूं लीज्यौ॥०॥
ब्रिह लगी मोय कछु न सुहावे। तन धन यूं ही छीज्यौ॥३॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनाशी। मिल बिछड़ न जिन कीज्यौ॥४॥

अधिक चरण :—

मैं चेरी चरणारविंद की । कृपा रावरी कीज्यौ ।।

७७—**विशेषः**—महात्मा सूरदास का भी 'अखियाँ हरि दरसन की प्यासी' इस टेर का एक ऐसा ही पद है। दोनों के पदों में भाव-साम्य ही नहीं अपितु कहीं कहीं शब्द-साम्य भी है। श्याम-दर्शन की पिपासा के न मिटने की परिस्थिति में दोनों ही काशी में जाकर करवत लेने की इच्छा करते हैं। 'सूरदास प्रभु तुमरे दरस बिन ले हौं करवत कासी'। प्राचीन मान्यता है कि काशी में करवत द्वारा प्राण-त्याग करने के उस अंतिम क्षण में जो भी कामना की जाती है पुनर्जन्म में वह पूर्ण हो जाती है।

७८—पाठ भेद:—

विरहनी बावरी सी भई ।।०।।
उँची चढ़ चढ़ अपने भवन में, टेरत हाय दई ।।१।।
ले उँचरा मुख अँसुवन पूँछत, उघरे गात सही ।।३।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बिछुरत कछु ना कही ।।४।।

७९—जा घट······मां नै हो=कोई विरही अथवा भक्त जन ही (विरह-व्यथा का) यह अनुभव कर सकता है। करद=शस्त्र विशेष। हरिबिन······काँनै हो=विरह-रोगी के अंतःकरण में जो अपने इष्ट प्रियतम बस रहे हैं वास्तव में वेही वैद्य और वे ही इसकी औषधि भी जानते हैं परन्तु प्रत्यक्ष रूप से वे आकर दर्शन दें तब न? उनके बिना—उनके विरह में संसार के सभी सुख, दुःख रूप हो गये हैं। दुगधा ······माँनै हो=(ज्यों) वन में चरती हुई गो की चित्त-वृत्ति घर पर के अपने बछड़े में ही लगी रहती है, (अथवा ज्यों) चात्रग········· उकलांणै हो=स्वाती बूँद के लिये तरसता हुआ चातक अत्यन्त व्याकुल 'पीऊ पीऊ' पुकारताहै, विरहिणी की वही अवस्था हो गई है।

८०—मया=महर, कृपा। खानाजाद=सेवक, दासी। सेज······ भारी=(प्रियतम के विरह में) शय्या सिंह के समान मानों खाने को दौड़ती है और रात्रि भी नाग के विष समान दाहक हो गई है। दीपग

······बिचारी=दोनों ओर से जलने वाले दीपक के समान व्याकुल विरहिणी के तन और मन दोनों ही जलते हैं।

८२—पांचूँ······धरावै हों=विरह के कारण पाँचों इन्द्रियाँ मेरे वश में नहीं अर्थात् नेत्र उनकी मधुरी छबी के दर्शन करने, कान उनके कण्ठ और मुरली स्वर को सुनने, जिह्वा उनसे प्रेम वार्ता करने, प्रेम-सुधा पीने और अंग अंग उनके दिव्य स्पर्श को पाने—उनसे लिपटने को अत्यन्तातुर हो रहे हैं परन्तु वर्षा काल में नव जलधर को देख कर वर्षा की आशा के समान ज्यों त्यों धैर्य धारण करते हैं। अरदास=माँग, विनती। तलफ······समावै हो=प्रियतम के बिना तड़पते हुए प्राणों की 'पिया पिया' की पुकार में—उस प्रिय स्मरण में ही एक ऐसा सुधामय—आनन्दयुक्त आस्वाद है कि हृदय में निरन्तर रटन लगी रहने पर भी तृप्ति ही नहीं हो पाती और अधीरता बढ़ती जाती है। निरदावै=निर्द्वन्द विथा=व्यथा। ऐसी······गुमावै हो=हे प्रभो हमें ऐसी औषधि प्रदान करो कि सारी विरह-व्यथा मिट जायँ।

८३—ओलगिया=दूर के प्रवासी। आभ=अभ्र, बादल। नैणाँ-नीर······लायाजी=बादल में जल के समान नेत्रों में जल भरा हुआ है और वर्षा की झड़ी के समान झरना लग रहा है अर्थात् अहर्निश अश्रु धारा बह रही है। रतवँती········बिलखायाजी=अपने स्वामी की अनुपस्थिति में ज्यों ऋतुमती नारी हृदय-व्यथा के कारण मलिन-मुख-कांति लिये फिरती है।

८४—अलीसुत=भँवरा। जल सुत सूँ=कमल से।
भावार्थ के लिये देखो पद—५६।

८५—अगम=गहन, (विरह के कारण) कठिन। अगण=अगण्य (प्रियतम के बिना दीर्घावधि के बीत जाने से अब दिन वा मास गिनने में कोई रस नहीं)। अगहन=मार्गशीर्ष। शी=शीत। जाड़ो=शीत, ठंड। केसू विशेष=वसंतोत्सव में श्याम उपस्थित हो तभी विशेषता है। लोभान=लुभाता है। ताती=गरम। चलत······ लिपात=अत्यन्त गरम लू प्रसर रही है। टूकत=कुहकता है। खाँच्या नेह=प्रेम खींच लिया। अकारथ=व्यर्थ।

विशेष:—यह बारामासी है। प्रिय-विरह में बारह महीनों में ऋतु विशेष के कारण उमड़ने वाले भिन्न-भिन्न मनोभाव इसमें व्यक्त हैं।

८६—दीपक·····बाती=दीपक में बाती (बत्ती) जल चुकी, दीपक ही ने बाती को चुग लिया अर्थात् जिन श्यामसुन्दर के कारण जीवन आलोकित था स्वयं उन्हीं ने हमारे सुख को हर लिया। अँसुअन······बनाई=निरन्तर अश्रु पात के कारण नेत्रों की ज्योति चली गई जिसे काला-धौला सब समान हो गया।

८७—सोन चड़ी=पक्षी विशेष, चिड़िया (जिस पर से शकुन देखा जाता है)।

८६—जोग=योग्य। आपरा घाल्या=आपके कारण, आपके कर्मों से। टोना=ताना, व्यङ्ग। चंटियो=छोटी लकड़ी। नीसरया=निकले हैं। पूरबला=पूर्व के। संजोग=संयोग, संस्कार। लांबापाना·········एकदूर=प्रतीक्षा करते करते इमली के पत्तों जितने अनन्त दिन बीत गये और खजूरी के तीक्ष्ण पत्तों के समान हृदय को चुभती हुई और क्षण क्षण में चित्त को अधिकाधिक विकल कर देने वाली उनकी स्मृति में यह दीर्घावधि व्यतीत हो गई परन्तु अब तक भी यह निश्चय नहीं हो पाया कि श्यामसुन्दर समीप हैं अथवा दूर अर्थात् मिलन की घड़ी निकट है अथवा बहुत विलंब के अनन्तर।

९०—**विशेष:**—यह बारामासी का पद है। देखिये पद सं० ४६।

ओळ्यूँ=याद।

९५—पाठभेद:—

विरह दुखारी मैं तो बन बन दोडी ॥
प्राण तजूँगी लूंगी करवत कासी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
हरि चरणा की दासी ॥३॥

९७—पेस = समर्पण । ब्दीती = बीत गई । पंडर = श्वेत ।

पाठान्तर:—(टेर) कह ज्यो म्हारा रमइयाने आज्यो म्हारे देश ॥
अंतिम चरण में—मीराँ के···मिलोगे, मटगो मनको कलेश ॥४॥

९८—कुरळहे = कूकते हैं । दूरी जिन मेलै हो = (नदियाँ भी अपने प्रियतम सागर से मिलने दौड़ती हैं तो) मुझे ही दूर मत रखना अर्थात् प्रिय-मिलन से वंचित मत रखना । झेलती = ग्रहण करती है । पाला=हिम । फागाँ=होली के गीत । बणराय=वृक्ष, लकड़ी । ऊपजी=तीव्र उत्कंठा) जगी । फूलवै = प्रफुल्लित होते हैं । काग······गया = शकुन के लिये काग उड़ाते उड़ाते दिन बीत गये ।

९९—होय·········सपेद = (विरह में) अंग कान्ति फीकी पड़ गई ।

१००—कब को·········चितारयो = किस बैर का बदला लिया । दाध्या = जले हुए । लूण = लवण ।

१०१—लागी·········जाणै = जिसे लगी है वही जानता है । सीर = साझा, भाग । सदकै = समर्पण ।

विशेष:—इस पद में कहीं कहीं पंजाबी भाषा का प्रभाव दीख पड़ता है ।

१०२—गुलाली को चूड़लो=(कृष्ण) अनुराग की चूड़ी, प्रेम कंकण । सांचरया = विचरने निकले । सामां = सन्मुख । रळ·········मेळ = (आशा भरा सन्देश पाकर) चहूँ ओर उमंग भरा वातावरण होगया, तन-मन में प्रसन्नता की लहरें उठ रही हैं । म्हांने······बलमाय = (और सब चले गये पर) अपनी हंस गति के कारण बिलम्ब हो गया, मेरे मानस हंस ने मुझे (प्रियतम के रहस्यमय सन्देशानुसार प्रियानुसन्धान के लिये प्रेरणा करा कर) विलमा दिया, (प्रियतम की ओर से सन्देश

लाने वाले दूत) हंस के साथ इष्ट-वार्तालाप के कारण मुझे बिलम्ब हो गया ।

१०३ ओषद·········झारी=न तो मुँह माँगे मूल्य के औषधोपचार से कोई प्रभाव पड़ा, न झाड़-फूँक से ही कुछ हुआ। गारडू=तांत्रिक, ओझा। उलाँघत है घारो=(मन) कहे में नहीं, बल पूर्वक विरोध करता है।

१०६—धानूं=धणी, स्वामी।

१०७-मकन=मत्त हाथी। जैसे·········हमारी=ज्यों सर्प अपनी केंचुली का त्याग करता है त्यों (प्रेम कटारी के लगने से) मेरी भी काया पलट हो गई।

१११ पाठभेद:—

टेर, ऐसे जन जानन दीजै हो ।

आवो मीलो सहेलड्याँ बाथाँ सुख लीजै हो ॥

११२—साता=शान्ति, सन्तोष। फेरा-फेरी=जन्म-मरण का चक्र। चरननितर=चरण तल की।

११३ -हाजिर नाजिर=सेवा में तत्पर। कड़ी=अप्रिय। समँद=समुद्र में, भवसागर में। कहा·········धड़ी=अनेक भक्तों को जहाँ तारे वहाँ एक मीराँ का क्या भार !

पद पाठान्तर:—

थे तो पलक उघारो दीनानाथ मैं हाजर नाजर कद की खड़ी ॥टेर

लागी लगन मेरे सारे बदन में भीजुं खड़ी खड़ी ।
बाण विरह का ऐसा मारा प्रेम कटारी मारे कलेजे अड़ी ॥१॥

दिन नहिं चैन रैन नहीं निद्रा एक छिन कल न पड़ी ।
आप बिन्य अच्छा नहीं लागे अन जल लागे जाने जहर की डली ॥२॥

साजनियां बैरी बन बैठ्या लांजुं पड़ी पड़ी ।
आप बिना मेरी कोण लंघावे नाव समुद्र के बीच पड़ी ॥३॥

मीराँ दासी जनम जनम की हरजी से आन पड़ी ।
दे दर्शन मेरा प्राण बचाओ धन हो मेवाड़ा ठाकुर आज का घड़ी ॥४॥

११४—प्रोईने = परोवीने, पोकर, लगाकर ।

११५—सीस.........न्यारा = शरीर के कर्मों में विसंगतता आ गई, देह वश में नहीं ।

११६—बंध्या = बँधा है । संध्या = सन्धा है । अजासूत......... संध्या = ज्यों व्याघ्रों के बीच में बँधे हुए अजासुत अर्थात् बकरे की अथवा स्वाति बिन्दु के बिना, प्राणों पर शर सन्धानवत् पपीहे की जो स्थिति होती है वैसी प्रियतम के बिना विरहणी की । भई.........पान रे हरदी = प्रतीक्षा ही प्रतीक्षा में निराश होकर विरहिणी पीले सूखे पत्ते के समान अथवा हल्दीवत् फीकी-कान्ति हीन हो गई । पैंडो = माग ।

११८ च्यारि.........कहोजी = चार (बातें) सुनादी तो दस और सुनाओ ।

११६-मारूडा-मारूजी = प्रियतम पति । सनक सनक = शान्ति पूर्वक भीतर समाते हुए । बैन = वेणु ।

१२१—करवट = एक ओर से दूसरी ओर मुड़ कर लेटना । आन.........परभात = (आये तब) प्रभात हो गया ।

१२३—**विशेषः**—श्री कृष्णचन्द्र भगवान् के व्रज-त्याग के पश्चात् उनके विरह में चराचर सृष्टि के तड़पने का इस पद में बड़ा ही करुण वर्णन है ।

१२४—खुमार = (प्रेम का नशा) । अमल.........मोकूँ = बिना नशा किये ही नशा चढ़ गया । इचरज = आश्चर्य । या तनकी......... तार = इस देह रूपी वीणा में नाड़ियों के तार बाँध कर उसे बजाऊँ (प्रियतम को रिझाने के लिये) । समझ बूझ.........रिझवार = विचार पूर्वक किये गये किसी भी उपाय से प्यारे मिल जायँ तभी रिझने वाले (प्रियतम) वास्तव में रिझ गये ऐसा जाना जायगा ।

१२५—प्यारी = प्रियाजी, श्रीराधिकाजी । मांझल = मध्य । गात = अंग । मींडत = मलकर, मींजते हुए ।

१२६—बोहोरा = ऋणदाता ।

१२७—खोर=खौर, तिलक का प्रकार विशेष।

१२६—सो मद ········ नंदलाल=नंदलाल को भूलना नहीं, यह प्रमाद भक्त-जन न करें। काहू के ········ भाल=किसी का मंद भाग्य होता है, किसी पर कुछ कृपा हो जाती है और किसी पर तो वह पूर्ण रूप से रीझ जाते हैं।

१३१—पद ४७ को भी देखिए।

१३४—लाग ········ औसेर=प्रतीक्षा की जा रही है।

१३६—बालापन की ········ होय=पूर्व की स्वस्थ और सुन्दर काया शनैः शनैः क्षीण होने लगी। बालपने ········ खोय=युवावस्था में विषयोपभोग के कारण वृद्धावस्था के समय शरीर कान्ति हीन, जर्जर और रोग-ग्रस्त हो गया। लेनहार ········ होय=आयु क्षीण हो जाने पर अन्त समय में यमदूत जीव को लेने आये तब शरीर को श्मशान में ले जाने का समय आ गया।

१३७—वालीड़ा=प्रियतम। नैंण झरे ········ हार=टूट जाने से जैसे हार के मोती एक एक कर नीचे गिरते हैं त्यों नेत्रों से अश्रु झर-झर कर कंचुकी आदि वस्त्रों को भींजाते हैं। सुंवा=सोवें। जागतड़ाना जंजाल=जागृत में भी वही व्याकुलता।

१३८—बटाऊ=पथिक। बची ········ ओट=(अबतो) चरणों का ही आधार बचा है। सुरत=चित्तवृत्ति।

१४०—सालूड़ा में=दुशाले में।

१४३—प्राण ········ आरी=प्राण जाने की मुझे चिन्ता नहीं पर नाथ, आकर दर्शन देना। पनवारी=पान की वाड़ी।

१४४—तालावेली=आतुरता। लगी कोई ········ सूती=तुम सी किसी दूती की बहकावट से श्यामसुन्दर, मुझ सेज में सोती हुई को छोड़ चले। हरिजन=भक्तजन।

१४५—मुक्यो=छोड़ा। केम=कैसे। हवे=अब। मुजथी=मुझ से। नेड़लो=स्नेह। प्राण ········ छुटाय=प्राण जाने पर भी नहीं छूट सकता है। बालारे ········ बिसराय=बालपन में लगी हुई प्रीति हृदय से कैसे भूली जा सकती है। ओलखाय=बूझेगी।

१४६—मा = मत । घटे ········ तमनेरे = (यह) तुम्हें उचित नहीं जँचता ।

१४७—सरसव = सरसों (सूक्ष्म) । जेटलु = जितना ।

विशेषः—मीरांबाई संसार त्यागकर अपने प्यारे के पीछे जोगिन बन भटकती है तब किसी अबोध पथिक के जिज्ञासा करने पर वह उसे उपदेश करती है । एक प्रकार से यों कहा जा सकता है कि किसी की भी अवस्था अथवा परिस्थिति-विशेष को देख कर जनसाधारण की उसे जानने के लिये जो स्वाभाविक प्रवृत्ति हुआ करती है, पथिक उसी का प्रतिनिधित्व करता है । यही भाव इस पद में प्रकट किया गया है ।

भावार्थः—चाल्यो ········ सगाई = आत्म-कल्याण के लिये यत्नवान मुमुक्षु जनों का ही परस्पर में मेल हुआ करता है । अर्थात् सांसारिक मनोवृत्ति के साथ भगवदाभिमुखी मनोवृत्ति मेल नहीं खाती । उभी छे ········ लड़ी = अपने प्रियतम-कृष्ण के मिलन में प्रतीक्षा करते करते सूख कर क्षीणकाय हुई विरहणी को देखकर संसारी जन उसकी उस स्थिति के लिये उसके स्वजनों का ममत्व अथवा विरोध को ही कारणीभूत समझते हैं । मारे ········ वाटड़ली = अपने प्राण-वल्लभ श्यामसुन्दर की प्राप्ति के लिये उन्हीं की निरन्तर प्रतीक्षा में ही उसकी यह अवस्था होगई । डोलरनां ········ घड़ी = ज्यों सुगन्ध रहित केवल बाह्य चमक-दमक वाले गेंदे जैसे एक नहीं दस फूल भी उस सुन्दर, शोभायुक्त एवं सुगन्धित एक ही चम्पा कली की तुलना नहीं कर सकते और मूर्ख वा अबोध के साथ दीर्घ कालीन सहवास से भी ज्यों चतुर व रसिक की अल्पकालीन संगति ही श्रेष्ठतर होती है त्यों भक्ति पंथ-भगवद् प्रेम के आगे सांसारिक विषय सभी नीरस एवं अत्यन्त क्षुद्र हैं । पर रे ········ आपणी = जिस परस्त्री की प्रीति अत्यल्पकाल निभने जैसी तुष की धूनी के समान है, वह प्राण-पण से आत्मसमर्पण किये जाने पर भी किसी की नहीं हो सकती त्यों संसार के क्षणभंगुर विषयों से जीव को कभी शान्ति और सुख नहीं प्राप्त हो सकते । सोल ······ घरभणी = श्री मीराँ जी कहती हैं कि सात्विक भावों रूप शृङ्गार धारण कर समस्त साधनों के सिरमौर भगवत्प्रेम एवं भगवन्नाम की छत्रछाया ग्रहण करने से ही अन्त में प्रियतम-प्रभु की प्राप्ति होती है, तभी

"तदा द्रष्टु स्वरूपेऽवस्थानम्" (योगसूत्र समाधि सू० ३) के अनुसार द्रष्टा अपनी स्वरूप-स्थिति-आनन्द स्वरूप को प्राप्त होता है।

१५६—बोलात.........पास=विरहावस्था में कोयल का कुहुकना भी गलफाँस के जैसे प्रतोत होता है। जीवन=जल-स्वाति बिन्दु। कुरनां=टिटिहरी के, कुररी के। ईंडा=अण्डे। मेले=रखती है। जैसे.........पास=जिस प्रकार पिव पिव बोलने वाले चातक को स्वाति जलबिन्दु के लिये प्यास लगी रहती है, और ऊँचे उड़ती हुई टिटहरी का मन ज्यों सागर तट पर रक्खे हुए अण्डों में लगा रहता है विरहिणी मीराँ कहती है कि त्यों मेरा तन मन एक मात्र प्रियतम श्यामसुन्दर में ही लगा रहता है।

१६०—अलप तलप=स्मृति में तरस तरस कर। बार.........भावे=प्रति दिन विविध रसोई बना करती है पर अन्न पर तनिक भी रुचि नहीं रहती है। सेज.........आवे=प्रियतम श्यामसुन्दर के बिना सूनी शय्या पर नेत्रों में निद्रा नहीं आती है।

१६१—बगड़ पड़ोसण=निकट की पड़ोसिन। कदे=कब।

प्रथम चरण पर विचारिये:--

सून सेज हिय सालिए रे,
पिया बिनु घर मोयँ आजि ॥
(विद्यापति)

१६२--मेहुँडा=मेह, वर्षा। बूँद.........गाँसी=विरह के कारण वर्षा की बूँदें तीर की धार ज्यूँ प्रतीत होती हैं।

विभाग २ स्वजीवन

परम ध्येय—चरमगति को प्राप्त होने के लिये जन्मों से प्रारम्भ हुई यात्रा में स्वजीवन के प्रतिकूल—बाधक तत्वों में संघर्ष करना अनिवार्य हो जाता है।

भक्त, ज्ञानी एवं संत व महापुरुषों को भी स्वजीवन के प्रतिकूल परिस्थिति से बिना संघर्ष किये उस परमानंद की प्राप्ति नहीं हो सकी है।

* भूमिका *

★

प्राणी मात्र का भिन्न भिन्न जगत हुआ करता है क्योंकि 'भिन्न रुचिर्हिलोकः' इस उक्ति के अनुसार प्रत्येक प्राणी के विचार, भावना, कामना, रुचि, स्वभाव, स्वार्थ, परिस्थिति और वातावरण भिन्न भिन्न हुआ करते हैं। सारा संसार इस प्रकार मत-वैचित्र्य और विषमता से भरा हुआ है क्योंकि भिन्नता, अपूर्णता एवं अस्थिरता यह तो प्रकृति का ही स्वभाव है। प्रत्येक व्यक्ति का स्वजीवन न्यूनाधिक मात्रा में अवश्य ही सुख-दुःख, आशा-निराशा और अनुकूलता प्रतिकूलता से भरा रहता है। कदाचित् ही कोई संसारी प्राणी ऐसा होगा जिसका स्वजीवन अपने मनोनुकूल एवं पूर्ण रूपेण संतुष्ट हो।

आत्मोन्नति की ओर अग्रसर होने वाले प्रत्येक जीव को अपने स्वीकृत पथ को निष्कंटक बनाने के लिये संघर्ष अनिवार्य हो जाता है। इसके लिये आवश्यक क्षमता, दृढ़ता, धैर्य, आत्म-विश्वास एवं भगवद्श्रद्धा आदि गुण जिनमें होते हैं वे ही स्त्री अथवा पुरुष संसार में विजयी होकर अपने मानव जन्म को सार्थक करते हैं और सदा के लिये विश्व में अपनी कीर्ति छोड़ जाते हैं।

सन्त मीरांदेवी जैसी महासाध्वी का भी समस्त जीवन संघर्षमय रहा था यह कौन नहीं जानता। उसके जीवन के कटु-तम प्रसङ्गों की कथायें तो आज भी भारत के आबाल-वृद्ध नर नारियों के हृदय में स्मृति रूप से सुरक्षित हैं। बालपन में साधु

से गिरधर की प्रतिमा लेने की हठ, विवाह के अस्वीकार करने पर माता द्वारा किये गये ममता भरे आग्रह का बड़ी ही समझ एवं ज्ञान की बातों द्वारा नम्र विरोध, सुसराल जाते समय अपने गिरधरगोपाल को भी साथ ले जाने का आग्रह, सुसराल में कुलदेवी पूजन का विरोध, नणंद के उपालम्भ, उलाहनों एवं व्यंग वचनों पर उसकी निर्भीक-स्पष्टोक्ति इत्यादि सामान्य प्रसंगों के अतिरिक्त उसके जीवन का सबसे अधिक संघर्ष का प्रसंग राणा विक्रमादित्य के साथ का था। विक्रमादित्य, राणा संग्रामसिंह का छोटा कुँवर और उदयसिंह (जिसके विश्व प्रसिद्ध राणा प्रताप हुये) का बड़ा भाई था, दोनों ही हाड़ी राणी कमवती के पुत्र थे। मीराँ के पदों में यत्र-तत्र किये गये 'राणा' नाम के प्रयोग पर आज भी बहुत अधिक लोगों में यह भ्रम फला हुआ है कि मीराँ ने अपने पति राणा का विरोध किया था और उसके पति राणा ने ही मीराँ को विषादि द्वारा मारने का प्रयत्न किया था परन्तु वास्तव में यह बात नहीं। यह तो इतिहास प्रसिद्ध है कि मीराँ के पति भोजराज महाराणा संग्राम सिंह के ज्येष्ठ पुत्र और युवराज थे। पिता के पश्चात् उन्हीं का पद 'महाराणा' का और मीरांबाई का 'महाराणी' का था परन्तु पिता के पूर्व कुमारावस्था में ही भोजराज परलोकवासी हो गये। वे राजगद्दी पर तो आये ही नहीं और 'राणा' यह पद तो राजसिंहासनारूढ़ होने वाले को ही प्राप्त होता है। भोजराज के पश्चात् उनसे छोटा कुँवर रत्नसिंह गद्दी पर आया पर ४ वर्ष तक ही वह राज्य कर पाया। उसकी मृत्यु के पश्चात् कुंवर विक्रमादित्य 'राणा' बना। इसी राणा विक्रमादित्य ने

मीरांबाई से द्वेष किया, छल किया और विषादि द्वारा येन केन प्रकारेण अपनी भाभी को मार डालने की घातक चेष्टा की थी, परन्तु, 'जाको राखे साइयां, मार सके नहिं कोय। बाल न बांका कर सके, जो जग बैरी होय' ॥

मीरांबाई को उसके पति भोजराज, श्वसुर राणा संग्रामसिंह और देवर राणा रत्नसिंह के समय में न तो कोई कष्ट था न उसकी उपासना के प्रति कभी किसी को असन्तोष ही हुआ। उसकी पूजा-पाठ, सत्सङ्ग, भक्ति, सन्त-समागम इत्यादि उपासना उस समय भी बराबर अबाधित रूप से चलती रही। उसकी इस साधना से उसके पति, श्वशुर, सास और देवर रत्नसिंह को तो कभी अपनी कुल मर्यादा मिटती नहीं प्रतीत हुई थी तब वह राणा विक्रमादित्य को ही मिटती सी क्यों प्रतीत हुई फिर वह भी इस सीमा तक कि उसकी उपासना-पद्धति पर प्रतिबन्ध लगाने से ही सन्तुष्ट न होकर उसने मीरांबाई को मृत्युदण्ड देना अनिवार्य समझा, यह विचारणीय प्रश्न है। समाधान किसी भी विचारवान् व्यक्ति को इतिहास देखने से सहज ही मिल जाता है। इतिहास में यह राणा कुख्यात है। १६ वर्षीय इस राणा के स्वभाव में बहुत अधिक बचपन होने के कारण वह राज्य करने के सर्वथा अयोग्य था। उसके कुटिल, स्वार्थी और कुचक्री परामर्शदाताओं का उस पर पूरा प्रभाव था। मेवाड़ के बहुत से जागीरदार ठिकानदार एवं प्रजाजन भी उसकी इस स्वच्छन्दनीति से बहुत असन्तुष्ट थे। मीरांबाई की नणंद ऊदाबाई जो कि भोजराज के समय से ही अपनी भाभी से सामान्य स्त्रीसुलभ स्वभाववश द्वेष रखती थी और उसे नीचा दिखाने के लिये

अवसर की ताक में रहती थी वह विक्रमादित्य के राणा बनने के पश्चात् उस दुर्लभ अवसर के प्राप्त होने पर भला उसे कैसे खोती! वह राणा को बहका कर उससे बराबर अपना मन चाहा करवा कर छोड़ती थी। किन्तु मीरांबाई पर किये गये विष-प्रयोग के प्रसङ्ग पर प्रभु भक्ति के आश्चर्यजनक प्रभाव से वह अपने किसी पूर्व पुण्य के संस्कार से पश्चात्ताप पूर्वक जब तक अपनी भाभी की शरण में नहीं गई तब तक उसकी यही करतूतें निरन्तर जारी रहीं।

इस विभाग के संवादयुक्त पदों पर विचार करने पर नणंद भाभी की उक्त परिस्थिति सम्यक् रूप से समझ में आ जाती है। इससे भली भाँति यह सिद्ध हो जाता है कि मीराँजी के जीवन में जो राणा व उसके परस्पर में विरोध का अत्यन्त कटु प्रसंग उपस्थित हुआ जिसके कारण मीरांबाई को मेवाड़ छोड़ना पड़ा उसका मूल कारण राणा विक्रमादित्य के अविचार, मन की चंचलता, ना समझी, अदूरदर्शिता और कुसंगति इत्यादि अवगुण ही थे न कि मीरांबाई का धर्म के विपरीत आचरण अथवा लोक मर्यादा का त्याग।

यह बड़े ही दुःख का विषय है कि इसी भ्रम के कारण कुछ लोगों में तथा तब से लेकर वर्तमान युग के राजकुल प्रधान पुरुषों में भी मीराँ जी के प्रति गहरी उदासीनता, मूकरोष और उस समस्त विश्व की अमर विभूति के प्रति अपने परमावश्यक कर्त्तव्य की घोर उपेक्षा एवं निष्कर्मण्यता के भाव रहते आये हैं। परन्तु उपर्युक्त वस्तु-स्थिति निदर्शन को विचार पूर्वक समझ लेने के पश्चात् तो अवश्य ही उक्त भ्रम का निराकरण हो जाना चाहिये।

संसार में किसी महान् उद्देश्य को लेकर आगे बढ़ने वाले प्रत्येक महत्वाकांक्षी पुरुष को पद पद पर प्रतिकूलता, बाधा आदि विरोधी तत्वों का सामना करना पड़ता है। इस दृष्टि से कभी कभी तो माता-पिता, मित्र-मित्र, पति-पत्नी, बंधु-बंधु, गुरू-शिष्य एवं राजा-प्रजा इत्यादिकों में से एक का दूसरे के प्रति विरोध करना भी कर्त्तव्य हो जाता है। इसके अतिरिक्त संसार में ऐसे व्यक्तियों की भी कोई कमी नहीं जो तेजोद्वेषी, विघ्नसंतोषी एवं अकारण बैरी हुआ करते हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि मीरांबाई के जीवन में उसकी साधना में प्रतिकूल और बाधक राणा विक्रमादित्य ही था! मीराँ को भक्ति और साधु संगति से उसे पूरा द्वेष था। उसके भगवद्भावपूर्ण आचरण और व्यवहार से वह जल उठता था। इसी कारण मीराँ को उसके समय में पहले का सा सुख और स्वतंत्रता पूर्वक भगवद्भक्ति करने की सुविधा नहीं रही, यही नहीं उसके भगवद्प्रेम पर अंकुश रखने को उसे बाध्य करने की चेष्टायें की जाने लगीं और उसके भजन भाव और सत्संग, संत दर्शन पर भी कठोर प्रतिबंध लगाये गये। इस प्रकार नाना प्रकार से उसका छल होने लगा। यह सब होते हुए भी मीरांबाई अविचल रह कर निर्भीकता पूर्वक अपने स्वीकृत साधना पथ पर आगे बढ़ती ही जाती थी। वह तो एक मात्र अपने प्राणप्यारे गिरधर-गोपाल को बिक चुकी थी। भजन सत्संग ही जिसका व्यवसाय एवं भगवत्प्रेम ही जीवन था उसे तो किसी भी विषम परिस्थिति में एक मात्र सत्याग्रह का अवलंब ही साहजिक और स्वभाविक था।

संघर्ष के मूल में जिस पक्ष में न्याय, धर्म, लोकहितकारिणी भावना एवं महान् पवित्र उद्देश्य हो वही पुण्यमय सत्याग्रह "यतो धर्मस्ततोजयः" इस न्याय से अन्त में सफल होकर ही रहता है।

संघर्ष के २ प्रकार हैं:—हिंसामय और अहिंसामय। जिसमें शारीरिक शक्ति, सत्ता, मनुष्य और शस्त्रबल से प्रतिगामी तत्वों से जूझना होता है वह हिंसामय और जिसमें बुद्धि, युक्ति, दृढ़ता विवेक, आत्मबल, त्याग, संयम और शांति आदि सात्विक गुणों का अवलम्ब लेकर अन्याय पक्ष के सन्मुख अडिग रह कर जो सत्याग्रह किया जाता है वह अहिंसामय संघर्ष है।

साधु-संत, त्यागी-विरागी, यती-सती, योगी-मुनि, सिद्ध-महात्मा, ज्ञानी-विवेकी, भक्त-तपस्वी एवं आत्मोन्नति के इच्छुक श्रद्धावान् व मुमुक्षु साधकों के लिए तो प्रलोभक एवं बाधक तत्वों के प्रतिकार के लिये आवश्यकता पड़ने पर अहिंसामय सत्याग्रह का प्रयोग ही एक मात्र हितकर एवं प्रशस्त साधन है।

मीरांबाई ने भी यही सत्याग्रह किया। अपने सिद्धान्तों की रक्षा करती हुई राणा की महान्—सत्ता के सन्मुख वह अकेली अबला अटल रही और अन्त में विजयिनी हुई, यही नहीं अपनी अनन्य श्रद्धा और प्रेम-भक्ति के प्रभाव के कारण विश्व के समस्त साधु-जगत में वंद्य और शिरोमणि सिद्ध हुई।

पौराणिक काल से लेकर वर्तमान युग पर्यंत के संत-महात्मा एवं मनस्वियों के जीवन-चरित्रों का अवलोकन करने पर भली-भाँति विदित हो जाता है कि अपने लक्ष्य के अवरोधक प्रबल तत्वों की उपेक्षा करते हुये अथवा परम दृढ़ता पूर्वक सत्याग्रह से

लोहा लेते हुए किस प्रकार अपने ध्येय, लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं।

प्रभु के परम भक्त प्रहलाद को मारने के लिए स्वयं उनके पिता हिरण्यकश्यपु ने कई चेष्टायें कीं, परन्तु उन सत्याग्रही का बाल भी बाँका नहीं हुआ और अन्त में उन्हीं की विजय हुई। अपनी सौतेली माता के अपमान भरे व्यवहार के निमित्त को लेकर भक्त ध्रुव ने जो टेक ली उसे अविचल रह कर अन्त तक निभा करके ही छोड़ा और अमर हो गये। ऋषि विश्वामित्र और वशिष्ठ के परस्पर के संघर्ष में काया-वाचा मनसा अहिंसक रहने वाले सत्याग्रही वशिष्ठ की ही अन्त में विजय हुई। राजा हरिश्चन्द्र तो उनके सत्यव्रत ही के कारण विश्व में प्रसिद्ध हैं जो अपनी पत्नी व पुत्र को बेचने और स्वयं अपने ही हाथों अपनी धर्मपत्नी का वध करने जैसे कठोरतम प्रसंग के उपस्थित होने पर भी सत्य से नहीं डिगे और अन्त में मुनि विश्वामित्र को ही हारना पड़ा। भक्त विभीषण ने अपने ज्येष्ठ भ्राता के विरुद्ध सत्य का पक्ष ग्रहण किया। भरत अपने ज्येष्ठ भ्राता राम को स्वार्थवश वनवास देने वाली माता कैकेई से विमुख हो गये। राजा बलि ने श्री वामनावतार विष्णुभगवान् को पृथ्वी का दान देने से रोकने वाले अपने गुरू शुक्राचार्य की आज्ञा नहीं मानी। श्रीकृष्ण प्रेम में मतवाली गोपियों एवं ब्राह्मण पत्नियों ने भी श्यामसुन्दर के दर्शन को जाने से रोकने वाले अपने पतियों की आज्ञा नहीं मानी। राजा सगर के पुत्र के अन्याय के कारण प्रजा उससे असंतुष्ट हो राज्य छोड़ जाने को उद्यत हुई थी, उस राजा प्रजा के संघर्ष में अन्त में प्रजा के सत्याग्रह की ही विजय हुई।

कलियुग में भी भक्त प्रहलाद का स्मरण दिलाने वाली सन्त मीरांबाई, गुरु गोविन्दसिंह के दोनों पुत्र, वीर हकीकतराय आदि ऐसे अनेकों महापुरुष हो गये जिन्होंने अपने प्राणों की चिन्ता न करके अपने प्रण अथवा सत्याग्रह को अन्त तक धैर्य पूर्वक निभाते हुए अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया।

सन्त महात्माओं के वचन भी जीवन में उपर्युक्त विषम परिस्थिति के प्राप्त होने पर इसी प्रकार अपने वास्तविक कर्त्तव्य की ओर निर्देश करते हैं, जैसे:—

"जाके प्रिय न राम वैदेही,
सो त्यागिए कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषण बंधु, भरत महतारी।
गुरू बलि तज्यो, कंत ब्रज वनितन, भये सब मङ्गलकारी॥
—गो० तुलसीदास

नारायण नुं नामज लेतां वारे तेने तजिए रे।
घर तजिए ने कुटुंब तजिए तजिए मा ने बाप रे॥
आदि आदि —नरसिंह मेहता

आर्य चाणक्य भी अपनी नीति में यही कहते हैं:—

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे, ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे, आत्मार्थे पृथ्वीं त्यजेत्॥

कुल के हित के लिये अपना हित छोड़ दे, कुल का हित ग्राम के हित के लिये छोड़ दे, ग्राम का हित देश के हित के लिये छोड़ दे, किन्तु आत्मा के हित के लिये तो सारी पृथ्वी ही छोड़ दे। अस्तु।

अपने जीवन संबन्धी प्रसंगों को लेकर मीरांबाई ने जो भी पद बनाये वे सब इस 'स्वजीवन' विभाग में दिये गये हैं।

अपने ध्येय को लेकर मीरांबाई द्वारा की गई स्पष्ट घोषणा, उसके देवर राणा विक्रमादित्य एवं नणंद उदाबाई के बरजने पर और उनके प्रश्नों पर उसके द्वारा निर्भीकता, धैर्य एवं स्वाभिमान पूर्वक दिये गये उत्तर इत्यादि पदानुगत भावों को विचार पूर्वक समझ लेने पर उसकी वास्तविक परिस्थिति का सहज ही परिचय मिल जाता है।

इस विभाग के पद सं० ६, १३, १४, ३६, ६६ और ७५ ये ६ पद गुजराती भाषा के हैं।

पद सं० ३, ४, ५, ४६, और ५० इन पाँच पदों में मीराँ तथा उनकी माता के परस्पर में हुए संवादों का वर्णन है।

पद सं० २ में मीराँ और उसकी सासू के प्रश्नोत्तर हैं।

पद सं० १, ७, ८, ६, २३, ४१, ४५, ५८, ६०, ६३ और ७१ इन ११ पदों में नणंद-भाभी अर्थात् मीरांबाई और उसकी नणंद उदाबाई के प्रश्नोत्तर तथा परस्पर में भाव प्रदर्शन हैं।

परमार्थ मार्ग में जाति को नहीं, भगवद्भाव को ही महत्त्व दिया जाता है, जैसा कि:—

'जाति पाँति पूछे नहिं कोय, हरि का भजे सो हरि का होय।'

नारद भक्ति सूत्र में भी कहा है—

'न तेषु (प्रेमी भक्त जनों में) जाति, विद्या, रूप, कुल, धन क्रियादि भेदः।'

ये ही भाव ६६ वें पद में व्यक्त हैं।

पद सं० २६, ३१, ३५, ६६ में प्रभु से लगी हुई मीरांबाई की पूर्व की जन्म-जन्म की प्रीति का एवं पद ४, १८, १६, ३६,

४१, ४२, ४६, ५०, ५५, ७३ में भगवान गिरधर गोपाल के ही उसके पति होने का वर्णन उल्लेख है।

व्यर्थ लोक निन्दा कोई भगवद्-मार्ग में बाधक नहीं अपितु साधक के लिये जीवन कसौटी है और किस प्रकार जीवन कसौटी है और किस प्रकार वह शुद्ध स्वर्ण की भाँति भक्त को अधिकाधिक उज्ज्वल बनाती है, यह भाव पद ६४ और ७१ से प्रकट होता है।

पद सं० ११, १३, १७, ३६, ४७ और ७५ ये ६ ज्ञान के पद हैं। जिन पर भावार्थ में प्रकाश डाला गया है।

पद ५१ एवं ५२ में मीरांबाई की दासी मिथुला का उल्लेख है। शेष पदों में अधिकतर राणा द्वारा मीरांबाई पर किये गये अत्याचार-विष, साँप एवं शूली की सेज का भेजा जाना, राणा खड्ग से स्वयं मीरांबाई का वध करने का प्रयत्न करना, किस प्रकार विवश होकर मीरांबाई का मेवाड़ त्याग करना, भक्ति के प्रभाव से किस प्रकार एक की अनेक मीराँ हो जाना और उपर्युक्त सङ्कटों में से उसकी प्रभु द्वारा रक्षा होकर सत्य के प्रभाव से किस कार अधिक देदीप्यमान दिखाई देना तथा राणा के रूठने पर केवल मेवाड़ राज्य से ही निर्वासित होने का परन्तु प्रभु के रूठने पर त्रिलोक में भी कहीं ठौर न होने का निर्भयता पूर्वक स्पष्ट रूप से राणा को उत्तर देना इत्यादि इत्यादि प्रसंग एवं भावों का वर्णन है।

इस विभाग के पदों में मीराँ के जीवन सम्बन्धित व्यक्ति, स्थान परिस्थिति ·· क नामोल्लेख इस प्रकार है:—

मीराँ मेडतणी (१०), मीराँ राठौड (१८), मेडतिया घर जन्म लियो है, मीराँ नाम कहायो (३४), गढ़ चित्तौड (१६), पीहर मेडता (३२), मेवाड़ (३५), दूदाजी (मीराँ के दादाजी) उदाबाई ईडरगढ़ (२३) यह मीराँ की नणंद उदाबाई का सुसराल था, इस पद में नणंद-भाभी के बड़े ही मार्मिक प्रश्नोत्तर हैं।, दयाराम पण्डा (३४), राणा की आज्ञा से मीराँ के लिये विष ले जाने वाला ब्राह्मण। जयमल (८०) मीराँ के चचेरे भाई जो मीराँ से ६ वर्ष छोटे थे। कुँवर पाटवी (१) राणा संग्रामसिंह के ज्येष्ठ पुत्र, मीराँ के विवाहित पति।

इस विभाग के अतिरिक्त १, ३, ४, और ८ वे पद-विभाग में भी कहीं-कहीं उपर्युक्त में से कुछ नामों का उल्लेख है।

'राणा' नाम का उल्लेख इस विभाग के अधिकतर पदों में तथा ३, ४, आदि विभाग के कुछ पदों में भी हुआ है।

पद सं० १०, १२, १५, १६, २४, ४५ एवं ७४ आदि पदों में राणा द्वारा मीराँ को प्राण दंड देने के विफल प्रयत्नों का तथा उस परिस्थिति में मीराँ की भक्ति व प्रभु कृपा के चमत्कार भरे प्रसंगों का उल्लेख है।

'स्वजीवन' मीराँ की वाणी में:—

सांसारिक दृष्टि से विवाहित होने के पहले ही मीराँ को—, (४) सुपने में परण गया जगदीश, तभी से उसके जीवन का— (७३) जनम जनम को पति परमेश्वर—(७) गिरधरजी भरतार॥

यही उसका ध्येय है। इसी लक्ष्य प्राप्ति की साधना में,–(७) 'शील सन्तोष सिणगार' व ओढ़ी चूनर प्रेम की।।' यही शृङ्गार उसे स्वीकार है। (६) साधू माता पिता कुल मेरे, सजन सनेही ज्ञानी।। उसका परिवार है, यही नहीं वह तो-(६) संता हाथ बिकानी।। इसी कारण सांसारिक सम्बन्ध उसे–(५) नातो सागो परिवारो सारो, मन लगे मानो काल।। जैसे प्रतीत होते हैं।

(१८) उसके हिरदे लिख्यो हरिनाम। जो उसके–सतगुरु दियो बताय।। उसने–(२७) पिया पियाला नाम का, और न रंग सोहाय। क्योंकि–काचो रंग उड़ जाय।।

इसी नाम के प्रभाव से वह (१८) राती माती प्रेम की, रहती है। उसके स्वीकृत पथ से किसी स्वार्थ अथवा किसी के तनिक भी अहित की कदापि संभावना नहीं–(२) चोरी कराँ न मारगी, नहीं मैं करूँ अकाज।

वह सांसारिक वैभव को त्याग देती है–(७) राजपाट भोगो तुम्हीं हमें न तासूं काम। (२) राज करे वाँने करण दीज्यो, मैं भगतांरी दास।

वह बाधक तत्वों को ठुकरा देती है–(३०) लोक लाज कुल काण जगत की, दई बहाय जस पाणी। (६४) निन्दा म्हांरी भलांई करो नै, सोनैं काट न लागै। (२) पुन्न के मारग चालतां, झख मारो संसार।

राणा को भी वह निर्भिक उत्तर सुना देती है–(३३) सीसोद्यो रूठ्यो तो म्हाँरो काँई कर लेसी। (७३) राणाजी कोण बिचारो। एवं (७३) थाँरी मारी ना मरूँ, म्हारो राखण वालो और।।

१-स्वजीवन के पद

★

ननंद-भाभी १

अब मीराँ मान लीज्यो म्हारी, हो जी, थाने सखियाँ बरजे सारी ॥०॥
राजा बरजै राणी बरजै, बरजै सब परिवारी ॥
कुँवर पाटवी सो भी बरजै, और सहेल्याँ सारी ॥१॥
शीस फूल सिर ऊपर सोहै, बिंदली शोभा भारी ॥
गले गुँजारी कर में कङ्कण, नेवर पहिरे भारी ॥२॥
साधन के ढिंग बैठ बैठ के, लाज गमाई सारी ॥
नित प्रति उठि नीच घर जावो, कुल कूँ लगावो गारी ॥३॥
बड़ा घरां का छोरू कहावो, नाचो दे दे तारी ॥
वर पायो हिन्दुवाणी सूरज, अब दिल में कहा धारी ॥४॥
तारयो पीहर सासरो तारयो, माय मोसाली तारी ॥
मीराँ ने सतगुरूजी मिलिया, चरण कमल बलिहारी ॥५॥

निश्चय २

म्हाँरे गुरू गोविंद री आण गौर ने ना पूजाँ ॥०॥
औरज पूजै गोरज्याजी, थे क्यूँ पूजो न गोर ।
मन वाँछत फल पावस्यो जी, थे क्यूँ पूजो और ॥१॥
नहिं म्हें पूजां गोरज्याजी, नहिं पूजां अन देव ।
परम सनेही गोविंदो, थे काँई जाणो म्हारो भेव ॥२॥
बाल सनेही गोविंदो, साध सन्तां को काम ।
थे बेटी राठोड़ की, थाने राज दियो भगवान ॥३॥
राज करे वाँने करणे दीज्यो, मैं भगतां री दास ।
सेवा साधु जनन की म्हारे, राम मिलण की आस ॥४॥

लाजै पीहर सासरो, माई तणो मोसाल ।
सबही लाजै मेड़तियाजी, थासूँ बुरा कहे संसार ॥५॥
चोरी कराँ न मारगी, नहीं मैं करूँ अकाज ।
पुन्न के मारग चालतां, झख मारो संसार ॥६॥
नहिं मैं पीहर सासरे, नहिं पियाजी री साथ ।
मीराँ ने गोविन्द मिल्या जी, गुरू मिलिया रैदास ॥७॥

माँ-बेटी ३

तू मत बरजे माइड़ी, साधां दरसण जाती ।
राम नाम हिरदे बसे, माहिले मन माती ॥
माता:—माई कहै सुन धीहड़ी, कहै गुण फूली ।
लोक सोवै सुख नींदड़ी, थूँ क्यूँ रैणाज भूली ॥०॥
मीराँ:—गेली दुनियाँ बावली, ज्याँकूँ राम न भावे ।
ज्याँके हिरदे हरि बसे, त्याँ कूँ नींद न आवे ॥१॥
चौबास्याँ की बावड़ी, ज्याँ कूँ नीर न पीजे ।
हरि नाले अमृत झरे, ज्याँ की आस करीजे ॥२॥
रूप सुरङ्गा रामजी, मुख निरखत लीजे ।
मीराँ व्याकुल विरहिणी, अपणी कर लीजे ॥३॥

माँ-बेटी ४

माई म्हाँने सुपने में, परण गया जगदीश ।
सोती को सुपने आवीयाजी, सुपनो विश्वाबीस ॥०॥
माता:—गैली दीखे मीराँ बावली, सुपनो आल जंजाल ।
मीराँ:—माई म्हाने सुपने में, परण गया गोपाल ॥१॥
राती पीली चुनड़ी ओढ़ी, मेंहदी हाथ रसाल ।

काँइ और को बरूँ भाँवरी, म्हाँ के जग जंजाल ॥२॥
अँग अँग हल्दी मैं करीजी, सूधे भींज्याँ गात ।
माई म्हाँने सुपने में, परण गया दीनानाथ ॥३॥
छप्पन क्रोड़ जहाँ जान पधारे, दुलहो श्री भगवान ।
सुपने में तोरण बांधियोजी, सुपने में आई जान ॥४॥
मीराँ ने गिरधर मिल्याजी, पूर्व जनम के भाग ।
सुपने में म्हाँने परण गयाजी, हो गयो अचल सुहाग ॥५॥

माँ-बेटी   ५

देरी माई अब म्हाँ को गिरधर लाल ॥०॥
प्यारे चरण की आन करति हौं। और न दे मणि लाल ॥१॥
नातो सागो परिवारो सारो । मन लगे मानों काल ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। छबि लखि भई निहाल ॥३॥

राणा-मीराँ   ६ (गुज०)

शामळीओ लाज राखे राणाजी ।
प्रभुजी लाज राखे राणाजी ॥०॥
कोई कहे मीरांबाई बावरी, कोई कहे मदमाती ॥१॥
ताल मृदंग बाजीतर बाजे, घुघरा बाँधी ने मीराँ नाचे ॥२॥
आणी आणी बाटे मारा प्रभुजी पधारचा
तेणीने वाटे मारे जवुँ ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधरना गुण ।
चरण कमल चित राखो ॥४॥

नणंद-भाभी   ७

भाभी बोलो वचन विचारी ॥०॥
साधों की संगत दुख भारी मानो बात हमारी ।

छापा तिलक गल हार उतारो, पहिरो हार हजारी ॥१॥
रतन जड़ित पहिरो आभूषण भोगो भोग अपारी ।
मीराँजी थे चलो महल में थाने सोगन म्हारी ॥२॥
भाव भगत भूषण तजे शील सन्तोष सिणगार ।
ओढ़ी चूनर प्रेम की, गिरधरजी भरतार ॥३॥
उदां बाई मन समझ, जावो अपणे धाम ।
राजपाट भोगो तुम्हीं, हमें न तासूं काम ॥४॥

नणंद-भाभी ८

थाँने बरज बरज मैं हारी, भाभी मानो बात हमारी ॥०॥
राणे रोस कियो थाँ ऊपर, साधों में मत जारी ।
कुल को दाग लगै छै भाभी, निंदा हो रही भारी ॥१॥
साधां रे सँग बन बन भटको, लाज गमाई सारी ।
बड़ा घरा थे जनम लियो छै, नाचो दे दे तारी ॥२॥
वर पायो हिंदवाणे सूरज, थे कांई मन धारी ।
मीराँ गिरधर साध सँग तज, चलो हमारी लारी ॥३॥

नणंद-भाभी ९

मीराँ बात नहीं जग छानी,
उदा बाई समझो सुघर सयानी ॥०॥
साधू मात पिता कुल मेरे, सजन सनेही ज्ञानी ।
सन्त चरण की सरण रैन दिन, सत्य कहत हूँ बानी ॥१॥
राणा ने समझावो जावो, मैं तो बात न मानी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, संतां हाथ बिकानी ॥२॥

भक्ति-चमत्कार १०

विष अमृत कर डारो मेड़तणी ।
काठ की कंठी छोड़ दो मीराँ पहिरो मोतीड़ारो हारो ।
साधां री संगत छोड़ दो मीराँ आधो राज तुम्हारो ॥१॥

काठ की कंठी नहीं छोड़ूँ राणा नहीं पहरूँ मोतीड़ारो हारो।
साधां की संगत नहीं छोड़ूँ राणा जल जावो राज तुम्हारो ॥२॥
लाजेलो पीयर सासरो मीराँ लाजेलो राज तुम्हारो।
संता री संगत छोड़ दे मीराँ कुल के लागेलो कालो ॥३॥
तारूँगी पैयर-सासरो तारूँगी राज तुम्हारो।
संता री संगत नहीं छोड़ूँ राणा ओई करां निस्तारो ॥४॥
लेई खड़ग राणो कोपियो मीराँ अब तेरो राम संभालो।
एक मीराँ की सेंस मीराँ हुई कुणी कुणी ने मारो ॥५॥
मीराँ तो हर के लाडली राणा गावे गुण गोपाल।
मीराँ ने श्री गिरधर मिलिया, मिलिया बंसीवारो ॥६॥

ज्ञान ११

मीराँ के आँगणे केशर की क्यारी—घोटत घोटत हारी—
सीसोद्या राणा ज्ञान (भजन) कटारी मारी ॥०॥
मीराँ के आँगणे तुलस्याँ रो थाणो, सींचत सींचत हारी ॥१॥
मीराँ के आँगणे घुड़लाँ की घूमर, चाबुक दे दे हारी ॥२॥
मीराँ के आँगणे हस्तीड़ाँ घूमे, दे दे अंकुश हारी ॥३॥
मीराँ के आँगणे तपसीड़ाँ तापे, मोर मुकुट जटाधारी ॥४॥
बाई मीराँ ने गिरधर मिल्या, साँवरियो जीत्यो तो मीराँ हारी ॥५॥

निश्चय १२

मोहन न (गिरधर न) जानूँ कब आसी।
मेरो वृन्दावन को वासी जी ॥०॥
विष का प्याला भेजिया राणाजी,, पीसी जो मर जासी।
कर चरणामृत बाई मीराँ पी गई, हो गई चंद्रकलासी ॥१॥
बासक नाग भेजीया राणाजी, डससी जो मर जासी।

कर सुमरन बाई मीराँ फेरन लागी, होगयो महल उजासी ॥२॥
ना जाउँ पीहर सासरेजी, जाय बसूँगी मैं काशी ।
इन राणाजी को मुख नहीं देखूँ, सीसोद्या पसताशी ॥३॥
मीराँ दासी रावळीजी, श्याम बड़ा विश्वासी ।
मीराँ ने गिरधर मिलिया, कट गई जम की फाँसी ॥४॥

ज्ञान १३ (गुज०)

राम रमकडुं जडियुं रे, राणाजी, मने राम रमकडुं जडियुं ॥०॥
रुमझुम करतुं मारे मंदिरे पधायुँ,
नहि कोइने हाथे घडियुं रे ॥१॥
मोटा मोटा मुनिजन मथी मथी थाक्या,
कोइ एक विरला ने हाथे चडियुं रे ॥२॥
सुन शिखर ना रे घाटथी उपर,
अगम अगोचर नाम पडियुं रे ॥३॥
बाई मीरां के प्रभु गिरधर नागर,
मारूँ मन शामळियाशुं जडियुं रे ॥४॥

स्वजन-विरोध १४ (गुज०)

जेने मारा प्रभुजी नी भक्ति ना भावे रे,
तेने घेर शीद जईए ।
जेने घेर संत पाहुणो ना आवे रे,
तेने घेर शीद जइए ॥०॥
ससरो अमारो अग्निनो भडको, सासु सदानी सूळी रे
एनी प्रत्ये मारूं कांई ना चाले रे, एने आंगणीए नाखुं पूळी रे ॥१॥
जेठाणी अमारी भमरा नुं जाळुं, देराणी तो दिलमां दाजी रे ।
नानी नणंद तो मों मचकोडे, ते भायगे अमारे कर्मे पाजी रे ॥२॥

* * * * ते बळतामां नांखे छे वारि रे ।
मारा घर पछवाडे सीद पडी छे, बाई तुं जीती ने हुं हारी रे ।।३।।
तेने खूणे बेसीने में तो भीणुं कांत्युं,
ते नथी राख्युं कांई काचुं रे ।
दासी मीरांबाई गिरधर गुण गावे,
तारा आंगणिया मां थेई थेई नाचुं रे ।।४।।

भक्ति चमत्कार　　१५

हरि के चरणों में चित लागो मेवाड़ा राणा ।।०।।
राणाजी लेकर कंकर मारो । होगयो सालीगराम रे मेवाड़ा राणा ।१।
विष रा प्याला राणाजी भेज्या ।
होगया अमृतसार रे मेवाड़ा राणा ।।२।।
सांप पिटारो राणाजी भेज्यो ।
होगयो नोसरहार रे मेवाड़ा राणा ।।३।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
तेरे चरणों में मेरा ध्यान रे मेवाड़ा राणा ।।४।।

भक्ति चमत्कार　　१६

मैं तो नहीं रहूँ राणाजी थांरा देश में रे ।।०।।
विष का प्याला राणा भेजिया दो मीराँ के हाथ ।
कर चरणामृत पी गई राख लही रघुनाथ ।।१।।
राणाजी वासो आपियो भूत महल के मांय ।
भूत पिसाच भाग गये प्रगट भये यदुराय ।।२।।
सांप पिटारा राणा भेजिया दो मीराँ के हाथ ।
सालिग्राम कर सेविया हो गया नोसरहार ।।३।।
तारचो पीहर सासरो तारी गढ़ चित्तौर ।
मीराँ ने गिरधर मिल्या नागर नंदकिशोर ।।४।।

ज्ञान १७

गगन मंडल म्हारो सासरो ॥०॥
ब्रह्माजी म्हारे विष्णुजी दादा
आज म्हें तो जन्म से पाइ है म्हारी मांय ॥१॥
महादेवजी काका सब विधि बांका,
आज म्हाने दरसन की अभिलाशा हे म्हारी मांय ॥२॥
सनकादिक भाई, कमी काहे की नाहीं,
आज म्हाने ज्ञान की चूनड ओढ़ाई म्हारी मांय ॥३॥
नामदेव कबीर दोनो बड ज्ञानी,
आज म्हाने बृहस्पति चँवरी रचाई हे म्हारी मांय ॥४॥
करमा तो फूलां मंगल गावे,
आज वो तो सबरी सेवरो गुंथ लाई हे म्हारी मांय ॥५॥
आनन्द मंगल गावे सदा सुख पावे,
मीरांबाई परण पधारयां हे म्हारी मांय ॥६॥

राणा विरोध १८

अब नहिं बिसरूँ, म्हाँरे हिरदे लिख्यो हरि नाम ।
म्हाँ रे सतगुरू दियो बताय, अब नहिं बिसरूँ रे ॥०॥
मीराँ बैठी महल में रे, ऊठत बैठत राम ।
सेवा करस्याँ साध की, म्हाँरे और न दूजो काम ॥१॥
राणाजी बतलाइया, कइ देणो जवाब ।
पण लागो हरिनाम सूँ, म्हाँरे दिन दिन दूनो लाभ ॥२॥
सीप भरयो पाणी पिवे रे, टाँक भरयो अन्न खाय ।
बतलायाँ बोली नहीं रे, राणोजी गया रिसाय ॥३॥

विष रा प्याला राणाजी भेज्या, दीजो मेड़तणी के हाथ ।
　　कर चरणामृत पीगई, म्हाँरा सबल धणी का साथ ॥४॥
विष को प्यालो पीगई, भजन करे उस ठौर ।
　　थाँरी मारी ना मरूँ, म्हाँरो राखणहारो और ॥५॥
राणोजी मोपर कोप्यो रे, रती न राख्यो मोद ।
　　ले जाती बैकुंठ में, यो तो समझ्यो नहीं सिसोद ॥६॥
छापा तिलक बणाइया, तजिया सब सिंगार ।
　　म्हें तो सरणे राम के, भल निन्दो संसार ॥७॥
माला म्हाँरे देवड़ी सील बरत सिंगार ।
　　अबके किरपा कीजियो, हूँ तो फिर बाँधूँ तलवार ॥८॥
रथाँ बैल जुताय कै, ऊँटाँ कसियो भार ।
　　कैसे तोडूँ राम सूँ, म्हाँरो भोभो रो भरतार ॥९॥
राणो साँड्यो मोकल्यो, जाज्यो एके दौड़ ।
　　कुल की तारण अस्तरी, या तो मुरड़ चली राठोड़ ॥१०॥
साँड्यो पाछो फेरयो रे, परत न देस्याँ पाँव ।
　　कर सूरापण नीसरी, म्हाँरे कुण राणे कुण राव ॥११॥
संसारी निन्दा करे रे, दुखियो सब संसार ।
　　कुल सारो ही लाजसी, मीराँ थें जो भया जी ख्वार ॥१२॥
राती माती प्रेम की, विष भगत को मोड़ ।
　　राम अमल माती रहे, धन मीराँ राठोड़ ॥१३॥

निश्चय　　१६

अब नहिं मानूँ राणा थाँरो, मैं बर पायो गिरधारी ॥०॥
मनि कपूर की एक गति है, कोऊ कहो हजारी ।
कंकर कंचन एक गति है, गुंज मिरच इकसारी ॥१॥

अनड़ धणी को सरणो लीनो, हाथ सुमिरनी धारी ।
जोग लियो जब क्या दिलगीरी, गुरू पाया निज भारी ॥२॥
साधू संगत महँ दिल राजी, भई कुटुँब सूँ न्यारी ।
क्रोड़ बार समझावो मोकूँ, चालूँगी बुद्ध हमारी ॥३॥
रतन जड़ित की टोपी सिर पै, हार कंठ को भारी ।
चरण घूँघरू घमस पड़त है, म्हें कराँ स्याम सूँ यारी ॥४॥
लाज सरम सबही मैं डारी, यौ तन चरण अधारी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, झक मारो संसारी ॥५॥

प्रवास २०

इण सखरियाँ री पाळ मीरांबाई साँपड़े ॥०॥
साँपड़ किया असनान सूरज सामी जप करे ।
होय बिरंगी नार डगराँ बिच क्यूँ खड़ी ॥१॥
काँई थारो पीहर दूर घराँ सासू लड़ी ।
चल्यो जा रे असल गुँवार तनै मेरी के पड़ी ॥२॥
गुरू म्हारा दीनदयाल हीराँ रा पारखी ।
दियो म्हाने ग्यान बताय, संगत कर साधरी ॥३॥
इण सखरिया रा हंस, सुरँग थारी पाँखड़ी ।
राम मिलन कद होय फड़ोके म्हाँरी आँख री ॥४॥
राम गये बनवास को, सब रँग ले गये ।
ले गये म्हाँरी काया को सिंगार, तुलसी की माला दे गये ॥५॥
खोई कुळ की लाज मुकुंद थाँरे कारणे ।
बेग ही लीज्यो सम्हाल मीराँ पड़ी बारणे ॥६॥

निश्चय २१

पग घुँघरू बाँध मीराँ नाची रे ॥०॥
मैं तो मेरे नारायण की आपही हो गई दासी रे ॥१॥

लोग कहै मीराँ भई बावरी न्यात कहै कुळनासी रे ॥२॥
विष का प्याला राणाजी भेज्या, पीवत मीराँ हाँसी रे ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर सहज मिले अविनासी रे ॥४॥

प्रार्थना २२

पियाजी म्हाँरे नैणाँ आगे रहज्यो जी ॥०॥
नैणाँ आगे रहज्यो म्हाँने, भूल मत जाज्यो जी।
भौ-सागर मैं बही जात हूँ, बेग म्हारी सुध लीज्यो जी ॥१॥
राणाजी भेल्या बिख का प्याला, सो इमरित कर दीज्यो जी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मिल बिछुड़न मत कीज्यो जी ॥२॥

नणंद-भाभी २३

भाभी मीराँ कुल ने लगाई गाळ,
ईडरगढ़ का आया ओळमा।
बाई ऊदाँ थारे म्हारे नातो नाहिं,
बासो बस्यां का आया जी ओळमा ॥१॥
भाभी मीराँ साधां का संग निवार,
सारो शहर थारी निन्दा करै।
बाई ऊदाँ करे तो पड़्या झख मारो,
मन लाग्यो रमता राम सूं ॥२॥
भाभी मीराँ पहरोनी मोत्यां को हार,
गहणो पहरो रतनजड़ाव को।
बाई ऊदाँ छोड़्यो मैं मोत्यां को हार,
गहणो तो पहर्‌यो शील संतोष को ॥३॥
भाभी मीराँ औरां के आवेजी आछी रूढ़ी जान,
थारे आवे छै हरिजन पावणा।

बाई ऊदाँ चढ़ चौबारा झाँक,
साधाँ को मण्डल लागो सुहावणो ॥४॥
भाभी मीराँ लाजे गढ़ चीतौड़,
राणोजी लाजै गढ़ रा राजवी ।
बाई ऊदाँ तारचो तारचो चीतौड़,
राणाजी तारचा गढ़ का राजवी ॥५॥
भाभी मीराँ लाजे लाजे थारा मायड़ बाप,
पीहर लाजे जी थारो मेड़तो ।
बाई ऊदाँ तारचा म्हे तो मायड़ बाप,
पीहर तारचो जी मेड़तो ॥६॥
भाभी मीराँ राणाजी कियो छै थांपर कोप,
रतन कचोले विष घोलियो ।
बाई ऊदाँ घोल्यो तो घोळण द्यो,
कर चरणामृत वाही म्हे पीवस्याँ ॥७॥
भाभी मीराँ देखतड़ां ही मर जाय,
यो विष कहिये बासक नाग को ।
बाई ऊदाँ नहीं म्हारे मांय न बाप,
अमर डाली धरती झेलिया ॥८॥
भाभी मीराँ राणाजी उभा छे थारे द्वार,
पोथी मांगे छे थाँरा ज्ञान की ।
बाई ऊदाँ पोथी म्हारी खांडा की धार,
ज्ञान निभावन राणो है नहीं ॥९॥
भाभी मीराँ राणाजी रो बचन न लोप,
उन रूठयां भीड़ी कोउ नहीं ।

व्याघ्र मीरांबाई के निकट आकर शान्त हो गया

[पृ० ५४
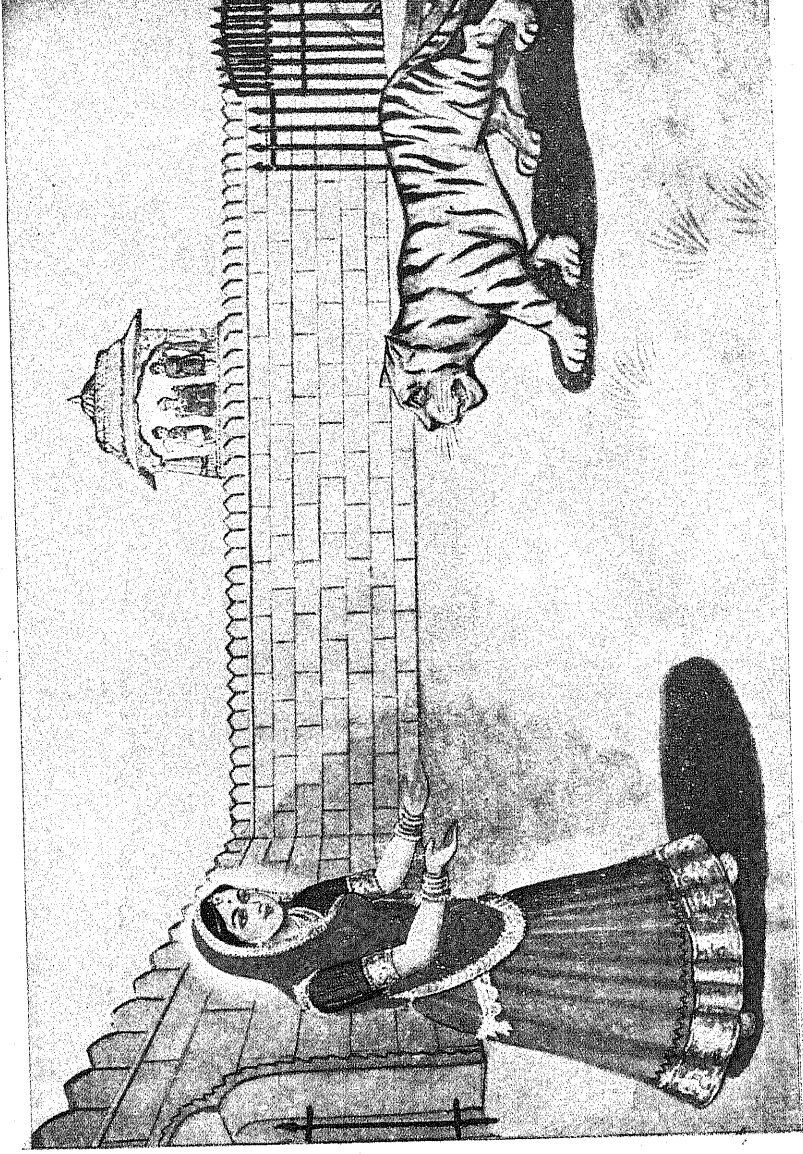
बाई ऊदाँ रमापति आवे म्हारे भीड़,
अरज करूँ छूं तासूं बीनती ॥१०॥

भक्ति-प्रभाव २४

मीराँ मगन भई हरि के गुण गाय ॥०॥
साँप पिटारा राणा भेज्या, मीराँ हाथ दियो जाय।
न्हाय धोय जब देखन लागी, सालिगराम गई पाय ॥१॥
जहर का प्याला राणा भेज्या, इम्रत दिया बनाय।
न्हाय धोय जब पीवन लागी, हो गई अमर अँचाय ॥२॥
सूली सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीराँ सुवाय।
साँझ भई मीराँ सोवण लागी, मानों फूल बिछाय ॥३॥
मीराँ के प्रभु सदा सहाई, राखे बिघन हटाय।
भजन भाव में मस्त डोलती, गिरधर पर बलि जाय ॥४॥

निश्चय २५

मैं हिरदे ओळखिया राम घर नहीं आवूँगी।
मेरे राम सदा है साय गिरधर ध्याऊँगी ॥०॥
सोना धन अरू माल, पत्थर मानूँगी।
मैं छोड्या सब संसार, भक्त कहलाऊँगी ॥१॥
हाथी घोडा ऊँट कछु नहीं मानूँगी।
ब्राह्मण कूं दे दो दान मुक्ति पाऊँगी ॥२॥
मीराँ के गिरधर नाथ गुणहि गाऊँगी।
सावलियो करतार और न चाऊँगी ॥३॥

भक्त-वत्सलता २६

मेरे सांवरिया मैं तुझसे नेह लगाया ॥०॥
भीड़ पड़ी प्रहलाद भक्त पर, वाकी सहाय करैया।

खंभ फाड़ हिरनाकुश मारयो, नरसिंह रूप धरैया ॥१॥
विप्र सुदामा कबसे मित्र, इक चटसार पढ़ैया ।
मुट्ठी तीन तन्दुल की खाकर, तीन लोक बकसैया ॥२॥
खेलत गेंद घिरी यमुना में, वा में कूद पड़ैया ।
पैठ पताल काली नाग नाथ्यो, फण पर निरत करैया ॥३॥
राणाजी विष रा प्याला भेज्या, मीराँजी के तैंयां ।
कर चरणामृत मीराँ पीगई, हो गई चन्द्रकलैया ॥४॥
बनी बनी के सब कोई साथी, तात मात सुत भैया ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित दैया ॥५॥

अनन्य-प्रेम २७

यो तो रँग धत्ताँ लग्यो ए माय ॥०॥
पिया पियाला अमर रस का, चढ़ गई घूम घुमाय ।
यो तो अमल म्हारो कबहु न उतरे, कोटि करो न उपाय ॥१॥
साँप पिटारो राणाजी भेज्यो, द्यो मेड़तणी गल डार ।
हँस-हँस मीराँ कंठ लगावे, यो तो म्हारो नौसरहार ॥२॥
विष को प्यालो राणाजी भेज्यो, द्यो मेड़तणी ने पाय ।
कर चरणामृत पी गई रे, गुण गोविंद रा गाय ॥३॥
पिया प्याला नाम का रे, और न रँग सोहाय ।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, काचो रँग उड़ जाय ॥४॥

राणा-मीराँ २८

राणा जी थे क्याँने राखो म्हाँसूँ बैर ॥०॥
थे तो राणाजी म्हाँने इसड़ा लागो, ज्यों ब्रच्छन में कैर ॥१॥
महल अटारी हम सब त्याग्या, त्याग्यो थाँरो बसनो सहर ॥२॥
काजल टीकी राणा हम सब त्याग्या, भगवीं चादर पहर ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, इमरत कर दियो जहर ॥४॥

पूर्व-संस्कार २९

राणाजी म्हाँरी प्रीति पुरबली मैं काँई करूँ ॥०॥
राम नाम बिन नहीं आवड़े, हिवड़ो झोला खाय ।
भोजनिया नहिं भावै म्हाँने, नीदड़ली नहिं आय ॥१॥
विष को प्यालो भेजियो जी, जाओ मीराँ पास ।
कर चरणाम्रित पी गई, म्हाँरे गोविंद रे बिसवास ॥२॥
विष को प्यालो पी गई जी, भजन करो राठौर ।
थाँरी मारी ना मरूँ, म्हाँरो राखणवालो और ॥३॥
छापा तिलक लगाइया जी, मन में निश्चै धार ।
रामजी काज सँवारिया जी, म्हाँने भावैं गरदन मार ॥४॥
पेटयाँ बासक भेजियो जी, यो छै मोतीडाँ रो हार ।
नाग गले में पहिरियो, म्हाँरे महल भयो उजियार ॥५॥
राठौड़ाँ री धीयडी जी, सीसोद्याँ रे साथ ।
ले जाती बैकुंठ कूँ, म्हाँरी नेक न मानी बात ॥६॥
मीराँ दासी स्याम की जी, स्याम ग़रीबनिवाज ।
जन मीराँ की राखज्यो कोइ, बाँह गहे की लाज ॥७॥

निश्चय ३०

राणाजी थे जहर दियो म्हे जाणी ॥०॥
जैसे कंचन दहत अगिन में, निकसत बाराबाणी ।
लोक लाज कुल काण जगत की, दइ बहाय जस पाणी ॥१॥
अपणे घर का परदा करले, मैं अबला बौराणी ।
तरकस तीर लग्यो मेरे हियरे, गरक गयो सनकाणी ॥२॥
सब संतन पर तन मन वारी, चरण कँवल लपटाणी ।
मीराँ को प्रभु राखि लई है, दासी अपणी जाणी ॥३॥

निश्चय ३१

राम तने रँग राची, राणा मैं तो साँवलिया रँग राची, रे ॥०॥
ताल पखावज मिरदँग बाजा, साधों आगे नाची, रे ॥१॥
कोई कहे मीराँ भई बावरी, कोई कहे मदमाती, रे ॥२॥
विष का प्याला राणा भेज्या, अमृत कर आरोगी, रे ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, जनम जनम की दासी, रे ॥४॥

निश्चय ३२

राणाजी हूं अब न रहूँगी तोरी हटकी ॥०॥
साध संग मोहि प्यारा लागै, लाज गई घूंघट की ॥१॥
पीहर मेडता छोड़ा अपना, सुरत निरत दोउ चटकी ।
सतगुरू मुकर दिखाया घट का, नाचूंगी दे दे चुटकी ॥२॥
हार सिंगार सभी ल्यो अपना, चूड़ी करकी पटकी ।
मेरा सुहाग अब मोकूं दरसा, और न जाने घटकी ॥३॥
महल किला राणा मोहिं न चाये, सारी रेसम पटकी ।
हुई दिवानी मीराँ डोलै, केस लटा सब छिटकी ॥४॥

निश्चय ३३

सीसोद्यो रूठ्यो तो म्हाँरो काँई कर लेसी ।
म्हे तो गुण गोविंद का गास्याँ हो माई ॥०॥
राणोजी रूठ्यो वाँरो देस रखासी,
हरि रूठ्याँ किठे जास्याँ हो माई ॥१॥
लोक लाज की काण न मानाँ,
निरभै निसाण घुरास्यां हो माई ॥२॥
राम नाम की झाझ चलास्यां,
भौ सागर तर जास्यां हो माई ॥३॥

मीराँ सरण सांवल गिरधर की,
चरण-कँवल लपटास्यां हो माई ।।४।।

विषपान ३४

सीसोद्या राणो, प्यालो म्हाने क्यूं रे पठायो ।।०।।
भली बुरी तो मैं नहिं कीन्हीं, राणो क्यूँ है रिसायो।
थाने म्हाने देह दिवी है, ज्याँरो हरिगुण गायो ।।१।।
कनक कटोरे ले विष घोल्यो, दयाराम पंडो ल्यायो ।
अठी उठी तो मैं देख्यो, कर चरणामृत पायो ।।२।।
आज काल की मैं नहिं राणा, जद यो ब्रह्माण्ड छायो ।
मेड़तियाँ घर जन्म लियो है, मीराँ नाम कहायो ।।३।।
प्रह्लाद की प्रतिज्ञा राखी, खम्भ फाड़ वेगो धायो ।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, जनको बिड़द बढ़ायो ।।४।।

पूर्व-संस्कार ३५

दूर पूरबला लिखिया लेख राणाजी नाम नहीं छोड़ूँ ।
पूरब जनम की पाळी प्रीत राणाजी नाम नहीं छोड़ूँ ।
गुरू मिल्या म्हाने रैदास नाम नहीं छोड़ूँ ।।०।।
मीराँ जनमी मेड़ते आण लिया अवतार ।
घर दूदाजी को तारियो अमर कीधों है जग में नाम ।।१।।
तारचो पीहर सासरो तारी वंश मेवाड़ ।
तारचो दूदाजी को मेड़तो तारचो चित्तौड़गढ़ को राज ।।२।।
लाजे पीहर सासरो लाजे वंश मेवाड़ ।
लाजे दूदाजी को मेड़तो लाजे चित्तौड़गढ़ को राज ।।३।।
मीराँ मेलां से ऊतरी भगवाँ रंगिया भेख ।
हिंदू धरम में बैठणो पालो रजवाड़ा वाली प्रीत ।।४।।

विष का प्याला भेजिया दो मीराँ के हाथ ।
कर चरणामृत पी गई राखण वाळा रघुनाथ ॥५॥
चार जणां ने भेजिया जावो मीराँ के पास ।
मर गई होवे तो जळा दीज्यो नीतर दीज्यो समँद में डार ॥६॥
साँप टिपारो मोकल्यो दो मीराँ के हाथ ।
खोल टिपारो देखिया हो गया नोसरहार ॥७॥
साध हमारा शिर धणी मैं साधण की सेव ।
ये साधू मारे रूम रूम में रम रया ज्यूं बादल बिच मेव ॥८॥
ऊँचा हर का गोखड़ा नीचा सांवरिया का मेल ।
बाई मीराँ के गिरधर नागर चालूं सांवरिया थारी लेर ॥९॥

ज्ञान ३६

मोहन लागत प्यारा राणाजी, मोहन लागत प्यारा ॥०॥
जिनकी कला से हालत चालत, बोलत प्राण आधारा ।
नेन की कला मां सब जुग भूल्यो, एही पुरुष हे न्यारा ॥१॥
तुमही जुठे ने अमही जुठे,
जुठे जुठे सब संसारा ।
स्त्री पुरुष के संबंध जुठे,
तो फुटया हइया तुमारा ॥२॥
तुमही कहो अरधंगा हमारी,
हमकु लगायो कारा ।
कोटी ब्रह्मांड मां व्यापी रह्यो हे,
सो निज वर हमारा ॥३॥
सालु पीतांबर मोतन की माळा,
लेई अगन में डारा ।

छाप तिलक तुलसी नी माळा,
साधु संग निस्तारा ।।४।।
मीरांबाई कहे प्रभु गीरधर ना गुण,
शरण को विरद संभारो ।
हरी भजन बिना जे दिन खोये,
धिक मनुष्य जनमारो ।।५।।

प्रेमालाप ३७

आज तो राठोडीजी रा महलां रंग छायो ।
आज तो मेडतणीजी रा महलां रंग छायो ।।०।।
कोटिक भान हुवो प्रकाश जाणे के गिरधर आया ।।१।।
सुर नर मुनिजन ध्यान धरत है वेद पुराण में गाया ।।२।।
मीरांबाई के प्रभु गिरधर नागर घर बैठयां गिरधर पाया ।।३।।

विषपान पश्चात् विनय ३८

कान्हा कामरिया पेहरी रे ।।०।।
जमुना के नीर तीर धेनु चरावे, खेल खेल की गत न्यारी रे ।।१।।
खेल खेलते अकेले रहता, भक्तन की भीड़ भारी रे ।।२।।
विख को प्यालो पीयो हमने, तुम्हारे विख लहरी रे ।।३।।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरन कमल बलिहारी रे ।।४।।

उपदेश ३९ (गुज०)

तमेशूं कीधूँ गीता गाई ने, धिक धिक छै पंडिताई ने रे ।
तमे शूं कीधूँ गीता गाई ने ।।०।।
पर परमोदे आपने सोधे डूब्यो छै तृष्णा तलाई में रे ।।१।।
घर ने छोडयो मंडी में बैठयो कीनो भंडारो उगाई ने रे ।।२।।

भगवत रो तू राख भरोसो त्रिविध ताप मिटाई ने रे ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर रा गुण चित्त चरणों में लाई ने रे ॥४॥

निश्चय ४०

कांई थारो लागै छै गोपाल ॥०॥ (मीराँ थारे)
गढ़ से तो मीरांबाई ऊतरयाजी, हाथ मगद को थाल ।
औरां के तो ऊन धन लक्ष्मी, आप फिरो कंगाल ॥१॥
ऊँचा राणाजी रा गोखड़ाजी, नीची मीरांबाई री साल ।
रमतां तो पायो मीराँ कांकरो, कोई सेवा सालिगराम ॥२॥
जहर पियाला राणाजी भेजियाजी द्यो मीरा ने जाय ।
कर चरणामृत मीराँ पी गई, कोई आप जानो रघुनाथ ॥३॥
साँप टिपारा राणाजी भेज्या, कोई द्यो मीराँ ने जाय ।
कर खँगबालो मीरांबाई पहरियो, कोई होगयो नोसरहार ॥४॥
काढ़ कटारो राणाजी बैठिया, ल्यो मीराँ ने मार ।
इत मारां उत दोष लगे, कोई छत्री धरम घट जाय ॥५॥
सांडया सांडिया पलाणज्यो म्हे चालां सो सो कोस ।
राणाजी का देश में कोई, जल पीवा को दोस ॥६॥
सांडयो फिर कर देखियोजी, दीखै मीरांबाई रो देश ।
मीराँ गिरधर के रँग राची, रंच न रह्यो कलेस ॥७॥

उत्कंठा ४१

गिरधर आवणां हे, ऊदांबाई सेजडली सँवार ॥०॥
आवणरी बिरियाँ भई जी, अब महलां ढोल्यो ढ़ार ॥१॥
अतर सुगंध मिलाय के जी, घी भर दिवला बार ॥२॥
जाई जूही केतकी जी, चंपा कली सुधार ॥३॥
पलकाँ सूं करां पाँवडाजी, अँचलां सूँ मगझार ॥४॥
गिरधर म्हारो परम सनेही, मीराँ उनकी नार ॥५॥

दृढ़ता ४२

गिरधर म्हारा साँचा पति छै, मैं गिरधर री दासी हे माय ॥०॥
राणाजी म्हासूं रूस रह्यो छै, कूडा वचन निकासै हे माय ॥१॥
राणो कहै सो एक न मानाँ, म्हे साध दुवारै नित आसी हे माय ।२
मीराँ के प्रभु सेज चढ़े जब, ठाडी करे खवासी हे माय ॥३॥

दृढ़ता ४३

गिरधर म्हारे मन भाया मोरी माय ।
राणूंजी म्हारे दाय न आवै ॥०॥
राणाजी म्हाँसे रूस रह्या छै, कूड़ा वचन सुनाया ॥१॥
गुरु कृपा से संत पधारया, संता श्याम मिलाया ॥२॥
मीराँ की प्रभु आस पुजोई, गिरधर सेजाँ आया ॥३॥

प्रार्थना ४४

डब्बा में सालगराम बोलत क्यों नहियाँ ॥०॥
हम बोलत तुम बोलत नाहीं । काहे को मौन धरैया ॥१॥
यह भवसागर अगम भरो है । काढ लेहू गहि बैयाँ ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । तुमही मोरे सैयाँ ॥३॥

प्रेमालाम ४५

झकोलो लाग्योजी रंग गिरधर को आन ॥०॥
गिरधर गिरधर काईं करो, कोई गिरधर स्याम सुजाण ॥१॥
मीराँ तो चंदा भई कोई, गिरधर ऊग्यो भान ॥२॥
ऊदां थे तो बावली कोई, नहचै करल्यो ध्यान ॥३॥
आपाँ दोन्यू मिल भजाँ कोई, ज्यों गोप्याँ बिच कान ॥४॥
मीराँ ने गिरधर मिल्याजी, भगताँ रो राख्यो मान ॥५॥

दृढ़ता ४६

तुलसाँ की माला हिवड़ै लागीजी (मेवाड़ा राणा)

रामतणाँ गुण गास्यां ॥०॥

लिख पत्तर राणू मीराँ ने भेज्यो,

संग साधाँ से पिसतास्यो जी ॥१॥

लिखरे पत्तर मीराँ राणाजी ने भेज्यो,

साधूडाँ रे संग सुख पास्यांजी ॥२॥

विषरा पियाला राणाजी भेज्या,

पिवतां पिवतां म्हांने आवै हांसीसी ॥३॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,

हरि चरणां में चित लास्यांजी ॥४॥

ज्ञान ४७

तेरा मेरा जियडा, एक कैसे होय, राम ॥०॥

हमने कहा सुरझावन राणां, तुम जाते उरझाय, राम ।

हमने कहा निरमोहित रहना, तुम तो जात मोहाय, राम ॥१॥

तेल जले तो जलती है बाती, दिवरा झलमल सोय, राम ।

जल गया तेलरु बुझ गई बाती, लच्चर लच्चर होय, राम ॥२॥

हमने कहा आंखिन का देखा, तुम कानों सुनि सोय, राम ।

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, होनहार सो होय, राम ॥३॥

अनन्य प्रेम ४८

बिक्याजी हरि प्यारीजी रे हाथ बिक्या ॥०॥

कृपा करोजी म्हे सोही सिर धारां, सोभा देखि छक्या ॥२॥

जा दिन ते मेरी लगन लगी है, औरन द्वार थक्या ॥२॥

अनुरागी मन मस्त है राणाजी, गरुड के अगड जुरया ॥३॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरणां चित्त टक्या ॥४॥

प्रेमालाप ४६

माई हूँ सपना में परणी गोपाल ।।०।।
मति करो म्हारी ब्याव सगाई, क्यूं बांधो जंगाल ।।१।।
झूँठा मात पिता सुत बंधू, बध्यो अबध्या ख्याल ।।२।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सांचो पति नंदलाल ।।३।।

प्रेमालाप ५०

माई म्हांने सुपना में परणी गोपाल ।।०।।
राती पीरी चुनर पहरी, मँहदी पान रसाल ।।१।।
कांई करां और संग भाँवर, म्हाँने जग जंजाल ।।२।।
मीराँ प्रभु गिरधरनलाल सूं, करी सगाई हाल ।।३।।

सेवाभाव ५१

मिथुला कर पूजन की त्यारी ।।०।।
धूप दीप नैवेद्य आरती सबही सौंजले आरी ।।१।।
बहुविध सूँ पकवान बनाकर, करो भोग की त्यारी ।।२।।
जीमैलो म्हारो पिया गिरधर, साधां ने बेग बुलारी ।।३।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरणाँ पर बलिहारी ।।४।।

सेवाभाव ५२

मिथुला सुन यह बात हमारी ।।०।।
राजभोग की समै हुई है, बेग थाल सज लारी ।।१।।
छप्पन भोग छतीसों विंजन, सीतल जल की झारी ।।२।।
धूप दीप नैवेद्य आरती, कीजे बेग तयारी ।।३।।
धरिये भोग विलंब न करिये, मेरी मान पियारी ।।४।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल बलिहारी ।।५।।

स्वजन आदेश ५३

मेड़तियारा कागद आया, बाई मीराँ ने जा खीज्योजी ॥०॥
बोहत भांति से लिख्या ओलमा, कुलकै दाग मत दीज्योजी ॥१॥
साधां को सँग परो निवारो, वेद साख सुण लीज्यो जी ॥२॥
मीराँ प्रभु को संग छांड़यो, पति आज्ञा में रीज्यो जी ॥३॥

विनय ५४

म्हारा नटनागर गोपाललाल बिन कारज कौन सुधारे ॥०॥
घूम रह्यो दुरयोधन राजा, जैसे गज मतवारो।
सिंह होय कर हस्ती मारे, बड़ो भरोसो थारो ॥१।
मीराँ ने राणाजी बरजे, मतना जन्म बिडारे।
ये संगत साधां की सीख्या, मत आवो महल हमारे ॥२॥
म्हे संगत साधां की सीख्या, थारे कछुयन सारे।
तन में रीस भई राणाँ के, ऊठ खड्ग ले मारे ॥३॥
प्याला में विष घोल राणाँजी, मन में कपट विचारे।
अमृत करके मीराँ पीगई, जहर साँवरो भारे ॥४॥
जब जब भीड़ परी भक्तन पर, आपहि कृष्ण पधारे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि भक्ताँ ने त्यारे ॥५॥

निश्चय ५५

राणाँजी म्हारे गिरधर प्रीतम प्यारो, हो राणाजी
म्हारे गिरधर प्रीतम प्यारो ॥०॥
व्यापक होय रह्यो घट घट में, है सबही से न्यारो।
अन्तर घट की सबही जाणे, सबही को सरजण हारो ॥१॥
आपतो भेज्या विषरा प्याला, दे मीराँ ने मारो।
कर चरणामृत पीगई जी, गिरधर संकट टारो ॥२॥

जनम जनम रो पति परमेश्वर, राणो जी कोन बिचारो ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, साँचो बँसरी वालो ॥३॥

प्रेम ५६

राणोँ जी मेवाड़ो म्हारै दाय न आवै
गिरधर म्हारै मन भाया भोलि माय ॥०॥
राणोँ जी म्हाँसूं रूस रह्यो छै कूड़ा वचन सुनाया भोलि माय ।१॥
गुरू कृपा सूं संत पधारचा संतां स्याम मिलाया भोलि माय ॥२॥
बाँधि घूवरा नृत्य कराँ म्हे हरिगुण गाय रिझावाँ भोलि माय ॥ ३॥
मीराँ के प्रभु आस पुराई गिरधर सेजाँ आया भोलि माय ॥४॥

दृढ़ता ५७

राम नाम उर धारचो मेड़तणी ने, राम नाम उर धारयो ॥०॥
कह्यो न मांनूं राँणाजी को, देसपती पच हारचो ॥१॥
कोप कियो राणाजी जबही, साँप गला में डारचो ॥२॥
मीराँ ने हँस पहर लियो है, होगयो नोसरहारो ॥३॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, अबके मोय उबारो ॥४॥

विषपान ५८

सुणज्यो जी थे भाभी मीराँ, थाँपै राणाँजी कोप कियो छै जी ॥०॥
भाभी थारै मारण कारण, प्यालो हाथ लियो छै जी ॥१॥
उठ उठ भाजै रोस रो माँतो, हाथाँ खड्ग लियो छै जी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, इमरत पान कियो छै जी ॥३॥

आत्मकथा ५६

अपणा गिरधर कै कारणै, (वा) मीराँ वैरागण होगई (रे) ॥०॥
जबतैं सिर पर जटा रखाई । नैणां नींद गई (रे) ॥१॥
दंड कमंडल और गूदड़ी । सिर पर धार लई (रे) ॥२॥

छापा तिलक बनाये छवि सों । माला हात रही (रे) ॥३॥
दोउ कुल छाँड भई वैरागण । हरि सों टेर दई (रे) ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । गोविन्द सरण भई(रे) ॥५॥

प्रेम-रहस्य ६०

अरी एरी ऊदाँ लागी का नाम न लेय ॥०॥
जल से प्रीत करी मछली ने, बिछुरत प्राण तजे ॥१॥
मृगों की प्रीत लगी नादों से, सनमुख सेल सहे ॥२॥
दीपक से प्रीत लगी पतँग की, वार कर जया दे ॥३॥
मीराँ की प्रीति लगी है सन्तों से, गुरू चरणों चित दे ॥४॥

निश्चय ६१

अरे राणाँ पहली क्यों ना बरजी लागी गिरधरिया से प्रीत ॥०॥
मारो चाहे छाँडो राणा, नहिं रहूँ मैं बरजी ।
सुगना साहिब सुमरतां रे, मैं थारे कोठे खटकी ॥१॥
राणाजी भेज्यो विषरो प्यालो, कर चरणामृत गटकी ।
दीनबंधु साँवरियो है रे, जाणत है घट घट की ॥२॥
म्हारा हिरदा मांय बसी है, लटकन मोर मुकट की ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मैं हूँ नागर नट की ॥३॥

द्वारिका महिमा ६२

दीज्यो म्हांनैं द्वारका को वास, रूडा रणछोड़जी हो ॥०॥
सुथान बासो नाम हरि को, झालरिये झणकार ।
सकल तीरथ गोमती रे बाला, साँवरियो सिरदार ॥१॥
पपैया नैं मेघ प्यारो, मांछली मध नीर ।
म्हांनैं तो गिरधर हि प्यारो, छाँड्यो जगत सूं सीर ॥२॥
तजियो पीहर सासरो, तजियो सह उपहास ।
राणाजी रो बास तजियो, राखो रावल बास ॥३॥

मथुरा में हरि जनमियाजी, कियो द्वारका बास ।
सहँस गोप्यां रा बालमो, गावै मीराँ दास ॥४॥

बधाई　　　　६३

नंदजी रे आज बधावनो छै ॥०॥
गहमद हुई रंग रावल मैं निरखि नैना पावनो छै ॥१॥
भाभीजी म्हे थाँसूं पूछाँ आजिरो द्योस सुहावनो छै ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर जनमिया हुवो मनोरथ भावनो छै ॥३॥

दृढ़ता　　　　६४

निन्दा म्हारी भलांई करो नै सोनैं काट न लागै ॥०॥
जोग लियौ जग जातौ देख्यौ, हरि भजवा कै काजै ।
जो कोई करणी में चूक पड़ै तो, सतगुरू म्हारा लाजै ॥१॥
धन रे लोका थांरी करणी, कीड़ी रौ कुँजर बणायौ ।
अणदीठी अण सामळेरे, बद बद बाद उठायौ ॥२॥
कुलकूं छाँडि कटूंबो छाँड्यौ, छाँडी ममता माई ।
और दुनियां कौ दावौ छोड्यौ, छोडी लोभ बड़ाई ॥३॥
पर गळ दोई मैं पलो बिछायौ, मन भावै ज्यूं कहीयौ ।
यो जस मीरांबाई गावै, ज्यूं कहियौ ज्यौं सहियौ ॥४॥

भक्ति-प्रभाव　　　　६५

म्हांने बोल्यां मति मारोजी राणाँ, यो लै थारो देस ॥०॥
मीराँ म्हलाँ सें ऊतरी कोई, सात सहेल्याँ माँय ।
खेलत पायो काँकरो कोई, सेवा सालगराम (गिरधरराय) ॥१॥
साधजी आया पावणाँ कोई, मीराँ कै दरबार ।
जाजम दीनो बैसणो कोई, ढोल्यो दीनो ढाल ॥२॥

झैर पियालो राणांजी भेज्यो, द्यो मीराँ ने प्याय (हाथ)।
कर चिरणामृत पीगई मीराँ, थे जाणों दीनाँनाथ ॥३॥
साँप पिटारो राणाजी भेज्यो, दीज्यो मीराँ ने जाए।
कर खँगवालो पहरियो कोई, होगयो नोसरहार ॥४॥
राणाँजी कागद भेजियो कोई, द्यो मीराँ नै जाय।
साधाँ की संगत छोड़द्यो मीराँ, बैठो राणयाँ रै माय ॥५॥
काढ़ कटारो राणाजी भेज्यो, दूजी भेजी तरवार।
एक मीराँ की दो कराँ कोई, दो की होगई च्यार ॥६॥
राणों मीराँ सें यों कहेजी, कस्यो थारो भगवान।
राजपाट सब छोडस्याँ कोई, म्हे भी भजाँ भगवान ॥७॥
कच्चो रँग उड जाय छैजी, पक्को रँग नहिं जाय।
मीराँ कै रँग गोपाल को जी, अब छूटण को नांय ॥८॥

निश्चय ६६

राणाँजी हों जाति रो कारण म्हारे को नहीं,
लागो म्हारो हरि भगताँ सूँ हेत ॥०॥
बिदुर कुलां घरि जनमिया, ज्यांकै पावणां हुआ गोपाल।
बंदि छुड़ाई वसुदेव की, कंस कियो खोकाळ ॥१॥
पाँचूँ पाण्डू छटी द्रोपदी, ज्याँकी न्यारी न्यारी जात।
सहस अठ्यासी मुनि आविया, ज्याँकी पण राखी रघुनाथ ॥२॥
बनमें हुती स्योरी भीलणी, ज्याँका आरोग्या ठाकुर बोर।
ऊँच नीँच हरि नां गिणैं, ऐसी म्हारा हरिभगतां री कोर ॥३॥
येक बेल दोय तूँबड़ा, ज्याँहूँ की न्यारी न्यारी जात।
येक तूँबो जंतर चढ़ै, दूजो हरिभगतां कै हाथ ॥४॥
संख समदाँ नीपजै, ज्याँहूँ की न्यारी न्यारी जात।
एक संख सेवा चढ़ै, दूजो भोपड़लां के हाथ ॥५॥

एक माटी दोय कलस है, ज्याँहूँ की न्यारी न्यारी जात ।
एक कलस सेवा चढ़ै, दूजो कलालाँ रै हाथ ॥६॥
कनक कटोरे विष घोलियो, दीयो मीराँ के हाथ ।
हरि चरणोदक करि पी लियो, हरिजी भयो सुनाथ ॥७॥
सब मिलि मतो उपाइयौ, मीराँ ने विष द्यौह ।
कह्यौ सुणयौं मानैं नहीं, नीच लग्यौ हठ यौह ॥८॥
नगर बसै बामण बणियाँ, भीतर शुद्र पँवार ।
मुँह मोडै मुलक्याँ हँसै, समझै नाहीं गँवारं ॥९॥
गढ़ चित्तौड़ै नां रहाँ, नहीं रहण का कोग ।
बसस्याँ रूड़ी द्वारिका, जहाँ हरि भगताँ को भोग ॥१०॥
परख लेत परचो भयो, मन उपज्यो बिसवास ।
सिर पर सिरजनहार है, पूगी (म्हाँ) मन की आस ॥११॥
कुंभस्याम कै देवरै, मिली है राणौं राँण ।
मीराँ नैं गिरधर मिला कोई, पूरबली र पहिचाँण ॥१२॥

निश्चय ६७

लाग्यो थारो नैणाँ रो सलूणों रंग लाग्यो, लाग्यो महाराज ॥०॥
एक रंग लाग्यो नारद मुनि जिनके, असली बैरागी बाज्यो रे ॥१॥
एक रंग लागो भरतरी राजा के, शहर उजीणी त्याग्यो रे ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, डर असुरन को भाग्यो रे ॥३॥

निश्चय ६८

साध आया वो राणा म्हे सुणयां, श्रवणां सुणीजी अवाज ।
म्हारो मन लाग्यौ वैराग सूं, रमस्यां साधांरी साथि ॥०॥
साध संगति छोडियौ, बेठो राणयां रै पास ।
साध हमारै सिरधणी, साधू मायर बाप ॥१॥

इक कुल लाजै आपणौ, दूजौ राय राठौड़ ।
तीजो लाजै मेड़तो, चौथो गढ़ चित्तौड़ ॥२॥
इक कुल राणा त्यारूँ आपणौं, दूजो राइ राठोड़ ।
तीजो त्यारूं राणा मेड़तो, चौथो गढ़ चित्तौड़ ॥३॥
बागां तो बोली कोइली, गिर पर बोल्याजी मोर ।
मीराँ नै सतगुरू मिल्या, नागर नन्दकिसोर ॥४॥

निश्चय ६६ (गुज०)

काया कारण भेख लीधां, राणाजी मैं तो काया कारण भेख लीधा ०
रमता ने भमतां जोगी, आव्या आंगणीये मारे,
दासी जाणी ने दर्शन दीधां ॥१॥
गिरधरलाल बिना, घडीये न गोठे राणा,
हरिरस घोळी घोळी पीधां ॥२॥
मोहने मोहन कर्यां, कारमां अतिशे राणा,
कंथा प्हेरीने नेडा कीधां ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण व्हाला,
जंगळ मां जईने डेरा दीधां ॥४॥

निश्चय ७०

कायकुं राखो वेर राणाजी मोसुं, कायकुं राखो वेर ॥०॥
छोडुं राणाजी तेरो राज रावरो, छोडुं सारो शहेर ॥१॥
विखना प्याला पीवने भेज्या, अमृत होगयो फेर ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, सब संतन की मेहेर ॥३॥

निश्चय ७१

म्हे तो करस्यांजी प्रीत लगाय संगत साधां री ॥०॥
हरिजन हरि तो एक हेरे फूल वास दा नांय ।
अरस परस ऐसे मिले जेसे घिरत दूध के मांय ॥१॥

भाभी मीराँ सुनो कान दे समझो मन के मांय ।
साधां रो संग छोड दीजो मती मांके लांछन लगाय ॥२॥
यो मारग म्हाने नीठ मिल्यो छे सतगुरू दियो बताय ।
माथा साटे धारण कीदो कूंकर छोड्यो जाय ॥३॥
जनम बडो घर पावियो, थूं आई बडा घर मांय ।
मूंढ मुलक री काई जाणे थुं राजरीत ठुकराय ॥४॥
भगति बिना ठुकराई झूठी मांने नहीं सुहाय ।
राजपाट सब घरिया रेसी जलसी जंगल मांय ॥५॥
लोग दुनियां थारी निन्दा करे छे सारा सेर के मांय ।
कुटम कबीला थारी हाँसी ठाने हिल मिल निन्दा गाय ॥६॥
निन्दा म्हारी भले हो करजो लेसी पलो बिछाय ।
बिना साबुन और पाणी के सबहि मेल धुल जाय ॥७॥
धन धन हे मीराँ बडभागण हरिसूं हेत लगाय ।
बार बार म्हे करूँ वीनती दुष्ट रया पछताय ॥८॥

निश्चय ७२

गुरू प्रताप साधां री संगत सहजैं ही तिर जास्याँ ॥०॥
कथा कीरतन सुण निसबासर, महाप्रसाद ले पास्याँ ॥१॥
म्हारे तो पण चरणामृत को, नित उठि मंदिर जास्याँ ॥२॥
लोक लाज की काण न मानाँ, रामतणा गुण गास्याँ ॥३॥
नाँव अमोलिक अमृत पीकै, सिरके साटे लास्याँ ॥४॥
तुम हट माँड्यो म्हारे ऊपर, विषरो प्यालो पास्याँ ॥५॥
जन मीराँ गिरधर के ऊपर, पीवत मन नाँ डुलास्याँ ॥६॥

निश्चय ७३

राणाजी मन गीरधर प्रीतम पारो ॥०॥
हे गट भीतर गटशे नांरो, शबको शरजन हारो ॥१॥

धना भगत को खेत निपांओ, नामदेव छांन छवाई ।
दाश कबीर के बेल ही लाए, नरशींह को कारज शारो ॥२॥
जेर को पालो भेजो राणाजी, लो मीराँ ने मारो ।
मीराँ ए चरणोदक काढयो, शाहेब शंकट टालो ॥३॥
ढोल बजाइ शाधन संग राची, शब जुग लागत कांरो ।
पकडी टेक छोडु नही कबहु, लोक दुनी जख मारो ॥४॥
जनम जनम को पति परमेश्वर, राणाजी कोण बीचारो ।
मीराँ तो गिरधर के शरणे, जीवणप्राण आधारो ॥५॥

भक्ति-प्रभाव ७४

हरि रा मंदर मांहे-प्रभु का मंदिर मांहे, नाच्या हो मीरांबाई,
भक्ति करे गिरधर री ॥०॥
सांप टपारा राणाजी ने मेल्या, हो गया मोतियारा हार रे ॥१॥
झेर रा प्याला राणाजी ने मेल्या, कर चरणामृत पीगया ॥२॥
शूळां री सेजां राणाजी ने मेली, फूल गुलाब रा होगया ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल बलिहारिया ॥४॥

ज्ञान ७५

दाझेल दीलना राणा छै अमे दुखिया भाई ॥०॥
छै दुखिया रे अमे नथी सुखिया ।
शामळो मळे तो अमे थईए सुखिया ॥१॥
संसार सागर राणा महाजल भरियो ।
भाई थोडा थोडा जल ना अमे छे मछिया ॥२॥
चुन चुन कलियुं राणा सेज बिछावो ।
जई सेज पलंग पर तमे सुखिया ॥३॥

परदेशी साथे हंसा प्रीतु न करिए ।
भाई रोई रोई अंखियाँ थई रतियां ॥४॥
बाई मीराँ कहे छे प्रभु गिरधर ना गुण वहाला ।
जन्म मरण हरि ने हाथे लखियां ॥५॥

निश्चय ७६

प्रेम रो प्यालो भर पीधो राणाजी ।
मैं तो प्रेम रो प्यालो भर पीधो ॥०॥
पीवत प्यालो भई मतवाली, प्रेम पंथ भलो लीधो ।
तन मन की सुध भूल गई में तो, कृष्ण कुंवर बर कीधो ॥१॥
जगत जाळ को तज आशरो, सार लियो में सीधो ।
मीराँ कहे मन गिरधर बस गयो, राणा ने उत्तर परो दीधो ॥२॥

निश्चय ७७

मैं तो रसियोड़ा श्याम ने मनास्यां मोरी माँय ।
राणो मेवाड़ो मारो कहीं करसी ॥०॥
घणी कर तो वाको राज राखसी ।
मैं तो परदेशाँ रम जास्यां मोरी माय ॥१॥
विष का प्याला राणाजी भेज्या ।
मैं तो अमृत कर पी जास्यां मोरी माय ॥२॥
साँप पिटारी राणाजी भेजी ।
मैं तो नोसरहार कर पहनुँ मोरी माय ॥३॥
हाथां में माला गले में तुलछा ।
मैं तो गोविन्द का गुण गास्यां मोरी माय ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
मैं तो हरक हरक गुण गास्यां मोरी माय ॥५॥

निश्चय ७८

राणांजी गिरधर रा गुण गास्याँ ।।०।।
गुरू-परताप साधरी संगति सहजै ही तिर जास्याँ ।।१।।
म्हारै तो पण चरणामृत रो निति उठि देवल जास्याँ ।।२।।
कथा कीरतण सुण निसि बासर महाप्रसाद ले प्यास्याँ ।।३।।
सुनि सुनि बचन साध रा मुष रा निरत करॉ और नाचाँ ।।४।।
प्रेम प्रतीति जाप निसि बासर बहुरि न भौ जल आस्याँ ।।५।।
लोक वेद री काणि न मानूँ राम तणै रँग राचाँ ।।६।।
नाँव अमोलिक इमरित रूपी सिर कै साटै ल्यास्याँ ।।७।।
उमहड़ माड्यौ म्हारै ऊपर विष रो प्यालो प्यास्याँ ।।८।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर पीवत मन न डुलास्याँ ।।९।।

भक्त-वत्सलता ७९

राणाजी वो गिरधर मित्र हमारै ।
साँच झूठ को न्यारो छाँणै, नहीं और कै सारै ।।०।।
साधाँ की रक्षा कै कारण, जनम करम कौं धारै ।
दुष्ट जीवाँ को दंड कै करता, संता कौं निस तारै ।।१।।
मिरतक जीव बैकुंठ पठावै, जीवत नरक मैं डारै ।
अकरण करण अगाध अगोचर, निगम नेति कहि हारै ।।२।।
जप तप तीरथ दान ब्रतादिक, लोक वेद कै बारै ।
जो कोइ आइ रहै सरणागत, ताकूँ बेगि उधारै ।।३।।
अजामेलि से पतित आदि से, जन के संकट टारे ।
जन मीराँ वाही के सरणैं, भगति न बिरद लजारे ।।४।।

आत्म-कथन ८०

राणाजी मैं तो गिरधर के मन भाई,
सीसोद्या मैं तो गिरधर के मन भाई ।।०।।

जयमल के घर जन्म लियो है, राणा के घर परणाई ।
लोक लाज कुल की मरजादा, छिन में छिटकाई ॥१॥
विष का प्याला राणाजी भेज्या, दो मीराँ को जाई ।
यो तो अमृत म्हारा श्यामसुन्दर को, रोग पाप मीट जाई ॥२॥
अमृत पी पी कर होगई मदमाती रोम रोम रंग छाई ।
मीराँ के हरि अविनाशी पुर्व जनम से पाई ॥३॥

वैराग्य   ८१

ए मीराँ थांरो काँई लागै गोपाल ।
राणोजी बूझे बात, काँई थांरो लागै गोपाल ॥०॥
सरप पिटारो राणोजी भेज्याँ, द्यो मीराँ के हाथ ।
ए मीराँ थांरो भायलो गोपाल ॥१॥
मीराँ बैठी महल में जी, छापा तिलक लगाय ।
बतलाँयाँ बोली नहीं रे, राणोजी रह्यो बल खाय ॥२॥
काढ़ कटारो खड्यो हुयो जी, अब बताय तेरो गोपाल ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जोत में जोत मिलाय ॥३॥

पदों के शब्दार्थ-भावार्थ-विशेष आदि

१—गुँजारी=गले का आभूषण। नेवर=पैरों का आभूषण। साधन के=साधुओं के। ढिंग=संग, साथ। कुल कूँ·········गारी=कुल को कलंक लगाती हो। माय मोसाली=पीहर व नाना का घर।

२—आण=शपथ। अन=अन्य। भेव=भेद। मारगी=ठगना, लूटना। अकाज=अहित।

३—माहिले=भीतर से। धीहड़ी=बेटी। गेली=पगली। चौबास्याँ की·······करीजे=वर्षा ऋतु के क्षुद्र जलाशयों का जल न पीकर अखण्ड बहने वाले झरने का जल पीना उचित है अर्थात् संसार के विषयों में आसक्त न होकर हरिनामामृत का पान करना चाहिए। रूप सुरङ्गा=मन मोहन।

४—विश्वाबीस=निश्चित रूप से। आल जंजाल=मिथ्या, मृग मरीचिकावत्।

पाठान्तरः—

प्यारे चरण की सेव चहतहुँ, ना चाहुँ धन माल ॥१॥

६—बाजीतर=वाद्य। आणी आणी वाटे=इस इस मार्ग से। तेणीने वाटे=उस मार्ग से।

८—लारी=साथ।

१०—लाजेलो=लजेगा। लागेलो कालो=कलङ्क लगेगा। ओई·········निस्तारो=उन्हीं के द्वारा मेरा कल्याण-उद्धार होगा। सैंस=सहस्र।

११—थाणाँ=स्थान। घुड़लाँ की घूमर=अश्वों का समूह।

१२—कर चरणामृत·········चन्द्रकला सी=चरणामृत समझ कर विषपान करने के पश्चात् मीरांबाई की मुखकान्ति प्रतिक्षण चन्द्रकला की भाँति बढ़ती ही गई।

१३—रमकडुं=खिलौना। नहि·········घडियुंरे=जिसका किसी लौकिक मानव द्वारा निर्माण नहीं हुआ। मथी मथी थाक्या=

यत्न कर कर हार गये। कोई........चडियुं रे=किसी विरले के ही हाथ लगा। सुन.........पडियुं रे=योग साधन के दशम द्वार अथवा शून्य शिखर तक पहुँचने पर ही परमात्मा का अनुभव होता है इसलिये उन्हें अगम अगोचर निर्गुण निराकारादि कहते हैं। शामलिया शुं जडियुं रे=साँवरिये से लगा है।

१४—इस पद में मीरांबाई ने भगवद्‌विमुख सांसारिक जनों के स्वभाव प्रदर्शित किये हैं।

१७—**विशेषः**—यह रहस्यवाद का पद है। जीवात्मा को परमात्मा का साक्षात्कार होना ही उसका आध्यात्मिक दृष्टि से विवाह होना है। इसी भाव को विवाह के रूपक से मीरांबाई ने अपना अनुभव वर्णन किया है। ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि देव उसके आत्मीय जन हैं, सनकादिक मुनिवरों ने उसे ज्ञान की दीक्षा दी है, नामदेव, कबीर, रैदास आदि परम ज्ञानी एवं भक्तों द्वारा अनुगृहीत हुई और स्वयं बृहस्पतिजी ने वेदी रचाकर लग्न विधि सम्पन्न की उस शुभ मुहूर्त में भक्तिमती करमाबाई मंगल गाती है एवं शबरी सेवरा गुंथकर लाती है। इस प्रकार मीराँ का विवाह क्या होता है सांसारिक जनों की साधारण स्थिति से ऊपर उठकर भगवान और प्रेमी भक्त जनों की श्रेणी में पहुँच जाना है।

१८—पण=प्रीत, सम्बन्ध। सीप.....खाय=खाने पीने की रुचि घट गई। सेल=बरछी। पराछित=प्रायश्चित। रती.........मोद=तनिक भी शंका न रक्खी, थोड़ी भी दया न की। भोभो रो=भव भव के। मोकल्यो=भेजा। अस्तरी=स्त्री। मुरड़ चली=लौट गई, रूठ कर चली। ख्वार=विरोधी।

१९—अनड़=अलौकिक। चरण.........पड़त है=पैरों में पहने हुए घूँघरू की झनकार होती है। यारी=मित्रता।

२०—साँपड़े=स्नान करती है। बिरंगी विलक्षण। डगराँ=मार्ग। फड़ोके=फरके। वारणे=द्वार पर।

पद-पाठान्तरः—

उभा मीराँ सरवरियारी पाळ मीराँ मुख धोवतां करे।
न्हाये धोये करयां है बणाव सूरज सामां जप तो करे॥

देखो मीराँ डीगी पतली नार मनडाँ में आमण धोबणां ।
कांइ थांका पति बनबास कांई जी दुख दूबळा ।।
चल्यो जारे मुरख गँवार पराईया जीव की तुझे क्या पड़ी ।
साँवरा गया बनबास बैरागण हर की ले खड़ी ।।
आप प्रभु दीन के दयाल हीरां केरा पारखु ।
दरसण दो भगवान चरणों में आय गई ।
थोड़ी थोड़ी करूँ जी परणाम घणो कर मानज्यो ।
साधां में मारो जी पीयर संता में आसरो ।
उड़जा उजड़ा सरवरियारा हंस सुरंग थारी पांखड़ी ।
कदि आवे श्री भगवान फड़के म्हारी आँखड़ी ।
द्वारकारो नाथ झुके म्हारी आँखड़ी ।
मतकर बंदा का यारो अभिमान जोबन धन पामणा ।
अन धन रा कर लीजो दान वैकुंठां थारे बासना ।।

और पद-पाठान्तरः—

मीराँ गूंथायो फूला शीश सोना रे छोगे राखड़ी ।
म्हारा हिरदा में हरि रो ध्यान ओरा रे म्हारे आखड़ी
फूलाँ भरी रे चंगेड़ ऊपर धरूं आरसी
प्रभुजी गया बनवास लिखूं दोये फारसी
पकड़ अंबुला केरि डार जंगल बिच क्यूं खड़ी

....

प्रभुजी गया बनवास थने कइ कह गया
छतियाँ बजर रखाय जंभीरा जड़ गया
प्रभुजी गया बनवास थने कह दे गया
काजल तिलक तमोल सारोइ सुख ले गया

२३—गाल=कलंक । ओलमा=उलाहना । बासोबस्यां का=निकट बसने के कारण । बाई ऊदाँ नहीं म्हारे .... झेलिया=

आत्मा अमर है और भगवान के अनन्य भक्त के लिये अपनी देह का तथा आत्मीय जनों का भी मोह नहीं होता इसी भाव को लेकर मीरांबाई का कहना है।

२६—चटसार=पाठशाला। बकसैया=प्रदान किया। तैयां=वहाँ।

२७—धत्ताँ=गहरा, पक्का।

२८—क्याँ ने=क्यों। इसड़ा=ऐसे।

२९—पुरबली=पूर्व की। आवड़े=चैन पड़ता है। हिवड़ो······खाय=हृदय बैचेन रहता है।

अधिक चरण:—

माला पहरू दो लड़ी जी । सिल बरत सीणगार ॥
कैसे छोड़ रामजी को मारे । भव भव को भरतार ॥
भक्ति दोहाली राम की हो । जैसे खांडा की धार ॥
सीर साटे धारण करूँ । मारो कई करे संसार ॥
साधो मारे कुटम कबीलो । रणंकार भरतार ॥
कुल मरजादा त्याग दी । त्यागो लोका धार ॥

३०—बारा बाणी=शुद्ध, खरा। काण=मर्यादा। बौराणी=पगली। तरकस·········सनकाणी=भगवद् प्रेम रूपी बाण हृदय में ऐसा गहरा लग चुका है जो किसी प्रकार निकाले नहीं निकल सकता।

३१—तने=तणे, के। आरोगी=पी गई।

३२—हट कीं=रोकी। सुरत·········चटकी=चित्त वृत्ति प्रेम में लीन हो गई। मुकर=प्रतिबिम्ब, दर्पण। सारी=साड़ी। छिटकी=बिखर गई।

३३—घुरास्याँ=बजावेंगी। झाझ=जहाज।

पद-पाठान्तर:—

मेवाड़ी राणाजी म्हारो काँई करसी ।
ओ म्हें तो रसिया राम रिझास्यां ए माय ॥०॥

राणाजी रूसे तो वाँरो देसड़लो रख लेस्याँ मा ।
ओ हरि रूस्याँ मर जास्याँ ए माय ॥ राणाजी ॥१॥
गोपी चंदन गंगा गोली ।
घस घस अंग लगास्याँ ए माय ॥२॥
धोलां वस्त्र हाथ करतालाँ ।
पग घुँघरू घमकास्याँ ए माय ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
हरि चरणन चित्त लगास्याँ ए माय ॥४॥

३८—विख··· ·· लहरी=विष का प्याला तो मैंने पिया और उसका प्रभाव तुम पर पड़ा।

३९—परमोदे=सन्तुष्ट रखना। मंडी में=कुटी में। भंडारो=भण्डारा, किसी मृत संत साधु के पीछे किया जाने वाला भोज। उगाइने=इकत्रित करके। त्रिविध ताप=तीन प्रकार के ताप—दुःख, १ आधिदैविक, २ आधिभौतिक, ३ आध्यात्मिक।

४०—मगद=मिष्ट खाद्य पदार्थ—विशेष। ऊन=अन्न। साल=बरामदा। रमतां·········सालिगराम=खेलते हुए जो कंकर मिला उसी को शालिग्राम मानकर सेवा की। खंगवाला=खुंगाला, गले में पहिनने का आभूषण विशेष। इत·········घट जाय=विष और नाग से भी जब मीराँ नहीं मरी तब शस्त्र द्वारा स्वयं उसे मारने को उद्यत हुए उस अविचारी राणा को, पहले मन में हठात् क्षणिक यह विचार उत्पन्न होता है कि मीराँ को इस प्रकार मारने से कहीं क्षात्रधर्म में कलंक तो नहीं लग जायगा। सांड्या=सांड वाला। सांडिया=ऊँट। पलाण्ज्यो=काठी कसो। सांड्या·········दोष=राजा भी यदि अन्यायी और अनीतिमान हो तो उसे और उसके देश को त्याग देने के कर्त्तव्य की ओर लक्ष्य करके मीरांबाई ने इस चरण में भाव व्यक्त किया है। रंच=तनिक। सांड्यो·········कलेस=मेवाड़- त्याग करते समय मीरांबाई के साथ सांड़ वाले ने जब पीछे मुड़कर देखा तो मीरांबाई का देश-मेवाड़ दृष्टिगत हुआ। स्वदेश को छोड़ने पर उसके हृदय में कुछ

व्यथा सी अवश्य हुई फिर भी भगवद् प्रेम में रंगी हुई मीराँ अब समस्त क्लेशों से तो मुक्त हो गई यह जानकर हृदय में प्रसन्नता भी कम न हुई।

४१—पाँवड़ा = स्वागत के समय चरणों के नीचे बिछाया जाने वाला वस्त्र विशेष। पलकाँ सूं·········झार = अपने प्रियतम गिरधर गोपाल के पधारने की अत्यधिक प्रसन्नता में मीरांबाई उनका उमंग भरा स्वागत करते हुए अपने अञ्चल से उनके आने का मार्ग स्वच्छ कर उस पर पलकें बिछाने का भाव व्यक्त करती है।

४२—कूडा = कटु, अशुभ। खवासी = सेवा, चाकरी।

४३—पुजोई = पूर्ण की।

४५—झकोलो·········आन = गिरधर के प्रेम रंग में चित्त रंग गया, गिरधर के प्रेम रंग की हिलोर में चित्त लहराने लगा। नहचै······ ध्यान = निश्चय पूर्वक यह समझ लो।

४७—झलमल = जगमगाता है। लच्चर·········होय = मन्द मन्द होते होते। तेल·· ···होय=जब तक आयु शेष है तभी तक देह की स्थिति है, आयु क्षीण होने पर शनैःशनैः काया की शक्ति घटते हुए प्राणान्त हो जाता है अर्थात् देह क्षण भंगुर है इसलिये देह स्वस्थ है तब तक आत्म कल्याणके साधन को अपना लेना चाहिये,जैसा कि मीरांबाई ने इसके पहले की दो कड़ियों में सुलझने और अनासक्त रहने के लिये उपदेश किया है। आँखिन = आँखों। हमने·········सोय = इसके पहले की कड़ियों में निर्द्वन्द्व और अनासक्त रहने का जो ज्ञान मीरांबाई ने राणा को सुनाया वह स्वयं मीराँ द्वारा आचरित है अर्थात् वह स्वयं सुलझी हुई निर्द्वन्द्व और अनासक्त है और वही स्वानुभव वह राणा को सुनाती है। सुना हुआ यह ज्ञान राणा जब तक साधना द्वारा प्रत्यक्ष आचरण में नहीं ला पाता तब तक न उसका अज्ञान मिट सकता है, न वह आत्मोन्नति के पथ पर ही अग्रसर हो पाता है। जन साधारण के लिये भी, 'नायमात्मा प्रवचनेनलभ्यः' यह उपनिषद् वाक्यानुसार मीरांबाई का उपदेश अत्यन्त मननीय और आचरणीय है।

४८—भावार्थः—हरि····· ···बिक्या = अनन्य प्रेम के कारण भगवान श्री राधाजी के वश में ऐसे होगये हैं मानों बिक चुके।

कृपा........धाराँ=मीरांबाई प्रभु से प्रार्थना करती है कि आप हम पर भी कृपा करें, हमें आपकी आज्ञा सिरोधार्य है। और न ... थक्या=(आपकी अलौकिक कमनीय कांति के दर्शन के पश्चात्) कोई भी देवी-देवता की ओर मन लगता ही नहीं। अनुरागी...... जुरया=हे राणा जी! मेरा मन भगवद् प्रेमासक्त हो मतवाला हो रहा है और निरन्तर गरुड़रूढ़ भगवान से जुड़ा हुआ है।

विशेषः—इस पद में मीरांबाई के अनन्य प्रेम के भाव व्यक्त हैं। 'हरि प्यारीजी रे हाथ बिक्या' अर्थात् भगवान राधा के वश में हो गये। इसका तात्पर्य यही है कि भगवान परंपरा से अनन्य प्रेमी भक्तों के आधीन होते आये हैं, यथा 'अहं भक्त पराधीन अस्वतंत्र इव द्विज' आदि—

(श्री मद् भागवत ६ स्कन्ध अ ५०)

५०—कांई.........जंजाल=प्रभु को छोड़कर दूसरों के साथ क्या फेरे लिया जाय, वे सब तो उपाधि—प्रपंच रूप हैं। हाल=अभी।

अधिक चरणः—

भाई मैं तो स्पना में परनी गोपाल ॥०॥
हाथी भी लायो, घोड़ा भी लायो, और लायो सुखपाल ॥१॥

५१—मिथुला=मीरांबाई की दासी का नाम। त्यारी=तैयारी, व्यवस्था। सौंज=साज, उपकरण।

५३—ओलमा=उलाहना।

५४—सिंह.........मारो=कोई कुटिलमति सत्ता के मद में मदोन्मत्त हाथी जैसा मदान्ध हो जाता है, उसका आप (भगवान) सिंह होकर संहार करते हो। बिडारे=गँवाओ, नष्ट करो।

६१—कोठे=महल में। थारे.......... खटकी=तेरे लिए बाधक रूप हुई, तुझे असह्य हो पड़ी। गटकी=पी गई।

६२—सुथान......सिरदार=जो भगवान का पुण्यधाम है जहाँ झालर आदि वाद्यों के साथ भगवन्नाम का कीर्तन-घोष होता है, जहाँ श्यामसुन्दर स्वयं द्वारिकानाथ है जिसके कारण वहाँ की गोमती

भी सकल तीर्थ स्वरूपिणी हो गई है। माछली······नीर=ज्यों जल के बीच रहने वाली मच्छी को जल प्यारा है। रावल बास=प्रभु का धाम, श्री द्वारिकापुरी।

६३—गहमद ······रावल में=श्रीकृष्ण के प्रेम रंग में गहरी रंगी हुई। आजिरो=आजका। घोस=दिवस।

विशेष:—श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के आनंद महोत्सव प्रसंग को लेकर यह पद्य रचना हुई प्रतीत होती है। ऊदाबाई जोकि पहले अपनी भाभी से द्वेष रखती थी और जो पीछे से मीरांबाई के विषपान के प्रसंग में सहसा पश्चाताप पूर्वक भाभी के शरण हुई उसी के साथ मीरांबाई का आनन्द मनाने का भाव इस पद से व्यक्त होता है।

६४—सोनैं=स्वर्ण को। काट न लागै=जंग (मैल) नहीं लगता जोग·········काजै=हरि भक्ति के लिये वैराग्य भाव को अपनाने के कारण संसारासक्ति मिटने लगी। कीडी·······बणायो=चींटी का हाथी बनाया, तिल का ताड़ किया। अणदीठी=बिना देखी। अण सामले= बिना सुने। बद बद=बढ़ा बढ़ाकर। बद·········उठायौ=मन घड़न्त बातें बढ़ा बढ़ा कर की। और·········बड़ाई=संसार के प्रपंच और सुखदु:ख भरी अनेकों घटनाओं की ओर दुर्लक्ष्य करके निर्लोभवृत्ति और निरहंकारी भाव को अपनाया। परगल·······बिछायो=संसार की निंदा स्तुति को तथा कुल की लाज व मर्यादा को प्रभु के लिये छोड़ दी है।

६५—बोल्या=बोल, ताने। एक·········च्यार=शस्त्र द्वारा राणा काट कर मीराँ के दो टुकड़े करने की सोचता है उतने तो दो के स्थान पर चार मीराँ दीखने लगीं।

विशेष:—इस पद में मीरांबाई के प्रति राणा के विरोध का प्रखर स्वरूप दृष्टिगत होता है। राणा मीरांबाई का प्राणान्त करने के लिये घातक प्रयोग पर प्रयोग किये ही जाता है परन्तु जब स्वयं शस्त्र द्वारा मीराँ को मारने को उद्यत होता है और भक्ति प्रभाव के कारण जब उसे एक मीराँ के स्थान पर चार मीराँ दीखने लगीं तब भयवश चाहे वह क्षणिक ही क्यों न हो, एक बार तो उसे उस भगवान को, जिसकी भक्ति के प्रभाव से यह चमत्कार घटित हुआ देखने का और भजने का विचार आ ही जाता है।

६६—कोर=मंडली, पंक्ति। भोपड़लां=भूत-प्रेत भाड़ने वाले, ओभा। मतो=मत । उपाइयौ=निश्चय किया। मुलक्यां=व्यंग पूर्वक, मंद हंसी। कोग=उत्साह।

विशेषः—यह पद मीरांबाई और राणा के परस्पर के प्रश्नोत्तर के रूप में है। राणा को समभाते हुए मीरांबाई ने इस पद में बताया है कि हरि भक्ति में जाति की कोई प्रधानता नहीं है और इसी की कई दृष्टांत देकर पुष्टि की है।

भावार्थः—राणाँजी·········हेत=हे राणाजी, भगवान की भक्ति में जाति को अधिक महत्व देना उचित नहीं। मेरी तो हरि-भक्तों में ही श्रद्धा और उन्हीं के सत्संग में रुचि है भले ही किसी जाति के हों। विदुर···········खोकाल=विदुरजी कोई उच्चकुल में नहीं जन्मे थे फिर भी केवल भगवद् प्रेम के ही प्रभाव से श्रीकृष्ण भगवान ने उनका आतिथ्य स्वीकार किया और वसुदेव को बंधन से मुक्त करने वाले भगवान ने उच्चकुल में जन्म लेने वाले भी दुष्ट मामा कंस का संहार किया। पाँचूँ······· रघुनाथ=पाँचों पाण्डव और द्रौपदी ये छठों भिन्न २ देवताओं के वरदान से उत्पन्न हुए थे और भिन्न २ स्वभाव के थे परन्तु एक मात्र उनके प्रेम ही के वशीभूत हो श्रीकृष्ण भगवान ने उनके बनवास के समय में अकस्मात् आने वाले दुर्वासादि ऋषि मुनियों को भोजनादि से तृप्त कराकर उनकी लाज रखी।

वन में·········कोर=भक्त वत्सल भगवान प्रेम भावना के भूखे हैं, वे केवल जातिमात्र से ऊँच नीच का भेद नहीं देखते। इसीलिये उन्होंने हीन जाति वाली वनवासिनी शबरी भिल्लनी के बेर प्रेम पूर्वक पाये। एक······हाथ=एक ही बेलि के दो तूँबे होने पर भी उन्हें पृथक्-पृथक् कार्य में लिया जाता है। एक तूँबा तंबूरे के रूप में वेश्यादि हीन वृत्ति वालों के भी काम आता है जब कि दूसरा कमंडलु के रूप में संतों के काम आता है। सारांश कि संगीत जैसे सरस कार्य में उपयोग होने पर भी भक्ति हीन होने से उस तूंबे का कोई महत्व नहीं जबकि दूसरे के केवल साधु-संतों के जलपात्र जैसे साधारण कार्य में आने पर भी उस तूंबे का महत्व बढ़ जाता है। भगवान भी ठीक इसी प्रकार भक्ति को ही महत्व देते हैं।

संख.........हाथ=एक ही समुद्र में उत्पन्न होने वाले दो शंखों में से एक तो भक्ति प्रिय सन्तों के सेवा पूजन में काम आता है जब दूसरे को भूत-प्रेत झाड़ने वाले ओझा (भोपालोग) तथा वैसे ही हीन वृत्ति वाले लोग काम में लेते हैं। वास्तव में एक ही प्रकार के शंख उत्तम अथवा अधम वृत्ति वालों के हाथ में जाने से वैसे ही व्यवसाय में उपयुक्त होते हैं।

एक माटी.........कलालाँ रै हाथ=एक ही मिट्टी के बने हुए दो कलश भिन्न रुचि वाले व्यक्तियों के हाथ में पड़कर कहीं उत्तम भगवत् सेवा के कार्य में अथवा कहीं कलालों के यहाँ मादक वस्तु व्यवसाय के कार्य में आते हैं।

हरिजी.........सुनाथ=भगवान पूर्ण सहायक-अनुकूल हो गये। सब मिलि.........द्रोह=मीराँ किसी का भी कहा सुना नहीं मानती इसलिये सब मिलकर एक निश्चय करके उसे विष देने जैसी अधम हठ पर तुल गये हैं।

परख.........आस=विषपान की कसौटी में जो भगवद् कृपा का अनुभव हुआ उस मीरांबाई को पूर्ण विश्वास हो गया कि भक्त वत्सल भगवान ही रक्षा करने वाले-लाज रखने वाले हैं। इस भगवद् कृपा से वह पूर्ण मनोरथ होगई।

कुम्भस्याम.........पहिचाण=कुम्भश्याम के मन्दिर में मीरां-बाई को राणाओं के राणा उन परात्पर प्रभु गिरधर गोपाल का जिनसे कि उसे पूर्व-जन्म से प्रीति-परिचय था, साक्षात्कार हुआ।

६७—लाग्यो.........रंग=भगवत प्रेम रूपी रंग लग गया। बाज्यो=कहलाये।

६६—गोठे=सुहाता है। कारमा=कठिन, तीव्र। कथा...... कीधा=संसार की ओर से मुँह मोड़ लेते ही प्रभु ने कृपा की।

७१—हरिजनहरि=भक्त भगवान। फूल.........नांय=फूल व उसकी सुगन्धि पृथक् नहीं। मती.........लगाय=हमें लांछन लगाने जैसी बात न करो। नीठ=कठिनाई से। मूंढ मुलकरी=अत्यन्त ना समझी के कारन। ठुकराई=ठकुराई, वैभव। लेसी......बिछाय= सब सुन लूँगी, सहन करूँगी।

७३—निपांओ=उपजाया। छांन=छत, छप्पर।

पाठान्तरः—

म्हूँ गिरधर की गिरधर म्हारो,
राणाजी कौन है बिचारो ।

७५—भावार्थः—दाझेल·········थई ए सुखिया=विराहाग्नि में दग्ध हुए हृदय वाली हम दुःखिनी हैं, श्यामसुन्दर के मिलने पर ही हम सुखी होंगी।

संसार·········मछिया=संसार रूप सागर में अगाध जल भरा है अर्थात् मिथ्या प्रपंच एवं मोह मायादि युक्त संसार सागर के अगाध खारे जल से जीव को कभी शांति और सुख प्राप्त नहीं होता, इसके विपरीत हम उस प्रभु-प्रेम और भगवद्भावरूप अल्प जल के जीव रूप मीन हैं कि जिसमें गोते लगाने पर ही वास्तव में शांति और आनन्द की प्राप्ति होती है।

चुन·········सुखिया=पुष्प शय्या पर सोते हुए अनेकानेक वैभवों को भोगते हुए तुम अपने को सुखी मानते हो।

परदेशी·········रतियां=जो निरन्तर दृष्टिगोचर नहीं हैं उन परदेशी प्रभु से प्रेम करने पर विरह में रो रो कर नेत्र लाल हो जाते हैं।

जन्म·············लखियां='हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश विधि हाथ' (गो० तुलसीदास)। इसलिये सब कुछ भगवान की इच्छा पर छोड़कर, उनका स्मरण करते हुए अपना कर्त्तव्य किये जाओ।

७८—साधरा·········नाचाँ=संतों के मुख के (वचन सुन सुन कर) नृत्य करूंगी। प्रेम········आस्याँ=रात्रि-दिन अखंड जप, विश्वास व प्रेम पूर्वक करने से भव कूप में नहीं गिरूँगी।

७९—न्यारो छांणै=निर्णय-न्याय करने वाले। निसतारै=उबारते हैं। अकरण·········हारे=कर्त्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थ उस निरंजन परमात्मा का पार न पाकर वेद भी 'नेति' कह उठते हैं।

८०—राणा·········परणाई=अर्थात् राणा संग्रामसिंह के युवराज भोजराज को।

———

विभाग ३ प्रार्थना-विनय

सब कुछ ईश्वर करता है यह, नित्य सूर्योदय होने जैसा निश्चित होने पर भी परमानंद की प्राप्ति के लिये परमावश्यक साधन—प्रभु से प्रार्थना-विनय करने जितना अहंकार जीव के लिये परम उपादेय होता है।

* भूमिका *

*

* मंगलाचरण *

विवृत विविध बाधे भ्रान्ति वेगादगाधे ।
बलवति भव पूरे मज्जतो मे विदूरे ॥
अशरण गण बन्धो हा कृपा कौमुदीन्दो ।
सकृद् कृत विलम्ब देहि हस्तावलम्बम् ॥

जिसमें विविध बाधाएँ विस्तृत हैं, जो भ्रान्ति के वेग से अगाध हैं, ऐसे बलवान संसार समुद्र में मैं बहुत दूर डूब रहा हूँ। हे अशरणों के बन्धु ! हे कृपा चन्द्रिका फैलाने वाले चन्द्रमा ! हाय ! आप मुझ डूबते हुए को एक बार तुरन्त हाथ का सहारा दीजिये !

प्राणी मात्र को सुख की चाह होती है परंतु जीव मात्र में आनंद एवं स्वतंत्रता का सर्वथा अभाव होने से, उसके चाहने पर भी जीवन में अपने मनोनुकूल परिस्थिति कदापि बनी नहीं रह सकती।

'हानि लाभ जीवन मरन यश अपयश विधि हाथ'

श्री गोस्वामी तुलसीदास की उपर्युक्त उक्ति के अनुसार चाहे कोई कैसा भी ऐश्वर्यशाली, सत्ताधीश, बुद्धिवान और बलवान क्यों न हो, उसे भी एक दिन यह अनुभव करना ही पड़ता है कि मैं कुछ भी नहीं। 'मैं' और 'मेरा' यह केवल मिथ्या अहंकार मात्र है। इस सत्य का जब साक्षात्कार होता है तब वह पूर्णरूपेण भगवान की शरण में जाता है। चारों ओर विवशता की परिस्थिति में तब उसके लिये एक मात्र 'प्रार्थना' का ही द्वार खुला रह जाता है।

'सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'
'तमेव शरणं गच्छ सर्व भावेन भारत'
तथा 'मन्मना भव मद्भक्तो मद्या जी मां नमस्कुरु'
(गीता अ० १८ श्लो० ६६, ६२, ६५)

भगवान के आदेशानुसार उक्त स्थिति को प्राप्त होना ही प्रार्थना का वास्तविक अर्थ है।

'प्रार्थना' साधन का कोई अन्त नहीं। वह तो जीवन का अंग बन कर स्वाभाविक हो जाती है।

परमात्मा आनंदस्वरूप है। वह परम दयामय है परंतु आवश्यकता है पूर्ण विश्वास की। भवतापतप्त जीव प्रार्थना रूप सुधा के झरने की शीतल जलधारा को पाकर ही शांति को प्राप्त होता है। सांसारिक सुख वास्तव में मृगमरीचिकावत् है। इससे त्राण पाने के लिये एक मात्र प्रार्थना ही सरल, सुगम एवं अमोघ साधन है। अंग्रेजी में एक कहावत भी है कि 'Prayer can move mountain' सारांश यह कि अति असंभव दीखने वाला कार्य भी प्रार्थना के बल पर सिद्ध होता है। जीवन में अनेकानेक संकटों-विषम प्रसंगों के उपस्थित होने पर, धैर्य व सान्त्वना देकर मन को विवेक की ओर मोड़ कर एक मात्र प्रार्थना ही उसकी बागडोर सम्हाले रहती है।

साधारण जीव प्रार्थना द्वारा धन, बल, सत्ता आदि सांसारिक नाशवान भोग्य विषयों की ईच्छा करते हैं परन्तु विचारवान, आत्मविषयक प्रेम, भक्ति, ज्ञानादि सात्विक व दैवी संपदा के भावों की कामना करते हैं। धीरे धीरे उनकी यह वृत्ति भी प्रभु-ईच्छा में लय हो जाती है।

संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं होगा जिसके जीवन में कभी प्रार्थना करने का प्रसंग नहीं आया हो। शोक, चिन्ता, भय, दुःख, व्याधि आदि संकट जब जीव को घेर लेते हैं तब तो वह 'त्राहि' 'त्राहि' होकर प्रभु को सच्चे भाव से पुकारता है।

प्रार्थना के लिये बाह्याडंबर वा भाषा का कोई महत्त्व नहीं। किसी भी स्थान पर तथा किसी भी समय किसी भी भाषा में प्रार्थना की जा सकती है। यह तो हृदय का विषय है। सच्चे हृदय की पुकार ही प्रभु तक पहुँच पाती है। वे कोई दूर नहीं। वे अंतर्यामी हैं। हृदय में यह दृढ़ श्रद्धा जम जाने पर ही प्रभु कृपानुभव का द्वार खुलता है। प्रार्थना के मूल में आत्मविश्वास होना परम आवश्यक है।

प्रार्थना से शनैः शनैः हृदय में प्रेम और प्रतीति प्रकट होकर मन भगवद्भक्ति की ओर अधिकाधिक झुकता जाता है। 'तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः'। और 'स तु दीर्घ काल नैरन्तर्य सत्कारा सेवितो दृढ़ भूमिः।' (योग. सू० १३-१४) के अनुसार प्रार्थना के अभ्यास की परिपक्व स्थिति को प्राप्त होने पर फिर तो प्रार्थना स्यवमेव होती रहेगी।

प्रार्थना द्वारा अन्तःकरण को नम्रता भरे भावों का पोषण मिलता है और आत्म निरीक्षण होकर विवेक के उदय से ज्यों ज्यों आत्मशुद्धि होती जाती है त्यों हृदय में अपूर्व शांति और विलक्षण सुख का अनुभव होता जाता है। सच्चे शरणागति-भाव से और पूर्ण श्रद्धापूर्वक की गई प्रार्थना कभी विफल नहीं जाती। प्रार्थना में अद्भुत बल है।

अपनी परतंत्र व पराकाष्ठा की अल्पता का ज्ञान होने पर ही जीव उस अज्ञेय, अनंत व अनादि शक्ति की शरण चाहता

है। उसे कोई ईश्वर तो कोई प्रकृति, कोई भगवान तो कोई राम वा कृष्ण, कोई शिव तो कोई शक्ति और कोई रहीम, ईसा तो कोई बुद्ध वा महावीर कहते हैं। वास्तव में चराचर सृष्टि के लिये वही एक मात्र परमात्मा है, नामों में भले ही भेद हो। उसकी प्रार्थना चाहे कोई सगुण अथवा निर्गुण भाव से करे या संगीत के साथ कीर्तन द्वारा अथवा अन्तःकरण पूर्वक (मानसिक) स्मरण द्वारा, पर वह होनी चाहिये हृदय से।

प्रार्थना अकेले अथवा सामूहिक तथा धार्मिक स्थान अथवा घर वा बन में भी की जा सकती है। कैसी भी प्रार्थना हो, अंत में सब 'यथा गच्छति सागरे' तथा 'सर्व देव नमस्कारं केशवं प्रति गच्छति।' के अनुसार एक मात्र उसी परमात्मा को प्राप्त होती है।

महात्मा गांधीजी का प्रार्थना पर पूर्ण विश्वास था। प्रातः सायं नित्य दोनों समय प्रार्थना का कार्यक्रम उनके जीवनक्रम में अंतिम क्षण तक अनिवार्य रूप से होता रहा।

बहुत से पाश्चात्य विद्वान भी प्रार्थना में बहुत श्रद्धा रखते हैं। कहीं कहीं, युद्ध-विजय की कामना से अथवा रोग–शांति आदि हेतु से भी सामूहिक प्रार्थना की जाती है।

प्रार्थना नित्य की जानी चाहिए। प्रार्थना के फलस्वरूप अभीप्सित फल प्राप्ति करने वालों के अनेकों दृष्टांत शास्त्रों में भरे पड़े हैं तथा आज भी नित्य व्यवहार में इसका अनुभव श्रद्धावान् हृदय को मिल साता है।

ग्रन्थारम्भ में भी प्रभु से प्रार्थना-विनय गद्य अथवा पद्य द्वारा करने की प्रथा है। आज भी उन संत महात्माओं के प्रार्थना

के बहुत से पद, बेचारे संसार ग्रस्त जीवों के लिये परम शांति प्रद अवलंब बने हुए हैं।

भारतीय संस्कृति की निदर्शक एवं निष्काम भावनात्मक ऋषि-मुनियों की प्रार्थना का यह भव्य एवं उदार आदर्श आज भी हमारे सन्मुख उपस्थित है :—

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्॥
नत्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं न पुनर्भवम्।
कामये दुःख तप्तानां प्राणिनामार्ति नाशनम्॥

अन्य संतों के प्रार्थना-वचन

'विपदः सन्तुनः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥
जन्मैश्वर्य श्रुत श्री भिरेधमान मदः पुमान्।
नैवार्हत्य भिधातुं वै त्वाम किञ्चन गोचरम्॥

श्रीमद्भा० १।८।२५-२६। कुन्ती।

'जगद्गुरो ! हमारे जीवन में सदा पद-पद पर विपत्तियाँ आती रहे क्यों कि विपत्तियों में निश्चित रूप से आपके दर्शन हो जाने पर फिर जन्म-मृत्यु के चक्कर में नहीं आना पड़ता। उच्च कुल में जन्म, ऐश्वर्य, विद्या और सम्पत्ति के कारण जिसका घमंड बढ़ रहा है, वह मनुष्य तो आपका नाम भी नहीं ले सकता, क्योंकि आप तो उन लोगों को दर्शन देते हैं, जो अकिञ्चन हैं।'

'यद्भाव्यं तद्भवतु भगवन् पूर्व कर्मानुरूपम्,
एतत्प्रार्थ्यं मम बहुमतं जन्म जन्मान्तरेऽपि।
त्वत्पादाम्भो रुह युग गता निश्चला भक्तिरस्तु॥

'भगवन् ! पूर्व कर्मानुसार जो होता है उसे होने दो, मेरी तो इतनी ही प्रार्थना है कि जन्मजन्मान्तर में आपके युगल चरण कमलों में मेरी निश्चल भक्ति हो ।'

> 'हें चि दान देगा देवा तुझा विसर न व्हावा ।
> गुण गाईन आवडीं हें चि माझी सर्व जोडीं ॥
> न लगे मुक्ति धन संपदा संत संग देई सदा ।
> 'तुका'म्हणे गर्भवासी सुखे घालावे आम्हांसी ॥ तुकाराम ॥

प्रभो ! मुझे यही वर दो कि कभी मुझे तुम्हारा विस्मरण न हो, प्रेम से तुम्हारे गुण गाया करूँ, मुझे मुक्ति, धन, वैभव की चाह नहीं, केवल संतों का सत्संग हुआ करे बस, 'तुका' कहता है कि फिर सुख से भले ही कहीं भी जन्म दे दो।

> आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं
> करोमि दुर्गे करुणार्णवेशी ।
> नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः
> क्षुधा तृषार्ता जननीं स्मरन्ति ॥

'हे करुणामयी दुर्गे ! जब कभी संकट पड़ने पर ही मैं तुम्हें याद करता हूँ (सुख के समय में नहीं) इसे मेरा शठपना मत समझ लेना, क्योंकि क्षुधा-तृषा से व्याकुल होकर ही जीव रूप बालक माता को याद करते हैं । अस्तु ।

मीरांबाई के प्रार्थना-विनय के सब पद इस विभाग में दिये हैं। इस विभाग के १३, १६, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ४२, ४५, ६६, ६८, १००, १०१, १०२, १०५, १०६, १०८, १०६ और ११४ ये १६ पद गुजराती भाषा के हैं ।

'प्रार्थना-विनय' मीराँकी वाणी में

संसार का महत्त्व छूटकर एक मात्र भगवान ही नित्य, सत्य, शरण्य, ध्येय, परमाधार और आनन्दस्वरूप है ऐसा विवेक पूर्ण अनुभव होने पर ही प्रार्थना के ऐसे उद्गार मीरांबाई के हृदय से निकलते हैं यथा—

(१) और आसरो नाँही तुम बिन तीनूँ लोक मँझार, निरख्यौ सब संसार। (४) तुम बिन सब जग खारा। (६) मैं सरण गही प्रभु तोरी। (१२) म्हारो सगपण तोसूँ साँवलिया, जगसूँ नहीं विचारी। (२५) तुम चरणाँ में लीन रहे मन, ज्यूँ मच्छी जल ध्यान, ये मांगत वरदान। (२७) भव में पकडो हाथ। (४७) औरों के प्रभु और वसीला, हमरे तुमारी पख रे। (४८) आप बिना नहीं म्हारे भेलोजी साँवरा। (८५) साँची प्रीत लगी है तुमसूँ, फूक मारो संसारा जी। (६३) जीवन प्राण हमारो।

इस प्रकार श्यामसुन्दर को अपना सर्वस्व समझ कर उनकी शरण जाने वाली मीरांबाई जैसी अनन्य प्रेमिका व जन्म जन्म की उनकी दासी ही आत्मीय भाव से यह कह सकती है,—(१) तुमको बाँह गहे की लाज। (४) तन मन धन सब भेंट धरूँगी। (५) गिरधर प्रीतम प्यारा, थे मत होज्यो न्यारा। (७) मिल बिछुड़न मत कीजो। (१२) पलक न कीजै न्यारी। (२८) गिरधरलाल प्रीत मति तोड़ो। (६०) कंठ लगायर लीज्यो जी। (६०) प्रीत करो तो स्वामी ऐसी कीज्यो अध बिच मत छिटकाज्यो। (६३) हरि मेरे नयनन मों रहियो, रात दिवस आगे आगे डोलो, घरि पल अलग मत

रहियो। (१०७) प्रीत करी तो पार निभाज्यो, मत करो लोक हसाई।

भगवान को रिझाने के लिये बाह्य साधनों का कोई महत्त्व नहीं। अनन्य निष्ठा और हृदय के सच्चे प्रेम भाव से ही वे भक्त के वश में होते आये हैं। इस भक्ति योग के सिद्धान्त के प्रति अटल विश्वास रखती हुई वह घोष करती है,—(६२) भावना को भूखो साँवरो म्हारो। (७२) साँचो प्रेम प्रीत को नातो, ताही तैं तुम रीझो।

इस प्रकार प्रभु के समर्थ आधार को पाकर पूर्ण आत्म-विश्वास पूर्वक वह अपने देवर राणा विक्रमादित्य के अत्याचार को चुनौति के रूप से स्पष्ट सुना देती है,—(६१) जाकूं राखै राम गुँसाई, तो मारनहारो कुण हो।

भीड पडने पर भक्त की पुकार सुनकर भगवान कृपा कर उसे सङ्कट मुक्त करते हैं, इस पर बहुत से पदों में भक्तों के दृष्टान्त देकर मीरांबाई अपना भी वही अनुभव व्यक्त करती है परन्तु उसके हृदय की तो एक मात्र यही कामना है कि-(११) मीराँ को प्रभु साँची दासी बनाओ। (१३) सेवा करूँ दिन रातड़ी।

इस प्रकार प्रार्थना करते हुए भी सब कुछ प्रभु की इच्छा पर छोड़कर सन्तोष पूर्वक अपना निष्कामभाव व्यक्त करते हुए मीरांबाई गा उठती है,-(१०) में तो तेरी सरण परी रे, रामा ज्यूँ जाणे ज्यूँ तार। (१४) चरण लगावो थाँरी मरजी। (२३) मन माने जब तार।

प्रार्थना की यही विशेषता है, यही रहस्य है।

प्रार्थना-विनय के पद

★

अनन्यता १

म्हाँरे घर होता जाज्यो राज ।
अब के जिन टाला दे जावो सिर पर राखूँ बिराज ॥०॥
म्हें तो जनम जनम की दासी थे म्हाँका सिरताज ।
पावणड़ा म्हाँके भलाँ ही पधारो सब ही सुधारण काज ॥१॥
म्हें तो बुरी छाँ थाँके भली छे घणेरी, तुम हो एक रस राज ।
थाँने हम सब ही की चिन्ता (तुम) सबके हो गरीब निवाज ॥२॥
सबके मुकुट-सिरोमणि सिर पर मानों पुण्य की पाज ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर बाँह गहे की लाज ॥३॥

विश्वास २

हरि मेरे जीवन प्रान अधार ।
और आसरो नाँही तुम बिन, तीनूँ लोक मँझार ॥०॥
आप बिना मोहि कछु न सुँहावै, निरख्यौ सब संसार ।
मीराँ कहै मैं दास रावरी, दीज्यौ मती बिसार ॥१॥

विश्वास ३

श्याम मोरी बाँहड़ली जी गहो ॥०॥
या भवसागर मंझधार में, थें ही निभावण हो ॥१॥
म्हाँ में ओगुण घणाँ छै हो, थें ही सहो तो सहो ॥२॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनाशी, लाज बिरद की बहो ॥३॥

अनन्यता ४

म्हारे घर आओ प्रीतम प्यारा ।
तुम बिन सब जग खारा ॥०॥
तन मन धन सब भेंट धरूँगी, भजन करूँगी तुम्हारा ॥१॥
तुम गुणवन्त सुसाहिब कहिये, मोमें औगुण सारा ॥२॥
मैं निगुणी कछु गुण नहिं जानूँ, तुम छो बगसण हारा ॥३॥
सेज सँवारी आप नहीं आये, कबकी करूंजी विचारा ॥४॥
मीराँ कहै प्रभु कबरे मिलोगे, तुम बिन नैण दुखारा ॥५॥

अनन्यता ५

छोड़ मत जाज्योजी महाराज ॥०॥
में अबला बल नायँ गुसाईं तुम ही मेरे सिरताज ॥१॥
में गुणहीन गुण नायँ गुसाईं तुम समरथ महाराज ॥२॥
थाँरी होय के किणरे जाउँ तुम ही हिवड़ा रो साज ॥३॥
मीराँ के प्रभु और न कोई राखो अब के लाज ॥४॥

आत्म-निवेदन ६

प्रभुजी मैं अरज करूँ छूँ मेरो बेड़ो लगाज्यो पार ॥०॥
इण भव में मैं दुख बहु पायो संसा-सोग-निवार ॥१॥
अष्ट करम की तलब लगी है, दूर करो दुख भार ॥२॥
यो संसार सब बह्यो जात है लख चौरासी री धार ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर आवागमन निवार ॥४॥

विरह ७

म्हारी सुध ज्यूँ जाणो ज्यूँ लीजो ॥०॥
पल पल उभी पंथ निहारूँ, दरसन म्हाने दीजो ॥१॥
मैं तो हूँ बहु औगुणवाली, औगुण सब हर लीजो ॥२॥
मैं तो दासी थाँरे चरण कँमल की, मिल बिछुड़न मत कीजो॥३॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ चित दीजो ॥४॥

प्रभाती ८

जागो बंशीवारे ललना, जागो मोरे प्यारे ॥०॥
रजनी बीती भोर भयो है, घर घर खुले किंवारे ।
गोपी दही मथत सुनियत है, कँगना के झनकारे ॥१॥
उठो लालजी भोर भयो है, सुर नर ठाडे द्वारे ।
ग्वाल बाल सब करत कुलाहल, जय जय सबद उचारे ॥२॥
माखन रोटी हाथ में लीनी, गउवन के रखवारे ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, शरणागत कूँ तारे ॥३॥

शरणागति ९

सुण लीजो विनती मोरी, मैं सरण गही प्रभु तोरी ।
तुम (तो) पतित अनेक उधारे, भवसागर से तारे ॥०॥
मैं सबका तो नाम न जानूँ, कोई कोई नाम उचारे ।
अंबरीष सुदामा नामा, तुम पहुँचाये निज धामा ॥१॥
ध्रुव (जो) पाँच वर्ष के बालक, तुम दरस दिये घनश्यामा ।
धना भक्त का खेत जमाया, कबिरा का बैल चराया ॥२॥
सबरी का झूँठा फल खाया, तुम काज किये मन भाया ।
सदना औ सेना नाई को, तुम कीन्हा अपनाई ॥३॥
करमा की खिचड़ी खाई, तुम गणिका पार लगाई ।
मीराँ प्रभु तुमरे रंग राती, या जानत सब दुनियाई ॥४॥

शरणागति १०

में तो तेरी सरण परी रे, रामा ज्यूँ जाणे ज्यूँ तार ॥०॥
अड़सठ तीरथ भ्रम भ्रम आयो, मन नहिं मानी हार ॥१॥
या जग में कोई नहिं अपणा, सुणियौ श्रवण मुरार ॥२॥
मीराँ दासी राम भरोसे, जम का फंदा निवार ॥३॥

विकलता ११

मीराँ को प्रभु साँची दासी बनाओ ।
झूँठे धँधों से मेरा फन्दा छुड़ाओ ॥०॥
लुटे हि लेत विवेक का डेरा ।
बुधि बल यदपि करूँ बहुतेरा ॥१॥
हाय ! हाय ! नहिं कछु बस मेरा ।
मरत हूँ बिबस प्रभु धाओ सबेरा ॥
धर्म उपदेश नित प्रति सुनती हूँ ।
मन कुचाल से भी डरती हूँ ॥२॥
सदा साधु सेवा करती हूँ ।
सुमिरण ध्यान में चित्त धरती हूँ ॥
भक्ति मारग दासी को दिखलाओ ।
मीराँ को प्रभु साँची दासी बनाओ ॥३॥

प्रेमालाप १२

थाँने काँई काँई कह समझाऊँ, म्हारा बाला गिरधारी ।
पूर्व जनम की प्रीति हमारी, अब नहिं जात निवारी ॥०॥
सुंदर बदन जोवते सजनी, प्रीति भई छे भारी ।
म्हारे घरे पधारो गिरधर, मंगल गावै नारी ॥१॥
मोती चौक पूराऊँ बाल्हा, तन मन तोपर वारी ।
म्हारो सगपण तोसूँ साँवलिया, जग सूँ नहिं विचारी ॥२॥
मीराँ कहे गोपिन को बाल्हो, हमसूँ भयो ब्रह्मचारी ।
चरण सरण है दासी तुम्हारी, पलक न कीजै न्यारी ॥३॥

सेवाभाव १३ (गुज०)

अरज करे छे मीराँ रांकड़ी (लाड़ली), उभी उभी अरज करे छे ।

मणिधर स्वामी म्हाँरे मन्दिर पधारो,
सेवा करूँ दिन रातड़ी ॥०॥
फुलनां तोड़ा ने फुलना रे गजरा,
फुलना रे हार फुल पाँखड़ी ।
फुलनी रे गादी ने फुलना रे तकिया,
फुलनी रे पाथरी पछेड़ी ॥१॥
पय पकवान मिठाई ने मेवा,
सेवैया ने सुन्दर दहींड़ी ।
लवंग सुपारी ने एलची तज वाला,
काथा चुना री पान बीड़ी ॥२॥
सेज बिछाउँ ने पासा मंगाऊँ,
रमवा आवो तो जाय रातड़ी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
रूप जोई ठरे छे म्हारी आँखड़ी ॥३॥

अनन्यता १४

तुम सुणो दयाल म्हाँरी अरजी ॥०॥
भवसागर में बही जात हूँ, काढो तो थाँरी मरजी ॥१॥
यो संसार सगो नहिं कोई, सांचा सगा रघुवरजी ॥२॥
मात पिता सुत कुटुंब कबीलो, सब मतलब के गरजी ॥३॥
मीराँ की प्रभु अरजी सुणलो, चरण लगावो थाँरी मरजी ॥४॥

प्रेमभाव १५

साँवरा म्हारी प्रीत निभाज्यो जी ॥०॥
थे छो म्हारा गुणरा सागर ।
औगुण म्हारूँ मति जाज्यो जी ॥१॥

लोक न धीजैं (म्हारो) मन न पतीजै ।
मुखड़ा रा सबद सुणाज्यो जी ॥२॥
मैं तो दासी जनम जनम की ।
म्हारे आँगण रमता आज्यो जी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
बेड़ो पार लगाज्यो जी ॥४॥

प्रेमभाव १६

लेह लागी मने तारी कानाजी (अल्याजी)
लेह लागी मने तारी ॥०॥
काम काज मूक्युँ न धामज मूक्युँ ।
मन मां चाहुं छुं मोरारी ॥१॥
खभे छे कामळी ने हाथमां छे वांसळी ।
गोकुल मां गायो चारी ॥२॥
सोल सहस्र गोपिओ ने तमे वरिया ।
तोय तमे बाल ब्रह्मचारी ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर ।
चरण कमळ बलिहारी ॥४॥

अनन्यता १७

तुम बिन मेरी कौन खबर ले गोवर्धन गिरधारी ॥०॥
मोर मुकुट पीतांबर सोहै । कुन्डल की छबि न्यारी ॥१॥
भरी सभा में द्रोपदी ठाड़ी । राखो लाज हमारी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । चरण कमल बलिहारी ॥३॥

भक्त-वत्सलता १८

हरि तुम हरो जन की भीर ॥०॥
द्रोपदी की लाज राखी । तुम बढ़ायो चीर ॥१॥

भक्त कारन रूप नरहरि। धर्यौ आप सरीर ॥२॥
हिरनकश्यप मारि लीन्हौं। धर्यौ नाहिं न धीर ॥३॥
बूड़तो गजराज राख्यौ। कियो बाहर नीर ॥४॥
दासी मीराँ लाल गिरधर। चरण कवँल पे सीर ॥५॥

प्रेम १६

होता जाज्यो राज हमारे महलों, होता जाज्यो राज ॥०॥
मैं औगुणी मेरा साहिब सगुणा, संत सँवारें काज ॥१॥
मीराँ के प्रभु मन्दिर पधारो, करके केसरिया साज ॥२॥

प्रेम २०

बंसीवाला साँवरिया आजा रे ॥०॥
बिन देखे नहीं चैन पड़त है। चाँद-सा मुखड़ा दिखाजा रे ॥१॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे। मुरलि की टेर सुनाजा रे ॥२॥
दधि माखन घर में बहु मेरे। दिल चाहे सोई खाजा रे ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। मोहनी मुरत दिखाजा रे ॥४॥

सेवाभाव २१

मन्दिरये पधारो श्याम मन भगति में ॥०॥
सोने की थाली में भोजन परोसूँ।
धीरे धीरे जीमो श्याम मन भगति में ॥१॥
सोने की झारी में गंगाजल पानी।
धीरे धीरे पीवो श्याम मन भगति में ॥२॥
चुन चुन कलियाँ सेज बिछाई।
धीरे धीरे पोढ़ो श्याम मन भगति में ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर।
शरण में लीजो श्याम मन भगति में ॥४॥

प्रेमालाप २२

ओल्यूँ थारी आवे हो मिलवा की साजनिया ॥०॥
बिछरन दूँगी पाय पलक में, राखूँ हथमनिया।
आप महाराज को बिरद लजेलो, सुणजो साजनिया ॥१॥
याद करूँ जब वेग पधारो, राखूँ पावनिया।
किरपा कीजो दर्शन दीजो, शरणे काजनिया ॥२॥
भरयाँ समँद में बही जात हूँ, कोई न राखनिया।
मीराँ के प्रभु हित कर लीजो, गिरधर से धनिया ॥३॥

अनन्याश्रय २३

मन माने जब तार प्रभुजी ॥०॥
नदिया गहरी नाव पुरानी। किस विध उतरूँ पार ॥१॥
वेद पुरान बखानी महिमा। लगे न गुण को पार ॥२॥
योग याग जप तप नहीं जानूं। नाम निरन्तर सार ॥३॥
बाट तकत हौं कबकी ठाड़ी। त्रिभुवन पालन हार ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। चरण कमल बलिहार ॥५॥

अनन्यता २४

अब हरि भूल्या नाय बने ॥०॥
विपति विदारण तुम हो गिरिधर। सुख में मित्र घनें ॥१॥
मैं अति दीन नहीं कछु लायक। तुम बिन कौन गिने ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। व्रज नन्द सरत तने ॥३॥

भक्ति २५

सुणज्यो चित्त दे कान ॥०॥
भगति प्रकाश करो हिरदा में, जहाँ से मिटत अज्ञान ॥१॥
तुम चरणाँ में लीन रहे मन, ज्यूँ मच्छी जल ध्यान ॥२॥
मीराँ दासी दोउ कर जोड़्याँ, ये माँगत वरदान ॥३॥

प्रेम २६

म्हारे घर आवोजी राम रसिया ।
थारी साँवरि सुरत मन बसिया ॥०॥
घुड़ला जीण करावो मन मोहन ।
बखतर खासा कसिया ॥१॥
चुन चुन कलियाँ सेज बिछाई ।
उपर रखिया तकिया ॥२॥
सिरे गाय को दूध मंगायो ।
चाँवल गेरया भर पसिया ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
चरण कमल मन बसिया ॥४॥

भक्त-वत्सलता २७

म्हारी सुध लीज्यो साँवरा दीनानाथ ॥०॥
जल डूबत गजराज उबारयो ।
जल माँहे पकड़यो हाथ ॥१॥
जिन प्रहलाद पिता दुख दीनो ।
नरसिंह भया यदुनाथ ॥२॥
नरसी मेहता के मायरे पधारया ।
राखी वाँरी सगा माँहे बात ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
भव में पकड़ो हाथ ॥४॥

करुणाभाव २८

गिरधर लाल प्रीत मति तोड़ो ॥०॥
गहरी नदियाँ नाव पुरानी, अद बिच में काँई छोड़ो ॥१॥

तुमही हो मेरे सेठ बहोरा, ब्याज मूल काँई जोड़ो ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, रस में विष काँई घोलो ॥३॥

दर्शनानन्द २६

हरि बिन मोरी कौन खबरि ले, साँवरिया गिरधारी ॥०॥
मोर मुकुट शिर छत्र बिराजै, कुण्डल की छबि न्यारी ॥१॥
लटपट पाग केसरिया बागो, हिवड़े हार हजारी ॥२॥
वृन्दावन में धेनु चरावे । बंशी बजावे गिरधारी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल पर बलिहारी ॥४॥

उत्कंठा ३० (गुज०)

मारे घेर आवो रे सुंदरश्याम, सोले सणगारे धरो शोभता रे ।
मोतिडे मांग भरावे, वेणी गुंथावुं शोभे ढलकंती ॥०॥
उंची हुं चढुं उचेरडी रे, जोउं पातळियानी वाट ।
वेगे पधारो मारा हो साएबा, तारे बेसणे मांडुं पाट ॥१॥
मोर मुगट शोहामणो रे, गळे गुंजानो हार ।
मुख मधुरी तारे हो मोरली रे, तारी चाल तणी छे बलीहार ॥२॥
दास मीराँ बाइ गिरधर नागर, हर्खी निर्खी गुण गाय ।
कलीयुग मां अमे अवतरीयां, मने राखोनी चर्णे करो सा'य ॥३॥

भक्त-वत्सलता ३१ (गुज०)

राखो रे श्याम हरी लज्जा मोरी, राखो श्याम हरि ॥०॥
भीम ही बेठे, अर्जुन ही बेठे, तेणे मारी गरज न सरी ॥१॥
दुष्ट दुर्योधन चीर ने खेंचावे, सभा बीच खडी रे करी ॥२॥
गरूण चढी ने गोविन्दजी रे आव्या, चीर ना तो वा'ण भरी ॥३॥
बाइ मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरणे आवी तो उगरी ॥४॥

भक्त-वत्सलता	३२ (गुज०)

तुं तो तारा बीरद सामु जोइले शामळीआ,
नव जोजे करणी हमारी रे वहाला ॥०॥
गजने कारण वहाला, पेदल धाया–
द्रौपदीना चीर वधार्या रे वहाला ॥१॥
माझारी केरां वाहाले बच्चां उगार्यां–
प्रहलाद भकत उगार्यो रे वहाला ॥२॥
अनेक भकतो ने वहाला आपे तार्यां–
अनेक असुरो संहार्या रे वहाला ॥३॥
टींटोडीना र वहाले बच्चां उगार्या–
प्रजापती नी पत राखी रे वहाला ॥४॥
मीरांबाइ कहे प्रभु गीरधरना गुण–
चरण कमळ बलिहारी रे वहाला ॥५॥

अनन्यता	३३ (गुज०)

तुज बिना मोरी कोण खबर ले श्री गोवरधन धारी रे।
औरन कु तो और भरूसो हमकु आश तुमारी रे ॥०॥
मोर मुकट पिताम्बर शोभे, कुण्डळ की छबी न्यारी रे।
पाणीनी उपर पाज बंधावी, सन्या ते पार उतारी रे ॥१॥
भरी सभा मां द्रौपदी पोकारे, लज्जा ते राखी मुरारी रे।
चंद्रा ते वन ने मारग जातां, मळीया छे मोहन मोरारी रे ॥२॥
चंद्रा ते वन में रास रच्यो छे, सोळसें गोपी मां म्हाले रे।
जुमना के नीर तीर, धेनु चरावे बंसी बजावी नंदलाले रे ॥३॥
चंद्रा ते वनमी कुंज गलनमां, खेलत राधा नारी रे।
बाइ मीराँ कहे प्रभु गीरधर ना गुण, चरण कमळ बलीहारी रे ॥४

गुणगान ३४ (गुज०)

ब्रीजवासी रे ब्रीजवासी, मोरलीयो वाळो ब्रीजवाशी ।
वांसलडीवाळो ब्रीजवाशी, नंदाजी नो लालो ब्रीजवासी ।
छेल छोगाळो ब्रीजवाशी, कानुडो काळो ब्रीजवाशी ।
लागे सौथी रूप ब्रीजवाशी–ब्रीजवाशी रे ॥०॥
मथुरां मां व्हाले जन्म ज लीधो ।
गोकुळ मां आव्या नाशी–मोरलीयोवाळो ब्रीजवाशी० ॥१॥
माता जशोदा आनंद पाम्यां ।
अखंड प्रगट्या अविनाशी–मोरलीयोवाळो ब्रीजवाशी ० ॥२॥
मथुरां मां व्हाले मामा ने मार्यो ।
गोकुळमां मारी मासी–मोरलीयोवाळो बीजवाशी० ॥३॥
द्वारकां थी प्रभु डाकोर पधार्या ।
डाकोर ने कीधुं काशी–मोरलीयोवाळो ब्रीजवाशी० ॥४॥
बाइ मीराँ कहे प्रभु गीरधर ना गुण ।
जन्मोजन्मनीं हुं दासो–मोरलीयोवाळो ब्रीजवासी० ॥५॥

शरणागति ३५

शरणागत की लाज तुमको शरणागत की लाज ॥०॥
भांत भांत के चीर पुराये । पांचाली के काज ॥१॥
प्रतिज्ञा छाँड़ि भीष्म के आगे । चक्र धरे जदुराज ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । दीनबंधु महाराज ॥३॥

प्रभु-महिमा ३६

कृष्ण करो जजमान प्रभु तुम ०॥
ज्याँकी कीरत वेद बखानत । साखी देत पुरान ॥१॥
मोर मुकुट पीतांबर शोभत । कुंडल झलकत कान ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । दे दरसन को दान ॥३॥

प्रतीक्षा   ३७

कद आवोगा रमैया म्हारे देश, ऊभी जोऊँ बाटड़ली ॥०॥
मन मन्दिर में ज्ञान बुहारी दे दीनी भरपूर ।
पाप का कूड़ा सोर लिया है फैंक दिया सब दूर,
म्हारे नैणा में बिराजो घनश्याम, ऊभी जोऊँ बाटड़ली ॥१॥
पलकाँ पर पग मेलताँजी उतरया मन्दिर बीच ।
दरशण करस्याँ भोग लगास्याँ दोयूँ आख्याँ मीँच,
थारा चोखा चोखा करस्याँ सिणगार, ऊभी जोऊँ बाटड़ली ॥२॥
साँवरी सूरत मन बसी जी, घूँघर वाला केस ।
जादूगारी बाँसुरी थारो, नट नागरियो बेस,
म्हारे आँगनिय में निरत कराय, ऊभी जोऊँ बाटड़ली ॥३॥
ठाकुर के सिंहासन ऊपर, आन बिछायो चीर ।
हम तो कछु जाने नहीं जी, तुम जानो यदुबीर,
गावे मीरांबाई भजन बनाय, ऊभी जोऊँ बाटड़ली ॥४॥

अनन्यता   ३८

हरि, म्हांरी सुणज्यौ अरज महाराज ॥०॥
मैं अबला, बल नांहि, गोसाईं, राखो अब कै लाज ॥१॥
रावरी होइ कणी रै जाऊँ है हरि हिवड़ा रो साज ॥२॥
हय को वपु धरि दैत संघारयो, सारयो देवन को काज ॥३॥
मीराँ के प्रभु और न कोई, तुम मेरे सिरताज ॥४॥

शरणागति   ३९

नैया मोरी हरि तुमही खिवैया तुमरी कृपा ते पार लगैया ॥०॥
गहरी नदिया नाव पुरानी पार करो बलभद्रजू के भैया ॥१॥
अजामिल, गज, गणिका, तारी शिवरी, अहल्या,
द्रोपदी लाज रखैया ॥२॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर बार बार तुमरे बल गइया ॥३॥

विश्वास ४०

राम गरीब-निवाज मेरे सिर राम गरीब-निवाज ॥०॥
कंचन कलस सदामां कूं दीनो हींडत है गजराज ॥१॥
रावण के दस मसतग छेदे दीयो भभीखण राज ॥२॥
द्रोपति सती को चीर वधार्यो अपणे जन के काज ॥३॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी कुल की राखी लाज ॥४॥

अनन्य भाव ४१

सुणे कोन मेरी सुणे हे कोन मेरी तुम बिन नाथ ॥०॥
एजी रामा अजामील सुत नाम उधारचो ।
गनिका ने तारी जशी पाप की ढ़ेरी ॥१॥
एजी रामा ध्रुव तारे प्रहलाद उबारे ।
मुझने तो आश अब राज की घणेरी ॥२॥
एीज रामा उभी उभी मीरां बाई अरज करे छे ।
तुम मेरे ठाकुर में तो दासी तेरी ॥३॥

भक्ति-प्रभाव ४२ (गुज०)

राम सीतापति तारी लेह लागी,
हो तमने भजे थी मारी भीड भागी ॥०॥
घरनो ते धंधो मने नथी गमतो,
साधु संगाथे मारी प्रीत बांधी ॥१॥
काम काज छोड्यां में तो लोकलाज मेली,
प्रेम मगन मां हुं राजी ॥२॥
अज्ञान नी कोटडी मां ऊंघ घणी आवे
प्रेम प्रकाश मां हुं जागी ॥३॥

दुरिजन लोक मारी निंदा करे छे, वा'ला
लागे छे मने वेरागी ॥४॥
नाची कूदी ने में तो भक्ति न कीधी,
लोक नी लाज में बहु राखी ॥५॥
ध्रुवजी ने लागी प्रहलादजी ने लागी,
द्रौपदी नी सभा मां भीड भागी ॥६॥
बाइ मीरां के प्रभु गिरधर ना गुण,
जनमो जनम नी हुँ त्यागी ॥७॥

शरणागति ४३

अब मोरी तुम ही से लाज हरी ॥०॥
कृष्ण कृष्ण ही रटत द्रौपदी, बिसरूं न एक घरी ॥१॥
भारत में भवँरी का अंडा, घंटा टूट परी ॥२॥
भारत में भीषण प्रण राख्यो, अर्जुन बाण खरी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, तुमरी शरण परी ॥४॥

गुणगान ४४

मेरी लाज तुम रखवैया। नंदजी के कुंवर कनैया ॥०॥
पेस प्यारे काली नाग नाथ्यो। फण पर नृत्य करैया ॥१॥
जमुना के नीर तीर धेनु चरावे। मुख पर मुरली बजैया ॥२॥
मोर मुगुट पीतांबर शोभे। कान कुंडल झलकैय्या ॥३॥
बृन्दावन की कुंज गलिन में। नाचत है दो भैय्या ॥४॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर। चरण कमल पड़ैय्या ॥५॥

आत्म-निवेदन ४५ (गुज०)

गुरुये कहियुं करण मां हो शामळियाजी ॥०॥
जप तप तीरथ चार पदारथ ये मारा
गुरूजीना चरण मां हो शामळियाजी ॥१॥

प्रेमे करिने मारे मंदिरे पधारो वहाला,
न जोशो जात वरण माँ हो शामळियाजी ॥२॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण वहाला,
आड़े आवजो मारा मरण माँ हो शामळियाजी ॥३॥

भक्त-वत्सलता ४६

पुकारा पुकारा पुकारा। द्रोपदी जदुनाथ पुकारा ॥०॥
एक से एक सकल रणधीर बेठ सभा में सारा।
भीष्म द्रोण कर्ण कुंतासुत अपणा धरम व्रत हारा ॥१॥
लट छटकाई करुणा करत द्रोपदी नैण बहे जल धारा।
अणी औसर में कुण ने पुकारूँ चीर दुःशासन हारा ॥२॥
तुम हो प्रभु मेरे गुरू पितु माता मैं हुं जो बाल तुम्हारा।
श्री जगन्नाथ जीवन जुग माधो तुरत ही गरुड असवारा ॥३॥
हाथ में लिया प्रभु चक्र सुदर्शन माथा का मुकुट सँवारा।
मीरां बाई के हरि गिरधर नागर शरण ही राख उबारा ॥४॥

अनन्यभाव ४७

रखरे रखरे रखरे प्रभु लाज हमारी रखरे ॥०॥
ओराँ के प्रभु ओर वसीला। हमरे तुमारी पख रे ॥१॥
जल डूबत वृज राख लई है। धर गिरिवर को नख रे ॥२॥
मोर मुगट पीताम्बर सोहै। मुख पर मुरली रख रे ॥३॥
लोक लाज सब त्याग दई है। जग मारो चाहै भख रे ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर के शरणे। चरण कमल को पख रे ॥५॥

अनन्यभाव ४८

हेलो म्हारो चरणा में झेलोजी साँवरा,
सुणो म्हारो हेलोजी साँवरा ॥०॥

बिकट पहाड बिच आन पडी हूँ,
अब तो बतावो म्हाने गेलोजी साँवरा ॥१॥
मोर पंख आप रे सिर पर राजे,
मान किस विध रहेलो जी साँवरा ॥२॥
मीरांबाई के प्रभु गिरधर नागर,
आप बिना नहीं म्हारे भेलोजी साँवरा ॥३॥

भक्त-वत्सलता   ४६

तुम बिना मोरी कोन खबर ले गोवरधन गिरधारी।
प्रभु गोवरधन गिरधारी ॥०॥
खंब फाड हरणाकुश मार्‌यो, भक्त प्रहलाद बचायो।
नरसी महता की हुंडी सिकारी, राग केदारो सुनायो ॥१॥
धना भक्त की खेती निपजाई, वाया तुम्बा मोती होया।
राखी लाज सभा में द्रुपद सुता का चीर बढ़ाया ॥२॥
सेंण भक्त का सांसा मेटचा, नृप को जाय संवारचा।
विष रा प्याला राणेजी भेज्या, विप अमृत कर डारचा ॥३॥
विप्र सुदामा तारचो सुवा पढ़ावत गणिका तारी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल बलिहारी ॥४॥

दास्य-भाव   ५०

कीजो थांरी दासी हो साँवरा॥ ० ॥
भवसागर माँहि बही जात हूँ, बैयां पकड़ सुध लीजो ॥१॥
मैं छुं रे पापी पतित उधारन, बेग खबर म्हारी लीजो ॥२॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित दीजो ॥३॥

शरणागति   ५१

अब मैं सरण तिहारी जी, मोहिं राखो कृपानिधान ॥०॥
अजामील अपराधी तारे, तारे नीच सदान।

जल डूबत गजराज उबारे, गणिका चढ़ी विमान ॥१॥
और अधम तारे बहुतेरे, भाखत संत सुजान ।
कुबजा नीच भीलणी तारी, जानै सकल जहान ॥२॥
कहँ लगि कहूँ गिणत नहिं आवै, थकि रहे बेद पुरान ।
मीराँ कहै मैं सरण रावली, सुनियो दोनों कान ॥३॥

शरणागति ५२

अब तो निभायाँ सरेगी, बाँह गहे की लाज ॥०॥
समरथ सरन तुम्हारी सइयाँ, सरब सुधारण काज ॥१॥
भवसागर संसार अपरबल, जामें तुम हो जहाज ॥२॥
निरधाराँ आधार जगत गुरू, तुम बिन होय अकाज ॥३॥
जुग जुग भीर हरी भक्तन की, दीनी मोक्ष समाज ॥४॥
मीराँ सरण गही चरणन की, लाज रखो महाराज ॥५॥

दास्यभाव ५३

जागो म्हाँरा जगपतिरायक हँस बोलो क्यूं नहीं ।
हरि छो जी हिरदा माहिं पट खोलो क्यूँ नहीं ॥१॥
तन मन सुरति सँजोइ सीस चरणाँ धरूँ ।
जहाँ जहाँ देखूँ म्हारो राम तहाँ सेवा करूँ ॥२॥
सदकै करूँ जी सरीर जुगै जुग वारणैं ।
छोडी छोडी कुळ की लाज स्याम थाँरे कारणैं ॥३॥
थोड़ी थोड़ी लिखूँ सिलाम बहोत करि जाणज्यौ ।
बंदी हूँ खानाजाद महरि करि मानज्यौ ॥४॥
हाँ हो म्हारा नाथ सुनाथ बिलम नहिं कीजियै ।
मीराँ चरणाँ की दासि दरस फिर दीजियै ॥५॥

अनन्यता ५४

बेग पधारो सांवरा कठिन बनी है,

आप बिना म्हारो कुण धनी है ॥०॥

दुखिया कूं देख देर मत कीजो, देर की बिरियां और घनी है॥१॥

दिन नहीं चैन रैन नहिं निद्रा, दुशमन के हिये हरस घनी है।

गहरी गहरी नदिया नाव पुरानी, पार करो घनश्याम धनी है॥२॥

जमड़ा की फौजां प्रभु आन पड़ी है,बेग हरावो मोटा आप धनी है।

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल बिच आन खड़ी है॥३॥

भक्त-वत्सलता ५५

म्हारे नैणाँ आगे रहीजो जी, स्याम गोबिंद ॥०॥

दास कबीर घर बालद जो लाया, नामदेव की छान छवंद ॥१॥

दास धना को खेत निपजायो, गज की टेर सुनंद ॥२॥

भीलणी बेर सुदामा का तन्दुल, भर मुठड़ी बुकंद ॥३॥

करमाबाई को खीच अरोग्यो, होइ परसण पावंद ॥४॥

सहस गोप बिच स्याम बिराजे, ज्यों तारा बिच चंद ॥५॥

सब संतों का काज सुधारा, मीराँ सूँ दूर रहंद ॥६॥

अनन्यता ५६

मेरी कानाँ सुणज्यौजी करुणानिधान ॥०॥

रावरो बिड़द मोहिं रूड़ो लागे, पीड़ित पराये प्राण ॥१॥

सगो सनेही मेरो और न कोई, बैरी सकल जहान ॥२॥

ग्राह गह्यो गजराज उबारयो, बूड़ न दियो छै जान ॥३॥

मीराँ दासी अरज करत है, नहिं जी सहारो आन ॥४॥

प्रतीक्षा ५७

वारी वारी हो राम हूँ वारी, तुम आज्यो गली हमारी ॥०॥

तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, जोऊँ बाट तुम्हारी ॥१॥

कूण सखी सूँ तुम रँग राते, हमसूँ अधिक पियारी ॥२॥
किरपा कर मोहिं दरसण दीज्यो, सब तकसीर बिसारी ॥३॥
तुम सरणागत परम दयाला, भव जल तार मुरारी ॥४॥
मीराँ दासी तुम चरणन की, बार बार बलिहारी ॥५॥

भक्त-वत्सलता ५८

हमने सुणी छै हरि अधम उधारण ।
अधम उधारण सब जग तारण ॥०॥
गज की अरज गरज उठ ध्यायो, संकट पड़्यौ तब कष्ट निवारण ॥१।
द्रुपदसुता को चीर बधायो, दूसासन को मान मद मारण ।
प्रहलाद की परतिग्या राखी, हरणाकुस नख उद्र बिदारण ॥२॥
रिखिपतनी पर किरपा कीन्हीं, बिप्र सुदाम की बिपति बिदारण ।
मीराँ के प्रभु मों बंदी पर, एति अबेरि भई किण कारण ॥३॥

अनन्यता ५९

म्हारी भोली भाली रो भरतार नहीं कर छांडसी ॥०॥
ऊँचा महलां राणाजी सूता म्हने हरदम पास बुलावें ।
म्हूं मदमाती थांका रंग राती म्हने ई बातां नी भावे ॥१॥
जेर रो प्यालो राणाजी मेल्यो म्हूँ कर चरणामृत पी जासी ।
सांप पिटारो दूजो मेल्यां थें वां भी दरसन देसी ॥२॥
लाज गया थांको विरद न रेसी लोग करेला हांसी ।
म्हारो तो कई नहीं बिगडसी थांकी ही पत जासी ॥३॥
म्हारी हरीकी लाख दावडियां सांवरिया म्हारो एकजी ।
कर जोड्यां थांकी मीराँ ऊभी चरणाँ चाकर राखसी ॥४॥

शरणागति ६०

प्रभु मेरा बेड़ा पार लगाज्यौ जी ॥०॥
मैं नुगनी मैं गुण नहीं प्रभुजी । ओगण चित मत लीज्यौजी ॥१॥

काढ़ खड़ग राणाजी कोप्या । गरूड चढ्या हरि आज्यौजी ॥२॥
बिस रा प्याला राणाजी भेज्या । चरणामृत कर पीज्यौ जी ॥३॥
काया नगर मैं घेरा पड्या छै । उपर आयर कीज्यौ जी ॥४॥
मीराँ दासी जनम जनम की । कंठ लगाय र लीज्यो जी ॥५॥

अनन्यता ६१

सांइयां अरज बंदी की सुन हो ।
मैं नुगणी तुम सुगणां सायब । औगुनगारी रा गुन हो ॥०॥
हूँ दासी तेरी जनम जनम की । तुम हो हमारे बर हो ।
दीनदयाल दया कर मोपैं । मेटो सबही डर हो ॥१॥
राणाजी बिस रो प्यालो भेज्यो । म्हारै भगति रो पण हो ।
जाकूं राखै राम गुंसाई । तो मारन हारो कुण हो ॥२॥
आंन देव म्हारी दाय न आवै । तुमसूं लागौ मेरो मन हो ।
जैसे चन्द चकोर निहारे । यूं सुमरूं छिन छिन हो ॥३॥
मीराँ नांव पीयालै छाकी । कांई जाणूं राणौजी कुण हो ॥४॥

भक्त-वत्सलता ६२

भावना को भूखो साँवरो म्हारो भावना को भूखो ॥०॥
शबरी के बोर सुदामा के चाँवल । भर भर मूंठ्याँ ढूको ॥१॥
दुरजोधन का मेवा त्याग्या । साग विदुर घर लूको ॥२॥
करमाबाई को खीच आरोग्यो । लूखो गण्यो नहीं सूखो ॥३॥
मीरांबाई के हरि गिरधर नागर । औसर कबहूँ न चूको ॥४॥

गुणगान ६३

यदुवर लगत है मोहिं प्यारो ॥०॥
मथुरा में हरि जन्म लियो है, गोकुल में पग धारो ।
जन्मत ही पुतना गति दीनी, अधम उधारन हारो ॥१॥

यमुना के तीरे धेनु चरावे, ओढ़े कामलो कारो ।
सुन्दर बदन कमल दल लोचन, पीताम्बर पट वारो ॥२॥
मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल, कर में मुरली धारो ।
शंख चक्र गदा पद्म बिराजे, सन्तन को रखवारो ॥३॥
जल डूबत ब्रज राखि लियो है, कर पर गिरिवर धारो ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जीवन प्राण हमारो ॥४॥

गुणगान ६४ (गुज०)

गावे राग कल्याण, मोहन गावे राग कल्याण ॥०॥
आप गावे ने आप बजावे, मोरली सुँ मिलावे तान ॥१॥
मोर पीछ शिर मुगट बिराजे, कुंडल झलके कान ॥२॥
मीरां बाई के प्रभु गिरधर ना गुण, गोपीए तजीया ध्यान ॥३॥

भक्ति-भाव ६५

माई मोरे नयन बसे रघुवीर ॥०॥
कर सर चाप कुसुम सर लोचन, ठाडे भये मन धीर ॥१॥
ललित लवँग लता नागर लीला, जब पेखो तब रणधीर ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बरसत कंचन नीर ॥३॥

अनन्यता ६६

गिरधर रीसाणाँ कौण गुनाँ ॥०॥
कछुक औगुण हममें काढ़ो, मैं भी कान सुणाँ ॥१॥
मैं तो दासी थाँरे जनम जनम की, थे साहिब सुगणाँ ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, थारो ही नाम भणाँ ॥३॥

प्रेमभाव ६७

म्हाँरे डेरे आज्यो जी महाराज ॥०॥
चुणि चुणि कलियाँ सेज बिछायी नख सिख पहर्यौ साज ॥१॥

जनम जनम की दासी तेरी तुम मेरे सिरताज ॥२॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी दरसण दीज्यौ आज ॥३॥

उपदेश   ६८

तुही तुही याद सांवरा आवे रे दरद में ॥०॥
ओ संसार अरट केरी घडीयां, भरयो आवे खाली जावे रे ॥१॥
ओ संसार ओस को पाणी, धूप पड्यो कुम्हलावे रे ॥२॥
भाई बन्धु कुटम्ब कबीला, भीड़ पड्यां भग जावे रे ॥३॥
दुखिया देख देर नहीं करणा, देर करणे की वेल्यां और घणी रे ॥४॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सिर पर सीताराम धणी रे ॥५

अनन्यभाव   ६९

आप बिना म्हारे कोयन सीरी अधबीच नैया मोरी अटक परी ।
पलक पलक म्हारे बरस बराबर मुशकिल तो होगई एक घड़ी ॥०
हार सिंगार मैं सबही त्याग्या और मोतियन की लड़ी ।
ज्ञान ध्यान हिरदा बीच राख्या प्रेम कटारी रळक पड़ी ॥१॥
ओ मन मस्त कह्यो नहीं माने पलटे घड़ी घड़ी ।
बार बार बाई मीराँ गावे चित्त चरणाँ में लपट परी ॥२॥

दर्शनानन्द   ७०

गोपाल राधे कृष्ण गोविंद गोविंद ॥०॥
बाजत झाँझरी और मृदंग, और बाजे करताल ॥१॥
मोर मुकुट पीतांबर सोहै, गल बैजन्ती माल ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भक्तन के प्रतिपाल ॥३॥

प्रभाती   ७१

जागिए गिरधारीलाल, भक्तन हितकारी ॥०॥
दासी हाजर खवास, कंचन ले झारी ॥१॥

सउच करो दंतधावन, स्नान की तयारी ॥२॥
वस्त्र और पुष्पमाल, तुलसी अति प्यारी ॥३॥
रत्न जटित आभूषण, मुकुट लटक वारी ॥४॥
धूप दीप नैवेद्य, आरती सँवारी ॥५॥
मीराँ प्रभु विधि विधान, चरणन चितधारी ॥६॥

प्रेमोत्कंठा ७२

ज्यूँ जाणूँ ज्यूँ लीज्यों सजन सुध ज्यूँ० ॥०॥
हूँ तो दासी जनम जनम की, कृपा रावरी कीज्यो ॥१॥
ऊठत बैठत जागत सोवत, कबहुँक याद करीज्यो ॥२॥
आवत जावत जीमत सोवत, सुपने दरस मोये दीज्यो ॥३॥
मैं पतिवरता नारि प्रभूजी, काहूतैं न पतीज्यो ॥४॥
साँचो प्रेम प्रीति को नाँतो, ताही तैं तुम रीझो ॥५॥
रात दिवस मोये ध्यान तिहारो, आय दरस मोय दीज्यो ॥६॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चित चरणाँ में लीज्यो ॥७॥

शरणागति ७३

तुम बिन स्याम सुने (गो) कौ (न) मेरी ॥०॥
ठाढ़ी खेवटणी अरज करत है, मलवा ने नाव पछिम को फेरी।१।
नदिया गहरी नाव पुराणी, अध पर बीच भँवर ने घेरी ॥२॥
बोदी है प्रभु पार लगावो, डूब जाय तो कहा रहै तेरी । ३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, कुल को त्याग शरण लई तेरी ॥४॥

प्रभाती ७४

तुमसों तो मन लाग रह्यो तुम जागो मोहन प्यारे ॥०॥
भोर भई चिड़ियाँ चहचाईं कागा बोले कारे।
कामनियाँ ने चीर सँभाले घर घर खुले किंवारे ॥१॥

सारी गउएँ निकस गईं यमुना लेकर संग लवारे ।
ग्वाल बाल सब द्वारे ठाड़े दाँईदार तिहारे ॥२॥
घर घर ग्वालन दही बिलोवें कर कंगन झनकारे ।
वस्तर भूषण तन पर धारो पगियाँ पेच सँवारे॥३॥
या ब्रज के प्रभु भूषण तुम हो तुमही प्राण हमारे ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर आयीं शरण तिहारे॥४॥

प्रेमानुरोध   ७५

तुम ह्याँही रहो राम रसिया, थारी साँवरो सुरति (में) मन बसिया ॥०॥
क्यांनै तो रामजी घोड़ा सिणगारो, क्यांनै पाषर कसिया ॥१॥
चुण चुण कलियाँ सेज सँवारूँ, ऊपर गादी तकिया ॥२॥
बोहोत दिना की पंथ निहारूँ, तुम आयाँ रंग रचिया ॥३॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनाशी, चरण कमल मन बसिया ॥४॥

परमात्म-भक्ति   ७६

थोडी थोडी पावो गिरधारीजी भोली म्हांने आवै ॥०॥
नंदनबन सूँ बूँटी आई, जोग ध्यान दरसावै ।
या बूँटी दुरलभ देवन कों, सेस सहस मुख गावै ॥१॥
शिव विरंचि जाको ध्यान धरत हैं, वेद पुराण सुनावैं ।
मीराँ तो गिरधर रँग राची, भक्ति पदारथ पावै ॥२॥

प्रेमालाप   ७७

थे म्हारै घर आज्यो जी, प्रीतम प्यारा ॥०॥
मो निगुणी में गुण नहिं एको, थे ही बकसण हारा ॥१॥
तन मन धन न्यौछावर करस्याँ, जतन करां म्हे थारा ॥२॥
मीराँ को प्रभु कबरे मिलोगे, तुम बिन प्राण दुखारा ॥३॥

दृढ़ता ७८

थारै रंग रीझी रसिक गोपाल ॥०॥
निसवासर मैं रहूँ निरन्तर, दरसण द्यो नंदलाल ॥१॥
सो पतिव्रत टरै जिन टारयो, मति बिसरो नंदलाल ॥२॥
कोउ कहै नंदो कोउ कहै बंदो, चलां भावती चाल ॥३॥
सो मध भक्ति करौ जिन साधो, म्हारो मणि उर माल ॥४॥
प्रेम भरी मीराँ जिन गरवै, हिरदै गिरधरलाल ॥५॥

प्रेमालाप ७९

नेहासमद बिच नाव लगी है, बालन लगत बही जात अकेली ॥०॥
लाज को लंगर छूट गयो है, बही जात बिन दाम की चेरी।
महलन कर से छाँड दई है, आस बडी गोपाल ज्यो तेरी ॥१॥
अबके पार लगावो नांतर, लोग हँसेंगे बजाके हतेरी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मेरी सुध लीज्यो प्रभु आँन सवेरी॥२॥

प्रेमालाप ८०

प्रभु तुम कैसे दीनदयाल, कैसे दीनदयाल ॥०॥
मथुरा नगरी में राज करत है, बैठे नंद के लाल ॥१॥
भकतन के दुख जानत नाहीं, खेलै गोपी गवाल ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भक्तन के प्रतिपाल ॥३॥

सत्संग-उपदेश ८१

बानारो बिड़द दुहेलो रे ॥०॥
बानो पहर कहा गरबायो, मुक्ति न होसी खेलो रे॥१॥
बानारो प्रण प्रहलाद उबारयो, बैर पिता से झेल्यो रे ॥२॥
आगा धर पीछा मत ताको, दफतर नाहिं चढैलो रे ॥३॥
मीराँजी ने भक्ति कमाई, जहर पियालो झेल्यो रे ॥४॥

विरह ८२

मेरे प्यारे गिरधारीजी, दासी क्यों बिसार डारी ॥०॥
द्रौपदी की लाज राखी, दुःखसों उबारी ।
नरसिंह रूप धारयो, प्रहलाद पैज पारी ॥१॥
भीलनी के बेर खाये, (कछु) जाति नाँ बिचारी ।
कुबज्या सों नेह कीनो, गोतम नारि तारी ॥२॥
व्याकुल भई तुम बिना, तरसूँ रैन सारी ।
मीराँ कूँ दरस दीजे टुक, सावरे बिहारी ॥३॥

अनन्यता ८३

म्हारा हरिजी चाकरा री चाह म्हारे मन राखोला सरण हजूरी ॥०॥
बैल बँधावो भाँवे घोड़ा बँधावो चाहै करावो मजूरी ॥१॥
खावा पीवा की म्हाँकी चिन्ता मत कीज्यौ,
कंगनी दीज्यो भाँवे कूरी ॥२॥
ओढ़न कूँ कारी कामरिया दीज्यो और चटाई खजूरी ॥३॥
जो थे देशी सो म्हे लेशी योई मत म्हारे पूरी ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर निज चरणन की धूरी ॥५॥

विरह ८४

म्हारो मनड़ो लाग्यो हरिसूँ, मैं अरज करूं अंतर सूँ ॥०॥
माधोरी मूरति पलक न विसरूँ, सो ले हिरदै धरसूँ ॥१॥
आवन कह गये अजहुँ न आये, बिन दरसण मैं तरसूँ ॥२॥
म्हारो जनम सुफल हो जादिन, हरिके चरणाँ परसूँ ॥३॥
मीराँ के प्रभु दरसण दीज्यो, तन मन अरपण करसूँ ॥४॥

अनन्यता ८५

राणोंजी हट माँड्यो म्हाँसूं, गिरधर प्रीतम प्याराजी ॥०॥
वो तो मद माया रो आँधो, थे मत होज्यो न्याराजी ॥१॥

साँची प्रीत लगी है तुमसूँ, झक मारो संसाराजी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, थाँनै भक्त पियाराजी ॥३॥

स्वजीवन ८६

राणाँ म्हाँनैं ऐसी कही महाराज ॥०॥
भगतण होय मीराँ जगत लजायो, कीन्हौं सारो राज ।
जावोनैं मीराँ म्हाँनैं मुख न दिखावो, म्हाँनैं आवै थारी लाज ॥१॥
लाजै मीराँ पीहर सासरो और लाजै म्हारो राज ।
गोपी चंदण तुलसी की माला भीख माँगण रो साज ॥२॥
धन मीराँ धनि मेडतौ धनि राठोडौ राज ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, चलि आयो व्रजराज ॥३॥

प्रेम ८७

लटपटी पेचा बांधी राज ॥०॥
सास बुरी घर ननद हटीली । तुम जो आगे कियो काज ॥१॥
निसदिन मोहे कल न परत है । बंसी ने सारो काज ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल सिरताज ॥३॥

श्रीद्वारिकाधीश-महिमा ८८

श्री द्वारिका में राज करे जी रणछोड़ ॥०॥
लाल पाग केसरिया जामा, टेढी धरत मरोर ॥१॥
बारे (बारे) कोस की (झाडी) लगत है, तू मनडारो कोंर ॥२॥
बारे (बारे) कोस की खाडी पड़त है, मल्लाह बड़ा है कठोर ॥३॥
मंदिर मंदिर झालर बाजै, घंटन की घनघोर ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, दरसण द्यो चितचोर ॥५॥

अनन्यता ८६

सजन सुध ज्यों जानों ज्यों लीज्यो ॥०॥
हूँ तो दासी जनम जनम की, कृपा रावरी कीज्यो ॥१॥

ऊठत बैठत जागत सोवत, कबहूँ याद करीज्यो ॥२॥
आवत जावत जीमत पीवत, सुपने सुध धरीज्यो ॥३॥
रात दिवस प्रभु ध्यान तिहारो, आपही दरसण दीज्यो ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मिल बिछुडन मत कीज्यो ॥५॥

अनुरोध   ६०

साँवरिया म्हारी प्रीतड़ली तो न्हिभाज्यो ॥०॥
प्रीत करो तो स्वामी ऐसी कीज्यो, अधबिच मत छिटकाज्यो ।
तुम तो हो स्वामी गुणरा सागर, म्हारा ओगण चित
मत ल्याज्यो ॥१॥
काया गढ़ घेरा ज्यो पड्यो छै, ऊपर आप रखाज्यो ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरणाँ चित्त राखाज्यो ॥२॥

ज्ञान   ६१

आवो आवोजी रँगभीना म्हारै म्हैल,
प्यालो तो लियाँ हाजर खड़ी ॥०॥
सतजुग में सूती रही, त्रेता लई जगाय ।
द्वापर में समझी नहीं, कलजुग पोंहच्यो आय ॥१॥
सतगुरु शब्द उचारिया जी, बिनती करों सुनाय ।
मीराँ नैं गिरधर मिल्याजी, निरभै मंगल गाय ॥२॥

प्रेमालाप   ६२

आवोजी गिरधारीजी थांसूं में बोलाँ ॥०॥
थे तो म्हारा जनम जनम रा संगी ।
थांरे लारां लारां संग में डोलाँ ॥१॥
आद अंत तन मन धन मेरे । आनंद करां कलोलाँ ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । आन मिलो अनमोलाँ ॥३॥

अनन्यता ६३

हरि मेरे नयनन में रहियो ।
रात दिवस आगे आगे डोलो घरि पल अलग मति रहियो ॥०॥
कोई को प्यारे लड़का रे लड़की कोई को प्यारे ब्हेन और भैयो ।
कोई को प्यारी अजब सुन्दरी । हमरे प्यारो नंदबाबाजी को छोरैयो॥१॥
कोई को बल है मात पिता को। कोई को बल कुटुंब की सवैयो ।
कोईक कहे मैं आप बलियो । हमारे बल है राज रामैयो ॥२॥
कोईक होसी कोपीन धारण की लयो । कोई कपड़ा पहेरी बडैयो ।
कोई होसिक धन मालन को । हमरो होसी हरिचरण को छैयों ॥३॥
कोई पढ़त चतुर भयो । काँके राजरंग की गवैयो ।
मीराँ के प्रभु तुम्हरे मिलन को । प्रेम सहित कृष्ण कृष्ण कहियो ॥४॥

भक्त-वत्सलता ६४

थाने विरदु घटे कैसो भाई रे ॥०॥
सेना नायको संसो मेटो, आप भयो हरि नाई रे ॥१॥
नामाछिपी देवल फेरो, मृत्यु की गाय जिवाई रे ॥२॥
राणा ने भेज्यो विष को प्यालो, पीवे मीरांबाई रे ॥३॥

शरणागति ६५

नाव किनारे लगाव, प्रभुजी नाव किनारे लगाव ॥०॥
नदियाँ गहरी नाव पुराणी, डूबत जहाज तराव ॥१॥
ग्यान ध्यान की सांगड बाँधी, दवरे दवरे आय ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, पकरो उनके पांव ॥३॥

सत्य-महिमा ६६

मेरे तो आज सांचे राखे हरि ॥०॥
सांचे सुदामा अति सुख पायो, दारिध्र दूर करी ॥१॥

सांचे करे हरि हाथ बंधायो, मार खाधी तें खरी ॥२॥
सांच बिना प्रभु स्वप्न में न आवे, मेरो तप तपस्यां करी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बळ जाउं घडी घडी ॥४॥

सेवाभाव ९७

रमैया महाराज मने चाकर राखोजी ॥०॥
भारो लाऊं पूलो लाऊं, × × × ।
राम रसोई करी जिमाऊं, मोमें बडी सबूरी ॥१॥
मोठ बाजरी भक्षण दीजे, भावे दीजे कूरी ।
तुरत रसोई करी जिमाऊं, साक बनाऊं तूरी ॥२॥
सिरख पथरणा सावद दीज्यो, भावे दीज्यो खजूरी ।
कारी कांबल ओढ़ण दीज्यो, पलक न मेलूं दूरी ॥३॥
मोही पूछी मदनमोहन के, कहा महिना पाया ।
तीन लोक जागीरी पाई, निरभे पटा लिखाया ॥४॥
ऊंचा ऊंचा मिन्द्र बणाऊं बिच बिच राखूं बारी ।
रामैया रे दरसण जाऊं, ओढ पीतांबर सारी ॥५॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सतगुरु दरसण दीन्हां ।
तट जमुना के तीर ऊपर, रमैया रंग लीनां ॥६॥

असार संसार ९८ (गुज०)

हरि मने पार उतार, नमी नमी विनती करूं छुं ॥०॥
जगत मां जन्मीने बहु दुःख देख्या, संसार शोक निवार ॥१॥
कष्ट आपे मने कर्म ना बंधन, दूर तुं कर किर्तार ॥२॥
आ संसार वह्यो वह्यो जाय छे, लख चोराशी धार ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, आवागमन निवार ॥४॥

प्रेमोमंग ९९

बोत नाची गोपाल, अब मैं बोत नाची गोपाल ॥०॥

हरि मंदिर में नाचुं राचुं, करसे बजावुं ताल ॥१॥
नाच नाच मेरे मन कुं रीझावुं, हरि गुण गाऊं रसाल ॥२॥
जप तप साधन कछु न जानुं, ऐसे भई मैं न्याल ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल प्रतीपाल ॥४॥

आत्म-निवेदन १०० (गुज०)

जागो तमे जदुपतिराय । आवोने अंतर खोलीए ।
एक पल घुंघटानी मांह्य हसीने हरी बोलीए होजी ॥०॥
तन मन धन कुरबान जाउं व्हाला तारे बारणे ।
मेली म्हेंतो म्हारा कुलनी लाज गिरधारी तारे कारणे होजी ॥१॥
नथी दीधां कथीरनां दान कुन्दन क्यांथी पामीए ।
हजी लगी ना'व्यां रे वैमान इन्द्रासन क्यांथी माणीए होजी ॥२॥
तमे छो मोटा महाराज अम पर करूणा कीजिए ।
एमकरी बोल्यां मीरांबाई दासी ने दर्शन दीजिए होजी ॥३॥

शरणागति १०१ (गुज०)

शरणे थांने आइ छुं हे राजा रणछोड़ ॥०॥
ब्राह्मण दुःख दीओ अंतर में, पेठी मंदिर दोड़ ॥१॥
कमसें पाछी जाउं जगत में, लागे मने मोटी खोड़ ॥२॥
अपनी ढीगरी राखो सांवरा, विनती करूं कर जोड़ ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, देखो मेरी ओर ॥४॥

आत्म-निवेदन १०२ (गुज०)

प्रभु पालव पकडीने रही छुं पूरण प्रेमथी रे, मारा छेल छबीला
अंतरनाआधार, उभी अरज करे छे मीरांबाई रामने रे ॥०॥
मुज दासी तणां दुःख सर्वे दूर करो रे, शीश नामुं मारा सद्-
गुरूने प्रणाम, उभी अरज करे छे मीरांबाई रामने रे ॥

साखी

सासरीया मां सुख नहीं, महीयरीये नहिं मान ।
सुख दुःख नी म्हारी वातडी, घरतुं नथी कोई ध्यान ॥
हवे नथी रहेवुं राणाजी ना राज मां रे,
राणो रोषे भरियो कूडो कपटी राय-उभी ॥१॥

साखी

आ समये हरि आवजो, विट्ठल करजो व्हार ।
गोविन्द तमसुं गोठडी, अबला ना आधार ॥
व्हाला वसमुं जाणी वेगे वेला आवजो रे,
नहिंतो जहर मारा जीवनुं जोखम थाय-उभी० ॥२॥

साखी

उंडे कुवे उतारिया, ने तरत त्रुटां व्रत ।
तारणहारो तारशे, शामलीयो समरथ ॥
एवा विवेकी विट्ठल ने जावुं वारणे रे,
टळशे हरिजनों ना अंतरना उचाट-उभी० ॥३॥

साखी

विश्वासे वळगी रही, त्रीकम राखो टेक ।
आगे हिंमत आदरी, मन धाउं विवेक ॥
एवा भक्ति भावे भूधर आवो भेटवा रे,
हुं तो वेचाणी छुं नाथ तमारे हाथ-उभी० ॥४॥

साखी

नीती धर्म नव छोडीए, ज्यां सुधी घटमां प्राण ।
सहेजे समुदर उतर्या, जेने भेंट्या श्याम ॥
एवा पूरण पुरूषोत्तम हरि पधारजो रे,
सत्य राखो मारा साचा सुंदरश्याम-उभी० ॥५॥

साखी

रूपाळा रणछोडजी, लळी लळी लागु पाय ।
राणा घेर जावु नथी, एवो करचो ठराव ॥
हवे शरणागत नी व्हारे चढ़जो विट्ठला रे,
प्रभु कृपा करीने राखो मीराँ चरणनी पास—उभी०॥६॥

शरणागति १०३

किसनजी नहीं कंसत घर जावो ॥०॥
तुम नारी अहल्या तारी । कुंटण कीर उद्धारो ॥१॥
कबीर के द्वार बालद लायो । नरसी को काज सुधारो ॥२॥
तुम आये पति मारे देह को । तिन पर तन मन वारो ॥३॥
जन मीराँ शरण गिरधरी की । जीवन प्राण हमारो ॥४॥

अनन्यभाव १०४

सांवराजी ! तुम लग मेरी दौर ॥०॥
मात पिता सुत भाई बंधु, मिल मिल भये और ॥१॥
जात पात कुल सैण संगाती, सबसे बैठी तौर ॥२॥
या जुग में प्रभु कोय न मेरो, लोक करत सब सौर ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, मिलो मिलो नंदकिशोर ॥४॥

व्यङ्ग १०५ (गुज०)

सुरज उगे ने साधन साधे, हांरे तारूं भजन करे भजनी रे ।
हो रसियाजी ! क्यांरे रम्या रजनी रे ॥०॥
आजनु रे मुखडु कहे रे मने प्रभुजी ।
सांभळो ने पूछे सजनी रे······हो रसियाजी ॥१॥
मोर मुगट ने काने रे कुंडळ ।
वळी चाल चले गजनी रे ॥२॥

मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर ।
तारूं लंपटपणुं तजनी रे ॥३॥

सेवा-भाव १०६ (गुज०)

मोहन, आवो मारा मंदरियां वाटलडी अमे जोई रह्यां छीये ॥०॥
पेर पेरना शुं पकवान पकावु रे, ठटीरी मेलने बाजठ ।
भोजनीयां हमे पीरसी मेल्यां छे ॥१॥
लविंग सोपारी ने एलची दोरे बीडले बासठ पान ।
वाळी ने हमे बेसी रह्यां छीए ॥२॥
सुवाना कारणे सेज बिछावी रे, रमवाने सारी रात ।
सगठडो अमे ठारी मूकी छे ॥३॥
हरतां ने फरतां मोरी नामल मारू रे, बोल्यां बोल्यां मीरांबाई दास ।
गुहाला तो हमे गाई रह्यां छीए ॥४॥

शरणागति १०७

पिया प्रीति नेह निभाई, मोहे राखो चरन लगाई ॥०॥
नेह निभाहो मति चिरकाज्यों, पिया की प्रीति बढाई ।
प्रीत करी तो पार निभाज्यो, मत करो लोक हसाई ॥१॥
सजन समीप हमारे रहीज्यो, छोर कहुँ मत जाई ।
निज जन जान निकट मां राखो, अपने रंग लगाई ॥२॥
शरणांगत प्रतिपाल दयानिधि, मत म्हाने छिटकाई ।
गोकुल गोविंद नाम तिहारो, राख शरण सुखदाई ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधरनागर, चरण कमल चित लाई ॥४॥

डाकोर-माहात्म्य (गुज०) १०८

नाथ तमे तुलसी ने पत्रे तोलाणा, एवा गुणरे गोविंद ना गवाणा ।०।

बोडाणो बहु नामी ने सेवा, जे बोलडीए थंधाणा ।
हेत करी हरि घरे पधारया, तो जगत मां जणाणा ॥१॥
गुगली बांसे गोतवा आव्या, अध वच थी अटकाणा ।
वावमां वा'लो आपे बिराज्या, तो सान करीने संताणा ॥२॥
सोना भारो भार मूल करावी, वाल सवाये जोखाणा ।
ब्राह्मण ने भोडापणुं आव्युं, तो भगतवत्सल कहेवाणा ॥३॥
गुजरात मध्ये रची रे द्वारकां, वेद पुराणे वंचाणा ।
बाइ मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, डाकोर मां दीरसाणा ॥४॥

भक्त-वत्सलता १०६ (गुज०)

नाथ तमे निर्धनीयानुं नाणुं, मुने वालु लागे प्रेम गाणुं ॥०॥
कुंवरबाई ने सीमंत आव्युं, मे'ता ने मले नाणुं ॥१॥
मानवीए मलीने सोर मचाव्यो, ने कबीर ने नो'तु ठेकाणुं ।
पोठ भरीने हरि घेर आव्या, तो त्रिकमे साचव्युं टाणुं ॥२॥
दुरजोधन ने वीडुं फेरवीयुं तो विदुरने न आपे कोई माणुं ।
भाजी मांथी भोजन निपाव्यां, तो सहेर बधुं संतोकाणुं ॥३॥
ज्यां जोईए त्यां सबरस भरिया ने ठाम नहीं कांई ठालुं ।
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, तो अंतर मां आ लेखाणुं ॥४॥

आतुरता ११०

जल्दी पधारो नाथ विपत पडी है ।
आप बिना म्हारो कोण धणी है ॥०॥
इत गोकुल उत मथुरा नगरी ।
जमुना किनारे प्रभु फौज्या पड़ी है ॥१॥
गुरू बिना ज्ञान गंगा बिना तीरथ ।
एकादशी बिन बरत कस्यो रे ॥२॥

ऊँची चढ चढ़ पंथ निहारूँ [पृ० १६७, पद २९

सीता के कारण लंका जलाई।
संतन की प्रभु सहाय करीजे ॥३॥

बालु की भीत अटारी को चढणो।
पूत बिना परिवार कस्यो रे ॥४॥

ओछा री प्रीत कटारी रो मरवो।
दीप बिना नाथ मंदर कस्यो रे ॥५॥

बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर।
सिर पर सालगराम धणी है ॥६॥

प्रभाती १११

लगी टेर मुरली की रे मोहन, अब जागो गिरधारीजी ॥०॥
चक चक चक चडिया बोले, मोर बोले प्रभातेजी ॥१॥
मधु मेवा पकवान मिठाई प्रभु, तुमरे कारन लाईजी ॥२॥
गुवाल बाल सब द्वार ठाडे ले ले नाम कनैयाजी ॥३॥
धेनु चरावा जावो मेरे काना ले लकुटी कामलियाजी ॥४॥
जमुना किनारे धेनु चरावो बैठ कदम की छैयांजी ॥५॥
गुवाल बाल सब खेल रच्यो है ले ले नाम भैयाजी ॥६॥
मीरांबाई के प्रभु गिरधर नागर, चरणा में चित लागोजी ॥७॥

भीड़ पड़े पर ११२

आवोजी बेगा गरूड चढ़ गिरधारी ॥०॥
मोय तुम्हारो भरोसो तो भारी, यो भवसागर लीजो तारी ॥१॥
जो थारी प्रतंग्या राखे वांरी करोने रखवारी ॥२॥

में तो थांरी सतसंग करस्यां, लीजिये वेग उबारी ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, प्रभु के चरणाँ बलिहारी ॥४॥

स्वजीवन ११३

प्रभुजी अरज बंदी री सुण हौ ॥०॥
मो नुगुणी रा सुगुणा साहब अवगुणधारी रा गुण हो ॥१॥
राणाजी बिस को प्यालो भेजो मो चरणामृत को पण हो ॥२॥
म्हाँरी पत परमेश्वर राषत मारणवालो कुण हो ॥३॥
प्रभुजी उचले मँदिर (सीतारामजी) बिराजे मोय दरसण
री पण हो ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर में जाणु राणोजी कुण हो ॥५॥

भक्त-वत्सलता ११४ (गुज०)

हरि मारे हृदये रहेजो, प्रभु मारी पासे रहेजों,
जो जो न्यारा थाता राम, ते दीन नो विश्वास छे ॥०॥
धना भगते खेतर खेड्यु वेलु वावी घेर आव्याराम ।
ते संतजनो ना पात्र पुर्या, घणांना गाडां आव्याराम ॥१॥
ते जुनागढ़ ना चोक मां जेदी, नागरे हठो लीधी राम ।
ते नरसीयानी हुंडी लईने, द्वारका मां दीधी राम ॥२॥
ते मीरांबाई ने मारवा जे दी, राणे खड़ग लीधी राम ।
ते झेरना प्याला अमृत करीआ त्रीकम टाणे पधार्या
राम ॥३॥
ते भीलड़ी ना अेठां बोर तमे, प्रेमथी अरोग्या राम ।
ते त्रण भुवना ना नाथ तमने मीरांबाई अे गाया राम ॥४॥

उत्कंठा ११५

मैं वारी जाऊँ राम, तुम आवो गली हमारी ।
तुम देख्यां बिन कल न परत है, जोऊँ बाट तुम्हारी ॥०॥
कौन सखीसों तुम रंगराते, हमते अधिक पियारी ।
किरपा कर मोहे दरशन दीजो, सब तकसीर बिसारी ॥१॥
मैं शरनागत तुम हो दयाला, भव से तार मुरारी ।
मीराँ दासी तुम चरनन की बार बार बलिहारी ॥२॥

अनन्यता ११६

गोवर्धन गिरधारीजी सुधि लेना हमारी ।
जै जै श्री कुन्जबिहारी तुम भक्तन हितकारी जी ॥०॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, कुन्डल की छबि न्यारी जी ॥१॥
गज और ग्राह लड़े जल भीतर, लड़त लड़त गज हारा जी ॥२॥
गज की टेर सुनी नट नागर, नंगे पैर पधारे जी ॥३॥
भरी सभा में द्रोपदि पुकारी, राखो लाज हमारी जी ॥४॥
खींचत चीर दुशाशन थाक्यो, चीर बढ़ावन हारी जी ॥५॥
गृध अजामिल घनिका तारी, अबके बारी हमारी जी ॥६॥
कर मन आस युगल चरणन की, यह जग मिथ्याचारी जी ॥७॥
तुम बिन कौन खबर ले हमारी, वृन्दावन के बिहारी जी ॥८॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरणन पर बलिहारी जी ॥६॥

भीड परे पर ११७

आवोनी वेला गरूड चढ्याँ गिरधारी ।
थांरी मरजाद थेही ना राखो, यामें कहा हमारी ॥०॥

थाँरी संगत में जो कोई आवे । ज्याँरी क्यों न करो रखवारी ॥१॥
म्हाँने तो राज रो बडो भरोसो । काहे गये हो बिसारी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । लीजो खबर हमारी ॥३॥

पदों के शब्दार्थ-भावार्थ-विशेष आदि

३—वहो=निभाओ।

पाठान्तर—

भवसागर की तीक्ष्ण धारा-थे ही होन नं.भो ॥१॥
मेह तो छाँ ओगण का भरिया-थे ई हो न सहो ॥२॥

५—पाठान्तर—

हरि मारी सुणज्यौ अरज महाराज ॥ टेर ॥

अधिक चरण:—

हिरण कश्यपू दैत संघारचौ। सारचौ देवन काज ॥३॥

६—अष्ट·········लगी है=कर्म चक्र जीव के पीछे लगा रहता है।

८—पाठान्तर—

उठो लालजी भोर भयो है, घर घर खुले किंवार जी।
माता जसोदा मही बिलोवे, कर कंकन झनकार जी॥
माखन मिश्री भोग धरत है, आरोगे बनवारी जी।
सुर नर ब्रह्मा आदि देवता, नारद बीन बजावे जी॥

रांकड़ी=अनाथ, दीन। पाथरी=बिछाई। पछेड़ी=चद्दर। तज=दारचीनी। रूप·········आँखड़ी=रूप देख देख कर दृष्टि चित्रवत् स्थिर हो जाती है।

पाठान्तर:—

बाट जुये छे मीरां रांकड़ी रे,
उभी उभी वाट जुवे छे दीनानाथ रे ॥०॥
पांचे पकवान मीठाई मेवा रे,
घेवर जलेबी तल सांकड़ी रे।

लवींग सुपारी ने पाननां बीड़ला रे।
येलची दाणां ने तज पांखड़ी रे ॥२॥
साव सोनानां वाला सोगटां × ढळाउं रे।
रमवा आवो तो जाय रातड़ी रे।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
जोता ठरे छे मारी आंखड़ी रे ॥३॥

१४—पद–पाठान्तर:—

तुम सुनो नाथ मोरी अरजी ॥०॥
भव सागर के पार उतारो। त्यारो तो थारी मरजी जी ॥१॥
दुख विपता में बही जात हूँ। राखो ने बाँहां पकड़ी जी ॥२॥
मात पिता अरु कुल परिवारा। ए मतलब के गरजी जी ॥३॥
और सखीन की सेज सलूनी। मैं मंद भागण सरजी जी ॥४॥
मीराँ कहै प्रभु हरि अविनाशी। तिहारे भजन कूं मैं सरजी जी ॥५॥
चरण लगाओ गिरधर जी ॥

१५–धीजै=संतुष्ट होते हैं, धैर्य रखते हैं। पतीजै=विश्वास करता है।

पाठान्तर टेर:—

राम म्हारी लागी प्रीति निभाज्यो जी।
प्रभु अब मत बिसर जाज्यो जी ॥०॥

१६—लेह=लगन। मूक्युं=छोड़ा। धामज=धरभी। खभे छे=कंधे पर है।

२२—बिछुरन·········हथमनिया=प्राप्त कर लेने पर पल भर भी बिछुड़ने नहीं दूंगी—हाथ सुमरनी ज्यों उन्हें रखूंगी। वेग=शीघ्र। पावनिया=पाहुने।

२४—सरत=होड़, दाँव। व्रजनन्द·········तने=भक्त और भगवान में होड लगी है।

२६—सिरेगाय=सुरा गाय जिसकी पूंछ के बालों से चँवर बनता है। गेरया=डाले। भरपसिया=अञ्जलि भर।

२८—बहोरा=ब्याज से रकम देने वाला धनी।

२६—लटपट=अटपटी, लहरदार। पाग=सिरपेच। हिवड़े=हृदय पर। हारहजारी=हार का प्रकार विशेष।

३०—उचरेडी=अटारी, ऊँचा स्थान। तारे वेसणे=तुम्हारे बैठने को। मांडु पाट=चौकी बिछाऊं। शोहामणो=सुहावना। तणी छे=की है। अवतरीयां=उत्पन्न हुए।

३१—तेणे········सरी=उनसे मेरा कार्य सिद्ध नहीं हुआ। वा' ण=वहाण, जहाज। उगरी=उबर गई।

३२—जोइले=देखले। नव=मत। तुतो·········वहाला=हे साँवरे प्रियतम, हमारे कर्मों की ओर न देखकर तू तो अपने विरद की ओर ही देखना। माझारी=बिल्ली। उगार्यां=बचाया। टीं टोडीना=टिटहरी के। प्रजापती नी=कुम्हार की। पत राखी=लाज रखी।

३३—पाज=पुल। सन्या=सेना। गलनमां=गलि में।

३४—सौथी=सबसे।

३७—सोर लिया है=निकाल दिया है। चोखा चोखा=सुन्दर सुन्दर।

पद पाठान्तर:—

कद आवोला कन्हैया मोरे द्वार मैं ऊबी जोऊँ बाटडली ॥०॥
मन मन्दिर में ज्ञान बुहारी दे लीनी भरपूर ॥
पाप कजोड़ो सोर बगा दीनो छै बोरी दूर ॥
धोयो आँगणिया ने आँसूड़ा ढ़लकाय ॥१॥
हिरदारा सिंहासन ऊपर ध्यान बिछायो चीर ॥
सूनो आसण देख देख छूटे छै म्हारो धीर ॥
म्हारा नेणां में समावो भरतार ॥२॥
मैं छूं दासी आपकी जी राधा म्हारो नाम ॥

रोम रोम अर्पण है थाँके सुण लीज्यो घनश्याम ॥
थांका मुखड़ा ऊपर जाऊँ बलिहार ॥३॥
साँवरि सूरति मन में बसी जी घुंघर वाले केश ॥
जादूगरी बंसरी जी नटनागरियो वेश ॥
म्हारा आँगणियाँ में निरत कराय ॥४॥
पलकाँ पर पग मेलता जी उतरया मंदिर बीच ॥
पूजन करस्यूं भोग लगास्यूँ दोन्यूं आख्याँ बीच ॥
थाँका चोखा चोखा करूँली सिनगार ॥५॥
नेह नदी पर रास रच्यो छे अठे छे जमुना तीर ॥
कृष्ण राधिका एक ज्योति में रहस्यां यादव गीर ॥
करस्याँ जमुना जल में युगल बिहार ॥६॥
स्वर्ण सिंहासन के ऊपर प्रभु पटको बिछायो चीर ॥
मैं तो कछु जानूँ नहीं तुम जानो यदुबीर ॥
गावे मीरां बाई भजन बणाय ॥७॥

३८—हय·········संघारयौ=अश्वशरीर धारी केशी दानव को मारा।

४०—हींडत है=(जिसके वहाँ) डोलते हैं।

४२—मने·········गमतो=मुझे नहीं भाता। साधु······ बांधी=साधु-संगति में मेरी प्रीति बँध गई। प्रेम·········राजी=प्रेम निमग्न होने से ही संतुष्ट हूँ। कोटडी मां=कक्ष में। ऊंघ=निद्रा। अज्ञाननी······ ···जागी=अज्ञान आत्म विस्मृत करने वाला और तमोगुण का द्योतक है और प्रेम के सात्विक प्रकाश में ज्ञान की जागृति रहती है।

४५—करण मां=कान में। ये·········चरण मां=ये मेरे गुरुजी के चरणों में हैं। मारे=मेरे। न जोशो=मत देखना। आडे आवजो=सुधि लेना।

४६—लट.........धारा=द्रोपदी, जिसके नेत्रों से अश्रु बहते हैं, सिर के केश बिखर गये हैं, और करुण स्वर से प्रार्थना कर रही है। असवारा=(की) सवारी से।

४७—पख=पक्ष, आधार।

४८—हेलो=पुकार। झेलोजी=स्वीकार करना, सुन लेना। झेलो=आधार, अवलंब।

४६—वाया.........होया=आशातीत-अत्यधिक फसल प्राप्त हुई। सेण=सेना नाई। सां सा=संशय। संवारया=(बाल) संवारे।

५३—सँजोइ=एकाग्रकर, सजाकर। सदकै=समर्पित, न्यौछावर। वारणैं=वारी जाऊँ। खानाजाद=जन्म से पाली पोसी हुई दासी। महरि=कृपा।

६१—मीराँ ...... कुण हो=जिस भगवन्नाम के रस में मीरांबाई छकी हुई है उसकी अनंत सत्ता और महिमा के आगे बेवारे भगवद् विमुख राणा की हस्ती ही क्या।

ढुको=फाँकने लगे। लूखो, सूखो=शुष्क, नीरस।

६५—बरसत.........नीर=(भगवद् कृपा होने पर) दूध का मेह बरसता है अर्थात् (प्रभु की कृपा होने पर) किसी बात की कमी नहीं।

६८—अरट=अरघट्ट, रहँट। घड़ीयां=रहँट के छोटे पात्र। भरयो..........जावेरे=भरा हुआ आता है और खाली हो जाता है (अर्थात् पूर्व संस्कारानुसार मनुष्य प्राणी इस संसार में प्रारब्ध कर्म भोगता है और एक दिन मर जाता है।)

६६—सीरी=रक्षक। रळक पड़ी=(से) बिंध गई।

७५—पाषर=लोहे की झूल (हाथी घोड़ों पर डालने की)

७६—भोली........आवै=रह रह कर इच्छा हो आती है। विरंचि=ब्रह्मा। रंगराची=अनुरक्त होगई।

७६—मलहन=पतवार। बजाके हतेरी=(हथेली) ताली पीटकर। सवेरी=शीघ्र।

८१—बानो………खेलोरे=ऊपरी भेष धारण कर क्यों गर्व करता है, मुक्ति का मार्ग कोई खेल नहीं। आगा………ताको=आगे बढ़कर फिर पीछे मत हटो अर्थात् भक्ति पंथ पर आगे बढ़ते हुए पीछे संसार की ओर दृष्टि मत डालो। दफतर नांहिं चढैलो=अस्थिर चित्त से किया गया साधन प्रभु को स्वीकार नहीं।

८३—म्हारा………हजूरी=हे मेरे प्रभु, मेरे मन में आपकी सेवा की चाहना है, क्या इसे अपनी शरण में नित्य की सेवा में रख लोगे? भाँवै=अथवा तो। कंगनी=अन्न विशेष। कूरी=कदन्न। जो………पूरी=जो तुम दोगे वही मैं लूँगी, यह मेरा पूरा निश्चय है।

८४—म्हारो………परसूँ=मेरा जन्म उस दिन सफल होगा जब मैं हरि के चरण स्पर्श करूँगी।

८६—भगतण………राज=हरि भक्त होकर संसार को तथा सारे राज को नीचा दिखाया है। जावो नैं………लाज=जाओ मीराँ मुझे मुँह न दिखाना, तुम्हारे लिये मुझे लाज आती है।

९०—कायागढ़…आप रखाज्यो=देह रूपी गढ़ को काम क्रोधादि शत्रुओं ने घेर लिया है उनसे रक्षा करना।

९२—आद………कलोलाँ=तुम ही मेरे आदि अंत और तन मन धन हो इसलिये तुम्हारे ही साथ आनंद क्रीड़ा करें।

९५—सांगड=नाव। दवरे=दौड़े।

९७—मदन………पाया=मदन मोहन की सेवा में मासिक वेतन क्या मिलता है? तीन………लिखाया=घर बार सब त्यागने के पश्चात् निर्भय होकर प्रभु-प्रेम में विचरने के लिये संसार के चारों खूँट मुक्त हो गये।

१००-कथीर नां=राँगा का। कुन्दन=स्वर्ण। पामीए=पावें। हजी लगी=अब तक। ना' व्यां=नहीं आये।

१०१—कमसे………खोड़=यदि पूर्वाश्रम में जाने पर अर्थात् सांसारिक प्रपंच को स्वीकार करने से मेरे वर्तमान भक्ति-प्रेम के मार्ग में बड़ी भारी बाधा उपस्थित होगी।

१०२-पालव=पल्ला। तणां=के। नामु'=नँवाती हूँ। व्हार=सहायता। वसमु'=असह्य। डंडे.........व्रत=प्रभु के प्रेम और भक्ति रूप गहरे कुए में उतरना हुआ परंतु प्रभु के दर्शनादि भगवदालम्बन की आशा नहीं रही और उनके बिना तो तड़पना ही है। तारण........समरथ=तारण हार प्रभु समर्थ हैं वे ही (अब) तारेंगे। ने जावु' वारणे रे=को न्योछावर हो जाऊँ। टळशे=मिट जायगी। अंतर ना उचाट=हृदय व्यथा। लळी.........पाय=झुक झुक कर चरणों में गिरती हूँ। राणा.........ठराव=राणा के घर नहीं जाने का निश्चय किया।

१०५—सुरज.........भजनी रे=(हे प्रभो) सूर्योदय होने पर साधक लोग अपना साधन आरम्भ करते हैं और भक्त जन तुम्हारा भजन करते हैं। वली=और। चाल.........गजनी=गज की चाल से चलते हैं। तारू.........तजनी रे=तुम्हारा लंपट पना छोड़ दो।

१०६—सगठडी=सगड़ी, अंगीठी। ठारी मूकी छे=बुझा डाली है। गुहाला=प्रभु गुण गान। हमे.........छीए=हम गा रहीं हैं।

१०८—बोडाणे.........बंधाणा=बोडाणा नामक अनन्य भक्त के सेवा और वचन में बँध गये। हेत.........जवाणा=प्रेम के कारण प्रभु जब घर पर पधारे तभी जगत में प्रकट हुए। गुगली=द्वारिका के ब्राह्मण। गोतवा आव्या=ढूँढने आये। वाव मां=बावड़ी में। सान करीने=संकेत करके। संताणा=छिप गये। सोना.........जोखाणा=सुवर्ण के बराबर मूल्य कराते हुए सवा वाल (उच्च मूल्य की वस्तु तोलने का नाप) में ही तुल गये। ब्राह्मण ने.........आव्यु'=ब्राह्मण लोगों को नीचा देखना पड़ा। गुजरात.........वंचाणा=गुजरात में ही द्वारिका की रचना हुई और यह माहात्म्य संसार में सर्वत्र प्रकट हुआ। दिरसाणा=दर्शन दिये।

१०६—नाथ.........नाणु'=नाथ, तुम निर्धन के धन हो। मे' ताने=नरसी मेहता को। मानवी.........मचाव्यो=संसारी जनों ने मिलकर निन्दा-स्तुति की-भला बुरा कहा। नो 'तु=नहीं था। त्रिकमें......टाणु'=प्रभु ने प्रसंग पर रक्षा की-लाज रखी। दुरजोधन ने......माणु'=दुर्योधन के विरोध के कारन विदुर जी को कोई मनुष्य कुछ देने का साहस नहीं करता था। मां थी=में से। निपाव्यां=निर्माण

किया। सहेर.........संतोकाणु=सारा नगर संतुष्ट हुआ। ज्यां जोईए.........ठालु=जहाँ देखो वहीं सब पदार्थ भरे-पुरे हैं, कोई भी पात्र खाली नहीं रहा। अंतर मां-आलेखाणु=हृदय में भगवद् लीला अङ्कित हो चुकी।

११२—प्रतंग्या=प्रतिज्ञा।

११३—अरज=प्रार्थना। बंदीरी=दासी की। सुण=सुन लेना। मो=मुझ। मो.........गुण हो=मुझ जैसी गुण हीन अथवा अवगुण वाली के तुम गुणवान स्वामी हो। बिस=विष। मो.........पण हो=(श्री हरि) चरणामृत का (को स्वीकार करने का) मेरा नियम है। म्हाँरी=मेरी। पत=लाज। राषत=रखते हैं। मारण वालो=मारने वाला। कुण=कौन। उचले=ऊपर के। मोय.........पण हो=दर्शन करने का मेरा प्रण है। जाणु=जानती हूँ।

११४—मारी पासे=मेरे निकट। जो जो.........राम=देखना कहीं मुझ से पृथक् न हो जाना। भगते.........खेड्यु=भक्त ने खेत जोया। वावी=बोकर। एँठा=जूठे।

———

विभाग ४ निश्चय

जीवन का लक्ष्य स्थिर करने में
विवेक-विचार पूर्वक निश्चय करना
भक्त व साधक का सर्व प्रथम
कर्त्तव्य है।

* भूमिका *

★

दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासः
नरके वा नरकान्तक प्रकामम् ।
अवधीरित शारदारविन्दौ
चरणौ ते मरणेऽपि चिन्तयामि ।।

(मुकुन्दमाला)

स्वर्ग में अथवा पृथ्वी पर कहीं भी मेरा निवास हो। हे नरकान्तक ! भले ही नरक में मेरी स्थिति हो किन्तु मेरा दृढ़ निश्चय है कि शरद ऋतु के चन्द्रमा को भी लजाने वाले आपके चरणों का मरने पर भी चिन्तन करता रहूँगा।

संसार के समस्त कार्य बुद्धि द्वारा निश्चय करने पर ही होते हैं। मन का धर्म तो संकल्प-विकल्प करने का है इसलिये प्रत्येक कार्यारम्भ में मन में अनेकानेक विचार तरंगें लहराने लग जाती हैं और तर्क-वितर्क होने लगते हैं। जब तक मन की यह डाँवाडोल अवस्था है तब तक कोई भी कार्य करना असंभव है। मन द्वारा किए गये संकल्प-विकल्पों और तर्कों में से चुन कर किसी कार्य का निश्चय बुद्धि ही करती है कि वह कैसे व कब करना है।

साधारण कार्य के निर्णय करने में बुद्धि को देर नहीं लगती परन्तु किसी महत्त्व के गंभीर विषय पर बहुत विचार की आवश्यकता रहती है। बिना विचारे काम करने से पीछे पछताने का प्रसंग आता है। इसलिये एक बार नहीं दस बार सोच लेना चाहिये। फिर जिन पर कई प्राणियों के सुख-शान्ति आदि

भविष्य का उत्तरदायित्व है उन्हें तो कभी ऐसी बातों में शीघ्रता नहीं करनी चाहिये। अपने कल्याण का मार्ग सोचने में तो अत्यन्त ही विवेक और विचार परमावश्यक है। शनैः शनैः विवेक-विचार सत्संग-ज्ञान, प्रेम-भक्ति आदि साधन और अभ्यास से ही बुद्धि स्थित-प्रज्ञा की कोटि को पहुँचती है।

संसार में जो भी उच्च कोटि के संत-महात्मा हुए उन सभी को अपने जीवन में अपनी बुद्धि द्वारा एक 'निश्चय' कर दृढ़ता पूर्वक उसके अनुसार अपना कर्त्तव्य करने का महत्त्व का लक्षण आया है।

सारासार विचार पूर्वक किया गया भी किसी एक व्यक्ति का निश्चय, सभी को सुखदाई और अनुकूल ही हो यह नहीं कहा जा सकता। व्यक्ति, कुटुम्ब, समाज, व राष्ट्र इनमें से किसी के हित में किया गया 'निश्चय' औरों के लिये कभी-कभी तो महान आपत्तिकर भी सिद्ध होता है।

'प्रतिज्ञा' यह निश्चय का ही स्वरूप है परन्तु प्रतिज्ञा का क्षेत्र सीमित रहता है जब कि 'निश्चय' का व्यापक। प्रतिज्ञा तो कभी कभी भावावेश में अथवा हृदय पर आघात होने पर भी की जा सकती है परन्तु निश्चय तो विवेक-विचार द्वारा ही होता है। 'प्रतिज्ञा' का फल कभी किसी रूप में अनर्थ भी हो सकता है परन्तु 'निश्चय' का फल तो आत्म-हित एवं लोक-हित ही अवश्यम्भावी है। सब संत-महात्मा, मुनि-ज्ञानी, आदि महापुरुषों के चरित्रों में भी यही देखा जाता है।

और संत-महात्माओं से मीरांबाई की परिस्थिति सर्वथा विपरीत थी। प्रथम तो वह अबला-नारी, फिर राजकुल में

जन्म, विवाह भी एक बड़े क्षत्रिय कुल में हुआ था जहाँ कुल-मर्यादा और प्रथा के अनुसार राजकुल महिला के लिये अनेकों प्रतिबंध रहा करते थे। सारांश यह है कि सर्व प्रकार से परतंत्रता की परिस्थिति में उसके विचार, संस्कार व भाव आदि जब कौटुम्बिक जनों के विचार व भावों के साथ टकराने लगे तब स्वाभाविक ही मीरांबाई को, उभय लोक कल्याणकारी एवं मानव-जन्म कृतकृत्य कराने वाले ध्येय को लेकर एक महान निश्चय करना पड़ा। उसके लिये एक ओर संसार और दूसरी ओर भक्ति-प्रभु प्रेम और संत सेवा व सत्संग को अपनाना था। इनमें से मीराँ ने भक्ति-पथ और प्रभु-प्रेम को स्वीकार किया और सांसारिक वैभव को ठुकरा दिया जिससे बहुतों को असंतोष हुआ परन्तु वह अपने निश्चय से विचलित नहीं हुई।

इस 'निश्चय' के विभाग में मीरांबाई के वे पद हैं जो उसकी प्रतिकूल परिस्थिति में विवेक-बुद्धि पूर्वक निश्चय करके बने हैं।

इस विभाग के २, १४, १५, १६, १७, २०, २५, ४७, ४६, ७०, ७३, ७५, ७६, ७८, ८१, ८४, ८७ एवं ६१ ये १८ पद गुजराती भाषा के हैं, ४५ वाँ पद पंजाबी व ५३ वाँ पूर्वी भाषा-छटा को लिये हैं।

सं० ३, ६, ११, १२, १३, १६, २०, ३१, ३५, ४७, ५०, ५१, ५२, ५४, ६३, ६४, ७०, ७३, ७५, ८६ व ६२ ये २१ पद निर्गुणी भाव-ज्ञान के हैं।

अन्य सन्तों के 'निश्चय' वचन

हस्तमुत्क्षिप्य यातोऽसि बलात्कृष्ण किमद्भुतम्।
हृदयाद् यदि निर्यासि पौरुषं गणयामि ते॥

अर्थात्

हाथ छुड़ाये जात हौ, निबल जानि कै मोहि ।
हिरदै तें जब जाहुगे, सबल बदौंगो तोहि ॥
निश्चया चे बळ तुका म्हणे हें चि फळ ॥ तुकाराम
नीन्दन्तु नीति निपुणाः यदि वा स्तुवन्तु ।
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ॥
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा ।
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

'निश्चय' मीराँ की वाणी में

किसी भी परिस्थिति में विवेक पूर्वक किया गया निश्चय कल्याणकारी होता है फिर नित्यानित्य वस्तु विवेक तो जीवन-मरण के प्रश्न को सुलझाने वाला चरम-ध्येय को लेकर होता है ।

सकल शास्त्र व सब संत-महात्मा जिसके लिये पुकार पुकार कर कहते आये व कह रहे हैं—मीराँ के हृदय में भी उसी नित्या-नित्य वस्तु विवेक का पूर्ण निश्चय हुआ, यथा--(२)संसार नुं सुख एवुं, झांझवाना नीर जेवुं, तेने तुच्छ करि फरिये रे ।

जब संसार ही मिथ्या तो संसार के प्राणी मात्र भी सभी नाशवान और सांसारिक व व्यवहारिक सम्बन्ध भी अनित्य हैं। इसीलिये मीराँ कहती है, (३) ऐसे वर को के वरूं, जन्मे सो मर जाय । वर वरसूँ कृष्ण साँवरो अमर चूडो हो जाय ॥ इसी बात की वह और पुष्टि करती है—(१०) जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई । (९३) मैं तो दासी जनम जनम की, कृष्ण कंथ-भरतार ॥

इस प्रेम की स्थिति अथवा भगवद्भाव की निष्ठा तथा इस मधुरातिमधुर भाव को तो वास्तव में–'(६५) कै जानै वृषभानु नंदिनी, कै मोहन रंग रातो ॥' ये ही पूर्ण रूप से जानते हैं। प्रेमी भक्तों के हृदय में यही पूर्ण विश्वास होता है जो उन्हें उत्तरोत्तर ऊँचे चढ़ाता हुआ अपने ध्येय तक पहुँचाने में समर्थ होता है।

मानव जन्म सार्थक करने के लिये अपने जीवन का ध्येय स्थिर करने में सर्व प्रथम अपने मन में दृढ़ निश्चय करना पड़ता है यथा–(६) मेरो मन लागो हरिजी सूँ अब न रहूँगी अटकी। (३६) बरजी मैं काहू की नाँहि रहूँ। तन धन मेरो सब ही जावो, भल मेरो सीस लहूँ। (४२) मीराँ राम लगण लगी, होणी होय सो होई। (६४) प्राण जाय पणि प्रीत न छांडूं। (७६) बळीयोजी कीध बेली, माथुं पहेलुं पासंग मां मेली। (प्राणों का मोह छोड़कर)

परम पति अपने प्रभु को रिझाने का मीराँ का साधन भी कैसा अमोघ और अनूठा है,–(१३) जिन भेषां म्हारो साहिब रीझै, सोही भेष धरूँगी।

साधन का विवेकपूर्ण निश्चय हो चुकने के पश्चात् बाधक तत्त्वों के लिये भी उसने स्पष्ट रूप से कह दिया है,–(६०) मेरे बीच परो मत कोऊ।

स्वीकृत साधन के लिये संत-सेवा व सत्संग ही मूल भूत उपकरण हैं और उसकी रक्षा के लिये निंदा-स्तुति से बचना परमावश्यक है। साधक का उस ओर दुर्लक्ष करना ही उचित है। यही उपेक्षा का भाव वह व्यक्त करती है,–(३२) कोई

निन्दो कोई विन्दो, मैं चलूँगी चाल अनूठी, चढ़ गयो रंग मजीठी। (५६) साध संगत मैं नित उठ करस्यूं, भल निंदो संसार। (८६) कोई खरी कोई खोटी कहे, मैं प्रेम रीति सुहाती। (८८) अब तो बात फैल गई, जानै सब कोई, होनी हो सो होई।

लोक-लाज व कुल की मर्यादा का भी किसी सीमा के पश्चात् त्याग आवश्यक है,-(७) लोक-लाज कुल की मरजादा, या में एक न राखूँगी। (३५) लाज सरम कुल की मरजादा, सिर से दूर करी। मान अपमान दोउ घर पटके, निकसी हूँ ज्ञान गली ॥

इन बातों का विरोध यदि राणा स्वयं करता है तो उसके लिये भी मीराँ का स्पष्ट उत्तर है,-(३५) तेरो कोई नहिं रोकणहार, मगन होय मीराँ चली। (३६) प्रकट निसान बजाय चली मैं। मीराँ सबल धणी के शरणे, कहा भयो भूपति मुख मोरचो। (४६) कांई करेगा मारो राजा राणा।

४ निश्चय के पद

★

प्रेम लगन १

गोविन्द सूँ प्रीत करत, तबहि क्यों न हट की ।
अब तो बात फैल परी, जैसे बीज बट की ॥०॥
बीच की विचार नाहि, छाँय परी तट की ।
अब चूको तो ठौर नाहिं, जैसे कला नट की ॥१॥
जल की घुरी गाँठ परी, रसना गुन रट की ।
अब तो छुड़ाय हारी, बहुत बार झटकी ॥२॥
घर घर में घोल मठोल, बानी घट घट की ।
सबही कर सीस धारे, लोक लाज पटकी ॥३॥
मद की हस्ती समान, फिरत प्रेम लटकी ।
दास मीराँ भक्ति बुँद, हिरदय बीच गटकी ॥४॥

प्रेम २ (गुज०)

मुखड़ानी माया लागी रे, मोहन प्यारा ॥०॥
मुखड़ुँ में जोयुं तारूँ सर्व जग थयुँ खारूँ ।
मन मारूँ रह्युँ न्यारूँ रे ॥१॥
संसार नुं सुख एवुं, झांझवाना नीर जेवुं ।
तेने तुच्छ करी फरिये रे ॥२॥
मीरांबाई बलिहारी, आशा मने एक तारी ।
हवे हुँ तो बड़भागी रे ॥३॥

ज्ञान ३

सासरे नहीं जाऊँ म्हाने मिल गया मदन गोपाल ॥०॥

सास हमारी सुखमना सुसरा है संतोष ।

जेठ जगत कर जाणियो नाम धरया निर्दोष ॥१॥

ऐसे वर को के वरूँ जन्मे सो मर जाय ।

वर वरसूँ कृष्ण साँवरो अमर चूड़ो हो जाय ॥२॥

लख चोरासी चूड़लो पहरयो हरि विश्वास ।

बाँय पकड़ मोरी लेचले पूर्वले घर वास ॥३॥

गगन मण्डल में सासरो पीहर वैकुण्ठावास ।

चोरासी को वालमो गावे मीराँ दास ॥४॥

प्रेम ४

ज्यूँ अमली के अमल अधारा । यूँ रामैया प्रान हमारा ॥०॥

कोई निन्दै वन्दै दुख पावे । मोकूँ तो रामैयो भावै ॥१॥

विवेक ५

कूडो वर कुँण परणीजे माय ॥०॥

लख चौरासी को चुड़लो रे वाला, पहरयो कीतियक बार ।

के तो जीव जाणत है सजनी, के जाणे सिरजण हार ॥१॥

सात बरस की मैं राम आराध्यौ, जब पाया करतार ।

मीराँ ने परमातम मिलिया, भव भव का भरतार ॥२॥

ज्ञान ६

हेली सुरत सोहागिन नार, सुरत मेरी राम से लगी ॥०॥

लगनी लहँगो पहर सुहागण, बीती जाय बहार ।

धन जोबन है पावणा री, मिलै न दूजी बार ॥१॥

राम नाम को चुड़लो पहिरो, प्रेम को सुरमो सार ।

नक बेसर हरि नाम की री, उतर चलोनी परले पार ॥२॥

ऐसे बर को क्या बरूँ, जो जनमें और मर जाय ।

बर बरिये एक साँवरो री (मेरो), चुड़लो अमर होय जाय ॥३॥
मैं जान्यों हरि मैं ठग्यो री, हरि ठग ले गयो मोय ।
लख चौरासी मोरचा री, छिन में गेरचा छे बिगोय ॥४॥
सुरत चली जहाँ मैं चली री, कृष्ण-नाम झणकार ।
अबिनासी की पोल पर जी, मीराँ करै छै पुकार ॥५॥

प्रेम   ७

श्री गिरधर आगे नाचूँगी ॥०॥
नाच नाच पिव रसिक रिझाऊँ । प्रेमी जनकूँ जाचूँगी ॥१॥
प्रेम प्रीति का बाँधि घूँघरू । सुरत की कछनी काछूँगी ॥२॥
लोक-लाज कुल की मरजादा । या में एक न राखूँगी ॥३॥
पिव के पलँगा जा पौढूँगी । मीराँ हरि-रँग राचूँगी ॥४॥

अनन्यता   ८

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ ।
गिरधर म्हाँरो साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ ॥०॥
रैण पड़ै तब ही उठि जाऊँ, भोर भये उठि आऊँ ।
रैण दिना वाके संग खेलूँ, ज्यूँ त्यूँ ताहि रिझाऊँ ॥१॥
जो पहिरावै सोई पहिरूँ, जो दे सोई खाऊँ ।
मेरी उणकी प्रीत पुराणी, उण बिन पल न रहाऊँ ॥२॥
जहाँ बैठावे तितही बैठूँ, बेचै तो बिक जाऊँ ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँ ॥३॥

प्रेम-लगन   ९

मेरो मन लागो हरिजी सूँ, अब न रहूँगी अटकी ॥०॥
गुरु मिलिया रैदासजी, दीन्ही ज्ञान की गुटकी ।
चोट लगी निज नाम हरि की, म्हाँरे हिवड़े खटकी ॥१॥

माणिक मोती परत न पहिरूँ, मैं कबकी नट की ।
गेणो तो म्हाँरे माला दोवड़ी, और चंदन की कुटकी ॥२॥
राज कुल की लाज गमाई, साधाँ के सँग मैं भटकी ।
नित उठ हरिजी के मंदिर जास्याँ, नाच्याँ दे दे चुटकी ॥३॥
भाग खुल्यो म्हाँरो साध संगत सूँ, साँवरिया की बटकी ।
जेठ बहू की काण न मानूँ, घूँघट पड़ गई पटकी ॥४॥
परम गुराँ के सरन मैं रहस्याँ, परणाम कराँ लुटकी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जनम मरण सूँ छुटकी ॥५॥

अनन्य भाव १०

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई ॥०॥
जाके सिर मोर मुकट, मेरो पति सोई ।
तात मात भ्रात बंधु, आपनो न कोई ॥१॥
छाँडि दई कुल की कानि, कहा करि है कोई ।
संतन ढिग बैठि बैठि, लोक लाज खोई ॥२॥
चुनरी के किये टूक, ओढ़ लीन्हीं लोई ।
मोती मूँगे उतार, बनमाला पोई ॥३॥
अँसुवन जल सींचि सींचि प्रेम बेलि बोई ।
अब तो बेल फैल गई आणंद फल होई ॥४॥
दूध की मथनियाँ, बड़े, प्रेम से बिलोई ।
माखन जब काढ़ि लियो, छाछ पिये कोई ॥५॥
भगति देखि राजी हुई, जगत देखि रोई ।
दासी मीराँ लाल गिरधर, तारो अब मोही ॥६॥

ज्ञान ११

राम रंग लागो, मेरे दिल को धोको भागो ॥०॥

जब थी बन्दी मान गुमानी पीजी मुखउ न बोलो ।
अब भई बन्दी खाक बराबर साहिब अन्तर खोलो ॥१॥
पीजी बोलो अन्तर खोलो सेजड़ियां सुख दीनो ।
मैं अपने पीतम संग राजी प्रेम पियालो पीनो ॥२॥
लोक लाज कुल की मरजादा तोड़ दियो सोइ धागो ।
हरीजनाँ ने हरी मिले ज्यूँ सोनो मिल्यो सुहागो ॥३॥
साँचे से मेरा साहिब राजी, झूठे से मन भागो ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भाग हमारो जागो ॥४॥

निर्गुण भाव १२

मुझे लगन लगी प्रभु पावन की ।
पावन की घर आवन की ॥०॥
छोड़ काज अरु लाज जगत की ।
निसदिन ज्ञान लगावन की ॥१॥
सुरत उजाली खुल गई ताली ।
गगन महल में जावन की ॥२॥
झिलमिलकारी ज्योति निहारी ।
जैसे बिजली सावन की ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
हरख निरख गुण गावन की ॥४॥

ज्ञान १३

बाला मैं बैरागण हूँगी ।
जिन भेषाँ म्हारो साहिब रीझे, सोही भेष धरूँगी ॥०॥
सील संतोष धरूँ घट भीतर, समता पकड़ रहूँगी ।
जाको नाम निरंजन कहिये, ताको ध्यान धरूँगी ॥१॥

गुरू के ज्ञान रँगूँ तन कपड़ा, मन मुद्रा पैरूँगी ।
प्रेम-प्रीत सूँ हरिगुण गाऊँ, चरणन लिपट रहूँगी ॥२॥
या तन की मैं करूँ कींगरी, रसना नाम कहूँगी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, साधाँ सँग रहूँगी ॥३॥

अनन्यभाव १४ (गुज०)

सुन्दीर श्याम शरीर, मारे दील सुन्दीर श्याम शरीर ॥०॥
कोइ ने भाव भवानी उपर, कोइने वाला पीर ॥१॥
गंगा रे कोइने ने जमना रे कोइने, कोइने अड़सठ तीर ॥२॥
कोइने रे हस्ती कोइने रे घोड़ा, कोइने ते महोल मंदीर ॥३॥
मीरां बाइ के प्रभु गीरधर ना गुण, हरि हळधर केरा वीर ॥४॥

प्रेमलगन १५ (गुज०)

शुं करूं राणाजी मारूं चितडुं चोराये, मारूं मनडुं वेंधाये,
शुं करूं ॥०॥
करवां न सुझे अमने घरनां रे काम,
भोजन ना भावे नयणे निद्रा हराम ॥१॥
जळ जमना ने कांठे उभा बळीभद्र वीर,
बंसरी बजावे वहालो जमना के तीर ॥२॥
उभी बजारे गज रथ चाल्यो रे जाय,
श्वान भसे तो तेनी संख्या ना थाय ॥३॥
झख रे मारे रे पेला दुर्जन लोक,
चितडुं चोरयुं तो तेनी शोखामण फोक ॥४॥
ज्यां शामळीयो गिरधारी त्यां मारी आश,
हरखी निरखी गाय मीराँ दास ॥५॥

ज्ञान १६ (गुज०)

मने मलीया मित्र गोपाळ, नहि आउँ सासरीए ॥०॥
संसार मारूं हो सासरूं ने वैंकुंठ मारो वास रे ।
लक्ष चोरासी मारो हो चुडलो रे, हांरे में तो ,वर्या गोपाळलाल नाथ ॥१॥
सासु हमारी सुषुम्णा रे, ससरो प्रेम संतोष रे ।
जेठ जुगो जुग जीवजो रे, हांरे पेलो नावलीयो निर्दोष ॥२॥
ओढुं तो नवरंग चुंदड़ी रे, नहि ओढुं कांबळ लगार रे ।
ओढुं प्रेम रस चुंदड़ी रे, हांरे मारां पाप निवारण करनार ॥३॥
दीएर ने दोनुं हे दीकरी रे, दोनुं राजकुमार रे ।
एक ने सत्ययुग मोही रह्यो राणा, दुजी रही ब्रह्मचार ॥४॥
एकेक नो गुरू गोविंदजी हो रे, दुजी को हे संसार रे ।
राजा छांडो चित्रकुट ने रे, हांरे वा'ला गामडां सोल हजार ॥५॥
अपना पिया कु जाइने कहेजो, घणा दहाडानो घर वास रे ।
बेउ कर जोडी हो विनवे रे, हांरे गुण गाय मीरांबाइ दास ॥६॥

वैराग्य १७ (गुज०)

शुं करवुं छे रे राणाजी मारे हीरा माणेक ने मारे शुं करवुं छे ॥०॥
मोती नी माळा राणा काम नहीं आवे मारे तुळसी नी माळाए मारे तरवुं छे ॥१॥
प्रभाते उठीने मारे न्हावुं ने धोवुं राणा ध्यान धणी नुं धरवुं छे ॥२॥
हीर ना चीर मारे काम न आवे राणा भगवी चादरे मारे फरवुं छे ॥३॥

महेल ने माळ मारे काम न आवे राणा
जंगल झुँपडीमां जइ वसवु' छे ॥४॥
घँऊँ रे चोखलिया मारे काम न आवे राणा
भिक्षा मांगीने मारे खावु' छे ॥५॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण वाला
अमर चुडलो लइने मारे मरवु' छे ॥६॥

साधु-श्रद्धा १८

राणाजी में आदू बैरागण नार ॥०॥
साधु आया पावणा, माँगे चार रतन ।
धूँणी पाणी साँतरा, सरधा सेती अन्न ॥१॥
साधू मेरी आतमा, म्हारे साधांरा भाव ।
रोम रोम में रम रह्या, बिंदराबन का राव ॥२॥
साधु मुगत का पोलिया, कूँची ज्याँके हाथ ।
ताला झाड़े प्रेम का, खोले मुकत का द्वार ॥३॥
मीराँ जनमी मेड़ते, लेख लिख्या चित्तौड़ ।
धन मीराँ धन मेड़तो, धन धन हो राठौड़ ॥४॥

हरिगुण गान १९

राणाजी म्हे तो गोविंद के गुण गास्याँ ॥०॥
चरणाम्रित को नेम हमारे । नित उठ दरसण जास्याँ ॥१॥
हरि मंदिर में निरत करास्याँ । घूँघरिया घमकास्याँ ॥२॥
राम नाम का झाझ चलास्याँ । भवसागर तर जास्याँ ॥३॥
यह संसार बाड़ का काँटा । ज्या संगत नहिं जास्याँ ॥४॥
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर । निरख परख गुण गास्याँ ॥५॥

ज्ञान २० (गुज०)

अखंड वर ने वरी सहेली हूँ तो अखंड वर ने वरी ॥०॥

कुटुँब सहोदर स्वारथना सौ । प्रपंच थी परहरी ॥१॥
जन्म धरीने महा दुख पामी । घरनो ते धंधो करी ॥२॥
सर्व संसार भयंकर काळो । ते देखी थरथरी ॥३॥
भवसागर मां महा दुख पामी । लक्ष चौरासी फरी ॥४॥
संत संगत मां महा सुख पामी । बैठी ठेकाणे ठरी ॥५॥
श्री सत गुरू नी पुरण कृपा थी । भवसागर हूँ तरी ॥६॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण । संत चरण मां पड़ी ॥७॥

/भक्तिभाव २१

मैं तो साँवरे के रंग राची ॥०॥
साजि सिंगार बाँधि पग घुँघरू, लोक-लाज तजि नाची ॥१॥
गई कुमति लई साधु की संगति, भगत रूप भई साँची ॥२॥
गाय गाय हरि के गुण निसदिन, काल-व्याल सूँ बाँची ॥३॥
उण बिन सब जग खारो लागत, और बात सब काँची ॥४॥
मीराँ श्री गिरधरन लाल सूँ, भगति रसीली जाँची ॥५॥

/भक्तिभाव २२

गोपाल रंग राची मैं स्याम रंग राची ॥०॥
कहा भयो जल-विष के खाए तीनहु ते मैं बाची ॥१॥
तात मात लोग कुटुम्ब तिन कीनी उपहासी ॥२॥
नन्द नन्दन गोपी ग्वाल तिनके आगे मैं नाची ॥३॥
और सकल छाड़ि के मैं भक्ति काछ काची ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर मेरी जानत झूठी और साँची ॥५॥

/वैराग्य २३

राणाजी म्हें तो गिरधरिये रंग राती ॥०॥
महल तो मालिया राणा काम न आवे म्हारे ।
टूटी झुंपड़ियाँ मन भावे ॥१॥

सोना नी झारी नो राणा नीर नहिं भावे ।
कड़वी तुमड़ियां मन भावे ॥२॥
लाडु जलेबी राणा कछु नहिं भावे ।
खाटी राबड़िया मन भावे ॥३॥
साल तो दुसाला राणा काम नहिं आवे म्हारे ।
फाटी कामलिया मन भावे ॥४॥
बाई मीराँ के छे बाला गिरिधर नागर ।
चरण कमल मन भावे ॥५॥

संतश्रद्धा २४

राणो मारो कांई करी है मीराँ छोड़ दई कुल लाज ॥०॥
डब्बा खोली मीरां जब देख्यो हो गये शालिग्राम ।
जय जय ध्वनि सब संत सभा भई, कृपा करी घनश्याम ॥१॥
साजि शृँगार पग बाँधी घूँघरू, दोउ कर देती ताल ।
ठाकोर आगे नृत्य करत रही, गावत श्री गोपाल ॥२॥
साधु हमारे हम साधुन के, साधु हमारे जीव ।
साधुन मीराँ मिली रही है, जिमि माखन के घीव ॥३॥

मेवाड़-त्याग २५ (गुज०)

गोविंदो प्राण अमारो रे, मने जग लाग्यो खारो रे ।
मने मारो रामजी भावे रे, बीजो मारी नजरे न आवे रे ॥०॥
मीरांबाई ना महेल मां रे, हरि संतन नो वास ।
कपटी थी हरि दूर वसे, मारा संतन केरी पास ॥१॥
राणोजी कागळ मोकले रे, दो राणी मीराँ ने हाथ ।
साधुनी संगत छोडी दो, तमो वसोने अमारे साथ ॥२॥
मीरांबाई कागळ मोकले रे, देजो राणाजी ने हाथ ।
राज पाट तमे छोडी राणाजी, वसो साधु ने साथ ॥३॥

विषनो प्यालो राणे मोकल्यो रे, देजो मीराँ ने हाथ ।
अमृत जाणी मीराँ पी गयां, जेने सहाय श्री विश्वनो नाथ ॥४॥
सांढवाळा सांढ शणगारजे रे, जावु सो सा रे कोश ।
राणाजी ना देश मां मारे, जळ रे पीवानो दोष ॥५॥
डाबो मेल्यो मेवाड़ रे, मीराँ गइ पश्चिम मांय ।
सरव छोडीने मीराँ नीसर्यां, जेनु मायामां मनडुं न कांय ॥६॥
सासु अमारी सुषुमणा रे, ससरो प्रेम-संतोष ।
जेठ जगजीवन जगत मां मारो, नावलियो निर्दोष ॥७॥
चूंदडी ओढु त्यारे रंग चूवे रे, रंग बेरंगो होय ।
ओढुं हुं काळो कामळो, दुजो दाग न लागे कोय ॥८॥
मीराँ हरिनी लाडणी रे, रहेती संत हजूर ।
साधु संघाते स्नेह घणो, पेला कपटी थी दिल दूर ॥९॥

वैराग्य २६

हरि रा भजना में मनड़ो लागो मेवाड़ा राणा ॥०॥
ना चाहिये राणा तेरे शाल दुशाले,
काली कमली में मनड़ो लागो मेवाड़ा राणा ॥१॥
ना चाहिये राणा तेरे महल अटारी,
टूटी टपरी में मनड़ो लागो मेवाड़ा राणा ॥२॥
ना चाहिये राणा तेरे लड्डू और पेड़े,
सुखा टुकड़ा में मनड़ो लागो मेवाड़ा राणा ॥३॥
ना चाहिये राणा तेरे कड़े और कंठी,
तुलसी माला में मनड़ो लागो मेवाड़ा राणा ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
हरि रा चरणां में मनड़ो लागो मेवाड़ा राणा ॥५॥

विश्वास २७

मैं तो तेरे भजन भरोसे अविनासी ॥०॥
तीरथ बरत ते कछु नहिं कीनो । बन फिरे है उदासी ॥१॥
जंतर मंतर कछु नहीं जानूं । वेद पढ़ो नहीं कासी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । भई चरण की दासी ॥३॥

प्रेमालाप २८

हरि गुण गावत नाचूँगी ॥०॥
अपने मंदिर मों बैठ बैठ कर गीता भागवत बाँचूँगी ॥१॥
ग्यान ध्यान का गठरी बाँधकर हरि हर संग मैं नाचूँगी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सदा प्रेमरस चाखूँगी ॥३॥

वैराग्य २९

म्हांरे गेणो गोविन्द नो नाम छे रे ।
म्हांरे गेणो गोविन्द नों नाम छे ॥०॥
तिलक छापा म्हारे तुलसां री माला ।
यो ही मारा मनडा रो हार छे रे ॥१॥
असरू ने मसरू पाट पिताम्बर ।
भगवा चादर ही तमाम छे रे ॥२॥
हीरा जो पन्ना मानक ने मोती ।
सोना रूपा थी नथी काम छे रे ॥३॥
लाडू जो पेडा सरस जलेबियां ।
सूखी लूखी थी म्हारे काम छे रे ॥४॥
मीरांबाई के छे प्रभु गिरधर नागर ।
हरि ना चरणा थी म्हारे काम छे रे ॥५॥

३०

गोविन्द लीना मोल ॥०॥
बृज के लोग करैं सब चर्चा, लिया बजा के ढोल ॥१॥
सुर नर मुनि जाको पार न पावैं, ढ़क लिया प्रेम पटोल ॥२॥
जहर पियाला राणें भेज्या, पिया मैं अमृत मोल ॥३॥
मीराँ प्रभु के हाथ बिकानी, सरबस दीना घोल ॥४॥

ज्ञान ३१

राम रंग धता लागो ए मांय हरि रस धतां, लागो ए मांय ॥०॥
लख चोरासी को चुडलो पहरयो, पहरयो बाँय पसार।
यो तो पति म्हारे देही को संगी, वो तो पति सिरजनहार ॥१॥
पीलो प्याला प्रेम रस का, होगयो घूम घुमाय।
यो तो घूमणो म्हारो कबहु न उतरे, श्यामसुन्दर वर पाय ॥२॥
बाई मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, काचा रंग उड जाय।
यो तो रंग म्हारा श्यामसुन्दर को, जन्म जन्म नहीं जाय ॥३॥

अनन्यश्रद्धा ३२

म्हें तो छोडी छोडी कुल की लाज रंगीलो राणो कांई करशे माणा राज ॥०॥
पांव में बांधूगी मैं घूँघरू हाथ मां लउँगी सितार।
हरि के चरण आगे नाचती रे, कांई रीझेगो किरतार ॥१॥
झेर को प्यालो राजाजी ए भेज्यो मीरांबाई ने हाथ।
करि चरणामृत पी गई रे श्री ठाकुरजी नो प्रसाद ॥२॥
राणाजी ए रीस करी भेज्यो झेरी नाग असार।
पकड गले बच डारियो कांई, होगयो चंदनहार ॥३॥

मीराँ को गिरधारी मिलिया, जनम जनम भर भार ।
मैं तो दासी जनम जनम की कृष्ण कंथ भरथार ॥४॥

प्रेमपथ ३३

राणाजी म्हांने या बदनामी लागै मीठी
(मेवाड़ा राणा, सीसोद्या राणा, या बदनामी लागै मीठी) ॥०॥
सांकडी सेरी में म्हारा सतगुरु मिलिया,
किस विध फिरूं म्हूँ अपूठी ॥१॥
थारा ता राम मीरां म्हाने बतावो, नीतर सेवा थांरी झूठी ॥२॥
म्हारा तो राम राणाजी सबमें विराजे, हिया ललाडी थाणी फूटी॥३॥
कोई निन्दो कोई बिन्दो— मैं चलूँगी चाल अनूठी ॥४॥
सतगुरुजी सूँ बात ज करताँ, दुरजन लोगाँ ने दीठी ॥५॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चढ गयो रंग मजीठी ॥६॥

त्याग ३४

न भावे थाँरो देसड़लो जी रँग रूड़ो ॥०॥
थाँरा देसाँ में राणा साध नहीं है, लोग बसै सब कूडो ॥१॥
गहणा गाँठी राणा हम सब त्याग्या, त्यागो कर रो चूडो ॥२॥
तन की आस कछु नहीं कीनी, ज्यूं रण माहीं सूरो ॥३॥
घूँघट को पट खोल दियो है, सिर पर बांध्यो जूडो ॥४॥
मेवा मिसरी मैं सबही त्यागा, त्यागा छे सक्कर बूरो ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, वर पायो छे रूडो ॥६॥

ज्ञान ३५

तेरो कोई नहिं रोकणहार, मगन होय मीराँ चली ॥०॥
लाज सरम कुल की मरजादा, सिर सैं दूरि करी ।
मान अपमान दोउ धर पटके, निकसी हूँ ग्याँन गली ॥१॥

ऊँची अटरिया लाल किंवड़िया, निरगुण सेज बिछी ।
पँचरंगी झालर सुभ सोहै, फूलन फूल कली ॥२॥
बाजूबंद कडूला सोहै, सिन्दुर माँग भरी ।
सुमिरन थाल हाथ में लीन्हा, सोभा अधिक खरी ॥३॥
सेज सुखमणा मीराँ सोवे, सुभ है आज घरी ।
तुम जावो राणा घर अपणे, मेरी तेरी नाहिं सरी ॥४॥

त्याग ३६

बरजी मैं काहूकी नाँहि रहूँ ॥०॥
सुणो री सखी तुम चेतन होय कै, मन की बात कहूँ ॥१॥
साध-सँगति कर हरि-सुख लेऊँ, जग सूँ दूर रहूँ ।
तन धन मेरो सबही जावो, भल मेरो सीस लहूँ ॥२॥
मन मेरो लागो सुमरण सेती, सबका मैं बोल सहूँ ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, सतगुरु सरण गहूँ ॥३॥

स्वजीवन ३७

म्हारे सिर पर सालिगराम, राणाजी म्हारो काई करसी ॥०॥
मीरां सूँ राणा ने कही रे, सुण मीरां मोरी बात ।
साधों की संगत छोड़दे रे, सखियाँ सब सकुचात ॥१॥
मीरां ने सुन यों कही रे, सुन राणाजी बात ।
साध तो भाई बाप हमारे, सखियाँ क्यूँ घबरात ॥२॥
जहर का प्याला भेजिया रे, दीजो मीरां हाथ ।
अमृत करके पी गई रे, भली करें दीनानाथ ॥३॥
मीरां प्याला पी लिया रे, बोली दोउ कर जोर ।
तैं तो मारण की करी रे, मेरो राखणहारो और ॥४॥
आधे जोहड़ कीच है रे, आधे जोहड़ हौज ।
आधे मीरां एकली रे, आधे राणा की फौज ॥५॥

काम क्रोध को डाल को रे, सील लिए हथियार ।
जीती मीरां एकली रे, हारी राणा की धार ॥६॥
काचगिरी का चौतरा रे, बैठे साध पचास ।
जिनमें मीरां ऐसी दमके, लख तारों में परकास ॥७॥
टाँडा जब वे लादिया रे, बेगी दीन्हा जाण ।
कुल की तारण अस्तरी रे, चली है पुष्कर न्हाण ॥८॥

स्वजीवन ३८

मीरां रंग लागो राम हरी, और न सब रंग अटक परी ॥०॥
चूड़ो म्हारे तिलक अरू माला, सील बरत सिंगारो ।
और सिंगार म्हारे दाय न आवे, यो गुरुज्ञान हमारो ॥१॥
कोई निन्दो कोई बिन्दो म्हें तो, गुण गोविंद का गास्यां ।
जिन मारग म्हारा साध पधारे, उण मारग म्हे जास्यां ॥२॥
चोरी न करस्यां, जिव न सतास्यां, काईं करसी म्हारो कोय ।
गज से उतर के खर नहिं चढ़स्यां, ये तो बात न होय ॥३॥
सती न होस्यां गिरधर गास्यां, म्हारो मन मोह्यो घणनामी ।
जेठ बहू को नातो न राणाजी, हूं सेवक थे स्वामी ॥४॥
गिरिधर कंथ गिरधर धनि म्हारे, मात पिता वोइ भाई ।
थे थारे म्हे म्हारे राणाजी, यूं कहे मीरां बाई ॥५॥

स्वजीवन ३६

मेरो मन हरि सूं जोरयो, हरि सूं जोर सकल सूं तोरयो ॥०॥
मेरी प्रीत निरन्तर हरि सूं, ज्यूं खेलत बाजीगर गोरयो ।
जब मैं चली साध के दरशण, तब राणो मारण कूं दोरयो ॥१॥
जहर देन की बात बिचारी, निरमल जल में ले विष घोरयो ।
जब चरणोदक सुण्यो सरवणा, राम भरोसे मुख में ढोरयो ॥२॥

नाचन लगी जब घूंघट कैसो, लोक लाज तिणका ज्यूं तोरचो।
नेकी बदी हूं सिर पर धारी, मनहस्ती अंकुश दे मोरचो ॥३॥
प्रगट निसान बजाय चली मैं, राणा राव सकल जग जोरचो।
मीराँ सबल धणी के शरणे, कहा भयो भूपति मुख मोरचो ॥४॥

स्वजीवन　　४०

मैं अपणे सैयाँ सँग साँची ॥०॥
अब काहे की लाज सजनी, परगट ह्वै नाची ॥१॥
दिवस भूख न चैन कबहूँ, नींद निसि नासी ॥२॥
बेधि वार पार ह्वै गो, ग्यान गुह गाँसी ॥३॥
कुल कुटंबी आन बैठे, मनहु मधुमासी ॥४॥
दासी मीराँ लाल गिरधर, मिटी जग हाँसी ॥५॥

स्वजीवन　　४१

मैं गोविंद गुण गाणा ॥०॥
राजा रूठै नगरी राखै हरि रूठ्याँ कहँ जाणा ॥१॥
राणा भेज्या जहर पियाला, इमिरत करि पी जाणा ॥२॥
डबिया में भेज्या जो भुजंगम सालिगराम कर जाणा ॥३॥
मीराँ तो अब प्रेम-दिवानी साँवळिया बर पाणा ॥४॥

स्वजीवन　　४२

मेरे तो एक राम नाम दूसरा न कोई।
　　दूसरा न कोई साधो सकल लोक जोई ॥०॥
भाई छोड़्या बन्धु छोड्या छोड्या सगा सोई।
　　साध सङ्ग बैठ बैठ लोक लाज खोई ॥१॥
भगत देख राजी हुई जगत देख रोई।
　　प्रेम नीर सींच सींच विष बेल धोई ॥२॥

दधि मथ घृत काढ लियो डार दई छोई ।
राणा विष को प्यालो भेज्यो पीय मगन होई ॥३॥
अब तो बात फैल पड़ी जाणे सब कोई ।
मीराँ राम लगण लगी होणी होय सो होई ॥४॥

अनन्यभाव ४३

हेली म्हाँसूँ हरि विन रह्यो न जाय ॥०॥
सास लड़ै मेरी ननद खिजावै, राणा रह्या रिसाय ।
पहरो भी राख्यो चौकी बिठाई, ताला दियो जड़ाय ॥१॥
पूर्ब जनम की प्रीत पुराणी, सो क्यूँ छोड़ी जाय ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, और न आवे म्हाँरी दाय ॥२॥

भक्त-वत्सलता ४४

मेरे सिर राम गरीबनिवाज मेरे सिर राम गरीब निवाज ॥०॥
कंचन कलस सदामां कु दीनो होंडत है गजराज ॥१॥
रावण के दस मस्तक छेदे दियो भभीखण राज ॥२॥
द्रोपदी सती को चीर बधायो अपणे जन के काज ॥३॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी कुल की राखी लाज ॥४॥

प्रेमालाप ४५ (पंजाबी)

पीया मैं तेरी बंदी हो ॥
गरक भई गुण तौरडै । बिन मोल वकंदी हो ॥०॥
मैं ब्रहन तूं बहु गुनी । दोउ सिंध मिलंदी हो ।
जो तुमकी प्रीतम नां मिलौ । तो मैं बह जंदी हो ॥१॥
रूप लुभांनी लोयना । मैं चलु तेरी छंदी हो ।
गुजि की बांतां तुझि सुं । ऊंल जूं कहंदी हो ॥२॥
प्राण सनेही सजनां । दुख टालन दंदी हो ।
मीराँ के प्रभु रामजी । तेरी चेरी कहंदी हो ॥३॥

स्वजीवन ४६

मारो मनड़ो हरी सूं राजी ॥०॥
कांई करेगा मारो दुरजन पुरजन । झख मारो झूठा पाजी ॥१॥
कांई करेगा मारो राजा राणा । कांई करेगा मुलां काजी ॥२॥
रंगीला प्रीतम से हिल मिल खेलां । पर तन मन हारां बाजी ॥३॥

नगुण भाव ४७ (गुज०)

अणजायो वर वरिये रे हो बेनी मारे ॥
बीजा थी न प्रीति [1]करिये रे ॥०॥
मनुष्य जनम टाणुं, मल्युं सहियर मोघुं नाणुं ॥
वार हवे शानी करिये रे हो० ॥१॥
कोई वेद वाणी बोले, कोई कावे तेम छोले ॥
हरष शोक शाने करिये रे हो० ॥२॥
भाँगे नहीं फूटे नहीं, बुड़ीजे देखाय नहीं ॥
बँगडियो तो एवी धरिये रे हो० ॥३॥
फाटे नहीं टुटे नहीं, रंग जेनो जाय नहीं ॥
चुँदड़ियो तो एवी धरिये रे हो० ॥४॥
सुख दुःख टाढ़ तड़को, न थी ज्याँ आगनो भड़को ॥
सासरियाँ तो एवा करिये रे हो० ॥५॥
हरि नाम नी होड़ी करिये, स्हेजे भवसागर तरिये ॥
भर दरिये मोज़ां करिये रे हो० ॥६॥
मीराँ के हुँ बलिहारी, आशा म्हने एक तारी ॥
जनम सफल करिये रे हो० ॥७॥

विवेक ४८ (गुज०)

प्रेम पियालो में पीधो रे जी हो सन्तो ॥०॥

आ रे जगतडाने जोई ने वारो रे ।
अमर पछेड़ो कोणे लीधो रे ॥१॥
आ रे शरीर ना सरवे सुखडाँ रे ।
छे अमे त्यागी दीधो रे ॥२॥
म्हारा रे मनड़ा रे बहुंरे समझाव्यो रे ।
जोग जंगलनो मैं लीधो रे ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधरना गुण ।
स्वर्ग पुरी नो मारग लीधो रे ॥४॥

मिथ्याभिमान ४९

सब जग रूठड़ा रूठण द्यौ, एक रामजी रूठो नहीं भावे ॥०॥
गरव कियो रतनागर सागर, नीर खारो कर डारचो ॥१॥
गरव कियो उण चकवा चकवी, रेण बिछोवो पारचो ॥२॥
गरव कियो उण बन की कोयल, रूप श्याम कर डारचो ॥३॥
गरव कियो लंकापति रावण, टूक टूक कर डारचो ॥४॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनाशी, हरि के चरण तन वारचो ॥५॥

ज्ञान ५०

आवो सहेल्याँ रळी कराँ हे पर घर गवण निवारि ॥०॥
झूठा माणिक मोतिया री झूठी जगमग जोति ।
झूठा सब आभूखण री साँची पियाजी री पोति ॥१॥
झूठा पाट--पटंबरा रे झूठा दिखणी चीर ।
साँची पियाजी री गूदड़ी जामें निरमल रहै सरीर ॥२॥
छप्पन भोग बुहाय देहे इण भोगन में दाग ।
लूण अलूणो ही भलो हे अपणे पियाजी रो साग ॥३॥
देखि बिराणे निवाँण कूँ हे क्यूँ उपजावै खीज ।
कालर अपणो ही भलो हे जामें निपजै चीज ॥४॥

छैल बिराणो लाख को हे अपणे काज न होय ।
ताके सँग सिधारताँ हे भला न कहसी कोय ॥५॥
वर हीणो अपणो भला हे कोढ़ी कुष्टी कोय ।
जाके सँग सिधारताँ हे भला कहै सब लोय ॥६॥
अविनासी सूँ बालवा हे जिनसूँ साँची प्रीत ।
मीराँ कूँ प्रभुजी मिल्या हे ए ही भगति की रीत ॥७॥

ज्ञान   ५१

बडे घर ताळी लागी रे, म्हाँरा मन री उणारथ भागी रे ॥०॥
छीलरिये म्हाँरो चित्त नहीं रे, डाबरिये कुण जाव ।
गंगा-जमना सूँ काम नहीं रे, मैं तो जाय मिलूँ दरियाव ॥१॥
हाल्याँ मोल्याँ सूँ काम नहीं रे, सीख नहिं सिरदार ।
कामदाराँ सूँ काम नहीं रे, मैं तो जाब करूँ दरबार ॥२॥
काच कथीर सूँ काम नहीं रे, लोहा चढ़े सिर भार ।
सोना रूपा सूँ काम नहीं रे, म्हाँरे हीराँ रो बौपार ॥३॥
भाग हमारो जागियो रे, भयो समँद सूँ सीर ।
अम्रित प्याला छाँडिके, कुण पीवे कड़वो नीर ॥४॥
पीपा कूँ प्रभु परचो दियो रे, दीन्हा खजाना पूर ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, धणी मिल्या छै हजूर ॥५॥

ज्ञान   ५२

मैं गिरधर के रँग राती सैयाँ मैं० ॥०॥
पचरँग चोला पहर सखी री मैं झिरमिट रमवा जाती ।
झिरमिट माँ मोहि मोहन मिलियो खोल मिली तन गाती ॥१॥
कोई के पिया परदेस बसत है लिख-लिख भेजैं पाती ।
मेरा पिया मेरे हीय बसत है ना कहुँ आती जाती ॥२॥

चंदा जायगा सूरज जायगा जायगी धरण अकासी ।
पवन पाणी दोनूँ ही जायँगे अटल रहै अबिनासी ॥३॥
और सखी मद पी-पी माती मैं बिन पीयाँ ही माती ।
प्रेमभठी को मैं मद पीयो छकी फिरूँ दिन-राती ॥४॥
सुरत निरत को दिवलो जोयो मनसा की करली बाती ।
अगम घाणि को तेल सिंचायो बाळ रही दिन-राती ॥५॥
जाऊँ नी पीहरिये जाऊँ नी सासरिये हरि सूँ सैन लगाती ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणाँ चित लाती ॥६॥

प्रेम की लगन ५३ (पूर्वी)

हमरे रौरे लागलि कैसे छूटै ॥०॥
जैसे हीरा हनत निहाई, तैसे हम रौरे बनि आई ॥१॥
जैसे सोना मिलत सोहागा, तैसे हम रौरे दिल लागा ॥२॥
जैसे कमल नाल विच पानी, तैसे हम रौरे मन मानी ॥३॥
जैसे चंदहि मिलत चकोरा, तैसे हम रौरे दिल जोरा ॥४॥
जैसे मीराँ पति गिरधारी, तैसे मिलि रहु कुञ्जबिहारी ॥५॥

ज्ञान ५४

म्हाने राम रंग लागो म्हारा जीव रो धोको भागो ॥०॥
हरिजी आया म्हारे मन भाया राम नाम में मन लाया ।
हरिजी मोपर किरपा कीदी प्रेम पियाला पाया ॥१॥
रहूं सदा म्हे बालीभोली प्रभुजी मुख नहीं बोल्या ।
अब जो म्हे हूं सदा सवागण प्रभुजी अन्तर खोल्या ॥२॥
साँच से मारा हरिजी राजी झूंठ से दिल भागो ।
अणी काया रो काँई भरोसो काचा सूत को धागो ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणाँ चित लागो ।
जन्म जन्म री दासी आपरी भाग पूर्व रो जागो ॥४॥

भक्ति　　　　　　　　५५

मेरे मन राम नामा बसी ॥०॥
तेरे कारण स्याम सुंदर, सकल लोगाँ हँसी ॥१॥
कोई कहे मीराँ भई बौरी, कोई कहे कुल नसी ॥२॥
कोई कहे मीराँ दीप आगरी, नाम पिया सूँ रसी ॥३॥
खाँड धार भक्ति की न्यारी, काटि है जम फँसी ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सब्द सरोवर धसी ॥५॥

अनन्यता　　　　　　　　५६

कारी कामर वारे से जोड़ी, प्रीति मैं ॥०॥
और मोहवत कौन काम की, गिरधर बिना हु न जोड़ी ॥१॥
लोग कहैं कारी कामरि वारो, म्हारे तो लाख किरोड़ी ॥२॥
लोक लाज कुल की मरजादा, तिणका ज्यूँ सब तोड़ी ॥३॥
कोऊ जन निन्दो कोऊ जन वन्दो, कोऊ मनमानै सों कहोरी ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मेरो चित लियो उन चोरी ॥५॥

भक्ति-प्रवाह　　　　　　　　५७

ज्याँरा चित चरणां से लगा। वेही सबेरे जागा ॥०॥
पहले भूप भरतरी जागा, शहर उजीणी त्यागा।
सुँण सुँण वचन साहब सतगुरू का, गोपीचंद उठ भागा ॥१॥
साहब सैन बलख रा राजा, बाण बिरह रा लागा।
आठूँ पहर कबीरा जागा, मरण जीवण भय भागा ॥२॥
राणाँ रूस्याँ भय मोरे नाहीं, चित साहब से लागा।
मीरांबाई तो शरणे आया, लोक लाज भय त्यागा ॥३॥

अनन्यता　　　　　　　　५८

नंदनंदन सूं मन मान्यौ मेरो कहा करैगो कोयरी ॥०॥
अब तो चरण कमल रूचि बाढ़ी, जो भावै सोई होयरी ॥१॥

पिता रिसाय माय घर मारै, हँसै बटाऊ लोगरी ।
अब तो जिय ऐसी बनि आई, विधना रची सोइ होयरी ॥२॥
अरी जै मेरौ यह लोक जात है, वह परलोक जिन जावरी ।
पिय अपने कूं तऊ न छाँडूं, मिलूँ निसान बजायरी ॥३॥
बहुरि कहां यह तन धर पै हों, बालम भये गुराररी ।
मीराँ प्रभु गिरधर के ऊपर, सरबस डारूं वाररी ॥४॥

स्वजीवन　　　　५९

अटकी मैं नाहिं रहूंगी, म्हारो श्यामसुन्दर भरतार ॥०॥
एक बेर बरजी दोय बेर बरजी, बरजी सो सो बार ॥१॥
सासू भी बरजी ननँद भी बरजी, राखोजी दावादार ॥२॥
साध संगत मैं नित उठ करस्यूं, भल निंदो संसार ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु हरि अविनाशी, पूरण ब्रह्म अपार ॥४॥

प्रेम　　　　६०

माई हूँ स्याम कै रंग राची ॥०॥
मेरे बीच परो मत कोऊ, बात चहूँ दिशि माँची ॥१॥
जागत रैनि रहै उर ऊपर, ज्यूँ कञ्चन मणि साँची ॥२॥
होय रही सब जग में जाहर, फेरि प्रकट होइ नांची ॥३॥
मिली निसान बजाय कृष्ण सूँ, ज्यो कछु कहो सो साँची ॥४॥
जन मीराँ गिरधर की प्यारी, मोहोबत है नहिं काची ॥५॥

आत्म-निवेदन　　　　६१

मीराँ हरि में लीन भई ॥०॥
सबकूँ छाँड भज्यो साहिब कूँ गुरू की सरण गही ॥१॥
राणाजी को राज त्यागो संत मुख आय गई ॥२॥
राम कृष्ण द्वारका नगरी परकर मांहि रही ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरणाँ लीन भई ॥४॥

अभिलाषा ६२

म्हारा गिरधर रसिया छैल, मैं तो चालूँ थारी गैल ॥०॥
पुरी द्वारका वास करूँली, और समद की ल्हैर ।
सब राण्यां सैं रहूँ निराली, जुदा चुणाद्यो म्हैल ॥१॥
राणो म्हाँसूँ करी अनीति, भोत मचाया फैल ।
मैं तो थाँकी संग चलूंली, भोत करूंली ठैल ॥२॥
राजपाट राणा का छोड्या, और कंचन का म्हैल ।
हाती घोडा माल खजाना, और दुनियां की सैल ॥३॥
मैं गिरिधर की भक्ति करस्यूँ कटै जनम का मैल ।
आनँदवर मीराँ गिरधर को, कचकंचन का म्हैल ॥४॥

ज्ञान ६३

राणाँजी (हो) मैं साधुन रँग राती ॥०॥
काहू को पिया परदेस बसत है, लिख लिख भेजत पाती ।
मेरो पिया मेरे माँहि बसत है, कहि न सकूँ सरमाती ॥१॥
सूहो कसूँभी ओढ़ दुपट्टो, झुरमुट खेलन जाती ।
झुरमुट खेल मिले यदुनंदन, खोल मिली मिल छाती ॥२॥
और सखी मद पीवन आईं, मैं मद की मदमाती ।
मैं मद पीयो पंचवटी को, छकी रहूँ दिन राती ॥३॥
सुन्न सिखर के द्वारे आवे, मोहि मिले अविनासी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जनम जनम की दासी ॥४॥

रहस्य ६४

राम सनेही साँवरियो, म्हारी नगरी में उतर्यौ आइ ॥०॥
प्राण जाय पणि प्रीत न छांडूं, रहौं चरण लपटाय ॥१॥
सप्त दीप की दे परकरमां, हरि मैं रहौं समाय ॥२॥

तीन लोक झोली मैं डारै , धरती कौ कियौ निपात ॥३॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, रहौं चरण लिपटाय ॥४॥

प्रेम-रहस्य ६५

साँचो प्रीति ही को नातो ॥०॥
कै जाने वृषभाननंदिनी, कै मोहन रंग रातो ॥१॥
यहै सृंखला अति बलवंती, बंध्यो प्रेम गज मातो ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, कुजनि महाल बसातो ॥३॥

प्रेमदृढ़ता ६६

अब कोऊ कछु कहो दिल लागा रै ॥०॥
जाकी प्रीत लगी लालन से, कंचन मिला सुहागा रै ।
हंसा की प्रकृत हंसा (ही) जाणे, का जाणैं नर कागा रै ॥१॥
तन भी लागा मन भी लागा, ज्यों बामण गल धागा रै ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भाग हमारा जागा रै ॥२॥

प्रेम दृढ़ता ६७

अब कोऊ कैसे कहो दिल लागा ॥०॥
मेरी प्रीत लगी मोहन से, सोने मिलत सुहागा ॥१॥
कोउ येक निंदो कोउ येक विंदो, नाम सुधारस पागा ॥२॥
जन मीराँ गिरधर वर पायो, भाग हमारा जागा ॥३॥

भक्ति महिमा ६८

मैं तो हरि चरणन की दासी । अब मैं काहे को जाऊँ कासी ॥०॥
घट ही में गंगा घट ही में जमना घट घट हैं अबिनासी ।
घट ही में पुस्कर औ लाधेश्वर लछिमन कँवर विलासी ॥१॥
जगंनाथ गंगासागर हैं साखीगुपाल ब्रजबासी ।
सेतुबंध रामेश्वर ईश्वर मूलबटीसुर जासी ॥२॥

अवधपुरी मधुपुरी द्वारिका चित्रकूट यमुनासी ।
गोवरधन गोकुल वृन्दावन बीच मँडल चौरासी ॥३॥
हरिद्वार कुरूखेत जनकपुर गोदावरी हुलासी ।
तीरथ बडे प्रयाग गयाजी कासी तरूवर बासी ॥४॥
विंध्याचलरू ग्रिनार रंग हैं सुघर कपिल दुखनासी ।
बदरीनाथ केदार गंगोतरि बैजनाथ कैलासी ॥५॥
पंचबटी पंपापुर रूक्मिणि देख कपिल युवरासी ।
नैमषार श्रृङ्गीरिष मिसरिख कासी पाप-विनासी ॥६॥
मकनाथ अरू मानसरोवर मानलता अरू हाँसी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर सहज कटै यम फाँसी ॥७॥

भक्ति प्रभाव ६६

राम रँग लाग्यो म्हारा मनको धोखो भाग्यो जी ॥०॥
पीपा के लागि सुदामा के लाग्यो, कञ्चन महल वणायो जी ।
ध्रुव के लागि प्रहलाद के लाग्यो, नरसी के कारज सारयो जी ॥१॥
साँचो रङ्ग नामदेव के लाग्यो, छिन में छाँन छवाग्यो जी ।
मुलक भुखारा का बादशाह के लाग्यो, राज मुलक को त्याग्यो जी॥२॥
गोपीचंद भरथरी के लाग्यो, तन में खाख रमायो जी ।
साँचो रंग मीराँ के लाग्यो, ज्योति में ज्योति समाग्यो जी ॥३॥

उपदेश ७० (गज०)

कोई कहे तेने कहेवा रे दईसे, आपणे हरि भजन मां रहीसे रे ॥०॥
उगत भगत बेजुदा बसे छे, तेमां भक्तपणु कोने कहीसे रे ।
भक्तपणु तब जाणीए आपण, सौनां मेणां (बोल) सहीसे रे ॥१॥
हीरा ने कंकर एकज रंगा, तेमां हीरापण कोनी कहीसे रे ।
हीरापणु तब जाणीए आपण, घाव घणेरा सहीसे रे ॥२॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल पर चित दईसे रे ॥३॥

भक्ति ७१

चंदन की तिलक तुलसी की माला,
भजुं रघुपति मैं भजुं नंदलाला ॥०॥
ओर कोई नहीं जाणुं देवा, रामकृष्ण बिन निष्फल सेवा ॥१॥
लोक कहे मीराँ क्या जाणे, मीराँ का मरम श्रीराम पीछाने ॥२॥

भक्ति ७२

हमारे मन राधा-श्याम बसी ॥०॥
कोई कहे मीराँ भई बावरी।
कोई कहे ए तो कुल बसी ॥१॥
खोल घुंघट पट हरि गुण गाती।
हरि ढींग मीराँ नाचत लसी ॥२॥
विष को प्यालो भेज्यो राणाजी ने।
पीवत पीवत मीराँ हसी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर।
भक्ति के मार्ग में मैं तो धसी ॥४॥

ज्ञान ७३ (गुज०)

परणीशुं म्हारा प्रभुजी नी साथ,
बीजाना मींढळ नहीं बांधुजी ॥०॥
धरती परमाणे म्हें तो मांडवो रचायो ने,
तारा ना तोरणीया म्हें बांध्यां ॥१॥
वनरा ते वननी म्हें तो माळा रचावी ने,
प्रेमनी पीठी म्हें तो चोळी ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर,
घणुं ए जीवो परणांतर जी ॥३॥

विष का प्याला राणाजी भेज्या [पृ० २७५, पद २१
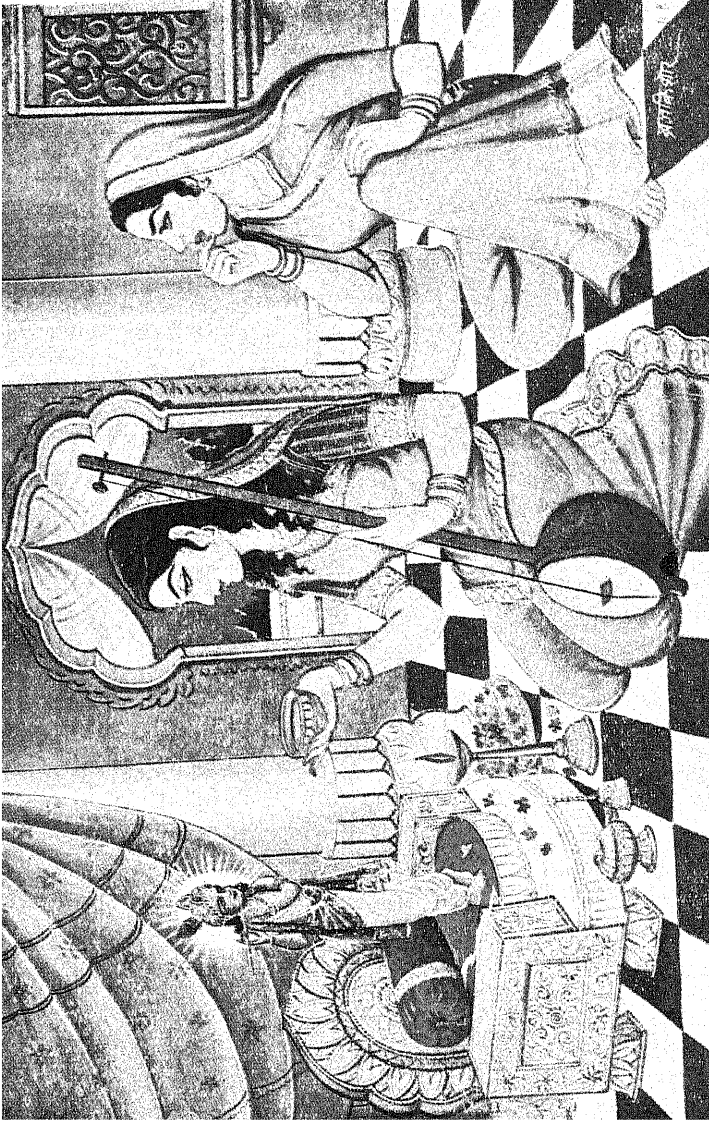
भक्ति ७४

कोण करे कोण करे कोण करे,
दूजो वणज अमारे कोण करे ॥०॥
रामजी सरीखा मारे माल खजाना,
तो रात दिवस वाजे फरे ॥१॥
माणेक मोती हीरे दिल भरियां,
त्यां कोडी उपर दिल केम ठरे ॥२॥
तिलक छाप कोट तुलसीनी माला,
तेरे देखी जमडा डरे ॥३॥
मीरांबाई के प्रभु गिरधर नागर,
लवरे चौराशीमां कुण पडे ॥४॥

ज्ञान ७५ (गुज०)

नहीं बांधु मींढळ, बीजाना मींढळ नहीं बांधु ।
हुं तो परणी मारा पियुजी नी साथ ॥०॥
ज्ञान ना गोळ गुरूए मुख मांहि दीधो,
प्रेम नी घाली वरमाळ ॥१॥
मन पवन नो गुरूए मांडवो बंधाव्यो,
तनडा ना बांध्या छे तोरण ॥२॥
सत्य नां कंकण मारा गुरुजीए बांध्यां,एनो कोण छोडावनार ॥३॥
धर्म ना धोरी मारां प्रसन्न जानैया, हुं तो अमर पामी भरथार ॥४॥
बाई मीराँ ने मींडळ छे श्री रामनां, देजो तमे साधु चरणे वास ॥५॥

प्रेमलगन ७६ (गुज०)

के लगनी तो हरिवरथी लागी, में तन धन नी आशा त्यागी रे ॥०॥

रे वात कहुं सुण साहेली रे, बळीयोजी कीध बेली ।
माथु' पहेलु' पासंग मां मेली ॥१॥
रे न डरू' लोकतणी लाजे रे, शिर ऊपर गिरधर गाजे ।
आ देह धर्यो नटवर काजे ॥२॥
बाई मीराँ कहे जोगी उभा रहो तो, बगडे जीवतर मारू' ।
हुं जीती बाजी ते केम हारू' ॥३॥

अनन्यता ७७

मेरे जीअ (जीया) ऐशी आए बनी ॥०॥
छाड गोपाल (अवर जो) और कू समरू तो लाजे जनुनी ॥१॥
काहा ले कीजे काच को अंधरे छाड अमोल मनी ।
मन करम बचन ओर नही मेरे जब तब साम धनी ॥२॥
(वर्ष को मेरू कहा ले कीजे) वेष को मर काहाले कीजे,
अप्रीत एक कनी ।
मीराँ प्रभु गिरधर के (कारण) भजन तर्जा जात अपनी ॥३॥

स्वजीवन ७८ (गुज०)

कानुडो मित्र अमारो राणाजी पेलो कानुडो मित्र अमारो ॥०॥
ब्रन्दाबन की कुंज गळन में । मोहन मोरली वालो॥१॥
आरे नेणां बीच एसो ही राखु' । जैसे पुत्री बिच तारो ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर । जीवण प्राण हमारो ॥३॥

स्वजीवन ७९ (गुज०)

लाजु' ते केनु' करीए, राणाजी ! केना मोलाजा धरीए ॥०॥
राणा के मानीता माएरू रतन ने तोरणे चडीए ॥१॥
हाथे वालो श्री हरि शे बांध्यो, नवरंग चोरी चडीए ॥२॥
आला ते नीला वांश वढावु', चोरी फेरा फरीए ॥३॥
मीरांबाई के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमळ चित धरीए ॥४॥

वैराग्य ८०

हम परदेशी पंछी लोक, बाहार नहीं आवेंगे ॥०॥
मात पिता कु दोष न दीजे, कर्म लिख्या सो पावेंगे ॥१॥
कान में मुद्रा गले मृगछाला, घर घर अलख जगावेंगे ॥२॥
तेरे हो कारण जोगन होऊंगी, अंग भभूत लगावेंगे ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरने चित लगावेंगे ॥४॥

अनन्यभाव ८१ (गुज०)

राम नो राम नो राम नो, अमने ओळो रामैयाना नाम नो
अमने ओळो छे सीताराम नो ॥०॥
कोई ने ओळो सगां कुटुंबनो, कोई ने ओळो गढ गामनो ॥१॥
कोई ने ओळो कण कोठार नो, कोई ने ओळो माया दाम नो ॥२॥
रावण मारी भभीखण थाप्यो, गढ लीधो छे लंका गाम नो ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, निश्चेग्रहो तारा नाम नो ॥४॥

स्वजीवन ८२

कूडो वर कुण परणे हे माई । परणुं तो मर मर जाय ॥०॥
रूडो जौ छोड कूडो कुण परणे, कुण कहावै बाली रांड ।
ग्रभ बसेरा कुण बसे सजनी, कुण वेहुं जग में भांड ॥१॥
लख चोरासी रो चूडलो, पेर्यो में कंई वार ।
ओ तो पति मेरी देही को संगी, मो पति सिरजणहार ॥२॥
जनम जनम कीया वर केता, विषया ते नरनार ।
मैं तो राची रंगलु रंगी, गोविंदो हरि भरतार ॥३॥
लोक लाज कुल काण तज कर, करसां भगति निःसंक ।
हरिरस-प्याला मैं पीऊं सजनी, म्हारो कुण राणो कुण रंक ॥४॥

सात बरस की सिरपत लईयो, जब पायो सुधसार ।
मीराँ तो कहे प्रभु लिगन राम की, भव भव का भरतार ॥५॥

प्रेम ८३

श्याम रंग राची गोपाल रंग राची ।
काहो सखी किसी के × × हूँ मद की माती ॥०॥
सजन कुटुंब बंधुता जे हर के आनंद राची ।
काहा भयो बेखु जेहेरज दीनो नही नेह हुं काची ॥१॥
मुहन रूप कीशोरी नागर तेनके आगे नाची ।
मीराँ प्रभु गिरधर जानंत जुठी के साची ॥२॥

स्वजीवन ८४ (गुज०)

शुं करूँ राज तारा, शुं करूँ पाट तारा,
चितडां चोराणां तेने शुं रे करूँ राणा, शुं रे करूँ ।
भुली भुली हुं तो घर केरा काम, राणाजी तेने शुं रे करूँ ॥०॥
अन्नडा न भावे, नेणे निंद्रा न आवे ।
गिरधरलाल विना, घडी न आराम तेने ॥१॥
चित्तौड़गढ़ मां राणी, चौरे चौटे वातो थाय ।
मानो मीराँ आ तो जीव्युं न जाय ॥२॥
ऊभी बजारे राणा, गज चाल्यो जाय छे ।
श्वान भसे तेने, लज्जा नव थाय ॥३॥
निन्दा करे राणा तारा नगर ना लोक ए ।
भजन मुलुं तो मारो फेरो थाय फोक ॥४॥
मनमां भजो मीराँ नारायण नाम ने ।
प्रगट भजो तो म्हारा छोडी जजो गाम ॥५॥
नगरी ना लोक राणा मीराँ ने मनावे सौ ।
मानो मानो ने कंई छोड़ो एवी चाल ॥६॥

बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधरनां गुण व्हाला ।
हरि ने भजी ने हुँ तो थई हवे न्याल ॥७॥

प्रेम ८५

मन राम रंग ही लागो, म्हारा जीवरो धोको भागो रे ॥०॥
हरिजी आया मेरे मन भाया, सेजडल्याँ रंग लाया ।
हरिजी मोपे किरपा कीनी, प्रेम पियाला पाया रे ॥१॥
साँचा से म्हारो साहिब राजी, झूँठा से मन भागो ।
अणी काया रो कंई भरोसो, काचा सूत रो धागो रे ॥२॥
पेल्याँ की मैं एक सुहागिन, हरिजी मुखडे न बोल्या ।
अब तो भई मैं सदा सुहागिन, हरिजी अंतर खोल्या रे ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित लागो ।
जनम जनम की दासी थांरी, पूरण भाग अब जागो रे ॥४॥

ज्ञान ८६

साँवरिया रंग राती, राणा में ॥०॥
जिनके पिया परदेश बसत है, लिख लिख भेजे पाती ॥१॥
मेरे पिया मेरे ह्रीदे बसत है, यह कछु कही न जाती ॥१॥
जुदा सुहाग जगत का सजनी होय होय मिट जासी ।
मेरो पति अविनाशी विश्वंभर जाहे काल न खाशी ॥२॥
और तो प्यालो पी पी माती, में बिन पिये ही माती ।
ये प्याला है प्रेम हरी का, छकी रहुं दिन राती ॥३॥
कोई खरी कोई खोटी कहे में प्रेम रीति सुहाती ।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, नाम रटुं दिन राती ॥४॥

अनन्यता ८७ (गुज०)

हुँ तो परणी मारा प्रीतम नी संघात, वहालमजी हुँ तो परणी
बीजानां मींढळ नहि बांधु रे ॥०॥

चऊंरे चोखलिया राणा जमवा नथी र हां ।
वहालमजी अमे प्रेमनां टुकडा मागी खाईशुं रे ॥१॥
मोतीनी रे माळा राणा काम न आवे रे हां ।
वहालमजी अमे तुलसी नी माला पहेरी ने नित फरसुं रे ॥२॥
हीरनी रे साडी राणा काम न आवे हां ।
वहालमजी अमे भगवां पहेरी ने नित फरसुं रे ॥३॥
चारे चारे जुगनी राणा चोरी चितरावी रे हां ।
वहालमजी हुं तो मंगल बरती छुं बे ने चार ॥४॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
वहालमजी हुं तो तमने भजीने थई छुं न्याल ॥५॥

अनन्यता ८८

अब तो मेरा राम नाम दूसरा न कोई ॥०॥
माता छोडी पिता छोड़े, छोड सगा भाई ।
साधु संग बैठ बैठ लोक लाज खोई ॥१॥
संत देख दौड़ आई, जगत देख रोई ।
प्रेम आंसु डार डार, अमर बेल बोई ॥२॥
मारग में तारण मिले, संत राम दोई ।
संत सदा शीश रखुं, राम हृदय होई ॥३॥
अंत में से तंत काढ्यो, पीछे रही सोई ।
राणे भेज्या विष का प्याला, पीवत मस्त होई ॥४॥
अब तो बात फैल गई, जानै सब कोई ।
दास मीराँ लाल गिरधर, होनी हो सो होई ॥५॥

स्वजीवन ८९

नैना परि गई ऐसी बानि ॥०॥
नैक निहारत पियाजु के मुष तन छूटि गई कुल कानि ॥१॥

राणेजी विष रो प्यालो भेज्यो मैं सिर लीनी मानि ॥२॥
मीराँ को गिरधर मिले हो पूरबली पहिचानी ॥३॥

अनन्यता ६०

राणाजी म्हें तो गिरधर रा गुण गास्याँ ।
गुरू प्रताप साधांरी संगत सहजैं ही तिर जास्याँ ॥०॥
कथा कीरतन सुण निस बासर, महाप्रसाद ले पास्याँ ।
म्हारे तो पण चरणामृत को, नित उठि मंदिर जास्याँ ॥१॥
लोक लाज की काण न मानाँ, रामतणाँ गुण गास्याँ ।
नाँव अमोलिक अमृत पीकै, सिर के साटे लास्याँ ॥२॥
तुम हर माँ उमा म्हारे उपर, विष रो प्यालो पास्याँ ।
जन मीराँ गिरधर के उपर, पीवत मन ना दुखास्याँ ॥३॥

वैराग्य ६१ (गुज०)

बरमाला तो विट्ठल वरनी, छुटे छेड़े फरिये रे राणाजी ।
वर तो विट्ठल वर ने वरिये, सुणोने लाज कोनी धरिये ॥०॥
कागड़ानी बुद्धि काढ़ी, माणिक मोती चरिये रे राणाजी ॥१॥
सोना रूपा सघला तजिया, तिलक तुलसी धरिये रे राणाजी ॥२॥
चीर पटोला सघळा तजिया, छाला अंगे धरिये रे राणाजी ॥३॥
शालिग्राम नी सेवा करिये, संत समागम करिये रे राणाजी ॥४॥
हरतां ने फरतां समरण करिये रे, संतनी साथे फरियेरे राणाजी ॥५॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित धरिये रे
राणाजी ॥६॥

ज्ञान ६२

में तो रामजी रंगीला बर पाया ए माय । अमरापुर सासरो ॥०॥
ध्रुव प्रह्लाद अे दो जानी, गणपत जान सवारी ए माय ॥१॥

नारद मुनी दै बडबीरो, म्हाने ग्यान की चुनड़िया ओढाई
ए माय ॥२॥
शिव सनकादिक दोई मामा, म्हाने ध्यान को मोंसालो पेराय
ए माय ॥३॥
अमरलोग में बाजा बाजा, म्हारी मीरांबाई परण पधारया
ए माय ॥४॥

स्वजीवन ६३

में तो छोड़ी छोड़ी कुल की लाज रंगीलो राणो कांई करशे
माणा राज ॥०॥
पाव में बांधु'गी में घुघर हाथ मां लउंगी सितार ।
हरि के चरण आगे नाचती रे कांई रीझेगो कीरतार ॥१॥
जेर को प्यालो राजाजी अे भेज्यो, मीरांबाई हाथ ।
करी चृणामृत पी गई रे श्री डाकोरजी नो प्रसाद ॥२॥
राणाजी अे रीस करी भेज्यो जेरी नाग असार ।
पकड़ गले बीच डालीयो, कांई होगयो चंदनहार ॥३॥
मीराँ को गिरधारी मिलिया जनम जनम भरतार ।
में तो दासी जनम जनम की कृष्ण कंथ भरतार ॥४॥

पदों के शब्दार्थ-भावार्थ-विशेष आदि

१—हटकी = रोका । जैसे ....बटकी = अति सूक्ष्म बट बीज का कालान्तर में ज्यों विशाल वृक्ष विस्तृत हो जाता है त्यों । ठौर = ठिकाना । जल की ....रटकी = जल में घुलने पर ज्यों धागे की गांठ को सुलझाना अत्यन्त कठिन हो जाता है त्यों जिह्वा का हरि नाम रटने का स्वभाव ऐसा परिपक्व हो गया है कि अब छूट नहीं सकता । झटकी = चेष्टा की । घोल मठोल = निंदा युक्त हंसी ठट्ठा । बानी घट घट की = प्रत्येक के मुख से भिन्न भिन्न चर्चा सुनाई देती है । सब ही ....पटकी = सबने तो अपनी लोक लाज सिर उठा रखी है और मैंने उसे घर पटक दिया है । प्रेम लटकी = प्रेम मग्न होकर । मदकी ....लटकी = मत्त गजेन्द्र के समान प्रेम मतवाली होकर विचरती हूँ ।

पाठान्तर:—

डोलत गज मत्त जे से सुध न रहे मटकी ।
प्रेम की उरगांठे परी कोटि बार झटकी ॥२॥
अब तो सोच करत काहे ऊर छाप लटकी ।
मीराँ के प्रभु गिरीधर बिनु जानत को घटकी ॥४॥

२—थयुं खारूं = खारा होगया । झांझवाना नीर जेवुं = मृगमरीचिकावत् । हवे = अब ।

अधिक चरण पाये जाते हैं :—

संसारीनु सुख काचुं, परणीने रंडावुं पाछुं ।
व्हे ने घेर शीद जइयेरे .... ॥१॥
परणुं तो प्रीतम प्यारो, अखंड सौभाग्य म्हारो ।
रंडा पा नो भय टाळ्यो रे (चौरासी फेरो निवार्यो रे)
लोक लाज दीधी बारी रे ॥२॥

व्हाला म्हारा ब्रजवासी दर्शन द्यो अविनाशी ।
प्यासी छुं हुँ दीन दासी रे ॥३॥

विशेषः—इस पद का सारांश यही कि एक बार प्रभु-प्रेम में आसक्ति हो गई कि फिर सांसारिक सुख-दुःख में मोह नहीं रह पाता एवं मन निर्द्वन्द्वावस्था को प्राप्त हो जाता है।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥गीता–६–२२॥

"और परमेश्वर की प्राप्ति रूप जिस लाभ को प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता है और भगवद् प्राप्ति रूप जिस अवस्था में स्थित हुआ योगी बड़े भारी दुःख से भी चलायमान नहीं होता है।

वास्तव में भगवद् प्रेम की प्राप्ति हो जाने पर–उस दिव्य सुखानुभव के प्राप्त होने पर संसार के सब विषय नीरस जान पड़ते हैं। तब कैसे भी महान संकट में चित्त विचलित नहीं होता।

३–चौरासी को वालमो=चौरासी लक्ष योनि से त्राण पाने के लिये अर्थात् जन्म मरण के चक्र से छूटने के लिये प्रभु को उद्देश्य करके रचा हुआ पद गीत।

५—कूड़ो=नाशवान। लख·········बार=चौरासी लक्षयोनि में कई बार भ्रमण किया।

६—हेली=सखी। सुरत=चित्तवृत्ति, ध्यान। लगनी लहँगो=लगन रूपी लहँगा। हेली·········लागी=उस अविनाशी पुरुष–अखंडवर प्रभु से लगी हुई मीरांबाई की चित्तवृत्ति ही वास्तव में सुहागिन है। पोलपर=द्वार पर। नकबेसर=नाक आभूषण। मोरचा=मनुष्य योनि। छिन में·········विगोय=क्षण भर में नाश कर दिया।

८—भावार्थः—रैण पड़ै············रिझाऊँ=चित्त के सहज स्थिर होने जैसी शान्त रजनी की अखण्ड नीरवता में ध्यान द्वारा प्रभु से तादात्म्य साधूँ और प्रातःकाल संसार के जागृत होने के पश्चात् काया वाचादि साधन द्वारा प्रभु को रिझाऊँ यथाः—

या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ गीता-२-६६

"और हे अर्जुन ! संपूर्ण भूत प्राणियों के लिए जो रात्रि है उस नित्य शुद्ध बोध स्वरूप परमानन्द में भगवत् को प्राप्त हुआ योगी पुरुष जागता है और जिस नाशवान क्षण भंगुर सांसारिक सुख में सब भूत प्राणी जागते हैं, तत्त्व को जानने वाले मुनि के लिए वह रात्रि है।"

जो पहिरावे..........बिक जाऊं=प्रभु की इच्छानुसार संसार में जिस किसी भी प्रकार योगक्षेम चलता रहे उसी में ही संतोष मानूं यही क्या संसार के समस्त सुखों के बदले में उनके लिए स्वयं भले ही बिक जाऊँ पर जन्मान्तर की प्रीति को एक क्षण के लिए भी न छोड़ूँ।

पाठान्तरः—

गिरधर के घर जाऊं राणा मैं गिरधर के घर जाऊं ॥
गिरधर मेरो में गिरधर की, प्रीत करी रिझाऊँ ॥०॥
रेन पड़े तब जाऊं पीया संग, भोर भये उठ आऊं ॥
रात दिना उन संग रंग खेलुं देखत रूप लोभाऊं ॥१॥
जीस वीध राखे उस बीध रहुँ में जो देवे सो खाऊं ॥२॥

६—पाठान्तरः—चरण उत्तरार्ध—१—

बाण विरह का लागा गुरां का
आन हिये बिच खटकी ।

३ चरण का पूर्वार्द्धः—

साध हमारे मैं साधन की
करम लिखायो साध सँगत में । साधाँ के संग भटकी ।

१०—भावार्थः—अँसुवन.........होई:—

अपने हृदय में बोई हुई प्रेम की बेलि निरन्तर विरहाश्रु सिञ्चन द्वारा विकसित और पल्लवित हो चुकी है जिसका आनन्द फल प्रत्यक्ष ही है अर्थात् संसारी जन जिन विषयों में आनंद को ढूंढ़ने का

निरर्थक परिश्रम करते हैं उनका त्याग करने से ही आनन्द की प्राप्ति होती है। दूध की.........कोई—शास्त्रादिकों का पर्याप्त पर्यावलोकन करने के पश्चात् विवेकवान पुरुष तो दृढ़ता से उनमें से सार वस्तु भक्ति को ही ग्रहण करते हैं जब कि विषयासक्त जन वस्तुतः नीरस होते हुए भी सांसारिक सुखों की ही कामना करते हैं।

सद्सद्वस्तु विवेक की कसौटी पर चढ़ने पर वास्तव में विचारवान् के लिये सांसारिक समस्त सुख, सर्व दुखों के मूल मात्र ही जंचते हैं, इसीलिये कहा है:—

आलोड्य सर्व शास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणो हरिः॥"

तथा:—

परिणाम ताप संस्कार दुःखैर्गुण वृत्ति विरोधाच्च सर्वमेव दुःखं विवेकिनः (यो० सू० २-१५)

११—भावार्थः—जब थी.........खोलो = अहंकार ग्रस्त जीव भगवद्दर्शन का अधिकारी नहीं हो सकता, साधन द्वारा परमार्थ में बाधक उस अहंकार को निर्मूल कर पूर्ण रूप से अपने को नम्रतायुक्त बना लेने पर ही हृदय के पट खुल कर वह भगवदानुभव कर सकता है।

भावार्थः—सुरत.........सावन की = चित्तवृत्ति के स्थिर होने पर-ज्ञान दृष्टि के प्राप्त होने पर ही भगवान के लीलाक्षेत्र में जीव का प्रवेश होता है और तभी श्रीकृष्ण भगवान की साँवरी छटा की झांकी होती है, बिजली की चमक समान चिन्मय स्वरूप के दर्शन होते हैं।

१३—मुद्रा = योगी के ध्यान करते समय कानों में लगाने की गुण्डी। कींगरी = सारंगी के प्रकार का ग्रामीण याचकों का एक तन्तु वाद्य विशेष (रावण हत्था)। रसना = जिह्वा।

भावार्थः—जिन......वरूंगी = जिस साधन द्वारा प्रभु की प्राप्ति होती है उसी साधन को ग्रहण करूंगी। सील संतोष.....रहूंगी=शील संतोषादि सात्विक गुणों युक्त और शीतोष्ण सुख दुःख हानि लाभ आदि

सकल द्वन्द्वों में सम बुद्धि समता के साधन द्वारा ही परमात्व तत्त्व की प्राप्ति होती है।

विशेषः—कबीर जी के पदों में भी यही भाव पाया जाता है। देखियेः—"शील और सौच (शौच) सन्तोष साही (साक्षी) भये, नाम समसेर तहं खूब गाजै" तथा "काम क्रोध मद लोभ निवारो आस तजो फल की। शील संतोष दया उर राखो कह कबीरा दिल की॥" आध्यात्मिक साधन में 'निष्काम कर्म' और द्वन्द्वों में समता युक्त बुद्धि का बहुत अधिक महत्त्व है। श्री गीता जी में भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी ने यह आदेश किया है:—

"योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वाधनञ्जय।
सिद्ध्य सिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥"
(२-४८)

हे धनञ्जय! आसक्ति को त्याग कर सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धि वाला हो कर योग में स्थित हुआ। कर्मों को कर। यह समत्व भाव ही योग नाम से कहा जाता है" तथाः—

"सुख दुःखे समे कृत्वा लाभा लाभौ जया जयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥" (२-३०) गी०

"यदि तुझे स्वर्ग और राज्य की इच्छा न हो तो भी सुख-दुःख, लाभ--हानि और जय--पराजय को समान समझ कर उसके उपरान्त युद्ध के लिये तैयार हो। इस प्रकार युद्ध करने से तू पाप को नहीं प्राप्त होगा।" योग साधन की सिद्धि का परम रहस्य भी समता में ही निहित है यथाः—

"चन्द्र सूर्य दोऊ सम कर राखूँ—सुखमन सेज बिछाऊँ।
कहत कबीर सुनो भई साधो ज्योत से ज्योत मिलाऊँ॥
(कबीर)"

ईड़ा और पिंगला की समता को साध कर सुषुम्ना का सूक्ष्म साधन सिद्धि होने पर ही साधक को अलौकिक अनुभव होता है।

१५—भसे=भोंकता है। नाथाय=नहीं होती। फोक=वृथा। ज्यां=जहाँ।

१६—वर्या=वरण किया। सुषुम्णा=नाड़ी विशेष। नावलीयो=नवलकिशोर। दीएर=देवर। दीकरी=कन्या। चित्रकुटने=चित्तौड़ को। दहाडानो=दिन का। बेउ=दोनों।

भावार्थः—प्रकृति त्रिगुणात्मक है। जीव मात्र में दैवी और आसुरी भावों का निवास है। किसी में रजोगुण तमोगुण का आधिक्य है तो कहीं सात्विकता की विशेषता। इन संस्कार विशेष के कारण कोई प्राणी तो संसार के बन्धन में विशेष रूप से जकड़ा रहता है तो कोई परमार्थ पथ पर वैराग्य की ओर आकृष्ट होता । इसी को लक्ष्य करके मीरांबाई ने कहा है:—दिएर ने·········संसार रे।

अधिक चरणः—

सोनाना बाज तारा, काम नहि आवे राणा।
तुमड़ी तो उठावी अम लेईशु रे, राणाराज ॥

पाठान्तरः—

सोनाना दोरा तारा, काम नहिं आवे राणा।
तुलसीनी माला घाली लईशु, राणाराज ॥१॥
हीरना चीर तारां, काम नहिं आवे राणा।
भगवां ते वस्त्र पहेरी लईशु, राणा राज ॥३॥
मोटा मोटा मेहल तारा, काम नहिं आवे राणा।
झांपे तो झुपड़ीए, अम रही शुं रे, राणा राज ॥४॥
रोही दासनी चेली मीरांबाई, ऐम बोल्यां राणा।
मारे करवो साधु केरो साथ, राणा राज ॥६॥

और पाठान्तरः—

हे मोती केरी माला राणां नथी मारे पहर वांरे ॥
तुलसी री माला पहरी फरशू ॥१॥

हे हीरना चीर राणा ! नथी मारे पहरवा रे।
धोला पहरीने अमे फर शूं ॥३॥
हे घऊं रे चोखलिया राणा । मने नथी भावता रे।
टुकड़ा मांगी ने अमे खईसुं ॥५॥

१८—आदू=आदि की। सरधा सेती=श्रद्धा सहित। मुगता का=मुक्ति के। पोलिया=द्वार पाल।

१६—यह संसार·········जास्याँ=संसार के विषय बाड़ के काँटे के समान परिणाम में दुःखदाई होने से उनसे मुँह मोड़ लूंगी। निरख·········गास्याँ=संसार की असारता का अनुभव पाकर हरि गुण गान करती रहूंगी।

अधिक चरणः—

राणाजी रूसैला तो गाम रखैला, हरि रूठयां कुमलास्यां ॥

२०—परहरी=छूट गई। पामी=पाई। थरथरी=काँप उठी। ठेकाणे=स्थान पर। ठरी=स्थिर हो कर।

२३—राबड़िया=मक्की के आटे से छाछ में पकाया हुआ पदार्थ विशेष।

भावार्थः—चूंदड़ी·········कोय=नाना प्रकार के सांसारिक विषयों में चित्त के उलझने से चित्त की वृत्तियाँ रजोगुण व तमोगुण के रंगों में रंगी जा कर दुःख का कारण बनती हैं परन्तु एक मात्र श्री कृष्ण भगवान के श्याम रंग में मन के रंग जाने के पश्चात् फिर उस पर कोई दूसरा रंग चढ़ नहीं सकता और न उस पर कोई धब्बा लगने का भय ही रहता है।

२६—**विशेषः**—ठीक ये ही भाव महाराष्ट्रीय भक्त कवि अमृत राय के इस पद में देखिए:—

अशाश्वत संग्रह कोण करी।
कोण करी घर सोपे माड्या। झोंपड़ी हेंचि बरी ॥

चिरगुट चिंध्या जोडुनि कंथा। गोधड़ी हेंचि बरी ॥
नित्य नवें जें देईल माधव। भक्तूं तेंचि घरी ॥
अमृत क्षणों मज भिक्षा डोहळे। येति अश्या लहरी ॥

३३—मजीठी = मजीठ का रंग जो चढ़ने पर उतरता नहीं।

३४—कूड़ो = झूठे, भगवद् विमुख।

भावार्थः—तनकी .... सूरो = ज्यों वीर योद्धा अपने प्राणों का मोह छोड़कर रण क्षेत्र में कूद पड़ता है त्यों देह और सांसारिक विषयों की आसक्ति को छोड़कर भक्ति मार्ग को स्वीकार किया है। विचारिए:—

'भक्ति शूरवीरनी साची रे, लीधा पछी केम मेले पाछी।'

भोजाभगत (गुजराती)

विशेषः—वास्तव में देखा जाय तो रणांगण में अपने प्राणों को बलि वेदी पर चढ़ाने को कटिबद्ध पुरुषार्थी योद्धा से भक्त का कोई कम महत्त्व नहीं। इसी भाव को लेकर ही कहा है:—

"जननी जण तो भक्त जण, या दाता या शूर।
नहीं तो रह जा बांझ ही, मत खोवे तू नूर ॥"

३५—भावार्थः—लाज सरम .... गली = संसार की लाज शरम आदि को छोड़ कर ज्ञान मार्ग को स्वीकार कर लेने वाले साधक पर मान-अपमान के प्रसङ्ग आते हैं परन्तु उनसे विचलित न होते हुये आगे ही बढ़ते रहना चाहिये। द्वन्द्वातीत होने पर ही लक्ष्य की प्राप्ति होती है। गुरु नानक ने भी यही कहा है:—

'साधो मन का मान त्यागो।
सुख दुःख दोनों सम करि जाने और मान अपमाना।
हर्ष शोक ते रहे अतीता तिन जग तत्व पिछाना ॥

ऊंची .... कली = सुषुम्ना नाड़ी में जो चक्र हैं वे ऊँची अटरियाँ हैं, कुण्डलिनी शक्ति लाल किवड़ियाँ हैं, निराकार चिन्मय

स्वरूप के दर्शन होना निगुर्ण सेज पर पोढ़ना है, पञ्च तत्त्वों के नाड़ी पुञ्ज पचरंगी झालर है । इस योगस्थिति का अनुभव कर साधक के रोम रोम में आनन्द की लहरें उठती हैं। बाजूबन्द..........खरी= सांसारिक आभूषणों के जैसे योग साधक के लिये उसी योग्यता के गहने होते हैं जैसे, आसन लगा कर मूल बन्ध करना व हाथों को यथा स्थान रखना-बाजूबन्द, कडूला, जालन्धर बन्ध करके प्राणों को ब्रह्मरन्ध्र में ले जाकर दिव्य अनुभव करना-सिन्दूर मांग भरी और श्वासों में ही अजपा जाप करना-सुमिरन थाल है। इस प्रकार शृंगार धारण कर अनन्य प्रेमिका निर्भय हो दृढ़ता पूर्वक अपने प्रियतम को रिझाने निकल पड़ी है ।। सेज.........सरी=समस्त संसार के सार रूप सुषुम्ना साधन प्रधान योग (अष्टांग योग) मार्ग को जब स्वीकार कर लिया तब उसे अखण्ड साधन द्वारा हृदयंगम करने के लिए विलम्ब क्यों ? इसके लिए इसी क्षण-आज के दिन की ही घड़ी शुभ है अतएव हे राणा, तुम्हारी मेरी नहीं बनेगी। तुम्हारा और मेरा पथ भिन्न-भिन्न है ।

विचारिए:—इस पद के दूसरे व तीसरे चरण का भाव देखिए:—

मन तुम चढ़लो गगन अटरिया ।।०।।
गगन अटरिया में आप ही आप जहाँ बैठे पुरुष पुरणिया ।।
ओहं सोहं बाजा बाजे, शब्द उठे झनकरिया ।।
शून्य शिखर पर झालर झलके, प्रेम की लगी किवडिया ।।

विचारिए:— (कबीर)

जे दुःख थाय ते था जोरे रूड़ा राम ने भजतां ।।
पिंड पड़े तोये पडवारे देजो। जीव जाये तो जाजोरे ।।

भक्त रणछोड़ (गुजराती)

३७—भावार्थ:—आधे जोहड़.........धार=अपनी आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग में विरोध और विघ्न-बाधाओं की ओर संकेत कर कहा गया है:—प्रथम बाधा सांसारिक बन्धन, लोक व कुल की मर्यादा एवं लोक-निंदा आदि की है, दूसरी मन के संकल्प-विकल्प अर्थात् चित्त

की अस्थिरता आदि की आभ्यंतरिक और तीसरी राणाजी की विरोधी शक्ति-दमन नीति की। मीरांबाई को इन सब के साथ संघर्ष करना है। काम क्रोधादि आसुरी सम्पत्ति रहित हो कर शील आदि दैवी गुणों के शस्त्र धारण करने वाली मीरांबाई ही अंत में प्रभु कृपा से उक्त संघर्ष में विजय प्राप्त करती है और उसके आगे राणा की विरोधी शक्ति को घुटने टेक देने पड़ते हैं।

३८—अधिक चरण:—

राज करंता नरक पडंता, भोगी जोरैं लीया।
जोग करंता मुक्ति पडंता, जोगी जुग जुग जीया॥

३९—बाजीगर=जादूगर। मेरी.........गोख्यो=ज्यों जादूगर अपनी ऐन्द्रजालिक क्रियाओं से दर्शकों को मुग्ध कर उनके चित्त को उसी में स्थिर कर देता है त्यों, संसार की ओर से हट कर मेरी प्रीति निरंतर प्रभु में लगी रहती है।

४२—प्रेम.........धोई=प्रेमाश्रुधारा से सांसारिक विषय रूप विष वल्ली को धो डाला अर्थात् उसके संस्कार बीज को ही मिटा दिया।

पाठान्तर:—

ंत हमारे शीश ऊपर, राम हृदय होई।
मेरे तो एक राम नाम, दूसरा न कोई॥०॥

४५—गरक=मग्न। तौरेंड़े=तुम्हारे। बकंदी=बिक गई। ब्रेहन =विरहिन। सिंध=जाने वाले। मिलंदी=मिल गये। दोउ.......मिलंदी हो=दोनों का योग मिल गया। जो.........जंदी हो=जो, तुम प्रीतम नहीं मिलोगे तो मैं (विरह-प्रवाह में) बह जाऊँगी। लोयना=नेत्र। छंदी=अनुगत होकर। रूप.........छंदी हो=तुम्हारे रूप पर नेत्र लुभा गये जिससे मैं तुम्हारी अनुगत हो कर तुम्हारे ही संकेत पर चलती हूँ। गुजि की=हृदय की बीती हुई, रहस्य की। ऊँलजूं=कहते लाज आती है।

४६—पर.........बाजी=खेल में बाजी हार कर तन मन न्यौछावर कर दूंगी अर्थात आत्म समर्पण कर तद्रूप हो जाऊँगी।

४७—अणजायो=अजन्मा, अनादि। बेनी=सहेली। टाणुं=अवसर। मल्युं=मिला। सहियर=सखी। मोंघुं=महँगा। नाणुं=संपत्ति। वार=देर। हवे=अब। कोई वेद.........छोले=कोई शास्त्र की बातें करता है तो कोई नाना पंथ बताता है अथवा निंदा स्तुति करता है। शाने=क्यों। बंगड़ियो=चूड़ियाँ। भाँगे.........धरिये=भक्ति की ऐसी निराकार चूड़ियाँ पहने जो कभी टूट फूट नहीं सकती और न दिखाई देती। फाटे.........धरिये=प्रेम की ऐसी निर्गुण साड़ियाँ पहने जो कभी फटती नहीं, जीर्ण नहीं होती, न मैली होती है और न उसका रंग ही उड़ता है। सुख.........करिये रे=संत जन रूप ऐसे सुसराल वालों से संबंध बाँधें कि जहाँ सुख दु:खादि द्वन्द्वों की धूप छाँह नहीं और न जहां संसार के क्लेश भव ताप हैं। होडी=नाव। स्हेजे=सहज में। भर दरिये.........करिये रे=भरे समुद्र में अर्थात् भवसागर के बीच में निर्भय और आनंद पूर्वक रहें।

५०—रळी कराँ=क्रीड़ा करें। परघरगवण=दूसरों के घर आना जाना, संसार में आवागमन! पोति=माला की कांति। बिराणे=पराये। निवाँण कूँ=जल प्रभाव, नीची उपजाऊ भूमि। कालर=बंजर ऊसर भूमि। सिधारताँ=जाने से। बालबाहे=वल्लभ, प्रियतम।

विशेष:—मोक्ष अथवा निज धाम की प्राप्ति यही जीव का अपना घर-स्वरूप-स्थिति है। इसे प्राप्त करने के लिए पर घर अर्थात् नाशवान संसार की ओर से चित्तवृत्ति को खींच लेना चाहिए, क्योंकि विषय मात्र परम आकर्षक होने पर भी मिथ्या और भव बन्धन में फँसाने वाले हैं अतएव वृत्ति रूप सहेलियों को यह सिखावन दी जाती है कि वे नीरस होने पर भी अपने ही प्रियतम-पति की वस्तु सामग्री (भगवद् साधन) से ही संतुष्ट बने रहना चाहिये। यथा:—

श्रेयांन् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ गीता-३-३५

"अच्छी प्रकार आचरण किये हुए दूसरे के धर्म से गुण रहित भी अपना धर्म अति उत्तम है अपने धर्म में मरना भी कल्याण कारक है और दूसरे का धर्म भय को देने वाला है।"

पराई वस्तुओं का भाव झूठा माणिक, मोती, जोति, आभुषण छैल, बिराणो इन शब्दों द्वारा व्यक्त किया है जब कि साँची पिया जी री पोति, गूदड़ी, लूण अलूणो साग, कालर, कोढ़ी कुष्टी वर हीणो इन शब्द प्रयोग द्वारा 'अपने घर' का भाव बताया है।

५१—बड़े............लागी=बड़े घर से (प्रभु से) सम्बन्ध हो गया, प्रभु से लगन लगी। उणारथभागी=अभिलाषा पूर्ण हो गई। छीलरिये=छीलर, तलैया। डाबरिये=बरसाती जल भरे गड्ढे पर। हाव्याँ मोव्याँ सूँ=नौकर चाकरों से। सीख=परामर्श, मन्त्रणा। जाब करूँ=सम्पर्क स्थापित करूँ। दरबार=सरकार, स्वयं स्वामी से। काच कथीर=काँच व राँगा।

विशेषः—यह ज्ञान का पद है। संसार के प्राणी मात्र त्रिगुणमयी प्रकृति में बँधे होने से अपने २ गुण संस्कारों के अनुसार कर्म करते हैं। भगवान् का पूजन व साधन भी प्राणियों द्वारा इन्हीं गुणों की योग्यता-नुसार होता है। श्रीगीताजी के अध्याय १७ में इसी भाव का चौथा श्लोक है :—

यजन्ते सात्विका देवान्य त्तरत्तांसि राजसाः।
प्रेतान्भूत गणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः॥

भावार्थः—सात्विक पुरुष देवों को, राजसी लोग यत्त और रात्तसों को तथा दूसरे तमोगुणी प्रकृति के मनुष्य भूत और प्रेतों को पूजते हैं।

जिसके जीवन का लत्त्य एक मात्र भगवत्प्राप्ति ही है उस साधक की आध्यात्मिक उन्नति में तो ये तीनों ही गुण बाधक हैं। सात्विक गुण निर्मल प्रकृति का होने पर भी सुख की आसक्ति और ज्ञान के अभिमान से बाँधता है, कामना मूलक रजोगुण जीव को कर्मों और उसके फल की आसक्ति से बाँधता और अज्ञान मूलक तमोगुण जीवात्मा को प्रमाद, आलस्य और निद्रा के द्वारा बाँधता है। श्री गीता जी के १४ वें अध्याय के श्लोक ५-६ में भगवान् ने यही आदेश किया है।

मीरांबाई ने भी ये भाव इस पद के १, २, ३ चरणों में व्यक्त किये हैं। तमोगुण के लिए 'छीलरिये' 'हाल्यां मोल्यां सूं' और 'काच कथीर सूँ' इन शब्दों का प्रयोग किया है। रजोगुण का भाव 'डाबरिये कुण जाव,' 'सीख नहि सिरदार,' 'लोहा चढे सिर भार,' इन वचनों द्वारा प्रकट किया है और 'गंगा जमना सूं,' 'कामदार सूं' व 'सोना रूपा सूँ,' इन कड़ियों द्वारा सत्व गुण का निर्देश किया है। इन तीन गुणों से परे-त्रिगुणातीत स्वयं परमात्मा का भाव मीरांबाई ने, 'मैं तो जाय मिलूँ दरियाव,' 'मैं तो जाब करूँ दरबार,' और 'म्हाँरे हीराँ रो बोपार' इन शब्दों से व्यक्त किया है।

५२—झिरमिट=एक प्रकार का खेल। पचरंग............ गाती=पंचतत्वात्मक नर देह को प्राप्त करके जीवात्मा जीवन रूप लीला क्षेत्र में प्रवेश करता है। यहाँ पर दैवी और आसुरी भावों के द्वन्द्व होने के पश्चात्, प्रभु के प्रति अनन्य प्रेम व लगन की साधना द्वारा जीव अपने प्रियतम प्रभु को पाने में समर्थ होता है। प्रभु के आनन्द मय स्वरूप के साक्षात्कार कि दिव्यानुभव भी जीवात्मा तभी कर सकता है जब कि वह ध्यान साधन में अपने आपको खो देता है। अपने स्थूल शरीर की सुध-बुध भूल जाता है। कोई के.........आती जाती= परमात्मा घट घट व्यापी है उनकी प्राप्ति बाह्य साधनों की अपेक्षा अंतरंग साधनों से ही होती है। धरण=धरणी, पृथ्वी। अकासी=आकाश। चंदा.........अविनासी='यद् दृष्टं तन्नष्टम्' इस न्याय से समस्त पंचभूतात्मक प्रकृति नाशवान है परन्तु एक मात्र परमात्मा ही अविनाशी और नित्य है। और सखी.........दिन राती=धन, बल, रूप और सत्ता आदि की प्राप्ति होने पर प्राणियों को गर्व-मद होता है किन्तु प्रभु के प्रेम में मत्त प्रेमी भक्त के लिये इन सांसारिक वस्तुओं में से किसी की भी आवश्यकता नहीं होती। इस प्रभु-प्रेम रूपी मद को पीकर प्राणी निर्भय, निश्चिन्त और धन्य हो जाता है। सुरत.........दिन राती= चित्त की एकाग्रता द्वारा, प्रभु-प्रेम की स्मृति और अखण्ड ध्यान को साधने से ही आत्म ज्ञान की प्राप्ति होती है और तभी परमात्मा के ज्योतिर्मय दर्शन प्राप्त होते हैं। सैन=संकेत। जाऊँनी......लगाती= संसार की आसक्ति को मिटा कर और स्वर्ग की कामना को त्याग कर साधक को एक मात्र भगवद् प्राप्ति का ही लक्ष्य रखना चाहिये।

पाठान्तरः—ओरों के पिया·········लिख ।

मेरो पिया मेरे निकट बसत है, मैं कह न सकूं सरमाती ॥२॥

अधिक चरणः—

वर दूल्हौ मोहि व्याहन आवै, आप कृष्ण ब्रजवासी ।
मीरां कै गिरधर मन मान्यो, मैं स्याम सुन्दर की दासी ॥

५३—हमरे·········छूटै=हमारी आप से प्रीति लग गई है सो कैसे छूट सकती है । निहाई=घन । जैसे हीरा·········आई=जिस प्रकार से हीरा घन की चोट खा खा कर भी वास्तव में हीरा ही बना रहता है उसी प्रकार हम भी वियोग व्यथा आदि प्रीति के दुःख सह-सह कर आपकी बनी हैं । जैसे सोना·········लागा=ज्यों सोना सोहागे के साथ मिलकर एक रूप हो जाता है त्यों हमारा मन भी आप में तद्रूप हो गया है । जैसे कमल·········मानी=ज्यों जल के बीच में कमल नाल रहती है त्यों हमारा मन भी आप ही में स्थित है । जैसे चंदहि·········जोरा=ज्यों चकोर चंद्रमा की ओर टकटकी लगाये हुये अपने आपको खो देता है त्यों हमारा चित्त निरन्तर आप ही की ओर लगा रहता है । जैसे मीराँ·········कुञ्ज बिहारी=ज्यों मीराँ अपने प्रियतम गिरधर के प्रेम में ही निमग्न है त्यों ही उस प्रीति को हे कुञ्जबिहारी, आप भी निभाते रहना ।

५५—दीप·········रसी=ज्यों अग्नि और दीपक अभिन्न है त्यों मीराँ भगवत्प्रेम, भगवन्नाम में लवलीन हो गई । खाँड=खड्ग । सब्द·········धसी=चित्त वृत्ति दिव्य अनहदनादाम्बुधि में डूब गई । खाँड धार·········फँसी=भक्ति रूपी खड्ग की धारा ऐसी निराली है जिसने यम की फाँसी को भी काट डाला ।

विचारियेः—

खबरदार मन सुआ जी, खांडानी धार चडवुं छे ।
हिम्मत हथियार बांधी रे, सत्यनी लड़ाईए लडवुं छे ॥

५८—पाठान्तरः—

नन्दलाल सु मेरो मन मानो हाशी काहा करेगो कोई री ।
अब तो चरन कमल लपटानी जो भावे शो हो ए री ॥१॥
माय रीशाए बाप पुनी बरजे हशे बटऊ आ लोकरी ।
अब तो आंने खरी प्रीत बांधी बीधना लखो शंजोगरी ॥२॥
जो मेरो एहलोक जाएगो हरी पर लोक न जाए री ।
नंद नंद कु कबहु न छारू मीलूगी नीशांन बजाए री ॥३॥
तंन मंन धंन यौवन प वारू श्री बल्लभ भेस मुरार री ।
मीराँ प्रभु गिरधर के उपर शरबस देउगी वार री ॥४॥

६२—मचाया फैल=झूठा प्रपंच फैलाया । ठैल=टहल, सेवा । सैल=सैर, आनन्द-विहार । आनन्द............म्हैल=मीराँ कहती है कि जिसे आनंद स्वरूप गिरधर जैसे स्वामी की प्राप्ति हुई, उसे लौकिक और पारलौकिक वैभव की कोई कमी नहीं ।

६५—कुजनि=कुब्जा के । बसाती=बसने वाले ।

७३—परणीशुं=विवाह करूँगी । मींढल=मौड़ । मांडवो=मंडप । पीठी=विवाह के समय का उबटन । चोली=मला, लगाया । परणेतर=विवाहित दंपति ।

७४—सरीखा=जैसे । वाजेफरे=निश्चिन्त फिरते हैं, चैन की वंशी बजाते हैं । माणेक=माणिक्य । ठरे=लगे । कोट = शरीर पर, गले में ।

७५—मांडवो=मंडप । धोरी=धुरीण ।

अधिक चरण :—

चारे चारे जुग की राणा चोरियाँ चित्रवी रे हां ।
वहालम जी हूँ तो मंगल वरती छूं बेने चार ॥

पाठान्तरः—बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हां।
वहालम जी हूँ तो तमने भजीने थई छूं न्याल ।।५।।

७६—कीध=किया। बेली=सहायक। माथुं=शिर। पासंगमां मेली=समर्पित करके। तणी=की। शिर............गाजे=प्रभु का वरद हस्त शिर पर धरा हुआ है।

७७—मेरे.........बनी=मन ने यह ठान लिया। अवरजो= अन्य कोई।

७८—पुत्री.........तारो=आँख का तारा।

७९—लाजुं=लज्जा। केनुं=किसकी। मोलाजा=संकोच, विचार। हाथेवालो=हथलेवा, विवाह-संस्कार। चोरी=जहाँ विवाह-संस्कार होता है वह शास्त्र विधि युक्त बनाया हुआ स्थान। चडीए= आरूढ़ होवें। आला ते नीला=सुन्दर, हरे। वांस=बांस। बढावुं= कटावें। फेराफरीए=भाँवरी लेवें।

८१—ओलो=आश्रय, आधार।

८२—कूड़ो=बुरा, नाशवान। रूड़ो=सुंदर, समर्थ। काण=कान, मर्यादा। सिरपत=श्रीपति, प्रभु। लईयो=प्राप्त हुए। जब.........सार= सोच समझने योग्य बनने पर। लिगन=लगन, निष्ठा।

८३—सजन.........राची=स्वजन, कुटुम्बी आदि संबंधीजन एक मात्र हरि को मान कर आनंद मग्न रहती हूँ। नहीं.........काची =प्रभु प्रेम में विचलित होने वाली नहीं।

८४—वातोथाय=बातें होती हैं। भसे=भोंकता है। भजन.........फोक=(लोक निन्दा के भय से) भजन करना छोडूं तो यह जन्म वृथा जाता है। मनमां.........नाम ने=मन में नारायण (प्रभु का) नाम स्मरण करना। प्रकट.........गाम=प्रकट रूप से भजन करोगी तो मेरा राज छोड़ जाना। नगरीना.........चाल=नगर जन मीराँ को समझाते हैं कि अपनी यह (भजन की) रीति छोड़ दो।

८७—संघात=साथ। हुंतो .... संघात=मैं मेरे प्रियतम के साथ विवाहित हुई हूँ अर्थात् प्रभु से प्रेम का नाता जोड़ा। वहालमजी =प्रियतम। बीजाना .... बांधु=और के साथ लग्न कंकण नहीं बँधवाऊँगी अर्थात् संसार की ओर चित्त नहीं लगाऊँगी। घऊं=गेहूँ चोखलिया=चावल। अमे .... खाईं शुं=भिक्षा के टुकड़े माँग कर खाऊँगी। चोरी=लग्न वेदी। चारे चारे .... बेनेचार=युगों से प्रभु को ही वरण करती आई हूँ, वे ही मेरे जन्म मरण के साथी हैं।

८८—प्रेम .... बोई=प्रेमाश्रु द्वारा (अथवा विरहाश्रु सिंचन कर) भक्ति रूप अमर बेलि बोईं। संत .... होई=संत सदा मेरे सिर पर रहें जिनकी कृपा से राम मेरे हृदय में बिराजे हुए हैं। तंत=तत्व। अंत में से .... सोई=संत शब्द के 'स' को पृथक् करने पर अंत रह जाता है। अंत में से भी तकार को निकाल लेने पर अन् रह जाता है। अर्थात् स अं-सोहम् अथवा अं-ओम्=यही उसका स्वरूप है जो आत्मा-परमात्मा की एक रूपता का द्योतक है।

८९—नैक .... कानि=प्रियतम के मुख की ओर तनिक निहारते ही कुल-मर्यादा छूट गई। मैं .... मानि=मैंने स्वीकार कर लिया।

९०—पण=प्रण, नियम। साटे=बदले में। हर मां उमा=शिव पार्वती। तुम .... पास्याँ=तुम (हलाहल पीने वाले) शंकर और माँ पार्वती की साक्षी में विष का प्याला पीऊँगी।

९१—वरमाला .... धरिए=एक मात्र विट्ठलवर को ही वरण कर, उन्हीं को वरमाला धारण करा कर अर्थात् उन्हें सर्वात्म समर्पण कर, किसी की लाज व संकोच न रखते हुए निर्द्वन्द्व, स्वतंत्र विचरूँगी। कागडा=कौआ। कागडानी .... चरिए=कौए जैसी मलिन, विषयाभिमुखी वृत्ति को छोड़ कर मोती चुगने वाले हंस के समान सात्विक वृत्ति को धारण करना चाहिए।

९२—पद-भावार्थ:—मीरांबाई पति भाव से प्रभु की उपासना करती थी। उस दिव्य भावना की सृष्टि में विचरते हुए उसने अपने

विवाह का एक सुन्दर चित्र खींचा है, जैसे कि नित्य धाम उसकी सुसराल है, ध्रुव, प्रह्लाद व गणेश बराती और नारद मुनि ज्येष्ठ भ्राता है। उसे ज्ञान रूप चुनरी ओढ़ाई गई, शिव-सनाकादिक उसके मातुल हैं जिन्होंने ध्यान का चढ़ावा चढ़ाया और इस प्रकार वाद्य-घोष के साथ वह अपने प्रियतमप्रभु से विवाहित हुई अर्थात् उपर्युक्त भगवान और भक्तों की नामानुरागी विभूतियों द्वारा मीरांबाई ने भगवन्नाम की दीक्षा ली तथा भगवत्प्राप्ति के साधन ज्ञान ध्यान व प्रेम भक्ति आदि की प्रेरणा पाई।

विभाग ५ वर्षा

पृथ्वी का सुजला, सुफला, मलयज शीतला एवं शस्य श्यामला होना अर्थात् प्रकृति का सरसमयी और सफल होने का आधार ज्यों वर्षा ऋतु पर है त्यों मानव जीवन के सफल, सरस और कृतार्थ होने के लिये प्रेमाभक्ति की अखण्ड उपासनाजन्य प्रभु कृपा रूप आनंदामृत वर्षा की परमावश्यकता है।

* भूमिका *

★

वर्ष के बारह मासों में चातुर्मास का विशेष महत्व माना जाता है और उसमें भी वर्षा ऋतु के श्रावण व भाद्रपद इन दोनों महीनों का सबसे अधिक। वास्तव में इस वर्षा ऋतु पर ही बारह महीनों का आधार है और चराचर सृष्टि के जीव मात्र के आरोग्य, सुख, शान्ति, आनन्द और जीवन का यही एक मात्र अवलम्ब है।

भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने उद्धव जी से कहा है कि वर्षा-ऋतु यह मेरा ही स्वरूप है। मेरे स्वरूप का सम्यक् रूपेण अनुभव करना हो तो वर्षा ऋतु की विचित्र लीला का अव-लोकन करो।

> प्रावृट् श्रियं च तां वीक्ष्य सर्वभूतमुदावहाम्।
> भगवान् पूजयाञ्चक्रे आत्मशक्त्युप बृंहिताम्॥
> (श्री भाग-१०-२०-३१॥)

प्राणीमात्र को आनन्द देने वाली उस वर्षा ऋतु की शोभा को निहार कर भगवान् श्रीकृष्ण ने उसकी बड़ी प्रशंसा की। और श्रीकृष्ण के प्रभाव से उस वर्षा ऋतु की स्वाभाविक शोभा और भी अधिक वृद्धिंगत हुई थी।

वास्तव में ही इस ऋतु की महत्ता अलौकिक है। चहुँ ओर हरे भरे दृश्य, नभ में नीले बादल, उनकी चित्र-विचित्र गंधर्व नगर की सृष्टि, उछल-उछल कर वेग पूर्ण बहती नदियाँ, छलकते हुए नाले, श्याम घन घटाओं में रह रह कर चमकती

हुई बिजलियाँ, अपनी न्यारी ही मरोड़ में नृत्य करते मयूरगण, गंभीर मेघगर्जन, छोटे मोटे बूंदों से गिरती हुई वर्षा की झड़ियाँ, ग्रीष्म काल में संतप्त होकर वर्षा की सुधावर्षिणी अनंत धाराओं में परिप्लावित हो संतृप्त हुई धरयित्री, उस पर मानो हरे मखमल के गलीचे बिछाये हों, त्यों उस पर छाईहुई नयन मनोहर हरियाली, सकल दिशा में हरी हरी नई जीवन सामग्री को लिये हुए प्रफुल्लित वृक्ष-तरुवर, लता-बेलि, और फूल-पत्ते, एवं क्रीड़ा-कल्लोल करते हुए उत्साह भरे पशु-पक्षी समुदाय। इनके अतिरिक्त आबाल वृद्धों में उत्साह व प्रसन्नता और युवा नर-नारियों में पूर्ण उमंग व मादकता भरे भाव। इस प्रकार भावों को उद्दीपन करने वाले इन सुन्दर मोहक और मादक विविध दृश्य युक्त वातावरण का जन-मानस पर प्रभाव अवश्यम्भावी है—अमोघ है।

श्री गोस्वामी तुलसीकृत रामायण के किष्किंधा काण्ड में भगवान् रामचन्द्र कहते हैं:—

वरषाकाल मेघ नभ छाये, गरजत लागत परम सुहाये।
लछमन देखहु मोरगन, नाचत वारिद पेखि।
गृही विरतिरत हरष जस, विष्णु भगत कहँ देखि॥

परन्तु वर्षा ऋतु का यह सब वैभव अपनी प्रियातिप्रिय-अभिन्न-हृदय व्यक्ति के संग में ही आनन्द दायक और उल्लास प्रेरक होता है, अन्यथा उसके अभाव में इसका सर्वथा विपरीत परिणाम होता देखा जाता है। विरहाग्नि-दग्ध हृदय को वर्षा का यह सारा सुहावना प्रकृति-सौंदर्य नीरस और नैराश्यवर्धक ही

नहीं अपितु अग्नि में घृत की आहुति के समान प्रज्वालक प्रतीत होता है।

जो भगवान् राम वर्षा ऋतु की स्तुति करते थे वही देखिए श्री सीता महारानी के वियोग में क्या कहते हैं:—

घन घमंड नभ गरजत घोरा।
प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥
(किष्किंधा कांड-श्रीरामचरितमानस)

श्री महाकवि कालिदास रचित मेघदूत में कुबेर का अनुचर यक्ष, जिसको किसी भूल के कारण उसके स्वामी कुबेर ने उसे, उसकी स्त्री से एक वर्ष पर्यंत वियोग होने का श्राप दिया था, वह अपने विरह काल में मेघ के साथ अपनी प्रियतमा को संदेश देते हुए कहता है और यह महाकवि की निम्नोक्ति से उचित भी प्रतीत होता है—यथाः—

त्वामारूढं पवन पदवी मुद्ग् गृहीतालकान्ता
प्रेक्षिष्यन्ते पथिक वनिताः प्रत्ययादाश्वसन्त्यः।
कःसंनद्धे विरह विधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां
न स्यादन्त्रोऽप्यहमिव जनो यः पराधीन वृतिः॥

हे मेघ! जिस समय तू आकाश मार्ग से जाने लगेगा उस समय, जिनके पति प्रवास में हैं, वे स्त्रियाँ अपने मुख पर के केशों को पीछे सरकाती हुई तेरी ओर बड़े विश्वास से देखने लगेंगी, क्योंकि तुझे आकाश में देखने पर, एक मुझ जैसे पराधीन जीव को छोड़कर, भला अपनी विरहिणी स्त्रियों को मिले बिना और कौन रह सकता है।

मेघा लोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथा वृति चेतः ।
कण्ठा श्लेष प्रणयिनी जने किं पुनर्दूर संस्थे ।।
(मेघ०—श्लो० ३—उत्तरार्ध)

समक्ष मेघ को देखकर किसी सुखी मनुष्य की भी मनोवृत्ति उत्कंठित होती है तो बहुत दूर आ पड़ने से स्वस्त्री के कंठालिंगन सुख से हीन उस विरही पुरुष की अवस्था का तो कहना ही क्या ?

सूर की गोपियाँ भी, बादलों द्वारा अपने प्रियतम कृष्ण को संदेश भेज रही हैं:—

पा लागों तव वीर बटाऊ, कौन देश तें धाए ।
इतनी पतियां मोरी दीजौ, जहां श्यामल घन छाए ।
दादुर, मोर, पपीहा बोलत, सोवत मदन जगाए ।
सूरदास स्वामी से बिछुरे, प्रियतम भए पराए ।

मनोविज्ञान की दृष्टि से कहा जा सकता है कि वर्षा काल में विरह की तीव्रता का अनुभव प्रमाण में पुरुष से अधिक स्त्री जाति को होता है । विविध साहित्य ग्रन्थों में भी इसी विचार की पुष्टि की हुई दिखाई देती है । मेघदूत में यक्ष ने मेघ के साथ संदेश भेजा अवश्य है परन्तु विचार पूर्वक देखने पर प्रतीत होता है कि वह उसकी विरह भरी आत्म कहानी की अपेक्षा कहीं अधिक उसकी विरहिणी प्रिया के तड़पते हुए हृदय के और उसके सान्त्वना सूचक भावों को ही व्यक्त करता है ।

मीराँ के पदों में भी यह अनुभूति बड़ी ही सरस व सजीव रूप से व्यक्त होती है । जो भी हो मीराँ के पदों में वर्षा-सावन

के भावों की छटा ने तो अद्भुत रंग जमाया है। अपने प्रियतम के साथ वर्षा का वैभव आनन्द दायी होता है जबकि उनके विरह में दाहक व दुःखदायी। इसलिये वर्षा के पदों में दर्शनानंद व मिलन के तथा विरह के करुण भाव भी भरे हैं।

इस विभाग का पद–३७ गुजराती भाषा का है।

सं–१२ निर्गुणी भाव-ज्ञान का पद है।

अन्य संतों के 'वर्षा' सम्बन्धी उद्गार।

गगन गरज बरसे अमी, बादल गहिर गंभीर।
चहुँ दिशि दमके दामिनी, भीजे दास कबीर॥

निसि दिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहत पावस ऋतु हम पर,
जब ते स्याम सिधारे॥
दृग अंजन लागत नहीं कबहुं,
उर कपोल भये कारे।
कंचुकी पट नहीं सूखत कबहुं
उर बिच बहत पनारे॥

कृष्ण वियोग में व्याकुल गोपियों पर तो सदैव ही पावस ऋतु छाई रहती है, जिससे नेत्रों में काजल न ठहर कर वह कपोल एवं हृदय को काले कर देता है, हृदय के बीच से आँसुओं का निर्झर बहता रहता है, जिससे चोलियाँ सदैव भीगी रहती हैं।

'वर्षा' मीराँ की वाणी में :—

इस समय चारों ओर वर्षा ऋतु की छटा बड़ी ही सुहावनी लग रही है—

(४) देखी वरषा की सरसाई, मेरे पियाजी की मन में आई।
स्याम घटा उमड़ी चहुँ दिस से बोलत मोर सुहाई।

(११) जित जाऊँ तित पाणी पाणी। हुई हुई भोम हरी।

(२७) काली सी घटा में बिजलियाँ चमके, झीणी झीणी पड़त फुवार

फिर सबके हृदय में प्रिय मिलन की उत्कंठा को जगाने वाली सावन की घटा का तो कहना ही क्या!

(२) सावण बनो [वर राजा] बन आयो।

(५) सावण दे रह्यो जोरा। (६) भींजे म्हाँरो दाँवन चीर, सावणियो लूम रह्यो।

(१४) सावण आयो साहिब दूरे जाई रहे परदेश। सेझ अलूणी भवन अकेली रेण भयंकर भेस।

(१८) आयो सावन अधिक सोहावन, बन में बोलन लागा मोर।

परन्तु अपने प्रियतम के बिना मोर व पपीहे की मधुर बोली भी चित्त पर विपरीत ही प्रभाव डालती है—

(७) मदरोसो (धीरे से) बोल मोरा, मोरा श्याम बिना जिव दोरा। झरमर झरमर मेहा बरसे, गाजत है घनघोरा।

(१७) पपहिया काहे मचावत शोर, पिया पिया बोलत जिया जावत मोर।

विराट् प्रकृति का वर्षा काल में एक ऐसा विलक्षण आल्हाद जनक व हरा भरा स्वरूप हो जाता है कि मन प्रिय-मिलन की उत्कंठा और आतुरता के अनोखे भावों में रंग जाता है—

(२०) नदियाँ नीर नवा जल खळक्या। समंद मिलण की
तियारी।

(३६) उमंग्यो इंद्र चहूँ दिसि बरसै, दामणि छोड़ी लाज।

ऐसे सुन्दर, मधुर व प्रभावशाली वातावरण में मीराँ जैसी पूर्वजन्म की श्रीकृष्ण की प्रेयसी के हृदय में ब्रज भाव उमड़ना स्वाभाविक ही है। स्वयं राधा के भाव में अपनी पूर्वानुभूति की रस-सृष्टि में वह स्वच्छंद विचरण करने लगती है। प्रथम तो श्याम जलधर को नभ में इतस्ततः मस्ती से विचरते देख उन्हें प्रियतम के आगमन का शुभ संदेश न लाने के कारण टोकती है—

(१०) मतवारो बादल आए रे, हरि को सनेसो कबहुँ न लाए रे।
गाजै बाजै पवन मधुरिया। मेहा अति झड़ लाये।

इस स्थिति में दोनों ओर विरह प्रकट होता है—

(२२) राधेजी भीजें घर के आँगण, सांवरो जी भींजे परदेश।

क्षणे क्षणे नित्य नव नवायमान यही श्रीराधा के प्रेम का स्वरूप है—

(२६) हरचो राधे रानी जी रो नेह।

अनन्य प्रेम के वश खींचकर श्याम सुन्दर को श्रीराधाभाव में तद्रूप मीराँ के पास आना ही पड़ता है :—

(१) बहुत दिनां पे प्रीतम पायो, अति नेह जुड़ायो, मैं लियो
पुरबलो वर रे।

सावन के सुहावने समय में, प्रिय के मिलने पर भला राधा अपने झूलने की उमंग पूरी न करे तो फिर कब—

(१६) हिंडोरा पड्या कदम की डारी। म्हाने झोटा दे नन्दलाल,
अरज कर रही राधा प्यारी।

अपनी आनन्द लीला में प्रेमी-युगल को भला ध्यान रह ही कैसे पाता! विलंब से जब श्याम के पास से राधा लौटती है तो श्याम घन ने उसे घेर लिया है—

(३२) नंद नंदन बिलमाई, बदराने घेरी माई, बदरा ने घेरी माई।

९—वर्षा के पद

★

दर्शनानंद १

मेहा बरसवो करे रे, आज तो रमैयो मेरे घरे रे ।
नान्हीं नान्हीं बूँद मेघ घन बरसे, सूखे सरवर भरे रे ॥०॥
बहुत दिनाँ पे प्रीतम पायो, बिछुडन को मोहिं डर रे ।
मीराँ कहे अति नेह जुड़ायो, मैं लियो पुरबलो बर रे ॥१॥

सावन २

सावण बनो बन आयो, आयो राज सहेल्याँ म्हारी ॥०॥
चार मास को लगन लखायो । बादल मंडप छायो ॥१॥
काली घटा माँहि चमके दमिनी । बिज्जु हि चमक डरायो ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । निरख निरख गुण गायो ॥३॥

तीज ३

रे साँवलिया म्हाँरै आज रंगीली गणगोर छै जी ॥०॥
काळी पीळी बदळी में बिजली चमके ।
मेघ घटा घनघोर छै जी ॥१॥
दादुर मोर पपीहा बोले ।
कोयल कर रही सोर छै जी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
चरणाँ में म्हाँरो जोर छै जी ॥३॥

उत्कंठा ४

देखी बरषा की सरसाई, मोरे पियाजी की मन में आई ॥०॥
नन्हीं नन्हीं बूँदन बरसन लाग्यो।
दामिन दमकै झर लाई ॥१॥
स्याम घटा उमड़ी चहुँ दिस से।
बोलत मोर सुहाई ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर।
आनंद मंगल गाई ॥३॥

सावन ५

सावण दे रह्यो जोरा, घर आवोजी स्याम मोरा ॥०॥
उमड़ घुमड़ चहुँ दिसि से आया, गरजत है घनघोरा ॥१॥
दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल कर रही शोरा ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जो वारूँ सोई थोरा ॥३॥

उत्कंठा ६

ऋतु आई बोलत मोरा। श्याम बिना जिया दोरी ॥०॥
उमड़ उमड़ के आई बदरिया। बरस रहा घनघोरा ॥१॥
दादुर मोर पपीहा बोले। कोयल कर रही शोरा ॥२॥
है को साध सँदेसा लावै। श्याम मिलावै मोरा ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। श्याम चरन चित जोरा ॥४॥

विरह ७

मदरो सो बोल मोरा। मोरा श्याम बिना जिव दोरा ॥०॥
दादुर मोरा पपैया बोले। कोयल कर रही शोरा ॥१॥
झरमर झरमर मेहा बरसे। गाजत हैं घन घोरा ॥२॥
मीराँ के प्रभु राधा बोले। श्याम मिल्या जिव सोरा ॥३॥

उल्लास ८

म्हारे घर आवो श्याम गोठड़ी कराई है ॥०॥
आनंद उछव करूँ, तन मन भेंट धरूँ ।
मैं तो हूँ तुम्हारी दासी, ताकूँ तो चीतारिए ॥१॥
गिगन गाज आयो, बदरा बरस आयौ ।
सारंग सबद सुनि, बिरहनी पुकारी है ॥२॥
घर आवौ श्याम मेरे, मैं तो लगूँ पाँय तेरे ।
मीराँ कूँ सरन लीज्ये, बलि बलिहारी हैं ॥३॥

सावन-विरह ९

भींजे म्हाँरो दाँवन चीर, सांवणियो लूम रह्यो रे ॥०॥
आप तो जाय विदेसाँ छाये । जिवड़ो धरत न धीर ॥१॥
लिख लिख पतियाँ सँदेसा भेजूँ ।
कब घर आवै म्हाँरो पीव ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । दरसन दो ने बलवीर ॥३॥

उत्कंठा १०

मतवारो बादल आए रे, हरि को सनेसो कबहुँ न लाए रे ॥०॥
दादर मोर पपइया बोलै, कोयल सबद सुणाए रे ॥१॥
(इक) कारी अँधियारी बिजरी चमकै ।
बिरहणि अति डर पाए रे ॥२॥
(इक) गाजै बाजै पवन मधुरिया ।
मेहा अति झड़ लाए रे ॥३॥
(इक) कारी नाग विरह अति जारी ।
मीराँ मन हरि भाए रे ॥४॥

विरह-भाव ११

बादल देख डरी हो स्याम मैं बादल देख डरी ॥०॥
काली पीली घटा ऊमटी । बरस्यो एक घरी ॥१॥
जित जाऊँ तित पाणी पाणी । हुई हुई भोम हरी ॥२॥
जाका पिय परदेस बसत है । भीजूँ बहार खरी ॥३॥
मीराँ के प्रभु हरि अबिनासी । कीज्यौ प्रीत खरी ॥४॥

विरह-ज्ञान १२

रमैया मेरे अब तोही सूं लागो नेह ।
लागी प्रीत जिन तोड़े रे वाला । अधिकौ कीजै नेह ॥०॥
जौ हूं ऐसी जाणती रे वाला, प्रीत कियाँ दुःख होई ।
नगर ढंढोरा फेरती रे प्रीत करो मत कोय ॥१॥
खीर न खाजै आकरी रे, मुरख न कीजै मिंत ।
खिण ताता खिण सीलवा रे । खिण बैरी खिण मिंत ॥२॥
प्रीत करे ते बावरा रे करि तोड़े ते क्रूर ।
प्रीत निभावण दल के थंभण ते कोइ बिरला सूर ॥३॥
तुम गज गिरी को चूंतरो रे हम बालू की भीत ।
अब तो म्यां कैसे बणे रे पूरब जनम की प्रीत ॥४॥
एके थाणे रोपीया रे एक आंबा एक बूंळ ।
वांको रस नीको लगे रे वाको लागै सूळ ॥५॥
ज्यूं डूंगर का व्हाला रे, यूं ओछा तणा सनेह ।
बहता बहे जी उतावला रे, वे तो झटक बतावे छेह ॥६॥
आयो सावण भादवो रे वाला, बोलन लागा मोर ।
मीराँ कूँ हरिजन मिल्या रे, लेगिया पवन झकोर ॥७॥

विरह १३

सइयां, तुम बिनि नींद न आवै हो ।
पलक पलक मोहि जुगसे बीतैं छिनि छिनि विरह जरावै हो ॥०॥
प्रीतम बिनि तिम जाइ न सजनी दीपग भवन न भावै हो ।
फूलन सेझ सूल होइ लागी जागत रैणि बिहावै हो ॥१॥
कासूँ कहूँ कुण मानै मेरी कह्याँ न को पतियावै हो ।
प्रीतम पनग डस्यो कर मेरो लहरि लहरि जिव जावै हो ॥२॥
दादुर मोर पपइया बोलैं कोइल सबद सुणावै हो ।
उमगि घटा घन ऊलरि आई बीजू चमक डरावै हो ॥३॥
है कोइ जग में रामसनेही ज्यै उठि साल मिटावै हो ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी नैणां देख्याँ भावै हो ॥४॥

विरह १४

माई, मेरो पीया विन अलूंणो देस ॥०॥
राग रंग सिणगार न भावै खुलि रहे सिर के केस ॥१॥
सावण आयो साहिब दूरे जाइ रहे परदेस ॥२॥
सेझ अलूणी भवन अकेली रैण भयंकर भेस ॥३॥
आव सलूणे प्रीतम प्यारे बीते जोबन वेस ॥४॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी तन मन करूँ सब पेस ॥५॥

तीज (ब्रजभाव) १५

बूँदन भीजे मोरी सारी कहो राज मैं कैसे आऊँ ॥०॥
तिरिया तीज रमण को चाली भर मोतियन की थाली ॥१॥
राधेजी उभा रंग महेल में ओढ़ कसुमल सारी ॥२॥
मीरांबाई के थाँने गिरधर नागर हरि चरणां में बलिहारी ॥३॥

भूलन-लीला (ब्रजभाव) १६

हिंडोरा पड्या कदम डारी म्हान झोटा दे नन्दलाल
अरज कर रही राधा प्यारी ॥०॥
सजीली केसर क्यारी फूल रही फुलदार सुगन्धी न्यारी ॥१॥
घूम रही घटा गगन कारी,
पंछी कर रहे सोर दामिनी दमकत मतवारी ॥२॥
राधा के संग सखियां सारी,
ग्वाल बाल संग सखा बाग में घूमत गिरधारी ॥३॥
श्याम थारी सूरत पर वारी,
घुंघर वाले बाल माल गल बैजन्ती न्यारी ॥४॥
चोर चित भव भंजन हारी,
मीराँ के गोपाल पार करदे नैया म्हारी ॥५॥

विरह-भाव १७

पपहिया काहे मचावत शोर,
पिया पिया बोलिन जिया जावत मोर ॥०॥
अमवा की डार कोयलिया बोले मोर।
नदी किनारे सारस बोल्यो मैं जानी पिया मोर ॥१॥
मेहा बरसे बिजली चमके बादल की घन घोर।
मीराँ के प्रभु वेग दरश दो मोहन चित के चोर ॥२॥

दर्शनानंद (ब्रजभाव) १८

आयो सावन अधिक सोहावन बन मैं बोलन लागे मोर ॥०॥
उमड़ घुमड़ कर कारी बदरिया, बरस रही चहुं ओर।
अमवा की डारी बोले कोयलियां, करें पपीहरा शोर ॥१॥
चम्पा जूही बेला चमेली, गमक रहे चहुं ओर।
निर्मल नीर बहत यमुना को, शीतल पवन झकोर ॥२॥

वृन्दावन में खेल करत है, राधे नंदकिशोर।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, गोपियन को चितचोर ॥३॥

भूलन-लीला (व्रजभाव) १९

भूलत राधा संग गिरिधर ॥०॥
बादर मेहा जब भर लायो, बढ़ती हृदय उमङ्ग, गिरिधर ॥१॥
नाचत लाल ताल दे देकर, बाजे चंग मृदङ्ग, गिरिधर ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरन कमल पर अङ्ग, गिरिधर ॥३॥

उल्लास २०

बोलत लागे है ऋतु प्यारी एजी पपैया प्यारा ॥०॥
दादुर मोर पपैया बोले। कोयल बोले छे कारी ॥१॥
नदियाँ नीर नवाजळ खळकया। समँद मिलण की तियारी ॥२॥
मीरांबाई के प्रभु गिरधर नागर। हरि चरणाँ में बलिहारी ॥३॥

प्रेमालाप २१

बादलियां आई बरसे भींज्यो म्हारो चीर,
ओ बिजलियां आई चमक चमक झड लाई ॥०॥
कोन दिसा होय आई रे बादलियां, कोन दिसा होय जाय।
उगण दिसा होय आई रे बादलियां, धराउ दिसा होय जाय ॥१॥
उमड घुमड होय आई बादलियां, बरसत है घण घोर।
काली सी घट में बिजलियां चमके, पवन चलत झकझोर ॥२॥
दादुर मोर पपैया बोले कोयल करे रे सोर।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित जोर ॥३॥

प्रेमालाप (व्रजभाव) २२

ओ मैं केसे आऊँ बून्दन भींजे म्हारी सारी ॥०॥
आवु तो भींजे म्हारी सुरंग चुनरियां, रेवु तो टुटे सनेस ॥१॥

नानी नानी बून्दन बरसत मेहुलोजी, पवन चलत झकझोर ॥२॥
राधेजी भींजे घर के आंगण, सांवरोजी भींजे परदेश ॥३॥
दादुर मोर पपैया बोले, कोयल कर रही शोर ॥४॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, प्रभु चरण कमल बलिहार ॥५॥

प्रेमालाप २३

ओ बाइजी म्हारा बड़भागी छे मोर, नणँदबाइ बड़भागी छे मोर॥०॥
उड उड मोर कुंजन पर बैठो, बैठो छे अंग मरोड ॥१॥
मोर की पांख को मुकुट बनत है, जो सिर धरे नन्दकिशोर ॥२॥
दादुर मोर पपैया बोले, कोयल करे रे किलोल ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणां चितचोर ॥४॥

झूला (व्रजभाव) २४

ओ हींदोरो हेली झूले छे नन्दकिशोर ।
हो हींदोरे झूले छे नन्दकिशोर ॥०॥
चम्पे की डार हींदोरे घाल्यो, रेशम नी गज डोर ॥१॥
राधेजी कृष्ण झूलन लागा, झुलावे छे सखियां को साथ ॥२॥
दादुर मोर पपैया बोले, कोयल कर रही शोर ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणां बलिहार ॥४॥

प्रेमालाप २५

बुलाले मोहन कबकी खडी तेरे द्वार बुलाले मोहन ॥०॥
सावण बरसे, भादुडो गरजे, छाई घटा घन घोर ॥१॥
आम्बे की डारी पे कोयल बोले, मोर मचावे शोर ॥२॥
गेरी गेरी नदियां नाव पुराणी, बेडा लगादो पेले पार ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरण कमल बलिहार॥४॥

विरहभाव २६

रत आई बोल मोरा, श्याम बिना जीव दोरा रे, रत आई बोल मोरा ॥०॥

थां बोल्यां मेरा श्याम मिलेगा, धोखा भागे दिल का रे
(मनका रे) ॥१॥
काली सी घटा माहि बिजलियां चमके, पवन चले परवाई रे ॥२॥
दादुर मोर पपैया बोले, कोयल करे छे किलोला रे ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, श्याम मिल्या जीव सोरा रे ॥४॥

विरह-भाव   २७

उडजा रे काग वन का मेरा श्याम गया उस दिन का रे ॥०॥
थां उडियां मेरा श्याम मिलेगा, धोका भागेगा दिलका रे ॥१॥
उमड घुमड होय आई रे बादलियां, पवन चले झकझोरा रे ॥२॥
कालीसी घटा में बिजलियां चमके, झीणी झीणी पडत फुंवार रे॥३॥
दादुर मोर पपैया बोले; कोयल कर रही सोरा रे ॥४॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, श्याम मिल्यां जीव सोरा रे ॥५॥

प्रार्थना   २८

बरसादो राम पानी, दुनियां बहु घबरानी, बरसादो राम पानी ॥०॥
उत बरसत है इत तरसत है, सुखे सुखे बाग घनेरा रे ॥१॥
बाग सूख बन वाडियां सूखी, सुखे सुखे कमल घनेरा रे ॥२॥
कमल सूखा कमल की या पतियां, सुखे सुखे समंद घनेरा रे॥३॥
मीरां बाई के प्रभु गिरधर नागर, बरसत मेघ घन घोरा रे ॥४॥

उल्लास (ब्रजभाव)   २६

अब तुम देखो माई, सांवण दुलो बण आयो ॥०॥
हरि हरि भूमिका हरचा ही पंछी, हरि हरि अम्बुला री डार ॥१॥
हरिया हरचा बाग ने हरिया डुपटा, हरचो राधेरानीजी रो नेह ॥२॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल बलिहार ॥३॥

तीज (ब्रजभाव) ३०

एजी ओ सावण री रत आई ॥
पपैया पीयू पीयू पुकार रे अंधेरी रत आई ॥०॥
रिधि सिधी पेलें बसे ।
कृष्ण पधारो पांवणां कांई पहली सावण की तीज ॥१॥
राधेजी रा बदन पर बिन्दली शोभा देही ।
नेणा में सुरमो सोवणो वांरा गज गज लम्बा केश ॥२॥
मोती लो तो है घणा रे लालां तो दस बीस ।
हीरा तो जुग में एक छे जी केसें करूँ बगसीस ॥३॥
हरया बन की कोयल ऐ सुणजे म्हारी बात ।
किस विध थूं काली पडी किस विध थांरा राता नैण ॥४॥
राधेजी बडभागणी ए, कोण तपस्या हींण ।
कृष्ण पधारया द्वारका म्हारा झूर झूर राता नैण ॥५॥
राधेजी बड भागणी ए, कोण तपस्या कीन ।
तीन लोक को नाथ कहीजे सो तुम्हारे आधीन ॥६॥
बाई मीराँ की प्रभु या बीनती रे सुणजो सिरजनहार ।
चरणा सूं नेडी राखज्यो म्हारा चारभुजा रा नाथ ॥७॥

प्रेमालाप (ब्रजभाव) ३१

दीजो कृष्ण लेरयो रंगाय, हो श्याम म्हाने दीजो जी लेरयो रंगाय ॥०॥
असल गुलाबी लेरयो रंगाजो, चारूं पल्ला कोर लगाय ॥१॥
लेरया री पोषाक राधेजी ने सोहे, निरखत नन्दकिशोर ॥२॥
नानी नानी बून्दन बरसत मेहुलाजी, भींजत श्याम घर आये ॥३॥
दादुर मोर पपैया बोले, कोयल करे छे किलोल ॥४॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, प्रभु चरणा बलिहारी ॥५॥

प्रेमालाप (व्रजभाव)	३२

नंदनँदन बिलमाई, बदरा ने घेरी माई ॥०॥
इत घन लरजे उत घन गरजे, चमकत बिज्जु सवाई ॥१॥
उमड़ घुमड़ चहुँ दिस से आया, पवन चलै पुरवाई ॥२॥
दादुर मोर पपीहा बोलै, कोयल सबद सुणाई ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरणकँवल चित लाई ॥४॥

उत्कंठा	३३

बरसै बदरिया सावन की, सावन की मनभावन की ॥०॥
सावन में उमग्यो मेरो मनवा भनक सुनी हरि आवन की ॥१॥
उमड़ घुमड़ चहुँ दिसि से आयो दामण दमके झर लावन की ॥२॥
नान्हीं नान्हीं बूँदन मेहा बरसै सीतल पवन सोहावन की। ।३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर आनँद मंगल गावन की ॥४॥

दर्शनानन्द	३४

बदला रे तू जल भरि ले आयो ॥०॥
छोटी छोटी बूँदन बरसन लागीं, कोयल सबद सुनायो ॥१॥
गाजै बाजै पवन मधुरिया, अंबर बदराँ छायो ॥२॥
सेझ सँवारी पिय घर आये, हिल मिल मंगल गायो ॥३॥
मीराँ के प्रभु हरि अबिनासी, भाग भलो जिन पायो ॥४॥

विरह	३५

रमैया बिन नींद न आवै ।
नींद न आवे बिरह सतावे, प्रेम की आँच ढुलावै ॥०॥
बिन पिया जोत मँदिर अँधियारो, दीपक दाय न आवै ।
पिया बिन मेरी सेज अलूनी, जागत रैण बिहावै ।
पिया कबरे घर आवै ॥१॥
दादुर मोर पपीहा बोलै, कोयल सबद सुणावै ।

घुमँड़ घटा ऊलर होइ आई, दामिन दमक डरावै।
नैन भर लावै ॥२॥

कहा करूँ कित जाऊँ मोरी सजनी, बेद न कूण बतावै।
बिरह नागण मोरी काया डसी है, लहर लहर जिव जावै।
जड़ी घस लावै ॥३॥

को है सखी सहेली सजनी, पिया कूँ आन मिलावै।
मीराँ कूँ प्रभु कबरे मिलोगे, मनमोहन मोहि भावै।
कबै हँस कर बतलावै ॥४॥

उल्लास ३६

सुनी हो मैं हरि आवन की अवाज ॥०॥
महल चढ़-चढ़ जोऊँ मेरी सजनी ! कब आवै महाराज ॥१॥
दादर मोर पपइया बोलै, कोयल मधुरे साज।
उमँग्यो इंद्र चहूँ दिसि बरसै, दामणि छोडी लाज ॥२॥
धरती रूप नवा नवा धरिया, इंद्र मिलण कै काज।
मीराँ के प्रभु हरि अबिनासी बेग मिलो महाराज ॥३॥

प्रेमालाप(व्रजभाव) ३७ (गुज०)

बोले भीणा मोर, राधे तारा डुंगरिया पर बोले भीणा मोर ॥०॥
ए मोर ही बोले बपैया ही बोले, कोयल करे कल शोर ॥१॥
काली बदरियां में बिजली चमके, मेघ हुआ घनघोर ॥२॥
झरमर झरमर मेहुलो बरसे, भींजे मारा सालुडानी कोर ॥३॥
बाई मीरां के प्रभु गिरधर ना गुण, प्रभुजी मारा चितडानो
चोर ॥४॥

दर्शनानन्द (व्रजभाव) ३८

राधे तोरे नयनन में जदुवीर ॥०॥
आधी आधी रात में बादल चमके, झिरमिर बरसत नीर ॥१॥

मोर मुकुट पीताम्बर शोभे, कुंडल झलकत हीर ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल पर शीर ॥३॥

विरह
३६

कैसी रितु आई मेरो हियो लरजै हे मा ॥०॥
निस अंधियारी कारी, बिजुरी चिमकै।
सेज चढ़ताँ जिया डरपे हे मा ॥१॥
नान्ही बूँदन मेहा बरसै।
ऊपर सुरपति गरजै मा ॥२॥
सूनी सेज स्याम बिन लागत।
कूक उठी पिया करिके हे मा ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर।
मोय विधाता क्यूँ सरजी हे मा ॥४॥

उलाहना (ब्रजभाव)
४०

हरी आव देखे सखी। बुंदन भींजे मो सारी ॥०॥
एक बरसत दुजी पवन चलत है। तीजी जमुना गहरी ॥१॥
एक तो बन दुजी मही की मथनिया। तीजी हरि दे छे गारी ॥२॥
बरज जसोदा रानी अपने लाल कूं। इन सबहूं में हारी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। प्रभु चरणां पर वारी ॥४॥

विरह
४१

नहीं आया बोल मोरा मेरा श्याम बिना जिया दोरा ॥०॥
बादल गरजे बिजली चमके पवन देत झकझोरा ॥१॥
शीतल पवन चलत पुर्वैया देह कपे गोरा गोरा ॥२॥
दादर मोर पपैया बोले कोकिल कर रही शोरा ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर कर रही श्याम निहोरा ॥४॥

———

पदों के शब्दार्थ-भावार्थ-विशेष आदि
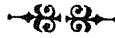
१—भावार्थ:—मेहा.........वरेरे=जिस प्रकार उत्तप्त पृथ्वी वर्षा होने से शीतल हो जाती है त्यों आज मीरांबाई का हृदय भी शीतल हो गया है क्योंकि आज उसके प्रियतम श्याम सुन्दर ने दर्शन देकर उसके विरह-ताप को मिटा दिया है। आज वह बाहर और भीतर भी आनन्द का अनुभव करती है।

नान्ही.........भरेरे=छोटी छोटी बूँदों से बरसे हुए जल से ज्यों सूखे पड़े जलाशय सब भर जाते हैं त्यों प्रिय-विरह के ताप से सूखे मीराँ के हृदय-प्रदेश को श्याम सुन्दर ने अपने आनन्दमय दर्शन रूप सुधा-वृष्टि से सराबोर कर दिया। बहुत.........डरेरे=दीर्घ काल के पश्चात् अपने प्रियतम का आनन्दमय मिलन हुआ अवश्य पर साथ ही साथ उनके बिछुड़ने की आशंका भी मन में बनी हुई है। ज्यों वर्षा काल में हरी भरी दीखती सृष्टि के, अन्य काल में पुन: सूख जाने का अंदेशा बना रहता है। मीराँ.........वरेरे=मीरांबाई जन्म-जन्म के अपने प्रियतम स्वामी से मिलन के वर्तमान प्रत्यक्ष आनन्दानुभव के मधुराति मधुर प्रसंग पर उनसे एक रूप होकर आनन्द रसास्वादन में मग्न हो जाती है। पुन: उनसे बिछुड़ने की आशंका को सर्वथा बाधक समझकर उसे त्याग देती है।

२—बनो=वर, प्रिय।

विशेष:—इस पद में श्रावण को वर राजा का, चतुर्मास को विवाह काल का तथा बादल को लग्न मंडप का रूपक दिया है। बादल रूपी मंडप के नीचे (क्योंकि चातुर्मास में विशेष कर आकाश मेघाच्छन्न रहता है) श्रावण मास रूपी वरराजा का चातुर्मास काल में विवाह महोत्सव होता है अर्थात् आकाश और पृथ्वी के बीच वर्षा काल में अनेकानेक विविध भाव और आनन्द मय दृश्य उपस्थित होते हैं जिसमें श्रावण मास की विशेषता मानी है क्योंकि उसकी शोभा सबसे अधिक मनोहारिणी और न्यारी होती है। यही सब देख देख कर मीराँ भगवान की महिमा गाती है।

३—रंगीली गणगौर=वर्षा ऋतु में सुहाग के लिये मनाया जाने वाला स्त्रियों का त्यौहार।

विशेष:—राजस्थान में तथा महाराष्ट्र में महिला-समाज में अपने सुहाग के लिये भाद्रपद शुक्ला तीज को जो गौरी पूजन का व्रतोत्सव मनाया जाता है, उसी को लक्ष्य करके पद की टेर में 'रंगीली गणगौर' कहा है। महाराष्ट्र में इसे हरितालिका व्रत' कहते हैं। और देशों में भी यह किसी न किसी रूप से मनाया जाता है। इन्हीं दिनों में महिलाएँ मेंहदी अंगों में लगाती हैं, अपनी सहेलियों के साथ खेलती, झूलती और विविध प्रकार के आमोद प्रमोद से आनन्द मनाती हैं।

भावार्थ:—चरणाँ में·········जोर छै=मीरांबाई जैसी प्रभु की अनन्य प्रेयसी ही अपने प्रेम और भक्ति के बल पर इस प्रकार अपने प्रियतम-स्वामी के चरणों पर अधिकार का दावा कर सकती है।

अधिक चरण:—आभ रंगीला सेज रंगीली और रंगीलो सारो साथ छेजी ।

४—सरसाई=बहार ।

भावार्थ:—साव मासन पूरे बहार में है पर श्याम सुन्दर के बिना बिरहिणी मीराँ को चैन कहाँ! 'जो वारूँ सोई थोरा'—अपने पास जो भी था सब वह अपने प्रभु पर वार चुकी—अपने को सर्वात्म-समर्पण कर दिया फिर भी उसे संतोष नहीं। वास्तव में अंतिम आधे चरण में विलक्षण भाव चमत्कार है।

७—मदरोसो=धीरे धीरे। दोरा=दुखी। सोरा=सुखी।

८—गोठडी=गोष्ठी, उत्सव, भोज। सारंग=मोर ।

विशेष:—वर्षा काल के सुहावने और उल्लास भरे वातावरण में मनाये गये आनन्दोत्सव में सम्मिलित होने के लिये श्याम सुन्दर से उनकी दासी विरहिणी मीराँ, द्वारा की गई बड़ी ही भाव भरी अभ्यर्थना है!

६—सावणियो·········रह्यो=सावन के बादल झूम रहे हैं, सावन की बहार है ।

विशेष:—आकाश में छाये श्याम घन को देख कर मीराँ की प्रभु-मिलन की उत्कंठा तीव्रता से जग उठती है—श्याम सुन्दर की स्मृति जगाने वाले मद भरे नीले बादल को देख वह अधीर हो उठती है। बादल आ आकर चले जाते हैं पर कभी उन्होंने मीराँ को उसके प्रियतम

का आशा भरा सन्देश नहीं सुनाया। दादुर, मोर पपीहा और कोयल की हृदय के भावों को जगाने वाली न्यारी-न्यारी बोलियाँ सुनी जाती हैं, मधुर पवन बह रहा है और वर्षा की झड़ियाँ लग रही हैं, परन्तु यह सब देख-सुन कर मीराँ की विकलता घटने की अपेक्षा बढ़ ही रही है क्यों कि उसे जो विरह-रूप काली नागिनी ने डस खाया है तब उसे भला एक मात्र हरि-श्याम सुन्दर के बिना और भा ही क्या सकता है।

११—जाका·········खरी=जिसके प्रियतम विदेश में जाकर बसे हैं ऐसी मैं ही एक विरहिणी बाहर खड़ी खड़ी भीज रही हूँ।

विशेषः—दीर्घ विरह-ताप से संतप्त हुई मीराँ वर्षा को पाकर, उसे छोड़ दूर चले जाने वाले उन अपने प्रियतम श्याम सुन्दर की प्रतीक्षा में बाहर ही खड़ी खड़ी भींज रही है। भला विरहाग्नि भी क्या कभी बाहरी जल से शान्त हुई है? बिजली कड़कती हुई सुनकर वह चौंक उठती है पर उस भीता विरहिणी को अपने बाहु-पाश में लेकर अभय और सुखी कर देने वाले उसके प्रभु उसके पास नहीं।

'कीज्यौ प्रीत खरी'=मीरांबाई जैसी कृष्ण की वास्तविक प्रेमाधिकारिणी ही उन छलिया धूर्त को यह मार्मिक ताना दे सकती है।

१२—आकरी=अत्युष्ण। खिण=क्षण में। ताता=अत्युष्ण। सीलवा=अतिशीतल। थंभण=थामने वाले। थाणे=स्थान में। रोपीया=बोये। बूंल=बंबूल। ओछा=छिछोरे, उतावले। तणा=का। उतावला=तुरन्त। बतावे छेह=किनारा कर (खींच) लेते हैं। ले·········झकोर=हवा की तरंग ज्यों आती है व जाती है त्यों भक्त जन मीराँ को मिलकर बिछुड़ जाते हैं, सत्संग का सुख अधिक नहीं टिक पाता, संत-संगति क्षणिक होती है।

विशेषः—इस पद में मीरांबाई ने प्रेम के उज्ज्वल तथा स्वार्थ युक्त (मोह) स्वरूप के तथा प्रेमी और प्रेम पात्र के कुछ लक्षण और कर्त्तव्य संक्षेप में बड़े ही मार्मिक शब्दों में बताये हैं।

भावार्थः—रमैया·········कोय=प्रेम-पथ में पैर धरते समय कल्पना ही नहीं थी कि जहाँ अनिश्चित काल तक विरहाग्नि में जलना पड़ता है, धैर्य को अपनी मर्यादा बनाये रखने में शंका होने लगती है, प्रतीक्षा पथ का कोई अंत नहीं दिखाई देता और आशा भी निराशा

की ओर ताकने लगती है पर तब क्या हो ! औरों की तो वे जाने पर मीराँ का जो श्यामसुन्दर से प्रेम हो चुका वह त्रिकाल में भी टूट नहीं सकता, पर हाँ यह और बात है कि जिससे प्रेम हुआ वह इस प्रीति को निभावे या नहीं। समर्थ होने पर भी न जाने वह कठोर है वा दयामय, रसिक है वा निर्मोही अथवा लहरी है वा स्थिर प्रेमी ! वह अब जो भी हो, उसकी इच्छानुसार वह करेगा ही फिर भी जिसने सभी ओर से मुँह मोड़ कर एक मात्र उसी से नेह जोड़ा है वह अनन्य प्रेमिका तो उससे यही कामना करेगी कि:—'लागी प्रीत·········नेह'। 'खीर ·········मित'=अत्युष्ण स्वादिष्ट वस्तु के प्रति ज्यों मोह रखना हानि-कारक है वैसे मूर्ख मित्र भी अहित करने वाला होता है और उनसे भी दूर ही रहना चाहिए जो क्षण में क्रोधी क्षण में प्रसन्न, क्षण में शत्रु और क्षण में मित्र बन जाते हैं अर्थात् संसार के मीठे लगने वाले विषयों में न तो मोह बुद्धि रखना चाहिए और न अज्ञानी, अस्थिर बुद्धि और असंयमी मनुष्य को साथी ही बनाना चाहिए, क्योंकि:— 'प्रीत करे·········सूर'=सच्चा प्रेम करने वाला और की हुई प्रीति को अखंड निभाने वाला संसार में कोई बिरला ही धैर्यवान पुरुषार्थी होता है। संसार की दृष्टि से कोई पगला ही प्रेम पथ पर पैर बढ़ाता है। नहीं तो प्रीति करके उसे तोड़ने वाले कृतघ्नी और विश्वासघाती संसार में कम नहीं।

सारांश कि:—'तुम गज·········प्रीत=एक मात्र प्रभु से ही सच्चा प्रेम हो सकता और निभ सकता है परन्तु यह भी उन्हीं पर निर्भर है। अपनी दुखद माया-पाश से वे ही छुड़ा कर उसे प्रेम प्रदान करते हैं, जीव तो सर्वथा निर्बल है। इसीलिये मीरांबाई ने उन्हें शिला खंडों की दृढ़ चौंतरे की और अपने को बालु की दीवार की उपमा दी है। बालु की दीवार के बार बार ढह जाने की आशंका बनी रहती है जैसा कि मीराँ ने एक पद में कहा है:—उँची नीची राह रपटीली पाँव नहीं ठहराय, सोच सोच पग धरूँ जतन से बार बार डिग जाय'—तथा 'उँचा नीचा उँचा नीचा महल पिया मासूं चढ्या न जाय पिया दूर म्हारो पंथ है भीनो सुरत भकोला खाय'। पद-३४ (१ विरह) इसीलिये पूर्वजन्मों की अपनी प्रीति के नाते वे ही उसे अभय दान देकर अपना लेवें, यही उसकी कामना है।

'एके थारो·········सूल'—इस त्रिगुणात्मक संसार में एक श्रेय जिसका परिणाम अमृत मधुर और दूसरा 'प्रेय' जिसका परिणाम विष तुल्य होता है। ये दोनों पदार्थ जीव के सन्मुख हैं। या तो श्रेय को अपना कर प्राणी भगवद् भक्त हो आत्म कल्याण कर ले अथवा प्रेय को अपना कर विषयाभिमुखी हो पतन की ओर जाय।

'ज्यूं डूंगर का·········छेह'—ज्यों चातुर्मास में पहाडियों से नाले तीव्र गति से वह जाकर कुछ ही काल में जल-शून्य हो जाते हैं त्यों ओछे मन वाले मनुष्य का प्रेम स्थिर नहीं रहता, अर्थात् ही सत्य-सनातन वस्तु केवल भगवद् प्रेम ही है।

'आयो सावण·········झकोर'—मीरांबाई कहती है कि श्रावण भाद्रपद में ज्यों पर्याप्त वृष्टि के होने से चहूँ ओर शीतलता छा जाती है, हरा-भरा दिखाई देता है और मोर कूकने लगते हैं त्यों भगवान श्यामसुन्दर की कृपा-दृष्टि हो जाने से उनके प्रतिनिधि स्वरूप हरिजन-भगवज्जन उसे आ मिले हैं परन्तु पवन की झकोर के समान उनका सत्संग क्षणिक ही होता है, अर्थात् सत्व गुण से भी परे-गुणातीत होने पर ही प्रभु की प्राप्ति होती है।

१३—तिम=अंधकार। पनग=भुजङ्ग। लहरि·········जावै=विष की लहरें प्राणांत की व्यथा को उत्पन्न करती है। ऊलरि आई=घिर आई। साल=बाधा, व्यथा।

१४—अलूंणो=सूखा, फीका।

१८—गमक रहे=महक रहे। झकोर=हिलोर, लहर।

विशेष:—इस सरल और सरस पद को गाते व मनन करते समय भावुक हृदय में क्षण भर यह आभास होता है मानों हमें वृन्दावन में यमुना तट पर किसी कुञ्ज में श्रीराधा-कृष्ण की प्रत्यक्ष क्रीड़ा को देखने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है।

२०—भावार्थ:-नदियाँ·········तियारी=इस कड़ी में ऐसा सुन्दर और मधुर भाव भरा है कि कल्पना करते ही बन पड़ता है। एक एक शब्द में बहुत कुछ कह दिया है। 'नूतन जल से संपन्न होकर अधीर नदियाँ सागर से मिलने दौड़ पड़ती हैं' यह भाव भरा चरण क्या स्वयं मीराँ की प्रभु-मिलन की उत्कंठा और आतुरता को प्रकट नहीं करता?

२३—**विशेषः**—इस पद में मीराँ ने अपनी नणँद (उदाबाई) का उल्लेख किया है। उदाबाई प्रारम्भ से ही अपनी भाभी का विरोध किया करती थी परन्तु मीरांबाई के देवर राणा विक्रमादित्य के द्वार मीराँ को विषपान कराने के प्रसंग पर उसका आमूल प्रकृति-परिवर्तन हो गया। तभी से वह मीराँ की पूर्ण भक्त-शिष्या बन गई। इस घटना के पश्चात् यह पद बनाया जान पड़ता है।

२५—**विशेषः**—अधिकतर हिन्दू समाज में काग-शकुन लेने की मान्यता प्रचलित है। ऐसा कहा जाता है कि जिस व्यक्ति का नाम लेने पर कौआ उड़ जाता है तो वह व्यक्ति शीघ्र ही आकर मिलता है। गो० तुलसीदास ने भी अपने रामायण में कौशल्या द्वारा राम के मिलने की ठत्कंठा में काग-शकुन लेने का भाव बताया है।

२८—**विशेषः**—जिस किसी स्थान में वा देश में मीरांबाई ने चातुर्मास में निवास किया होगा वहाँ अकाल पड़ा हुआ देखकर वर्षा के लिये प्रभु-प्रार्थना के रूप में यह पद बनाया ऐसा प्रतीत होता है। साथ ही साथ भक्त की हार्दिक पुकार सुनकर प्रभु के भी कृपाकर वर्षा कर देने का भाव भी इसकी अंतिम कड़ी में है।

२९—**विशेषः**—देखो पद २ का विशेष। इस पद में सर्वत्र छाई हुई हरियाली छटा का सुन्दर वर्णन है जिसमें 'हर्‍यो राधेरानी जी रो नेह' इस आधे चरण का भाव तो बड़ा ही सहृदयगम्य और मीराँ का आत्म-प्रतिबिंब द्योतक है।

३०—रिधि·········तीज=पहले सावण की तीज पर आनन्द क्रीड़ार्थ सजी हुई व्रज गोपियाँ प्रियतम की प्रतीक्षा में यह अभिलाषा प्रकट करती हैं कि हे श्यामसुन्दर ! ऋद्धि सिद्धि के समान उपस्थित हुई हम सब सखियों के बीच मुक्तामणियों में सूत्र के ज्यों आप पधार कर इस आनन्द लीला के सूत्रधार बन जाईए। सोवणो=सुहावना।

विशेषः—देखो पद २ का विशेष। सावन की तीज के त्यौहार पर प्यारे श्यामसुन्दर पाहुने आने वाले हैं। उनके स्वागतार्थ श्रीराधारानी सुन्दर शृङ्गार धारण कर तत्पर हुई है,उस प्रसंग पर प्रेम और तीव्र उत्कंठा भरे हृदय से निकले हुए विविध भावोद्गार इस पद में व्यक्त हैं।

३१—लेर्‍यो=रंग बिरंगी साड़ी (वस्त्र) का प्रकार विशेष।

३२—बिलमाई = रोक रखा। लरजे = झुक झुककर बरसता है।

विशेष:—इस पद में मीराँ ने गोपी भाव से अपना भाव-सृष्टि का स्वानुभव व्यक्त किया है। श्यामसुन्दर से मिलने वह कुञ्ज में गई थी जहाँ उनके कारण विलम्ब हो गया और मार्ग में उसे बादलों की घनघोर घटाओं ने घेर लिया।

विशेष:—भगवान् श्यामसुन्दर के आगमन की भनक सुन कर मीराँ की उत्कंठा पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है। वह महल पर चढ़कर देखती है कि कहीं वे दिखाई देते हों पर उनके स्थान पर मोर, पपीहा और कोयलादि मधुर स्वर से बोलते हुए सुनाई देते हैं, इन्द्र उमंग भरा उमड़ पड़ा है, दामिनी ने लाज छोड़ दी है, पृथ्वी ने भी इन्द्र से मिलने की खुशी में नये-नये रूप धारण किये हैं, भला यह सब देखकर मीराँ को कैसे धीर रह सकता है, परन्तु 'वेग मिलो महाराज' कहने के अतिरिक्त उसका वश ही क्या है ! इस पद में वर्षा के वातावरण का संक्षिप्त पर बड़ा ही मनोहर वर्णन है।

३७—**विशेष:**—मेवाड़ छोड़ने के पश्चात् मीरांबाई वृन्दावन-यात्रा को गई तब ब्रज के कई स्थानों में उसने भ्रमण अवश्य ही किया होगा। भावुक हृदय से अनुमान किया जा सकता है कि श्रीराधा के पीहर बरसाने जाने पर वर्षा काल में वहाँ की पहाड़ी पर कोमल स्वर से मयूरों की कूक को सुन कर उसे इस पद की स्फुरणा हुई हो। परन्तु उस सुहावने मौसम में 'ध्याने ध्याने तद्रूपता' के अनुसार वह जब अपने चित्तचोर श्यामसुन्दर की प्रतीक्षा में बाहर आई होगी तब वर्षा की फुहार में उसकी साड़ी की कोर भींजने लगी होगी जैसा कि उसने तीसरी कड़ी में कहा है।

३६—**विशेष:**—इस पद में वर्षा काल के मादक वातावरण में श्याम के बिना तड़पती हुई विरहिणी के हृदयोद्‌गार हैं। पद के तीसरे व चौथे चरण में विरह-तीव्रता के ऐसे विलक्षण भाव हैं जो हृदय को प्रभावित कर विरहिणी की छटपटाहट-वेदना का अनुभव करा देते हैं। वास्तव में ही श्याम-मिलन नहीं हुआ तो फिर इस जीवन की सार्थकता ही क्या ?

४१—निहोरा = अनुनय विनय, प्रार्थना।

विभाग ६ प्रेमालाप

प्रेम की पराकाष्ठा में प्रेमालाप वा
विरहालाप का होना स्वाभाविक है।
उस परिस्थिति में मन एवं वाणी
पर नियन्त्रण न होना भी
स्वाभाविक है।

* भूमिका *

*

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्य भीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्ति युक्तो भुवनंपुनाति ॥
(श्रीमद्भागवत ११-१४-२४)

'जिसकी वाणी गद् गद् हो जाती है, हृदय द्रवित हो जाता है, जो बारम्बार ऊँचे स्वर से नाम ले ले कर मुझे पुकारता है, कभी रोता है कभी हँसता है और कभी लज्जा छोड़कर नाचता है, मेरा गुणगान करता है, ऐसा भक्तिमान् पुरुष अपने को पवित्र करे इसमें तो बात ही क्या है परन्तु वह अपने दर्शन और भाषणादि से जगत को भी पवित्र कर देता है ।'

चित्तवृत्ति में जब प्रमाण से अधिक मात्रा में किसी भाव का आवेश होता है तब मनः स्थिति वश में नहीं रह पाती। उस परिस्थिति में मनुष्य अपने हृदय का उफान किसी भी प्रकार से कैसे भी शब्दों में व्यक्त करता है यही सब आलाप है। उस समय विचार शक्ति पूर्ण रूप से कार्य नहीं कर पाती। विरह के भावों का विशेष रूप से आवेश हो तो विरहालाप और प्रेम का हो तो प्रेमालाप कहा जाता है। ये ही सब तीव्र मात्रा में होने पर पागल के से प्रलाप होने लगते हैं।

इस छठवे प्रेमालाप विभाग में मीरांबाई के उन पदों का संग्रह है जिनमें समय समय के प्रेमावेश के उद्गार और शब्द

गाये गये हैं। उनमें प्रेमालाप कभी स्वगत, कभी सखी के साथ तो कभी अपने प्रियतम श्यामसुन्दर के साथ होता दिखाई देता है, जिसमें उत्कंठा, प्रतीक्षा, आशा, कल्पना आदि कई उमड़ते हुए भाव व्यक्त हैं।

इस विभाग के ११, १२, १३, १४, १५, २२, २३, २४, ३५, ४१, ५३, ५६, ५७, ५८, ५६, ६०, ६१, ये १७ पद गुजराती भाषा के हैं, तथा ५१ वां पद पंजाबी भाषा-छटा लिये है।

सं०-२०, २६, ५४, ५६, ६२ व ६३ ये ६ पद निर्गुणी भाव-ज्ञान के हैं।

अन्य संतों के 'प्रेमालाप' सम्बन्धी उद्गार।

कण्ठावरोध रोमाञ्चाश्रुभिः परस्परं लपमानाः
पावयन्ति कुलानि पृथिवीं च ॥
(ना० भ० सू० ६८)

ऐसे अनन्य प्रेमी भक्त, कण्ठावरोध, रोमाञ्च, और अश्रु-युक्त नेत्र वाले होकर परस्पर सम्भाषण करते हुए अपने कुलों को और पृथ्वी को पवित्र करते हैं।

मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवताः सनाथा चेयं भूर्भवति ॥७१॥

उन्हें देखकर पितर गण प्रमुदित होते हैं, देवता नाचने लगते हैं और यह पृथ्वी सनाथा हो जाती है।

प्रेम लग्यो परमेश्वर सों तब भूलि गयो सिगरो घरबारा
ज्यों उन्मत्त फिरै जित ही तित नेकु रही न सरीर सँभारा।
स्वास उस्वास उठै सब रोम चलै दृग नीर अखंडित धारा
'सुन्दर' कौन करै नवधा विधि छाकि पर्‍यो रस पी मतवारा॥

'प्रेमालाप' मीराँ की वाणी में—

अपने प्रियतम की साँवरे मुखचन्द्र की अपूर्व छटा पर मीराँ मुग्ध होगई, उनकी नैन माधुरी ने उसे विकल कर दिया——

(३४) चन्द्र वदन पर म्हारो भँवरो बस्यो ए आली।
(३८) अँखियाँ प्यारी लागी रे साँवरिया थारी।

परन्तु वे तो—

(३) आवत प्रेम को मोल, राधा के संग किलोल।

अर्थात् शुद्ध भक्ति भाव से रीझते हैं इसलिये लोक मर्यादा का भय भी उसने छोड़ दिया—

(२३) में तो तजी छे लोक नी शंका, प्रीतम का घर है बंका, मीराँ ए दीधा डंका।

(३४) लगन लगी जद्याँ लाज कहाँ गई। प्रीत करयां पाछो पडदो कस्यो ए आली॥

यही नहीं उसने अपने प्यारे के लिये अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया—एक प्रकार से उन्हें बिक गई—

(१) तन मन धन करि वारणौ—नैणां रस पीजै हो।
(१७) मीराँ हरि के हाथ बिकानी, सरवस दे निबडी री।

उनके प्रेम में अपने आपको रंग देने के लिये उनसे आग्रह ही नहीं करती अपितु उनके आगे धरना देने तक का भी साहस रखती है——

(२०) कृष्ण पीऊ मोरि रंग दे चुँदड़िया, ऐसी रंग से रंगवादे सांवरिया धोबी धोवे चाहे सारी उमरिया। बिन रंगायाँ घर नहीं जाउं, बीत जाय चाहे सारी उमरिया ॥

मीराँ ने उन कृष्ण वर को वर लिया चाहे ब्रज में--

(३४) वृन्दावन की कुंज गलिन में, गह लीनो मेरो हाथ,
लीनी भुज भर साथ, सांवरे सलोने गात कन्हैया।
जनम जनम के नाथ ॥

चाहे स्वप्न में,

(५५) माई मोहि सुपना में परणी श्याम। दूल्है श्रीभगवान।
डरती बोलूँ नहीं रे म्हारा, मैंदी में रच्या हाथ ॥

अथवा साँवरे के द्वारा कुछ टोना किये जाने पर--

(५) साँवरी सी किसोर मूरत कछुक टोना करयो, छाने ये
वर वरयो।

जो भी हो उसका तो निश्चय हो चुका है—

(४०) सखी कारो कान वर म्हारो। लोग कहे कछु कारो,
कारो हमारो तो प्राण अधारो ॥

ऐसे सर्वगुण सम्पन्न प्रियतम से, उनमें किसी अखरने वाले लक्षण के होने पर भी, तनिक दूर रहने की कल्पना ही भला कैसे सह्य हो सकती है---

(३२) कहो तो सखी अब क्यों छोड़ूँ, वो पति मैं वांकी नार साँवरियो भरतार ॥

उनके पधारने की सुनकर उनका प्रेम भरा स्वागत करने की उमङ्ग दौड़ पड़ती है—

(५२) सेजडली सुधार गिरधर आवणाँ ये। पलकाँ सैं कराँ पाँवड़ा, अँचरा से मग झार, मीराँ उनकी नार ॥

कभी प्रियतम के निर्मोही हो जाने पर भीतर की झुंझलाहट भी प्रकट हो जाती है—

(६) कै तुम उपर कामण कीया, कै भरमाया थाँने दूजी सोकाँ। मीराँ कहाँ जाय पीव थकाँ ॥

(१८) ऐरी दई तेरो काह बिगाड़ो छोटा कन्त मोहे दीना। आली आन पड़ी फंदे बिच लोक लाज तज दीना ॥

(४८) अहो काँई जाणे गुवालियो बेदरदी पीड़ (तो) पराई। कुण करे थारी (जो) बड़ाई ॥

(४६) मैं ना बोलूँ तुम से रे।

झुंझलाहट कुछ तीव्र होती हुई उपालम्भ का स्वरूप धारण करती है—

(४६) इतनूं काँई छे मिजाज म्हारे मिंदर आवतां थांनै, कुबज्या आइ काँई याद,।

(४७) आखिर जात अहीर ।

(३६) प्रीत करो तो मेरो बोल सहो ।

अन्त में अपनी ओर से अखंड प्रीति निभाने का भाव व्यक्त करती है—

(३९) जो तुम तोड़ो पिया मैं नहीं तोड़ूं ।
तोरी प्रीत तोड़ी कृष्ण कोण संग जोड़ूँ ।

६—प्रेमालाप के पद

*

अभिलाषा १

ऐसे प्रभु जाण न दीजै हो ।

तन मन धन करि वारणै हिरदै धरि लीजै हो ॥०॥

आव सखी मुख देखिये नैणां रस पीजै हो ।

जिह जिह विधि रीझै हरि सोई विधि कीजै हो ॥१॥

सुन्दर श्याम सुहावणा मुख देख्याँ जीजै हो ।

मीराँ के प्रभु रामजी बड़ भागण रीझै हो ॥२॥

दर्शनानन्द २

सखी म्हारो कानूड़ो कलेजे की कोर ॥०॥

मोर मुगट पीतांबर सोहै, कुँडल की झकझोर ॥१॥

बिंद्राबन की कुँज गलिन में, नाचत नंद किशोर ॥२॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कंवल चित चोर ॥३॥

पूर्व-संस्कार ३

माई री मैं तो लियो गोविन्दो मोल ॥०॥

कोई कहै हलको कोई कहै भारी, लियोरी तराजू तोल ॥

कोई कहै मुँहघो कोई कहै सुहँघो, लियोरी अमोलक मोल ॥१॥

कोई कहै कालो कोई कहै गोरो, आवत प्रेम के मोल ॥

वृन्दावन की कुँज गलिन में, लियोरी बजंता ढ़ोल ॥२॥

कोई कहै घर में कोई कहै बन में, राधा के संग किलोल ॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, पूर्व जन्म के बोल ॥३॥

अभिलाषा ४

चलो मन गंगा जमना तीर ॥०॥
गंगा-जमना निरमल पाणी, सीतल होत सरीर ॥१॥
बंशी बजावत गावत कान्हो, संग लियाँ बलबीर ॥२॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, कुँडल झलकत हीर ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कंवल पर सीर ॥४॥

पूर्वराग ५

माई मेरो मोहने मन हरयो।
कहा करूँ कित जाऊँ सजनी, प्रान पुरुष सूँ वरयो ॥०॥
हूँ जल भरने जात थी सजनी, कलस माथे धरयो ॥१॥
साँवरी सी किसोर मूरत, कछुक टोनो करयो ॥२॥
लोक लाज बिसारि डारी, तबहीं कारज सरयो ॥३॥
दासि मीराँ लाल गिरधर, छाने ये वर वरयो ॥४॥

अनन्यता ६

म्हारा सुगण साजन बोलो मुखाँ।
बोलो मुखाँ जरा बैठो नखाँ ॥०॥
कर कृपा मेरी सेज बिराजो।
माफ करीज्यो सब भूला चुकाँ ॥१॥
कै तुम उपर कामण कीया।
कै भरमाया थाँने दूजी सोकाँ ॥२॥
मैं तो दासी थाँरी जनम जनम की।
तुम ठाकुर म्हारे शीष रखाँ ॥३॥
ज्यो ओगुण तोही तुमरी बाजूँ।
मीराँ कहाँ जाय पीव थकाँ ॥४॥

अभिलाषा ७

ऐसे पियै जान न दीजै हो ॥०॥
चलो, री सखी ! मिलि राखिये नैननि रस पीजै, हो ।
श्याम सलोनो साँवरो, मुख देखत जीजै, हो ॥१॥
जोइ जोइ भेष सों हरि मिलें, सोइ सोइ कीजै, हो ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बड़ भागन रीजै, हो ॥२॥

विनय ८

तनक हरि चितवौजी मोरी ओर ॥०॥
हम चितवत तुम चितवत नाहीं दिल के बड़े कठोर ॥१॥
मेरे आसा चितवनि तुमरी और न दूजी दोर ॥२॥
तुम से हमकूँ एक होजी हमसी लाख करोर ॥३॥
उभी ठाड़ी अरज करत हूँ अरज करत भयो भोर ॥४॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी देस्यूँ प्राण अकोर ॥५॥

दर्शनानन्द ९

झालो देती लाजूँ हेलो दियोई न जाय ॥०॥
बरज रही बरज्यो नहिं माने ।
छैल गुमानी म्हाँ सूँ रूठ्यो रूठ्यो जाय ॥१॥
सप्त सुरन तें बंसी बजाई ।
चितवन मेरो तें लियो चुराय ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण ।
भीड़ पड़्याँ मेरी करो सहाय ॥३॥

प्रेम-कटारी १०

आली ! साँवरे की दृष्टि मानो, प्रेम की कटारी है ॥०॥
लागत बेहाल भई, तन की सुध बुद्ध गई ।

तन मन सब व्यापो प्रेम, मानो मतवारी है ॥१॥
सखियाँ मिलि दोय चारी, बावरी सी भई न्यारी ।
हौं तो वाको नीके जानौं, कुंज को विहारी है ॥२॥
चंद को चकोर चाहै, दीपक पतंग दाहै ।
जळ बिना मीन जैसे, तैसे प्रीत प्यारी है ॥३॥
बिनती करूँ हे स्याम, लागूँ मैं तुम्हारे पाँव ।
मीराँ प्रभु ऐसी जानो, दासी ये तुम्हारी है ॥४॥

भक्त-वत्सलता ११ (गुज०)

कोने कोने कहुं दिलडानी वात, वारे वारे कोने कोने कहुं ॥०॥
पांडवनी प्रतिज्ञा पाळी, द्रौपदी नी राखी लाज रे ।
सुदामा नी वेळा वारी, उगार्यो प्रह्लाद रे ॥१॥
वृंदावन तमे वाहले उगार्युं, सुंदरी ने काज रे ।
पहेरी सजी महेले पधारो, रीझे मारो नाथ रे ॥२॥
मीराँ बाइ के प्रभु गिरधर ना गुण, × × × × ।
तमने भजी ने हुं तो थइ छुं रे, अणि दिन रळियात रे ॥३॥

प्रेम-कटारी १२ (गुज०)

कंही जइ करूँ रे पोकार, कारी मुने घाव लाग्यो छे
मैं कंही जइ करूं पुकार ॥०॥
पीउजी हमारो पारधी भयो छे मैं तो भइ हरणी शीकार रे ॥१॥
दूर से तो आइ गोळी लग गइ शीरू पे, नीकर गइ पारमपार रे ॥२॥
प्रेमनी कटारी मुने खेंच कर मारी थी, थइ गइ हाल बेहाल रे ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, हो गइ पारमपार रे ॥४॥

भक्त-वत्सलता १३ (गुज०)

वारे वारे कहोने कहीए दिलडानी वातो, वारे वारे कहोने कहीए ॥०॥
आगे तमे बोलडा बोल्या मारा राज ॥१॥

ते बोलडा संभारी मने कहेतां आवे लाज ॥२॥
पांडवो नी प्रतिज्ञा पाळी, द्रौपदी नी राखी लाज ॥३॥
सुदामा नी वेळा वारी, उगार्यो प्रल्हाद ॥४॥
प्रजापति ए नीमामां पूर्या मांहे देवतानो वास ॥५॥
मांजारीना बच्यांरे राख्यां, एवा श्री महाराज ॥६॥
वृन्दावन थी सालुडा लाव्यां, राधाजी ने काज ॥७॥
पहेरी ओढी महेले आव्यां, रीझया श्री महाराज ॥८॥
बाइ मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, सोहागी बनी सजी साज ॥९॥

सेवाभाव १४ (गुज०)

नित नित भजवुं तारूं नाम तारूं नाम मारा श्याम रे।
प्रेम थकी मने प्रभुजी मल्या होजी ॥०॥
सुनी सेजडीये अमने निद्रा न आवे व्हाला,
कांइ न सूझे घरनां काम मुंने काम रे ॥ प्रेम ॥१॥
आ कांठे गंगा वाला ओले कांठे जमना,
वचमां गोकळीयुं रूडुं गाम रूडुं गाम रे ॥२॥
भातरे भातना भोजन पीरसियां वहाला,
जमवा न आवे घेलो श्याम घेलो श्याम रे ॥३॥
बाइ मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण वहाला,
छेल्ली बाकीना राम राम राम राम रे ॥४॥

सेवाभाव १५ (गुज०)

नित नित भजवुं तारूं नाम तारूं नाम मारा श्याम रे।
प्रेम थकी मने प्रभुजी मव्या होजी ॥०॥
म्हारे तो आंगन प्रभुजी तुलस्यां रो झाड रे।
नित उठ सिंचण को म्हारो काम म्हारो काम रे ॥१॥

सोना चांदी को प्रभुजी घडो रे घडुलो ।
जल भरवा को म्हारो काम म्हारो काम रे ॥२॥
हाथ सुमरनी प्रभुजी तुलस्यां री माला ।
नित उठ जपुं तारूं नाम तारूं नाम रे ॥३॥
मीरां बाइ कहे प्रभु गिरधर नागर ।
नित उठ चरणा में म्हारूं ध्यान म्हारूं ध्यान रे ॥४॥

विनय १६

नाथ तुम जानत हो सब घट की मीराँ भक्ति करे रे प्रगट की॥०॥
नाही धोइ मीराँ ले समरणी तो पुजा करत सितापत की ।
सालिगराम कु तुलशी चढावे तो
भाल तिलक बीच टिपकी ॥१॥
राम मंदीर मां मीरांबाइ नाचे
ताल बजावत चुटकी ।
रुमझुम रुमझुम बाजत घुघरा
लाज तजी घुंघट की ॥२॥
विख ना प्याला राणाजी ए भेज्या
साधु संगत मीराँ अटकी ।
करी चरणामृत पी गइ मीराँ
अमृत की जेसी घुंटकी ॥३॥
सुरत दोरी पर मीराँ नाचे
शीर पे गागर उपर मटकी ।
मीराँ कहे हरी गीरधर ना गुण
सुरती लगी जेसी नटकी ॥४॥

दृढ-प्रेमानुराग　　　　　　१७

माई मेरे नैनन बान परी री ॥०॥
जा दिन नैना स्याम न देखौं बिसरत नाहीं घरी री ॥१॥
चित्त बस गई साँवरी सूरत उरतें नाहीं टरी री ॥२॥
मीराँ हरि के हाथ बिकानी सरवस दे निबड़ी री ॥३॥

शृँगार　　　　　　१८

स्याम बजावत वीणा री आली ॥०॥
आठ मास कार्तिक नहाए दान पुण्य बहु कीना ।
एरी दई तेरो काह बिगाड़ो छोटा कन्त मोहे दीना ॥१॥
करके शृंगार पलँग पर बैठी रोम रोम रस भीना ।
चोली केरे बन्द तरकन लागे, स्याम भए प्रवीणा ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणन चित लीना ।
अब तो आन पड़ी फंदे बिच लोक लाज तज दीना ॥३॥

सेवाभाव　　　　　　१९

खबरियाँ लेते आना मुरारी हमारी ॥०॥
सोने की थाली में लड्डु जलेबी ।
　　　　तुम जीमों मुरारी जीमावे राधे प्यारी ॥१॥
सोने की झारी में गंगा जळ पानी ।
　　　　तुम पीओ मुरारी पीलावे राधे प्यारी ॥२॥
सोने का डाबा में साकर की डली ।
　　　　तुम चाबो मुरारी चबावे राधेप्यारी ॥३॥
सोने की थाली में पान सुपारी ।
　　　　तुम चाबो मुरारी चबावे राधेप्यारी ॥४॥
पाट पितांबर सार की सुई ।
　　　　तुम पहनों मुरारी पहनावे राधेप्यारी ॥५॥

हींगलु को ढोलीयो मिसहु की सीरक ।
तुम पोडो मुरारी पोडावे राधेप्यारी ॥६॥
मीरां बाई के प्रभु गिरधर नागर ।
हरि चरणा पर जाउ बलिहारी ॥७॥

ज्ञान २०

कृष्ण पीऊ मेरी रंग दे चुँदड़ियाँ ॥०॥
ऐसी रंगत रंगवादे साँवरिया,
धोबी धोवे चाहे सारी उमरियाँ ॥१॥
बिना रंगायाँ घर नहीं जाऊँ,
बीत जाये चाहे सारी ऊमरियाँ ॥२॥
अध गोकल अध मथुरा नगरी,
ब्रन्दावन में सैय्याँ ॥३॥
संकड़ी सेरया में मोहन मल्या
भूली-भूली लाज बिसारी चुँदड़ियाँ ॥४॥
जमुना के नीरां तीरां धेनु चरावे,
अजब सुणावे माधू मीठी बंसरियाँ ॥५॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
हरि चरणां गुण गइयाँ ॥६॥

व्यंग २१

आया अठे अब जावो कठे साँवरिया, काँई मस आया अठे ॥०॥
झरमर झरमर मेवला बरसे
काली कामल लाया कठे साँवरियाँ ॥१॥
केशर पाग कसूमल जामा
छोगा की लुक लाया कठे साँवरिया ॥२॥

नंदगाँव बरसाणा कहिये
ज्याँ लाडू बटै साँवरिया ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर
हरि चरणं चित लाया कठे साँवरिया ॥४॥

प्रभाती २२ (गुज०)

जागो रे अलबेला का'ना, मोटा मुगटधारी रे ।
सहु दुनिया तो सूती जागी, प्रभु तमारी निद्रा भारी रे ॥०॥
गोकुळ गाम नी गायो छूटी, वणज करे वेपारी रे ।
दातण करो तमो आदि देवा, मुख धुओ मोरारि रे ॥१॥
भात भातना भोजन नीपायां, भरी सुवर्ण थाळी रे ।
लवंग सोपारी ने एलची, प्रभु पानंनी बीडी वाळी रे ॥२॥
प्रीत करी खाओ पुरूषोत्तम, चवडावे व्रजनी नारी रे ।
कंसनी तमे वंश काढी, मासी पूतना मारी रे ॥३॥
पाताळे जइ काळीनाग नाथ्यो, अवळी करी असवारी रे ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हुं छुं दासी तमारी रे ॥४॥

नैवेद्य-समर्पण २३ (गुज०)

हांरे में तो कीधी छे ठाकोर थाळी रे,
पधारो वनमाळी रे वनमाळी ॥०॥
प्रभु कगाल तोरी दासी, हांरे प्रभु प्रेमना छो तमे प्यासी ।
दासीनी पूरजो आशी ॥१॥
प्रभु साकर द्राक्ष खजूरी, मांहे नथी बासूंदी के पूरी ।
मारे सासु नणदी नी सूळी ॥२॥
प्रभु भात भात ना लावुं मेवा, तमे पधारो वासुदेवा ।
मारे भुवन मां रजनी रहेवा ॥३॥

हाँरे में तो तजी छे लोकनी शंका, प्रीतम का घर हे बंका।
बाई मीराँ ए दीधा डंका ॥४॥

विनय २४

मार्याँ रे मोहनां बाण, धुतारे मने मार्याँ मोहनां बाण ॥०॥
ध्रुव ने मार्याँ, प्रह्लाद ने मार्याँ, ते ठरी ना बेठा ठाम ॥१॥
शुकदेव ने गर्भवास मां मार्याँ, ते चारे युगमां परमाण ॥२॥
हिरण्यकश्यप मारी वा'ले उगार्यो प्रह्लाद,
दैत्यनो फेड्यो छे ठाम ॥३॥
सायर पाज बांधी वा'ले सेन उतारी, रावण हण्यो एक बाण ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, हमने पार उतारो श्याम ॥५॥

गुणगान २५

तेरो गुण ना बिसरूँ महाराज ॥०॥
गहरी गहरी नदियाँ नाव पुरानी। नावडियो नादान ॥१॥
पेले जो ढ़ावे सतगुरू ऊभाँ। ओले ढ़ावे संसार ॥२॥
धर्मी धर्मी पार उतर गया। पापी रे नाव डुबाय ॥३॥
नाका मँहिली नथड़ी दे दूँ। और गला को हार ॥४॥
अध गोकुल अध मथुरा नगरी। अध बिच जमुना जाय ॥५॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। हरि चरणाँ गुण गाय ॥६॥

ज्ञान २६

म्हारे धन थेंई छो। थेंई छो दीनदयाल म्हारे धन थेंई छो ॥०॥
सुमिरण म्हारे सेलडो रे हरि हिया नो हार।
कृष्ण कटारो म्हारे बांकडो म्हारे गोविन्द नी तलवार ॥१॥
सोनो सोनी पारख रे में काँइँ जाणु गंवार।
हरिजन हरि ने ओळखे म्हारे हीरा रो बोपार ॥२॥
मीराँ हरि री लाडली रे रही भजन भरपूर।
एक बार दरसण दीजो म्हाने नागर नन्द किशोर ॥३॥

गुणगान २७

कारो कारो कारो छे सबसे बुरो ॥०॥
इन कारा से प्रीत न कीजे । मन म्हारो बहुत हरयो री ॥१॥
पेठ पतालां काली नाग जो नाथ्यो, फण फण निरत करयो री ।२।
इन काळा सुं काळ डरयो है, मोह मृगतृष्णा हरयो री ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, इन कारां से परम पद
पायो री ॥४॥

दर्शनातुरता २८

थें कहो ने जोशी राम मिलण कब होसी ॥०॥
आवोजी जोशी बैठोजी जोश, वांच सुणावो थांरी पोथी ।
पांच मोहर दखणा जो देस्यां, हीरा जडावुं थांरी पोथी ॥१॥
पाट पीताम्बर आपने पहरन देस्यां, काना पहराऊँ सांचा मोती ।
दूध पीवा आपने गौ जो देस्यां, जीमावां थांरा गोती ॥२॥
जतरा पीपळ रा पता ए राधारानी, उतरा दिनां सुं प्रभु आसी ।
पवन वाज्या ने पतवा जो उडिया, आन मिल्या अविनासी ॥३॥
मीरांबाई के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल आन बसी ॥४॥

आतुरता २९

कहां उलझे श्याम कुंजन में ॥०॥
इत आवत देख्या श्यामसुन्दर ने, कित जावत हो चित चोरी ।
गल बिच बांय श्याम ने डारी तो करी अंग से बरजोरी ॥१॥
सोहती गुलाब, सोहन झूमका, हार तो प्रेम हजारी ।
आन अचानक मेरी बैयां मरोरी, छीन लियो हार हजारी ॥२॥
मिल गये श्याम सुन्दर प्रीतम प्यारा, अब में भई हूं चकोरी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर मिलिया, चरण कमल चित दो री ॥३॥

प्रार्थना ३०

आजो जी घनश्याम म्हारे, माखन मिश्री खावा ने ॥०॥
थें आजो पिया, संग मत लाजो, नहीं छे दधि लुटावा ने ॥०॥
एक जांवणी दही जमावूँ प्रभुजी के भोग लगावा ने ॥२॥
ऊँची मेडी पलंग झकोरा, म्हूँ छूँ सेज बिछावा ने ॥३॥
मीरांबाई गिरधर नागर, रँग भर रास रमावा ने ॥४॥

प्रभाती ३१

चलोरी सखी अणी रंग भवन में, सुन्दर श्याम जगावा ने ॥०॥
पागा का जों पेचज ढीला, जामा की कस दूरी जी ॥१॥
आँखडल्याँ रा कजला फीका, मुख बीडल्यां लिपटानो जी ॥२॥
सारी रैन श्यामा संग खेल्या, अब माखन मिश्री खावा जी ॥३॥
मीरांबाई के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित छावाजो ॥४॥

अनन्य-भाव ३२

म्हाँरे सेजां मांडे छे जी नन्दकुमार ॥०॥
कहो तो सखी अब क्यों छोडूं, वो पति मैं वांकी नार ॥१॥
बुरी कहै कोई भली सुनावो, मारे एक अधार ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सांवरियो भरतार ॥३॥

नैवेद्य-समर्पण ३३

तुम जीमो गिरिधर लालजी ॥०॥
मीराँ दासी अरज करे छे, सुनिये परम दयालजी ॥१॥
छप्पन भोग छतीसों विञ्जन, पावो जन प्रतिपाल जी ॥२॥
राजभोग आरोगो गिरिधर, सनमुख राखो थालजी ॥३॥
मीराँ दासी चरण उपासी, कीजे वेग निहालजी ॥४॥

रूपासक्ति ३४

चंद्र वदन पर म्हारो भँवरो बस्यो ए आली ॥०॥

जल बिच कमल कमल बिच कलियाँ ।

कलियाँ ने देख्याँ म्हारो भँवर हँस्यो ए आली ॥१॥

लगन लगी जद्यां लाज कहाँ गई ।

प्रीत करयाँ पाछो पड़दो कर्यो ए आली ॥२॥

मीरां बाई के प्रभु गिरधर नागर ।

हरि का चरणाँ में म्हारो जीवडो फँस्यो ए आली ॥३॥

दर्शनानन्द ३५ (गुज०)

नागर नंदा रे बाळमुकुंदा, छोडी द्योने जगनां धंधा रे ।

मारी नजरे रहेजो रे ॥०॥

काम ने काज मने कांइ नव सुझे,

भूली गइ छुं मारा घर धंधा रे ॥१॥

आडु अवळु में तो कांइ नव जोयुं,

जोया जोया छे पुनम केरा चंदा रे ॥२॥

बाइ मीराँ के प्रभु गीरधर नागर,

लागी छे मोहनी मने फंदा रे ॥३॥

दर्शनानन्द ३६

कृष्ण मेरी नजर के आगे ठाडे रहो रे ॥०॥

मैं जो बुरी श्याम अवर भली है ।

भली कि बुरी मेरे दिल रहो रे ॥१॥

प्रीत को पैंड़ो बहुत कठिन है ।

चार कही दश अवर कहो रे ॥२॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।

प्रीत करो तो मेरो बोल सहो रे ॥३॥

प्रार्थना ३७

साँवरा ठाडी रहूँ घर जावुँ रे ॥०॥
कबकी खड़ी में तेरे द्वार पर । खड़ी खड़ी कुमलाऊ रे ॥१॥
भाल तिलक तुलसी की माला । में तो जपती आऊँ रे ॥२॥
पाँय घूंघरा रिमझिम बाजे । नाचत गाती आऊँ रे ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । गुण गोविन्द का गाऊँ रे ॥४॥

प्रेम-लगन ३८

अँखियाँ प्यारी लागी रे साँवरिया थारी ॥०॥
चालोजी कृष्ण आपां बाग लगावां, आप चेड़ा हम क्यारी ॥१॥
चालोजी कृष्ण आपां मेल चुणावां, आप झरोखा हम बारी ॥२॥
चालोजी कृष्ण आपां चोपड़ खेलां, आप पासा हम सारी ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आप जीत्या हम हारी ॥४॥

अनन्यता ३९

जो तुम तोड़ो पिया में नहीं तोड़ूँ ।
तोरी प्रीत तोड़ी कृष्ण कोण सँग जोड़ूँ ॥०॥
तुम भये तरूवर में भई पंखियाँ ।
तुम भये सरोवर में तोरी मछिया ॥१॥
तुम भये गिरिवर में भई चारा ।
तुम भये चंदा में भई चकोरा ॥२॥
तुम भये मोती प्रभु में भई धागा ।
तुम भये सोना में भई सुहागा ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु ब्रज के बासी ।
तुम मोरे ठाकुर में तोरी दासी ॥४॥

निश्चय ४०

सखी कारो कान वर म्हारो ।
लोग कहे कछु कारो कारो हमारो तो प्राण अधारो ॥०॥
पैठ पाताल काली नाग नाथ्यो । फण फण नृत्य करारो ॥१॥
मीराँ के हरि गिरधर नागर । शरण ही राख उबारो ॥२॥

प्रेमपथ ४१ (गुज०)

घेलां अमे घेलांरे अमने घेला मां गुण लाध्यो ॥०॥
आगे तो अमे कांइ न जाणयुं मन माया मां बांध्युं ।
भवसागर मां भुला पडीयां मारग मळीया माधुँ ॥१॥
घेलां तो अमे हरीनां घेलां, दुरजनीया शुं जाणे ।
जे रस देवी देव ने दुर्लभ, ते रस घेलां माणे ॥२॥
घेलां तो अमने हरीए कीधां, निरमळ कीधां नाथे ।
पुरव जनम नी प्रीतलडी अमने, हरीए झाल्यां हाथे ॥३॥
घेलां घेलां तमे शुं करो, घेलांनुं काम करशे ।
सुखनुं केतां दुःखज लागे ते नर क्यांथी मरशे ॥४॥
घेलां तो अमे कांइ न जाणतां साधु चरणे सेव्यां ।
मीराँ कहे प्रभु गीरधरना गुण समजे कारज सीध्यां ॥५॥

उलाहना ४२

कहाँ बसियो कान्हा रातड़ली ।
अरे तेरे मुख बिच आवै मोहि बासड़ली ॥०॥
कहा तुमारो नाम जु कहिये । कहा तुमारी जातड़ली ॥१॥
भगत बिरद मेरो नाम जु कहिये । जादौं हमारी जातड़ली ॥२॥
मोहे कहै अलमस्त दिवानी । कहा लगाओ बातड़ली ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । आन मिलो परभातड़ली ॥४॥

लीला ४३

कहाँ कहाँ जाउँ तोरे साथ कन्हैया बंसी केरे बजैया, कन्हैया ॥०॥
वृन्दावन की कुंज गलिन में । गह लीनो मेरो हाथ कन्हैया ॥१॥
दधि मेरो खायो मटकिया फोरी । लीनी भुज भर साथ कन्हैया २॥
लपट झपट मोरी गागर पटकी । साँवरे सलोने गात कन्हैया ॥३॥
कबहुँ न दान लियो मनमोहन । सदा गोकल आत जात कन्हैया ।४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । जनम जनम के नाथ कन्हैया ॥५॥

सेवाभाव ४४

तुम जीमो गिरधरलालजू ॥०॥
मीराँ दासी अरज करै छै, मोकूँ करो निहाल जू ॥१॥
या बिरियाँ है बाल भोग की, लीज्यो चित में धारजू ॥२॥
केसर अतर पुष्प के हरवा, इण विध करो सिंगारजूँ ॥३॥
छप्पन भोग छतीसों बिंजन, लाई भर भर थालजू ॥४॥
पान गिलोरी सुगँध मिलाकर, कीनी है सब त्यारजू ॥५॥
मीराँ दासी किई परिक्रमा, मोकूँ करो निहालजू ॥६॥

सेवाभाव ४५

बावरी कहै रे साधो बावरी कहै (मीरांबाई नै दिवानी दुनिया) ॥०॥
बनके तमोलन कतरूँ पान, पानके खेवैया मेरे श्याम सुजान ॥१॥
बन मालिन गूँथूँ बनमाल, उर पहरावै मीराँ गिरधरलाल ॥२॥

दोहा

मीराँ हर की लाडली, नित प्रति रहे हजूर ।
साधाँ रे सनमुख बसै, दगाबाज से दूर ॥३॥

उलाहना ४६

श्याम बंशी वाला कनैया, मैं नाँ बोलूँ तुमसे रे ॥०॥
घर मेरा दूरा गगरी मेरी भारी, पतली कमर लचकाय रे ॥१॥

सास ननँद की लाज से मरत हूँ, हमसे करत बरजोरी रे ॥२॥
मीराँ दासी तुमसे झगरी, चरण कमल की उपासी रे ॥३॥

उलाहना   ४७

साँवरो बसे छैं पेली तीर, आछ्यो म्हारो धीरो रे मारूडो धीर॥०॥
गहरी नदियाँ नाव पुरानी, खेवटियो बेपीर ॥१॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, कानाँ कुंडल शिर चीर ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आखिर जात अहीर ॥३॥

उपालंभ   ४८

अहो काँई जाणें गुवालियो बेदरदी पीड़ (तो) पराई ॥०॥
(थे) जनमत ही कुल त्यागन कीनों, बन बन धेनु चराई ॥१॥
चोर चोर दधि माखन खायो, अबला नार सताई ॥२॥
सोला सैंस गोपी तज दीनी, कुबजा संग लगाई ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, कूँण करै थारी (जो) बड़ाई ॥४॥

उलाहना   ४९

इतनूं कांईं छै मिजाज, म्हारै मिंदर आ (व) तां।
थांनै इतनूं कांईं छै मिजाज ॥०॥
तन मन धन सब अरपन कीनूं, छाडी छै कुल की लाज ॥१॥
दो कुल त्याग भई बैरागण, आप मिलण की लाग (के काज) ॥२॥
मीराँ के प्रभु कबरे मिलोगे, कुबज्या आई कांईं याद ॥३॥

भगवद्-भूषण   ५०

मुक्ति को गहणों पहरस्याँ काँई पहरचो हे हरि गुरू परताप ॥०॥
म्हारै भाव भगति को कंकण वण्यां साँवलड़ो हे म्हारै हतफूल ॥१॥
म्हारै सील को बाजूबंद थिरक रह्यो, साँवलड़ो हे बाजूबँद री लूम।२।
म्हारै च्यारूँ जुग चुड़लो बण्यूँ, साँवलड़ो हे चुड़ला री चूँप।३।

म्हारै जप तप अँगियाँ भली बणी,
सॉँवलड़ो हे अँगियां री लूम ॥४॥
म्हारै तन को तिमण्यों बण्यों,
साँवलड़ो हे हिवड़ा रो हार ॥५॥
म्हारै नवधा नथ सुहावणी,
साँवलड़ो हे मोत्यां बिचली लाल ॥६॥
म्हारै फूल झूमका फब रह्या,
साँवलड़ो हे झूमर री लूम ॥७॥
म्हारै करणी रो काजल घुल रह्यो,
साँवलड़ो हे (म्हारै) तिलक ललाट ॥८॥
म्हारै राम नाम की चूनड़ी,
साँवलड़ो हे स्यालूड़ा री कोर ॥९॥
म्हें तो नख सिख गहणों पहरियो,
म्हे तो जास्यां साँवलड़ा री सेज ॥१०॥
बाई मीराँ रँग में भली रँगी,
साँवलड़ो हे (म्हारा) सिर को मोड़ ॥११॥

रूपासक्ति ५१ (पंजाबी)

सुनि नी अमानी अँखियाँ निमाँनी ॥०॥
मनमोहन दे रूप लुभानी साढी गलनैं कहन माँनी ॥१॥
लोकाँ दे डर छपिके छिपावाँ, भरि भरि आवत पाँनी ॥२॥
मीराँ प्रभु गिरधर गल साढ़ी, ढँकी छिपी सब जाँनी ॥३॥

सेवाभाव ५२

सेजड़ली र सुधार गिरधर आँवणाँ ये (बाईजी)
सेजड़लीर सुधार ॥०॥

आँवण री बिरियाँ भई हे बाई महलि ढोल्यो ढा० ॥१॥
अतर सुगंध मिलाय केरी बाई घिवरो दिवलो जा० ॥२॥
जाये जुही और मोगरो चंपा कलियाँ सुधार ॥३॥
पलकाँ सैं कराँ पाँवडा, अँचरा सैं मग झार ॥४॥
गिरधर म्हारो परम सनेही, मीराँ उनकी नार ॥५॥

अनुराग　　　　　　　　५३ (गुज०)

हुं रोई रोई अखीयां राती करूं, राती करूं ने गाती फरूं
अन्य कोई मारी नजरे न आवे, वर तो गिरधारी ने वरूं ॥१॥
सेवा ने स्मरण एनुं ज नीश दिन, हृदय कमल मां ध्यान धरूं ।२।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, गंगा जमना न्हाती फरूं ॥३॥

रहस्य　　　　　　　　५४ (गुज०)

मारी वाडीना भमरा, वाडी मारी वेडीशमां ।
　　वेडीशमां फुल तोडीश मां, मारी वाडीना भमरा ॥०॥
आरे वाडी मां वहाला, पवन पानठीओ,
　　धीरज धरजे मनतुं, दोडीशमां—मारी० ॥१॥
आरे वाडी मां वहाला, चंपो ने मरवो,
　　　　वास लेजे तुं फुल तोडीशमां ॥२॥
आरे वाडी मां वहाला, आंबो रे मोर्यो,
　　　　पाका लेजे काचा तोडीशमां ॥३॥
आरे वाडीमां वहाला, त्रीकम टोयो,
　　　　गोफण लेजे गोळो छोडीशमां ॥४॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण,
　　　　चरण कमल चित छोडीश मां ॥५॥

प्रार्थना ५५

माई मोहिं सुपना में परणी श्याम ॥०॥
सुपना में बांध्यो डोरडो बाला, सुपना में आई मारे जान ।
तैंतीस क्रोड आया देवता म्हारे, दुल्हे श्री भगवान ॥१॥
गहली कंवरी मीराँ बावरी रे, सुपनो है आल जंजाल ।
सुपना में सांई मिला तोने, कोई बतायो सहनाण ॥२॥
अंग हमारे हलदी सुगंधी, सुंघो भीनो म्हारो गात ।
पर डरती बोलूं नहीं रे म्हारा, मैंदी में रच्या हाथ ॥३॥
दासी मीराँ की बीनती, थें सुणज्यो गरूड असवार ।
गज की बार पियादे धाए, पलक न लागी बार ॥४॥

विरहालाप ५६ (गुज०)

एतो कामणिया म्हारा बाळीडा जाणे दूजा कामणिया म्हारे नजरे न आवे ॥०॥
गिरधारी रे थारी गत न्यारी व्हाला,
इणडा में जीव संतो क्यांथी आवे ॥१॥
जंतर मंतर नी जूँठी बाजी,
गोड़ विद्या में गोता कुण खावे ॥२॥
संसार सागर व्हाला बहुजल भरिया,
जल में माछलियो संतो क्या खावे ॥३॥
कागळियानां कोरा कटका लखिने रे,
राधानां वर म्हारी नजरे न आवे ॥४॥
जड़ी बूँटी ना जोर नहीं हाले रे,
नाड़ी नां वेद म्हारी नजररयां न आवे ॥५॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर नां गुण,
दासी तुम्हारी दुःख बहु पावे ॥६॥

श्री गिरधर आगे नाचूँगी [पृ० २७६, पद ७

अभिलाषा ५७ (गुज०)

आव्यारे पियाजी मारू देसना हो कागळ,
आव्यारे पियाजी मारू देसना हो कागळ, कोरा कोरा कागळ ॥०॥
घेरी घेरी संईयो मारूजी । लखी लखी काव्य करशे रे पियाजी।१।
एरे कागळ मारे मोहोले ना थोक्या मारूजी ।
अध वच थी रे पाछा वळ्या रे पियाजी ॥२॥
सीर पर कलस कलस पर झारी मारूजी ।
तापर मांजु करेस रे ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण मारूजी ।
चरण कमळ मारा देसे रे ॥४॥

वियोग ५८ (गुज०)

चालाने वीहीला मेलतां मारूं मानतुं नथी मन ।
मानतुं नथी मन मारूं सुनुं भवन ॥०॥
हरि मारा हराडा ते ज्यां तेडे त्यां जाय ।
सैयर हावे सुं करूं मने वारे वारे वाहाय ॥१॥
घरमां तो मने गमतुं नथी सुजतुं नथी काम ।
फटकारीसी फरती फरूं ढुंडुं सारूं गाम ॥२॥
सेरीए सेरीए साद पडावुं दीवडा करूं चार ।
कोई भूदरनी भाळ बतावो आपुं एकावळ हार ॥३॥
जेने हैये हरि वस्या तेनुं जीवन धन्य ।
मीराँ ना स्वामी मळ्या तेतो वस्या मारे मन ॥४॥

ज्ञान ५९ (गुज)

बाई अमे पकडी आंबलियानी डाळ रे
जंगळ मांही एकली हो जी ॥०॥

ओतर दखण थी चढी एक वादळी रे ।
वरस्या बारे मेघ रे, बीजा ने मारे आखडी हो जी ॥१॥
नदी रे किनारे बैठो एक बगलो रे ।
हंसलो जाणी कीधी प्रीत रे । मुंढा मां झाली माछली हो जी॥२॥
फूलनो पछेडो ओढूँ प्रेम घाटडी रे ।
बाई मारो शामळीयो भरथार रे । बीजा ने मारी चुंदडी हो जी।३।
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण ।
मारो पियुडा परदेश रे । फरुके मारी आंखडी हो जी ॥४॥

भक्ति		६० (गुज०)

कोण जाणे रे बीजो कोण जाणे
मारी हाल तो फक्किरी मालमी बिना ॥०॥
हर दम उमीयाजिना हैडामां हरखुं (व्हाला)
नारायण नामनी मुंने लेहे तो लागी ॥१॥
कुबुद्धिडा कांइ नव जाणे हरिनी भक्ति मां (व्हाला)
समज्या विनानुं नोखुं नोखुं ताणे रे ॥२॥
बाई मीराँ कहे छे प्रभु गिरधर नागर (व्हाला)
अंतर राख्युं हरि तारे व्हाने रे ॥३॥

रूप-शृंगार		६१ (गुज०)

घूघरी घूघरी घूघरी रे, मेरी पाउं चल बाजे घूघरी ॥०॥
गोरे गोरे अंगे भला सालुडा बिराजे,
कोणे नाखी छे लाल भूरकी रे ॥१॥
गोरे गोरे अंगे भली अतलसी चोळी,
कोणे ओढी छे लाल चुंदाडी रे ॥२॥
गोरे गोरे अंगे भलां मोनीयां रे मोती,

कोणे पे'री छे लाल बुगरी रे ॥३॥
छोटी छोटी रे में तो वेण गूंथी छे,
गरबा गाउं छुं लाल सुरती रे ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
पाए पडुं छुं एने हरखी रे ॥५॥

निर्गुण-भाव   ६२

भई रे मैं राम दिवानी रे, कृष्ण दिवानी रे ॥०॥
आगे लशकर पाछे डेरा, जित देखूँ तित साहिब मेरा ॥१॥
कोरा घडा गंगाजल पानी, जो रे पीवे सो होय निर्बानी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरन कमल रज लपटानी ॥३॥

निर्गुण-भाव   ६३

भई रे मैं राम दिवानी रे ॥०॥
जो कोई हो राम दिवानी, पावै सोइ पद निर्बानी ॥१॥
लोक लाज शोभा कुल तजके, तन मन की सुध बिसरानी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आ मिल मोहे सारंग पाणी ॥३॥

अनन्यता   ६४

नेनां अटके रूप सु पल पल नहीं लागे ।
निशिदिन चात्रक उंचहे सोए न जागे ॥०॥
वसन अभूषण सब तजि पीअ के अनुरागे ।
मोहन मूरति सदि बसी अलबेली पागे ॥१॥
मात पिता सुत बंधवा रचि पचि सब भागे ।
मीन वियोगी क्यों जीये जब जल ति त्यागे ॥२॥
मीराँ प्रभु गिरिधर मिले पीया सेज सुहागे ।
छठे छाहार उनकी परोजे आपु (कु) न थे मांगे ॥३॥

प्रभाती ६५

चलो री सखी अणी कुन्ज भवन में, सुन्दर श्याम जगावा ने ॥०॥
सुन्दर श्याम जगाऊं मेरी सजनी, चंद्रमुख दर्शन पाऊंजी ॥१॥
मोर मुकुट सिर छत्र बिराजे, कुंडल की छबि छाईजी ॥२॥
माखन मिसरी भोग धराऊं, रूचि रूचि भोग लगाऊंजी ॥३॥
मीराँबाई के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल रज चाहूंजी ॥४॥

पदों के शब्दार्थ-भावार्थ-विशेष आदि
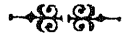
२—पद पाठान्तरः—

कानुड़ो काळजानी कोर छे सखी मारो० ॥
मोर मुकुट पीताम्बर धारी, कुण्डल झाक झकोर छे ॥
सासु बुरी मारी नणंद हठीली, न्हानो देवरीओ चोर छे ॥
व्रंदा ते वननी कुंज गलन मां, नाचतो नन्दकिशोर छे ॥
मीरां कहे प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमल चित चोर छे ॥

३—भावार्थः—प्रभु को कोई सगुण-साकार कहता है, तो कोई निर्गुण-निराकार, कोई उन्हें सुलभ बताता है तो कोई दुर्लभ, कोई गृह-त्याग द्वारा प्राप्त होने का बताता है तो कोई संसार में रहकर प्राप्त होने का परन्तु जैसे भी हो वे तो केवल प्रेम-भाव से ही रीझते हैं—बिक जाते हैं। मीरांबाई ने भी उन राधा रमण को अपनी प्रेम भक्ति से चौड़े धाड़े पा लिया—जैसा कि पूर्व जन्म में उसे उनसे वचन मिल चुका था।

पद पाठान्तरः—

में तो लीयो साँवरीआ ने मोल ॥०॥
कोई कहे घटतो कोई कहे बढ़तो
में तो लीयो बराबर तोल ॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर
म्हारे पूर्व जनम रो कोल ॥
कोई··················गोरो
मैं तो देख्यो घुंघट पट खोल ॥

दूसरा पाठान्तरः—

गोविन्दो रमैयो। भाई मैं तो लियो है रमैयो मोल।
कोई कहे सोँघो कोई कहे महँगो (मैं तो) लियो है हीरा सूँ तोल॥

कोई........हलको...भारी (मैं तो) लियोरी (पा० तराजू)
ताखड़ियाँ तोल ॥
कोई कहे छाने कोई कहे चौड़े, लियो रो बाजताँ ढोल ॥
कोई कहे घटतो, कोई कहे बढतो (मैं तो) लियो है बराबर तोल॥
कोई कहे कालो, कोई कहे गोरो, (मैं तो)देख्यो है घूंघट पट खोल ॥
मीरां के प्रभु गि—ना—(म्हारे) पूरब जनम रो कोल ॥

६—नखाँ=निकट। सोकाँ=सौतों ने। ज्यो... ....बाजूँ= भली-बुरी जैसी भी हूँ तुम्हारी ही कहलाती हूँ। थकाँ=होते हुए।

अधिक चरण:—

यो तो पति मेरे दायन आवे।
छोड़ दियो जी मैं तो हकां धकां ॥

८—पद पाठान्तर:—

तनक हरि चितवोजी मोरी वोर ॥ टेर ॥
मैं आधीन प्रभु सरण तुमारी ॥ और नहीं कहूँ जोर ॥१॥
हम चितवत तुम चितवत नांही ॥ दिल के बड़े जी कठोर ॥२॥
हमरे आस ऐक तुमारी ॥ आस नहीं कछू और ॥३॥
घड़ी घड़ी मैं अरज करत हूँ ॥ अरज करत भयो भोर ॥४॥
तुमसैं हमकूं नाहि मिलौगे ॥ हमसी लाख करोर ॥५॥
बन बन मांही ब्याकुल होलूं ॥ ढूंढ फरी चहूँ ओर ॥६॥
मीराँ के प्रभु कबर मिलौगे ॥ सूंदर प्रीतम मोर ॥७॥

अधिक चरण:—

हमसे तुमको बहुत हैं तुमसे हमको एक।
शशि के तारा बहुत हैं, तारा के शशि एक ॥

६—झालो=संकेत। हेलो=पुकार।

विचारिए:—

हो झालो दे छे रसिया नागर पनाँ ।
साराँ देखे लाज मराँ छाँ आवाँ किण जतनाँ ॥
छैल अनोखो कृह्यो न मानै लोभी रूप सनाँ ।
रसिक बिहारी नणद बुरी छै हो लाग्यो म्हारो मनाँ ॥

१०—पाठान्तर:—

साँवरे की दृष्टि............कटारी है ।
शुद्धि गई बुद्धि गई, लागत बेहाल भई ।
तन मन व्यापी व्यथा, प्रेम मतवारी है ॥१॥
अँखिया मिली दो चारी, बावरी जग से भई न्यारी,
में तो वाको...............बिहारी है ॥

गुजराती भक्त कवि दयाराम की गोपी भी साँवरे की दृष्टि से घायल होकर पुकार उठती है:—

तें तो मने मारीरे, मंद हसणी तारी बंक विलोकणी
तेथी कांई सारी छे कटारी रे ॥०॥
आंख एवी छे कामण गारी,
तेरी चली चश्म तलवार घायल मोहे करडारी ।

विचारिए:—

श्याम दृगन की चोट बुरी री ॥
ज्यों ज्यों नाम लेति तू वाको । मो घायल पे नौन पुरीरी ॥१॥
ना जानों अब सुध बुध मोरी । कौन विपिन में जाय दुरीरी ॥२॥
नारायन नहिं छूटत सजनी । जाकी जासों प्रीति जुरीरी ॥३॥

११—वेळावारी=भीड़ में सहाय कारी । रळियात=निहाल ।

१२—कारी=गहरा । पारधी=शिकारी ।

१३—ते······· लाज=उन वचनों को याद कर कहने में मुझे लज्जा आती है। देखो पद ११। प्रजापात=कुम्हार। नीमामां=अलाव में। पूर्यां=बन्द किये थे। देवता नो=अग्नि का। मांजारी ना=बिल्ली के। सालुडा=साड़ी के प्रकार विशेष।

१६—सुरत········नटकी=सिर पर मटकी व उस पर गागर रखकर चलने वाली पनिहारी तथा रस्सी पर चलने वाले नट के समान मीराँ भी सांसारिक द्वन्द्वों की ओर से समता साधकर चित्त वृत्ति को एकाग्र कर ध्यान करती है।

१६—सार=लोहा। हींगलु=हिंगुल, सिंदुर। ढोलीओ=पलंग। मिसरू=मखमल। सीरक=रजाई।

२०—भावार्थः—कृष्ण············उमरियाँ=मीरांबाई अपने प्यारे कृष्ण से, अपनी चित्त वृत्ति रूप चुनरी को प्रेम के ऐसे गहरे रंग में रँगवा देने को कहती है जो कदापि छूट न सके। बिना·········ऊमरियाँ=इष्ट प्राप्ति करके ही छोड़ूँगी। तेरे दर पे अड़े हैं कुछ करके उठेंगे, या वस्ल भी होगा या मर के हटेंगे।

पाठान्तरः—

ऐसी रंगो जी साँवरा रंग नहीं छूटे,
धोबी·········उमरियाँ॥

२ अधिक चरणः—

आप न रंगो तो साँवरा मोल रंगा दो,
प्रेम नगर में लगी है बजरियाँ॥
चूंदड़ ओढ़ आँगन बीच ठाढ़ी
हृदय की खुल गई बजर कवरियाँ॥

विचारिएः—

रंगरेजा सतगुरू से चुनड़ी लई रंगवाय॥
अजब रंग रंग दीनी मेरे सतगुरू।
नाम लियां नित नित झलकाय॥

कहे कबीर सुनो भाई साधो,

ज्ञान चुनडिया ने काल न खाय ॥

२१—काँई मस=किस निमित्त से। मेवला=मेह, वर्षा। छोगा की लुक=तुर्रे की लटकन।

२२—सहु=सारी। वणज करे=व्यापार करने लग गए। नीपायां=निर्माण किये। चवडावे=खिलाती हैं। वंश काढी=निर्वंश किया।

२३—दीधा डंका=डंके के चोट घोषित किया।

२४—ठरी·········ठाम=(संसार की दृष्टि से) चैन से नहीं बैठ सके। दैत्य नो·········ठाम=दैत्य का संहार किया। सायर······ बांधी=सागर पर पुल बँधवा कर। हण्यो=संहारा।

२६—सेलडो=भाला (षड्रिपु से जूझने के लिए)।

२८—**विशेषः**—धैर्य के साथ दर्शन की उत्कटता और दृढ़भावना साधक में जितने अधिक प्रमाण में होगी, प्रभु की प्राप्ति उतनी ही सन्निकट होगी।

भावार्थः—जतरा········'अविनासी=हरे भरे पीपल के पत्ररूप सब कर्म संस्कार भगवद्भक्ति की चरम सीमा रूप पतझड़ (वसंत) के आने पर सब पत्रों के एक साथ झड़ जाने जैसे, नष्ट होते ही प्रभु की प्राप्ति अर्थात् आत्म-साक्षात्कार तत्काल हो जाता है।

३८—चेड़ा=सुन्दर पुष्प विशेष। सारी=गोटी।

३९—चारा=घास।

विचारिएः—

जो तुम तोरो राम मैं नाहिं तोरौं।

तुमसे तोरि कवन सें जोरौं ॥०॥

सबही पहर तुम्हारी आसा, मन क्रम वच कहै रैदासा ॥

और भीः—**अब कैसे छुटै नाम रट लागी ॥०॥**

प्रभुजी तुम चंदन हम पानी, जाकी अँग अँग वास समानी।

प्रभुजी तुम घन बन हम मोरा, जैसे चितवत चंद चकोरा।
प्रभुजी तुम दीपक हम बाती, जाकी ज्योति बरै दिन राती।
प्रभुजी तुम मोती हम धागा, जैसे, सोन हि मिले सुहागा।
प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भक्ति करे रैदासा।

४१—घेलामां..........लाध्यो=पागलपन से लाभ हुआ। आगे ....बांध्युं=पहले तो अज्ञानवश माया में उलझ गए। माणो= उपभोग करते हैं। पुरव..........हाथे=पूर्व जन्मकी प्रीति के कारन प्रभु ने हाथ पकड़ कर हमें अपनाया। घेलानुं..........करशे=वास्तव में जो सांसारिक-दृष्टि से पागलपन को स्वीकार करेगा। सुखनुं.......... ....लागे=विवेक द्वारा जिसे सकल सुख केवल दुःख मात्र प्रतीत होते हैं। ते..........मरशे=वह पुरुष कालातीत हो जायगा।

५०—**विशेषः**—प्रभु कृपा के लिए वास्तव में भक्ति-प्रेम के सात्विक गुणों युक्त आभ्यंतरिक शृंगार की आवश्यकता है न कि बाह्य धातु अथवा वस्त्रादि विशेष की।

५१—अमानी=मेरी माँ। निमाँनी=पराई। दे=के। साढी= हमारी। गल=बात। कह न माँनी=जिसका कोई न हो।

५४—**विशेषः**—मन अनुकूल होने पर सुखी और प्रतिकूल होने पर जीवन दुःखी हो जाता है क्योंकि 'मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः'। अर्थात् मनुष्य के बंधन—मोक्ष का कारण वास्तव में मन ही है। अपनी जीवन-वाटिका के मन-भ्रमर को इसी लिए मीराँ ने इस पद में उपदेश किया है।

भावार्थः—पवन..........दोडीशमां=संसार के प्रलोभनों में भी अपने को विचलित नहीं होने देना। चंपो..........तोडीशमां =संसार में अनेकानेक सुन्दर पदार्थ-विषय हैं परंतु पूर्ण विवेक-विचार पूर्वक उनमें से, जीवन—कृतार्थ कराने वाले को ही अपनाना। त्रीकम ....छोडीशमां=चराचर त्रिगुणात्मक विश्व में एक मात्र ईश्वर

ही घट-घट व्यापी है इसलिए दृढ़ता रखते हुए भी किसी का जी नहीं दुखाना—अहिंसात्मक वृत्ति से रहना।

५५—डोरडो = मंगल सूत्र। सहनाण = संकेत। सुधो......... गात = मानो सुधा में मेरे अंग अंग भीज गए हैं। पियादे = नंगे पैर।

५८—वीहीला = अकेले। मेळतां = छोड़ते। हराडा = सरल, भोले। तेडे = बुला ले जाय। साद पडावुं = डोंडी फिराती हूँ। एकावल = एक लड़वाला।

५६—बाई.........एकली = संसार रूप वन में अकेली होकर आम्र रूप प्रभु का शरण लिया है। ओतर.........आखडी = जीवन में एक मात्र श्यामसुन्दर के प्रेम का संस्कार जागृत हुआ जिसके परिणामरूप श्याम-घन ने परम-कृपा रूप पूर्ण वर्षा कर दी। नदी रे... ......माछली = इस संसार में ऐसे भी बगुला भक्त होते हैं जो कि उपर से तो परोपकारी बनने का स्वाँग रचते हैं पर भीतर से स्वार्थ वश किसी का गला घोंटने की ताक में रहते हैं, उनसे बचे रहना चाहिए।

६०—लेहे = लगन। हरदम...........लागी = भगवान शंकर के लिए तरसने वाले तथा प्रेम से व हर्ष से उमड़ने वाले उमा के हृदय के समान मेरा भी हृदय नारायण के नाम की लगन से हर्षित होता है। कुबुद्धिडा..........भक्ति मां = दुष्ट व अज्ञानी प्रभु-भक्ति में कुछ नहीं समझते। नोखुं = पृथक्, भिन्न। ताणे = खींचते हैं। समज्या.......... ताणे = बिना समझे कोई क्या तो कोई क्या धारते हैं—अर्थ का अनर्थ करते हैं। अंतर..............व्हाने = हृदय तुम्हारे निमित्त समर्पित कर दिया।

६१—नाखी छे = डाली है। अतलसी = कपड़े के प्रकार विशेष की। बुगरी = आभूषण विशेष। वेण = वेणी। गरबा = गरबी, गुजराती गीत का प्रकार विशेष। सुरती = सुरत की ओर गाई जाती गरबी।

विशेषः—गुजरात में विशेष कर आश्विनी नवरात्रि में गरबा गीत स्त्रियों में गाने की प्रथा है। यह भी गरबी का पद है। इसका भाव बड़ा ही विलक्षण है। ऐसा प्रतीत होता है मानो अपने गौर व सुकुमार अंगों पर सुन्दर वस्त्रालंकार युक्त शृंगार सजाकर गरबा खेलने को

तत्पर हुई, उस समय मीरांबाई ने अपनी अनुपम रूप-सुधा युक्त मद-भरी छवि का अनुभव कर, शिव के मन को हरने वाली मोहिनी के समान, कृष्ण कन्हैया के चित्त को चुरानेवाली राधा के भाव में तद्रूप होकर यह पद बनाया है। उसकी मनोहारिणी लावण्य-प्रभा की इस पद में झाँकी मात्र है।

६२—आगे······मेरा=इस पंच महाभूतात्मक सृष्टि में जहाँ देखो वहाँ-घर घर में प्रभु ही व्याप्त है—उन्हीं की सब लीला है। कोरा··········निर्वानी=कच्चे घड़े के समान क्षणभंगुर शरीर में गंगाजलवत् निर्मल-निर्विकार आनंद स्वरूप परमात्मा विराजमान है उन्हें जो जान लेता है वही मोक्ष का अधिकारी होता है।

६४—छठे·········मांगे=उनका सब अमंगल मिट जाय यही हमारी हार्दिक कामना है।

विभाग ७ दर्शनानंद

निर्गुण वा सगुण किसी भी साधक वा
उपासक को अखण्ड साधना द्वारा
भगवत्साक्षात्कार का आनन्द
प्राप्त होता ही है।

* भूमिका *

जा दिन तें निरख्यो नँद—नन्दन,
कानि तजी घर—बन्धन छूट्यो ।
चारु बिलोकनि की निसि मार,
सँभार गयी मन मारने लूट्यो ।।
सागर कौं सरिता जिमि धावति,
रोकि रहे कुल कौ पुल टूटयो ।
मत्त भयो मन संग फिरै,
रसखानि सुरूप सुधा-रस-छूट्यो ।।

अभिप्सित वस्तु की प्राप्ति होने पर किसे आनन्द न होगा । चिर वाञ्छित लक्ष्य का साक्षात्कार होने पर हर्ष से कौन मत्त न हो उठेगा ! इच्छापूर्त्ति होने पर भला कौन परम संतोष की श्वांस न लेगा ! संसार में आनन्द ही तो जीव मात्र का परम लक्ष्य है । सभी जीव एक मात्र आनन्द ही के लिये छटपटा रहे हैं । परन्तु आनन्द की प्राप्ति किसी बिरले को ही होती है । वैसे तो सुख का अनुभव न्यूनाधिक मात्रा में सभी को होता है परन्तु वास्तव में देखा जाय तो वह सुख कोई सुख नहीं । जो क्षणिक होकर फिर नष्ट हो जाता है अथवा सुख होने के पश्चात् फिर दुःखों की परम्परा को उत्पन्न करता है उसे भी क्या कभी आनन्द कहा जा सकता है ? परन्तु जब तक जीव को सारासार विचार नहीं होता तब तक उसके लक्ष्य में भी स्थिरता नहीं रहती अथवा न वह वास्तविक ही हो पाता है । संसारी जीवों के मन विषयाभिमुख होते हैं, इसलिये उन्हें विषय प्रिय होते हैं, और विषयों को प्राप्त करना ही उनका प्रधान लक्ष्य

रहता है। जो त्यागी, साधु-संत अथवा गृहस्थी होते हुये भी सत्संगी और विवेकी होते हैं उन्हें प्रभु-प्राप्ति में ही परम सुख—परमानंद का अनुभव होता है। इसीलिये वे प्रभु-प्राप्ति के ही उद्देश्य से साधन में प्रवृत्त होते हैं साधन करते-करते जब वह क्षण आता है कि साधन सिद्ध होने लगता है अथवा अपने मनोरथ पूर्ण होने का क्षण निकट होता है तब जीव को परम समाधान होता है और वह आनन्दसागर में गोते लगाता है। साधन और लक्ष्य की भिन्नता के कारण साधक को आनन्दानुभव भी भिन्न-भिन्न रूप से होता है। ज्ञान अथवा योग द्वारा उपासना करने वाले को अपने निर्गुण लक्ष्य की प्राप्ति करने पर जिस आनन्द का अनुभव होता है वह भक्ति-प्रेम के उपासक को अपने सगुण लक्ष्य की प्राप्ति होने पर होने वाले आनन्दानुभव से भिन्न है। परन्तु भिन्न अनुभव होने पर भी मूल में आनन्द तो दोनों को एक सा ही होता है। भिन्न मिष्टान्नों में मधुरता तो एक ही है, भले स्वाद न्यारा रहे।

मीरांबाई के परमप्रिय इष्ट—परम लक्ष्य एक मात्र गिरिधर गोपाल ही थे और उन्हीं की प्राप्ति के लिये ही वह सारे जीवन भर प्रयत्नवती रही और अन्त में अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त करके ही छोड़ा और अपने प्रियतम प्रभु में समा गई। जिस प्रकार सूर्य के सन्मुख एकटक देखते रहने से फिर अंधेरे में ज्यों स्पष्ट दिखाई नहीं देता है और सूर्य तेज की ही चमक कुछ समय तक नेत्रों के आगे बनी रहती है, त्यों सदा सर्वदा मीरांबाई श्रीकृष्ण को ही देखा करती थी और उन्हीं के प्रेम में मत्त रहा करती थी। उसी प्रेम-भावना की सृष्टि में विचरते हुए—रमण करते हुए उसे कभी-कभी उस भावना सृष्टि का साक्षात्कार भी

हुआ करता था। वह अपने प्रियतम को-श्याम सुंदर को अपने नेत्रों के आगे देखती और तब प्रेम और आनन्द से विह्वल हो उठती और जब उसे सुधि होती तब उस अति सुन्दर और मधुर छवि का वर्णन करने लगती। उनका सुन्दर शृँगार, उनके नेत्र, उनकी बांकी दृष्टि, बांकी चाल, त्रिभंगी झाँकी आदि तथा उनके विलक्षण गुणों का वर्णन करती। अपने पदों में उसने ये ही सब भाव व्यक्त किये हैं।

इस ७ वें 'दर्शनानन्द' विभाग के पदों में मीरांबाई के उपर्युक्त सब भाव विशेष रूप से व्यक्त हैं।

इस विभाग के १३, १४, १७, २१, २३, ३२, ५०, ५१, ५६, ५७, ५८, ६० ये १२ पद गुजराती भाषा के हैं। सं० ४१ यह एक पद निर्गुणी भाव-ज्ञान का है।

'दर्शनानन्द' पर और भक्तों के अनुभव वचनः—

= कृष्णदास यह रूप अनुपम
जग में और सुना नहीं देखा।

= जब नंदलाल नयन भर देखे।
इकटक रही समार न तन की, सुन्दर मूरत पेखे।

= परमानन्द निरख अँग शोभा
ब्रज वनिता डारत तृण तोर॥

'दर्शनानन्द' मीराँ की वाणी में—

अखिल विश्व के समस्त प्राणी आनन्द चाहते हैं। परन्तु कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थ भगवान् ही एक मात्र आनन्द स्वरूप है। संसार में सुख का आभास अथवा छाया मात्र भले ही पाई जाय परन्तु वास्तव में अखण्ड सुख वा परमानन्द केवल

भगवद्विचार, भगवत्संग, भगवत् स्मरण, भगवद् गुणगान, भगवद्ध्यान, भगवत्-शरणागति, भगवत् समर्पण एवं भगवत् साक्षात्कार से ही प्राप्त होता है। सारा जीवन सुख की आशा से नाना कर्मों में प्रवृत्त होने बाद हताश होकर अंत में जीव को प्रभु के शरण में ही जाना पड़ता है। चारों ओर से खींची हुई जब चित्तवृत्ति भगवान् की ओर लगती है तभी आनन्दानुभव की प्राप्ति होती है चाहे, वह निर्गुण साधना से हो वा सगुण। भक्त को अपनी भावनानुसार हृदय में बसी भगवान् की छवि का, ध्यान में चाहे स्वप्न में अथवा पराकाष्ठा की प्रेम साधना हो तो प्रत्यक्ष में अवश्य ही साक्षात्कार होता है। तभी जीव का जन्म कृतकृत्य हो जाता है। ऐसा भगवद्दर्शनानन्द जिस भक्त को प्राप्त हो उसके सौभाग्य की कोई सीमा नहीं। मीराँ भी इस दर्शनानन्द की परम अधिकारिणी थी।

अपने प्रियतम श्यामसुंदर की अपूर्व रूप शोभा का वह यथा मति वर्णन करती है--

(३) सुन्दर बदन मदन की शोभा चितवन अनियारी।

(१०) सहस्र गोप्याँ बिच आप बिराज्यो, ज्यों तारन बिच चंदा॥

(३१) गहे द्रुम डार कदम को ठाड़ो मृदु मुसकाय म्हांरी ओर हंस्यो।

(२०) राधावर महाराज (व) रसिकों रा (के) सिरताज' हैं॥

वे अपने अनन्य प्रेमी भक्तों पर कई प्रकार से वशीकरण करते हैं—

(५१) करिआ कामण कंई कंई कंई॥

इनके नेत्रों की शोभा तो विलक्षण माधुर्य और मोहकता भरी है—

(१) नैनाँ निपट बंकट छबि अटके मेरे।

(७) सुन्दर विशाल नैन, काम लाजत करोड़।

(१३) आंखडली बांकी रे अलबेला तारी, नैण कमल ना झलका भारे, एणे मार्या ताकी ताकी ॥

ऐसी त्रिलोक मोहिनी श्याम मनोहर छवि पर भला कोई तन मन व अपना सर्वस्व लुटा न दे उसे क्या कहा जाय—

(६) मैं तो छकी तुमरी छबि उपर, जो न छके तेहि नालति (धिक्कार) है ॥

मीराँ तो उस सांवरी छवि पर सर्वथा मुग्ध होगई। उसके नेत्र दर्शन करते थकते नहीं। उनके द्वारा मन चाही पूर्ण होने पर ही आँखें कुछ संतोष कर लेती हैं,—

(८) चकित भये हैं दृग दोउ मेरे, लखि शोभा नटकी।

(२६) नैणा लोभी रे, चंचल निपट अटक नहीं मानत, पर हथगये बिकाय।

(५८) आज मारां नैणां तृप्त थयां, जोया नाथ ने निरखी। जेवुं मारे मनहतुं, तेहवुं नाथ जी कीधुं ॥

फिर साक्षात्कार प्रियतम के मिलने पर तो कहना ही क्या—

(४) रग रग सीतल भई मेरी सजनी, हरि मेरे महल सिधाया जी ॥

वास्तव में प्रभु के दर्शनानन्द का अनुभव ऐसा मधुरातिमधुर व परम मंगलकारी है कि जिसके आगे इहलोक-परलोक की कोई भी वस्तु निःसार निसत्व है।

(६) जब से मोहि नंद नंदन दृष्टि पड़्यो माई । तब से पर-
लोक लोक कछु ना सोहाई । गिरधर के अंग अंग
मीराँ बली जाई ॥

दर्शनानन्द में देह की सुधि तक नहीं रह पाती—

(३६) रूप देख अटकी तेरो । देह तैं विदेह भंई ढुरि परि
सिर मटकी ॥

एक बार दर्शनानन्द के प्राप्त होने पर फिर यही मन में लगता है कि सदैव उन्हें देखते रहें, दृष्टि के आगे सदा बने रहें—

(५०) मारी नजर आगळ रहे जो रे, नागर नन्दा । आडुं
अवळुं जोयु गमेना, जोया पुनम चंदा रे । मोही
मोहनी फंदा रे ॥

(२६) म्हें तो म्हारा रमैया ने देखबो करूँरी । जहाँ जहाँ
पाँव धरूँ धरणी पर, तहाँ तहाँ निरत करूँरी ।
चरणां लिपट परूँरी ॥

अपने प्रेमी भक्त को एक बार अपना लेने बाद श्यामसुंदर कभी उसकी उपेक्षा नहीं करते—

(२३) प्रीत करे तेनी पूठ न मेले, पासे थी ए नथी खसता ॥

दर्शनानन्द की पराकाष्ठा होने पर आवरण हटकर प्राण ज्योति भगवज्ज्योति में समा जाती है—

(१५) मुख पर का आँचला दूर कियो तब ज्योत में ज्योत
समाय रही ॥

और अन्त में—

(६३) मीराँ दासी श्याम की रे अंग में लीन्ही समाय ॥

यही मानव जीवन की कृतार्थता है ।

७—दर्शनानंद के पद

*

रूपासक्ति—　　　　　　१

मेरे नैनाँ निपट बँकट छबि अटके ॥०॥
देखत रूप मदन मोहन को, पियत पियूख न मटके ॥१॥
बारिज भवाँ अलक टेढ़ी मनो, अति सुगंध रस अटके ॥२॥
टेढ़ी कटि टेढ़ी कर मुरली, टेढ़ी पाग लर लटके ॥३॥
मीराँ प्रभु के रूप लुभानी, गिरिधर नागर नट के ॥४॥

प्रेमालाप　　　　　　२

आये आये जी महाराज आये ॥०॥
तज वैकुण्ठ तज्यो गरुड़ासन, पवन वेग उठ धाये ॥०॥
जब ही दृष्टि परे नंदनन्दन, प्रेम भक्ति रस प्याये ॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित लाये ॥१॥

प्रेमालाप　　　　　　३

आजु मैं देख्यो गिरधारी ।
सुन्दर बदन मदन की शोभा, चितवन अनियारी ॥१॥
बजावत बंसी कुंजन में ।
गावत ताल तरंग रंग ध्वनि, नचत ग्वाल गन में ॥२॥
माधुरी मूरति वह प्यारी ।
बसी रहै निसिदिन हिरदै बिच टरे नहीं टारी ॥३॥
वाहि पर तन मन हैं वारी ।
वह मूरति मोहिनी निहारत लोक लाज डारी ॥४॥

तुलसी वन कुञ्जन संचारी ।
गिरिधर लाल नवल नटनागर मीराँ बलिहारी ॥५॥

मिलन ४

म्हारा ओळगिया घर आया जी ।
तन की ताप मिटी सुख पाया हिल मिल मंगल गाया जी ॥०॥
घन की धुनि सुनि मोर मगन भया यूँ मेरे आणँद छाया जी ।
मगन भई मिल प्रभु अपणा सूँ भौ का दरद मिटाया जी ॥१॥
चँद कूँ निरखि कमोदणि फूलै हरखि भया मेरी काया जी ।
रग रग सीतल भई मेरी सजनी हरि मेरे महल सिधाया जी ॥२॥
सब भक्तन का कारज कीन्हा सोई प्रभु मैं पाया जी ।
मीराँ बिरहणि सीतल होई दुख दूँद दूर नसाया जी ॥३॥

रूपासक्ति ५

या मोहन के मैं रूप लुभानी ॥०॥
सुन्दर बदन कमल दल लोचन, बाँकी चितवन मँद मुसकानी ॥१॥
जमना के नीरे तीरे धेनु चरावे, बंसी में गावे मीठी बानी ॥२॥
तन मन धन गिरधर पर वारूँ, चरण कँवल मीराँ लपटानी ॥३॥

रूपासक्ति ६

जबसे मोहिं नंदनंदन, दृष्टि पड़्यो माई ।
तबसे परलोक लोक, कछू ना सोहाई ॥०॥
मोरन की चन्द्रकला, सीस मुकुट सोहै ।
केसर को तिलक भाल, तीन लोक मोहै ॥१॥
कुँडल की अलक झलक, कपोलन पर धाई ।
मनो मीन सरवर तजि, मकर मिलन आई ॥२॥

कुटिल भृकुटि तिलक भाल, चितवन में टोना।
खंजन अरू मधुप मीन, भूले मृग छौना ॥३॥
सुन्दर अति नासिका, सुग्रीव तीन रेखा।
नटवर प्रभु भेष धरे, रूप अति विसेषा ॥४॥
अधर बिंब अरून नैन, मधुर मंद हाँसी।
दसन दमक दाड़िम दुति, चमके चपलासी ॥५॥
छुद्र घंट किंकिनी, अनूप धुनि सोहाई।
गिरधर के अंग अंग, मीराँ बलि जाई ॥६॥

प्रेमालाप ७

हे सहियाँ देखी बंशी के बजैया की मरोड़।
देखी कनैया की बंशी की रमझोर ॥०॥
मैं तो चुपके से छाने गई यमुना जल ल्याने
ओ तो आन अचानक तान सुनाई घनघोर ॥१॥
माथे पे मोर मुकुट, ठाड़े यमुना निकट
लिये हाथ में लकुट मोरे चितवा को चोर ॥२॥
ऐसो नन्दलाल संग लिये ग्वाल बाल अति
सुन्दर विशाल नैन काम लाजत करोड़ ॥३॥
सुर नर मुनि ध्यावें जाको पारहू न पावें
मीराँ गायके रिझावे नित ऊठ भोर भोर ॥४॥

रूपासक्ति ८

माई मैं तो गोविन्द सों अटकी ॥०॥
चकित भये हैं दृग दोउ मेरे, लखि शोभा नटकी ॥०॥
शोभा अङ्ग अङ्ग प्रति भूषण, वनमाला तटकी।
मोर मुकुट कटि किंकिन राजै, दुति दामिनि पटकी ॥१॥

रमित भई हौं साँवरे के संग, लोग कहैं भटकी ।
छुटी लाज कुल कानि लोग डर, रह्यो न घर हटकी ॥२॥
मीराँ प्रभु के सँग फिरेगी, कुञ्ज कुञ्ज लटकी ।
श्री (बिना) गोपाललाल बिन सजनी, को जाने घटकी ॥३॥

रूपासक्ति ९

बंसीवारे की चितवन सालति है ॥०॥
मोरमुकुट मकराकित कुंडल, तापर कलंगी हालति है ॥१॥
मैं तो छकी तुमरी छबि ऊपर, जो न छके तेहि नालति है ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल चित लागति है ॥३॥

प्रेमालाप १०

मुकुट पर वारी जाउँ नागर नन्दा, बालमुकुन्दा ॥०॥
सब देवन में आप बड़े हो, ज्यों तीरथ बिच गंगा ॥१॥
सहस्र गोप्याँ बिच आप बिराज्यो, ज्यों तारन बिच चंदा ॥२॥
शीश चन्दन की खौर बिराजे, बिच केशर का बिंदा ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, तुम ठाकुर हम बन्दा ॥४॥

प्रेमालाप ११

सहेलियाँ साजन घर आया हो ॥०॥
बहोत दिनाँ की जोवती विरहणी पिव आया हो ॥०॥
रतन करूँ नेवछावरी ले आरति साजूँ हो।
पिव का दिया सनेसड़ा ताहि बहोत निवाजूँ हो ॥१॥
पाँच सखी इकठी भई मिलि मंगल गावै हो ।
पिय का रळी बधावणा आणंद अंग न मावै हो ॥२॥
हरि सागर सूँ नेहरो नैणा बँध्या सनेह हो ।
मीराँ सखी के आँगणै दूधाँ बूठा मेह हो ॥३॥

प्रेमालाप   १२

जोसीड़ा ने लाख बधाई रे, अब घर आये श्याम ॥०॥
आज आनँद उमँगि भयो है, जीव लहै सुख धाम ॥१॥
पाँच सखी मिलि पीव परसि कैं आनँद ठामूँ-ठाम ॥२॥
बिसरि गई दुख निरखि पिया कूँ सुफल मनोरथ काम ॥३॥
मीराँ के सुखसागर स्वामी भवन गवन कियो राम ॥४॥

रूपासक्ति   १३ (गुज०)

आंखडली वांकी रे, अलबेला तारी आंखडली वांकी ॥०॥
चारवणीमां म्हारा चित चोरी लीधां, नेणे मोहनी नांखी रे ॥१॥
नेण कमळ ना भलका मारे, एणे मार्या ताकी ताकी रे ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, नीत चरण कमळ नी दासी रे ॥३॥

विनय   १४ (गुज०)

मेरो मन हर लीनो राजा रणछोड ॥०॥
त्रीकम माधव और पुरुषोतम, कुँवर कल्याण की जोड ॥१॥
राधा रुक्मणी और सतभामा, जांबुकवरणी जोड ॥२॥
मोर मुगट पीतांबर सोहत कुंडल की छबी और ॥३॥
शंख चक्र गदा पद्म बिराजे मधुरी मुरली की शोर ॥४॥
चार पास रत्नाकर गाजे, गोमती है शिरमोर ॥५॥
मीरां बाइ कहे प्रभु गीरधर नागर हाँरे मारो दिलडांनो चोर ॥६॥

प्रेमालाप   १५

आई देखन मजमोहन कूँ मोरे मनमों छबि छाय रही ॥०॥
मुख पर का आँचला दूर कियो तब,
ज्योत सें ज्योत समाय रही ॥१॥

सोच कर अब होत कहा है,

प्रेम के फंदे में आय रही ॥२॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,

बुँदमों बूँद समाय रही ॥३॥

विनय १६

तोरी साँवरी सुरत नंदलालाजी ॥०॥

जमुना के नीरे तीरे धेनु चरावत। काली कामलीवालाजी ॥१॥

मोर मुकुट पीतांबर शोभे। कुण्डल झलकत लालाजी ॥२॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। भक्तन के प्रतिपालाजी ॥३॥

रूपासक्ति १७ (गज०)

मारूँ मन मोह्युँ रे, लक्ष्मीवरने लटके। घर खोळूँ तो खटके॥०॥

आ तो संसारी डो छे कूड़ो। हरि चरणे चित अटके ॥१॥

मोर मुकुट ने काने कुंडल। पीतांबर ने लटके ॥

बृंदावननी कुंज गलिन माँ। बेंत बाँसने कटके ॥३॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। रंग लाग्यो रँग चटके ॥४॥

उल्लास १८

आज तो आनंद म्हारे कृष्ण आये पावणा ॥०॥

गेंद के मिलैया जब टोरो तो लगावणा।

कालीदह में कूद पडे नाग नाथ लावणा ॥१॥

मथुरा में कंस मारयो पिता कू छुडावणा।

पहुँचे बली मखशाळा रूप धरे बावणा ॥२॥

फूलाँ हंदी सेज विछाई फूलोंदा सिरावणा।

फूली फूली राधा डोले गावती वधावणा ॥३॥

बंशी के बजैया जरा फेर से बजावणा।

मीराँ कूँ तुम्हारी आस हिये से लगावणा ॥४॥

श्री जगन्नाथ स्तुति १६

जब तें मोहि जगन्नाथ दृष्टि परे माई ॥०॥
अरुण खंभ गरुड़ खंभ सिन्घ पोर झाँई ।
मंदिर की शोभा कछु बरणीहू न जाई ॥१॥
मंगला को दरस देख आनन्द हो जाई ।
जै जै श्री जगन्नाथ सहोदरा बलभाई ॥२॥
थाल भोग लगने की बिरियाँ जब आई ।
उखड़ा औ दूध भोग प्रभुजी ने खाई ॥३॥
महाप्रसाद भोग खात आरती सजाई ।
अपने प्रभु नासिका पर मोतिन लटकाई ॥४॥
बीच में सुभद्रा सोहै दाहिने बल सोहाई ।
बाएँ हाथ लच्मी छवि वरणीहू न जाई ॥५॥
मारकण्डेय वटे कृष्ण रोहिणी सुखदाई ।
इन्द्रदमन स्नान करत पाप सब नसाई ॥६॥
महोदधि चक्रतीरथ गंगा गति पाई ।
मीराँ के प्रभु जगन्नाथ चरणन बल जाई ॥७॥

प्रेम २०

थाँरी छब प्यारी लागे राज राधावर महाराज ॥०॥
रतन जटित सिर पेंच कलंगी केशरिया सब साज ॥१॥
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल रसिकों रा सिरताज ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर म्हाँरे मिल गया ब्रजराज ॥३॥

प्रेमालाप २१ (गुज०)

मारा नाथना नैणाँ ऊपर रे हुं तो घड़ीये वारी जावूं ।
घड़ीये वारी जावूं वालिड़ा हुं तो घड़ीये वारी जावूं ॥०॥

प्रभुजी मने कंठे वळग्या । कलकोरे न थावूं ।
शामळा साथे स्नेह बंधाणो । हेते हरि गुण गावूं ॥१॥
काम काज मुंने कांई न सूझे । ने घरमां घेली थावूं ।
संत समागम जियां होय तियां । हरखे दोड़ी आवूं ॥२॥
गंगारे जमुना घरने आंगणे । तीरथ क्यां क्यां जावूं ।
अडसठ तीरथ संतने चरणे । नित्य त्रिवेणी मां न्हावूं ॥३॥
एकादशी व्रत कोण करे । हुं तो त्रणे टाणां खावूं ।
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण । हेते हरि रस पावूं ॥४॥

रूपासक्ति २२

नैनाँ मेरे निपट बंकँट छबि अटके ॥०॥
वारिजवदन कमल दल लोचन, यमुना निकट के तटके ॥१॥
सोवत जागत विहरत निशदिन, ध्यान में बंशीवट के ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, तोरे दरस कूं नागर नटके ॥३॥

प्रेमालाप २३ (गुज०)

ओ आवे हरि हसता सजनी ओ आवे हरि हसता ॥०॥
मुज अबला एकलडी जाणी, पितांबर केडे कसता सजनी ॥१॥
पचरंगी पाघ केसरिया रे वाघा, फूलडां महेले तोरा ॥२॥
मारे आंगणीये द्राख बीजोरां, मेचले भरावुं तारा खोळा ॥३॥
प्रीत करे तेनी पूठ न मेले, पासे थी ए नथी खसता ॥४॥
मीरांबाई के प्रभु गिरधर ना गुण, हृदय कमल मां वसता ॥५॥

शृँगार-सेवा २४

आवो शृँगार कराऊँजी, सुन्दर श्याम छबिला रे लाला
आवो शृंगार कराऊंजी ॥०॥
पीली पछेडी खोल जरी की, पगडी लाल बँधावुँजी ।
छोगा टांग किलंगी टांकूँ मुकुट की छबियाँ बनाऊँजी ॥१॥

मणि माणक का डोरा कंठी चोकी फेर पोवावुंजी ।
पायल तेरा नख पर सोहे कंठी कनोरा लावुंजी ॥२॥
काजल सार अरगजा चरचुं मुख में बीड़ी चबावुंजी ।
ले दरपण तेरो मुख निरखो राई लूण उतारूंजी ॥३॥
आवो लाला थांके भोग लगावुं माखन मिशरी मेवाजी ।
फीना रोटी घीरथ कचोरी रूच रूच भोग लगाऊँजी ॥४॥
जल जमुना झारी भर लावुं मुख आचमन करावुंजी ।
लोंग सोपारी डोडा एलची मुखडे बीडी रचावुंजी ॥५॥
मीरांबाई के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल चित लावुंजी ॥६॥

प्रेमालाप २५

थें तो छनगाळा छो जी मदनगोपाल,
थें तो नखराला छो जी मदनगोपाल ॥०॥
मोर मुकुट सिर छत्र बिराजे, उर बैजयंती माल ॥१॥
बाँय बाजुबन्द पीताम्बर सोहे, पोंछी छे लाल गुलाल ॥२॥
कमर कंदोरो कटिपे विराजे, चरणाँ नूपुर छाजे ॥३॥
बांई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आनन्द हिये न समाजे ॥४॥

रूपासक्ति २६

नैणा लोभी, रे, बहुरि सके नहिं आय ।
रोम-रोम नख सिख सब निरखत, ललकि रहे ललचाय ॥०॥
मैं ठाढ़ी ग्रिह आपणे री, मोहन निकसे आय ।
बदन चंद परकासत हेली, मंद-मंद मुसकाय ॥१॥
लोक कुटुंबी बरजि बरजहीं, बतियाँ कहत बनाय ।
चंचल निपट अटक नहिं मानत, पर-हथ गये बिकाय ॥२॥
भलो कहौ कोई बुरी कहौ मैं, सब लई सीस चढाय ।
मीराँ प्रभु गिरधरलाल बिन, पल छिन रह्यो न जाय ॥३॥

प्रभु-स्तुति २७

द्वारिका मांहे झालर बाजे, शंखन की घनघोर,
पोढ़े श्री द्वारिका रणछोड़ ॥०॥
गोमती हरि रा चरण चापे, सागर करै छे किलोल ॥१॥
टीकम महादेव और परसोतम, कंवर कल्याणजी री जोड ॥२॥
लाल पलंग पर सफेद बादलियां, सीरख वा मसोड ॥३॥
रूखमणीजी रा रंगमहल में, दीपक जले छे करोड ॥४॥
रूखमणीजी हरि रा चरण चापे, बाज रह्या छे रमझोल ॥५॥
रूखमणीजी हरि रे सेज पोढ़े, दुजा हो नन्दकिशोर ॥६॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हाजर छु ंजी कर जोड ॥७॥

प्रेमालाप २८

आज तो आनंद मेरो कृष्णजी को आवना ।
जमुना के नीरे तीरे गौवन चरावना ॥०॥
कालीसी कामलिया ओढे बंशी का बजावना ।
मथुरा में कंस मारे लंकापति रावना ॥१॥
राजा बलि के द्वार ठाड़े रूप धरि वामना ।
मीराँ है चरणों की दासी कृष्ण गुण गावना ॥२॥

प्रेमालाप २९

म्हें तो म्हारा रमैया ने देखवो करूँ री ॥०॥
तेरो ही उमरण तेरोही सुमरण, तेरो ही ध्यान धरूँ री ॥१॥
जहाँ जहाँ पाँव धरूँ धरणी पर, तहाँ तहाँ निरत करूँ री ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरणां लिपट परूँ री ॥३॥

विनय ३०

मैं तो थारे दामन लगी जी गोपाल ।।०।।
किरपा कीजो दर्शन दीजो, सुध लीजो तत्काल ।।१।।
गल बैजंती माल् बिराजे, भक्तन के रछपाल ।।२।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, दर्शन भई है निहाल ।।३।।

प्रेमालाप ३१

हेरी मां नंद को गुमानी म्हाँरे मनड़े वस्यो ।।०।।
गहे द्रुमडार कदम को ठाड़ो मृदु मुसकाय म्हांरी ओर हँस्यो ।।१।।
पीतांबर कट काछिनी काछे रतन जटित माथे मुकट कस्यो ।।२।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर निरख वदन म्हांरो मनडो फँस्यो।।३।।

नैवेद्य-समर्पण ३२ (गुज०)

विट्ठल वहेला आवो रे, वाटडी जोउं, हर्खी नरखी मन मोह्यु रे ।०।
वहाला मारा रसोइ बनावी छे सारी, कीधी छे सुन्दर धारी रे ।
वहाला मारा कंसार पीरस्यो छे प्रीते, प्रभु जमो पूरण प्रीते रे।।१।।
वहाला मारा दाळ भात ने कढी, वडी सामग्री सर्वे कीधी रे ।
वहाला मारा राइतां शाक पापड छे सारा, तमो जमो प्रीतम मारा रे ।।२।।
वहाला मारा शरमाशो नहि वारू, कंइ कहेजो खाउं खारूं रे ।
वहाला मारा कनक नी झारी भरी लावुं, तमने आचमन लेवरावुं रे ।।३।।
वहाला मारा मुखवास लावी छुं सारो, तमे उठो सेजे पधारो रे ।
वहाला मारा हेते रहो मुज पाश, गुण गाय तोरी मीराँ दास रे ।४।

प्रेमालाप ३३

गिरधर लागे राज नीको, हाँ जी ओ तो कान्ह कँवर नंदजी को।।०।।
मोर मुकुट शिर छत्र बिराजे, बिच केशर को टीको ।।१।।

गल बैजन्ती माल बिराजे, वीरो हलधरजी को ॥२॥
कड़वो तेल कृष्ण नहीं खावे, कृष्ण खवैयो घी को ॥३॥
माल बिराणा मीठा लागे, घर को लागे फीको ॥४॥
जमुना के नीर तीर धेनु चरावे, माँगे दाण मही को ॥५॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि बिन सब रस फीको ॥६॥

प्रेम-दृढ़ता   ३४

नैणां री हो पड़गई याही बांण ॥०॥
बेर बेर निरखूँ मुख शोभा, छूट गई कुल कांण ॥१॥
कोई भलां कोई बुरां कहो, मैं सिर लीनी तांण ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, पूरबली पिछाण ॥३॥

प्रेम   ३५

प्यारी मैं ऐसे देखे श्याम, बाँसुरी बजावत गावत कल्यान ॥०॥
कबकी मैं ठाड़ी भैयाँ सुध बुध भूल गैयाँ,
छोने जैसे जादू डारा, भूले मोसे काम ॥१॥
जब धुन कान पैया, देहकी न सुध रहिया,
तन मन हर लीनो, विरहोवाले कान ॥२॥
मीरांबाई प्रेम पाया गिरधरलाल आया,
देहसों विदेह भैया लागो पग ध्यान ॥३॥

विनय   ३६

मन मोह्यो रे बंसी वाला ॥०॥
कांधे कमरिया हाथ लकुटिया, मारि गयो नैनां भाल ॥१॥
यक बन ढूँढि सकल बन ढूँढे, कहूँ नहीं पायो नँदलाल ॥२॥
मोर मुकुट पीतांबर राजै, कानन कुंडल छबी बिसाल ॥३॥
मीराँ प्रभु गिरधरजू की प्यारी, आनि मिल्यो प्यारो गोपाल ॥४॥

प्रेम-उमङ्ग ३७

मोरी ज्यान मोहोब्बत लग गई रे, गिरधर प्रीतम प्यारे सों ॥०॥
मीराँ गढ सूं ऊतरीजो, छाप तिलक लगाय (बनाय) ।
पगां बजावै घूघराजी, हात बजावै ताल ॥
दोन्यों की जोडी मिल गई रे ॥१॥
सेज रमाँ और सुख कराँजी, करस्याँ रँग मतवाल ।
मीराँ ने गिरधर मिल्याजी, आवागमन निवार ॥
रूप में रल गई रे ॥२॥

प्रेमालाप ३८

म्हारै आज रँगीली रात, मनड़ारा म्हरम आंइया ॥०॥
या छिब निरखण सुगन मनावण, अतर सुगंध लगावणा ॥१॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मन अंछ्या बर पावणां ॥२॥

रूपासक्ति ३९

रूप देख अटकी तेरो रूप देख अटकी ॥०॥
देह तैं विदेह भई ढुरि परि सिर मटकी ॥१॥
मात पिता भ्रात बंधु सब ही मिलि हटकी ॥२॥
हिरदा थैं टरत नाँहि मूरति नागर नटकी ॥३॥
प्रगट भयौ पूरन नेह लोक जानें भटकी ॥४॥
मीराँ प्रभु गिरधर बिन कौन लहै घटकी ॥५॥

रूपासक्ति ४०

सखी नन्द को गुमानी मेरे मन बस्यो ॥०॥
गह द्रुमडार कदम की ठाडो, मृदु मुसकाय मेरी ओर हस्यो ॥१॥
पीताम्बर की कछनी काछै, रतन जटित माथै मुकट कस्यो ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर निरख बदन मोरे हिरदै फस्यो ॥३॥

ज्ञान ४१

सखी मन स्याम मूरत बसी ॥०॥
मुकट कुंडल करन बंसी मंद मुख पर हँसी ॥१॥
बावरी कोउ कहै मोकों कोई कहै कुल नसी ॥२॥
हस्ती की असवारी पाछै लाख कुतिया भुसी ॥३॥
तज्यो घूँघट लई गाती संत देख्यां खुशी ॥४॥
सील चोला पहर गल मैं भक्त मारग घुसी ॥५॥
ओस पानी नाहिं पीयो छाँह बादर किसी ॥६॥
दासि मीराँ लाल गिरधर प्रेम फंदे फसी ॥७॥

अनन्य-प्रेम ४२

अब नहिं जाने हूँ गिरधारी, (थारे म्हारे) प्रीत लगी अति भारी ॥०॥
बाँको मुकट काछनी सुन्दर, ऊपर जरद किनारी।
गल मुतियन की माल बिराजे, कुण्डल की छबि न्यारी ॥१॥
बाँकी भौं कजरारे नैना, अलकैं छुट रही कारी।
मंद मंद मुरली धुन बाजत, मोही ब्रज की नारी ॥२॥
क्षुद्र घंटिका कटि पर सोहै, भुज पर बाजू धारी।
कड़ा मरहटी सुघर नेवरी, नूपुर की झुँणकारी ॥३॥
दुरजन लोग हँसो क्योंने मोसों, दे देकर करतारी।
मीराँ प्रभु की भई दिवानी, प्रेम मगन मतवारी ॥४॥

भगवत्-स्मरण ४३

अरे मैं तो ठाडो जपूं रे राम माला रे ॥०॥
मैं जपती नांव मेरे सायब का, आंण मिलो नंदलालारे।
हाथ सुमरणी कांख कूबडी, ओढ़ रही मृगछाला रे ॥१॥
मोर मुकट पीतांबर सोहै, ओढे साल दुसाला रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भगतन के प्रतिपाला रे ॥२

प्रेमालाप ४४

आज सखि मोरे अनन्द भयो है, घर में मोहन लाधो री ॥०॥
बन जोई बृन्दाबन जोई। बिरज सब बाधो री ॥१॥
सतवे मलिये अजब झरोखे। वाहीतें हरिजी लाधो री ॥२॥
म्हारा तो घर में मही घनेरो। हरि चोर चोर दधि खाधो री ॥३॥
अपने द्वार में कबकी ठाढ़ी। बाँह पकर हरि साधो री ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर मिलियो। विरह बाजने बाँधोरी ॥५॥

प्रेम ४५

नंदको बिहारी म्हारे हिवडे बस्यो छै ॥०॥
कटि पर लाल काछनी काछे, हीरा मोती वालो मुकुट धरचो छै ॥१॥
गहि रह्यो डाल कदम की ठाडो, मोहन यो तन हेरि हरचो छै ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, निरखि दृगन में नीर भरचो छै ॥३॥

रूपासक्ति ४६

नैनाँ अटके रूपसों, पल पल नहिं लागे।
निसवासर योंही रहै, सोये नहिं जागे ॥०॥
असन वसन भूषण तजे, पिय के अनुरागे।
मदन मूरत हिरदै बसी, अलबेली सी पागे ॥१॥
मीराँ प्रभु गिरधर मिले, भल संत समाजे।
छटी छार तिन पर परो, जेया प्रण तें भाजे ॥२॥

प्रार्थना ४७

ये व्रजराज को अर्ज मेरी, जैसी राम हमारी ॥०॥
मोर मुकुट शिर छत्र बिराजे, कुंडल की छब न्यारी ॥१॥
हरी हरी पगवा केशरी जामा, ऊपर फूल हजारी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल बलिहारी ॥३॥

उमङ्ग ४८

हाथ की बीड्यां लैव मोरे वहालम, मोरे वहालम साजनवा ॥०॥
काथा चूना लोंग सोपारी, बीडी बनाऊँ गहिरी।
केशर का तो रंग खुला है, मारा ऊपर पिचकारी ॥१॥
पके पान के बीडे बनाऊं, लेव मोरे वहालमजी,
हांस हांस कर बातां बोलो, पडदा खोलोजी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बोलत है प्यारी।
अतर वहालम थारो दासी है तेरी ॥३॥

प्रेमलीला ४९

सांवरो सलोनो झरूखे झांखी दे गयो ॥०॥
नंद के सुवन को मुखारविंद चंद्रमा,
मेरे तो बदन की शोभा सारी लेगयो ॥१॥
नटवा को वेश कीयो, बंसी कु हाथ लीयो,
प्रेम की रसीली सारी बात मोसें केगयो ॥२॥
मीराँ कहे मोहनलाल, मैं तो भुली आळ जाल,
वाकुं देख करके मेरो बदन वे गयो ॥३॥

प्रेमालाप ५० (गुज०)

मारी द्रष्टी सामे रहेजो रे, बालमुकुंदा,
मारी नजरूं आगळ रहेजो रे, नागरनंदा ॥०॥
काम काज मने कांई न सुझे, भूली घरना धंधा रे ॥१॥
आडुं अवळुं जोयुं गमे ना, जोया पूनम चंदा रे ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, मोहो मोहनी फंदा रे ॥३॥

रूपासक्ति ५१ (गुज०)

करीआ कामण कंई कंई कंई, कानुडे अमने,
करीआ कामण कंई कंई कंई ॥०॥

ज्यां जोऊं त्यां नजरे नीहालुं,

नाथ विना बीजुं नहीं नहीं नहीं ॥१॥

प्रेम कुवामां अमने उंडा उतार्या,

डीलथी दीलासा रूडा दई दई दई ॥२॥

बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण,

रूदीया मां छबी एनी रही रही रही ॥३॥

रूपासक्ति   ५२

नेयनां मेरे अटक मानत नाहीं ॥०॥

तरूनी शांमकीशोर सुरत देखबे कु याहि ॥१॥

सुरंग पाघ सुहावनी सिर अधर धरी मृदुबेन ।

सब सखी समुझाए रही मेरो चित न धरे चेन ॥२॥

को भली करो कोउ बुरी कहो, मे सबि धरलै शीश ।

दास मीराँ लाल गिरधर, सजन मेरे ईश ॥३॥

रूपासक्ति   ५३

तेरो रूप देख लटकी । देह थंभ देह भही ढेर परी

सेरे मटुकी ॥१॥

मात पीता लोक बंधू सबनो भली हटको ।

हीरदे थे वे टरत नांही छबी नागर नटकी ॥२॥

मेरे मने एशी आही लोक जांने भटकी ।

मीराँ प्रभु गिरधर बीन कोन जांने घटकी ॥३॥

विनय   ५४

भला रे तुम यहीं रहो राम रसिया ।

थांरी साँवरी सुरत दिल वसिया ॥०॥

अपणे कारण महल चुणाया । वचला महल ही थांणे हो ॥१॥

आपरे कारण बाग लगाया । दाड़म दाखांई थांणे हो ॥२॥
आपरे कारण भोजन बणाया । लाडु जलेबी थांणे हो ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । चरण कमल बलिहारी हो ॥४॥

गुणगान ५५

सूरत पे तोरी नंदलाला ओ मैं वारी जाऊँ ॥
बिनरावन री कुंजगल्यों में रास रचावे घनश्याम ॥०॥
जमना री तट पे प्रभु धेनु चरावे, ग्वाल बाल और संग में रहेवे ।
मुरली पे तोरी नंदलाला मैं ॥१॥
डावां जो नख पें प्रभु गिरवर धारयो,
इन्द्र का मान घटाय ॥२॥
द्रौपदी सखी री प्रभु लज्जा जो राखी,
छन में यो चीर बढाय ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
हरख निरख गुण गाय ॥४॥

शृंगार ५६

हो राज, तारे ललवट टीलक बिराजे ।
हो काने कुंडल छाजे हो ॥०॥
ओ राज तारे मुख पर मोरली बिराजे,
मधुरे सुर बाजे हो ॥१॥
हो राज तारे पीला पीतांबर शोहिये,
तने हरखी नरखी मोदिये हो ॥२॥
हो राज तारे चरणे ते नेपुर बाजे हो,
तुं नटवर थईने नाचे हो ॥३॥
हो राज तारी शोभा ते कही नव जाय,
हूँ रूपल देखी लोभाणी हो ॥४॥

हो राज मारे मंदिरे पधारो,
कहे मीराँ बलिहारी हो ॥५॥

विनय　　　　५७ (गुज०)

शामळीया, शामळीया हो गिरवरधारी ।
शामळीया, तुं तो अखे मंडल नो वासी ।
हुं तो तारी दासी हो······गिरवरधारी ॥०॥
शामलीया, तारे मस्तक मुगट बिराजे ।
ऊपर छोगां छाजे हो ॥१॥
शामलीया, तारे कटी पीतांबर छाजे,
सबली मोरली वाजे हो ॥२॥
शामलीया, तुं तो × × संगे रमतो,
एठुं जुंठुं जमतो हो ॥३॥
शामलीया, तुने जमनानी तोरे दीठो,
सबलो लागे मीठो हो ॥४॥
शामलीया, तारी माया मां विश्व डोले,
ब्रह्मा सरखा भूले हो ॥५॥
शामलीया, तुं तो वृन्दावन गौ चारे,
तने देखी नयणां ढाले हो ॥६॥
शामलीया, बाई मीराँ दासी तमारी,
जाय छे बलिहारी हो ॥७॥

परमोल्लास　　　　५८ (गुज०)

आज मारां नैणां तृप्त थयां, जोया नाथने निरखी ।
सुन्दर बदन निहाळीने, मारा हैडामां हरखी ॥०॥
जेवुं मारे मन हतुं, तेहवुं नाथजी कीधुं ।
ते प्रभु प्रेमे पधारीआ, आलिंगन दीधुं ॥१॥

मारो वाहालोजी विहारीलाँ, जावा ने केम दीजे ।
हरिने अळगा नव मेलिए, अंतर गत लीजे ।।२।।
शिवरे विरंची महामुनि, तेने ध्याने न आवे ।
परम भाग्य व्रिजनारनुं, वाहालो लाड लडावे ।।३।।
धन्य धन्य रे जमुना त्रटे, धन्य ब्रिजनो रहेवास ।
धन्य धन्य रे आ भूमि ने, वाहालो रमिया रास ।।४।।
अमरलोक अंतरीक्षथी, जोवाने रे आवे ।
पुष्प वृष्टि त्यां थती, मीराँ प्रेमे वधावे ।।५।।

सेवाभाव ५६

आज मारी मिजबानी छे राज । मारे घरे आवना, महाराज ।।०।।
ऊँचा सें बाजोठ ढळावुं, अपने हाथ से ग्रास भरावुं ।
ठंडा जळ जारी भरी लावुं, रचि रचि पावना महाराज ।।१।।
बहु मेवा पकवान मिठाई, शाक छत्रीशे जुगतें बनाई ।
उभी उभी चामर ढोळुं राज, सुहामणा महाराज ।।२।।
डोडा एलची लविंग सोपारी, काथा चुना पान बिच डारी ।
अपने हाथ सें बीरी बनाऊँ, मुखसें चावना महाराज ।।३।।
मोर मुकुट पीतांबर सोहें, सुरी नर मुनिजन के मन मोहे ।
मीराँ कहे गिरिधारीलाल, दिल बिच भरनां महाराज ।।४।।

प्रेम ६० (गुज०)

मचकाळा, मंदिरिये आव, मचके मोही रही छुं ।।०।।
तारे मचके मोटा मुनिवर मोह्या रे ।
मोही छे व्रजडांनी नार, टगमग जोई रही छुं ।।१।।
शेरिये ने शेरिये हुं तो साद पडावुं रे ।
गिरधर गोवालिडाने काज, गावलडी हुं दोही रही छुं ।।२।।
हरतां ने फरतां हुंने हिरलो लाधो रे ।

मोती सरखो मारे माथ, चित डामां प्रोई रही छुं ॥३॥
हरतां ने फरतां वारी हेलो ना दीधो ।
स्वप्ना मां दीठो सारी रात, सेजलडीमां सूई रही छुं ॥४॥
भात रे भातना भोजन रांध्या रे ।
जमवा आवोने दीनानाथ, वाटडली जोई रही छुं ॥५॥
वंद्रारे वनमां वाले, रास रमाड्या ।
सोळसां गोपीमां घेलो का'न, तमने जोई रही छुं ॥६॥
चुन चुन कलियां वा'ला, सेज बिछावुं का'ना ।
मारो मोढवाने वहेलेरो तुं आव, वालम, वाट जोई रही छुं ॥७॥
वृंदारे वनमां वा'ला, गौधेन चारे का'नो ।
वांसलडी ना वगाड, गांडी घेली थई रही छुं ॥८॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण व्हाला ।
मळवाने वहेलेरो आव, दासी दुःखी थई रही छुं ॥९॥

रूपासक्ति   ६१

तेरो रूप देख लटकी ।
देहथि विदेह भई गिरी परी शिरे मटकी ॥१॥
मात तात सजन बंधु जननी मिलि हटकी ।
सदि थी मोहों टरत (न) नाहीं छबी (वि) नागर नटकी ॥२॥
अब तो मन वासु मांन्यो लोक कहत भटकी ।
मीराँ प्रभु गिरिधर बिना को जांणे आ घटकी ॥३॥

प्रेमालाप   ६२

थें छो काना मनका कपटी, भक्तां को मन लुभायो जी ॥०॥
लटपट पाग जरी कस जामा, मुकुट की या छबि छाई जी ॥१॥
बाजुबंध कर पौंची बिराजे, गल बैजयंती मालाजी ॥२॥

कटि किंकिणी चरणाँ नूपुर सोहे, झाँझर को झनकारोजी ॥३॥
मीराँ तो प्रभु प्रेम प्यासी घर बैठयाँ गिरधर पाया जी ॥४॥

प्रेमालाप ६३

प्यारे म्हाने लागे श्री गोपाल रे, पीतांबर वालो प्यारो म्हाने लागे श्री गोपाल ॥०॥
मथुरा में मोहन बसे रे वृन्दावन घनश्याम ।
द्वारिकापुरी में जाय बिराज्या ज्याँरी मोटी धाम रे ॥१॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे कुंडल की छबि और रे ।
बाँय बाजुबंध सोहतां रे पौंची रतन जडाव ॥२॥
गल बैजयंती माला सोहे ज्याँरी चटकीली चाल रे ।
कटि कंदोरो अधक बिराजे चरणाँ में नूपुर सोहावता रे ॥३॥
मीराँ दासी श्याम को रे अंग में लीन्ही समाय रे ॥४॥

रूपासक्ति ६४

या मोहन के रूप लुभानी ॥०॥
हाट बाट मोहे रोकत टोकत, रसियाजी के रंग लपटानी ॥१॥
सुन्दर बदन कमलदल लोचन, देखत ही बिन मुले बिकानी ॥२॥
जमना के नीर तीर धेनु चरावत, बंसी बजावत सुनी मुसकानी॥३॥
तन मन धन गिरधर पर वारूं, सेवा चरण कमल की जानी ॥४॥

छवि-छटा ६५

गोपाल मेरे प्यारे धीमा चलो न गोपाल ॥०॥
मोर मुकुट सिर छत्र विराजे । कुंडल झलकत कान ॥१॥
बाँहे बाजूबंद गले में बैजन्ती । मुरली लीनी हाथ ॥२॥
पाँये पैजनियाँ रुनझुन बाजे । चलत ठुमुक ही चाल ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । हृदय बसो यही ध्याना ॥४॥

पदों के शब्दार्थ-भावार्थ-विशेष आदि
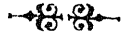
१—मेरे·········अटके=मेरे नेत्र पूर्ण रूप से (श्यामसुन्दर की) बाँकी छवि में उलझ गए-फँस गये। पियूख=अमृत। न मटके=हिलते नहीं, पलक बंद नहीं होती। वारिज=कमल।

२—पाठान्तर, टेर का उत्तरार्धः—

आये·········आये, निज भक्तन का काज बनाये ॥०॥

६—कुंडल की·········आई=मकराकृति कुंडलों पर पड़े हुए अलकों के प्रतिबिंब, कपोलों पर फैली हुई उनकी आभा में इस प्रकार दिखाई देते हैं मानों मीनों का समूह सरोवर का त्याग कर मगर से मिलने आ पहुँचा है। खंजन·········छौना=खञ्जन, भ्रमर, मीन और मृग शावक भी हार खा जाते हैं। सुग्रीव=सुन्दर ग्रीवा। बिंब=बिंवा फल (के समान लाल)। दसन=दांत। दुति=कांति। चपलासी=बिजली सी। छुद्र घंट किंकिनी=घूँघरूदार करछनी।

७—मरोड़=छटा। रमझोर=मदभरी स्वरमाधुरी। घनघोर=चित्त को चंचल बनाने वाली मधुर।

११—निवाजूँ=सिर चढ़ाती हूँ। रळी=आनंददायक। आँगणो·········मेह=आँगन में दुग्ध-धारा की वर्षा हुई, सर्व प्रकार से पूर्ण-मनोरथ हो गई।

१२—ठानूँ-ठाम=जहाँ-तहाँ, सर्वत्र। गवन=गमन।

१३—चारयणीयां=देखा देखी में। नांखी=डाली। भलका=भाला, कटाक्ष।

१४—जांबुक वरणी, स्वर्ण-कान्ति युक्त। रत्नागर=समुद्र।

२१—प्रभुजी·········वळग्या=प्रभु ने मुझे अपना लिया। पल·········थावूँ=पल भर भी पृथक् न होऊँगी। त्रहोटाणां=तीनों समय।

२२—निपट=पूरे। बँकट=बाँकी। वारिज=कमल।

२३—केड़े=कटि में। फूलड़ां·········तोरा=फूलों के तुर्रे

लगाए। मेवले = मेवे से। खोळा = गोद। पूठ न मेले – पीछा नहीं छोड़ते। पासे थी·········खसता = पास से हटते भी नहीं।

२८—कनोरा = कन्दोरा, आभूषण विशेष। चरचुं = लेपन करूँ। राई·········उतारूं = दृष्टि उतारूँ। फीना = तारफेनी, मिठाई विशेष।

२५—छनगाळा = नखराले, नटखट। पोंछी = पहुँची। छाजे = सोहते हैं।

२६—बहुरि·········आय = फिर लौटकर नहीं आते। ललकि रहे = उलझ रहे।

२७—झालर = आरती के समय बजाने का काँसे का वाद्य विशेष। चापे = दबाती है। टीकम = प्रभु। सीरख = रजाई। मसोड़ = साथ में मिलाने की चादर। रमझोल = नूपुर।

२८—कुछ पाठान्तर को छोड़ शेष अधिक चरण पाये जाते हैं:—

मैया मोरे भाग जागे, श्याम आये पावना।
चुवा चंदन घीस लियो, आंग को लगावना।
मथुरा में कंस मारे, लंकापति रावणा।
राजा बलिके द्वारे ठहरे, रूप लिया बवना।
गोकुल में जाके ठहरो, द्वारका वसावणा।
मीरांबाई हरि की दासी, पद को लगावना॥

२६—उमरण = चिन्तन।

३१—गुमानी = अभिमानी। गहे = पकड़ कर। द्रुमडार = वृक्ष की शाखा। कट = कटि में। काछिनी = कच्छ। काछे = कसा हुआ।

३२—कीधी······थारी = सुन्दर थाल प्रस्तुत किया है। कंसार = मिष्टान्न विशेष। पीरस्यो छे = परोस्यो है। शरमाशो नहि वारू = संकोच मत करना, अच्छा। कंई·········खारूं = खट्टा, खारा कैसा है कहना। कनकनी = स्वर्ण की। आचमन लेबरावुं = अंचवाऊं। मुखवास = ताम्बुल। हेते·········पाश = प्रेम से मेरे पास रहो।

३३—नीको = अच्छा। टीको = तिलक। वीरो = भ्राता। बिराणा = पराया। मही को = दही का।

पद की टेर व र चरण के पाठान्तर के अतिरिक्त शेष चरण अधिक पाये जाते हैं :—

प्यारो मोहि लागे राम नीको, ओ तो कृष्ण कँवर नंदजी को ॥०॥
खाटी छाछ नेकु नहीं भावे, कृष्ण खवैया दीको ॥१॥
माल पराया मीठा लागे, घर को लागे फीको ॥२॥
म्हूँ दधि बेचन जाती वृन्दावन, सर पर माठ मही को ॥३॥
घाट घाट जो कान्हे रूंध्या, लागे डाण मही को ॥४॥
कसुमल पाग केसरिया जामो, सर केसर को टीको ॥५॥
मीरांबाई के सांवरा गिरधर नागर, आप बिना जग फीको ॥६॥

४१—ओस········किसी = क्षण भंगुर संसार से मन मोड़ लिया, प्रभु रूप बादल की छाया का आश्रय लिया है ।

४३—कूबड़ी = ध्यान के समय योगी के काम में आने वाला काष्ट का साधन विशेष ।

४६—भल········समाजे = उस संत समाज का भला हो जिससे गिरधर की प्राप्ति हुई। छटी ········भाजे = जो उपर्युक्त प्रभु के आनन्दानुभव से दूर हैं उन्हीं का अमंगल होता है ।

४७—ये···········हमारी = जो भी कुछ इन ब्रजराज (यहाँ श्यामसुन्दर से तात्पर्य है) से ही हमारी प्रार्थना है। हजारी = पुष्प का प्रकार विशेष ।

४६—सुवन को = पुत्र का । आलजाल = प्रापंचिक जगत को ।

५०—आदु·········चंदा = श्री कृष्ण रूप पूर्ण चंद्र को देखने बाद सांसारिक विषयों की ओर देखने की इच्छा नहीं होती ।

५१—कामण = वशीकरण । डील थी = शरीर द्वारा । दीलासा = आश्वासन । रूड़ा = अच्छा ।

५६—तने········मोदिये हो = प्रेम से तुझे देखकर आनंदित होती हैं ।

५७—दीठो = देखा । सबलो = बलवान । ढ़ाळे = झुक जाते हैं ।

५८—हैडामां=हृदय में। हतु=था। तेह्वु=वैसा। ते······दीधु=प्रेम में पधारकर उन प्रभु ने अलिंगन दिया। अळगा=पृथक्। नव=नहीं। मेलिए=करें, रखें। अंतर············लीजे=हृदय में समालें। विरंची=ब्रह्मा। अंतरीक्ष थी=सूक्ष्म सृष्टि के। जोवाने आवे=देखने को आते हैं। त्यां=वहाँ। थती=होती है।

५९—ऊँचा से·········भरावु=ऊँचाई पर चौकी लगवाकर अपने हाथ से ग्रास जीमाऊँगी। डोडा एलची=इलायची।

६०—मचकाला=नखराले। मचके=नखरे से, हाव भाव से। टग मग=एक टक। शेरिये=गली में। साद पडावु=घोषणा कराऊँ। गावलडी=गाय। हरतां·········लाधो=अनायास (प्रभु रूप) हीरा प्राप्त हुआ। खोई रही छु=खो रही हूँ। हेलो ना दीधो=पुकारा नहीं। भात रे भातना=भांति भाँति के। गांडी घेली=पगली। वहलेरो=शीघ्र।

६१—देह···········मटकी=देखिए पद-५३ के शब्दार्थ। वासु=उससे।

———

विभाग ८ व्रजभाव

भगवान् श्रीकृष्ण को अपना सर्वस्व समर्पण करने वाले प्रेमी भक्त के लिये आनन्द, शांति, प्रेम एवं कल्याण के परमाधार रूप व्रजभाव को अपनाना अनिवार्य होता है।

* भूमिका *

★

'एरी आज काल्हि सब, लोकलाज त्याग दोऊ,
सीखें हैं सबै विधि सनेह सरसायबो।
यह 'रसखान' दीन द्वै में बात फैलि जैहै,
कहाँ लौं समानो चंद हाथन छिपायबो॥
आज हौं निहारयो बीर, निपट कालिन्दी तीर,
दोऊ को दोउन सौं मुख मुसकायबो।
दोऊ परैं पैयाँ दोऊ लेत हैं बलैयाँ,
उन्हें भुलि गईं गैयाँ, उन्हें गागर उठायबो॥

श्री राधा कृष्ण—युगल प्रेम की चर्चा जो सखियों के समाज में होती है 'रसखान' के शब्दों में उसका यह मार्मिक एवं रसभरा वर्णन सुनकर एक बार तो भावुक हृदय गद्‌गद् हो उठता है। परस्पर अनन्य प्रेम का यह बानक ही ब्रज की अपूर्व देन—ब्रजभाव का दिव्य वरदान है।

श्री ब्रज-महिमा, श्रीकृष्णावतार रहस्य व महिमा, श्री राधा व गोपी महिमा, एवं श्रीकृष्णलीला आदि तत्वों का अनुशीलन करते हुए उनमें डूबने पर तत्सम्बन्धी प्रेम रस का पोषक जो भाव हृदय में प्रादुर्भूत होता है, वही ब्रजभाव है। अतएव ब्रजभाव को समझने के लिये क्रम से इन पर यथामति विचार किया जाना उचित होगा।

श्री ब्रज-महिमा

'एक रज रेणुका पै चिन्तामणि वारि डारौं,
वारि डारौं विश्व सेवा कुन्ज के बिहारी पै ।
ब्रज की लतान पै कोटि कल्प वारि डारौं,
रंभा को वारि डारौं गोपिन के द्वार पै ॥
ब्रज की पनिहारिन पै रति सचि वारि डारौं,
वैकुन्ठ हू को वारि डारौं कालिन्दी की धार पै ।
कहै राम राय एक राधा जू को जानत हौं,
देवन कूँ वारि डारौं नन्द के कुमार पै ॥

= कदा वृन्दारण्ये विमल यमुना तीर पुलिने
चरन्तं गोविन्दं हलधर सुदामादि सहितम् ।
अये कृष्णस्वामिनम् मधुर मुरली वादन विभो
प्रसीदेत्या क्रोशन् निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥

श्री वृन्दावन धाम में, सुन्दर यमुना तट पर हलधर, सुदामा के साथ विहार करने वाले गोविंद को, हे कृष्ण ! हे नाथ ! हे बंशी के बजाने वाले प्रभो ! तुम प्रसन्न होओ ।' इस प्रकार पुकारता हुआ दिनों को कब पल के समान बिताऊँगा ?

= गुणातीतं परंब्रह्म व्यापकं ब्रज उच्यते ।
सदानन्दं परम ज्योति मुक्तानां पदम व्ययम् ॥

यह ब्रज ही गुणातीत, परब्रह्म, व्यापक, सदानन्द, उत्तम ज्योति एवं मुक्त पुरुषों का अव्यय पद है ।

=वृन्दावन वैकुण्ठ कूं तोल्यो तुलसीदास ।
भारो हो सो यहँ रह्यो हलको गयो अकास ॥

भगवान् उद्धव जी से कहते हैं—

=ऊधौ, मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं ।
.........................॥

ज्यों भगवान् शंकर को काशी धाम तथा श्री रामचन्द्र के लिये अयोध्या पुरी प्यारी है, वैसे ही श्री राधा कृष्ण के लिये वृन्दावन-धाम प्राण प्यारा है। अतएव समस्त ब्रज ही लीला पुरुषोत्तम की लीला भूमि है। श्रीकृष्ण की मधुर ब्रज लीलाओं से सम्बन्धित उपासना भाव ही ब्रजभाव कहलाता है।

वैसे तो और देशों से भारत की महिमा बहुत बड़ी है जहाँ अनेकानेक तीर्थ स्थान हैं परन्तु उसमें भी जहाँ जिस प्रदेश में, जिस भूमि में स्वयं भगवान् ने अवतार धारण कर अपनी लीला की हो, भला उस भूमि की धन्यता के लिये क्या कहा जाय? परम धन्य है वह रज, जिसके दर्शन वा स्मृति से अतीत की स्मृति—भगवान् की अलौकिक लीला स्मृति होकर हृदय में सहज ही श्रद्धा, प्रेम व भक्ति भाव की तरंगें हिलोरें लेने लगती हैं।

श्री मथुरा और श्री वृन्दावन के इतस्ततः विस्तृत ८४ कोस की भूमि सब 'ब्रज-भूमि' मानी जाती है।

भारत में ब्रज-भूमि का विलक्षण माहात्म्य है। यहाँ के सब वृक्ष, लता-पत्र, गाँव—वन, पर्वत और रज में वह अपूर्व शक्ति है जो भक्त-हृदय में लीला—पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की लीला के दृश्यों को उपस्थित कर प्रेम से उसे सराबोर कर देती है।

वास्तव में देखा जाय तो भगवान् श्री वेदव्यास रचित श्रीमद्भागवत और उसके भी दशम स्कंध के पूर्वार्द्ध में रास-पंचाध्यायी के उन पांच अध्यायों में से भी तीसरे में जो कृष्ण-लीला ब्रज वनिताओं द्वारा गाई गई है वह गोपी—गीत ही

वस्तुतः ब्रजरस के परम गौरव का प्रकाशक है तथा ब्रज-भाव का रहस्य भी इसी में अन्तर्हित है।

ब्रजरस के परम अनुभवी सन्त-महात्मा की घोषणा है कि पूर्व जन्म के पुण्य उदय होते हैं तभी जीव को ब्रज या वृन्दावन वास प्राप्त होता है।

> वृन्दावन में बास करि। सागपात नितखात।
> तिनके भागन को निरखि, ब्रह्मादिक ललचात॥

ब्रह्माजी भी यही कामना करते हैं कि चाहे कीट-जन्तु का ही क्यों न हो पर वृन्दावन में मुझे अवश्य जन्म प्राप्त हो। वास्तव में 'राधा-कृष्ण' रटते हुए वृन्दावन वास करने वाला प्राणी ही वास्तव में महान् पुण्यशाली है और जीवन भी उसी का कृतार्थ है।

किसी प्रेमी-भक्त ने गाया है:—

> जाहु ब्रज भोरे, कोरे मन को रंगाई ले रे,
> वृन्दावन रैन रची गौर श्याम रंग की।
> जो सुख लेत सदा ब्रजवासी सो सुख सपनेहूँ—
> नहीं पावत जो जन हैं बैकुन्ठ निवासी॥

श्री ब्रज रज के अनन्य निष्ठावान् भिन्न वैष्णव संप्रदाय के आचार्यों ने श्री ब्रज-महिमा के प्रति अपने पद काव्यादि, अनुपम वाणी द्वारा मधुर भावाञ्जलियाँ अर्पित की हैं जिन में प्रमुख हैं श्री गीतगोविंदकार जयदेव, श्री हित हरिवंश, श्री भट्ट सूरदास, मीराँ, श्री हरिव्यासदेव, श्री हरिदासजी, नारायण स्वामी आदि आदि।

ब्रज का माहात्म्य तो विलक्षण है, अपार है, जहाँ की पावन रज में निराकार—निर्गुण परमात्मा भगवान् ने साकार

व सगुण होकर लीला करते हुए विचरण किया है। इसलिये हमें यदि श्री राधा-वल्लभ, श्री राधा रमण, श्री बाँके बिहारी, गोपीनाथ, श्री गोवर्द्धनधारी, मदन मोहन को यदि पाना है तो ब्रज की कुंजों में—श्री वृन्दावन धाम में ही उनके दर्शन प्राप्त हो सकते हैं। वृन्दावन के बाहर निराकार भगवान् से हमें क्या करना है। हमारे प्यारे व लीलाधारी, माखन चोर, रसिक-शिरोमणि, धेनु-चरैया, नंद-यशोदा के लाल, कन्हैया, दाऊजी के भैया, गोप-सखा, राधा-मोहन, और साक्षान्मन्मथ मन्मथ, निकुंज-बिहारी श्री कृष्ण तो वृन्दावन में ही नित्य निवास करते हैं। प्यारे कृष्ण वृन्दावन के बाहर तो जाते ही नहीं:—

'वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति'

बेचारी मुक्ति का भी छुटकारा यहीं होता है यथा—

मुक्ति कहे गोपाल सों मेरी मुक्ति कराय।
ब्रजरज उड़ि मस्तक लखे मुक्ति मुक्त ह्वै जाय॥

परम धन्य है यह ब्रज रज! यह प्रभु का साक्षात् निज धाम है। ब्रजवास-वृन्दावन वास करते हुए भले ही कोई साधन करो वा न करो योग भक्ति करो न करो, ब्रजरज के परम निष्ठावान् प्रेमी भक्त को स्वयमेव कल्याण प्राप्त होता है। मोक्ष मिलना तो साधारण बात है। कुछ करते हुए आगे बढ़ते गये तो आनन्द की उत्तरोत्तर स्थिति को अनुभव करते हुए अन्त में प्रेम व आनन्द-सुधा-सिंधु में पूर्णतः निमग्न होकर ही उसके जीवन की कृतकृत्यता होती है।

ब्रज तो साक्षात् प्रेम स्वरूप श्याम सुन्दर का घर है। वहाँ उसकी ईश्वरता चलती नहीं। यशोदा को मुख बताते समय,

अक्रूर जी को न्हाते समय यमुना में, श्री गिरिराज धारण करते समय, ग्वाल बालों से खेलते समय, तथा और भी समय-समय पर उसने कई विलक्षण चमत्कार बताये परन्तु किसी ने न इसको महत्व दिया, न कातर भाव से प्रमाण, प्रार्थना, पश्चाताप व शरणागत का भाव ही बताया। इसके विपरीत गोप ग्वाल बालादि द्वारा कनुआ कारे सारे, लाला आदि और गोपियों द्वारा कहे गये चोर, चंचल, धूर्त, नटखट ढीठ आदि वचन उसे मीठे लगते आये हैं तथा गारी सुनने में ही आनन्द आता रहा है।

श्याम सुन्दर को जो सुख–सुविधा ब्रज में है वह ब्रज के बाहर नहीं। बाहर तो आर्त्त व मुमुक्षु जनों की करुण पुकारों को सुनकर तथा धर्म 'संस्थापनार्थाय' की चिन्ता में व्यस्त रहना पड़ता है। लाड़ प्यार तो उसे ब्रज में ही मिलता है जिससे पाँव पसार कर आनन्द पूर्वक वह सुख की नींद सोता है।

सारी ब्रज भूमि श्री कृष्ण के चरणारविंद चिह्नों से अंकित है। गो चारण तथा बाल लीला के कारण ब्रज की रज-रज रमण रेती सी हो गई है क्योंकि वह पादत्राण धारण नहीं करता। ब्रज में अपने सखाओं से हारने में ही सुख मानता है। सबका मित्र कहलाने में ही श्याम अपना सौभाग्य समझता है, यथा:—

अहो भाग्यमहोभाग्यं नन्द गोप ब्रजौकसाम्
यन्मित्रं परमानन्दम् पूर्णब्रह्म सनातनम्।

श्री कृष्ण अवतार रहस्य

अखिल विश्व में अब तक जो अनेकानेक विभूतियाँ, संत-महात्मा, धर्मात्मा–राजनीतिज्ञ, कलाकार–विविध गुण संपन्न,

योगी-मुनि, ज्ञानी-ध्यानी, पराक्रमी-पुरूषार्थी, सत्तावान् व समर्थमहा-पुरुष होगये एवं होते आये हैं, वे सब अपने अपने एक ही क्षेत्र में उच्च कोटि की प्रगति कर गये परन्तु एक ही व्यक्ति सर्व गुण संपन्न हो अथवा जिसकी सर्वाङ्गीण प्रगति पराकाष्ठा तक पहुँची हुई हो अर्थात् सकल क्षेत्र में जिसका अधिकारपूर्ण प्रभाव हो ऐसा कोई विरला ही होता है अथवा यों कहा जाय कि एक श्री कृष्ण को छोड़ कर अन्य कोई ऐसा कहीं हुआ ही नहीं। इसीलिये वे पूर्णावतार—पुरुषोत्तम कहलाये। उन्हीं में भक्त को अपनी भावनानुसार भिन्न स्वरूप के दर्शन होते थे। समस्त क्षेत्रों के परम आदर्श उसी विभूति में सगुण अथवा निर्गुण ब्रह्म का एक साथ प्रकटीकरण हुआ था। श्री कृष्ण-चंद्र लीला—पुरुषोत्तम की यही लीला विशेषता एवं अवतार रहस्य है।

श्री कृष्ण ने अवतार धारण किया उस समय भारत में जहाँ तहाँ दानवों का बोलबाला था। कंस, जरासंध, काल-यवन, पौण्ड्रक, दंतवक्र, शिशुपाल, शाल्व, भौमासुर एवं कौरवादि राक्षसी वृत्ति एवं आसुरी संपत्ति वाले आततायियों के अत्याचार से प्रजा 'त्राहि-त्राहि' कर रही थी। अधर्म, अनीति, अन्याय, असत्य व हिंसा यही उन दुष्ट शासकों की कुटिल राज-नीति थी। इस विषय में एवं तमोगुणी परिस्थिति में से प्रजा की रक्षा के लिये ही 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥' की गीतोक्त उनकी प्रतिज्ञा के अनुसार श्री कृष्ण का प्राकट्य हुआ था। उन्होंने यथा आवश्यक अपने तेज, कला, गुण व सामर्थ्य का जहाँ जैसा चाहिये उपयोग कर, देश, धर्म व समाज पर छाये हुए उस

आतंकित वातावरण को छिन्न-भिन्न करते हुए, दुष्टों का दमन कर भारत में फिर से धर्म, नीति, न्याय व प्रेम आदि दैवी सम्पदा युक्त सुराज्य-स्थापना की ओर भारत को अग्रसर करके धर्म की विजय पताका फहराई ।

श्री कृष्ण ने विश्व-कल्याण के लिये गीता द्वारा दिव्य सन्देश दिया जिसका सार यही कि मानव-जीवन का लक्ष्य भोग न होकर प्रभु-प्राप्ति होगा तभी शांति, कल्याण एवं सुख की प्राप्ति होगी । ज्ञान, भक्ति व कर्म तीनों में से किसी भी मार्ग द्वारा साधन-मनन एवं ध्यानादि अभ्यास करके प्राणी प्रभु के निराकार वा साकार दर्शनानुभव को प्राप्त कर सकता है। इसके लिये कर्म त्याग की आवश्यकता नहीं, फल का त्याग करना चाहिये यथा 'कर्मण्येवाऽधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।' संसार बन्धन का मूल कारण आसक्ति है । इसलिये अनासक्त होकर कर्म करना चाहिये । इस प्रकार अनन्य श्रद्धा पूर्वक सर्व भावेन प्रभु की शरण जाने से ही ध्येय-प्राप्ति होती है । यही कल्याण का प्रशस्त मार्ग है ।

परमात्मा 'पत्रं पुष्पं' के अनुसार जो भी अनन्य भाव से समर्पण किया जाय उसे स्वीकार करता है । स्वयं श्रीमुख के वचन हैं–जो भी कर्म करो, दान करो, खाओ, पीओ, तपश्चर्या करो मुझको समर्पण करो जिससे तुम कर्म बंधन मुक्त होकर, शुभाशुभ से परे होकर प्रभु की भक्ति को प्राप्त करोगे । यही गीतोपदेश का सार है । और जन साधारण सुलभ इस सरल और स्पष्ट साधन का यह निदशन भी, भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार कार्य के अनेकानेक हेतुओं में से एक महान हेतु है ।

श्री कृष्ण-महिमा

'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।'

श्री शुकदेवोक्ति के अनुसार एक मात्र श्री कृष्ण ही परम पुरुष भगवान् हैं ।

जिसने संसार की समस्त कला व विद्या में अमिट स्थान पाया हो, भारतीय संस्कृति का रक्षक, परम आदर्श, सकल प्रदेशों की कविताओं का केन्द्र बिन्दु रहा हो तो वह पूर्ण योगेश्वर श्री कृष्णचन्द्र । उनकी जीवन लीला बहुरंगी है । मानव-जीवन के सकल तत्वों का उनमें समावेश होता है । इसीलिये वे और अवतारों के समान आंशिक नहीं किन्तु १६ कलाओं युक्त पूर्ण अवतार कहलाये ।

बालपन में वही 'वेदान्त-सिद्धान्त' कृष्ण कन्हैया परम वात्सल्यमयी माता यशोदा के प्राङ्गण में क्रीड़ा करता है । माँ यशोदा उसे प्रेम के बन्धन में बाँधकर खेलाती है, हँसती है व मनमाना नाच नचाती है । वही परम तत्व अपने गोप-ग्वाल सखाओं के, परम मधुर साख्य-भाव के वश होकर, उनसे आँख-मिचौनी खेलता है और महाभागा परम प्रेमरूपा गोपाङ्गनाओं के साथ प्रणाय केलि करता है ।

छोटी सी आयु से ही उसकी नीति लोक मान्य हुआ करती थी । उसका गोवर्धन पूजा का प्रस्ताव सब ने मान लिया, ऐसा गुरू समान सब उसका आदर करते थे । इन्द्र यज्ञ की प्रथा मिटा कर उसने श्री गोवर्धन पूजा को प्रचारित किया और श्री गिरिराज को धारण कर सारे ब्रज की रक्षा की । इन्द्रादि

देवताओं की पूजा न होने देकर भी श्री गिरिराज, गौएँ आदि की पूजा वह करवाता है, पर स्वयं नहीं पुजवाता।

वह मोर पंख, खडी, गेरू आदि से भाल तथा अङ्गों पर चित्रावली—पत्रावली की रचना करवा कर, कनेर, टेंटी, करौंदे इत्यादि फल पुष्पों के आभूषण धारण कर, जो उसके आनन्द-स्वरूप पर मुग्ध होकर बिना मोल की दासी बन चुकी हैं उन ब्रज-सुन्दरियों को रिझाता है। इन आत्मीयों के साथ वह राधा-वल्लभ, राधा-रमण व गोपी-जन-वल्लभ बन जाता है।

वह कला रहस्य का पूर्ण ज्ञाता था। मोर मुकुट, मकराकृति कुंडल, तुर्रा कलंगी, घुंघराले बाल, पीतांबर, दुपट्टा, बंशी बजाने की त्रिभंगी मरोड, मधुर मुसकान और कलेजे में चुभकर प्रेम-विह्वल करने वाली जादूभरी आँखें—ये सब उसकी कला रसिकता का परिचय देने वाले लक्षण हैं।

श्री कृष्ण की सर्वतोमुखी प्रतिभा थी। दिव्य जन्म कर्म वाले उन कृष्ण के लिये, निमित्त भले ही उज्जैन के आचार्य कुल में केवल चौंसठ दिन तक विद्या पढ़ने का हुआ, परन्तु उसके पहले से ही, गोप ग्वाल व गौओं का आकर्षण करनेवाली तथा ब्रज बालाओं को प्रेम-विह्वल कर देने वाली संगीत व बंशी-वादन कला में वे प्रवीण थे। गोकुल वृन्दावन में कुत्सित उद्देश्य से आये हुए अनेकों असुरों तथा कुवलयापीड़ व कंस-चाणुरादिकों को पछाड़ देने वाली मल्ल विद्या प्राप्त थी।

जब त्रिभंगी रूप से खड़े होकर श्यामसुन्दर बंशी बजाते तब उसे सुनकर ग्वाल-बाल अपनी सब थकान भूल जाते, गौएँ दौड़ आतीं और अपने कानों को ऊँचा कर कन्हैया की ओर

एक टक लगाकर सुनती रहतीं। उस वंशी की प्यारी तान को सुनकर, उनके आनन्द-स्वरूप-सुधा-रस की प्यासी ब्रज देवियाँ सब घर का काम काज छोड़कर दौड़ी हुईं नटखट के निकट आतीं और मन मोहन पर न्यौछावर हो जातीं और वे भी उनकी रसभरी प्रीति पर न्यौछावर हो जाते क्यों कि उन ब्रजबालाओं की सर्व क्रियाएँ केवल 'तत्सुख सुखीत्व' तथा 'तदस्यां कृष्ण सौख्यार्थमेव केवलमुद्यमः' की भावना से होती थीं। इस लिये केवल एकाध रसबिन्दु भी मिल जाय इस अपेक्षा से उनसे छेड़खानी कर स्वयं सुखी हो उन्हें भी सुखी बनाते।

उनकी वंशी अब भी ब्रज-निकुंजों में, वृन्दावन में उन्हें सुनाई देती है जिन्होंने अपने आपको श्री युगल चरणों में आत्यंतिक शरणागति भाव से सर्वात्म समर्पण कर दिया है एवं जिन अनन्य प्रेमी भावुक भक्तों पर युगल सरकार का कृपा-कटाक्ष हुआ हो। वैसी वंशी बजाने वाला फिर इस धराधाम पर कोई अवतीर्ण नहीं हुआ।

अक्रूर द्वारा अपने शत्रु कृष्ण को मथुरा में बुलवा कर येन केन प्रकारेण उसका दमन करके जरासन्ध की सहायता से निष्कंटक व निश्चिन्त होकर राज्य करने का कंस ने सोचा था परन्तु हुआ उलटा ही। कृष्ण ने मथुरा में आकर कंस की प्रजा को अपनी बना लिया और कंस को मार कर उग्रसेन को राज्य लौटा दिया। इस प्रकार इतिहास में संभवतः प्रथम क्रान्ति का सूत्रपात किया और जैसा कि एक आदर्श जन नायक को चाहिये, निर्लोभी रहकर राज्य हड़पने की चेष्टा नहीं की।

महाभारत की विजय के पश्चात् यदि चाहते तो श्री कृष्ण समस्त भारत के सार्वभौम सम्राट् हो सकते परन्तु उन्होंने ऐसा न करके युधिष्ठिर को अश्वमेध यज्ञ द्वारा अखंड भारत का महाशासक बना दिया। हिमालय से समुद्र पर्यन्त समस्त प्रदेश को संगठित कर, एक छत्र महा साम्राज्य स्थापित कर अपूर्व राजनीतिज्ञता का परिचय दिया।

साम, दाम, दंड और भेद पूर्वक 'शठं प्रति शाठ्यं कुर्यात्' के अनुसार जैसे के साथ वैसा व्यवहार कर, दुष्टों को, छली-कपटियों को, कपट द्वारा ही दमन करने की उनकी नीति थी। न्याय के लिये क्षात्र धर्मोचित गीता उपदेश देकर स्वातंत्र्य-पूर्वक रहने की संसार को शिक्षा दी तथा गलित धैर्य व हताश हुए अर्जुन को अपने अधिकार के लिये, जन हित की दृष्टि से, रणक्षेत्र में जूझने का, प्रभु का स्मरण करते हुए कर्त्तव्य क्षेत्र में संघर्ष करते जाने का कर्म योग का महामंत्र सिखाया और कहीं मोह-मद वा आसक्ति का संस्कार धर न दबावे इसके लिये योग व ज्ञान का उपदेश दिया।

श्री कृष्ण भगवान् ने, उपनिषद् शास्त्रों एवं ज्ञान, भक्ति, वेदांत व कर्म के तत्वों के सार रूप श्रीमद्भगवद्गीता रूप अमूल्य व अमर रत्न जीवों के कल्याण के लिये संसार को प्रदान किया। यह उनकी विश्व को आध्यात्मिक, अलौकिक एवं अद्वितीय देन है।

अमोघ शक्ति, अपूर्व योगबल, विलक्षण संकल्प सिद्धि आदि अनन्त गुणैश्वर्य होने पर भी सदा सर्वदा श्री कृष्ण एक ग्रामीण के समान सरल व निरभिमानी बने रहे। गौ चराना

स्वीकार किया। गोप ग्वालों से खेले। शरीर पुष्टयर्थ माखन खाया व खिलाया। मल्ल विद्या की व अपनी अपूर्व मस्ती से अनेकों दैत्यों को पछाड़ा। कंस को मारकर उग्रसेन को राज्य दिया। राजाओं को बन्दी से छुड़ाकर उनके राज्य उन्हें सौंप दिये। गोप बालाओं से निकुंज में विनोद, विलास व केलि-क्रीड़ा कर उन्हें अपूर्व आनन्द रसास्वादन कराकर कृतार्थ कर दिया, परन्तु अपनी अनन्त योग शक्ति से अलिप्त रहे, सकल घटनाओं के प्रेरक होने पर भी अनासक्त रह कर अर्जुन के सारथी बने जिनका सारथ्य-कर्म देख कर बड़े बड़े मातलि भी विस्मय करते थे। राजसूय यज्ञ में उन्होंने अतिथियों की झूंठी पत्तलें उठाईं और राजचरण प्रक्षालन करने की सेवा स्वीकार की। जिनकी युग के महापुरुष—जगद्गुरू रूप में पूजा की गई। ऐसे लोकोत्तर महान राजनीतिज्ञ, दर्शनकार व पुरुषार्थी श्रीकृष्ण सब राष्ट्रों के व महाभारत के समर्थ नेता थे।

परम भक्त विदुरजी तथा विदुरानी के साग व केले के छिलके उन्होंने बड़े प्रेम से आरोगे। सुदामा के तंदुल प्रेम से स्वीकार कर अपने उस निर्धन मित्र से अधीरता पूर्वक भेंटे व उसे जन्मों का दारिद्र्य दूर होने जितनी अपार सम्पत्ति दे दी। उन दीन—बंधु ने द्रौपदी की लज्जा रखी एवं सुभद्रा-हरण के समय भी व्यवहार कुशलता में पीछे नहीं रहे।

भौमासुर को मारकर उसके कारागृह वास में रही हुई १६१०० राज-कन्याओं को छुड़ाया जिन्होंने अपने को, मुक्ति दिलाने वाले कृष्ण को ही वरण किया था। राक्षस के यहाँ रही हुई राज कन्याओं को समाज जब अपनाने को प्रस्तुत नहीं

था तब सामर्थ्यवान् श्री कृष्ण ने उन सबको स्वीकार कर एक बड़ी भारी सामाजिक समस्या को सुलझाया एवं आठ पटरानियों से अपने बाहुबल से विवाह किया।

इस प्रकार भगवान् श्री कृष्ण की प्रत्येक क्रिया व लीला के मूल में सर्वदा लोक-हित की भावना काम करती थी।

श्री राधा-महिमा

वंदे श्री राधिकां देवीं व्रजारण्य विहारिणीम्।
यस्याः कृपा बिना कोऽपि न कृष्णं ज्ञातु मर्हति ।।

व्रज निकुंज विहारिणी श्री राधिका देवी को प्रणाम हो जिनकी कृपा के बिना कृष्ण को कोई नहीं जान पाता।

ब्रह्म मैं ढूँढ्यो पुरानन गायन वेदरिचा पढ़ीं चौगुनी चायन।
देख्यो सुन्यो न कहूँ कबहूँ वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन ।।
ढूँढ़त ढूँढ़त ढूँढ़ि फिर्‌यो 'रसखान' बतायो न लोग लुगायन।
देख्यो दुर्‌यो वह कुंज कुटीन में बैठ्यो पलोटत राधिका पायन ।।

उपर्युक्त सवैये में प्रेमी भक्त कवि रसखान ने कितने सुन्दर, यथार्थ व अपूर्व राधा-कृष्ण के भाव की झाँकी कराई है।

रूठी नायिका को मनाने के समान यह कोई श्रीकृष्ण का केवल कौतुक वा रसिक-शिरोमणित्व ही नहीं है। वास्तव में श्रीराधा-तत्व ही ऐसा अलौकिक व अनंत रहस्य मय है कि जिसका शास्त्रों के आधार पर अनुसंधान नहीं किया जा सकता न योग अथवा ज्ञान के अवलंब से ही बुद्धि गम्य हो सकता है। सर्वात्म समर्पण पूर्वक प्रेम की पराकाष्ठा जिस हृदय में होगी उसी पर श्री युगल--सरकार की कृपा होगी और तभी कुछ अंश

में उस परम रहस्य के अनुभव-प्राप्ति की संभावना है। किंतु यह भी सब कुछ केवल उन्हीं की कृपा पर ही निर्भर है। प्रेम और भावना की, हृदय की प्रार्थना पूर्वक निरंतर साधना कर रहना ही केवल शरणागत प्राणी के अधिकार में किस पर, कब, कितनी, कृपा करना या न करना यह श्री राधा व श्याम सुन्दर की इच्छा पर है।

स्कंद पुराण में कहा हैं—

> आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ ।
> आत्माराम तया प्राज्ञैः प्रोच्यते गूढ़ वेदिभिः ।।

आत्मा में रमण करने वाले होने से श्री कृष्ण 'आत्माराम' कहलाते है। श्री कृष्ण परमात्मा हैं। इनकी आत्मा है श्रीराधिका जी। श्री कृष्ण राधा के साथ रमण करते हैं।

श्री कृष्ण का राधा के साथ वही सम्बन्ध है जैसा महदाकाश का घटाकाश के साथ। दोनों में कोई भेद नहीं केवल उपाधि भेद से ही न्यारे दिखाई देते है क्योंकि इस न्यारेपन से ही लीला सम्भव है।

बंगाली प्रेमी भक्त महाकवि श्री जयदेव के गीत-गोविंद को ही यह सारा श्रेय है जिसने भगवती राधा को कृष्ण की सर्वाधिका, परम शक्ति रूपा व प्राण वल्लभा प्रतिष्ठित कर भारत में श्री राधा व कृष्णोपासना की एक नई धारा बहा दी कि जिसमें गोते लगाने वाले कई प्रेमी भक्तों को उसने प्रेमोन्मत्त बना दिया। गीत गोविंद की यह राधा कोई साधारण नहीं, एक नूतन परम मधुर प्रेम रस-तत्त्व को लेकर प्रकट हुई। गीत-गोविंद के पूर्व की अर्थात् श्री मद्भागवत, ब्रह्मवैवर्त पुराण और लीला शुक के

श्रीकृष्ण-कर्णामृत इत्यादि के गोपी व राधा के स्वरूप से ये सर्वथा विलक्षण और न्यारी, युगल-प्रेम एवं लीला-रस-सुधा की अनंत निधि की स्वामिनी है।

—मुहुरब लोकन मण्डल लीला, मधुरिपु रह मिली भावन शीला

तथा

—स्मर गरल खण्डनं मम शिरसि मण्डनं
देहि मे पद पल्लवमुदारम्।

अर्थात् निरन्तर श्री कृष्ण को देख देख कर राधा स्वयं ही श्री कृष्ण हो जाती है तथा भगवान् के द्वारा श्री राधाजी के पद कमल की चाह जिसमें कराई गई है,' इत्यादि उस प्रेम-सुधा-निधि के एक-एक कण को पाकर अनेकानेक महानुभाव झूमते हुए मतवाले हो उठे। चण्डीदास—विद्यापति ने उस लीला-सुधा का मंथन कर स्वयं परम आनंद का अनुभव करते हुए उसे सर्व साधारण जनों के लिये बिखेर दिया। उसी दिव्य प्रेम की सुधाधारा ने गुजरात के परम वैष्णव भक्त श्री नरसिंह मेहता के हृदय-प्रदेश को ऐसा परिप्लावित कर दिया कि उन महाभाग के स्वानुभूत आनंद के उफान ने मर्यादा छोड़ दी और तब महारास के साक्षात् आनंदानुभव के अधिकारी व परम भगवत्कृपा के पात्र उन्होंने श्री राधा-कृष्ण के परम उज्ज्वल श्रृंगार—दिव्य रति आदि की अपूर्व भाव भरी अनेक रचनाएँ रच डालीं। मीराँ भी उस प्रेमासव को पीकर पगली हो उठी क्योंकि उसके बहुत वर्ष पहले से गीत गोविंद पर महाविद्वान, वीरवर व रसिक भक्त भूतपूर्व महाराणा कुंभाजी रचित टीका 'रसिक-प्रिय' द्वारा, मेवाड़ छोड़ने के पहले ही, उसे यह सहज-प्राप्य हुआ था।

उस मधुरातिमधुर पावन प्रेम-सुधा की धारा भारत के पूर्व व दक्षिण के कई हृदयों में लहरा उठी जिसने श्री चैतन्य महाप्रभु को भी प्रेमोन्मत्त बना दिया। गीत गोविंद पर वे मुग्ध थे। कृष्णदास कविराज रचित श्री चैतन्य चरितामृत में इसका उल्लेख है, यथा—

चण्डीदास विद्यापति रायेर नाटक गीति
कर्णामृत श्री गीत गोविन्द।
स्वरूप रामानन्द सने महाप्रभु रात्रि दिने
गाय शोने परम आनन्द॥

वास्तव में श्री राधा के बिना कृष्ण तत्व आधा ही रह जाता है। व्रजभाव की भित्ति ही एक मात्र श्री राधा है। प्रकृति के बिना पुरुष निष्क्रिय है।

श्री ब्रज गोपी-महिमा

प्रेम की पराकाष्ठा वही है जब सब ओर से खींच कर एक मात्र अपने प्रियतम में चित्तवृत्ति रम जाय। गोपियों की चित्त-वृत्ति भी इसी स्तर तक पहुँच चुकी थी। वे कृष्णमय तथा कृष्ण गोपी मय हो गये थे। दिन में, रात्रि में, स्वप्न में उन्हें प्यारे श्याम के स्वप्न आते थे व उनके श्रवण सर्वदा प्यारे की वंशी ध्वनि को सुना करते। पूर्व संस्कार वश उन्हें यह ज्ञान हो चुका था कि प्राणिमात्र के आश्रय-स्थान, परम गति, एक मात्र ध्येय श्री कृष्ण ही हैं। प्राणिमात्र के वे सुहृद हैं। माता, पिता, गुरू, बान्धव, परमपति भी एक मात्र श्याम सुन्दर ही हैं। वे ही प्राप्त करने योग्य हैं। गोपियाँ उन्हें अपने प्रियतम मान कर विशुद्ध अनन्य प्रेम भाव से काया वाचा मनसा उनसे प्रेम करती थीं।

आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु मां
मे दर्शनान्मर्म्म हतां करोतु वा ।
यथा तथा वा विदधातु लम्पटो
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः ॥

उनके चरणों में अनुरक्त मुझ दासी को, चाहे वह आलिंगन करे, चाहे पीस डाले चाहे मुझे देखते ही मर्माहत करे। उस लम्पट की जैसी इच्छा हो वह वैसा ही करे, किन्तु मेरा प्राणनाथ तो वही है और कोई नहीं।

यही गोपियों की अनन्य निष्ठा युक्त भाव साधना है।

भगवान् ने स्वयं अपने श्री मुख से गोपियों की बड़ाई करते हुए कहा है:—

निजाङ्गमपि या गोप्यो ममेति समुपासते ।
ताभ्यः परं न मे पार्थ निगूढ़ प्रेम भाजनम् ॥
सहाया गुरवः शिष्या भुजिष्या बान्धवाः स्त्रियः
सत्यं वदामि ते पार्थ गोप्यः किं मे भवन्ति न ॥
मन्माहात्म्यं मत्सपर्यां मच्छ्रद्धां मन्मनोगतम् ।
जानन्ति गोपिकाः पार्थ नान्ये जानन्ति तत्त्वतः ॥

हे अर्जुन ! गोपियाँ अपने अंगों की सम्हाल इसलिये करती हैं कि उनसे मेरी सेवा होती है। गोपियों को छोड़कर मेरा निगूढ़ प्रेम पात्र और कोई नहीं है। वे मेरी सहायिका हैं, गुरू हैं, शिष्या हैं, दासी हैं, बन्धु हैं, प्रेयसी हैं, कुछ भी कहो सभी हैं। मैं सत्य कहता हूँ कि गोपियाँ मेरी क्या नहीं हैं। हे पार्थ! मेरा माहात्म्य, मेरी पूजा, मेरी श्रद्धा और मेरे मनोरथ को तत्व से केवल गोपियाँ ही जानती हैं और कोई नहीं जानता।

एक दिन श्री कृष्ण भगवान् ने एकान्त में अपने प्रिय सखा उद्धव जी से कहा:—

तामन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्त दैहिकाः ।
ये त्यक्त लोकधर्माश्च मदर्थे तान्बिभर्म्यहम् ॥
मयिताः प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुल स्त्रियः ।
स्मरन्त्योऽङ्ग विमुह्यन्ति विरहौत्कण्ठ्य विह्वलाः ॥
धारयन्त्यति कृच्छ्रेण प्रायः प्राणान्कथञ्चन ।
प्रत्यागमन सन्देशै र्वल्लभ्यो मे मदात्मिकाः ॥
॥ श्री मद्भा० १०।४६।४—६ ॥

हे उद्धव ! गोपियों ने अपने मन और प्राण मेरे अर्पण कर दिये हैं । मेरे लिए अपने सारे शारीरिक सम्बन्धियों को और लोक सुख के साधनों को त्याग कर वे मुझ में ही अनुरक्त हो रही हैं । मैं ही उनके सुख और जीवन का कारण हूँ । गोकुल की उन स्त्रियों को मैं प्रिय हूँ । मेरे दूर रहने के कारण वे मेरा स्मरण करती हुई मेरे विरह में अत्यन्त ही विह्वल और विमोहित हो रही हैं । मेरे शीघ्र गोकुल लौटने के सन्देश के भरोसे ही अपनी आत्मा को मुझ में समर्पण कर देने वाली वे गोपियाँ बड़ी कठिनता से किसी प्रकार जीवन धारण कर रही हैं—

या दोहने ऽ व हनने मथनोपलेप
प्रेङ्खेङ्ख नार्भरूदितोक्षणमार्जनादौ
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठयो
धन्या व्रजस्त्रिय उरूक्रमचित्तायानाः ॥
॥ श्री मद्भा० १०।४४।१५॥

जो गोपियाँ गौओं का दुध दूहते समय, धान आदि कूटते समय, दही बिलोते समय, आँगन लीपते समय, बालकों को झुलाते समय, रोते हुए बच्चों को लोरी देते समय, घरों में झाड़ू देते समय प्रेमपूर्ण चित्त से आँखों में आँसू भर कर गद्-गद् होकर वाणी से श्री कृष्ण का गान किया करती हैं, उन

श्री कृष्ण में चित्त निर्वेशित करने वाली गोप रमणियों को धन्य है।

यहीं नहीं, भगवान् श्रीमुख से गोपियों से कहते हैं—

न पारयेऽहं निरवद्य संयुजां
स्वसाधु कृत्यं विबुधा युपापि वः
या माऽभजन् दुर्जर गेह शृङ्खलाः
संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुनां ॥
॥ श्री मद्भा० १०।३२।२२॥

हे प्रियाओ! तुमने घर की बड़ी कठिन बेड़ियों को तोड़ कर मेरी सेवा की है। तुम्हारे इस साधु कार्य का मैं देवताओं के समान आयु में भी बदला नहीं चुका सकता। तुम ही अपनी उदारता से मुझे उऋण करना।

गोपियों जैसे अनन्य प्रेमी भक्तों के लिये भगवान् ने यहाँ तक कह दिया है कि:—

'अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूये ये त्यङ्घ्रि रेणुभिः।
॥ श्री मद्भा० ११। १४। १६॥

उनकी चरण रज से अपने को पवित्र करने के लिये मैं सदा उनके पीछे-पीछे घूमा करता हूँ। अस्तु।

श्री कृष्ण की प्यारी व अनन्य प्रेमिकाएँ वे गोपियाँ चतुर व रसिक भी थीं। उनके व्यङ्ग और रसिकता का परिचय प्रेमी-भक्त की वाणी द्वारा सुनिये—मार्ग में श्याम सुन्दर द्वारा रोकने पर कोई रस-रहस्य-चतुरा गोपी कृष्ण से क्या ही मार्मिक-रस भरा उत्तर देती है कि तुम चाहते क्या हो?

छीर जो चाहत चीर गहे अजूँ लेहुन केतक छीर अँचै हौं,
चाखन के हित माखन माँगत खाहुन माखन केतिक खैहौं।

जानत हौं जिय की 'रसखानि' सु काहे को एतिक बात बढ़ैहौं।
गोरस के मिस जो रस चाहत सो रस कान्ह जू नेक न पैहौं॥

कृष्ण के कुब्जा-प्रेम को लेकर गोपियाँ उद्धवजी से कैसा व्यङ्ग कसती हैं:—

ऊधौ तहाँई चलौ लै हमैं जहँ कूबरी-कान्त बसै यक ठौरी।
देखिये 'दास' अघाय अघाय, तिहारे प्रसाद मनोहर जोरी।
कूबरी सों कछु पाइये मंत्र बढाइये कान्ह सों प्रेम की डोरी।
कूबरी-भक्ति बढाइये बंदि चढ़ाइये चंदन-बंदन रोरी॥

गोपियों के सम्पर्क में आकर उद्धवजी ने एक न्यारी ही भाव सृष्टि का चमत्कार देखा। गोपियों के आगे वह अपना योग-ज्ञान का पांडित्य भूल गये। गोपियों के साथ हुए निर्गुण-सगुणवाद के शास्त्रार्थ में तो—

ऊधो मो सूवो भये सुन गोपिन के बोल।
ज्ञान बजाई डुगडुगी प्रेम बजायो ढोल॥

उन्होंने गोपियों से प्रेम का अपूर्व तत्त्व सीखा। उस रंग में रंग कर पराजय में भी आनंद मानकर, उन्होंने दीर्घावधि तक ब्रजवास स्वीकार किया। गोपियों द्वारा दीक्षा में पाई उस अपूर्व प्रेम की मस्ती में झूमते हुए अपना ज्ञान-ध्यान भूलकर उद्धव जी कहने लगे-धन्य हैं ये ब्रजाङ्गनाएँ! अपढ़ व साधारण ग्राम्य ब्रज युवतियाँ श्रीकृष्ण के दिव्य प्रेम भाव में ऐसी मदमत्ता हो रही हैं कि बड़े-बड़े योगी-मुनि और ज्ञानी-ध्यानी से भी इनकी तुलना नहीं हो सकती। श्याम सुन्दर के स्वरूप रहस्य को वास्तव में वे ही जानती हैं। हम अपने को धन्य भाग्य समझते हैं जो इनके सम्भाषणादि, निकट सम्पर्क में आने का गौरव एवं इनके अलौकिक प्रेम की शिक्षा प्राप्त हुई।

श्री कृष्णा की रासलीला

भगवान् की लीला में ऐश्वर्य और माधुर्य दो प्रधान गुण हैं। अजन्मा रहकर अपने अचिन्त्य ऐश्वर्य के प्रभाव द्वारा भक्त-मनोरथ पूर्ण करने के लिये ही उनका प्राकट्य होता है। यह उनकी ऐश्वर्य मयी लीला है, यथा-मत्स्य, कच्छप, वराह, नरसिंह आदि की अवतार लीला। जिसमें माता-पिता एवं पार्श्वदों को स्वीकार करते हुए अवतार धारण कर भक्त भावना के अनुसार लीला करते हैं। यह उनकी माधुर्यमयी लीला है, यथा श्री राम व श्री कृष्ण आदि की अवतार लीला।

भगवान् श्री कृष्ण-लीला-रहस्य को समझने के लिए श्रीमद्-भागवत पुराण ही मुख्य रूप से आधार ग्रन्थ है। 'भक्त्या भागवतं शास्त्रं' अर्थात् भक्त में जैसे-जैसे प्रेम व भक्ति की पराकाष्ठा की ओर उत्तरोत्तर प्रगति होती जायगी, श्रीमद्-भागवत की समाधि भाषा का त्यों-त्यों स्पष्ट अनुभव अनायास होता जायगा। यह भी प्रभु-कृपा रूप पूर्ण शक्ति के प्राप्त होने पर ही।

श्री रासलीला रहस्यः—

साधारण बुद्धि से तो रासलीला के रहस्य को जानना असम्भव है। देवता लोगों के लिये भी अत्यन्त दुर्बोध्य है। गोपीश्वरी का स्वांग लेकर रासलीला सागर की गहराई में गोते लगाने वाले शिवजी को भी रत्न हाथ नहीं आया और गोपीश्वर महादेव तब वृन्दावन में यह उनका रूप प्रकट हुआ। श्रीमहादेव जी ने काम-पीड़ा से संतप्त होकर आवेश में मन्मथ को भस्म कर दिया था परन्तु कोटि-कोटि ब्रज सुन्दरियों के बीच में, विजयध्वज की सम्पूर्ण शक्तिमती त्रिलोक मोहिनी सेना के बीच में श्री कृष्णचंद्र अपराजित रहे। स्वयं कामदेव ही श्री कृष्ण के

आनन्दस्वरूप के अनन्त सौंदर्य से मोहित हो गया। इस प्रकार श्री कृष्ण मदन मोहन कहलाये।

वास्तव में काम पर नियंत्रण हुए बिना रासलीला के रहस्य को समझना असंभव है। अखिल ब्रह्मांड में श्री कृष्ण ही एक मात्र काम विजेता साक्षान्मन्मथ मन्मथ हैं। इस दिव्य लीला को किञ्चित् मात्र भी समझ लेने में भगवत्कृपा साक्षेप है।

शरद् पूर्णिमा की रात्रि में श्रीकृष्ण भगवान् ने गोप-रमणियों को प्रेम प्रदान कर उनके मनोरथ पूर्ण करने के लिये रासलीला की थी।

रास का भावार्थ बताते हुए श्रीधर स्वामी ने लिखा है:—

'रासो नाम बहु नर्तकी युक्तो नृत्य विशेषः।'

बहु नर्तकी गणों के नृत्य विशेष का नाम 'रास' है। महात्मा श्रीजीव गोस्वामी जी भी लिखते हैं—

नरै गृहीत कण्ठीनां अन्योन्यात्तर कश्रियाम्।
नर्ततीनां भवेद्रासो मण्डली भूय नर्तनम्॥

नट लोग नर्तकी युग्म समूहों के कंठ में हाथ धर कर नर्तकी गणों के साथ मण्डलाकार से जो नृत्य करते हैं, उसको 'रास' कहते हैं।

श्री भागवत जी में भी इस प्रकार वर्णन है:—

रासोत्सवः सम्प्रवृतो गोपी मण्डल मण्डितः।
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः।
प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्व निकटं स्त्रियः॥
(श्रीमद्भागवत १०–३३–३)

दो-दो गोपियों के मध्य में एक-एक श्रीकृष्ण को वे अपने समीप में स्थित जानती थीं। उस समय सबने मण्डलाकार होकर नृत्य किया।

मूलशब्द 'रासलीला' है, 'रसलीला' नहीं। 'रसानां समूहः रासम्' अर्थात् एक रस नहीं अनेकानेक रस समूह का वर्णन है। इसलिये रासलीला में करुणा, शृङ्गार, वीर, आदि नवरस हैं। परन्तुः—

'व्रजे मुख्या त्रयो रसाः सख्य वात्सल्य शृङ्गाराः।'

सख्य वात्सल्य और शृङ्गार इन रसों में भी 'उज्ज्वल रस' शृङ्गार यही व्रज का सार रस है।

घटना विशेष के अनुभव से मन पर दबाव पड़ने से मानव चित्तवृत्ति में ये रस प्रकट होते हैं। इस प्रकार भिन्न प्रसंग वश मानव-मानस में भिन्न रस-उर्मियाँ उत्पन्न होना स्वाभाविक है। 'रसं हि ज्ञात्वा आनंदी भवति' रस के अनुभव से आनन्द की प्राप्ति होती है और श्रुति वचन है कि 'रसो वैसः।' सारांश कि श्री कृष्ण के आनन्दमय स्वरूप रहस्य का अनुभव होना अर्थात् 'अखंड आनन्दमयी लीला' यही रासलीला से तात्पर्य है।

भगवान् श्री कृष्णचंद्र ही रासलीला में प्रधान नायक, श्रीराधिका प्रधान नायिका तथा अन्य व्रज गोपियाँ प्रकाश स्वरूपा थीं।

गोपियों के भिन्न-भिन्न स्वरूप थे। कोई पूर्व वरदान प्राप्त थीं तो कोई देवांगना रूपा। कोई श्रुति रूपा तो कोई ऋषि रूपा। कोई विवाहिता तो कोई कुँवारी थीं। उनके भिन्न-भिन्न यूथ थे जिनकी प्रत्येक की एक नायिका होती थी। इन सब की यूथेश्वरी

हिंडोरा पड्या कदम की डारी [पृ० ४४६, पद १६

श्री राधा थीं। यही रासेश्वरी थीं। श्री कृष्ण ने इन्हीं अपनी अभिन्न शक्ति योगमाया का आश्रय लेकर रासलीला की थी।

श्री राधा, रासेश्वरी, गोपीश्वरी तथा वृन्दावनेश्वरी मानी जाती है परन्तु श्रीमद्भागवत में कहीं भी श्री राधा अथवा किसी भी गोपी के नाम का उल्लेख नहीं। रास पञ्चाध्यायी में अवश्य ही यह संकेत मिलता है:—

अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतोया मनयद् रहः॥
(श्रीमद्भा० १०-३०-२८)

भक्तों के मनोरथ पूर्ण करने वाले भगवान् कृष्ण ने इस सौभाग्यवती रमणी की आराधना से प्रसन्न होकर इसे एकान्त में अपनी संगिनी बनाया है।

वह ब्रज सुन्दरः—

कृत्वा तावन्त मात्मानं यावती गोप योषितः।
रेमे स भगवांस्ताभि रात्मारामोऽपि लीलया॥
(१०-३३-२०)

जितनी गोप सुन्दरियाँ थीं उतने स्वरूप लेकर उनके साथ नृत्य करते हुए रास विहार करते हैं। यही उनका ब्रज में नित्य विहार है।

सुना जाता है कि श्री शुकदेवजी महाराज श्री राधारानीजी के रङ्ग महल में लीला शुक (तोते) के रूप में रहते थे एवं उनके देव-दुर्लभ दर्शन से मुग्ध रहा करते थे। भला ऐसे मधुर लीला के उपासक व प्रेमी वक्ता और श्री परिक्षित जैसे भावनिष्ठ प्रेमी श्रोता हों तब श्री भागवत् रस सुधा के आस्वादन करते कराते समय यदि 'श्री राधा' यह नाम मात्र श्रवणेन्द्रिय में पड़ता तो वे गहरी प्रेम-समाधि में न जाने कब तक अपने को खो देते और

सप्ताह की सार्थकता नहीं हो पाती। इसी विचार से ही उन्होंने सारी रास-पञ्चाध्यायी में कहीं 'राधा' नाम का उच्चारण नहीं किया।

इसी के प्रमाण स्वरूप यह श्लोक प्रसिद्ध है कि—

श्री राधा नाम मात्रेण मूर्च्छा षाण्मासिकी भवेत्।
नोच्चारित मतः स्पष्टं परीक्षितद्धित कृन्मुनिः॥

इसी प्रकार भगवती श्री राधा का नामोच्चारण श्री शुकदेव मुनि ने क्यों नहीं किया इसके सम्बन्ध में श्री ब्रजधाम के परम निष्ठावान् एवं परम रसिक महात्मा श्री व्यासजी का एक पद है:—

परम धन राधा नाम अधार।
जाहि स्याम मुरली में टेरत सुमिरत बारम्बार॥
जंत्र तंत्र औ वेद मंत्र में सबै तार को तार।
श्री शुकदेव प्रकट नहिं भाख्यो जानि सार को सार।
कोटिक रूप धरे नँद नंदन तऊ न पायो पार।
'व्यासदास' अब प्रकट बखानत डारि भार में भार॥

सार्वभौम सम्राट स्वेच्छा से विनोद, कौतुक वा भक्तों की कामना पूर्ण करने के लिये अथवा किसी लीला विशेष के उद्देश्य से यदि सेनाध्यक्ष, मंत्री, सैनिक, मित्र व प्रेमी आदि का स्वांग रचकर अभिनय करता है तो यह उसकी लहर है। उसे भला कौन रोकेगा ? श्री कृष्णचंद्र की ब्रजलीला का यही रहस्य है।

मीरांबाई का सारा जीवन ही ब्रजभाव की साधना का रहा, यही नहीं वह तो अपने आपको पूर्व जन्म की गोपी मानती है और स्वयं अपने को कृष्ण प्रेयसी राधा मानकर उस भाव में भी उसने पद बनाये हैं। वह अपने को जन्म जन्म की श्याम सुंदर की दासी भी मानती है और अनन्य प्रेम के मूल्य से उसने

वृन्दाबन की कुञ्जगली में गोविंद को–श्यामसुंदर को मोल भी ले लिया है, फिर रह ही क्या जाता है। जन्म कृतार्थ होगया।

इस विभाग में, मीराँबाई के—श्रीकृष्ण लीला एवं राधा व गोपी भाव के मिलन, विरह इत्यादि ब्रजभाव के पद दिये गये हैं।

ब्रजभाव की होरी के पद १३ वे 'होरी' के पृथक् विभाग में दिये हैं।

इस विभाग के १२ से १४, १६, १७, १६ से ३५, ३७ से ४३, ४६, ५२, से ५४, ५८, ५६, ६२, ६३, ७०, ७२ से ७६, ८२ से ८५, १२५, १३४, १३६, १३७, १५०, १५१, १५३, १५५, १८३, १८७, १८८, २०८, २१२ से २१८, २२३, २२४, २२६, २६३, २६८, २७० से २८४, २६२, २६४, ३०५, ३०७, ३०६, ३१०, ३१५ से ३२०, ३२२, ३२४, ३२५, ३२७, ३३०, ३३२, ३३५ से ३३८, ३४० से ३४३, ३४६, ३४८, ३५२, ३५३, ३५६ से ३६०, ३७०, ३७८ ये १२३ पद गुजराती भाषा के हैं।

सं० २ व २०१ ये दो पद पूर्वी भाषा एवं २०७ वाँ पद पंजाबी भाषा की छटा को लिये हैं।

सं० ५० व २४८ ये दो पद निर्गुणी भाव-ज्ञान के हैं।

मीरांबाई के समस्त पदों में 'ब्रजभाव' यह मध्य में—एक प्रकार से हृदय के स्थान पर है। उसका जीवन ही ब्रजभाव से सम्बन्धित है। पूर्व जन्म की द्वापर युग की वह गोपी है। इसका संकेत भी ब्रजभाव के पदों में मिलता है, यथा—

(८) पूर्व जन्म की तेरी मैं गोपिका ।
बिचमांहि पडगई झोल ॥

(३३) रास रच्यो बंशीबट जमुना ।
ता दिन कीनो कोल ॥

इसके अतिरिक्त—७० से अधिक संख्या में 'राधा, शब्द, ९२ के लगभग 'वृन्दावन' और ६ स्थान पर 'बरसाना' शब्द आये हैं ।

क्योंकि मीरांबाई की उपासना ही ब्रजभावमय है इसलिये और पद विभागों में भी उपर्युक्त तथा अन्य नामों का भी उल्लेख मिलता है यथा--

१-विरह में—राधा, ब्रज, वृन्दाबन ।
२-स्वजीवन में—वृन्दाबन ।
३-प्रार्थना-विनय में—राधा, कृष्ण, वृन्दाबन ।
४-निश्चय में—वृषभानु नंदिनी, ब्रज, वृन्दाबन ।
५-वर्षा में--राधा, जसोदा, वृन्दाबन ।
६-प्रेमालाप में—राधा, वृन्दाबन, बरसाना ।
७-दर्शनानन्द में—राधा, वृन्दाबन ।
९-सत्संग-उपदेश में—राधा, ब्रज, गोवर्धन ।
१०-अभिलाषा में—वृन्दाबन ।
१२-नाम-माहात्म्य में—राधा, कृष्ण ।
१३-होरी में—राधा, श्यामा, वृन्दाबन, बरसाना आदि ।
१४-जोगी में—रास, बंशीबट आदि ।
१५-मुरली में—राधा, रास, वृन्दाबन आदि ।
१६-प्रकीर्ण में राधा ।

'ब्रजभाव' मीराँ की वाणी में

पूर्व संस्कार वश ब्रजभाव की स्मृति जाग्रत होकर श्री वृन्दावन धाम के लिये मीरांबाई अपनी रुचि व्यक्त करती है—

(१) आलि ! म्हाँने लागे वृंदावन नीको। कुंजन-कुंजन फिरत राधिका, सबद सुणत मुरली को।

सखावेश में कृष्ण कन्हैया के सान्निध्य की भी उसकी अभिलाषा है,—

(२) मुरली कर लकुट लेऊँ, पीत वसन धारूँ।
पंछी गोप भेष मुकुट, गोधन संग चारूँ॥

प्रेम के भावावेश में मीराँ अपने प्यारे श्यामसुन्दर से मिलने के लिये संकेत करती है—

(११२) पिछवाडे आये हेला दीजो, ललित सखी है मारो नाम॥

शनैः शनैः घनिष्ठता बढ़ने पर तो वह संसारी जनों को निर्भीकता पूर्वक सुना देती है,—

(१६८) गिरधर दुनिया दे छै बोल।
गिरधर मेरा मैं गिरधर की, कहो तो बजाऊँ ढोल॥

ब्रज के तीन मुख्य रससख्य, वात्सल्य व मधुर (शृङ्गार) इनमें से इस ब्रजभाव में, नारी सुलभ संस्कार वश कुछ वात्सल्य और बहुत कुछ गोपी तथा राधा भाव के-मधुर रस के ही पद हैं।

स्वाभाविक रूप से ज्यों लाड प्यार में माता अपने नन्हे बालक को, विवाह कराकर छोटी सी बहु लाने की कौतुक भरी बात प्रायः किया करती है त्यों वात्सल्य मयी माँ यशोदा अपने दुलारे कन्हैया के लिये कहती है—

(७६) मेरे गोपालजी को बीहा कराउंगी, अखुभान की बेटी ॥

माखन चोर नटखट चंचल कन्हैया के लिये जब उलाहना लेकर गोपियाँ माता यशोदा के पास आती हैं तब वह समझौते के भाव से सब को सुनाती है—

(१२८) गारी मत दीजो ओ तो गरीबनी को जायो । दधि की मथनियाँ आंगणिया में धरी है, जे ज्याँ को जे तो खायो म्हे जो लीज्यो राज ॥

अपने छोटे से लाड़ले लाल के पराक्रमों को बेचारी माँ कैसे जाने ! कालीय दमन के प्रसंग पर वह सुकुमार कन्हैया को सुनाती है,—

(१६३) कमल दल लोचना, तैंने कैसे नाथ्यो भुजंग ॥

किसी भी प्रकार प्यारे श्याम सुन्दर के सान्निध्य प्राप्ति की अभिलाषा में मिलनोत्कण्ठा के भाव गोपियाँ व्यक्त करती हैं—

(३६) का'नी (किस बहाने) मखे देखन जाउं, श्यामळो वेरागी भयो रे । गोरे-गोरे अंग पर विभूत लगावुं, जोगण होकर जाउंरे ॥

(४४) जो मैं होती बाँस की बंसरिया । करती मुख पर वास अधर रस पीती है माधो ॥

(६०) भइ क्यों न व्रज की मोर सजनी । अपनी पंखा को मुकुट बनाती, धरते नंद किशोर ॥

गोपियों का जीवन ही श्याम सुन्दर के लिये है । उनकी प्रत्येक क्रिया से उन्हें आनंद प्राप्ति होती है । नटखट श्यामसुन्दर उनसे छेड़खानी करता है जिससे किसी भी निमित्त से प्रियतम

के सान्निध्य का लाभ, उनके दर्शन, स्पर्श व सम्भाषण आदि से गोपियों को जो अपार सुख का अनुभव होता है उसे वे अपना परम सौभाग्य मानती हैं फिर भी ऊपर से शील रक्षा व कुल मर्यादा पालन की चिंता में, मीठी झुँझलाहट व उलाहना भरे भाव परस्पर एक दूसरी को कहती सुनाती है। एक सखी अपना दुखड़ा कहती है—

(२७६) कानुडे बन मां लुंटी। पाछळ पडे तेनो केडो न मुके, न्हासी शकाय नहीं छुटी। कहीए तो लोको कहे जुठी॥

अर्थात् कृष्ण ने वन में लूट लिया है, बस जिसके पीछे पड़ता है उसका उससे पिंड छुड़ाना कठिन हो जाता है, उससे छूटकर भाग भी नहीं सकती और ये बातें किसी से कहे भी तो लोग उसे ही झूँठी कहते हैं। दूसरी गोपी वृन्दावन के मार्ग पर की आप बीती सुनाती है—

(४१) वृन्दावन ने मारग जातां तन रे जोयां झांखी। मोहनलाले भूरकी नांखी॥

वृन्दावन के मार्ग पर चलने वाली किसी कुलांगना के सुकुमार अंगों को कन्हैया का अपनी जादू भरी चंचल दृष्टि से झांकना भला कैसे सहन किया जाय! इस पर तीसरी कहती है —

(३९) मारग मां वा' लो पाणीलां मागे, सहियर देखतां केम पाउं। नाथजी हमारा निर्लज थइ बेठा वा'ला, हुं निर्लज केम थाउं॥

इस गोपी की स्थिति बड़ी ही धर्म संकट की है, जल भर कर लौटते समय मार्ग में कन्हैया जल पीने की इच्छा करता है! भला उसे सहेलियों के देखते कैसे जल पिलावें! श्यामसुन्दर

तो निर्लज्ज होगया पर वह कैसे हो सकती है ! इस पर चौथी गोपी अपनी ही गलि की बात करती है,—

(१९२) आवत मोरी गलियन में गिरधारी, मैं तो छुप गई लाज की मारी ॥

अंत में सब मिलकर इस निष्कर्ष पर आई कि—,

(११६) कारे कारे सब से बुरे ॥

श्यामसुन्दर की ढीठता पर गोपियाँ परस्पर में ही केवल कह सुन कर संतोष नहीं धारण कर लेती, पर अब वे उन्हें, चाहे घर पर या बन में, मार्ग में या एकान्त में, दिन में अथवा रात्रि में जब जहाँ भी अवसर मिले आमने सामने ही प्रेम अथवा उलाहना भरा उत्तर उसी समय सुना देती हैं—

(१३२) फूटे गागरडी ऐसी कांकरडी मत बावो सांवरा । तुमतो थाँके घर ठाकुर बाजो, (कहलाते हो) में पण ठाकुरड़ी ॥

(१०३) बहियां मोरी छोडोजी रङ्गीसे घनश्याम । अँगुली पकड मेरा पहुँचा पकडया, या कांई आण कुबाण ॥

(२१) बहियां जो गहीरे, मेरी सुद्ध न रही रे । तेरे नगरी में मेरे वसबो नहिं रे ॥

(८८) छाँडो लँगर मोरी बहियाँ गहोना । मैं तो नार पराये घर की, मेरे भरोसे गुपाल रहोना, रीत छोड अनरीत करोना ॥

एक गोपी को तो श्याम ने यह कह कर कि,—

(२५८) 'तैं मेरी गेंद चुराई, गुवालन, अब ही आन परी तेरे अंगना, अंगियाँ बीच छुपाई ॥...

निरूत्तर कर दिया तब पनघट जाने वाली किसी गोपी ने और सुनाया,—

(३७) जल जमुना जातां मार्गे पालव ग्रह्यो मारो ताणी ने। एक बार सांख्यु बीजीवार सांख्यु, शरम तमारी घणी आणीने ॥

अर्थात् जमना जल भरने जाते समय मार्ग में मेरा खींच कर जो तुमने पल्ला पकड़ लिया, उसे एक बार सहन किया, तुम्हारी लाज करते हुए फिर दूसरी बार भी सहन कर लिया। परंतु तीसरी बार उनके छेड़ने पर वह क्या कर बतायगी सो तो वही जाने।

कोई गोपी, रात्रि में आने के लिये दिये गये वचन का पालन न करने पर कृष्ण को खरी खरी सुनाती है—

(२२८) साँचा बोलो सांवरिया रातडी कहां रह्या जी। सारी रैन सोकड संग खेल्या, भोर भये उठ आयाजी। आँखड-ल्याँ में निद्रा घुल रही, मुखडा के ताम्बुल फीका जी ॥

(११३) ठोर ठोर रस लेत फिरत हो, फूल भँवर की सी रीत ॥

कोई गोपी उन्हे आवाहन संकेत करती है,—

(१४१) कान्हा भूल न जाना। जो थें म्हारो गाँव न जाणो, म्हारो घर बरसाना, लगे प्रेम के बाना ॥

ऐसे ही दूसरी कोई प्रीति की शिक्षा देती है,—

(१५८) कनैया प्यारे आवज्यो छाने छाने। बात करूँ ली छाने। प्रीत करो तो ऐसी करज्यो, कोई न पड़े प्रभु काने। दासी रखज्यो म्हाने ॥

कुब्जा प्रसंग को लेकर सौतिया डाह आदि नारी सुलभ भाव भी हृदय में उमड़ना स्वाभाविक है। इन्ही भावों में बहते हुए गोपियाँ परस्पर में चर्चा कर रही हैं—

(१०५) तोडी टूटे नाय सखी साँवरा की प्रीतलडी। दासी करी पटरानी साँवरो, आडी भीतलडी, आवे रीस लडी ॥

(१४५) भरमायो म्हारो मारूडो (प्रियतम) भरम रयो। चतुर नारके नैन भाल से, बाँध्यो छै जी राज रो हियो ॥

(४६) कुबजा ने प्यारी कीधी, राधिका बिसारी है ॥

(१४३) कुब्जा ने जादू डारा। जिन मोहे श्याम हमारा। निर्मल जल जमुना को छोडयो। जाय पिया जल खारा ॥

(६१) सखी दोष नहीं कुब्जा को, अपनो श्याम है खोटो। जांत पांत को भेद न जाण्यो, सेजां रो रङ्ग मोंटो। चेरी बडी हरि छोटो ॥

(३१३) प्यारी लगत श्याम तुमें, कुबजा की खाटडली ॥

(२३८) हमको लिख लिख जोग पठावै,
आप दुल्हे कुबजा लाडी ॥

(१६१) एरी मा खड़ी निहारूँ बाट। मथुरा में कुबजा कर राखी, महाजन जैसी हाट, करियो आनँद ठाट ॥

(२३२) झूंठी थाली को पाँणी पीयो, राँणी करी कुबज्यासी। सुँण सुँण आवे हाँसी ॥

(२११) दिन दस दियो है उधारो। कुबजा आखिर श्याम हमारो ॥

अन्त में उद्धव जी से भी एक व्यङ्ग चुटकी लिये बिना गोपी से नहीं रहा जाता—

(१७६) कहो न उधव गुण मित्रनारे। गोपीनाथ केवायकेरे, कुब्जा कृष्ण कहवाय ॥

श्री राधा की ओर से यशोदा के निकट कन्हैया को एक रात्रि के लिये माँगने में भी गोपियाँ तनिक भी संकोच का अनुभव नहीं करतीं—

(३६०) राधा ने कानुडो मागेलो देजो। आज नी रजनी अमे रंग भरे रमीए वाहला, प्रभाते उठीने पाछा लेजो ॥

जब श्री कृष्ण-प्रेम की व्याधि से श्री राधा अस्वस्थ सी रहने लगीं तब सखियाँ उसे, कारे नाग द्वारा डसे जाने की व्याधि का निदान करती हुई कहती हैं—

(४७) राधे थाँने डस गयो नागज कारो। अब नहीं है बैद को सारो ॥

वैद्य के उपचार द्वारा स्वस्थ न हो सकने के निर्णय के पश्चात् गोपियाँ साँवरे तांत्रिक को ले आती हैं तब व्याधि का कारण सुनाता हुआ वह तांत्रिक मोर चन्द द्वारा झाड़कर राधा को निर्विष कर देता है—

(४८) परम पुरुष की लहर व्यापी डस गयो कारो। मोर चन्दो हाथ ले हरि, विष कियो न्यारो ॥

गोपियाँ अपनी यूथेश्वरी, रासेश्वरी व वृन्दावनेश्वरी श्री राधिका महारानी से विनोद वार्ता कर रही हैं—

एक सखी—

(१४४) राधा तेरी मेंहदी रो माणक रंग ।।—

कह कर राधा के कृष्ण प्रेमानुराग रूपरंग की ओर संकेत करती है तब दूसरी—

(८९) राधा तेरी बोलरी माँही मुडक घणी ।।—

कह कर राधा को, कृष्ण से मान व प्रणय कोप की अवस्था में उसके व्यङ्ग बाण की ओर लक्ष्य करती है। कोई गोपी, राधा में ऐसा तो क्या जादू है जिससे श्यामसुन्दर उसके वश में रहते हैं इस भाव से सुनाती है—

(३७८) राधेजी थांरे पाछे कई जादु छै। थांरे बस गयो प्रभु जी। थांरे पुठल पुठल फिरतो ।।

ब्रज-सुन्दरियों की चित्तवृत्ति सदा सर्वदा मन मोहन श्याम सुन्दर में लगी रहती थी। यहाँ तक तन्मय हो गई थीं कि—

(१९७) कोइ स्याम मनोहर ल्योरी, सिर धरे मटकिया डोलै। दधि को नाँव बिसर गई ग्वालन, 'हरिल्यो', हरिल्यो बोले ।।

जब गोपियों की यह स्थिति थी तो श्री राधा के भाव का तो कहना ही क्या! उसकी कृष्ण-प्रेमासव से छकी हुई आँखें देख कर गोपियाँ कहती हैं,—

(५०) अँखियाँ में लाली छाई, कदम तल भांग पिलाई ।।

श्री राधा की अन्त रंग सखियाँ जो राधा-कृष्ण के प्रेम और

भाव भरी लीला में सहायिका भी हैं, उनके लीला-प्रसङ्गों को लेकर परस्पर में चर्चा करती हैं—

(८७) राधा हठ मांडयो छे जी माझल रात। कान्ह कुँवर थें रसरा लोभी, राधा जी रो गोरो गोरो हाथ ॥

(१०६) प्यारी राधा सेन करे छे, या चोपड़ दूर धरे छे। आलस हुलस उणीया अँखिया, झुक झुक पिया पर पडे छे, राधा चरित करे छे ॥

(१७४) पोढण समय भयोरी श्रीराधे रानी। इत दूर चन्द्र गयो री। झमक चढे सुरंग पलंग पर, नयो रंग बढे री, यो सुख दृगन लयोरी ॥

श्याम सुन्दर के साथ के भिन्न प्रसङ्गों पर श्री राधा अपनी सखियों को सुनाती हैं—उन चित चोर के प्रेम कटाक्षों से परवश होकर घर में बसे रहना भी उससे पूरा नहीं बन पड़ता है—

(१०७) भृकुटी कमान बान वाके लोचन, मारत भरि भरि कसकैंरी। कैसे रहौं घर बसकैरी ॥

श्री राधा की अनुपस्थिति में वहाँ होकर कृष्ण के दूर चले जाने का सुनकर अपने प्रेम के अधिकार से वह कह उठती हैं—

(६४) गोरी गोरी बहियाँ हरी हरी चुडियाँ, झाला देके बुला लेती। बडी बडी अँखियाँ झीणा झीणा सुरमा, जोत से जोत मिला लेती ॥

प्यारे साँवरे के नटखट पन को वह चुनौती देती हैं—

(१८४) ऐसी मसखरी करो लालजी, चलो सांखरी खोर ॥

अपने श्याम सुन्दर के प्रेम-सम्बन्ध को रूपक से कहती हैं—

(१३८) थें तो साँवरीया म्हारे सिर का जो सेवरा, में थाँरे हाथ की अंगुठी हो म्हारा साँवरीया ॥

उन्हें निर्मोही कृष्ण को प्रेम के मधुर भाव-रंग से रंग देने का भी सामर्थ्य है—

(१८२) थांरा सरीखा थे ही राज जाण्यां निरमोही । घणा गाढ़ा रंग देऊँ तोई ॥

८—व्रजभाव के पद

★

वृन्दावन-महिमा १

आली ! म्हाँने लागे बृन्दाबन नीको ॥०॥
घर घर तुलसी ठाकुर पूजा, दरसण गोबिंदजी को ॥१॥
निरमल नीर बहत जमना में, भोजन दूध-दही को ॥२॥
रतन-सिंघासण आप बिराजै, मुगट धर्‌यो तुलसी को ॥३॥
कुँजन-कुँजन फिरत राधिका, सबद सुणत मुरली को ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भजन बिना नर फीको ॥५॥

अभिलाषा २ (पू०)

जोहनें गोपाल फिरूँ, ऐसी आवत मन में ।
अवलोकत बारिज बदन, बिबस भई तन में ॥१॥
मुरली कर लकुट लेउँ, पीत वसन धारूँ ।
पंछी गोप भेष मुकुट, गोधन संग चारूँ ॥२॥
हम भई गुल काम लता, बृंदाबन रैनां ।
पसु पंछी मरकट मुनि, श्रवन सुनत बैनां ॥३॥
गुरूजन कठिन कानि, कासों री कहिये ।
मीराँ प्रभु गिरिधर मिलि, ऐसें ही रहियें ॥४॥

प्रार्थना ३

नन्दजी के लाला, ठाड़ी ब्रज बाला दर्शन दीजिये ॥०॥
ब्रजबाला विनती करे, सुनियो श्याम पुकार ।
बिन दर्शण फीको लगे, सब ही हार सिंगार ॥१॥

सुन्दर श्याम मनोहर मूरत, शोभा अधिक अपार ।
क्रीट मुकुट मकराकृत कुंडल, गल पुष्पन को हार ॥२॥
शिव सनकादिक ध्यान लगावे, कर रहे वेद पुकार ।
शेष सहस्र मुख रटत रात दिन, कोइयन पावे पार ॥३॥
नाम अनन्त अन्त नहीं आवे, हो सबके करतार ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, तुमरे ही आधार ॥४॥

प्रेमालाप ४

मन अटकी मेरे दिल अटकी
हो मुकुट की लटक मेरे दिल अटकी ॥०॥
माथे मुकुट खौर चन्दन की, शोभा है पीरे पट की ॥१॥
शंख चक्र गदा पद्म बिराजे, गुंजमाल मेरे हिये अटकी ॥२॥
अंतर धान भये गोपिन में, रूदन करत यमुना तट की ॥३॥
पात पात बृन्दावन ढूँढ्यो, कुञ्ज कुञ्ज राधे भटकी ॥४॥
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, जानत हो सबके घट की ॥५॥

विरह ५

हरि तुम काहे को प्रीत लगाई ॥०॥
प्रीत लगाय परम दुख दीनो । कैसी लाज न आई ॥१॥
गोकुल छोड़ के मथुरा पधारे । यामें कौन बड़ाई ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । तुमको नन्द दुहाई ॥३॥

बाल-लीला ६

कोई ना जाने साँवरिया तेरी गति कोई ना जाने साँवरिया ॥०॥
मिट्टी खात मुख देखा जसोदा, चौदह भुवन भरिया ॥१॥
पैठि पाताल काली नाग नाथ्यो, सूर और शशी डरिया ॥२॥
डूबत बृज को राख लियो है, कर गोवर्द्धन धरिया ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, शरणे आया सो तरिया ॥४॥

विरह

नन्दजी रा लाला बेगा पधारो जी ॥०॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, कानन कुण्डल न्यारा जी ।
साँवरी सुरत घनश्याम छवि, मुरली का है स्वर प्याराजी ।१।
थे मथुरा मत जाओ मोहन, म्हाने मत छिटकाओ जी ।
गोप्याँ व्याकुल दरस दिवानी, सुरत दिखाओ जी ॥२॥
दिन नहीं चैन रात नहीं निद्रा अनजल नाहीं भावे जी ।
जैसे जल बिन मीन राधिका, सुगन मनावे जी ॥३॥
सुर नर मुनि सब ध्यान लगावै, वेद विमल यश गावे जी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ चित लावे जी ॥४॥

विरह ८

प्रीतड़ली लगाकर क्यों छिटकाई । जी ओ मोहना ।
एजी ओ राधा मन बसिया ॥०॥
थारी तो ओळ्यूँ गिरधर म्हें कराँ ।
थाँ बिन लागे नहीं जीव जी ॥१॥
मथुरा ने जावण रथ पर थे चढ़्या ।
म्हारो जीव झिलोरा खावै जी ॥२॥
लाखों तो बिनती गिरधर म्हे कराँ ।
मत सिधारो परदेसाँ जी ॥३॥
मीराँ तो दासी गिरधर आपकी ।
जनम जनम यश गावै जी ॥४॥

विरह ६

सखी मैं तो श्याम बिन बहुत हूँ दुखी ॥०॥
हमको पति छोड़ गया ब्रज में रखी ।
छिन छिन में याद करूँ सुन मेरी सखी ॥१॥

वृन्दाबन रास कीदो कृष्ण संग सखी ।
जो सुख को पल पल हिरदा में रखी ॥२॥
ऐसे ही मेरे लेख लिख्या विधाता रखी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर विरह में थकी ॥३॥

अक्रूर-लीला १०

सखी री लाज बैरण भई ।
श्रीलाल गोपाल के सँग, काहे नाहीं गई ॥०॥
कठिन क्रूर अक्रूर आयो, साजि रथ कहँ नई ।
रथ चढ़ाय गोपाल लैगो, हाथ मींजत रही ॥१॥
कठिन छाती श्याम बिछुरत, बिरह तें तन तई ।
दासि मीराँ लाल गिरधर, बिखर क्यूं ना गई ॥२॥

विरहालाप ११

छिन-छिन में (पल-पल में) याद आवे रे मोहन की बातड़ली ॥०॥
एक दिन बैठी रंग भवन में संग में लीनी साथड़ली ।
हाथ जोड़ ने करूँ बीनती पड़ गई रातड़ली ॥१॥
एक दिन सोती रंग भवन में सपनो आयो रातड़ली ।
आण अचानक दरसण दीनो खुल गई आँखड़ली ॥२॥
जमुना किनारे धेनु चरावे हाथ में लीनी लाकड़ली ।
राधा गोपी को तज दीनी कुबजा साथड़ली ॥३॥
चीर चोर कर चढ़े कदम पर हाथ में लीनी गांठड़ली ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर बज रही बाँसड़ली ॥४॥

राधा-विरह १२ (गुज०)

म्हारी सैँया रे मने दुःखड़ी राधाजी ने छोड़ी गयो ।
छोड़ी गयो रे कान्हों न्हासी गयो ॥०॥

हूँ तो सूती ती व्हाळाजी अमारे मन्दिरे हरी।
आड़ो कमाड़ो कान्हो दई ने गयो ॥१॥
आणी तीरे गंगा व्हाळा पेली तीरे जमुना हरी।
वचमां कान्हूड़ो बंसी बजावी रह्यो ॥२॥
मैं तो जाण्यो तू व्हाळो जनम संघाथी हरि।
अध बिच धोको अमने दईने गयो ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण हरि।
चरण कमळ चित दई ने गयो ॥४॥

जल-भरन १३(गुज०)

शाने रोको छो वाटमां, जवादो मने शाने रोको छो वाट मां।
जळ भरवा जमनाजी ना घाटमां, जवादो मने शाने रोको छो
वाटमां ॥०॥
आज अमारे प्रभु कामनो दीन छे, हरि मारे जावुं सहीयरो ना
साथ मां ॥१॥
मारा सम मारी गागर नहानी,
हांरे अेणे वचन आप्युं तुं मारा हाथ मां ॥२॥
ब्रंदावन नी कुंजगलन मां,
हांरे भलो तपास्यो आ लागमां ॥३॥
ते माटे कान काला शुं थाव छो,
हांरे सौ पेखे सहीयरो ना साथमां ॥४॥
बाइ मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण,
हांरे प्रभु आव्या छो मारा हाथ मां ॥५॥

जल-भरन १४ (गुज०)

गागरीयां बेड़ां ढ़ळशे उढ़ाणी मारी आपो,
गागरीयां बेड़ां ढ़ळशे ॥०॥

साव सोनानी मारी जडित्र उढ़ाणी वा'ला,
सोनेरी तार मारो खरशे ॥१॥
कंसते रायनुं कूडुं छे राज वा'ला, कंस ने केहवुंज पडशे ॥२॥
जळरे जुमनानो वा'ला मोटो छे आरो रे,
नित्य उठी न्हावा जावुं पडशे ॥३॥
बाइ मीराँ के प्रभु गीरधर ना गुण वा'ला,
गोपी नो स्वामी मुजने मळशे ॥४॥

चीरहरण १५

झट द्यो मेरो चीर, मोरारी रे, झट द्यो मेरो चीर ॥०॥
ले मेरो चीर कदम चढ़ बेठो, में जल बीच उघाडी ।
उभी राधां अरज करत हे, हो चीर दीयो गिरधारी ॥
प्रभु तोरे पाय परूंगी ॥१॥
जो राधा तेरो चीर चहावत हो, जल से होजा न्यारी ।
जल से न्यारी का'ना कबुये ना होवुंगी, तुम हो पुरुष हम नारी॥
लाज मोकु आवत भारी ॥२॥
तुम तो कुंवर नंदलाल कहावो, में भ्रखुभान दुलारी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, तुम जीते हम हारी ॥
चरन पर जाउं बलिहारी ॥३॥

चीरहरण १६ (गुज०)

चडी नें कदंब पर बेठो रे, वा'लो मारो चीर तो हरी ने ॥०॥
माता जसोदानो कुंवर कनैयो, नागर नंदाजी नो बेटो रे ॥१॥
मोर मुगट शीर छत्र बिराजे, पहेरयो छे पीळो लपेटो रे ॥२॥
नहायां धोयां अमे केम करी आवीए, नाखोने नवरंग रेंटो रे ॥३॥
बाइ मीराँ के प्रभु गीरधर नागर, को उतारोने एने हेठो रे ॥४॥

गोपी-प्रेमालाप १७ (गुज०)

काहानो माग्यो दे, धुतारो माग्यो दे, वर तो राधा नो,
मने काहानो माग्यो दे ॥०॥
वृंदा रे वनमां जेदी रास रम्या'ता,
सोळसें गोपीमां घेलो काहान ॥१॥
हाथी ने घोड़ा बाइ माल खजाना, हैया केरो हार ले मान ॥२॥
तल भर जव भर वधो नव कीधो, जवे तोळीने पाछो ले ॥३॥
बाइ मीराँ के प्रभु गीरधर नागर, चरण कमळ चित दे ॥४॥

राधा-भाव १८

तेरो कहान कालो माइ मेरी राधे गोरी, हो माइ ॥०॥
एसी राधे रूप बनी, कंचन सी देह ठानी।
एसो कारे काहान पर कोटि राधे वारी ॥१॥
गोकुल उजार कीनी, मथुरा बसाय लीनी।
कुबजा कु राज दीनो, राधे को बिसारी ॥२॥
बिनति सुनो ब्रजराय, लागुजी तुम्हारे पाय।
मीराँ प्रभु से कहीयो जाय, सेवक तुम्हारी ॥३॥

गोपी-भाव १९ (गुज०)

सोकलडीनुं साल मारे मोट्ठुं, होजी रे घर मां,
सोकलडीनुं साल मारे मोट्ठुं ॥०॥
हमोने हमारे रे मैयर वळावो वहाला, हावे रहेवानुं मारे खोट्ठुं ॥१॥
कुवे रे पडीशुं अमो वखडां रे पीशुं, हावे जीव्यानुं आळ शिर
चोंट्ठुं ॥२॥
सासु हठीली मारी नणदी ठगारी वहाला, नानां दीएरीयो
मेणुं मोट्ठुं ॥३॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर वहाला, चरण कमळ चित ने
ओढुं ॥४॥

जलभरन २० (गुज०)

उढाणी मोरी आलो रे, गागरीयां बेढां ढरशे ॥०॥
जळ जमनाजळ भरवा गया तां, चीर खस्यो ने बेढुं पडशे ॥१॥
सासु हठोली मारी नणदी धुतारी, नानडो दीयरीओ मूजने वढशे॥२॥
मीराँ गावे प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमळ चित हरशे ॥३॥

दधि बेचन २१ (गुज०)

बहीयां जो ग्रही रे, मेरी सुद्ध न रही रे,
काहना बहीयां जो ग्रही रे ॥०॥
झगमग ज्योत जडाव को ग्रेनो,
गज मोतियन की सेर लटकी रही रे ॥१॥
में दधी बेचन जाती गोकुल में रे,
पकडो री पालव मेरो जल को मही रे ॥२॥
जाइ पोकारूं कंस की आगे रे,
तेरी नगरी में मेरे बसवो नाहिं रे ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, झगडत सारी रेन बीत गइ रे ॥४॥

अभिलाषा २२ (गुज०)

चाल सखी वृन्दावन जइये, जीवण जोवा ने,
महीनी मटुकीओ माथे लइ ॥०॥
श्याम सुन्दर ने भावे भेटजों, तेणे दुःखडा सहु शमावशे रे ॥१॥
मीराँ बाइ के प्रभु गिरधर नागर, मावजी मारग मां आवशे रे॥२॥

जलभरन २३ (गुज०)

प्रेमनी प्रेमनी प्रेमनी रे, मने लागी कटारी प्रेमनी ॥०॥

जळ जमुनानां भरवा गया'तां । हती गागर माथे हेमनी रे ॥१॥
काचे ते तांतणे हरिजी ए बाँधी । जेम खेंचे तेम तेमनी रे ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर । शामळी सुरत शुभ एमनी रे॥३॥

जलभरन   २४ (गुज०)

कांकरी मारे धूतारो का'न, पाणीलां केम करी जइये ॥०॥
आ कांठे गंगा वहाला, पेली कांठे जमनाजी,
वचमां गोकुळीयुं गाम ॥१॥
सोना उढाणी मारूं रूपानुं बेढुं वा'ला,
हळवे चढ़ावत का'नो करे काम ॥२॥
मारे मंदिरीए मारी सासु रहे छे वा'ला,
सामा मंदिरीए मारो श्याम ॥३॥
बाइ मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, भावे भेटो भगवान ॥४॥

प्रेमालाप   २५ (गुज०)

झगडो लाग्यो श्री जमनाजी आरे, अल्या तारे ने मारे शुं छे ॥०॥
वृन्दावन ना मारग जातां, हांरे आगळ आवी कां घेरे ॥१॥
वृन्दावन नी कुंज गली मां पालव आवी कां मेरे ॥२॥
बाइ मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, गोपीओ ने लाड लडावे ॥३॥

विरह   २६ (गुज०)

व्रज मां क्यम रे'वाशे, ओधवना वा'ला, व्रज मां क्यम रे'वाशे॥०॥
आठ दहाडानी अवध करी ने गया छे वा'ला,
खट मास यथा छे हरि ने ॥१॥
वृन्दावन नी कुंजगली मां वा'ला,
बेठा छे मुख मोरली धरी ने ॥२॥

मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण वा'ला,
अमो रह्यां छे आंसुडां भरी ने ॥३॥

उद्धवलीला (विरह) २७ (गुज०)

शामळे मेल्यां ते विसारी, ओधव ने वा'ले शामळे ते मेल्यां विसारी ॥०॥
प्रीत करीने पालव पकडो वा'ला, प्रेम नी कटारी मुने मारी ॥१॥
गोकुळ थी मथुरा मां गया छो वा'ला, कुब्जा सें लागी छे ताली।२।
मीरां बाइ के प्रभु गिरधर ना गुण वा'ला, चरण कमळ बलिहारी।३।

उद्धवलीला (प्रेमालाप) २८ (गुज०)

कानुडे कामण कीधां, ओधवने वा'ले कानुडे कामण कीधां ॥०॥
वृंदावन मां धेन चरावे वा'लो, मोरलीए मनडां गोपी विंधां ॥१॥
जळ जमना भरवा ने गया' तां, तां पालव पकडी मन लीधां ॥२॥
* * * * राधा नो कंथ कामण कारो ॥३॥
मीरांबाइ के प्रभु गिरधर ना गुण वा'ला, भवसागर थी अमने तारो ॥४॥

उद्धवलीला (विरह) २६ (गुज०)

व्रजमाँ केम रे'वाशे, ओधव ना वा'ला व्रज मां केम रे' वाशे ।०।
जे रे दा'डाना जीवन गया छो वा'ला, दुःखडा ना कोने कहेवाशे॥१।
बळवंत थइ ने बाहो शुं मूको वा'ला, बरद तमारू जाशे ॥२॥
मीरांबाइ के प्रभु गीरधर ना गुण वा'ला, गोपी का अरज कहांशे ।३।

उद्धवलीला (विरह) ३० (गुज०)

आवजो म्हारे नेडे, ओधवना वा'ला, आवजो म्हारे नेडे ॥०॥
मारे आंगणीए आंबो मोर्यो वा'ला, कानुडो आवीने सार्यो वेडे।१॥
अमो जळ जमना भरवा गयां तां वा'ला, कानुडो पड्यो छे म्हारी केडे ॥२॥

मीरांबाइ के प्रभु गीरधर ना गुण वा'ला,
हरि मळवा मन हेरे ॥३॥

जलभरन ३१ (गुज०)

कोण भरे रे पाणी कोण भरे, जमना नां पाणी कोण भरे ॥०॥
घर म्हारूं दूर गागर शिर भारी, अरे खोटी थाउं तो घेर नणदी वढे ॥१॥
शिर पर कळश कळश पर झारी, झारी पे बेठी झारी मोज करे ।२।
आणी तीरे गंगा पेली तीरे जमना, वचमां कानडो रंग रास रमे ॥३॥
साव सोनानो मारो घाट घडुलो, उढणीए तो रत्न कनक जडे ॥४॥
मीराँ के कहे प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमळ चित्त ध्यान धरे ॥५।

दान लीला ३२ (गुज०)

लेशे रे महीडां केरां दाण आ तो मोह्रुं, लेशे ते महीडां केरां दाण ॥०।
अमो अबळा कंइ सबळ सुंवाळां वा'ला, आवडी शी खेंचाताण ॥१॥
नंदना घरनो गोवाळीयो रे, ओळख्या विना रे अखुभाण ॥२॥
मधराते मथुरा थी रे नाठो, ते तो, अमने नथी रे अजाण ॥३॥
वृंदावन ने मारगे जातां, तुं तो शेनुं मागे छे रे दाण ॥४॥
मीराँ के प्रधु गीरधर ना गुण, चरण कमळ नुं चितडा में ध्यान ।५।

प्रेमालाप ३३ (गुज०)

लाल ने लोचनीए दिल लीधां रे, लाल ने लोचनीए दिल लीधां रे ॥०॥
जंत्र भणी वहालो मुज पर डारे वहालो,
वेळा कवेळा नां कामण मने कीधां रे ॥१॥
जळ जमना नां जळ भरवा गयां तां वहाला, घुंघटडामां घेरी लीधां रे ॥२॥
चुंन चुंन कलीयां वाळी सेज बनावुं वहाला,
अमर पलंग सुख लीधां रे ॥३॥

मीरां बाइ के प्रभु गिरधर ना गुण,
चरण कमळ में चित्त चोरी लीधां रे ॥४॥

विरह-उद्धव लीला ३४ (गुज०)

गोविंदा ने देश, ओधा मुने लेइ जाजो रे, गोविंदा ने देश ॥०॥
मने रे मोहनजीए मेली रे विसारी, करडु' मोरा करम की रेख ।१।
हार तजु'गी शणगार तजु'गी, तजु'गी, काजल की रेख ॥२॥
चीर ने फाडी बा'ली कफनी पेरू'गी, लेउ'गी जोगन को वेश ॥३॥
गोकुळ तजु'गी में मथुरा तजु'गी, तजु'गी में ब्रज केरो देश ॥४॥
मीरां बाइ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमळ चित्त संग रहेश ।५।

प्रेमालाप ३५ (गुज०)

मने मेली ना जाशो मावा रे, आ ब्रज मां केम वसीए वा'ला रे,
मेली ना जाशो ॥०॥
जे जोइए ते तमने आणी आपु' वा'ला, मीठाइ मेवा खावा रे ।१।
आ बीजां घणां घणां तमने वानारे करती, नहि देउ' तमने जावा रे ।२।
कबकी ठारी अरज करू' छु', एटली अरज मोरी मानो ब्रज बावारे ।३।
जळ जमना रे जळ भरवा गयां'तां वहाला, सु'दर गयां ता न्हावा रे।४।
मीरां बाइ के प्रभु गिरधर ना गुण वहाला, शामळीयो चित थे
मनावा रे ॥५॥

उत्कंठा ३६

का'नी मखे देखन जाउ', श्यामळो वेरागी भयो रे ॥०॥
कोरी मटुकी मां मही झमावु', गुवालेन होकर जाउ' रे ॥१॥
कोरी छाबडीयामां फुल भरावु', मालण होकर जाउ' रे ॥२॥
गोरे गोरे अंग पर विभूत लगावु', जोगण होकर जाउ' रे ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, श्याम सु'दर पार पावु' रे ॥४॥

दान-लीला   ३७ (गुज०)

वारो जसोदा तारा दाणी ने, आळीगारो, आळ करे छे ॥०॥
लाडकवायो बाइ लाभज तमने, तेथी घणो राधा राणी ने ॥१॥
जळ जमना जातां मार्गे पालव ग्रह्यो मारो ताणी ने ॥२॥
एक वार सांख्युं बीजी वार सांख्युं, शरम तमारी घणी आणी ने ।३।
बाइ मीराँ के प्रभु गीरधर ना गुण, चरण कमळ चित्त मानी ने ।४।

दधि-बेचन   ३८

गोरस लीजे नंदलाल, रसमां गोरस लीजे ॥०॥
मे हुं ब्रखुभाण नंदनी, तुम हो नंदाजी के लाल ॥१॥
मोर मुगट मुक्ताफळ कुंडळ, उर वैजयंति माळ ॥२॥
में दधीबेचन जाती ब्रन्दावन, रोकत है बिन काज ॥३॥
बाइ मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, बांह ग्रहे की लाज ॥४॥

जलभरन   ३९ (गुज०)

जळ भरवा केम जाउं, का'नो मारी केडे पडयो रे ॥०॥
साव सोनानो मारो घाट घडुलो वा'ला, उंढणीए रतन जडावुं ।१।
मारग मां वा'लो पाणीलां मागे, सहीयर देखतां केम पाउं ॥२॥
नाथजी हमारा निर्लज थइ बेठा वा'ला, हुं निर्लज केम थाउं ॥३॥
बाइ मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण वा'ला, हरि चरणे ध्यान धराउं।४।

गोपीभाव   ४० (गुज०)

भूली मोतन को हार, सखी तट जमना किनारे ॥०॥
एक एक मोती मारू लाख टका नुं वा'ला, परोंव्युं सुवर्ण के रे
तार ॥१॥
सासु हमारी अति वढकारी वा'ला, नणदल विखडा नुं भार ॥२॥
परणयो हमारो परम सोहागी, मार्यां छे मोहनां बाण ॥३॥
बाइ मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमळ चित ध्यान ॥४॥

गोपीभाव ४१ (गुज०)

आंखलडी वांकी, अलबेला तारी आंखलडी वांकी ॥०॥
नैन कमळ नो पलकारो रे मारे, तीर मार्यां ताकी ॥१॥
वृंदावन ने मारग जातां तन रे जोयां झांखी ॥२॥
चाळवणीयामां वा'ले चित्त हरी लीधां, मोहनलाले भूरकी नांखी।३।
मीरां बाइ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमळ चित्त राखी ॥४॥

गोपी-प्रार्थना ४१ (गुज०)

हां रे माया शोदने लगाडी, धूतारे वा'ले माया शीद लगाडी ॥०॥
माया लगाडी वा'ला मेली ना जाशो, एवा न थाओ नाथ अनाडी ।१।
वृंदा ते वन मां गौधन चारतां, हांरे मधुरसी मोरली वगाडी ।२।
वृंदावन ने मारग जातां वा'ला, फूल नी ते वाडीओ भेलाडी ॥३॥
हाथ मां दीवडो में बाळ कुंवारी वा'ला, हांरे देवळ पूजवा ने चाली ।४।
बाइ मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमळ बलिहारी ॥५॥

उद्धव लीला ४३ (गुज०)

नारे आव्या व्रज मां फरीने ओधवजी वा'लो,
नारे आव्या व्रज मां फरीने ॥०॥
आठ दिवस नी अवध करी ने, नारे जोयुं ब्रज मां फरी ने ॥१॥
ओधव साथे सन्देशो कहाव्यो, कागळ ना लख्यो रे फरीने ॥२॥
कुबजा रे साथे स्नेह करी ने, वा'लो रह्या त्यांरे ठरी ने ॥३॥
बाइ मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चित्त मारां लीधां हरी ने ॥४॥

विरहालाप ४४

कुञ्जन बन छांडि गये माधो कौन गुना तकसीर ॥०॥
जो मैं होती जल की मछलिया ।
तुम करते जब स्नान चरण छू लेती है माधो ॥१॥
जो मैं होती बन की कोयलिया ।
गैया चरावन आते बोलिया सुनती है माधो ॥२॥

जो मैं होती मोर की पंखिया ।
प्रभु करते सिंगार मुकुट चढ़ रहती है माधो ॥३॥
जो मैं होती सीप की मोती ।
गल बिच होती हार हिये पर रहती है माधो ॥४॥
जो मैं होती बाँस की बंसरिया ।
करती मुख पर वास अधर रस पीती है माधो ॥५॥
जो तुम चाहो मिलन हमारो ।
मीराँ के घनश्याम दरस बिन व्याकुल है माधो ॥६॥

विरह ४५

गाढ़ो कियो मन खेंच लियो री साँवरे मन ॥०॥
राधे रानी रूक्मणी और सतभामा, व्याकुल प्राण भयो री ।
सुणो ए सुणो म्हारी संग की सहेल्याँ, धृग धृग मेरो जियोरी ।
ओ सुख कुबजा लियो री ॥१॥
काजल तिलक तमोल सखीरी, सब सुख त्याग दियो री ।
हमसे जोग भोग कुबजा को, अब नहीं जात सह्यो री ।
दासी संग लिपट रह्यो री ॥२॥
अध गोकुल अध मथुरा नगरी, जहाँ उठ ख्याल रच्यो री ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जाय द्वारिका बस्यो री ।
श्याम निरदयी भयो री ॥३॥

प्रेम-व्याधि ४६

नाड़िय न जाणै बैद निपट अनारी है ॥०॥
बूँटी तो सब झूँठी लायो औषध बिसारी है ।
तूँ थारे घर जारे बैद म्हारे रोग भारी है ॥१॥
कुबजा ने प्यारी कीधी, राधिका बिसारी है ।
कंस की जो चेरी वो तो, महल पधारी है ॥२॥

पानां जैसी पीरी पीरी, पलंगा पे डारी है।
मीराँ ने तो दर्शन दीजो, दासी ये तुम्हारी है ॥३॥

राधा-भाव　४७

राधे थाँने डस गयो नागज कारो।
अब नहीं है बैद को सारो ॥०॥
अध गोकुल अध मथुरा नगरी। अध बिच जमुना किनारो।
जहाँ राधेजी को न्हावणो। नित आवे नखराळो ॥१॥
गढ़ मथुरा सूँ बैद बुलावो। बाबा नंदजी को प्यारो।
उण आया मेरी कुँवरी बचेगी। उनको मोहि पतियारो ॥२॥
गढ़ मथुरा सूँ बैद आयो। बाबा नंद को दुलारो।
आय साँवरे नाड़ी देखी। रोग बतायो न्यारो न्यारो ॥३॥
चार मास सियाळो निकळ्यो। चार मास उनाळो।
मीराँ ने श्री गिरधर मिलिया। लागो रितु बरसाळो ॥४॥

विरहभाव　४८

बैद को सारो नाहीं रे माई बैद को नाहीं सारो ॥०॥
कहत ललिता बैद बुलाउँ आवै नंद को प्यारो।
वो आयाँ दुख नाहि रहैगो मोहि पतियारो ॥१॥
बैद आय कर हाथ जो पकड़्यो रोग है भारो।
परम पुरुष की लहर व्यापी डस गयो कारो ॥२॥
मोर चन्दो हाथ ले हरि, देत है डारो
दासी मीराँ लाल गिरधर विष कियो न्यारो ॥३॥

गोपी-प्रेमालाप　४९

कनैया बल जाउं, अब नहि बसुं रे गोकुल में,
कनैया बल जाउं रे ॥०॥
काळी होडे कामळी रे, काळा हे रे कहान।
बृन्दावन की कुंज गलन में, खेलत गोपी तज मान रे ॥१॥

घेर आइ गोवालन, घेर आये गोवाळ ।
हरि हजुं नहीं आये रे, मेरो मदन गोपाल ॥२॥
सोने की बंसरियां, रूपे की जंजीर ।
गावे ने बजावे कानजी, त्रट जमना के तीर ॥३॥
जमना के नीरे तीरे, बंगला बनावुं ।
बंगला की भींते, बेर बेर प्रेम चणाउं ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर प्यारे लाल ।
अब कोइ मत पडो रे, मेरो ख्याल ॥५॥

ज्ञान ५०

अँखियाँ में लाली छाई, कदम तल भांग पिलाई ॥०॥
गढ़ बरसाना सूँ बीज मंगायो, जमुना के धोर बोवाई ।
सब सखियाँ मिल सींचण लागी,
दोय दोय पानां आई ॥१॥
असल चंदन को गोटो घडायो,
कूंडी रतन जडाई ।
सब सखियाँ मिल घोटन लागी,
राधेजी के चीर छणाई ॥२॥
सब सखियाँ ने तो थोडी थोडी पाई,
राधेजी ने अधिक पिलाई ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
राधे जी ने नाच नचाई ॥३॥

नटखटपन ५१

जसोदा मैया बरज कन्हैयो तेरो ।
तेरो कन्हैया मोसे करे जोरी ॥०॥

जसोदा मैया जल जमुना में जाती ।
गगरिया मोरी फोर डारी ॥१॥
जसोदा मैया डाल कदम की छैयाँ ।
बहियाँ मरोड़ डारी ॥२॥
जसोदा मैया मारग रोक लियो है ।
रंग से भिंजोय डारी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
हरि चरणां बलिहारी ॥४॥

गोपी उत्कंठा ५२ (गुज०)

आतुर थइ छुं मुख जोवाने घेर आवो नंदलाला रे ॥०॥
गउतणां मिश करी गया छे गोकुळ आवो लाला रे ॥१॥
मासी ने मारी ने गुणका ने तारी-टेव तमारी छोगाळा रे ॥२॥
कंस मारी मा बाप उगारचा-घणा कपटी नथी भोळा रे ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण-घणाज लागे प्यारा रे ॥४॥

विरह-भाव ५३ (गुज०)

कागळ कोय लेइ जाय रे मथुरा मां वसे रेवाशी ॥०॥
येरे कागळ मां झाझूँ शूं लखिये ।
थोडे थोडे हेत जणाय रे ॥१॥
मित्र तमारा मळवा इच्छे ।
जसोमति अन्न न खाय रे ॥२॥
सेजलडा तो मुने सूनी रे लागे ।
रडतां ते रजनी न जाय रे ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
चरण कमळ तारूं त्यां जाय रे ॥४॥

राधा-भाव   ५४ (गुज०)

काना चालो मारे घेर काम छे—सुंदर तारूं नाम छे ।।०।।
मारा आंगणा मां तुलसी नु झाड छे ।
राधा गौळण मारूं नाम छे ।।१।।

आगले मंदिर मां ससरो सोवेलो छे ।
पाछलो मंदिर सुमसाम छे ।।२।।

मोर मुगुट पीतांबर शोभे ।
गले मोतन की माल छे ।।३।।

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
चरण कमळ चित जाय छे ।।४।।

दान-लीला   ५५

चोर कन्हाई प्यारो चोर कन्हाई ।
मेरा महिड़ा को चोर कन्हाई ।।०।।

आगली मथनिया भई रे पुरानी ।
नई नई लेकर आई ।
छींकतड़ा मेरा घर सूँ निकसी ।
ऐसी जो धूम मचाई ।।बृज में अनीत चलाई ।।१।।

दधि को डाण कबूँ नहीं सुनियो, बहोत बार मैं आई ।
जाय पुकारूँगी मैं कंसराय ने, ऊठ जाय ठकुराई ।।
ग्वाल सब लेहूँ बुलाई ।।२।।

दधि को डाण लगेरी ग्वालन, कहा करो चतुराई ।
देकर सान सखा ल्यूँ बुलाई, (तेरो) महिडो लेहूँ लुटाई ।।
मोहि बाबा नँद की दुहाई ।।३।।

हार चली चंद्रावली गुजरी, जीत्या जदुपत राई ।
मीरां बाई के हरि गिरधर नागर, मेवा सूँ गोद भराई ॥
नंद घर बँटत बधाई ॥४॥

दर्शनानंद ५६

हाँ रे सखी देख्यो री नंदकिशोर ॥०॥
मोर मुकुट मकराकृति कुंडल, पीतांबर झकझोर ॥१॥
ग्वाल बाल सब संग जु लीने, गोवर्धन की ओर ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि भये माखन चोर ॥३॥

उत्कंठा ५७

किस विध देखण जाउँ ए माय ।
आज बिरज में आयोरी साँवरियो ॥०॥
कोरी कोरी मटकी में महीड़ो जमायो ।
ग्वालण होय कर जाउँ ए माय ॥१॥
चुन चुन कलियाँ सेवरो जमाउँ ।
मालण होय कर जाउँ ए माय ॥२॥
सार की सुई पाट का तागा ।
दरजण होय कर जाउँ ए माय ॥३॥
मीरांबाई के हरि गिरधर नागर ।
निरख निरख गुण गाउँ ए माय ॥४॥

प्रेमालाप ५८ (गुज०)

कानुडो शुं जाणे मारी प्रीत, बाइ अमे बाळ कुंवारा रे ॥०॥
जळ जमुनानां अमे, भरवा ने गयां तां हां हां,
कानुडे उडाड्यां आछां नीर, उड्यां फरररर रे ॥१॥
वृंद्रा ते वन मां वहाले, रास रच्यो छे रे,
सोळसें गोपीनां खेंच्यां चीर, फाटयां चररररर रे ॥२॥

जमुना ने कांठे वहालो, गौधन चारे रे,
वांसळी वगाडी भाग्यां ढोर, भाग्यां भररररर रे ॥३॥
हुं तो वयणागी काना, तमारा रे नामनी रे,
कानुडे ताणीने मारयां तीर, वाग्यां अररररर रे ॥४॥
बाइ मीराँ कहे प्रभु गीरधरना गुण रे,
कानुडे बाळी ने कीधां खाख उडी फररररर रे ॥५॥

प्रेम ५६ (गुज०)

नाखेल प्रेमनी दोरी, गळा मां अमने नाखेल प्रेमनी दोरी ॥०॥
आणी कोरे गंगा व्हाला, पेले कोरे जमना,
बच मां कानुडो नाखे फेरी ॥१॥
वृन्दा रे वनमां व्हालो धेनु चरावे ने,
वांसलडी वगाडे घेरी घेरी ॥२॥
जळ रे जमनानां अमे भरवा गया तां,
भरी गागर नांखी ढोळी ॥३॥
वृन्दा रे वनमां व्हाले रास रच्यो छे रे,
कानुडो काळो ने राधा गोरी ॥४॥
बाइ मीराँ कहे प्रभु गिरिधर ना गुण व्हाला,
चरण नी दासी पिया तोरी ॥५॥

उल्लास ६०

गोकुल के बासी भले हि आये, गोकुल के बासी ॥०॥
गोकुल की नारी देखत, आनन्द सुखरासी ॥१॥
एक गावत एक नाचत, एक करत हाँसी ॥२॥
पीताम्बर के फेंटा बाँधे, अरगजा सुवासी ॥३॥
गिरधर से सु नवल ठाकुर, मीराँ सी दासी ॥४॥

दर्शनानन्द ६१

साँवरा ने देख्याँ म्हारो घणो चित्त राजी छे जी ॥०॥
हीराँ मोती धन वारूँ और म्हारो प्राण वारूँ ।
लाखाँ की बधाई बाँटूँ आवे नँदलालजी ॥१॥
बृज में अचंबो देख्यो गोप्याँ सारी आई साँवरा ।
जसोदा को जायो कालो नाग नाथ लायो जी ॥२॥
हिंगळु को ढोल्यो ढाळूँ गेंदवा बिछाऊँ साँवरा ।
मशरू की सेजाँ नंदलाल ने पोढावूँ जी ॥३॥
उभी उभी मीरांबाई अरज करे छे जी ।
अणी कळजुम में प्रभु राखो लाज म्हारी जी ॥४॥

दधि-वेचन ६२ (गुज०)

हांरे कोइ माधव ल्यो वेचंती बृजनारी रे ॥०॥
माधव ने मटुकीमां घाली गोपी लटके मटके चाली रे ॥१॥
हांरे गोपी घेलुं शुं बोलती जाय कान मटुकी मां नव
समाय रे ॥२॥
नव मानो तो जुवो उतारी मांही जुवे तो कुंजबिहारी रे ॥३॥
वृंदावन मां जातां धारीवालो गौ चरावे गीरधारी रे ॥४॥
गोपी आवी वृंदावन वाटे सउ व्रजनी गोपीओ साथे रे ॥५॥
मीराँ कहे प्रभु गीरधर नागर जेना कमळ चरण सुख
सागर रे ॥६॥

वियोग ६३ (गुज०)

कहां गयो पेलो मोरली वाळो अमने रास रमाडी रे ॥०॥
रास रमाडवाने वनमां तेड्यां मोहनी मंत्र सुणावी रे ॥१॥
माता जसोदा शाख पुरावे केशर छांटयां घोळी रे ॥२॥

हवणा वेण समारी सुति पेरी कसुंबल चोली रे ॥३॥
बाइ मीराँ कहे प्रभु गीरधर नागर चरण कमळ चीत चोरी रे ॥४॥

गोपीभाव ६४

क्या करूँ मैं बन में गई, घर होती तो श्याम कूँ मनाई लेती ॥०॥
गोरी गोरी बहियाँ हरी हरी चुड़ियाँ,
झाला दे के बुला लेती ॥१॥
अपने श्याम संग चोपड़ रमती,
पासा डाल के जीता लेती ॥२॥
बड़ी बड़ी अँखियाँ झीणा झीणा सुरमा,
जोत से जोत मिला लेती ॥३॥
बाइ मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण,
चरण कमळ लपटा लेती ॥४॥

जल-भरन ६५

ठाड़ा रीजो कदम की छैया।
गागरिया में जल भर लाउँ ॥०॥
जल भर लाउँ, चीर ओढ़ आउँ।
लेर ले आऊँ और सहियाँ ॥१॥
अध गोकुल अध मथुरा नगरी।
अध बिच जमुना बहियाँ ॥२॥
मीराँ के हरि गिरधर नागर
हरि चरण में चित रहियाँ ॥३॥

नटखटपन ६६

श्याम तोरे पैंया लागूँ बैयाँ ना मरोड़ ॥०॥
हम बृजनारी देखी तेरी चतुराई मैं तो।
विनती करूँ हरदम कर जोड़ ॥१॥

अपनी कहत ना सुनत कछु और की ।
बरजोरी श्याम मोरी बैंया झकझोर ॥२॥
ए हो बनवारी तोरी करत लाचारी घर ।
सास देगी गारी मैं तो करत निहोर ॥३॥
सुन हो कन्हाई अब छाँड़ दे ढिठाई ऐसे ।
बोली मीरांबाई कर जोड़ कर जोड़ ॥४॥

दर्शनानन्द ६७

तेरे साँवरे मुख पर वारी ।
वारी वारी बलिहारी ॥०॥
मोर मुकुट पीताम्बर शोभे ।
कुण्डल की छबि न्यारी न्यारी ॥१॥
बिन्द्राबन में धेनु चरावे ।
मुरली बजावत प्यारी ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर ।
चरण कमल बलिहारी ॥३॥

नटखटपन ६८

बैँयाँ क्यों मरोड़ी साँवरा मेरी बैँयाँ क्यों मरोड़ी ॥०॥
गोरी गोरी बैँयाँ हरी हरी चुड़लियाँ ।
अचानक बैँयाँ क्यों मरोड़ी ॥१॥
गोरा गोरा मुख पर अलक बिराजे ।
मोतियन माँग क्यों मरोड़ी ॥२॥
मीरां बाई के हरि गिरधर नागर ।
अविचल रीजो या जोड़ी ॥३॥

दर्शनानन्द ६९

कुँजवन मों गोपाल राधे कुँजवन मों गोपाल ॥०॥

मोर मुकुट पीतांबर शोभे। निरखत श्याम तमाल ॥१॥
ग्वाल बाल रूचि चारू मण्डल। बाजत बंशी रसाल ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर। चरणों में मन चिरकाल ॥३॥

शारदोत्सव   ७० (गुज०)

आज की माणेक ठारीयां मोहनजी
आज की माणेक ठारीयां ॥०॥
दूध पौंआ ने राईनी केरी।
उपरथी गवारियाँ वघारियां रे ॥१॥
बरफी पुरीने आदां चीरी।
उपरथी लिंबु खटाईयां रे ॥२॥
सेव कंसार ने कारेलां कंटोला।
उपरथी सुरण सवादियां रे ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर।
भावे करीने आरोगियां रे ॥४॥

दर्शनानंद   ७१

बागन मों नंदलाल चलेरी, बागनमों नंदलाल ॥०॥
चंपा चमेली दवना मरवा। झुक आई रमडाल ॥१॥
बाग मों जावत दरसन पाये। बिच ठाड़े मदन गोपाल ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। ज्याँके नयन विशाल ॥३॥

दधिबेचन   ७२ (गुज०)

चालने सखी मही वेचवा जइये
ज्यां सुंदीरश्याम रमतोजी ॥०॥
प्रेमतणा पकवान लइ साथे
रसीकवर श्यम भमतोजी ॥१॥

मोहनजी तो हवे मोटो थयो छे
गोपी ने नथी दमतो जी ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गीरधर नागर
रणछोड कुबजा ने वरतोजी ॥३॥

गोपी-व्यङ्ग ७३ (गुज०)

कठण थयारे माधव मथुरां जइ
कागळ न लख्यो कटको रे ॥०॥
अहियां थकी हरि हवडां पधार्या
ओधव साथे अटक्यो जी ॥१॥
अंगे सोवरणिया वाघा पेर्या
शीर पीतांबर पटको जी ॥२॥
गोकुळ मां एक रास रच्यो छे
कहान कुबजा संग अटक्यो जी ॥३॥
काळीशी कुबजा ने अंगे छे कुबडी
ए शुं करी जाणे लटको जी ॥४॥
ए छे काळोने ते छे कुबडी
रंगे रंग बन्यो चटको जी ॥५॥
कोइ कहे मारी दतुसर आणी
शीर मेल्यो रंग चटको जी ॥६॥
मीराँ कहे प्रभु गीरधर नागर
खोळामां छुं घुंघट खटकोजी ॥७॥

शारदोत्सव ७४ (गुज०)

पुनम केरो पुर्ण चंद्र छे रास रमे नंदलालोजी ॥०॥
नटवर वेश धर्या नंदलाले सौ जोवा ने चालो जी ॥१॥

गान तान वाजीतर वागे नाचे जसोदा नो कालो जी ॥२॥
सोळ सहस्र मां अष्ट पटराणी वच्चे रह्यो मारो वालो जी ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गीरधर नागर रणछोड दीसे सारो जी ॥४॥

जलभरन   ७५ (गुज०)

हाँरे मारा सम काले मळजो, पेला कह्यां वचन ते पळजो ॥०॥
जळ जमुना जळ पाणी जाता मारग वच्चे मळजो रे ॥१॥
बाळपणानी वारा दासी तमारी प्रीत करी परवरजो रे ॥२॥
वाटे आळ न करीए वाला वचन कह्युं चित धरजो रे ॥३॥
घणोज स्नेह थया थी गीरधर लोक लजाय वळजो रे ॥४॥
मीराँ कहे प्रभु गीरधर नागर प्रीत करी ने पळजो रे ॥५॥

जसोदा-भाव   ७६ (गुज०)

मागत माखण रोटी गोपाळ प्यारे मागत माखण रोटी ॥०॥
मेरे गोपाळजी कु रोटी बना देउं
एक छोटी रे बीजी मोटी ॥१॥
मेरे गोपाळजी को बीहा कराउंगी
भ्रखु ते भान की बेटी ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गीरधर नागर
चरण कमळ हुं तो जोती ॥३॥

कालीयदमन   ७७

कनैयो तेरो जमुना में कूद पर्यो रे ॥०॥
कालींद्री को कालो पानी रे पेठत कछु ना डर्यो रे ॥१॥
नंद जसोदा गोप गोपी सब निरखह भर्यो रे ॥२॥
पेश पेयारी कालीनाग नाथ्यो फण पर नृत्त कर्यो रे ॥३॥
व्रज के काज गोवर्धन धारयो रे इन्द्र को मान हर्यो रे ॥४॥

मथुरा में प्रभु जन्म लीयो हे सुनी के कंस डर्यो रे ॥५॥
मीराँ कहे प्रभु गीरधर ना गुण सुर को काज कर्यो रे ॥६॥

दर्शनानंद ७८

मथुरा के कान मोही मोही मोही ॥०॥
खाँदे कामरिया हाथ मों लकरिया ।
सिर पाग लाखा लोई लोई ॥१॥
पाँव पे पेंजण अणवट बिछवे ।
चाल चलत ता ता थै थै थै ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर ।
हृदय बसत तूही तूही तूही ॥३॥

प्रेमालाप ७९

मोरी लय लगी गोपाल में ॥०॥
मेरो काज तो कोन करेगा । मेरे चित्त नंदलाल छे ॥१॥
वृन्दावन की कुञ्ज गलिन में । जपती तुलसी माल छे ॥२॥
मोर मुकुट पीतांबर शोभे । गल मोतिन की माल छे ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । टूट गई जंजाल छे ॥४॥

प्रेमालाप ८०

कैसी जादू डारी अब तूने कैसी जादू डारी ॥०॥
मोर मुकुट पीतांबर शोभे । कुंडल की छबि न्यारी ॥१॥
वृन्दावन की कुञ्ज गलिन में । लूटी ग्वालन सारी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । चरण कमल बलिहारी ॥३॥

विरह ८१

श्यामसुन्दर मुरलीवाला, कोई देख्यो रे भैय्या ॥०॥

जमुना के नीरे तीरे धेनु चरावता ।
दधि घट चोर चरैय्या ॥१॥
वृन्दावन की कुञ्ज गलिन मों ।
हमकूँ पैर झुकैय्या ॥२॥
इत गोकुल उत मथुरा नगरी ।
पकरत मोरी बैंय्याँ ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
चरन कमल बल जैय्याँ ॥४॥

विरहालाप ८२ (गुज)०

बलीहारी रसीया गीरधारी सुन्दर स्याम हो तजीने अमने
मथुरा ना वासी आवा न बनीएजी ॥०॥
वांसलडी वागी एवा भणकारा वागे जी ।
व्रज वाट लागे मने खारी–सुंदर स्याम हो तजी अमने० ॥१॥
जमुना नो कांठो वहाला खावा ने दोडे जी ।
अकळामण दे छे हवे भारी–सुन्दर श्याम हो तजी अमने० ॥२॥
वृन्दावन केरी शोभा तम वीण अमने जी ।
नजरे दीठी नव लागे सारी–सुन्दर स्याम हो तजी अमने० ॥३॥
गोवर्धन तोल्यो वहाला, टचली आंगळीए जी ।
अम पर ढोळ्यो गीरधारी–सुन्दर स्याम हो तजी अमने० ॥४॥
बाइ मीराँ कहे प्रभु गीरधर ना गुण वहाला ।
सहाय करी लेजो शुद्ध वारी–सुन्दर स्याम हो तजी अमने० ॥५॥

कालीयदमन ८३ (गुज०)

जमुना में कुद पर्यो कनइयो तेरो, जमुना में कुद पर्यो ॥०॥
काळो काळो नीर कालींद्रि को भरीयो,

नीर तो देखीने ना डर्यो ॥कनइयो०॥१॥
माता जसोदाजी रुदन करे छे। नयनु में नीर भर्यो ॥२॥
टचली आंगलीए वहाले गोर्धन तोल्यो। इन्द्र को मान हर्यो॥३॥
बाइ मीराँ कहे प्रभु गीरधर ना गुण। चरणु में चित्त धर्यो ॥४॥

उद्धवलीला ८४ (गुज०)

दव तो लाग्यो डुंगरीये कोने ओधवजी केम करीये,
केम तो करीये अमे केम करीये दव तो लागेलो ॥०॥
हालवा जाइए तो वहाला हाली न शकीये,
बेसी रहीए तो अमे बळी मरीये ॥१॥
आरे वरतीये रे नथी ठेकाणुं वाहाला,
परवरती नी पांखे अमे फरीये ॥२॥
संसार सागर महाजळ भरीयो वहाला,
बांहेडी झालो नीकर बूडी मरीये ॥३॥
बाइ मीराँ कहे प्रभु गीरधर नागर,
गुरूजी तारे तो अमे तरीये ॥४॥

दानलीला ८५ (गुज०)

मेली देने कान, कान रे मारगडो हमारो मेली देने कान-
छोड ने पालवडो हमारो-मेली देने कान ॥०॥
वाटे ने घाटे शाने रोको छो।
तमने कंसनी आण, आण रे—मारगडो हमारो ॥१॥
वारे वारे तमने नंदकुंवर ने।
हजु न आवी शान, शान रे--मारगडो हमारो ॥२॥
उभा उभा तमे शान करो छो।
मोहनां मारो छो बाण, बाण रे—मारगडो हमारो ॥३॥

हमे महीयारां राजा कंसनां ।
शानां मागो छो दान, दान रे—मारगडो हमारो ॥४॥
बाइ मीराँ कहे प्रभु गीरधर ना गुण ।
तमे छो नंदना लाल, लाल रे—मारगडो हमारो ॥५॥

राधा-भाव   ८६

ओ राधे प्यारी थाने साँवरो मनावे,
मानो क्यों नी राजकुंवर ॥०॥
कबकाई ठाड़ा ठाड़ा लाल खड़ा छे ।
अतरी छे काँई मनवार ॥१॥
दो कर जोड़्याँ लाल खड़ा छे ।
पकड़े छे कर तर ॥२॥
मीराँ के प्रभु मनिये राधा ।
कीजो रास रँग भर ॥३॥

राधा-भाव   ८७

राधा हठ मांड्यो छे जी माझल रात ॥०॥
वृन्दावन की कुञ्जगलिन में ।
सहस गोपी एक नाथ ॥१॥
मनोजी मनो थाने कृष्ण मनावे ।
हँस हँस पकड़े छे हाथ ॥२॥
कान्ह कुँवर थे रसरा लोभी ।
राधाजी रो गोरो गोरो हाथ ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
बार बार बलि जात ॥४॥

नटखटपन ८८

छाँड़ो लँगर मोरी बहियाँ गहो ना ॥०॥
मैं तो नार पराये घर की, मेरे भरोसे गुपाल रहो ना ॥१॥
जो तुम मेरी बहियाँ गहत हो, नयन जोर मोरे प्रीण हरो ना ॥२॥
वृन्दावन की कुंजगली में, रीत छोड़ अनरीत करो ना ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित टारे टरो ना ॥४॥

राधा-भाव ८९

राधा तेरी बोली माँही मुड़क घणी ॥०॥
तीखा तीखा नैण भुँवारा बाँका। मानो कुबाण तणी ॥१॥
आप ही बाँकी बेन ही बाँकी। कोन चटसाल भणी ॥२॥
कोटी भाण प्रकाश भयो है। चिमकत सेल अणी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। निरखत श्याम धणी ॥४॥

अभिलाषा ९०

भइ क्यों न वृज की मोर सजनी ॥०॥
अपनी पंखा को मुकुट बनाती। धरते नन्दकिशोर ॥१॥
गिरवर चढ़ कर टेर सुनाती। सुनते नन्दकिशोर ॥२॥
मात यशोदा चुगो चुगाती। भर भर रतन कटोर ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। चित हरियो चितचोर ॥४॥

गोपी-व्यंग ९१

सखी दोष नहीं कुबजा को ॥०॥
आप न आवे पतिया न भेजे। कागज रो कइं टोटो ॥१॥
कुबजा दासी कंस राय की—वो नंदजी रो टोटो ॥२॥
जांत पांत को भेद न जाण्यो—सेजां रो रङ्ग मोटो ॥३॥
आप हि जाय द्वारिका छाये—ले समदर को ओटो ॥४॥

नवलख धेन नंदबाबा घेर–क्या माखन को टोटो ॥५॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर–चेरी बड़ी हरि छोटो ॥६॥

उद्धव-लीला ६२

उधोजी माधो कैसी कीनी ॥०॥
आज काल कुबज्या बड़ भागण, मैं बुध की मत हीणी ॥१॥
आप तो जाय द्वारका धाये, हमकूं पाती नहीं दीनी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, विधिना या लिख दीनी ॥३॥

दर्शनानन्द ६३

कान्हा रसिया वृन्दावन वासी ॥०॥
यमुना के नीरे तीरे धेनु चरावे मुरली बजावे मृदुलासी ॥१॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे श्रवण कुण्डल झलासी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर बिना मोल की दासी ॥३॥

जल-भरन ६४

वंशीवारे हो कान्हा मोरी रे गगरी उतार।
गगरी उतार मेरो तिलक सँभार ॥०॥
यमुना के नीरे तीरे बरसीलो मेह।
छोटे से कन्हैयाजी सों लागो म्हारो नेह ॥१॥
बिन्द्राबन में गउएँ चरावे तोर लियो गरवा को हार।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर तोरे गई बलिहार ॥२॥

नटखटपन ६५

एरी तेरी कौन जाति पनिहारी ॥०॥
इत गोकुल उत मथुरा नगरी बीच मिले गिरिधारी ॥१॥
सुन्दर वदन नयनमृग मानो विधाता आप सम्वारी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर तुम जीते हम हारी ॥३॥

नटखटपन ९६

झटक्यो मेरो चीर मुरारी ॥०॥
गागर रंग सिरते झटकी वेसर मुर गई सारी ॥१॥
छुटी अलक कुंडल ते उरझी झड़ गई कोर किनारी ॥२॥
मन मोहन रसिक नागर भए हो अनोखे खिलारी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल सिरधारी ॥४॥

दधि-दान ९७

कहाँ कहाँ जाऊँ तेरे साथ कन्हैया ॥०॥
बिन्द्रावन की कुंज गलिन में गहे लिनों मेरो हाथ ॥१॥
दध मेरो खायो मटकिया फोरी लीनो भुज भर साथ ॥२॥
लपट झपट मोरी गागर पटकी साँवरे सलोने लोने गात ॥३॥
कबहूँ न दान लियो मनमोहन सदा गोकुल आत जात ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर जनम जनम के नाथ ॥५॥

गोपी-उलाहना ९८

नीको रही यशोदा मैया तेरो लरको ॥०॥
बछन छोड़ाय, मेरी गउवाँ चुरवाय दीनी,
और तारो मेरो छीको ॥१॥
दूध दही की कमारी फोरी, मथनिया
माट फोरो गहे छीको ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
हरि बिन सब जग फीको ॥३॥

उद्धव-लीला ९९

साधो ! मैं वैरागन हर की ॥०॥
भूषण वस्तर सबही हम त्यागे खान पान बिसरानो ।

ए ब्रजवासी कहत बावरी मैं दासी गिरधर की ॥१॥
ऊधो जो तुम जावो द्वारका विपत कहो गोपियन की।
जैसे जल विन मीन ज्यों तड़पे सो गत भई सखियन की ॥२॥
पात पात वृन्दावन ढूँढ़्यो ढूँढ़ फिरी व्रज घर की।
आप तो जाय द्वारका छाए परि मोटी विरहन की ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर मैं दासी गिरधर की ॥४॥

उद्धव-लीला १००

कीजो उदा माधूजी से जाय आई अर्ज गोपियन की ॥०॥
सुस गया सरवर उड़ गया हंसा रह गई निर्धन गार ॥१॥
कोई दिन हंसा मोती चुगता कोई दिन करे नीहार ॥२॥
अमृत पाणी जमुना को छोड़यो खारा समंद बिचे जाय ॥३॥
नंद सरीखा पिताजी ने छोड़चा छोड़ी जसोदा माँय ॥४॥
राधा सरीखी गोरी ज्याँने छोड़ी कुब्जा के संग जाय ॥५॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरख निरख गुण गाय ॥६॥

राधा-गोपी-विरह १०१

मेरी माई नेननी भेद दीओ ॥०॥
ता दिन थे उन शांम मनोहर तन मन चोर लीओ ॥१॥
जेशे कनक कचोले अम्रीत आरत बंद पीओ।
बीसरी देह ग्रेह सुख संपत परबस पान कीओ ॥२॥
तजी ब्रीजबास चली मधु पुरी कूं हरी बिन व्रीथा जीओ।
मीराँ प्रभु बीहारत नही बिछुरे वृषभान दईओ ॥३।

दान-लीला १०२

मारग छोड रे साँवरिया मैं तो जाउँ मथुरा ॥०॥
सज शृङ्गार सखियाँ मिल निकसी।

बाजूबंद हार काँकण गजरा ॥१॥
लहँगो लाल हरचो सिर आम्बर ।
भाल तिलक नैणां बिच कजरा ॥२॥
डाण दिया बिन जाबो ना पावे ।
कोस लई मटकी लुटावे दधरा ॥३॥
मही को डांण कबहूँ नहीं सुणियो ।
हँस हँस नार करे झगरा ॥४॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
देई जवाब चले मथुरा ॥५॥

नटखटपन १०३

बहियां मोरी छोड़ोजी रङ्गीले घनश्याम ॥०॥
अँगुली पकड़ मेरा पहुँचा पकड़चा । या काईं बाण कुबाण ॥१॥
सास बुरी मोरी नणद हटीली । घर में बुरो है मेरो श्याम ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
प्रभु के चरण मेरो ध्यान ॥३॥

गोपी-भाव १०४

बाजुबन्द भूली हूँ जी माझल रात ॥०॥
भूल गई में सेज पिया की जी ।
याद आयो परभात ॥१॥
नणद जेठाणी मेरी कदकी बैरन ।
ताना मोसे सयो न जात ॥२॥
बृज नन्दन जी म्हारी सास लड़ेगी जी ।
देख अड़ोला म्हारा हाथ ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर जी ।
वर पायो दीनानाथ ॥४॥

प्रेमालाप १०५

तोड़ी टूटे नाय सखी साँवरा की प्रीतलड़ी ॥०॥
बृन्दावन में धेनु चरावे। गावे गीतलड़ी।
गोरख के. मिस बाँह मरोड़ी। या कांई रीतड़ली ॥१॥
कुञ्ज कुञ्ज में भटकत डोले। करके प्रीतड़ली।
मोहन हार गला का तोड़ा। करे अनीतड़ली ॥२॥
दासी करी पटरानी साँवरो। आड़ी भीतड़ली।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर। आवे रीसड़ली ॥३॥

राधा-भाव १०६

पिया प्यारी राधा सेन करे छे। या चोपड़ दूर धरे छे ॥०॥
आलस हुलस उणीया अंखिया। झुक झुक पिया पर पड़े छे ॥१॥
बृजनन्दजी थे महल पधारो। ठाड़ी अरज करे छे ॥२॥
आधी रात सीखर से ढल गई।
पहरा गश्त फिरे छे ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर।
राधा चरित करे छे ॥४॥

जल-भरन (दर्शन) १०७

बड़ि बड़ि अँखियन वारो सांवरो मो तन हेरी हँसिकेरी ॥०॥
हौं जमुना जल भरन जात ही सिर पर गागरि लसकेरी।
सुन्दर स्याम सलोनी मूरति मो हियरे में बसिकैरी ॥१॥
जन्त्र लिखाओ मन्त्र लिखाओ औषध ल्यावो घसकैरी।
जो कोउ ल्यावै श्याम बैद को तौ उठि बैठों हँसकैरी ॥२॥
भृकुटी कमान बान वाके लोचन मारत भरि भरि कसकैरी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर कैसे रहौं घर बसकैरी ॥३॥

गोपी-भाव १०८

थारे कुबजा ही मन भानी हमसे न बोलना हो राज ॥०॥
हमसो कहे सुहाग उतारो दृग अञ्जन सब ही धोय डारो,
माथे तिलक चढ़ाओ पहिरो चोलना हो राज ॥१॥
हमरी कही विषहिं सम लागे घर घर जाय भँवर रस जागै,
उनही के सङ्ग रहना सहना बोलना हो राज ॥२॥
बृन्दाबन में धेनु चरावै बंसी में कछु अचरज गावै,
बांकी तान सुनावै बोलियां बोलना हो राज ॥३॥
हमरी प्रीत तुम्हीं संग लागी लोकलाज सब कुल की त्यागी,
मीराँ के गिरधारी बन बन डोलना हो राज ॥४॥

प्रेमालाप १०९

कहीं देखे री घनश्यामा ॥०॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुण्डल झलके काना।
सांवरी सूरत पै तिलक बिराजै, नाहिं लगे मोर प्राना ॥१॥
बरसाने से चली गुजरिया नन्द ग्राम को जाना।
आगे केशव धेनु चरावें लगै प्रेम के बाना ॥२॥
सागर सूखो कमल मुरझाना हंसा किया पयाना।
भौंरा रहि गये प्रीति के धोखे फेर मिलन मत आना ॥३॥
बृन्दाबन की कुंज गलिन में नूपुरू रूनझुन लाना।
मीराँ को प्रभु दर्शन दीजै ब्रज तजि अन्त न जाना ॥४॥

राधा-भाव ११०

श्री राधे रानी देडारो ना बाँसुरी मेरी ॥०॥
जा बंसी में मेरा प्राण बसत है सो बंसी गई चोरी ॥१॥
काहे से गाऊँ प्यारी काहे से बजाऊँ,
काहे से लाऊँ गैया घेरी ॥२॥

मुख से गाओ कान्हा हाथ से बजाओ,
लकुटी से लाओ गैया घेरी ।।३।।
हा हा करत तेरी पइयां पड़त हूँ,
तरस खाओ प्यारी मेरी ।।४।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बंसी लेकर छोरी ।।५।।

जल भरन (उलाहना) १११

गागर ना भरन देत तेरो कान्हा माई ।।०।।
हँसि हँसि मुख मोर मोर गागर छिटकाई ।
घूंघट पट खोल खोल सांवरो कन्हाई ।।१।।
जसुमति तू भली बात लाल को सिखाई ।
नगर डगर झगरे करत रारि जो मचाई ।।२।।
हौं तो बीर जमुना तीर नीर भरन धाई ।
गिरिधर प्रभु चरण कमल मीराँ बलि जाई ।।३।।

गोपी-भाव ११२

मोरी गलियन में आवोजी घनश्याम ।।०।।
पिछवाड़े आये हेला दीजो ललित सखी है मारो नाम ।।१।।
पैयाँ परत हूँ विनय करत हूँ मत कर मान गुमान ।।२।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, तव चरनन में ध्यान ।।३।।

प्रेमालाप ११३

अपनी गरज हो मिटी साँवरे, हम देखी तुमरी प्रीत ।।०।।
आपाँ तो जाय द्वारका छाये, ऐसे बेहद भये हो नचिंत ।।१।।
ठोर ठोर रस लेत फिरत हो, फूल भँवर की सी रीत ।।२।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, प्रभु चरणन पर प्रीत ।।३।।

गोपी-भाव ११४

कान्हा काहे कूं मारो मोकूं कांकरी ।
कांकरी कांकरी कांकरी रे ।।०।।
गायों भेंसों तेरी अबी हुई है ।
आगे न रही घर बाकरी रे ।।१।।
पीत पीतांबर काना अब ही पेरत है ।
आगे न रहे कारी धाबरी रे ।।२।।
मेड़ी महेलात तेरे अब होई है ।
आगे न रहे घर छापरी रे ।।३।।
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण ।
शरणे राखो तो करूं चाकरी रे ।।४।।

दधि-बेचन ११५

कान्हा बन्सरी बजाय गिरिधारी ।
तोरी बन्सरी लागे मोको प्यारी ।।०।।
दहि दूध बेचने जाती जमुना । काना ने घागर फोरी ।।१।।
सिर पर घट घट पर झारी । उसकूँ उतार मुरारी ।।२।।
सास बुरी रे ननंद हटीली । देवर देवें मोको गारी ।।३।।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर । चरन कमल बलहारी ।।४।।

उद्धव-लीला ११६

कारे कारे सबसे बूरे ओधव प्यारे ।।०।।
कारे को बिश्वास न कीजे । अति से भूल परे ।।१।।
काली जात कुजात कहीजे । ताके संग उजरे ।।२।।
शाम रूप कीये भ्रमरो । फूल की बास भरे ।।३।।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर । कारे संग बगरे ।।४।।

दधि बेचन   ११७

कोई तो मोरी बोलो । मईड़ो मेरो लूटे ॥०॥
छोड़ कनैया ईंढोणी हमारी । माव मही की काना मेरी फूटे ॥१॥
छोड़ कनैया बैयाँ हमारी । लड़ बाजू की काना मेरी टूटे ॥२॥
छोड़ दे कनैया चीर हमारो । कोर जरी की काना मेरी छूटे॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर । लागी लगन काना मेरी
नव छूटे ॥४॥

जल-भरन   ११८

कोन भरे जल जमुना सखी कोन भरे जल जमुना ॥०॥
बन्सी बजावे मोह लीनी हरी । संग चले मन मोहना ॥१॥
श्याम हटीले बड़े कवटाले । हर लाई सब ग्वालना ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु रूप निहारो । तीन लोक प्रतिपालना ॥३॥

जल-भरन   ११९

जमना मों कैसी जाउँ मोरे सैय्याँ ।
बीच खड़ो तेरो लाल कनैया ॥०॥
व्रिंदाबन को मथुरा नगरी ।
पानी भरन कैसी जाउँ मोरे सैय्याँ ॥१॥
हाथ मोरे चूड़ी भरा है ।
कंगन लहेरो देत मोरे सैय्याँ ॥२॥
दधि मेरा खाया मटकी फोरी ।
अब कैसी बुरी बात बोलु मोरे सैय्याँ ॥३॥
सिर पर घड़ा घड़े पर झारी ।
पतली कमर लचकाय मोरे सैय्याँ ॥४॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर ।
चरण कमल बल जाउँ मोरे सैय्याँ ॥५॥

जल-भरन १२०

जल कैसी भरूं जमुना में री ॥०॥
खड़ी भरूं तो कृष्ण दीखत है। बैठि भरूं तो भीजे चुनरी ॥१॥
मोर मुकुट पीतांबर शोभे। छुम छुम बाजत मुरली ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल की मैं चेरी ॥३॥

जल-भरन १२१

जल भरन कैसी जाउँ रे—जसोदा ॥०॥
घाटे ने घाटे पानी मांगे। मारग में कैसी जाउँ ॥१॥
आली कोर गंगा पोली कोर जमुना।
बीच में सरस्वती में न्हावुँ ॥२॥
विंद्रावन में रास रचा है। नृत्य करत मन भावुँ ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर। हेते हरि गुण गावुँ ॥४॥

नटखटपन १२२

दीजो हो चुनरिया हमारी। किसनजी मैं कन्या कुमारी ॥०॥
गौलन सब मिल पानिया भरन जाती।
व्हाँ को करत बल जोरी ॥१॥
पर नारी का बल्लव पकड़े।
क्या करे मनवा विचारी ॥२॥
वृन्दावन की कुंज गलिन मों। मारे रंग की पिचकारी ॥३॥
जाके कहियो जसोदा मैया। होगी फजीती तुम्हारी ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। भक्तन के है लहरी ॥५॥

राधा-भाव १२३

नहीं तोरी बलजोरी राधे, नहीं तोरी बलजोरी ॥०॥
जमुना के नीर तीर धेनु चरावे। छीन लई बांसरी ॥१॥

सब गोपन हंस खेलन बैठे । तुम करत फरो चोरी ।।२।।
हम नहीं (आवें) अब तुम्हारे घरन कूँ ।
तुम हो बहुत लबारी ।।३।।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर । चरण कमल बलिहारी ।।४।।

श्रीकृष्ण प्राकट्य   १२४

प्रकट भयो भगवान । मथुरा में प्रकट भयो भगवान ।।०।।
नंदाजी के घर नौबत बाजे । ढोल मृदंग और तान ।।१।।
सबही राजे मिलन आये । छांड दिये अभिमान ।।२।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । निसिदिनी धरिजे ध्यान ।।३।।

दर्शनानन्द (आतुरता)   १२५ (गुज०)

नंदकुंवर ताहुं नाम सांभळी, सास भर्यां अमे आव्यां ।
व्याकुल थइने वनमां आव्यां, बाळक विण धवराव्यां ।।१।।
प्रेमे पय पाणीमां भेळी, साकर सरसा घी ताव्यां ।
अवळां तो आभूषण पहेर्यां, नयने सिंदूर सार्यां ।।२।।
गौ दोहतां दोणी भूली, वाछकु ने धवराव्यां ।
दास मीराँ ने लाल गिरधर, चरण कमल चित लाव्यां ।।३।।

बाललीला   १२६

मैया ले थारी लकरी, ले थारी कांबरी,
बछीयां चरावन हुं न जाउँ री ।।०।।
संग के ग्वाल बलिभद्र कु न मोकलो,
एकलो वन में डराउँ ।।१।।
सघन वन में कछु खबर नाहीं परे,
संग के ग्वाल सब मोहे डरावे ।।२।।
दादुर मोर पंछी यु रटे,
कृष्ण कृष्ण कही मोहे खीजावे ।।३।।

माखन तो बलिभद्र कु खिलायो,
हमकुं पिलाई खाटी छास री ॥४॥
विन्द्राबन के मारग जातां,
पाउं में चुभत भीनो कांकरी ॥५॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
चरण कमळ तोरी आँख री ॥६॥

विरहावस्था १२७

मधुवन बसे ए उजाड़ हमारे लेखे ॥०॥
कोइ क दिना रे हँसा मोतीड़ा चुगता,
चुगण चाल्या ए जी ए जुवार ॥१॥ हमारे० ॥
समुन्दर छाँड्यो हँसा सिंधु तट आयो,
फाँक ज रही अब भर गार ॥२॥
मीरां बाई के जी थाँने गिरधर नागर,
दरसण दीजो ए जी ए मुरार ॥३॥

जसोदा-भाव १२८

गारी मत दीजो ओ तो गरीबनी को जायो ॥०॥
कोई के तो पांच पुत्र, कोई के तो सात है।
ध्याये ध्याये देवता ने, काना ने खिलायो ॥१॥
कोई के तो पांच धेनु, कोई के तो सात है।
नव लख धेन बाबा नंद के दुहायो ॥२॥
दधि की मथनियाँ आँगणिया में धरी है।
जे ज्याँको जेतो खायो व्हे जो लीज्यो राज ॥३॥
मीरां बाई के हरि गिरधर नागर।
निरख निरख गुण गायो ॥४॥

नटखटपन १२६

तजद्यो कनैया तेरा राज बिरज को बसवो ॥०॥
नित नई माधो करत अनीताई, मानत नहीं दुहाई ॥१॥
जाय पुकारूंली कंसराय ने,
पकड़ मंगालूँ अब थाँने उठे राज ॥२॥
मटकी फोड़ी म्हारो महीड़ो ढुळायो,
बलगत बैयाँ मरोड़ी ॥३॥
मीरां बाई के हरि गिरधर नागर,
तजद्यू कनैया अब तेरो राज ॥४॥

व्यङ्ग १३०

तेरो दिल कुबजा सों राजी, हमसें अबोलना महाराज ॥०॥
हमारो कियो तुम्हे खारो लगत है पर घर जाय भँवर रस लेणा
उनसे हल मल रहणा ॥१॥ हमसें० ॥
चढ़ गिरिवर पर बंशी बजावे, मुरली में कछु अचरज गावे।
प्रेम प्रीत की कुंची हँस हँस खोलना महाराज ॥२॥
उर मोतियन की माळा सोहे, वस्त्र पेरे झीणा झीणा।
मधुरो सो राग सुणाय छतियाँ छोलना महाराज ॥३॥
मीरां बाई के हरि गिरधर नागर हरख निरख गुण गाय।
चरणाँ चित डोलना महाराज ॥४॥

उद्धव-लीला १३१

कागद म्हारो लेजो उधोजी तुम बसो पियाजी के देश ॥०॥
कागद थोड़ा थोड़ा नेह घणेरा, किस बिध लिखुँ ए बनाय ॥१॥
सात समंद की साही बनवाऊँ, कलम करूँली वणराय ॥२॥
कागद लिखतां दगरा उमँगी, किस विध लिखुँ ए बनाय ॥३॥
मीरां बाई के हरि गिरधर नागर, चरण कमल चित लाय ॥४॥

नटखटपन　　　　　　　　१३२

फूटे गागरड़ी ऐसी कांकरडी मत बावो साँवरा ॥०॥
तुम तो थाँके घर ठाकुर वाजो । मैं पण ठाकुरड़ी ॥१॥
जमना के धोरे धेनु चरावो । हाथां लाल छड़ी ॥२॥
मीराँ ने श्री ठाकुर मिलिया । दूध में साकरड़ी ॥३॥

प्रेमालाप　　　　　　　　१३३

ओल्युँ री आवे ज्याँकी ओल्युँ रे ॥
कोई तो मिलाजो श्याम ज्याँकी ओल्युँ री आवे राम ॥०॥
जातो जातो रीयो री सखी री अजहुँ न आयो श्याम ।
हाथ आवे तो हठ कर राखूँ तीन लोक को श्याम ॥१॥
बन हेरचो बृंदाबन हेरचो बरसानो नंदगाम ।
कुंज कुंज मथुरा की हेरी तोये न पायो श्याम ॥२॥
लाल लपटे पीले फाँटे छोगा लाळो छेल ।
अलबेल्यो अणखीलो सखी री लागो मेरी गैल ॥३॥
प्रीत करो हरि मंदिर पधारो नित उठ नवला नेह ।
मीराँ ने श्री ठाकुर मिलिया दूधाँ बूठा मेह ॥४॥

प्रेमालाप　　　　　　　　१३४ (गुज०)

नंदलाल नहि रे आवुं मज घेर काम छे,
　　　　तुलसी नी माळा मां श्याम छे ॥०॥ वा'ला
वृंदा ते वन ने मारग जातां,
　　　　राधा गोरी ये कान श्याम छे ॥१॥ वा'ला
वृंदा ते वनमां रास रच्यो छे,
　　　　सहस्र गोपी ने एक कहान छे ॥२॥
वृंदा ते वन ने मारग जातां,
　　　　दाण आप्यानी घणी हाम छे ॥३॥

वृन्दा ते वन नी कुंज गली मां,
घेर घेर गोपीओनां ठाम छे ॥४॥
आणी तीरे गंगा वा'ला पेली तीरे जमुना,
वचमां गोकळियुं गाम छे ॥५॥
गामनां वलोणां मारे महीनां वलोणां,
महीडां घूम्यानी घणी हाम छे ॥६॥
बाई मीरां के प्रभु गिरधर ना गुण,
चरणन में सुख श्याम छे ॥७॥

राधा-भाव (मुरली-विनोद) १३५

राधा प्यारी दे डारोजी, बंसी हमारी ॥०॥
ये बंसी में मेरा प्रान बसत है, वो बंसी लेई गई चोरी ॥१॥
ना सोने की बंसी ना रूपे की, हरे हरे बांस की पेरी ॥२॥
घटी एक मुख में घटी एक कर में, घटी एक अधर धरी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमळ पर वारी ॥४॥

उद्धव-लीला १३६ (गुज०)

काळानां कठण हैडां रे ओधवजी,
एवां काळानां कठण हैडां रे ॥०॥
टीटुडीनां ईंडां उगार्यां, मंजारीनां राख्यां छईयां रे ॥
ओधवजी० ॥१॥
ग्रेह थी गजराज उगार्यो, गोकुळ मां चारी गईयां रे ॥२॥
गोकुळ सघळुं रेलतुं राख्युं, गोवर्धन कर धरिया रे ॥३॥
मीराँ गावे गिरधर ना गुण, में तो तोरे लागु पैयां रे ॥४॥

गोपी-भाव १३७ (गुज०)

काम छे, काम छे, काम छे,
ओधा नहि रे आवुं मारे काम छे ॥ओधा०॥०॥

आणी तीरे गंगा ने पेली तीरे जमना,
वचमां गोकुळियु ंगाम छे रे ।।१।।
सोनु ं रूपु ं मारे काम न आवे,
तुलसी तिलक पर ध्यान छे रे ।।२।।
आगली परमाळे मारो ससरोजी पोढे,
पाछली परसाळे सुन्दरश्याम छे रे ।।३।।
मीरांबाई के प्रभु गिरधर ना गुण,
चरण कमळ मां मारो विश्राम छे रे ।।४।।

प्रेमालाप १३८

थाँरी बोली लागे म्हाँने मीठी हो म्हारा साँवरिया ।।०।।
थें तो साँवरीया म्हारे सिर का जी सेवरा,
में थाँरे हाथ की अंगुठी हो म्हारा साँवरिया ।।१।।
कुंजगली मन मोहन मिलिया,
कैसे फिरूँगी म्हैं तो पूठी हो म्हारा साँवरिया।।२।।
सास बुरी मेरी नणँद हठीली,
जल बल होय जाय अंगीठी हो म्हारा साँवरिया ।।३।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
भेजी मरम की चीठी हो म्हारा साँवरिया ।।४।।

विरह १३९

प्रीत निभाना रे काना प्रीत निभाना,
एजी म्हाँने बिसर नहि जाना ।।०।।
जबसे थारे म्हारे प्रीत लगी है नित बरसाने आना ।
दूर परे को पास जाण के अध बीच नहिं छिटकाना ।।१।।

जो तू मेरो नाम न जाणे, मेरो नाम दिवाना।
सूरज सामी पोल हमारी, माणक चौक निशाना ॥२॥
जबसे टेर सुनी बंशी की, भूल गई अन खाना।
के तो म्हाँने द्रसन्न दीजो, नीतर तजूँगी प्राना ॥३॥
थूं तो कनैया जनम को कपटी, हमसे कपट बिहाना।
मीराँ गिरधर लगन लगी है, ब्रज तज अनत न जाना ॥४॥

दर्शनानन्द १४०

तोड़ी नहीं टूटे रे मोहन की प्रीतडली ॥ यादव की प्रीतडली॥०॥
जळ जमुना कों गई जल भरने सिर पर गागरली।
सामा मलगा माधवजी म्हाने आवंला लाजडली ॥१॥
यामा सामा ओवरा रे, लागी आँखडली।
मैं दरसन कैसे पाऊँ साँवरा, आड़ी भीतडली ॥२॥
बृन्दावन की कुंज गलिन में, बाजी बाँसडली।
बाँसडली पर लागा पैखा, आदु रीतडली ॥३॥
मोहन आया पावणा मैं, रांधुं खीचडली।
बाई मीराँ ने गिरधर मिलिया, मेटो अनीतडली ॥४॥

गोपी-भाव १४१

कान्हा भूल न जाना, म्हारा दूजा न ठिकाना ॥०॥
म्हारी थारी लगन लगी है, नित प्रति आना जाना।
दूर ठौर को वास जान के, अध भर नहिं रह जाना ॥१॥
म्हारे आंगन तुलसी को बिरवा, वाके हरे हरे पाना।
सूरज समुहीं पौरि हमारी, चन्दन पेड़ निसाना ॥२॥
मन आवे सोई कहे जगत सब, तनक नहीं सरमाना।
घट घट वासी अन्तरयामी, प्रेम का पंथ पिछाना ॥३॥

जो थें म्हारो गाँव न जानो, म्हारो घर बरसाना।
मीराँ की प्रभु लगन लगी है, लगे प्रेम के बाना ॥४॥

बाल-लीला १४२

कहन लगे मोहन मैया मैया ॥०॥
नंदराय से बाबा बाबा बलदाऊ से भैय्या ॥१॥
दूर खेलन मत जावो प्यारे ललना, मारेगी काहू की गैय्या ॥२॥
सिंहपोल चढ़ टेरत जसोदा, ले ले नाम कन्हैय्या ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जसोदाजी लेत बलैया ॥४॥

गोपी-भाव १४३

कुब्जा ने जादू डारा। जिन मोहे श्याम हमारा ॥०॥
झरमर झरमर मेवा बरसे, झुक आये बादल कारा ॥१॥
निर्मल जल जमुना को छोड्यो, जाय पिया जल खारा ॥२॥
शीतल छाया कदम की छोड़ी, धूप सहा अति भारा ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बिना भाल सूर मारा ॥४॥

अनुराग १४४

राधा तेरी महँदी रो माणक रंग ॥०॥
कनक कटोरे महँदी घोली, तामें अद्भुत रंग ॥१॥
राधा प्यारी महँदी मांडी, सब सखियन के संग ॥२॥
मीराँ के प्रभु महँदी निरखे, श्री वृन्दावन चन्द ॥३॥

प्रेमालाप १४५

भरमायो म्हारो मारूडो भरम रयो ॥०॥
अरज करूं मथुरा मत जावो, मानोजी म्हारो कयो।
हाव भाव से बस कर लीनो, बांध्यो छै जी नेहड़लो नयो ॥१॥

जुलम कियो सोकण कुब्जा ने, व्रज चन्द मोह लियो ।
चतुर नार के नैन भाल से, बांध्यो छै जी राज रो हियो ॥२॥
सोलह सहस्र गोपिका तज कर, कुब्जा री लार भयो ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मिलि बिछुड़न क्यों कियो ॥३॥

गोपी भाव १४६

पायो म्हारो इडोंणी रो चोर । श्याम बिना नहीं और ।
सुणज्यो व्रज के बासी लोग ॥०॥
तूं मत जाणे ईंडी घास फूस की, (जी) ईंडी म्हारी मथुरा को मोल ॥१॥
एवड़ छेवड़ हीरा मोती जड़िया, (जी) बिच बिच लाल करोड़ ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, ईंडी लाये नागर नंदकिशोर ॥३॥

दधि-दान १४७

अच्छा लेहु ब्रजबासी कन्हैया अच्छा लेहु रे ॥०॥
बरसाने से चली रे गुजरिया आगे मिले महाराज रे ।
कोरी कोरी मटुकी में दही रे जमाया चाख लेहु महाराज रे ॥१॥
दधि मेरो खायो मटुकिया रे फोरी इंडुरी कहाँ डारी लाल रे ।
हार शृङ्गार सभी मेरो तोरयो दुलरी कहाँ डारी लाल रे ॥२॥
जाय पुकारूँगी कंस के आगे न्याव करो महाराज रे ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल बलिहार रे ॥३॥

दधि-बेचन १४८

बात क्या कहूं नागर नट की । नागर नट की ॥०॥
हूं दधि बेचन जात ब्रिंदावन छिन लिये मोरी दधि की मटकी ॥१॥
मोर मुकुट पीताम्बर शोभे अति शोभा उस कौस्तुभ मन की ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर प्रीत लगी उस मुरलीधर की ॥३॥

गोपी-भाव १४६

माई तेरो कान्हा कोन गुन कारो ।
जब ही देखूं तब ही द्वारिहि ठाढ़े ॥०॥
गोरो बाबा नंद गोरी जसु मैया गोरो बलिभद्र बंधु तिहारो ॥१॥
कारो कारो मत कर ग्वालिन ये कारो सब बृज को उद्धारो ॥२॥
जमुना के नीर तीर धेनु चरावें मधुरी बंशी बजावन वारो ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर चरण कमल मोहे लागत प्यारो ॥४॥

उद्धव-लीला) संतोष १५० (गुज०)

राम राखे तेम रहीये । ओधवजी । राम राखे तेम रहिये ।
आपणे चिठ्ठी ना चाकर छैये ॥०॥
कोई दिन पेरिये हीरना चीर तो । कोई दिन सादा फरिये ॥१॥
कोई दिन भोजन शिरोने पुरी । तो कोई दिन भूख्या रहिये ॥२॥
कोई दिन रे'वा ने बाग बगीचा । तो कोई दिन जंगल रहिये ॥३॥
कोई दिन सुवाने गादी ने तकिया । तो कोय दिन भोंय पर सुइये ।४।
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण । तो सुख दुःख सर्वे सहिये ॥५॥

गोपी-भाव १५१ (गुज०)

साँभळो जी मारी वात बाई तमे साँभळो ने मारी वात ॥०॥
राधा सरखी सुन्दर घर मां । कुबजा ने घर जात ॥१॥
नव लख धेनु घरमां छतांये । घर घर गोरस खात ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर । चरण कमल पर हांत ॥३॥

गोपी-प्रार्थना १५२

मदन गोपाल नंदजी को लाल प्रभुजी
मदन गोपाल नंदजी को लाल ॥०॥
बालापन की प्रीत दिखायो । नवनीत चुरायो नंदलाल ॥१॥

कुब्जा हीन की तुम पत राखी । हम ब्रजनारी भये बेहाल ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर । हम जपे यही जप माल ॥३॥

प्रेमालाप　　　　१५३ (गुज०)

सांवरो रंग भीनो रे । सांवरो रंगभीनो रे ।
　　　　चाँदनी माँ उभो बिहारी महाराज ॥०॥
कत्थो चूनो लविंग सुपारी । पान में कछु कीनो रे ॥१॥
हमारो सुख अति दुःख लागे । कुबजा कूं सुख दीनो रे ॥२॥
मेरे आँगन रूख कदम को । त्यांतल ऊभो चीनो रे ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर । नैनन में कछु लीनो रे ॥४॥

चीर-हरन　　　　१५४

हमारो चीर दे बनवारी ॥०॥
लेकर चीर कदम पर बैठे हम जल मांसि उघारी ॥१॥
तुमारो चीर तो तब देऊँगो हो जाओ जल से न्यारी ॥२॥
ऐसी गति प्रभुजी क्यों करनी तुम पुरूष हम नारी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर तुम जीते हम हारी ॥४॥

दर्शनानन्द-आतुरता　　　　१५५ (गुज०)

हांरे नंदकुंवर तारूँ नाम सांभळीने आश भर्या हमे आव्यां ।
गाय दोहतां दोहणी रे भूल्यां, वाछरडां धवडाव्यां ॥१॥
पीपले पीपले पाणी भरतां, ठीकरी मां घी ताव्यां ।
नंदकुमारे जई ने वीणा वजाडी, शा अर्थे बोलाव्यां ॥२॥
माय बाप नी लज्या महेली, सहीयेरे समजाव्यां ।
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमळ चित लाव्यां ॥३॥

गोपी-भाव　　　　१५६

जमुना के इरे तीरे रास रचादूँ
　　देखण के मिस आवोजी कन्हैया (साँवरिया) ॥०॥

अब बंशीवाला थाँसूँ कदिय न बोलूँ
सोवण नींद जगाई जी कन्हैया, बालक नींद जगाई जी साँवरिया ।१
जमुना रे ओरे धोरे होद खणादूँ, न्हावण के मस आवोजी कन्हैया।२
जमुना रे इरां तीरां बाग लगादूँ, फुलडा के मिस आवोजी कन्हैया।३
जमना रे इरां तीरां रसोई बणादूँ, जीमण के मसआवोजी कन्हैया।४
जमनां के इरां तीरां ढ़ोल्यो बिछादूँ, पोंढणके मस आवोजी कन्हैया५
मीरां बाई कहे हरिगिरधर नागर, हरिचरणा गुणगाऊँजी कन्हैया।६

गोपीभाव १५७

छींकतड़ा पाणी निसरीजी डाँवे बोल्यो काग ।
कन तो गागर फूटसी कन मिले नंदलाल ।
जमुना गई थी जी महाराज लाई फूलण (चंदण) को हार ॥०॥
क्यारे क्यारे गूजरीजी धोरे धोरे कान ।
छुटा लटा की गूजरी जी सोवन पटा का कान ॥१॥
चढ़ कदम कलकी करी जी सब ग्वाल्या लिया बुलाय ।
भर भर दोवन्या पी गया रहितो महीड़ो ढुलाय ॥२॥
वृषभान की डीकरीजी मोहन घर की नार ।
मीराँ तो दासी आपकी जी सुणजो सरजनहार ॥३॥

प्रेमालाप १५८

कनैया प्यारे आवज्यो छाने छाने ॥
रस्तो छोड गली से आज्यो सभी पिछाणे थाने ।
मैं समझाऊँ तोय साँवरा बात करूँली छाने ॥१॥
काली कमली ओढ कर आज्यो कोई न पिछाणे थाने ।
पाडोसन के आय बैठज्यो वा कह देसी माने ॥२॥
दाऊदयाल को खबर पड़े ना मैया देगी ताने ।

ब्रह्मादिक दर्शन को तरसे दर्शन देजा मानें ॥३॥
ब्रह्म ज्ञान उद्धव को दीनो सारी सृष्टी जाने ।
प्रेम प्रीति को टेढ़ो रस्तो विरला हरिजन जाने ॥४॥
प्रीति करो तो, ऐसी करज्यो कोई न पडे प्रभु काने ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर दासी रखज्यो म्हाने ॥५॥

दानलीला १५६

मोहन डाणी बृजनंद डाणी मोहे घर जाने दो ॥०॥
विंद्रावन की सकल कुंजन में में तो तेरी चाल पिछाणी ॥१॥
सिर पर घडो घडा पर गगरी गगरी की कोर निशानी ॥२॥
मीरां बाई के हरि गिरधर नागर चरणा में शीश नवाँनी ॥३॥

राधाभाव १६०

मंदरिया में दीपक जोय श्री राधेरानी मंदिरिया ॥०॥
छुप गये सूरज सांझ भई है मन्मुख मंगल होय ॥१॥
ग्रह नक्षत्र सब प्रकट दीखे मंदिर अंधेरा होय ॥२॥
मीरां बाई के हरि गिरधर नागर तुम हम ओर न कोय ॥३॥

जल-भरन लीला १६१

सांवरा की गाली जल किस विधि भरूँ री आली ॥०॥
भरन गई जल पाणयूँ मेरी लेर लग्या गिरधारी ॥१॥
अब के जल भर ल्याऊँ मैं परत न पाछी जाऊँ ॥२॥
साँवरीयोजी मोकूँ तारे ए बिना भाल के मारे ॥३॥
डस गयो कपटी कारो क्या क्या सुगन विचारूँ ॥४॥
साँवरीयोजी मुखड़े न बोले बाँका हिरदा की गांठ न खोले ॥५॥
साँवरीयोजी बंशी बजावे म्हाँने सैना में समझावे ॥६॥
दासी मीरां बाई गावे ज्याँका घर अमरापुर पावे ॥७॥

माखन-चोरी १६२

मारग रोक्यो सांवरा खडो काऊ छैल ॥०॥

आश्यो अनीतो जाणती जी मोहना ।

सखियाँ ने लाती मोरी गैल ॥१॥

मटकी फोडी मेरो महिडो ढुलायो ।

चुंदड म्हारी कीधी रेला पेल ॥२॥

छोड द्यो पलो घर जाणे दो मोहना ।

काहे को लगाया झूंठा फेल ॥३॥

मीरां बाई के हरि गिरधर नागर ।

हरि चरणा में चित मेल ॥४॥

राधा-विनोद १६३

बंशी की चोर हमारी, तुम लेगई राधा, मुरली की चोर हमारी ॥०॥

में जल जमना पाठ करंता तुम जल भरने आई ।

मैंने जल में चमकी मारी तें मेरी बंशी चुराई ॥१॥

लाल जरी का लेहँगा सोहे, सिर चपला की साडी ।

साडी ऊपर थरमा लाग्या, गल बिच हार हजारी ॥२॥

पाँवन में तेरे अणवट बिछियाँ, घूंघर की छब न्यारी ।

सर पर तेरे बिंदली सोहे, नाकन में नथ भारी ॥३॥

अध गोकुल अध मथुरा नगरी, अध बीच जमुना लहरी ।

मीराँ के हरि गिरधर नागर, आप जीत्या में हारी ॥४॥

राधा-भाव (बंशी चोरी) १६४

श्याम की बंशी बन पाई ॥०॥

उठो री जसोदा मैया खोलो किंवाड़ी ।

तेरा काना की बंशी देने कू आई ॥१॥

बहोत दिन की में सूँ ओलंडी,
सोवण द्यो बृखभाण दुलारी ॥२॥
बंशी की गेल मेरी गई मुँदडीया,
ओई दोजी बृखभाण दुलारी ॥३॥
में जाणुंगी मेरो मान वधेगो,
उलटी शाम मोकूँ चोरी लगाई ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
आ ल्योने श्याम तुम्हारी ॥५॥

विनय १६५

मथुरा जोवो तो थांने नंद की दुहाई रा (राज) ॥०॥
मथुरा की नारी उधा कमणगारी रा ।
अब थाँने राखेली बिरमाई रा ॥१॥
मनोजी मनोजी म्हारा नैणां रा मोहना
में तो तेरा चरणाँ लोंभाई रा ॥२॥
मटकी जो फोडी मेरो महीडो ढुलायो रा ।
अबला ये नार जो सताई रा ॥३॥
पैठ पिहालाँ काळो नाग ज नाथ्यो ।
फण फण निरत करायो रा ॥४॥
बैठ कदम पर बंशी बजाई रा ।
बन बन धेनु जो चराई रा ॥५॥
मीरां बाई के जी हरि गिरधर नागर ।
में तो तेरा शरणा में आई रा ॥६॥

गोपी-भाव १६६

म्हारे पीछे कुण रे कदम की शाख हिलावे ॥०॥
आधी आधी रेन नगर सारो सूतो, मोको आन जगावे ।
नन्दसुत होवे तो क्यों नहीं आवे, क्यूं जीया ललचावे ॥१॥
फुलन की माला फुलन का गजरा, फूलन की सेज बिछावे ।
मीराँ कहे प्रभु आज्यो म्हारे, मैं दासी हरि पावे ॥२॥

कुब्जा-भाव १६७ (गुज०)

छेने धुतारी रे पेलीं छेने धुतारी रे,
मथुरा में कुब्जा, छेने धुतारी ॥०॥
मथुरा मां जाऊ तो आडी फरे छे वाला,
वीठ राखो हेने वारी रे ॥१॥
ऊचा ऊचा मोहोल, बाहाला हेना देशे छे,
बेठी जरूखे एतो वारी रे ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर वाला,
हरीना चरण कमल पर वारी रे ॥३॥

राधा-भाव १६८

थारा चरण कमल की दासी नजर भर न्हाळो लालजी ॥०॥
चार मास ऊन्हालो निकल्यो चार मास बरसालो ।
अठे टालो देगयाजी आयो रतन सियालो ॥१॥
इत गोकुल इत मथुरा नगरी अध बिच जमुना रो नालो ।
विण नाले राधाजी भूले नित आवे नखरालो ॥२॥
थें छो सबला म्हे छाँ निबला नहीं मिलन को सारो ।
किरपा कर प्रभु मंदिर पधारो जब जाणूं पतियारो ॥३॥
आप बिना म्हारे हिवड़े अंधारो आप करो उजियालो ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर बिना अगन मति जालो ॥४॥

हूँ जल भरने जात थी सजनो [पृ० ४७०, पद ५

राधा-भाव   १६९

लाला लेता जैयो रे बीडी पान की ॥०॥
कत्था चूना लौंग सुपारी, बीडी बनी अनुमान की ॥१॥
हम सब मिलके चोसर खेलें, बाजी लगावैं गुर ज्ञान की ॥२॥
तुम ढोटा हो नन्द बाबा के, हम कुंवरी ब्रखभान की ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जोडी बनी राधा श्याम की ॥४॥

नटखटपन   १७०

लाल मोहे गारियां ना देना मन चाहे सोई लेना ॥०॥
मैं दध बेचन चलूँ बिन्द्राबन, लूट लूट दध लेना ॥१॥
जो तुम हमसे प्रीत करी है, गारी काहे फिर देना ॥२॥
अगर सुनै मेरी बगर सुनत है, लोग हँसे तन छीजै ॥३॥
जमुना के नीरे तीरे धेनु चराकर, बंसी बजा कर मन हर लेना ॥४॥
उत गोकुल इत मथुरा नगरी, अध बिच झगड़ा न करना ॥५॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मोहे अपना कर लेना ॥६॥

जल-भरन   १७१

बाँके साँवरिया ने घेरी मोहें आनके ॥०॥
हौं जो गई जमुना जल भरने । मारग रोक्यो आन के ॥१॥
बृन्दावन की कुंज गलिन में । मुरली बजावे तान के ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । प्रीति पुरातन जानके ॥३॥

राधा-भाव   १७२

तुम पीवो म्हारा दीनबन्धु दूध पतासा,
तुम पीवो म्हारा सांवर स्वामी ॥०॥
दूध तो ठंडो करे आपरी माता, श्री राधेरानी घोले पतासा ॥१॥
काली झूमर गाय प्रभु आपकी माता,
कंचन केरा वाटका में बूर मिलाता ॥२॥

जमुना रे किनारे धेनु चराता,
बैठ कदम की छांय रूडी बंशी बजाता ॥३॥
मीराँ के प्रभु शरण तुम्हारे आता,
आप मोटा राजवी ने सभी जुगन्ता ॥४॥

बाल-लीला १७३

मोहि बडो करले मोरी मैया, मोहि बडो करले मोरी० ॥०॥
मधु मेवा पकवान मिठाई, जब मांगू जब दे री ॥१॥
सब लडकन में बडो कहावुं, तेरो पुत्र बडे री ॥२॥
बडो होवुँगो टहल करूंगो, मारूंगा सब वैरी ॥३॥
मार मल्ल अखाडे जीतूं, कंस को मारूं वैरी ॥४॥
मीरां बाई के प्रभु गिरधर नागर, मथुरा राज करो री ॥५॥

राधा-भाव १७४

पोढण समय भयो री, श्री राधे रानी, पोढण समय भयो री ॥०॥
इत दूर गये द्रुमन की छैयाँ, इत दूर चन्द्र गयो री ॥१॥
झमक चढ़े सुरंग पलंग पर, नयो रंग बढ़े री ।
एरी एरी नयो रंग बढ़ेरी ॥२॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, यो सुख दृगन लयो री ॥३॥

बाल-लीला १७५

अब म्हाने सोवण दो म्हारी मांय ॥०॥
कनक कटोरे लाल अमृत भरयो, पीय न पोढो मारा लाल ॥१॥
अभी तो माता म्हाने कछु नहीं भावे,
अब म्हाने पोढण दो म्हारी मांय ॥२॥
ऊठ सवेरे माता करां रे कलेवो, पिछे चरावुं थांरी गाय ॥३॥
नो लख धेनु बाबा नन्द के चरैये, डोलत दुखे म्हारा पांव ॥४॥

उठ जसोदा मैया हिवड़े लगाया, प्रभाते बुलावुं दूजो गुवाल ॥५॥
राधा सेज बिछैयो लाल, जायने पोढ़ो मेरा लाल ॥६॥
सेजडल्यां तो म्हाने नींद नहीं आवे,
गोद म्हाने लो ने म्हारी मांय ॥७॥
मीरां बाई के प्रभु गिरधर नागर,
सुख भर पोढ़ो जादुराय ॥८॥

गोपी-भाव　　१७६

सांवरोजी सेज पधारो महाराज पल म्हा सू ॥०॥
झगमग जोत जडाऊ गहेणो,
मोतियन मांग भरी छु महाराज ॥१॥
कठे पोढत थांरी सासु नणंद, कठे सेज तुम्हारी महाराज ॥२॥
महेलां पोढ़त म्हारी सासु नणंद, बंगले सेज हमारी महाराज ॥३॥
एक डर तो थांरी सासु नणंद को,
सोक सुहागण जागे महाराज ॥४॥
रूमझुम रूमझुम पग में नेवर,
बाजे छे छिम छिम महाराज ॥५॥
झाँझर खोल खोळा में धर लीजो,
मुकुट दुशाला सु ढांको महाराज ॥६॥
सब सखियन सों हँस हँस बोलो,
म्हैं कई नार बुरी छुं जी महाराज ॥७॥
सब सखिगन तो मोतियन की माला,
थें तो म्हारे हीर कणी जी महाराज ॥८॥
मीरां बाई के प्रभु गिरधर नागर,
हरख निरख गुण गावुं महाराज ॥९॥

राधा-भाव १७७

पांवां रा खुरताळा बाजे कूण छे माझल रात जी ॥०॥
मैं जगजीवन कैये राधे खोलोनी किंवार जी ॥१॥
जगजीवन मैं इन्द्र ने जानूं जग में सारी जोत जी ॥२॥
मैं वनमाली कैये राधे खोलोनी किंवार जी ॥३॥
मैं वनमाली माली ने जानूं फूल लावे प्रभात जी ॥४॥
मैं मुरलीधर कहिये राधे खोलोनी किंवार जी ॥५॥
मैं मुरलीधर मोरचो ने जानूं बोले मोर प्रभात जी ॥६॥
मैं बादीगर कहिये राधे खोलोनी किंवार जी ॥७॥
मैं बादीगर बादी ने जानूं नाग पिटारो लावे प्रभात जी ॥८॥
मीरां बाई के प्रभु गिरधर नागर, झगड्या सारी रात जी ॥९॥

उद्धव-लीला १७८

ऊधो कैसे विसरूं रे, गिरधारी गोपाललाल ने पल पल सुमरूं रे।
मैं बरजुं म्हारो कह्यो न माने आँगन बैरी रे ॥०॥
माय खिजावे बृज उबारे वे दिन दुर्लभ रे।
इन्द्र कोप करचो बृज ऊपर नख पर गिरिवर धारचो रे ॥१॥
कृष्ण कठोर गोपियां त्यागी जबहि न जान्यो रे।
दया छोड मथुराजी ओ चाल्या जब का बैरी रे ॥२॥
वृन्दावन में रास रच्यो है गोपियां सारी रे।
एक कृष्ण एक गोपियो नाचे रास बनायो रे ॥३॥
एक समय हरि चालो बृज में केवुं सब मन की रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल लिपटानी रे ॥४॥

उद्धव-लीला १७६

कहो ने उधव गुण मित्र ना रे किस विध कइयो जाय ।
उधव थांरा मित्र ने किस विध लेवुं समझाय ॥०॥
परवस पड गया सांवरा रे ब्रजवनिता अकुलाय ॥१॥
सुँवाळा सुघड गुंण श्याम ना रे, लियो रे अन्तर पट मोय ॥२॥
कुबजा दासी रे कारणे रे तज दीन्हो गोकुल गाम ॥३॥
कुबजा ने पटरानी कीन्ही रे हमको तो दीन्हो रे वैराग ॥४॥
कुबजा तो दासी कंस की रे आप रह्या चित छाय ॥५॥
गोपीनाथ केवाय के रे कुबजा कृष्ण कहवाय ॥६॥
मीरां बाई की या विनती रे लीनी छे कंठ लगाय ॥७॥

जल-भरन १८०

हो घनश्याम गागर भरवा दो गोकुल में म्हारो घर छे ॥०॥
गागर भरदो सिर पर धर दो चार कदम म्हारो घर छे ॥१॥
थें मत जाणो काना आई अकेली सात सहेलियां म्हारे संग छे॥२॥
थें मत जाणो काना अकन कुंवारी श्री कृष्ण म्हारो वर छे ॥३॥
गेरी गेरी नदियां नाव पुराणी मांहे मगर मच्छ को डर छे ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर शरण पडे की लाज छे ॥५॥

गोपी-व्यंग १८१

कांईं मिस आया छो जी राज अठे, कांईं मिस आया छो जी
राज ॥०॥
आया छो तो उभाई रीज्यो, अब कांईं जावो छो कठे ॥१॥
इत गोकुल उत मथुरा नगरी, मथुरा में कईं लडुवा बठे ॥२॥
राधा जो रूखमण ओर सतभामा, कुबजा रो मन्दिर कठे ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित लागो
जठे ॥४॥

गोपी-उलहाना १८२

राज जाणयां निरमोही, थांरा सरीखा थे ही राज जाणयां निरमोही ॥०॥
गोकुल छांड बृन्दाबन छांडी, द्वारिका में जाय छाई ॥१॥
राधा जो रूखमण और सतभामा, कंस की दासी जाइ जोई ॥२॥
मोर मुकुट सिर छत्र बिराजे, गल बैजयंती माल सोई ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, घणा गाढ़ा रंग देऊँ तोई ॥४॥

गोपी-प्रेम १८३ (गुज०)

आवो आवो जसोदा रा लाल, माखन खावा ने ॥०॥
कनक कटोरे अमृत भरियो, मिश्री भरियो थाल
ऊभी रहीने जोवुं वाटडी, क्यारे पधारे नन्दलाल॥ माखन० ॥१॥
ऊँचा मंदिरियां म्हारा श्री जी ना, नीचे अटारी म्हारी रे
थांरे मन्दरिये मूं नथी आवुं, थूं छे न्यारो धूतारो रे ॥ माखन०।२।
अब तो प्रभु मोको नाय मिलो तो प्राण तजूं निरधार ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल बलिहार ॥माखन ॥३॥

जल-भरन १८४

नटनागर नंदकिशोर गागर ढोर दई॥०॥
हा हा खात मेरी एक न मानी, पैयां परत कर जोर ॥१॥ गागर०
ऐसी मसखरी करो लालजी, चलो सांखरी खोर ॥२॥
बृन्दाबन की कुंज गलियन में, मच रह्यो शोर ॥३॥
मीराँ की या बिनती सुणजो, नागर नन्दकिशोर ॥४॥

जल-भरन १८५

मारग मेरो छोड दियो गिरधारी ॥०॥
संग की सहेजी मेरी दूर गई है, मेरे सिर गागर भारी ॥१॥

साखु झूंठी मेरी नणँद हठीली खिज खिज दे मोकों गारी ॥२॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे कुण्डल की छबि न्यारी ॥३॥
बिन्द्रावन में रास रच्यो है सहस्र गोपी गिरधारी ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल बलिहारी ॥५॥

विरह १८६

श्याम बिन पलक न लागत मोरी ॥०॥
हरि बिन मथुरा सूनी लगत है चन्द्र बिन रैन अंधेरी ॥१॥
पात पात वृन्दावन ढूंढा ढूंढा सब जग हेरी ॥२॥
अपने पिया की मैं जोगन बनूंगी घर घर दूंगी फेरी ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल की चेरी ॥४॥

जल-भरन (प्रेमालाप) १८७ (गुज०)

नहीं रे विसारूं हरि, अन्तर मांथी नहि रे ॥०॥
जल जमुना नां पाणी रे जातां, शिर पर मटकी धरी ॥१॥
आवतां ने जातां मारग बच्चे, अमुलख वस्तु जडी ॥२॥
आवतां ने जातां वृन्दा रे वन मां, चरण तमारे पडी ॥३॥
पीलां पीताम्बर जरकशी जामा, केशर आड करी ॥४॥
मोर मुगट काने रे कुण्डल, मुख पर मोरली धरी ॥५॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, विट्ठल वर ने वरी ॥६॥

जल-भरन १८८ (गुज०)

नहीं रे विसारूं हरी अंतर मांथी नहीं रे विसारूं हरी ॥०॥
शामळी सुरत ना शामळिया रे जोता मां नजर ठरी ॥१॥
इत गोकुल उत मथुरां रे नगरी ते बीच जमुना भरी ॥२॥
वृन्दावन की कुंज गली में गो धेन चारे फरी ॥३॥
जळ जमुना मां नीर भरवा गयां तां वाला शिर पर गागर धरी ॥४॥

हाथी ने घोडा माल खजाना तारी संगे न आवे जरी ॥५॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, वर तो विठ्ठल ने वरी ॥६॥

उद्धव-लीला १८९

अपणे करम को वो छै दोस, काकूँ दीजै रे ऊधो अपणे० ॥०॥
सुणियो मेरी बगड़ पड़ोसण, गेले चलत लागी चोट ॥१॥
पहली ग्यान मान नहिं कीन्हौ, मैं ममता की बाँधी पोट ॥२॥
मैं जाण्यूँ हरि नाहिं तजेंगे, करम लिख्यो भलि पोच ॥३॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, परो निवारो नी सोच ॥४॥

चीर-हरन १९०

आज अनारी ले गयो सारी, बैठी कदम की डारी, हे माय ॥०॥
म्हारे गेल पड्यो गिरधारी, हे माय ।
मैं जल जमुना भरन गई थी, आगयो कृष्ण मुरारी, हे माय ॥१॥
ले गयो सारी अनारी म्हारी, जल में ऊभी उघारी हे माय ।
सखी साइनि मोरी हँसत है, हँसि हँसि दे मोहि तारी, हे माय ॥२॥
सास बुरी अरू नणँद हठीली, लरि लरि दे मोहि गारी, हे माय ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल की वारी, हे माय ॥३॥

कुब्जा-व्यंग १९१

एरी मा खड़ी निहारूं बांट ।
चितवन चोट कलेजे कर गई सुन्दर श्याम सुघाट ॥०॥
मथुरा में कुबजा कर राखी महाजन जैसी हाट ।
केसर चन्दन लेपन कीना सुन्दर श्याम लिलाट ॥१॥
हमरा पलंग जड़ाऊं छोड़्या बढ़िया रेशम पाट ।
किस पर राजी भयो रे सांवरा चेरी के नहिं खाट ॥२॥
अजहुं न आयो कुंवर नन्द को किससे लागी चाट ।
छोड़ गयो मझधार सांवरो बिना अकल को जाट ॥३॥

श्याम बिना व्याकुल वृजबनिता दिल में भई निराश ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर करियो आनंद ठाट ॥४॥

राधा-भाव　　　　　　१६२

आवत मोरी गलिअन में गिरधारी, मैं तो छुप गई लाज की मारी॥०॥
कसुमल पाग केसरिया जामा, ऊपर फूल हजारी ।
मुकट ऊपर छत्र बिराजे, कुंडल की छबि न्यारी ॥१॥
केसरी चीर दरयाई को लेंगो, ऊपर अँगिया भारी ।
आवत देखी किसन मुरारी, छुप गई राधा प्यारी ॥२॥
मोर मुकट मनोहर सोहै, नथनी की छबि न्यारी ।
गल मोतिन की माल बिराजे, चरण कमल बलिहारी ॥३॥
ऊभी राधा प्यारी अरज करत है, सुणजे किसन मुरारी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल पर वारी ॥४॥

कालीय-दमन　　　　　　१६३

कमल दल लोचना, तैंने कैसे नाथ्यो भुजंग ॥०॥
पैसि पियाल काली नाग नाथ्यो, फण फण निर्त करंत ॥१॥
कूद परयो न डरयो जल माहीं, और काहू नहिं संक ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, श्री वृन्दाबनचंद ॥३॥

गोपी-भाव　　　　　　१६४

मोरी अंगन मों मुरली बजाव रे । खिलावना देऊँगी ॥०॥
नाच नाच मोरे मन मोहन । मधुर गीत सुनावूंगी ॥१॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर । हरि के चरण बल जाऊँगी ॥२॥

उद्धव-लीला　　　　　　१६५

कुण बाँचै पाती, बिना प्रभु कुण बाँचै पाती ॥०॥
कागद ले ऊधोजी आये, कहाँ रहे साथी ।
आवत जावत पाँव घिस्या रे (बाला) अँखियाँ भई राती ॥१॥

कागद ले राधा बाँचण बैठी, भर आई छाती ।
नैन नीरज में अंब बहै रे (बाला), गंगा बहि जाती ॥२॥
पाना ज्यूँ पीली पड़ी रे (बाला), अन्न नहीं खाती ।
हरि बिन जिवड़ो यूँ जलै रे (बाला), ज्यूँ दीपक सँग बाती ॥३॥
साँचा कुछ चकोर चंदा झोलै बहि जाती ।
ब्रजनारी की बीनती रे (बाला), राम मिले मिल जाती ॥४॥
मनै भरोसौ राम को रे (बाला), डूबत तारयो हाथी ।
दास मीराँ लाल गिरधर, साँकड़ा रौ साथी ॥५॥

दधि-बेचन १९६

कैसे आवौं हो लाल तेरी ब्रज नगरी गोकुल नगरी ॥०॥
इत मथुरा उत गोकुल नगरी, बीच बहै यमुना गहरी ।
पांव धरयां मेरी पायल भींजै, कूदि परौं बहि जाउँ सगरी ॥१॥
मैं दधि बेंचन जात वृन्दाबन मारग में मोहन झगरी ।
बरज यशोदा अपने लाल को छीन लई मेरी नथली ॥२॥
रहु रहु ग्वालिनि झूठ न बोलो, कान अकेलो तुम सगरी ।
मेरो कन्हैया पाँच बरस का, तुम ग्वालिन अलमस्त भई ॥३॥
जाय पुकारौं कंसराय से, न्याय नहीं गोकुल नगरी ।
वृन्दाबन की कुंज गलिन में, बांह पकर राधे झगरी ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, साधु संग करि हम सुधरी ॥५॥

दधि-बेचन १९७

कोई स्याम मनोहर ल्यो री, सिर धरैं मटकिया डोलै ॥०॥
दधि को नाँव बिसर गई ग्वालन, 'हरिल्यो,हरिल्यो' बोलै ॥१॥
कृष्ण रूप छकी है ग्वालनि, औरहि औरै बोलै ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चेरी भई बिन मोलै ॥३॥

गोपी-भाव १६८

गिरधर दुनिया दे छै बोल ॥०॥
गिरधर मेरा मैं गिरधर की, कहो तो बजाऊँ ढोल ॥१॥
आप तो जाय द्वारिका छाये, हमकूं लिखिया जोग ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, पिछले जनम का कौल ॥३॥

गोपी-व्यंग १६६

जावो कठे रे रामा रे'वो अठे सांवलिया ॥०॥
नित कांई जावो नित कांई आवो, नित का जायां से मान घटे॥१॥
गोकुल बसबो फीकोई लागे, मथुरा में कांई लाडू बँटे ॥२॥
गोकुल में कांई धेनु चरावो, मथुरा में कांई राज लटे ॥३॥
राधाई रूकमण और सतभामा, कुब्जा कांई थारें संग पटे ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, तुम सुमरां सूं संकट कटे ॥५॥

गोपी-भाव २००

बतादे सखि साँवरिया को डेरो किती दूर ॥०॥
इत मथुरा उत गोकुल नगरी, बीच बहे यमुना पूर ॥१॥
मथुराजी की मस्त गुवालिन, मुख पर बरसे नूर ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सांवरे से मिलना जरूर ॥३॥

दर्शन-उत्कंठा २०१ (पूर्वी)

मेरो मन बसिगो गिरधरलाल सों ॥०॥
मोर मुकुट पीताम्बर हो, गल बैजंती माल ।
गउवन के सँग डोलत, हो जसुमति को लाल ॥१॥
कालिंदी के तीर हो, कान्हा गउवाँ चराय ।
सीतल कदम की छाहियाँ, हो मुरली बजाय ॥२॥
जसुमति के दुवरवाँ (हो), ग्वालिन सब जाय ।
बरजहु आपन दुलरूवा, हमसों अरूझाय ॥३॥

बृन्दाबन क्रीड़ा करै, गोपिन के साथ ।
सुर नर मुनि सब मोहे हो, ठाकुर जदुनाथ ॥४॥
इन्द्र कोप घन बरखो, मूसल जलधार ।
बूड़त ब्रज को राखेऊ, मोरे प्रान अधार ॥५॥
मीराँ के प्रभु गिरधर हो, सुनिये चितलाय ।
तुम्हरे दरस की भूखी हो, मोहि कछु न सोहाय ॥६॥

दधि-बेचन २०२

या ब्रज में कछू देख्यो री टोना ॥०॥
ले मटुकी सिर चली गुजरिया, आगे मिले बाबा नँदजी के छोना ॥१॥
दधि को नाम बिसरि गयो प्यारी,
'ले लेहु री कोई स्याम सलोना' ॥२॥
बिन्द्राबन की कुंज गलिन में,
आँख लगाय गयो मन मोहना ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
सुन्दर स्याम सुघर रस लोना ॥४॥

गोपी-भाव (सेवा भावना) २०३

स्याम ! म्हाने चाकर राखोजी, गिरधारीलाल ! चाकर राखोजी ॥०॥
चाकर रहसूँ बाग लगासूँ, नित उठ दरसण पासूँ ।
बिन्द्राबन की कुंज गलिन में, गोविंद लीला गासूँ ॥१॥
चाकरी में दरसण पाऊँ, सुमिरण पाऊँ खरची ।
भाव भगति जागीरी पाऊँ, तीनूँ बाताँ सरसी ॥२॥

मोर मुगट पीतांबर सोहै, गल वैजंती माला ।
बिंद्राबन में धेनु चरावे, मोहन मुरली वाला ॥३॥
ऊँचे ऊँचे महल बनाऊँ, बिच बिच राखूँ बारी ।
साँवरिया के दरसण पाऊँ, पहर कुसुम्मी सारी ॥४॥
जोगी आया जोग करण कूँ, तप करणे सन्यासी ।
हरी भजन कूँ साधु आये, बिंद्राबन के बासी ॥५॥
मीराँ के प्रभु गहिर गँभीरा, हृदे रहो जी धीरा ।
आधी रात प्रभु दरसन देहैं, जमुनाजी के तीरा ॥६॥

उद्धव-लीला (विरह) २०४

श्याम को सन्देशो आयो पतियाँ लिखाय माय ॥०॥
पतियां अनूप आई, छतियाँ लीनी लगाय ।
अञ्चल की ओट दे दे, ऊधो पै लई बँचाय ॥१॥
बाल की जटा बनाऊँ, अङ्ग तो भभूत लाऊँ ।
फाड़ूं चीर पहरूं कंथा, जोगण बण जाऊँ माय ॥२॥
इन्द्र के नगारे बाजे, बादल की फौज छाई ।
तोपखाना पेसखाना, उतरा है बागाँ आय ॥३॥
गोकुल उजाड़ दीन्यो, मथुरा लई बसाय ।
कुबजा सूं बांध्यो हेत, मीराँ है गाई सुनाय ॥४॥

दर्शनानन्द २०५

हमरो प्रणाम बाँके बिहारी को ॥०॥
मोर मुगट माथे तिलक बिराजै, कुंडळ अलका कारी को ॥१॥
अधर मधुर पर बंसी बजावै, रीझ रिझावै राधा प्यारी को ॥२॥
यह छबि देख मगन भइ मीराँ, मोहन गिरवर धारी को ॥३॥

विरह २०६

हो गये स्याम दूइज के चंदा ॥०॥
मधुबन जाइ भये मधुबनिया, हम पर डारो प्रेम को फंदा ॥१॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, अब तो नेह परो कछु मंदा ॥२॥

बाल-लीला २०७ (पं०)

हो कानाँ किन गूँथी जुल्फाँ कारियाँ ॥०॥
सुघर कला प्रवीन हाथन सूँ, जसुमतिजू ने सँवारियाँ ॥१॥
जो तुम आओ मेरी बाखरियाँ, जरि राखूँ चन्दन किवारियाँ ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, इन जुलफन पर वारियाँ ॥३॥

राधा-भाव २०८ (गुज०)

राजना हग चित चोर छे रंगभीनी राधा ए किशोरी,
ए राधा राजना० ॥०॥
नेक तो नजरभर झाँको छो जी राज ओ प्रभुजी,
मैं तो थांरा काळ्जा नी कोर छे ॥१॥
कोटीने कुबाण खेंच मारो छो जी राज साँवरिया,
थे तो म्हारा जीवना आधार छो ॥२॥
याही वृन्दावन की कुंज गली में,
रंग भर रासडी रमावजो ॥३॥
मीराँ दासी गिरधरलाल को जी ओ राज,
चरण कमल चित चोर छे ॥४॥

गोपी-भाव २०९

नन्दकुँवर अलबेला श्याम तेरो मुखडो जोवण आई ओ ।
मुखडो जोवण आई लालजी, दर्शन थांरा पाई ओ ॥०॥

आधी रात को बंशी बजाई, मैं मंदिरिये सुन पाई ओ ।
भूल गई सब घर को धंधो, आछी लगन लगाई ओ ॥१॥
आप तो ठाडे सिंग पोल पर, में अपने घर से निकसी ओ।
काम काज सब भूल गई, आछी लगन लगाई ओ ॥२॥
मधु मेवा पकवान प्रभु तुमरे कारन लाई ओ ।
जल जमुना झारी भर लाई प्रभु आचमन करावे लाई ओ ॥३॥
मीरां बाई के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणां चित लाई ओ ॥४॥

राधा-भाव २१०

तुम नंदलाल सदा के कपटी ॥०॥
सबकी नैय्या पार उतर गई । हमारी नैया भँवर बिच अटकी ॥१॥
नैया भीतर करत मस्करी दे सैंय्या अरदन पर पटकी ॥२॥
बिंद्रावन की कुंज गलिन मों सिर की गागरिया जतन से
पटकी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, राधे तू या बन बन भटकी ॥४॥

गोपी-भाव (व्यङ्ग) २११

दिन दस दियो है उधारो कुबजा आखिर श्याम हमारो ॥०॥
तू है दासी कंसराय की, सारा बिगर बुवारो ॥१॥
हात कटोरी चंदन को मुठियो, घसतां गयो है जमारो ॥२॥
जंगला जाती लकडी भी लाती,
तो चुन चुन करती भारो ॥३॥
इत गोकुल उत मथुरा नगरी,
अध बिच महल हमारो ॥४॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
आण मिल्यो बंसीवारो ॥५॥

वियोग २१२ (गुज०)

क्यां गयो पेलो मोरली वाळो अमारा घुंघट खोली रे ।
क्यां गयो पेलो वांसली वाळो अमने रंग मां गोळी रे ॥०॥
हमणां वेणी गुंथी हती, पेहेरी कसुंबल चोळी रे ।
मात जसोदा शाख पुरे छे, केशर छांट्यां घोळी रे ॥१॥
जळ जुमना मां भरवा गयां तां, बेडु नांख्युं ढोळी रे ।
पातळीओ परपंचे भदीओ, अमे ते अबला भोळी रे ॥२॥
प्रेमतणी प्रेमदाने तर, गेबनी मारी गोळी रे ।
मीरां बाई कहे प्रभु गीरधर ना गुण, चरण कमळ चित चोरी रे ॥३॥

जसोदा-भाव २१३ (गुज०)

काले परणावशुं गोपी, कुंवर ने काले परणावशुं गोपी रे ।
लाज मरजादा सर्वे लोपी, कुंवर ने काले परणावशुं गोपी रे ॥०॥
कान कुंवर मारो घोडे चडशे, माथे मुगट आरोपी रे ॥१॥
राधका ज्यारे मंदीर पधारशे, मंदिर रहेसे ओपी रे ॥२॥
मीरां बाई कहे प्रभु गीरधर ना गुण, लीला वाघा ने पीळी टोपी रे ॥३॥

राधा-भाव २१४ (गुज०)

अजब सलुणी मरघा नेणी, तें मोहन वश कीधो जी ॥०॥
मकनो सो हस्ती ने लाल अंबाडी, अंकुश वश कीनो जी ॥१॥
लविंग सोपारी ने पान नां बीडा मां, कछु कीधुं जी ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गीरधर नागर, चरण कमळ चित लीधुं जी ॥३॥

गोपी-भाव २१५ (गुज०)

चालने सखी मारो श्याम देखाडुं, व्रन्दावन मां फरतो जी ॥०॥
नख शीख सुधी हीरा ने मोती, नीत्य नवा शणगार धरतोजी॥१॥

पांपण पाघ कलगी तोरे, शीर पर मुगट धरतो जी ॥२॥
धेनु चरावे ने बेणु बजावे, मन मारा ने हरतो जी ॥३॥
रूप ने संभारूं तारा गुण ने संभारूं,
जीव रणछोड मां भमतो जी ॥४॥
मीराँ कहे प्रभु गीरधर नागर, शामळीयो कुब्रजा ने वरतो जी ॥५॥

जल-भरन २१६ (गुज०)

हुं जाऊं रे जुमना पाणीडां, एक पंथ दो काज सरे ॥०॥
जळ भरवुं बीजुं हरी ने मळवुं, दुनियां भोळी दाभे बळे ॥१॥
अजाण पणा मां कांइ रे नव सुज्युं; जसोदाजी आगळ राड करे ।२।
व्रन्दावन ने मारग जातां, जनम जनम नी प्रीत मळे ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गीरधर नागर, भवसागर नो फेरो टळे ॥४॥

जल-भरन २१७ (गुज०)

नहीं जाऊं रे जुमना पाणीडां, एक पंथ दो काज सरे ॥०॥
नंदजी नो रे वालो आण न माने, कामणगारो अेनी मेळे ॥१॥
अमे आहीरडां सघळां सुंवाळा, कठण कानुडो मेलो ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गीरधर नागर, गोपी ने कानुडो वालो ॥३॥

गोपी-भाव २१८ (गुज०)

हांरे जाओ जाओ रे जीवण जुठडा, हांरे वात करता दीठडा ॥०॥
सौ देखतां वालो आळ करे छे, मारे मन छो मीठडा रे ॥१॥
व्रन्दावन नी कुंज गली में, कुब्रजा संगे दीठडा रे ॥२॥
चंदन पुष्प ने साथे पटको, वात करतां दीठडा रे ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गीरधर नागर, मारे मनछों मीठडा रे ॥४॥

राधा-भाव २१९

राधे खड़ा घनश्याम कदम के नीचे ।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे गल बैजन्ती माल ॥०॥

चीर चुराय कदम पर बैठा, सखियाँ खड़ी छे घनश्याम ॥१॥
वृन्दावन की कुञ्ज गलिन में, महिड़ो लुटे छे घनश्याम ॥२॥
तट जमुना पर धेनु चरावे, बंशी बजावे घनश्याम ॥३॥
वृन्दावन में रास रचायो, गोपियाँ नचावे घनश्याम ॥४॥
कालीदह में नाग जो नाथ्यो, फण फण नाचे घनश्याम ॥५॥
अध गोकुल अध मथुरा नगरी, अध बीच जमुना बहे जी ॥६॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि का चरणा में बलिहारी जी॥७॥

विरह २२०

बालापन में बैरागन कर गयो रे ॥०॥
खाँदे कामलिया हाथ लकरिया, जमुना के पार उतर गयो रे ॥१॥
जमुना के नीरे तीरे धेनु चरावत, बंसी की टेर सुनाय गयो रे ॥२॥
मीरां बाई के प्रभु गिरधर नागर, साँवरी सूरत दिखाय गयो रे ॥३॥

झूला २२१

हो पड्यो री मेरो झांझर छटक पड्यो ॥०॥
चंपे की डार हिंडोरो जी घाल्यो, रेसम की गज डोर ॥१॥
झूलतडां म्हारो झांझर छटक्यो, मोहन कपट करो री ॥२॥
दो वृजराज म्हारी दया देखो, घरां म्हारी सासु लडे री ॥३॥
सवा सवा लाख रो झांझर घडाज्यो, बिच बिच जडाव जडाय॥४॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणा चित लाव ॥५॥

दर्शनानन्द (युगल-झांकी) २२२

दोउ मिल करत आली बावरी मानों बतियाँ ॥०॥
नंद के गोपाल लाल, कँवरी श्री राधेजी ।
भर भर अंग धरत मोरी छतियाँ ॥१॥
ऐसी उजियारी मानों, छटक रही है ।
पूरण चंद शरद की ओ रतियाँ ॥२॥

करत विनोद तारण तट जमुना ।
बृन्दाबन फुल्यों रैण बहु बतियाँ ॥३॥
मीरां बाई के जी हरि गिरधरनागर ।
हरि के चरण मिले मोरी गतियाँ ॥४॥

गोपी-भाव   २२३ (गुज०)

गाय लावो ने गोती, गाय लावो ने मारी गोती रे ।
व्रजवासी गोवाळीआ, गाय लावो ने मारी गोती रे ॥
नंदना गोवाळीआ तमने भळावी'ती,
केम कहो छो के गाय नो'ती रे ॥
आंखे छे आंजणां ने मोढे छे मुंभणी,
हैया समाणी गाय हो'ती रे ॥
सोना शिंगडीओ ने रूपानी खरीओ,
हीरलानी दोरीओ हो'ती रे ॥
हाथ मां छे चुडलो ने गोठणमां घोंणीओ,
लटके शुं गावडी दोती रे ॥
माखण नो पींडो हुं तो मोटो उतारती,
हळवे शुं महीडां वलोवती रे ॥
गोकुळ जोयुं रे वनरावन जोयु,
जमुना तीरे गाय नो'ती रे ॥
बाइ मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण,
गाय आपती साचां मोती रे ॥

जल-भरन   २२४ (गुज०)

जळ भरवा केम जाउं ।
जळ भरवा केम जाउं रे जसोदा मैया ! जळ भरवा केम जाउं ।

चाटे घाटे वहालो पाणीडां मांगे, लोको देखे ने केम पाउं रे—
जशोदा०

लालजी तो प्रभु निरलज्ज थया छे,
हुं निरलज्ज केम थाउं रे—जशोदा०

सोना ते केरूं बेडलुं अमारूं,
ऊंढणीओ रत्न जडावुं रे—जशोदा०

मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर,
अणमूले हुं वेचाउं रे—जशोदा०

जल-भरन २२५

गागरियां फोरी, जाके मथुरां हा काना ने, गागरियां फोरी ···
हां······हां······जाके

ऐसी रीत तुजे कौन सीखावे,
किसन करत बलजोरी, हां···हां···जाके०

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
चरण कमल बलिहारी. हां···हां···जाके.

दान-लीला २२६ (गुज०)

मेलोनी मावा, मारगडो मेलो नी मावा ॥०॥
चाटे ने घाटे रोको शामळीया, हांरे मारा पालवडा शावा ॥१॥
रसियाजी शुं स्होर करो छो, जीवण दो जावा ॥२॥
मीरां बाइ के प्रभु गिरधर ना गुण, गुण तो गोविंद ना गावा॥३॥

मान-लीला २२७ (गुज०)

नाव रीसायो रे बेनी मारो नाव रीसायो रे ॥०॥
चोरा मां जोयो ने चौटा मां जोयो, फळीमां जोयो फरी-
फरी ने ॥१॥

हाथ मां दीवलडो ने घेर घेर जोती, जोती अति गणुं रोती ॥२॥
बाइ मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमळे चित देती ॥३॥

गोपी-प्रेमालाप   २२८

साँचा बोलो सांवेरिया रातडी कहां रह्याजी ॥०॥
रातडी की बातां कहिये रंग भर रैन कहां बसे जी ॥१॥
सारी रैन सोकड संग खेल्या भोर भये उठ आया जी ॥२॥
आँखडल्याँ में निद्रा घुल रही मुखडा के ताम्बुल फीका जी ॥३॥
मीरांबाई के प्रभु गिरधर नागर भोर भयां गिरधर पाया जी ॥४॥

नाव-लीला   २२९

भैया तेरी नैया को पार लगाव रे ॥०॥
काहे को तेरी नाव नावडिया, काहे को जडिया जडाव रे ॥१॥
इत मथुरा इत गोकुल नगरी, बीच बहै दरियाव रे ॥२॥
जमुना की नीरां तीरां धेनु चरावे, बंशी की टेर सुनाव रे ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, हरिजी सूँ ध्यान लगाव रे ॥४॥

विरह   २३०

कान्हा तोरी रे जोवत रह गई बाट ॥०॥
जोवत जोवत इक पग ठाढी । कालिन्दी के घाट ॥१॥
कपटी प्रीति करी मनमोहन । या कपटी की बात ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । दे गयो व्रज को चाट ॥३॥

प्रेमालाप   २३१

कनैयो मेरो प्राण श्री वृन्दावन बासी ॥०॥
सांवली सूरत पर मन वारी । कोप करे जग हाँसी–कनैयो ॥१॥
राधावर के निकट बसत है । कोन जात मेरो कासी–कनैयो ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । चरण कमल की दासी–कनैयो ॥३॥

उपालम्भ (कुब्जा-भाव) २३२

कानो भयो रे दूर को दुवारका वासी ॥०॥
निरमल जळ जमुना को छाँड्यो, जन्मभूमि मथुरासी ।
गुवाळ बाल सब बिलखत छोड्या, गऊयें छोड दई प्यासी ॥१॥
ये ठाकुर हैं तीन लोक के, कुबज्या कंस की दासी ।
स्याम तुम्हारे कारण राधा, सूक गई तिँणकासी ॥२॥
सोलह सहस्त्र गोपिका त्यागी, रंग महल से कासी ।
कुबज्या के संग बिलम रह्यो है, मात छोडी जसोदासी ॥३॥
झूठी थाली को पाँणी पीयो, राँणी करी कुबज्यासी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सुँण सुँण आवे हाँसी ॥४॥

दान-लीला २३३

छैल गैल मत रोकै तू हमारी रे ॥०॥
चाल कुचाल चलो जिन चंचल ।
ऐसी अनीति तैंने करनी विचारी रे ॥१॥
सखी संग की देखत ठाडी,
चरचा करैंगे सब पुर नर नारी रे ॥२॥
मैं सुकुमार खड़ी काँपत हों,
सिर पर दधि की मटुकिया भारी रे ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
तुम्हरे चरण कमल बलिहारी रे ॥४॥

दान-लीला २३४

छोडो चुनरिया, छोडो चीर, मनमोहन मन मोहन लिया री ॥०॥
नंदजी के लाल, संग चलै गोपाल,
धेनु चरत चपाल, बीन बाजे रसाल, चीर छोडो ॥१॥

कान्हा माँगत है दाँन, गोपी भई······सुनो उनका बयान,
घबरा गया उनका मान, चीर०॥२॥
मीराँ के गिरधारी मुरारी, राखो लाज प्रभुजी हमारी,
मैं हूँ दासी सदा तुम्हारी, तुमहो गले बिहारी ॥३॥

रूपासक्ति २३५

बनाजी थाँरी आँखियाँ कामणगारी, हो बनाजी ॥०॥
मोही छे जी थारी लटक चाल पर, बरसाने की नारी ॥१॥
जंतर मंतर जादू टोना, कर कर बहुत ही हारी ॥२॥
मीराँ ने बस कियो गिरधारी, साँवरी सूरत प्यारी ॥३॥

विरह २३६

ब्रज में आवोलाजी ब्रजवासी, रामाँ थाँ बिन भौमि उदासी ॥०॥
बृन्दाबन थारी सूखण लागी, कुञ्ज कुञ्ज कुमलासी ।
घन नख मुख मूर नहीं है, सखियाँ धर्म निभासी ॥१॥
जन्म भौमि मथुरा की छोडी, अब हुये द्वारिकावासी ।
सीतलजल जमुना को छोड्यो, अब खारो कैयां भासी ॥२॥
बलदाऊ के भैया किरपा कीज्यो, जन्म जन्म की (मैं) दासी ।
किरपा कीज्यो सुध मोरी लीज्यो, नांहि करो लोग में हाँसी ॥३॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, कुंडल की छबि खासी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, काटो जन्म की फाँसी ॥४॥

गोपी-भाव २३७

बंसीवारा हो कान्हा मोरी रे गगरी उतार ।
गगरी उतार मोरो तिलक संभार ॥०॥
जमुना के नीरे तीरे बरसेलो मेह ।
छोटेसे कन्हैयाजी से लाग्यो म्हारो नेह ॥१॥

बृंदाबन में गउएँ चरावै ।
तोड़ लियो मोरे गरवा को हार ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । मैं तो तेरे गई बलिहार ॥३॥

विरह (कुब्जा-भाव) २३८

बाटड़ली निहारूँ जी मैं हारी ठाड़ी ठाड़ी ॥०॥
आप न आवै पतियाँ न भेजै, छतियाँ करी अति गाढ़ी ॥१॥
इत गोकुल उत मथुरा नगरी, जमुना बह रही आडी ॥२॥
आप जाय मथुरा में बैठे, प्रीतड़ली वोह बाढ़ी ॥३॥
हमको लिख लिख जोग पठावै, आप दुल्हे कुबजा लाडी ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, कहाँ कहूँ जमना आडी ॥५॥

जल-भरन २३९

बंसी बजावै नित जमुना तट आवै ॥०॥
हों जमुना जल भरन जात ही, चित दे चित्त चुरावै ॥१॥
भोर भई बहैं बोरैं सजनी, बावरीसी जाँनी मोहि बोरावै ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, ठगपैं कौन ठगावै ॥३॥

उद्धव-लीला २४०

मत कर माधोजी की बात, एजी तुम सुण ऊधो महाराज ॥०॥
ज्यो कोई बात करे माधो की, हिये (में) करोत बह जात ॥१॥
एक समै हरी रास रचायो, छै महिना की रात ॥२॥
एक समै कालिन्दी तट पर, ग्वाल बाल सब लार ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरन कमल बलिहार ॥४॥

गोपी-भाव २४१

मत आवै रै नंदका म्हाँकी गली ॥०॥
म्हांकी गली की बाँकी गुवालिन, मतना लोग हँसावै रे ॥१॥

सास बुरी मेरी नँणद हटीली, पाड़ोसण लख जावै रे ॥२॥
कोउ गलियों में लुकतो छिपतो, म्हाँके कानी आवै रे ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भूँठो ही जी ललचावै रे ॥४॥

अभिलाषा २४२

म्हारी सेजडल्याँ रँग माणूँ जी, म्हारी कुञ्जन का प्यारा ॥०॥
आम्हाँ साम्हाँ महल झुकाऊँ, बिच बिच राखूँ बारी ।
बारी में झाँकत म्हारे, निजर पड्या गिरधारी ॥१॥
आम्हाँ साम्हाँ बाग लगाऊँ, बिच बिच राखूँ गुलक्यारी ।
आवेलो नंदजी को लाला, टाँके फूल हजारी ॥२॥
आछा पाया ढोलणी, रेशम डोर बणावूँ ।
तुम बिना नंदजी का लाला, जरा नींद नहिं आवे ॥३॥
हरी जरी का लहँगा सोवे, झूल झड़ी की सारी ।
अनवट ऊपर बिछिया सोवै, नथ सोवे झलकाँरी ॥४॥
मथुरा वृन्दावन बिच नाँव लगाऊँ, सब सखियन को मेलो ।
मीराँ के प्रभु तुम सुख पोढ़ो, यो निजराँ रो मेलो ॥५॥

विरह २४३

माधो बिना बसती उजार, मेरे भाँवै ॥०॥
एक समै मोतियन के धोके, हंसा चुगत जुवार ॥१॥
सरवर छाँड तलैया बैठे, पंख लपट रही गार ॥२॥
सरवर सूक तरवर कुम्हलाये, हंसा चले उड़ार ॥३॥
मीराँ के प्रभु कबरे मिलोगे, लाँबी भुजा पसार ॥४॥

उलाहना २४४

म्हांसूं मुखड़ै क्यूं नहिं बोलो (राम) ।
म्हांसं कांई गुना लियो है अबोलो ॥०॥

पहली प्रीति करी हरि हमसूं, प्रेम प्रीति कौ झोलो ॥१॥
प्रेम प्रीति की गांठ्यां घुलि गई, याने कुँण विध खोलो ॥२॥
कुबज्या दासी कंसराय की, उँकी सरभर तोलो ॥३॥
मीराँ के प्रभु कबर मिलोगे, हिवड़ारी गांठ्यां खोलो ॥४॥

वृंदावन-महिमा २४५

राधेजी को लागे वृंदावन नीको ॥०॥
वृंदाबन में तुलसी का बिड़ला, जाके पान चरीको ॥१॥
वृंदाबन में धेनु बहुत हैं, भोजन दूध दही को ॥२॥
वृंदाबन में रास रच्यो है, दरसण कृष्णजी को ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बिना रंग सब फीको ॥४॥

लीला २४६

वाह वाहरे मोहन प्यारे कहाँ चले जादू करिकैं ॥०॥
रूप सरूप सलूनी सी डारी मेरो मन लीनूं हरकैं ।
मोर मुकट सिर छत्र बिराजै नख पर गिरवर धरकैं ॥१॥
दमन कियो नाग काली को आप घुसे मध सरकैं ।
फण फण निरत करत यदुनन्दन अभै कियो खगवर कैं ॥२॥
सब ब्रजलोग छांडि निज घरकूं जाइ बसे तर गिर कैं ।
सात दिवस लग सूँड धार जल इंद्र परचो पग डरकैं ॥३॥
कातिक मास बाल सब मिलकैं नांचैं जल में तिरकैं ।
चीर चोर पुनि बगल डारकैं जाय चढ़े छल करिकैं ॥४॥
बृंदावन की कुंज गलिन में रास रच्यों छलबल कैं ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी पानैं पड़ी गिरधर कैं ॥५॥

उद्धव-लीला २४७

सहेल्यो उद्धोजी आया हे ।
आया पठाया स्याम का मेरे मन नहिं भाया हे ॥०॥

एक निमिष कै कारणै, षटमास लगाया हे ।
पहली प्रीत करी हमसूँ, पीछे पछिताया हे ॥१॥
जमुना जल में न्हावताँ, सखि चीर चुराया हे ।
कुबज्या दासी कंस की जिणि स्याम भुराया हे ॥२॥
मुरली तो मोहण लई, जिणि स्याम रिझाया हे ।
देखो सखी सहेलियो, नैणाँ कर ल्याया हे ॥३॥
सुख दुख अपणां करम का, गोविंद वर पाया हे ।
दोस कुणी कौ दीजिये, मीराँ गुन गाया हे ॥४॥

ज्ञान २४८

साँवरियो म्हाँनै भाँग पिलाई, मेरी अँखियाँ में लाली छाई ।
काहेरी कूँडी (राधे) काहेरा घोटा, काहेरी सुवाफी बणाई ॥०॥
तनकर कूँडी प्यारे मनकर घोटा, सुरती री सुवाफी बणाई,
कदम नीचे छाँण पिवाई ॥१॥
पाँचाँ गुवाल मिल घोटन बैठे, श्री गंगाजल झारी भर ल्याई,
प्रेम करि (राधेजी को) अछक चखाई ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण मांहि मनड़ो लगाई ॥३॥

विरह २४६

सुमन आयो बदरा, श्याम बिना सुमन ॥०॥
सोवत सपन में देखत शाम को । भरायो नयन निकस गयो
कजरा ॥१॥
मथुरा नगर की चतुरा गौलन ।
शाम को हार हमको गजरा ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
समय गयो पीछे मिट गये झगरा ॥३॥

उपालम्भ २५०

सुण लीजे हे जसमत अम्मा । अम्मा ए म्हारा प्याराजी ने
घणी ए खम्मा ॥०॥
आप न आये द्वारिका छाये, लिख भेजै म्हाँने दम्मा ॥१॥
हमें न बुलावै पतियाँ न भेजै, कबलग राखाँ म्हे गम्मा ॥२॥
मीठा बोला छाती छोला, साँच नहीं छे वाँमें जम्मा ॥३॥
चुण चुण कलियां सेज बिछाई, कुबज्या के संग रम्मा ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बाबांजी पग ने नम्मा ॥५॥

विनय २५१

अजीये ललाजू आज गोकुल वासी ॥०॥
गोकुल वासी प्राण हमारे, हाँ ललाजी ।
श्याम आये भला, श्यामसुन्दर अविनासी ॥१॥
इत गोकुल उत मथुरा नगरी, हाँ ललाजी ।
बीच ये भला, बीचे नदी यमुनासी ॥२॥
यमुना के नीरे तीरे धेनु चरावें, हाँ ललाजी ।
हाथ लिये नौलासी ॥३॥
वृन्दावन की कुंज गलिन में, हाँ ललाजी ।
सँग दुलहिन राधासी ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हाँ ललाजी ।
तुम ठाकुर मैं दासी ॥५॥

विरह २५२

उड़जारे काग बन का, मेरा स्याम गया वोहो दिन का रे ॥०॥
तेरे उड्या सूँ राम मिलैगा, धोखा भागै मन का रे ॥१॥
इत गोकुल उत मथुरा नगरी, हरि है गाठे दिल का रे ॥२॥

आप तो जाय द्वारिका छाये, हम बासी मधुवन का रे ।।३।।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, चरण कँवल हरिजन का रे ।।४।।

वृन्दावन-महिमा   २५३

उधो म्हांनै लांगै बृन्दाबन नीको रे ।।०।।
बृन्दाबन में धेनु बहुत हैं, भोजन दूध दही को रे ।।१।।
मोर मुकुट पीतांबर सोहै, सिर केसर को टीको रे ।।२।।
घर घर में तुलसी को बिड़लो, दरसण माधवजी को रे ।।३।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरी बिना सब फीको रे ।।४।।

उद्धव-लीला   २५४

ऊधो भली निभाई रे, त्यागे गोपी गोकुल म्हांनैं क्यूँ तरसाई रे
।।०।।
चन्दन घिस लाई वासैं प्रीतड़ी लगाई, वानैं लाज ना आई
देखोजी उधोजी आखिर चेरी की जाई रे ।।१।।
बहोत दिन बीत्या म्हारी सुध ना लई, नैणां से नींद गई-
चांदणी सी रात म्हारे बैरण भई रे ।।२।।
रास तो कीयो म्हांसें प्रीतडली जोडी, अब तुम काहे कूं तोड़ी-
तिरबंकी प्यारी म्हांसैं हुई छै नेड़ी रे ।।३।।
मीराँजी तो बिनां कल ना पड़ै, पल छिन नाहीं सरै-
छतियाँ तपै नैणां नीर झरै रे ।।४।।

उद्धव-लीला   २५५

ऊधोजी हमारे राम संगाती, उस लोभी नैं भेजी है पाती ।।०।।
आप तो जाय वहाँ पर छाये, हमको भेजी जोग की पाती ।
झुर झुर नैन भये आलोती, नदियाँ सी बही जात दिन राती ।१।

आम की डार कोयलिया बोलै, हमरो मरन लोग की हाँसी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मैं तो जनम जनम की दासी ।।२।।

उद्धव-लीला २५६

ऊधो म्हारे मनकी मनमें रही ।।०।।
एक समैं मोहन घर आये, मैं दधि मथत रही ।
या दुनियां को झूंठो धंधो, मैं हरि कूं बिसर गई ।।१।।
वा कपटी की कहा कहूँ ऊधो, वचन प्रतीत नहीं ।
नैंन हमारे ऐसैं झूरैं उलटी गंग बही ।।२।।
इत गोकुल उत मथुरा नगरी बीच में जमुना बही ।
आप मोहनजी पार उतर गया हमसे कछू ना कही ।।३।।
ब्रजबनिता कौ संग छाँडि कै कुबज्या संग लई ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी चरणां लिपट रही ।।४।।

उलाहना २५७

एरी बरजो जसोदा कान, मेरे घर नित्य आता है ।
जिधर को मैं मुड़ जाती हूँ, बगद मेरे सामा ही आता है ।।०।।
मैं जल जमुना भरन जात हूँ, मेरे सामा ही आता है ।
कँकरी दे मोरी बहियाँ मरोरी, बाराजोरी मचाता है ।।१।।
मैं दधि बेचन जात बृन्दाबन, चला पीछे से आता है ।
दधि की मटकी फोड़ माखन, मेरा लूट खाता है ।।२।।
रास विलास करत गोकुल में, बँसियाँ सुनाता है ।
मीराँ को गिरधर मिलिया, चरणों में लगाता है ।।३।।

प्रेम-लीला २५८

तैं मेरी गेंद चुराई, गुवालन ।।०।।
अबही आन परी तेरे अंगना, अंगियाँ बीच छुपाई ।।१।।
ग्वाल बाल सब मिल कर आये, झगरत झोंका आई ।।२।।

साँचे कनैया झूंठ मत बोलो, जाँण पडी चतुराई ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल बलिजाई ॥४॥

मान   २५६

दूरो रहरे कँवर नन्दना रे, परो रहरे कँवर नन्दना रे ॥०॥
कारी कामरीवारा, तुमैं कानजी ओ ।
थे तो रीज्या रीज्या सालूड़ारी कोर (जी) पे ओ ॥१॥
गजमोत्याँवारी राणी राधिकाजी रे ।
श्री राधा गौरीजी ज्याँको नाम छै रे ॥२॥
बाला हात जोड़ीने कराँ विनती रे ।
म्हारो अबला को खयोड़ो जादू मानजो रे ॥३॥
मीराँ मेड़तणी रा म्हैलाँ उमाड्या रे ।
वै तो रीज्या रीज्या साधूड़ांरा साथ में रे ॥४॥

दधि-लीला   २६० (पं०)

दसियो मोहन किस दानी ॥०॥
आवँदा जावँदा नजर न आवै, अजब तमाशा इस दानी ॥१॥
दधि मेरो खायो मटुकिया फोरी, लोभी यह गोरस दानी ॥२॥
मात यशोदा दही बिलोवै, गोरस ले ले नस दानी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, लूँ लूँ दे बिच रस दानी ॥४॥

विनय   २६१

साँवराजी हो चूडे रंग लाग रह्यो छै लाग रह्यो छै ब्रजराज ॥०॥
रंग चूड़ो रंग चूनडीजी काँई रंगीलो साज ।
रंग वृन्दावन कुंज लताजी काँई सहस गोप्यां रा सिरताज ॥१॥
रंग छे थारी बाँसडलीजी काँई रंग छे सबही समाज ।
मीराँ गिरधर रंग रंगीले बाँह गहे की लाज ॥२॥

उलाहना २६२

काल की रैण बिहारी, महाराज कौन बिलगायो ॥०॥
काल गया ज्यां जाहो बिहारी, ओंही तोही कौन बुलायो ॥१॥
कौन की दासी काजल सारयो, कौन तन रंग-रमायो ॥२॥
कंस की दासी काजल सारयो, उन मोहि रंग रमायो ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, कपटी कपट चलायो ॥४॥

दान-लीला २६३ (गुज०)

जमीन पर जलनां ते दाण कोण ले छे ॥०॥
जलनां ते दाण काने सांभल्या नथी (नहीं) जो ।
एवो कोण आवी अहींयां रहे छे ॥१॥
मथुरा थकी वहाला गोकुल न आवियो ।
ढोर चारी वळी (फिर) दाण ले छे ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, दाण देतां चरत चित्त रहे छे ॥३॥

उद्धव-लीला (उपालम्भ) २६४

जान्यो मैं राज को वहेवारा ओधवजी ॥०॥
आंबा करावो, लींब करावो, बावल की करो बाड ।
चोर धरावो सावकार दंडावो, नीति धरम रसबार ॥१॥
मेरो कह्यो सत नहिं जाण्यो, कुबजा के किरतार ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, अंधाधुंध सरकार ॥२॥

गोपी-भाव २६५

तुम कों करो या हूँ जानी ॥०॥
वृन्दावन की कुंजगलिन में, गोधन की चरैया हूँ मानी ॥१॥
मोर मुकुट पीताम्बर शोभे, मुरली को बजैया हूँ जानी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, दान दिन ले तब हूँ जानी ॥३॥

गोपी-भाव २६६

बगियां बगियां बगियां रे,
मारो बालम बिराजे सारी बगियां रे ॥०॥
मोर मुकुट पीतांबर पहेर्यो, कुण्डल पर चिल लगियां रे ॥१॥
वृन्दावन की कुंजगलिन में, सोलासे गोपी ने कानैं ठगियां रे॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमळ चित धरियां रे ॥३॥

बाल-लीला २६७

मैया मोकूं खिजावत बलजोर ॥०॥
जसोदा माता मिल लैजावे, लायो जमना को तीर ॥१॥
जसोदा ही गोरी नंद ही गोरा, तुम क्यों श्याम शरीर ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, नयन मों बरसत नीर ॥३॥

दान-लीला २६८ (गुज०)

रसिया मने जावा दीजे, तारूं दाण थाय ते लीजिये ॥०॥
हूं तो गोकुल नी व्रजवाशी, हूं तो मही वेचवा जाऊं दहाडी,
वाट मां आळ न कीजिये ॥१॥
हूं व्रखुभान नी छोड़ी, मारे माथे महीनी गोळी,
ल्यो मधुरां गोरस पीजिये ॥२॥
मारी सघली साहेलीओ चाली, कां मने घेरी ऊभा वनमाली,
मारगडे धूम न कीजिये ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, छे श्यामसुन्दर रस सागर,
तन मन धन अरपण कीजिये ॥४॥

विनय २६९

हृदय तुमही कर पायो, हूँ अलबेली खेल रही कहाना ॥०॥
मोर मुगुट पीतांबर शोभे, मुरली क्यों बजावी कहाना ॥१॥

बृन्दाबन की कुंजगळी मों, गौअन की चरण धुलाई ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, घर घर लेऊँ बलाई ॥३॥

प्रेम २७० (गुज०)

आवतां आवतां आवतां रे, बाण वाग्या मोहन ना आवतां ॥०॥
जल रे जमना नां अमे पाणीडां ग्या ता,
शिर पर गागर चडावतां रे ॥१॥
वाडा मां जई व्हाला वाछरडां छोड्या,
खोळे मेल्यां छे बाळ धावतां रे ॥२॥
घरना काम काज विसर्यां सर्वे,
चुले मुक्यां छे घी तावतां रे ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण,
हैयामां हरि झुलावतां रे ॥४॥

गोपी-भाव २७१ (गुज०)

राम छे राम छे राम छे रे, मारा हृदया मां व्हालो राम छे ॥०॥
आरे मंदिरे मारी सासु ने ससरो, सामे मंदिरीए श्याम छे रे ॥१॥
सासु जुठीने मारी नणदी हठीली, न्हानो देवरीओ नकाम छे रे ॥२॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, वचमां गोकुळीयुं गाम छे रे ॥३॥

प्रेम २७२ (गुज०)

उभा कदम वन वेली मां, छबीलो लाल, उभा कदम वन
वेली मां ॥०॥
जमुना ने कांठे व्हालो धेनु चरावे, मेघली बर्षानी हेली मां ॥१॥
श्रीमुख निरखवाने मनडुं तपे छे,
घडी नथी गोठतुं हवेली मां ॥२॥
जो प्रभु म्हारे मंदिरे पधारो,
तो राखीश गुलाब चंबेली मां ॥३॥

बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण,
तम माटे हुं तो खपी घेली मां ॥४॥

दधि-लीला २७३ (गुज०)

मही ढळशे मारूं, मोहनलाल, मही ढळशे मारूं ॥०॥
लाख बेलाख नुं माट नंदाशे, शोभीतुं सारूं ॥१॥
तमे वनमाळी न करो आळी, अमे वहुवारू ॥२॥
फुल पडे तेनी चोसर गुंथे, लोक बोले न्यारूं ॥३॥
मीराँ कहे गुण गिरधर ना चित, चरण कमळे वारूं ॥४॥

उलाहना २७४ (गुज०)

कहेवा देने कहान, तारी माने, कहेवा देने कहान ॥०॥
व्हाणानो वढवाड करे छे, रवी उगमते भाण ॥१॥
बीवडावे बीये ते बीजी नारी, अहीं लोढुं ने छे पाषाण ॥२॥
वृंदावन नी कुंजगली मां, तुं हलकुं पीपळीयानुं पान ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, वाव्यां अमारा वान ॥४॥

नटखटपन २७५ (गुज०)

शारे गुन्हामां लुंटी वालम मने, शारे गुन्हामां लुंटी ।
नथी तमारा संगे चुकी, वालम मने शारे गुन्हामां लुंटी ॥०॥
सामीते मेडीए हुं हार परोवती जी, मोती वेराया सेर टुटी ॥१॥
जलरे जमनाना हुं भरवाने गई ती, मटकी फुटीने दोरी छुटी ॥२॥
वंद्राने वन ना मार्गे वळता, मनडुं मारूं लीधुं लुंटी ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, तोय हजी प्रीति नथी छुटी ।४।

नटखटपन २७६ (गुज०)

कानुडे वनमां लुंटी सखी मने, कानुडे वनमां लुंटी ॥०॥
हाथ झाली मारी बांह्य मरोडी, मोतीनी माळा टुटी ॥१॥

आगळथी मारो पालवडो साह्यो, महीनी मटुकी फुटी ॥२॥
पाछल पडे तेनो केडो न मुके, न्हासी शकाय नही छुटी ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, कहीए तो लोको कहे जुठी ॥४॥

उपालम्भ २७७ (गुज०)

झुमकहार शीद तोड्यो, हो राज मारो झुमकहार शीद तोड्यो।
हारनी पडी छे त्रण ओळो, हो राज म्हारो० ॥०॥
जलरे जमनाना भरवाने ग्यातां, पनघट तीरे हार तोड्यो ॥१॥
वृंदावन ने चोके रमतातां, कूडा वचन कोण बोल्यो ॥२॥
प्रीत करी पण करतां न आवडी, नंद अहीर नो छोरो ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, समजे नहीं श्याम तुं तो भोरो ।४।

उद्धव-लीला २७८ (गुज०)

कहो मनडा केम वारीए, ओधवजी कहो मनडां केम वारीए ॥०॥
जेरे दा'डाना मोहन गया मेली, ते दा'डाना आंसु ढाळीए ॥१॥
अमने विसारी वस्या जई मथुरा, वश कर्या कुबजा काळीए ॥२॥
कूप जो होय तो गाळीए नीर कूपना, सागर ने कई परे गाळीए ।३॥
कागळ जो होय तो वांचीये वंचावीए, कर्मने कई पेर वांचीए ॥४॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, वीत्या वितक केम टाळीए ॥५॥

उद्धव-लीला २७९ (गुज०)

प्रेमनी वात छे न्यारी ओधवजी प्रेमनी वात छे न्यारी ॥०॥
प्रेमनी वातो मां ओधा तमे शुं जाणो, बीजा शुं जाणे संसारी ।१।
प्रेमनी वातो मां ओधा ब्रह्माजी भूल्या, वेद मेल्या छे विसारी ।२।
प्रेमनी वातो मां ओधा शंकर भूल्या, बेठा कैलासे ध्यान धारी ।३।
प्रेमनी वातो मां ओधा भूल्या छे भक्तो, तन मन धन ने ओवारी ॥४॥
तमारो रंग ओधा रंग छे पतंग नो, अमारो रंग छे करारी ॥५॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमल बलीहारी ॥६॥

प्रेमालाप २८० (गुज०)

माछीडा होडी हलकार, मारे जावुं हरि मळवाने,

हरि मळवाने प्रभु मळवाने ॥०॥

तारी होड़ीने हीरले जडावुं, फरती मुकावुं घुघरमाळ ॥१॥

सोनैया आपुं रूपैया आपुं, आपुं हैया केरो हार ॥२॥

आणी तीरे गंगाने पेली तीरे जमुना, वचमा वसे नंदलाल ॥३॥

जमना ने तीरे धेनु चरावे, व्हालो बनी गोपाल ॥४॥

चंद्रावन नी कुंजगली मां, गोपी संग रास रमनार ॥५॥

बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, कृष्णजी उतारो पेले पार ॥६॥

झूला २८१ (गुज०)

पारणीये झुलो झुलो नंदलाल ॥०॥

नौतम नंग जडीया पारणीये, हीरा नीलम न्यारा न्यारा ॥१॥

गादीने तकीया गाल मसुरीया, रेशम दोरडीवारा ॥२॥

सोनेरी पामरी तळाई मखमली छे, मधुरीसी मोरलीवारा ॥३॥

झुलन हारी वृजनी किसोरी, जशोदाजी ना जांया ॥४॥

बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, दर्शन दो व्रजराया ॥५॥

गोपी-प्रेम २८२ (गुज०)

मचकारा मंदिरिया माहें, मचके मोही रही छुं ॥०॥

विध विध भात ना भोजन रंधाव्या,

जमवा आवोने महाराज, गावडीया दोही रही छुं ॥१॥

चंद्राते वन मां रास रचाया, सोळसे गोपीमा घेलो कान,

टम टम जोई रहीछुं ॥२॥

गोतता गोतता हीरलो जड़ीओ, जागतां सारी रात,

माला मां प्रोही रही छुं ॥३॥

बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, तमने भजीने थई न्याल,
वाटडली जोई रही छुं ॥४॥

गोपी-प्रेम २८३ (गुज०)

प्रभु मारी दृष्टि सन्मुख रहेजो, प्रभु मारी आंखो आगळ
रहेजो ।०॥
हुं छुं दासी आपनी व्हाला, पोतानी करी लेजो ॥१॥
फुलडा मधुरनी सय्या बीछावु, सेवा चरणनी देजो ॥२॥
वन्द्रावन ने मारग जाता, दर्शन नीत नीत देजो ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, हृदय कमळ विचे रहेजो ॥४॥

गोपी-भाव २८४ (गुज०)

वाछरडी आ रेडी रे, लाल तारी वाछरडी ॥०॥
एवड बेवड वळ दीधेली, त्रेवड दोरडी तोडी रे ॥१॥
दोणी लईने दोहवा बेठी, मटका नाख्या फोडी रे ॥२॥
घर आंगणीये बंधाय ना, बंसी सुणी वन मां दोडी रे ॥३॥
वाछरडी ना पगज बांध्या, तोय एणे पाडु मरोडी रे ॥४॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, वाछरडी दीधी छोडी रे ॥५॥

श्रीकृष्ण जन्म २८५

जसुमति पुत्र जायो, रूप गुण अगरो ।
गोविंद पुरणचंद, तारण जुग सघरो ॥०॥
मेरे श्रवण भनक पड़ी, वाजत है घुघरो ।
आधि रेन अंधियारी में, आयो तारण जुगरो ॥१॥
श्री गोकुल में भीड भई, मीलत नहीं डगरो ।
एक आवे एक जावे, एक मचावे झगरो ॥२॥
प्रात समे धुम ऐसी मची, चल सके ना पगरो ।
मीराँ मु ।विंद निरखे, जीवननंद नन्द रो ॥३॥

राधा-भाव   २८६

कोन राधिका रानी, यामें कोन राधिका रानी ॥०॥
पीतांबर गोरे तन पर शोभे, मुख पर लट लटकानी ॥१॥
मैं जल जमुना भरन जात री, कृष्णजी जाता जानी ॥२॥
मोर मुकुट पीतांबर शोभे, काने कुंडल झलकानी ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरणों में चित लपटानी ॥४॥

गोपी-प्रेम   २८७

गोविंदजी से लाग्यो नेडो ॥०॥
मैं जल जमुना भरन जातरी,
झटक्यो चीर फुट्यो मेरो बेडो ॥१॥
बंद्रावन में रास रच्यो है, गोपी ग्वाल में नन्दलाल बडो ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, हरि के चरण पर वारूं
जीवडो ॥३॥

गोपी-विनय   २८८

काहु विध मिल जाव गिरधारी,
तोरी सांवरी सुरत पें जाउं बलिहारी ।
तोरी मधुरी मुरत पें जाऊं बलिहारी,
मोहे मिल जाव गिरधारी ॥०॥
गोकुल ढुंढो, ढुंढी मैं मथुरां नगरी सारी,
धेनु चरावे, बंसी बजावे वन में गिरधारी ॥१॥
दधि बेचन चली ग्वालिनी, सांवरे मोहनी डारी,
मोर मुकुट शिर छत्र विराजे, कुंडल छबी भारी ॥२॥
कबकी मैं तोरी विनती करत हुं, इतनी अरज सुन मारी ।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरन कमल बलिहारी ॥३॥

गोपी-भाव २८९

बीसर गई मेरो हार, जमना तीरे बिसर गई मेरो हार ॥०॥
इत गोकुल उत मथुरा नगरी, कैसे उतरूं पार ॥१॥
मैं जल यमना भरन जातरी, मिल गये नन्दकुमार ॥२॥
वन्द्रावन की कुंज गलिन में, नृत्य करत है मुरार ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल बलिहार ॥४॥

प्रेम २९०

नेण सलुणे प्रेम जगायो, मेरो चित गोविंद से लगो हो मेरो० ॥०॥
घडी पल मोहे नींद न आवे, कान बिना मोहे कछु न सुहावे,
एक ही ध्यान लगो ॥१॥
वंद्रावन में गोधेन चारे, बंसी बजावे, तन भान भुलावे,
त्रट जमना को आरो लगो ॥२॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, वारी वारी जाऊं करुणा सागर,
चरण कमल में चित लगो ॥३॥

राधा-भाव २९१

मुगट पर वारी वारी वारी ॥०॥
जल जमना पर बंगला बनाऊं, फरतीं लगाऊं बारी ॥१॥
नित्य प्रभात में दर्शन पाऊं, तेरा कृष्ण मुरारी ॥२॥
मैं तो प्हेरूं कसुंबल साडी, तेरी पीतांबर छब न्यारी ॥३॥
मैं ओढुं जरकसी पछेडो, तेरी बंसी की धुन भारी ॥४॥
मैं तो प्हेरूं मोती की माला, तेरी बंसी की धुन भारी ॥५॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर चरण कमल पर वारी ॥६॥

जल-भरन २९२ (गुज०)

देजो मारी इंढोणी श्री नागर नन्दकुमार देजो० ॥०॥
रत्नजडीत इंढोणी अमारी, हीरा जड्या हजार ॥१॥

लीधी होय तो आपीद्यो प्रभु, शाने लगाडो वार ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमल आधार ॥३॥

राधा-भाव २६३

ठाडो रह्यो कदम की छैयां, ठाडो० ॥०॥
बेर बेर समजावन लागी, छोड़ हमारी बैयां ॥१॥
बिन बोलायो ऐसो बोले, लागत तीर कनैया ॥२॥
मैं सुता हउ वृषभानु की, तुं हे नंद को छैया ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरण में शीश नमैया ॥४॥

उद्धव-लीला २६४ (गुज०)

शुणो तमे ओधवजी महाराज, मत करो माधवजी की बात ॥०॥
कपटी मित्र सें प्रीत न कीजे, छोड़ चले अधरात ॥१॥
बिन्द्रावन की कुंजगलि में, छीन छीन दधि खात ॥२॥
हमकुं तजी अब आप रहे घर, कोई आवत कोई जात ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, प्रीत करो परभात ॥४॥

दर्शनानन्द २६५

आवत श्री गिरधारी, गौचारी आवत श्री गिरधारी ॥०॥
खांधे कामळीया हाथ लकुटियां, बेनु बजावे मनहारी ॥१॥
मात जशोदा करत आरती, पुनी पुनी जात बलहारी ॥२॥
मोर मुकुट पीतांबर सोहे, कुंडल मीनाकारी ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल पर वारी ॥४॥

गोपी-प्रार्थना २६६

थारा रास मंडल री वेर विहारी याद कीजो जी ॥०॥
सेना में समझाय लीजो हेलो मती दीजो जी ।
केसरीया दुपटा रो झालो देता रीजो जी ॥१॥

दादुर मोर पपैया बोले कोयल करे सोर जी ।
राधाजी रे संग झूले नन्द के किशोर जी ॥२॥
फूलन हारन गूंथन लाज्यो गल पहराज्यो जी ।
म्हांने बाग बगीचा री सैलाँ साँवरा फेर कराज्यो जी ॥३॥
राधा और चन्द्रावल रूकमण लारा लीजो जी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर दर्शन दीजो जी ॥४॥

उद्धव-लीला २६७

प्रीति टूटी नहिं जानी रे ऊधवजी ॥०॥
राधा व्रजवनिता छांडी, कुबजा की पटरानी ॥१॥
पहली प्रीति करी हरि हमसों, अब तो भये जात बिडानी ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल लिपटानी ॥३॥

गोवर्धन-धारण २६८

गिरिवर गिर ना पडे रे गोपाल ।
सब सखियन मिल पूजन चाली भर भर मोतियन थाल ॥०॥
दादुर मोर पपैया बोले पीऊ पीऊ की पुकार ॥१॥
इन्दर कोप कियो व्रज ऊपर बरसे मूसलधार ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर कबकी करे रे पुकार ॥३॥

प्रेमालाप २६९

खबर मोरी लेजारे चंदा । जावत तुम उन देस ॥०॥
हो नंद के नंदजी सूं यूं जाई कहीयो ।
एक बार दरसन देजा रे ॥१॥
आप बिहारे दरस तिहारे ।
कृपा दृष्टि करीं जारे ॥२॥

नंदबन छांड सिंधु तट बसीयो । एक हम पै न सहजा रे ॥३॥
जा दिन ते सखी मधुबन छांडो । लेगयो काढ कलेजा रे ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । सबही बोल सजारे ॥५॥

दान-लीला ३००

छोडो चुनरया छोडो मन मोहन मनमों बिच्यारो ॥०॥
नंदजी के लाल, संग चले गोपाल, धेनु चरत चपल,
बीन बाजे रसाल, बंद छोडो ॥१॥
काना माँगत है दान, गोपी भये रानो रान, सुनो उनका ग्यान,
घबरा गया उनका प्रान, चीर छोडो ॥२॥
मीराँ मुरारी कहे, लाज रखो मेरी, पग लागों तेरी,
अब तुम बिहारी, चीर छोडो ॥३॥

दधि-लीला ३०१

जमुनाजी के तीर दधि बेचन जावुं ॥०॥
एक तो घागर सिर पर भारी । दुजा सागर दूर ॥१॥
एक तो कनैय्या हटेला । दुजा माखन चोर ॥२॥
एक तो ननंद हटेली । दुजा सासरा नादान ॥३॥
है मीराँ दरसन कुं प्यासी । दरसन दीजो रे महाराज ॥४॥

बाल-लीला ३०२

जसवदा मैय्या नित सतावे कनैय्या ।
वांकूं मुरकत क्या कहूं मैय्यां ॥०॥
बैल लावे भीतर बाँधे छोर देवत सब गैय्यां ॥१॥
सोते बालक आन जगावे । ऐसो धीट तेरो कनैय्यां ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । हरी लागुं तोरे पैय्यां ॥३॥

विरह ३०३

जा संग मेरा नेहा लगाया। बांकों मैं ढुंढने जावुंगी ॥०॥
जोगन होके बन बन ढूंढूँ। अंग बभूत रमायो रे ॥१॥
गोकुल ढूंढूँ मथुरा ढूंढूँ। ढूंढ फिरूं कुल गलियां रे ॥२॥
मीराँ दासी शरण जो आई। शाम मिले तहाँ जावुं रे ॥३॥

प्रेमालाप ३०४

नंदकिशोर सें प्रीत कीनी, ब्रीज में बदनाम होइ चूकी ॥०॥
प्रीत के बान लगे मेरे तन में,
जिंदगानी से हाथ मंय धोइ चूकी ॥१॥
एक कहो कोई लाख कहो,
अब होने वाली सो होइ चूकी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
सुध बुध सब में खोइ चूकी ॥३॥

राधा-भाव ३०५ (गुज०)

भार तु धणीनी दीन था। वत्तुं अमे केम करिये।
लटकामा आवुंने लटकामां समजावूं रे ॥०॥
एक ठेकाणुं तमनें एवुं बतावुं ते। बे घडी उभा रेजो रे।
सुख दुखनी आपण वातो करिये। वालम जोबन जाय रस लेवा रे ॥१॥
सोना इढाणीने रूपलानुं बेडु। हाथ मां जल जमुना नी झारी।
राणी राधाजी जाणे पाणिडां चाल्यां। जाणे सोल बरस नी नारी ॥२॥
सोले शृंगार तारे अंगे बिराजे। ने हातमां सोना केरो चूडो।
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण वाला गोविंद वर छे रूडो ॥३॥

राधा-भाव   ३०६

म्हारे घरे चालोजी जसोमति   लालना रे ॥०॥
राधा कहती सुनोजी प्यारे, नाहक सतावत जननी मुरारे ।
अंगन खेलत ले ब्रिजहारे, लूट लूट खेलना रे ॥१॥
पेन्हो पीत वसन और अंगियां, + + + कन्हैय्या ।
रोवे काहेकुं लोक बुझाया, हांसति ग्वालना रे ॥२॥
चंदन चौक उपर न्हलावुं, मिश्री माखन दूध पिलावुं ।
मंदिर अपने हाथ हलावुं, जडावुं पालना रे ॥३॥
मीराँ के प्रभु दीन दयाला, वहाँ तुम सावध परम कृपाला ।
तन मन धन वारीजै गोपाला, मेरे मन बालना रे ॥४॥

जल-भरन   ३०७ (गुज०)

हैडा मा मूंनें हरीवरमाला रे, जाऊं छुं जेमनी तेमनी रे ।
मुजे लागी कटारी, प्रेमनी प्रेमनी रे ॥०॥
जल भरवा मुगरबा गमाया, माथां गागर रही हेमनी रे ॥१॥
बाजुबंद गोडा बरखा बिराजे, हाथे विंटी छे हेमनी रे ॥२॥
सांकडी सेरी मांवालोजी मील्याथी, खबर पुछूं छुं खेमनी रे ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, भक्ति करूं छूं नित नेमनी रे ॥४॥

प्रार्थना   ३०८

सांवरिया अब बृजदेश पधार ।
छाय रह्यो जा देश द्वारका निर्मोही नन्दकुमार ॥०॥
ग्रीष्म ऋतु बीत चुकी है आई घन बरसात ।
पपैयो पीहु पीहु कारे कोयल करत पुकार ॥१॥
गोपी ग्वाल गूजरी झुरकत है सब नार ।
वृन्दावन कुम्हलावत है यमुना शीतल धार ॥२॥

दासी को राणी कर छांडि छांडि कुल मर्याद ।
मीराँ कहे महाराज ने रे तुम बिन ये सब बेकार ॥३॥

प्रेमालाप ३०६ (गुज०)

शामळिया व्हाला पातळिया रे म्हारी सेज अवोने शामळिया ॥०॥
लालने माथे जड़ियाला टोपी रे व्हाला ।
तमारे जोवा मेलियों व्रजनी गोपियाँ ॥१॥
लालने हिंचोले रेशमनी डोरी रे व्हाला ।
तमे हिंचोले राधा गोरी ॥२॥
लालने काने हींचा मोती व्हाला ।
तमे वळती आडा घूंघट में जोती ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण ।
तमे सेजे पधारो म्हारा रंगना रसिया ॥४॥

गोपी-भाव ३१० (गुज०)

नहीं करिये रे नेहडा नुगराथी नहीं करिये रे नेहडा नहीं करिये।०।
सासु सपूती म्हारी नणँद धुतारी व्हाला,
सोकडलियाँ में वळी मरिया ॥१॥
आनी कोरे गंगा व्हाला पेली कोरे जमना,
सासुना संगाती अमी जल भरिया ॥२॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर,
तां गुण वरतो विट्ठलराय तमने वरियाँ ॥३॥

दानलीला ३११

मा मारी नंदजीरा गोपाल महीडा रो दान मांगे ॥०॥
छोटी से मोटी भई ए माय ।
कदियन न दीधा महिडा रो दान ॥१॥

डुंगर चढ कलकी करी ए माए।
ग्वाला ने लिया बुलाय ॥२॥
भर भर दूना पीगया ए माय।
दूजो लियो री ढुलाय ॥३॥
बाई मीराँ की , विनती ए माय।
शरण आया री लाज रखाय ॥४॥

उपालम्भ   ३१२

कान्हां कांकड़ली मत मारो मोरी फूटै गागड़ली ॥०॥
तूँ तो तेरे घर को ठाकुर मैं भी ठाकुरड़ी ॥१॥
नोलख धेन नन्द घर दूजे एक न वाखड़ली ॥२॥
माखन माखन सारो खा गया रह गई छाछड़ली ॥३॥
जाय पुकारहु कंसराय से लागे थापड़ली ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर मत कर आकड़ली ॥५॥

विरहालाप   ३१३

पल पल में याद आवे रे, मोहन की बातड़ली ॥०॥
मोहनी सूरत मन मोहनी मुरत पर, हो रही मासड़ली।
बंसिया बजाय मेरो मन हर लीनो, कस गई पावड़ली ॥१॥
दिन नहीं चैन रैन नहीं निंदरा, तरसत आँखड़ली।
दरस दिखाकर प्राण बचावो, हो रही व्याकुलड़ी ॥२॥
निसदिन ध्यान रहे घट माहीं, जोवूँ बाटड़ली।
प्यारी लागत श्याम तुमें, कुबज्या की खाटड़ली ॥३॥
मैं तो दासी जनम जनम की, बन रही चाकरड़ी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मत कर आकड़ली ॥४॥

दधि-बेचन ३१४

मोर मुकुट की देख छटा मैं होगई सजनी लतापताँ ॥०॥
मैं दधि बेचन जाती बृन्दाबन। मारग रोक्यो नाहि हटाँ ॥१॥
रपट झपट मेरी बैंया मरोरी। ढोळ दियो मेरो दही-मठाँ ॥२॥
बिसर गई मेरी तनकी सुध-बुध। देख गगन की ओर छटाँ ॥३॥
खाय मुरछा मैं पडी धरणि पर। बिखर गया मेरा केश लटाँ॥४॥
सखियाँ सुनेगी मेरी हँसी करेगी। पुरुष सुने मेरो मान घटाँ॥५॥
जो सुन पावे पीहरिया में। माय बाप को लगे बटाँ ॥६॥
सासु सुनेगी मेरी रार करेगी। नणदल बोले बोल खटाँ ॥७॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। राधे कृष्ण ही रटाँ रटाँ ॥८॥

प्रेम ३१५ (गुज०)

विट्ठल रहोरे वशी, मारे मन विट्ठल ॥०॥
चितडांमां चटकावी मुजने, सुध न रही रे कशी ॥१॥
ओशडीआं अळगां करी मुको, शीदनी पाओ छो (घ) गशी ॥२॥
बिन्द्राबन की कुंज गलन में, गोपी सन्मुख रही हशी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सघळां दुःख गया घशी ॥४॥

दधि-बेचन ३१६ (गुज०)

कांनुडे ते गेलडा कीधलां जी ॥०॥
महीनी मटुकी लीधी वाले धुकी, गोरश हमारडां पीधा जी ॥१॥
माये बापनी माया मुकावी, पोताना रे हरिये कीधांजी ॥२॥
बन्द्रावन की कुंज गलन में, कारज हमारा सीध्यांजी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, तन मन हमारां लीधांजी ॥४॥

प्रेम ३१७ (गुज०)

कर गयो कर गयो कर गयो।
मेरो मनवो उदासी कर गयो ॥०॥

मारा आंगणीयामां कंकुना पगलां।
सुना मंदिरियामां फर गयो ॥१॥
जरकसी पाघ केसरिया वाघा।
काने ते कुंडळ ढळ रह्यो ॥२॥
खांधे कामळिया ने हाथे लाकडियां।
जमुना को नीर उतर गयो ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण।
मोरलीयां मन म्हारो हर लियो ॥४॥

उद्धव-लीला   ३१८ (गुज०)

नारे बोले मेरी माई, काना मोसे नारे बोले मोरी माई ॥०॥
नहीं कछु लेनाने नहिं कछु देना।
नहीं झगडो ने लडाई ॥१॥
आरे गोकुळिआना लोक ठगारा।
ब्रीज बधामें वगोई ॥२॥
जावरे ओधवलाल सामकु मनावी लावो।
पेरे पेरे समझाई ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण।
चरण कमळ चित लाई ॥४॥

गोपी-भाव   ३१९ (गुज०)

अनीहोरे रंग बेनी गोवालणी आवे ॥०॥
रूमझुम रूपझुम नेपुर वागे।
गोपी हंसनी चाल चलावे।
काने कलाफुल झाल्य झबुके।
पाये झांझर नो झमकार ॥२॥

कनक कचोलांमां केसर छोळ्यां ।
गोपी केसरी तिलक बनावे ॥३॥
सिर पर कलस कलस पर झारी ।
गोपी जुमना ना ज़ळ भरि लावे ॥४॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण ।
तारा चरण कमळ बलिहारी ॥५॥

प्रेमालाप ३२० (गुज०)

केसरीयो परणायरे । माडी मारे ए वर रूडो, केसरीयो
परणाय० ॥०॥
वृंदावन ने मारग जातां । हींडे छे मोडा मोड रे ॥१॥
मोर मुगट ने काने कुंडळ । अणियाळा लोचन रे ॥२॥
पाये पीयुजी मोजडी पहेरे । खीटलीआळा केश रे ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण । शामळीओ वर रूडो रे ॥४॥

उद्धव-लीला ३२१

उद्धवजी महाराज सुणो तमे उद्धवजी ॥०॥
कपटी मित्र सुं प्रीत न कीजे छोड चले अधरात ॥१॥
बृन्दाबन में रास रच्यो है । कोई आवत कोई जात ॥२॥
बृंदाबन की कुंज गलन में । छीन छीन दधि खात ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर । प्रीत करी पस्तात ॥४॥

विरह ३२२ (गुज०)

जाय छे जायछे जायछे रे माहारा वालो मथुरां जाय छे ॥०॥
वाहाला विजोगे गोपी व्याकुल फरे छे रे ।
सूनां मंदिर खावा धाय छे रे ॥१॥
हाथमां लाकडियां खभे कामरियां ।
मारो वालो गोवाळीयो थाय छेरे ॥१॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
चरण कमळ चीत चाहाय छे रे ॥३॥

राधा-भाव ३२३

बस गई राधे प्यारी, मोरलीमां, बस गई राधे प्यारी ॥०॥
गोरे गोरे अंग पर सालुडा बिराजे, ऊपर जरत किनारी ॥१॥
गोरे गोरे अंग अतलस की चोळी, ऊपर हार हजारी ॥२॥
गोरे गोरे मुख नटवर से मोती, टीलडी की गत न्यारी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सुंदर मुख पर वारी ॥४॥

राधा-कृष्ण संवाद ३२४ (गुज०)

राधा ने मंदिरे हरि गया रे, चोर्यो नवसेरा हार-हाररे आलो रे ईश्वर माहरो ॥०॥
सुंदर नारी नो शणगार, अबळा नारी नो शणगार
कामनी कोटे रे सोहामणो हार रे
हारना लेनारा में तो ओळख्या रे, ओ छे बावन वीर ॥१॥
कृष्णः—हार तो लीधा होय तो धीज करीए रे, करीए धीज ने पतीज
नथी रे लीधोरे हार ताहरो……हाररे… ॥२॥
रंगते महोलो मां धूणीयो धीखावो रे, ताता गोळाने तपाव्य (तपावो)।
एरे गोळा ने अमे झालीए करीए धीज ने पतीज ।
नथी रे लीधो रे हार ताहरो……हार रे… ॥३॥
राधाः—प्रहलादनी पत राखवारे, पूर्यो स्थंभ मां वास ।
हिरण्यकश्यप ने तमे मारियो, लीधुं नरसिंह रूप ।
(ए) अग्नि गोळा रे तमने शुं करे……हार रे ॥४॥

कृष्णः—काचा सूतरने आगडे रे हिंचको बंधाव्य (बंधावो)
तेरे हिंचके अमे हिंचकीए करीए धीज ने पतीज···हार रे ॥५॥
राधाः—काचारे सूतरनो आगडोरे परभु तमेरे बनाव्यो
बनाववारा बावन वीर······हार रे ॥६॥
पाशेर अन्न रे जेने खावा जोईए
वजन मां कशुं न देखाय···हार रे ॥७॥
रहीदासनी चेली मीराँ बोलियां राखो चरणो मां वास
राखो चरणोनी मांहरे······हार रे ॥८॥

प्रेम ३२५ (गुज०)

लटकाळो रे गिरवरधारी, मने मारी छे प्रेम कटारी रे ॥०॥
जमुनाजी नी वाटे मळ्यो' तो, रूप रसिक छबी न्यारी रे ॥१॥
वंद्रावन नी वाटे रे जातां, सुंदर मुख पर जाउं वारी रे ॥२॥
सान करी समजावी शामळीए, गणी छे प्राण थकी प्यारी रे ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरण कमळ बलिहारी रे ॥४॥

प्रेम ३२६

हांरे, मेरी सलाम कहीए, बिंद्राबन छेल छबीला ठाकोर कुं ॥०॥
सब गोकुळमें गोवालन मंडळ, राधा मिशरी साकेर कुं ॥१॥
जीवते रहीओने चोखां करीओ, निभाव करीयो आखर कुं ॥२॥
तुम प्यारे की मोहोबत सुन कर इशक लग्यो मेरे चाकर कुं ॥३॥
खुब बनायो रे मे खुब बनो है, क्या करूं गुण-सागर कुं ॥४॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, निहाल लियो मुज नागर कुं ॥५॥

दान-लीला ३२७ (गुज०)

हुं तो वात कहुं उभां ते रहोनी अलबेली,
नथी जबाब देतां मन मेली ॥० ॥

रूमझुम करतां मोह उपजावी, कां जाओ छो दाण तमे ठेली ।।१।।
संगनी साहेली छुटी कां जाशे, दाण आपो ओ राधा घेली ।।२।।
कानुडा ए दाणनी रीतडी कहाडी, गोपी नाचे थई घेली घेली।।३।।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, रंग रसमां गोपी भबोली ।।४।।

राधा-गोपी-भाव ३२८

होरे राधे, कपटी काना सुं मति बोल रै ।।०।।
तनको कारो मनको कपटी करे ओर सी ओर रै ।
पटाले चीर कदंब पर ठाडो, वो नंदजी को छेल रै ।।१।।
मोर मुकुट पीतांबर सो'वे, कुंडल की छबी जोर रै ।
भाल तिलक केसर का टीका, ओर चनणदा कोर रै ।।२।।
बंसी बजावे ग्वालन डोले, ओर चरावे ढोर रै ।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, कांनां दधि को चोर रै ।।३।

गोपी-भाव ३२९

सुरज सामी, पनियां भरन कैसे जाऊँ ।
मोरी मेंदियां को रंग उड जाय ।।०।।
सुरज उगत है, धूप परत है, मेरो गोरूडो बदन करमाय ।।१।।
दूर देश की मेंदियां मंगा लऊँ, मेरा हाथडा रंगो तो लाल थाय ।२।
जमुना की गागर मेरे शिर भारी, मेरी पतली कमर लचकाय ।।३।।
पाणीड़ां जाऊँ मोहे पवन लगत है, मेरो आछो सालुडो उडि जाय।४।
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, मेरो चरण कमल चित लाय।५।

सेवा-भाव ३३० (गुज०)

सुरता चाली रे विष्णुवर ने वरवा ।।०।।
वहेली उठीने वलोणुं कीधुं, वळती बेठी दळवा ।।१।।
दळी करी तत्पर थईए, जळ जुमना नीर भरवा ।।२।।
नंदजी ने घेर नव लख गायो, दोईने दूध भरवा ।।३।।

तत्व हतुं ते ताणी लीधुं, छाश मूकी भरवा ।।४।।
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमळ चित हरवा।।५।।

चीरहरन ३३१

सखी आये कारतक मास, परब हय भारी ।
घर घर सें करी शणगार, निकसी व्रजनारी ।।०।।
सखी चीर घाट में आई, सखीआं सारी ।
क्या जानुं किधर से आये कृष्ण मोरारी ।।१।।
सखी ! ले गयो अपना चीर, चला भय छांडी ।
जलदी से दौड कर बैठे, कदम की दांडी ।।२।।
तुम दियो हमारा चीर दया नहीं आती ।
शरदी सें मरूं महाराज, न मेरी जाती ।।३।।
कृष्ण कहे कहां जाओ, पडी मेरे बस में ।
तुम ले जाओ अपना चीर, समज आपस में ।।४।।
सखी परनारी के अंग, मोहन मत लागे ।
में जाई पोकारूं, स राय के आगे ।।५।।
सखी महिषासुर कों मार, आंख भई हे राती ।
तें कंसराय को जोर, क्युं हीं बतलाती ।।६।।
सखी ! बन में रचियो रास, रंग बहु छायो ।
कहे मीराँ दरशन आये, प्रेम पद पायो ।।७।।

गोपी-भाव ३३२ (गुज०)

साचुं बोलोने मारा श्याम रे मोरली वालाजी ।।०।।
कई रे नारीए तमने भोळव्या, ओली कोण मळी धुतारी रे ।।१।।
राधा राणीए अमने भोळव्या, एली कुबजा मळी रे धुतारी रे ।।२।

पायरडी रे हरि क्यां बिसारी, एली धावलडी क्यांथी लाव्या रे ।३।
वांसलडी रे प्रभु क्यां बिसारी, ओल्यु वेलणु क्यांथी लाव्या रे ।४।
बाई मीराँ कहे छे प्रभु गिरधर नागर, जनमो जनम दासी तारी रे ।५।

उद्धव-लीला ३३३

आज तो अनौखी वातां, ऊधो ने सुनाई है ॥०॥
आज तो खुल रही, संसै की सीर सही,
स्याम को संदेसो माई, पाती लिख आई है ॥१॥
जब तौ वचत पाती, तब तो फटत छाती,
तजो भोग सजो जोग, ऐसी लिखी आई है ॥२॥
वसती उजार जात, ऊजर वसायां जात,
स्याम की वियोगी मीराँ, भस्मी लगाई है ॥ ३॥

रहस्य ३३४

मोहन भांग पिलाई रे, कदम नीचे मोहन भांग पिलाई रे ॥०॥
जळ जमुना को शीतल पाणी, गागर भर कर लाई रे ॥१॥
सोने की कुंडी ने रूपे का लोटा, कुंडीए रतन जडाई रे ॥२॥
कृष्ण बाटी ने बळदेवे घूंटी, राधाए साफी साई रे ॥३॥
सोने का प्याला तमे पीओ मतवाला, अखिआंमां लाली
लगाई रे ॥४॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरण कमळ चित लाई रे ॥५॥

आवाहन ३३५ (गुज०)

करशन काळा ! काळा का'न हरि रे ।
आवो मथुरामां वहेला बळी रे ॥०॥
आ अमृत भोजन मारा नाथ साफ करीयां ।
जमवा आवोने मारा खावींद धणी रे ॥१॥

वनरा रे वनमां का'ने, रास रचाव्यो ।
सोळसें गोपीमां खेले का'न हरि रे ॥२॥
जमना ने तीरे व्हालो, गौधन चारे ।
मोरली बजावे पेलो, का'न हरि रे ॥३॥
बाई मीराँ कहे छे प्रभु गिरधर नागर ।
कानुडानी मोरली में तो बहुते सुखी रे ॥४॥

उद्धव-लीला ३३६ (गुज०)

कवन गुन्हे परहरी रे उधो, परम सनेही प्यारे प्रीतमे ॥०॥
इण जुमना के घाट पर, उधो ! मोहन मिलता आय ।
विण जमुना को नीर, उधो ! नैण न देख्यो जाय ॥१॥
ऊंचा मिंदर शाम का, उधो ! फूलडां सेज बिछाय ।
सो मिंदर खाली भया, उधो ! देख्या ही न सोहाय ॥२॥
भंवर तजी उधो ! केतकी, कली रही कुमलाय ।
सो गत तो म्हांरी भई उधो ! विधि सुं कछु न वसाय ॥३॥
सुन ऊधो म्हांरी विनति रे वा'ला, माधव कहियो जाय ।
मीराँ व्याकुल ब्रेहनी, वेग दरस द्यो आय ॥४॥

प्रेम-संस्मरण ३३७ (गुज०)

का'नजी विना केम चाले माडी ! मारे कानजी विना केम चाले ।०।
गौ हेरावा हुं रे गई'ती, करमदां वीणी वीणी आले ॥१॥
काचां पाकां ने मीठां मधुरां, वीणी वीणी मुखमां घाले ॥२॥
गोकुलथी वृंदावन सीधारयां, जई मथुरा मां म्हाले ॥३॥
मीरांबाई कहे प्रभु गिरधर नागर, बोलडा हृदे मां साले ॥४॥

कुब्जा-भाव ३३८ (गुज०)

कुबजा नो शिखाव्यो मुने लूंटे, तमे लूंटो छो ब्रजराज आज ॥०॥
पंचरंगी पाघ केशरिया वाघा, कमर कसी ना छूटे रे ॥१॥

मोर मुकुट शिर छत्र बिराजे, कुंडळ झबके खुंटे रे ॥२॥
धीरे धीरे हाथ मत डालो मोहन, नथ दोरडो त्रुटे रे ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, मही की मटुकी मेरी
फूटे रे ॥४॥

रास-शृंगार		३३६

कुरबानी कुरबानी तुम पर कुरबानी कुरबानी ॥
एक बार करो मेहरबानी, तुम पर कुरबानी ॥०॥
गोरे गोरे अंगे भला सालुडा बिराजे । फरती जरक किनारी ॥१॥
गोरे गोरे अंगे अतलस की चोळी । ऊपर हार हजारी ॥२॥
वंद्रावन नी कुंज गली में, रास रमे गिरधारी ॥३॥
मीरांबाई कहे प्रभु गिरधर नागर, तुम जीते हम हारी ॥४॥

उपालम्भ		३४० (गुज०)

के दुनी कहुं छुं केडो मेल रे, पर घरीए जा मां रे ॥०॥
जळ रे जमुनानां नीर, भरवा ने ग्यां तां अमे ।
मावे लगाडी मोहन वेल रे ॥१॥
पर नारी वीखडां सुधी वेल हो,
पर घरीए जा मां रे ॥२॥
सघळु कुटूंब रे तारूं वढ़वाने लाग्युं,
वढ़ीने करशे तुंजा वेर रे ॥३॥
तांबा पीतळ नी तारे घांणीयुं करावे,
पीली ने काढ़शे तुंजा तेल रे ॥४॥
बाई मीराँ कहे छे प्रभु गिरधर ना गुण (व्हाला),
रही गई छे रूधिया सुधी रेल रे ॥५॥

राधा-गोपी ३४१ (गुज०)

चाल तो वृंदावन जईये राधे प्यारी, चाल तो वृंदावन जईये ॥०॥
जल जमुना को शीतल पाणी, चंदन लेकर घसिये ॥१॥
वृंदारे वन की कुंज गलन में, ताली लेकर हसिये ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, मोरली बजावी पेले रसिये ॥३॥

दर्शनानंद ३४२ (गुज०)

छानो मानो आवे कहान, पाछलीज राते रे ॥०॥
वेणुं मांहे भेरव गायो, आवेने प्रभाते रे ॥१॥
सम खाईने सूती हती, नहीं बोलुं हरि साथे रे ।
द्वार उघाडी पाये लागुं, मोरली केरा नादे रे ॥२॥
एवुं सुख में कदी नव दीठुं, नंदजी ने राजे रे ।
दास मीराँ नो स्वामी मळीओ, आहिरडांनी जाते रे ॥३॥

प्रेम-ज्ञान ३४३ (गुज०)

गिरधारी रे, अमने गेलां करी मत जासो रे गिरधारी ॥०॥
सेवा बहु नामी रे अमने, माया लगाडी मत जासो रे ॥१॥
तमारे हमारे प्रीतडी वा'लीडा, तमारे हमारे नेडो लाग्यो रे ॥२॥
त्रागडो होय तो तोडीए वा'लीडा, प्रीतु तोडी केम जाय रे ॥३॥
गोकुळ गामनी गोवालणी, मथुरां नगरमां घेलां किधां रे ॥४॥
कूवो होय तो गाळीए वा'लीडा, समदर गाळ्या केम जाय रे ॥५॥
खेतर होय तो खेडीए वा'लीडा, डुंगर खेड्या केम जाय रे ॥६॥
पोपट होय तो पाळीए वा'लीडा, काग पाळ्या नव जाय रे ॥७॥
उंडा जळनी माछली वा'लीडा, पलकमां निकल गई बारी रे ॥८॥
वृंदावन मां रास रच्यो छे वा'लीडा, मोरली लागे पियारी रे ॥९॥
बाई मीराँ कहे पिया गिरधर नागर, चरण कमल पर वारी रे ॥१०॥

अभिलाषा   ३४४

गोवालण कहो तो वृंदावन वसीये,
गोवालण चालो तो वृंदावन वसीये, मेरा दिल में ऐसो आवे ।०।
इत गोकुल उत मथुरा रे नगरी, बांसरी बजाई रंग रसिये ।
हांरे लाला मोरली बजाई रंग रसिये ।।।१।।
बंद्रावन की प्रभु कुंज गलिन में, अधर अमृत रस चखिये ।
हांरे लाला कृष्ण-कथा रस चखिये ।।२।।
मोर मुकुट शिर छत्र विराजे, भ्रुकूटी कमान जेसी रच कसिये ।३।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, रंग ताली लई हलिये ।।४।।

जल-भरन   ३४५

घडुलो च्हडाव रे गिरिधारी ।।०।।
सोना गगरियां रूपला घडुलो, उढाणी रतन जडावी ।।१।।
में जाती जल जमुना भरन को, हंस कर ककरी डारी ।।२।।
बिंद्राबन की कुञ्ज गलन मैं, नाचत राधे प्यारी ।।३।।
दास मीराँ ने लाल गिरधर, चरन कमल चित वारी ।।४।।

प्रेमालाप   ३४६ (गुज०)

जमुना ने तीरे मारो वा'लो, मोहन ने जोवा चालो रे ।।
मोर मुकुट ने काने कुंडळ मोहन मोरली वालो रे ।।१।।
आज एकांते मळ्यो रे छबीलो, घेरीने घरमां घालो रे ।।२।।
फरी फरी आवो लाग न आवे, तमे मनुषा देहमां महालो रे ।।३।।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित घालो रे ।।४।।

श्रीकृष्ण जन्म   ३४७

जशुमति एक पुत्र जायो, रूप गुण अगरो ।
श्री गोविंद पुरणचन्द, तारण जुग सघरो ।।०।।

मेरे श्रवण बनक पडी, वाजत है घुघरो ।
आधी रेन अंधियारी, बरसत है बादरो ॥१॥
श्री गोकुल में भीड भई, मिलत नही डगरो ।
एक आवत बिदायत होत, एक करत झगरो ॥२॥
प्रात समे कहे मीराँ, चल न सके पगरो ।
पुरण प्यारो प्राण-आधारो, जीवननन्द नन्द रो ॥३॥

गोपी-भाव ३४८ (गुज०)

जावो मां जावो मां रे, मारा वा'ला मथुरा मां ॥०॥
माधोंरी पुरी नो लोक ठगारो, बिसवासै नै तुम ध्यावो मां ॥१॥
उले पाये गंगा ने पेलै पाये जमना, बीच में बांसुरी बजाव मां ॥२॥
कंस राजा नी कुबजा दासी, जूठडा सम शिद खाव मां ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, अमृत पाव विष पाव मां ॥४॥

गोपी-भाव ३४९ (गुज०)

तुं तो आवने सहियर, मारी गावलडी दोवा,
मीसे मीसे मोहनजीनुं मुखलडुं जोवा ॥०॥
सांज सवारे मध्यान्ह काळे, धारा नव चूके ।
कामधेनु नुं दुझणुं कोई, काळे ना खूटे ॥१॥
दुझणा मां मोज घणेरी, जाणे ते माणे ।
बाखडलीना दूध मां तो, जमे ते जाणे ॥२॥
जेने संपत शामळीयानी, तेने शानी खोट ।
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, मोटी थारी ओथ ॥३॥

मयुर-प्रशंसा ३५०

देखोरी माई, ए बडभागी मोर ॥०॥
उंचे सिखर पर घमड करत है, बैठा करत किलौर ॥१॥

मोर पांख को मुगट बणत है, धारत नन्दकिशोर ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, मोहन चित के चोर ॥३॥

गोपी-भाव ३५१

नथ मारी दीजे हो ब्रजवासी ॥०॥
रास रमंतां नथ मारी गमगी, सबकु ओलंबो आसी ।
ग्वाल बाल सब मिलकर ढूंढो, ग्वालन भई उदासी ॥१॥
थें वृन्दाबन रास रमोला, रास रमण कुण आसी ।
मैं तो मारे पीहर जासां, बाबल ओर घडासी ॥२॥
गोकुळ में एक सोनी बसत है, बावल उनकु बोलासी ।
समदरिया में सीप निपजे, उनका मोती पोवासी ॥३॥
थें जाणो फबी मौपत में, × × × में जासी ।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवळ की दासी ॥४॥

गोपी-प्रेम ३५२ (गुज०)

नवलख धेनु बाबा नन्द घेर दूझे ।
प्रेमना पियाला भरी पी जाओ, मीठी मोरली वाला रे ॥०॥
माट तो रोकेलो छे मारो, लई जाओ जशोदा ना जाया रे ॥१॥
काले वढया'ता तेनो धोखो न धरीयो (व्हाला) ।
आज तो आवो तो तेवुं कही जाओ ॥२॥
महीडां पीवाने तमे मंदिर पधारो (व्हाला) ।
दसवीस दहाडा महोले रही जाओ ॥३॥
बाई मीराँ कहे छे प्रभु गिरधर नागर ।
प्रीतु करो तो संग लई जाओ ॥४॥

दान-लीला ३५३ (गुज०)

नहीं दऊं, नहीं दऊं, नहीं दऊं रे ॥०॥

कहाना, आजे तमने दाण नहीं दऊं,
तारो जुलम ते हुं केम सहुं रे ॥१॥
आवडो जुलम शोरे करे छे, मारी पूंठे पूंठे फरे छे रे ॥२॥
लाख टकानुं गोरस मारूं, वेपार करीने खोट केम सहुं रे ॥३॥
पाधरे मारग जाओ पातळीआ, झाझुं करशो कंस ने कहुं रे ।४।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरण कमळ चित्त हुं रहुं रे ॥५।

उद्धव-लीला ३५४

प्रीति तूही नही जानी रे, उद्धवजी ॥०॥
राधा अरू ब्रज बनिता छांडी, कुबजा की पटरानी ॥१॥
पहिली प्रीत करी हरि हमसुं, अब तो जाप जापे ब्रेहानी ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरन कमल लीपटानी ॥३॥

दर्शनानन्द ३५५

निशदिन लाग्यो रे तेरो ध्यान गोपाल ॥०॥
बंसी की धूनि सुनी भई बावरी, सर्वस त्यागो रे ॥१॥
बृंदाबन की कुंज गलन में, आनंद जाग्यो रे ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, ए भव भय हवे भाग्यो रे ॥३॥

निश्चय ३५६ (गुज०)

मथुरा मां जावाने हरि नहिं दऊं जो,
मने मुकीने कां तमें जाओ छो ने ॥०॥
मने तम विना घडी गांठे नहिं जो ।
जळ विना तलपे छे जेम माछली जो ॥१॥
का'ने गोकुळ मां कपट घणां कीधलां जो ।
गोपीनां गोरस चोरी ने पीधलां जो ॥२॥
घणा लोक कहे छे कानुडो कपटी छे जो ।
एना हाथमां कपटनी चपटी छे जो ॥३॥

मीराँ कहे छे गिरधर नागर सांभळोने ।
तमे मुकीने मननो आंमळोने जो ॥४॥

विरह ३५७ (गुज०)

मने कोई मेळो रे गोकुळियावाळो गारूडी ॥०॥
जेरे जोईए तेने त्यां माग्युं आलुं ।
आलुं मारा हैया केरी हाटडी ॥१॥
माथे मटुकी मारी महीनी भरेली ।
प्रेमे भरेली मारी पारडी ॥२॥
बाई मीराँ कहे छे प्रभु गिरधर ना गुण ।
चरण कमल जोऊँ वाटडली ॥३॥

दधि-बेचन ३५८ (गुज०)

मलपति महीयारी आवे, माथे महीनी गोळी रे ।
मही लो, मही लो, गिरिवरधारी, भणे ते भामनी भोळी रे ॥०॥
घरमांथी गोविंदजी आव्या, गोरस नाख्या ढोळी रे ।
सवा लाख नो घाट घडुलो, हीर कसबनी दोरी रे ॥१॥
चाल्यो जाने कुंवर कनैया, मही मारूं ढोळाशे रे ।
चणीयो भींज्यो मारो साळु भीज्यो, भींजी कसुंबल चोळी रे ॥२॥
लाखनो रे लेंघो ने लाखनो रे साळु, सवा लाखनी चोळी रे ।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, राधाने रंगमां रोळी रे ॥३॥

दधि-बेचन ३५६ (गुज०)

मही वेचवा नीसरचां, मोहनजी, अमे मही वेचवा नीसर्यां ॥०॥
सरखा रे सरखी मळी रे गोवालन, शिर पर माट धर्यां ॥१॥
दीठा पहेलां अमे डगी नव शकीए, प्रीते प्राण हर्यां ॥२॥
तमने मेलीने अमे केने भजिए, नजरो मां निहाल कर्यां ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, कारज मारां सखे सर्यां ॥४॥

प्रेम ३६० (गुज०)

मागेलो मागेलो देजो, राधानो कानुडो मागेलो देजो ॥०॥
आजनी रजनी अमे रंग भरे रमीए वाहाला ।
प्रभाते उठीने पाछा लेजो ॥१॥
हाथी ने घोडा वळी माल खजाना ।
वेल तो सजुती मारी लेजो ॥२॥
कल्लां ने कांबी वळी अणवट विछुवा ।
हार तो हैया नो मारो लेजो ॥३॥
चुन चुन कलिये वा'ला सेजतो बिछावुं ।
सेज पर पावल धरजो ॥४॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
चरण कमल चित रहेजो ॥५॥

उपालम्भ (कुब्जा-भाव) ३६१

क्यूं कर म्हे दिन काटाँ (नाथजी) थे तो म्हाँसूं अंतर राखौ (नाथजी)
राखौ कपटी आँटाँ ॥०॥
कुबज्या दासी कंसराइ की, फिरती कपड़ा फाटाँ ।
वाकूँ तो पटराणी कीन्ही, पहरै रेसम पाटाँ ॥१॥
बाजूबंद मूँदड़ी अँगुली, नख सिख गहणौं साटाँ ।
पहर कूबड़ी न्हावण चाली, जल जमुना कै घाटाँ ॥२॥
धाँन न भावै नींद न आवै, चिंता लगी निराटाँ ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, देख देख हियो फाटाँ ॥३॥

राधा-भाव ३६२

भली जु बनी वृषभाननंदनी प्रात समे रणजीत आवे ॥०॥
मुख पर स्वेद अलक लर छूटी मधुरी चालि गजगति लजावे ॥१॥

मोहन छेल छबीले नागर सुरत ही डोरीया झूलत गावे ।
दोऊ सुभट रण बेल महारस त्रासत मदन ठोर नहिं पावे ॥२॥
हरी के नख रूचि हृदय विराजीत बिन तारावली हार दिखावत ।
मीराँ प्रभु गिरिधर छबि निरखत बदन कोटि रवि जोति लजावत ॥३॥

विनय   ३६३

आवि गोकुल को निवासी ॥०॥
मथुरा की नारि दीख आनन्द सुखरासी ॥१॥
नाचती गावती ताल बजावती करत विनोद दासी ।
यशोदा को पुरण पुण्य प्रगटहि अविनासी ॥२॥
पीतांबर कटि विराजीत उर गुंजा सोहाशी ।
चानुर मुष्टिक दोउ मारे कंस के जीअ त्रासी ॥३॥
जादी के मनि जेसो भाव तिसी बुधि प्रकाशी ।
गिरीधर से नवल ठाकुर मीराँ सी दासी ॥४॥

शृंगार   ३६४

जमुना किनारे ठाडे श्याम हो धेनु चरावे ॥०॥
लाली लालक लाली लोचन, लालन के मुख चाबत बीरा ।
लाल बनी कुछ काची प्यारो, लाल खडो जमुना के तीराँ ।
गोविंद हरि की या शोभा, लाली कंठ विराजत हीराँ ॥१॥
पीरे आंगन पीरे मोहन पीली पाग बनी सिर उपर ।
पीलो पीतांबर ओढ्यां प्यारो पीला कुंडल झलकत कानां ।
गोविंद हरी की या शोभा, पीलो मुकुट लगायक ठाडो ॥२॥
अध गोकुल अध मथुरा नगरी बीच बहे जल धारो प्यारो ।
हलमल जल जमुना को कारो लेकर चीर कदंब पर ठाडो ।
गोविंद हरी की या शोभा, नीचे सखियाँ निरत करत हैं ॥३॥

विन्द्रावन में धेनु चरावे खेलत गेंद पड्यो जमुना में ।
पैठ गयो पाताला माँही नागण मलगी कारी ।
नागण उभी अरज करे छे ।
गोविंद हरी की या शोभा, काली नागज नाथ कहवाये ॥४॥
कारे आंगन कारे मोहन, कालींदी के तीराँ प्यारो ।
कालो नागज नाथ्यो उसके फण पर नृत्य करत है ।
गोविंद हरी की या शोभा, काली नागज नाथ कहवाये ॥५॥
धोली सेली शाल दुशाला, धोली कोर बनी दुपटा की ।
दोनों हाथ कडां बिच सोहे ।
गोविंद हरी की या शोभा, मीराँ उभी मंगल गावे ॥६॥

रास-रहस्य ३६५

रास रच्यो बंसीवट जमुना तादिन कीनो कोलरे ॥०॥
पूरब जन्म की मैं हूँ गोपिका अधबिच पड़ गयो भोल रे ॥१॥
तेरे कारन सब जग त्याग्यो अब मोहें करसों लोल रे ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चेरी भई बिन मोल रे ॥२॥

कुब्जा-भाव ३६६

गिरधर मीठा लागे थारा बोल ॥०॥
बालपने अमां भेला रमता, कदही न पायो तोल ॥१॥
एक संदेसो कहियो सजनी, कुबजा के संग मत डोल ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, कैसे बजावु ढोल ॥३॥

उत्कंठा ३६७

किसविध देखण जाऊँ ए माय ।
किस विध निरखण जाऊ ए माय० ॥०॥

फाड़ूंगी चीर करूंगी भगवा,
जोगण होय घर जाऊँ मोरी माय ॥१॥
क्रीट मुकुट कानों बिच कुण्डल,
सोनण होय घर जाऊँ मोरी माय ॥२॥
मीराँ बाई के हरि गिरिधर नागर,
हरि चरणां गुण गाऊँ मोरी माय ॥३॥

प्रेम ३६८

म्हारी बालपन की परीति थे नभाज्यो कान्हा ।
जमुना के तीरां तीरां धेनु चरावै बंसी बजावै गावै ताना ॥१॥
मोर मुकुट पीतांबर सोहै कुंडल झलकत काना ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरनो माहरो धाना ॥३॥

राधा-भाव ३६९

जावा दे गुमानी कृष्ण म्हाँरे घर काम छे ॥०॥
थें हो लँगर नंदमहर के, ब्रज बरसाने म्हाँरो गाम छे ॥१॥
जानो नहीं तो पूँछ लीजो, श्री राधा म्हाँरो नाम छे ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, नाम थाँको बदनाम छे ॥३॥

प्रेम ३७० (गुज०)

लेह लागी मने तारी अल्याजी, लेह लागी मने तारी ॥०॥
काम काज मूकयुँ ने घामज मूकयुँ, मनमाँ चाहुँ छुँ मोरारी॥१॥
खभे छे काँमली ने हाथमाँ छे वाँसली, गोकुलमाँ गायो चारी॥२॥
सोल सहस्र गोपियों ने तमे वरिया, तोय तमे बाल ब्रह्मचारी ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल बलिहारी ॥४॥

जल-भरन ३७१

गगरी उतार रे वनमाली, मटुकी उतार रे वनमाली ॥०॥
मेरे शिर पर बोज है भारी, गगरी उतार रे वनमाली ॥१॥

सोने की गगरी रूपला इंढोणी, भर गई राधे प्यारी ॥२॥
जल जमना की चीकनी मट्ठुडी, लस गई राधे प्यारी ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, नजर कारे की कारी ॥४॥

उपालम्भ ३७२

कहाँ वसीयां मोहन रातरडी ॥०॥
कोण तमारो नाम कहीजे, कोण तमारी जातरडी ॥१॥
भक्तवत्सल मेरा नाम कहीजे, जादु अमारी जातरडी ॥२॥
का सतभामा के मेहेल पधारे के कुबजा से लागे वातरडी ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर आय मिले परभातड़ली ॥४॥

नटखटपन ३७३

जसोदा मैया तेरो लड़को नीको ॥०॥
बछवा छुडाय मोरी गउवाँ चुखाय दीनी ओर उतारयो महीको॥१॥
दूध दही की मथनिया फोरी माँट फोरयो गह छींको ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरि बिन सब जग फीको ॥२॥

प्रेम ३७४

काना कांकड़ी मत मार श्याम मारी फूटे गागरी ॥०॥
आंधा जो डोले बैहरा जो डोले हाथों में लाकरड़ी ।
रस्तो बतावन में गई रे प्रभु छुट गई लाकरड़ी ॥१॥
एक समय मैं बन में निकली संग में साथरली ।
साथरली तो बिछर गई रे प्रभू रह गई एकरली ॥२॥
एक समय मैं सेजां में सूती सूती एकरली ।
कृष्ण मुरारी बाँह मरोरी खुल गई आँखरली ॥३॥
माता जसोदा मयो बिलोवे उबी एकरली ।
माखन मिश्री कानो खाग्यो ढुल गई छाछरली ॥४॥

मारे घरे तो गाय मिलत है भैंसा बाकरली ।
मीराँ ने तो गिरधर मिल्या दूध में साँकरली ॥५॥

विरहालाप ३७५

पल पल में याद आवे रे मोहन की बातड़ली ॥०॥
सोहनी सुरत मन मोहनी मुरत पर हो रही मासड़ली ।
वंसिया बजाय मेरो मन हर लीनो, कस गई पावड़ली ॥१॥
दिन नहीं चैन रैन नहीं निंद्रा, तरसत आँखड़ली ।
दरस दिखाकर प्राण बचावो, हो रही व्याकुलड़ी ॥२॥
नीसदिन ध्यान रहे घट माहीं जोवूँ बाटड़ली ।
प्यारी लागत श्याम तुमें कुब्ज्या की खाटड़ली ॥३॥
मैं तो दासी जनम जनम की बन रही चाकरड़ी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर मत कर आकड़ली ॥४॥

गोपी-भाव ३७६

बतलादे सखी बतलादे मुझे, घनश्याम सुन्दर गये कौन गली॥०॥
बागां ढूँढ बगीचा ढूँढ्या, फूलों की ढूँढ़ी कली कली ॥१॥
मथुरा ढूँडर गोकुल ढूँढ़ी, वृन्दावन की ढूँढ़ी गली गली ॥२॥
राधा ढूँढ रूकमण ढूँढ़ी, कुब्जा की ढूँढ़ी गली गली ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, कृष्ण को ढूँढूँ गली गली ॥४॥

कालीदमन ३७७

छोटोसो र कन्हैयो काली दह पर खेलन आयो रे ॥०॥
काहूँ का तो गेंद बनाया काहुँ का डंडा लायो रे ।
रेशम को तो गेंद बनायो चंदन डंडा लायो रे ॥१॥
यमुनाजी में कूद पड़्यो है नाग नाथ कर लायो रे ।
काँध कमलियाँ हाथ लकड़ियाँ बंशी बजातो आयो रे ॥२॥

मथुराजी में जन्म लियो है जशोदाजी गोद खिलायो रे ।
काली दह में नाग को नाथ्यो फण पर नृत्य करायो रे ॥३॥
डांवा नख पर गिरवर धारयो इन्द्र को गर्व मिटायो रे ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणा चित्त लायो रे ॥४॥

राधा-भाव ३७८ (गुज०)

राधेजी ! थांरे पाछे कई जादु छे, जादु छे कई टोनाए ॥०॥
थें जबरी गोरी पुजीए थें जबरी गौरी पुजीए,
थारे बस गयो प्रभुजीए ॥१॥
थें कस्या देव ने साध्योए, विठल वर बस कर बांध्योए ॥२॥
म्हारे वांरे घर वांने नथी गमतो, थांरे पुठल पुठल फिरतोए ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल चित धरतो ॥४॥

पदों के शब्दार्थ-भावार्थ-विशेष आदि
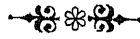
पाठान्तरः—

लागे मोही बृन्दाबन छब नीको,
नीको नाम हरि को लागे मोही बृन्दाबन नीको ॥०॥
जल जमुना ऐ आचमन भोजन ऐ दुदु दई को ॥१॥
रतन सिंगासन आप विराज्या ऐ मुकुट धर्‍यो तुलसी को ॥२॥
घर घर तुलसी ने घर घर सेवा ओर दर्शन गोविन्दजी को ॥३॥
बृन्दाबन की कुंज गलियन में शब्द सुन्यो ऐ मुरली को ॥४॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरि बिना लागे सब फीको ॥५॥

२—हमभई········बैनां=हम कोई सुन्दर पुष्प या लता वेली बनकर बृन्दावन के पशु, पक्षी, वानर और मुनि जनों के मधुर शब्दों को सुनते हुए सदा बृन्दावन में निवास करें। कानि=लज्जा।

पाठान्तरः—

जोहने गुपाल फिरूँ——
पा—यों आवति मन मैरी मोहि न गोपाल फिरोंरी।
निरखत ही बारिज बदन अति विवस भई होंरी॥

अन्य पाठान्तरः—

गोहनां गोपाल फिरू एसी आवत मन मिरी।
बारीज बदन अवलोकत बिवस भई तन मिरी ॥१॥
मुरली कर लकुटी लीए पीतांबर धारू।
काछ बढुँ गोप वेख गोधन बन चारूरि ॥२॥
क्यों न भई गुलम लता बृन्दावने रहेनों।
खग म्रीग पशु थकीत भए श्रवण सुनत वेनां ॥३॥

गोर जन सब बरजि को उपाय कीजे ।
मीरां प्रभु गिरीधर बिनु कोहो किसे करी जीजे ॥४॥

विशेषः—यह पद हृदय में व्रजरस की प्रेम तरङ्गों के उठते समय मीरांबाई ने गाया हो ऐसा प्रतीत होता है । भक्तराज उद्धव जी ने भी गोपियों के विलक्षण प्रेम का अनुभव कर इसी प्रकार की अभिलाषायें व्यक्त की हैं:—

आसामहो चरणरेणु जुषा महं स्यां,
वृन्दावने किमपि गुल्म लतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजन मार्यपथं च हित्वा,
भेजु मुकुन्द पदवीं श्रुतिभि र्विमृग्याम् ॥

श्री मद्भागवत १०।४७।३१

इन महाभागा गोपियों ने कठिनता से छोड़े जा सकने वाले बन्धुओं और लौकिक व्यवहार मार्ग को त्याग कर श्रुति जिसकी खोज करती है, उस मुकुन्द पदवी का अनुसरण किया है । अहो ! क्या ही उत्तम हो, यदि मैं आगामी जन्म में इस बृन्दावन की लता, औषधी या झाड़ियों में से कोई होऊँ, जिन पर इन गोपियों की चरण धूलि पड़ती हो ।

४-**विशेषः**—महात्मा चरणदास जी की शिष्या सहजो बाई भी इसी भाव में अपना स्वर मिलाती है—:

मुकुट लटक अटकी मनमाहीं ।
नृत्यत नटवर मदन मनोहर कुंडल झलक पलक बिथुराई ॥१॥

६—पाठान्तरः—

प्रथम पंक्ति **'सांवरिया'** के स्थान पर **'हरिया'** ।

विशेषः—भगवान के अनन्त ऐश्वर्य की ओर लक्ष्य करके सन्त सहजो बाई भी इसी भाव में पुकार उठती है:—

बंशी में गावे मीठी बानी

[पृ० ५१०, पद ५

तेरी गति किनहुँ न जानी हो ॥०॥
ब्रह्मा सेस महेसुर थाके, चारों बानी हो।
बाद करंते सब मत थाके बुद्धि थकानी हो ॥इत्यादि।

८—झिलोरा खावे=विकल हो उठता है।

१०—हाथ............रही=पछताती रह गई। तई=संतप्त रही। बिखर.........गई=टूक टूक क्यों न हो गई। कठिन छाती.........नागई=श्यामसुन्दर के बिछोह में विरह ज्वालाओं से संतप्त होने पर भी छिन्न भिन्न न होने वाला, हाय, कैसा यह कठिन हृदय।

१३—शाने=क्यों। सहीयरो ना साथ मां=सहेलियों के साथ में। सम=सौगन्ध। नहानी=छोटी। आप्युं तुं=दिया था। लागमां=दाव में। भलो......लागमां=अच्छा दाँव साधा। काला=अधीर। शुं थावछो=क्यों होते हो। पेखे=देखती है। आव्या छो.........हाथ मां=मेरे हाथ में आये हो।

१४—बेड़ा=घड़ा, मटकी। आपो=दो। साव=शुद्ध। खरशे=टूट जायगा। कूंडु=अन्याय पूर्ण।

१६—अमे.........आवीए=हम क्यों कर आवें। नाखोने=डालदेना। को.........हेठोरे=कोई तो उसे नीचे उतारो।

१७—तलभर.........पाछोले=कान्ह जौ भर से तिल भर भी घटा बढ़ा नहीं यदि शङ्का हो तो जौ से तोल कर ले लो।

१९—सोक लडीनुं साल=सौत का कांटा। वळावो=भेजो। हावे.........खोटुं=अब मेरा यहाँ रहना अनुचित है। कुवेरे पड़ीशुं=कुवे में गिरेंगी। बखडारे पीशुं=विष पियेंगी। जीव्यानुं=जीने का। आल=कलङ्क। चोंटु=लग गया। मेणुं=उलाहना। नाना.........मोटुं=छोटा देवर बढ़कर बातें करता है, ताने कसता है। ओडुं=आधार, सहारा।

२०—खस्योने=सरक जायगा कि। मूजने बढ़शे=मुझसे झगड़ा करेगा।

२२—जीवण जोवाने = प्यारे को देखने को। महीनी.........
लइ = दही की मटकियाँ शिर पर लेकर। सहु = सब। तेणे............
शमावशेरे = वह सब दुःख मिटा देगा। मावजी = प्रियतम।

२३—हेमनी = स्वर्ण की। काचे ते तांतणे = कच्चे धागे से।
जेम खेंचे.........तेमनी रे = जिधर खींचेंगे उधर उधर की।

पाठान्तरः—

प्रेमनी प्रेमनी० इस कडी के आगे
हैडा मां मूने हरि वर पां लारे
जांउ छुं जेमनी तेमनी रे, मने लागी कटारी प्रेमनी रे ॥०॥
जल भरवामां गरबा गमाया, माथे गागर रही हेमनी रे ॥१॥
बाजुबंद गोडा वरखा बिराजे, हाथे वींटी छे हेमनी रे ॥२॥
सांकडी शेरी मां बहालोजी हु जाई, खबर पूछुं छुं खेमनी रे॥३॥
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, भक्ति करूं छुं नित तेमनी रे ॥४॥

२५—तारे......शु छे = तुम्हारे और मेरे क्या है। आगल......
घेरे = आगे आकर क्यों घेरते हो। पालव............मेरे = आकर
पल्ला क्यों पकड़ते हो। गोपीओ ने........लडावे = गोपियों को लाड
लडाते हैं।

२६—आठ........हरि ने = आठ दिन की अवधि कह कर
गये थे श्यामसुन्दर को छः महीने हो गये।

२७—ताली = स्नेह, प्रेम।

३०—आंबो मोर्यो = आम को बौर आया। मारे.........वेड़े =
मेरे आंगन में आम को फल आये हैं देखकर कन्हैया ने आकर उन्हें
गिरा-लिया-मेरे हृदय के प्रेमांकुरों को फले फूले देखकर कन्हैया ने अपना
कर मेरा जीवन सफल किया। पड्यो छे.........केड़े = मेरे पीछे
लगा है।

३१—खोटी थाऊँ तो = देर होने पर। वढे = कलह करती है।

३२—आतो मोढु=यह तो मुँह, इस सूरत से। अमो.........खेंचाताण=हम अबला ही नहीं सबला भी हैं, हे सुकुमार श्यामसुन्दर, इतनी खींचातानी क्यों ?

३३—लाल ने लीधां=श्यामसुन्दर ने नयनों द्वारा चित्त को चुरा लिया। घुंघटडमां.........लीधां=घूंघट में रही हुई हमें घेर लिया। भ्रमर.........लीधां=भ्रमर के समान सेज का सुख लिया।

३६—का'नी मखे=किस ओर। छाबड़िया मां=डलिया में।

३७—आलीगारो=धूर्त, ठगोरा। आळ करे छे=दूषण देता है, लाञ्छन लगाता है। पालव.........ताणी ने=खींचकर मेरा पल्ला पकड़ा। सांख्यु=सहन किया।

३६—सहीयर.........पाऊँ=सहेलियों के देखते कैसे पिलाऊँ। थइ बेठा=हो रहे। थाऊं=होऊँ।

४१—पलकारो=कटाक्ष। तन.........झांखी=सुकुमार अङ्गों को झाँख झाँख कर देखा। चालवणीया मां.........लीधां=अपनी अनोखी छटा भरी चाल से चित्त हर लिया। भूरकी नाखी=वशीकरण किया।

४२—वाडीओ भेलाड़ी=बगीचियें उजाड़ दी।

४४—अधिक चरण:—

जो मैं होती बन की हरिणियाँ।
आप चरावो धेनु वेणुरस लेती है माधो ॥१॥
जो मैं होती धूल की रजियाँ,
आप चरावो धेनु चरण रस लेती है माधौ ॥२॥
जो मैं होती रूख चन्दन को,
आप करो शृङ्गार भाल रस लेती है माधौ ॥३॥

गाढ़ो=दृढ़, कठोर।

४७—चार.........बरसाळो=सारा शीतकाल श्यामसुन्दर बिना ठिठुरते बीता पश्चात् ग्रीष्म काल की लम्बी अवधि भी विरहाग्नि

में जलते ही बीती, तब कहीं वर्षा ऋतु की प्राप्ति पर श्यामसुन्दर पधारे और मेरे हृदय को हरा भरा कर मुझे आनन्द में सराबोर कर दिया-मेरे मरु-भूवत् संतप्त हृदय प्रदेश पर आनन्द की झड़ी लगा दी।

सारो=सहारा। परम·········कारो=जिस प्रकार काले नाग का विष रग रग में व्याप्त होता है उसी प्रकार सांवरे की मोहनी का प्रभाव रोम रोम में छा गया है। मोरचन्दो·········डारो=श्यामसुन्दर हाथ में मोरछल लेकर झाड़ फूंक करने लगे।

पाठान्तरः—

नहीं कोई वेद न वारो। विण आया विष उतरे ॥०॥
लहर आई बूंद व्याणी। जैसे डस गयो कारो ॥
जावो सखी तुम वेद लावो। एक नन्द को प्यारो ॥१॥
मोर पंख हरि हाथ लीनो। देवे कृष्ण झारो ॥
मीराँ ने श्री कृष्ण मीलीया। विष कीदो न्यारो ॥

४६-बल जाऊँ=बलिजाऊँ। होडे=ओढ़े, ओढ़ते हैं। कहान=कान्ह। गलनमें=गलि में। घेर=घर। गोवालन=ग्वालिन। गोवाल=ग्वाल। हजु=अभी तक। जंजीर=लड़, लड़ी। त्रट=तट। भींते=भीत में। बेर बेर=बार बार। चणाऊं=चुनावूं। ख्याल=पीछे।

५०—**विशेषः**—जिस प्रेम की भंग को पीकर श्यामसुन्दर की परम आराधिका और अनन्य प्रेयसी मीरांबाई अपनी ही मस्ती में छकी फिरती हैं, उस भंग की उन्होंने स्वानुभव से इस पद में क्या ही मार्मिक सुन्दर और भाव पूर्ण व्याख्या की हैः—

भावार्थः—गढ·········मंगायो=ब्रज लीलाओं का समस्त प्रेम वैभव और भावोत्कर्ष एक मात्र श्री राधारानी पर ही अवलम्बित है। एक प्रकार यों कहा जा सकता है कि ब्रज रस की भित्ती ही एकमात्र श्री वृषभानु किशोरी जी हैं। श्री राधा के बिना श्याम सुन्दर का ब्रज-जीवन ही नीरस व फीका पड़ जायगा। क्योंकि श्री राधाजी का प्राकट्य बरसाने में हुआ इसलिये समस्त ब्रजरस का मूल स्रोत बरसाने में ही है। जमुना·····बोवाई=ब्रज लीलाओं में यमुना का बहुत अधिक

महत्व है। श्री राधाजी व अन्य व्रज गोपियों के साथ की तथा और भी श्याम-सुन्दर की कई एक लीलायें अधिकतर यमुना तट वर्ती प्रदेश में ही हुई हैं। सब ········सींचण············चीर छणाई=श्री राधा-कृष्णानुराग के फलने फूलने का श्रेय ललिता विशाखादि उनकी सखियों और अन्य व्रजगोपियों को ही है। इन्हीं सब रसमर्मज्ञा सखियों के रस वर्धक और मधुर सहयोग के फल स्वरूप सारे व्रजभर में जहाँ तहाँ राधा कृष्ण ही की चर्चा होने लगी और चन्द्र चकोरी के समान उन प्रेमी युगल की लीलायें-प्रेम महिमा गाई जाने लगीं। सब······ पिलाई=सब व्रज गोपियों में श्री राधिका जी ही प्रधान नायिका-गोपीश्वरी हैं। वे केवल कृष्ण-प्रेमानुरागिणी ही नहीं अपितु सकल रसेश्वरी एवं समस्त भावों की खानि हैं। अँखियाँ में (ध्रुवपद-टेर)········ पिलाई तथा राधेजी ने (अंतिम चरण)········· नचाई=श्री कृष्ण प्रेमासव का आकण्ठ पान करके छकी हुई आरक्त नयना, मदभरी रसेश्वरी श्री राधिका जी ने नटवर श्याम सुन्दर के साथ कदम्ब के आश्रय में विविध प्रकार की अनेकों दिव्य और मधुर लीलायें की और उस लीलारस सागर की आनन्दमयी अनन्त उत्ताल तरङ्गों में श्री राधा-रानी तद्रूप होगई।

पद—पाठान्तर—कुछ इसी भाव का यह भी एक पद पाया जाता है:—

सांवरा ने भांग पीलावन आई, लालन छाई० ॥०॥

कठड़ा सुं रामजी मीरच मंगाई,

पण सखियां म्हारी कठाड़ा सु भांग मंगाई।

गोकुल सुं रामजी भांग मंगाई,

पण सखीयां म्हारी मथुरा सु मीरच मंगाई ॥१॥

काहुं की कुंडी रामजी काहुं का घोटा,

पण सखीयां म्हारी काहु की छन्निया बनाई ॥२॥

मन की जो कुंडी राम जी तन का यह घोटा,
पण सखीयां म्हारी सुरता की छबियां लाई ॥३॥
मीरांबाई के प्रभु गिरधर नागर,
पण सखीयां म्हारी रोम रोम छबि छाई ॥४॥

५३—भाभूँ = अधिक । थोड़े.........जणायरे = थोड़े में ही प्रेम समझ लिया जाता है ।

५५—छींकतड़ा = छींक होते हुये ।

५७—महीड़ो = दही । सेवरो = सेहरा, पुष्पादि विनिर्मित मस्तक पर धारण करने का अलङ्कार विशेष ।

विशेषः—इस पद की और भी निम्न नई कड़ियाँ पाई जाती हैं:—

फाड़ूंगी चीर करूंगी भगवा
जोगण होय घर जाऊँ मोरी माय ॥
क्रीट मुकुट कानों बिच कुंडल
सोनण होय घर जाऊँ मोरी माय ॥
मीरां बाई के हरि गिरधर नागर
हरि चरणा गुण गाऊँ मारी माय ॥

५८—वयणागी = अनुरागिनी, वैरागिनी । ताणी ने मारयां = खींचकर मारे । बाळी ने = जलाकर । कानुड़े.........खाख = श्यामसुन्दर ने हमें विरहाग्नि में पूर्ण रूप से जला दिया ।

५९—नाखेल = डाली । नाखे फेरी = घूमता फिरता है ।

६३—तेड्यां = बुलाया । शाख पुरावे = साक्षी देती है, छांट्या घोळी = घोलकर उछाला ।

६४—भाला = गुप्त संकेत ।

६६—श्याम तमाल = वृक्ष विशेष । ग्वाल.....मण्डल =

ग्वाल बाल सब अपनी अनुकूलता से रास नृत्य करने के लिये चहुं ओर सुन्दर मण्डल बनाकर खड़े हैं।

७०—माणेक ठारियां=शरद पूर्णिमा। पौंआ=चिवड़ा।

७३—रंगे ·········चटको जी=सब प्रकार से यह बानक बन गया, दोनों का अच्छा मेल मिल गया। दतुसर=प्रतिस्पर्धिनी, (सौत)। शीर······चटको जी=सिर पर ला रक्खी हैं। खोळामां =गोद में।

७५—मारा सम=मेरी सौगन्ध। पेला कह्यां=उन कहे हुये। ते पळजो=उन्हें निभाना।

८४—दव=दावाग्नि, कृष्ण विरहाग्नि। हालवा·········बली मरीये=हिलना चाहें तो हिल नहीं सकतीं और बैठी रहें तो जल मरेंगी। आरे·········फरीये=इस संसार में तो हमारा कोई ठिकाना नहीं, अब तो हम परलोक के मार्ग पर लगी हैं। झालो=पकड़ो। नीकर = नहीं तो।

विशेष:—श्याम सुंदर के बिना हृदय में जलती हुई विरह रूप दावाग्नि को शांत करने के हेतु एवं प्रियतम से मिलने को स्वयं असमर्थ और व्याकुल होकर उद्धव जी से उपाय पूछने वाली, गोपियों की इस स्थिति को बताते हुए मीरां बाई ने अपने हृदय के भावों का प्रदर्शन किया है।

८६—मुड़क=टेढ़ापन। भुँवारा=भौंहें। कुबाण तणी=खींची हुई कमान। बेन=वाणी। चटसाल=पाठशाला। भाण=भानु, सूर्य। सेल=भाला। अणी=धार।

९०—**विशेष:**—इसी भाव का रानी रूप कुँवरि जी का भी एक पद है:—

नाथ मुंहि कीजै व्रज की मोर।

इस पद के निम्न दो चरण उक्त पद के १ व २ चरणों के समान भावात्मक हैं:—

श्याम घटा सम गात निरखि के कूकोंगी चहुँ ओर । (१)
मोर मुकुट माथे के काजें दैहों पंखा टोर । (२)

६१—विशेषः—ये दो चरण अधिक पाये जाते हैं:—

एक अचम्भों हमको आवे कुब्जा बड़ी श्याम छोटो ॥१॥
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर मत हो हमसे ओटो ॥२॥

६५—पाठान्तरः—

१—चरण में—बीच लिये । २—चरण में—बिधना आप सँवारी । ३—चरण में—हौं हारी ।

६६—विशेषः—भक्तराज सूरदास जी का एक पद जिसकी टेर है "उधो हम वैरागिन श्याम की" तथा सन्त निर्भयराम जी का भी "उधोजी मैं वैरागिन हरकी"टेर वाला पद है । इन दोनों पदों में मीरांबाई के इस पद के अनुसार भाव साम्य व्यक्त है ।

१००—सुसगया·········गार=सरवर के सूख जाने से अब केवल कीचड़ ही रह गया इसलिये वहाँ से हंस उड़ गया अर्थात् श्याम सुंदर के पधारने से गोपियाँ निराधार और अनाथिनी हो गईं और उनकी प्रसन्नता अदृष्ट हो गई । कोई दिन······नीहार=किसी दिन मोती चुगने वाले हंस अब हिमकण--तुषार बिन्दुओं पर हो निर्भर रहते हैं । अमृत·········जाय=सर्वत्र श्याम मयी दृष्टि वाली अनन्य प्रेयसी गोपियों को छोड़ कर उस कुब्जा दासी से प्रेम किया । यमुना युक्त सुहावने व्रज प्रदेश को छोड़ कर द्वारिका के खारे जलनिधि के आश्रय में जा बसे ।

१०५—आड़ी-भीतड़ली=आड़ में दीवार आगई, कृष्ण और गोपियों के बीच में कुब्जा रूपी दीवार खड़ी हो गई ।

१०८—चोलना=चोला, साधुओं के पहनने का वस्त्र विशेष । घर घर·········जागै=भंवर के समान स्थान स्थान पर प्रेम रस चखता है ।

पद-पाठान्तरः—

थारो दिल कुबज्या से राजी० ॥ टेर ॥

हमें कहे शृँगार उतारो दृग अञ्जन कजरा धोय डारो ।

{ अंगन भभूत रमावो पहरो / माथे तिलक बनाओ } चोलना महाराज ॥१॥

{ हमरी कही ज़हर विष लागे / हमारो कहो सुनो विष लागो } { कुब्जा संग जा प्रेम रस चाखे / उनके जाय भवन रस चाखो }

{ उनहीं के संग रहना हंसना / वासे हिल मिल रहना } { बोलना महाराज ॥२॥ / धँसना,

{ यमुना तट पर धेनु चरावत / जमुना के तट धेनु चरावे } { बंशी में कछु अचरज गावत / बंसी में कुछ अचरज गावे }

{ मीठी तान सुनावे छतियाँ / मीठी राग सुनावे } { छोलना महाराज ॥३॥ / मीठो बोलना … }

आप न आवे पतियाँ पठावे । बिन दर्शन जियरा ललचावे ।

मीराँ के गिरिधारी बन बन डोलना महाराज ॥४॥

१०६—सागर………पयाना=श्याम सुन्दर के पधार जाने से सब गोपियों के मुख कमल मुरझा गये और उनके मन व प्राण भी उन्हीं के साथ चले गये, अर्थात् श्याम सुन्दर के वियोग में शरीर में प्राणों के रहते हुये भी गोपियाँ निर्जीवसी होगईं । भौंरा मत आना=भ्रमर के समान पुनर्मिलन की आशा ही आशा में देह में प्राण तो रह गये पर फिर मिलने का संयोग नहीं हुआ ।

११४—पद पाठान्तरः—

साने मारो मन कांकरी, रे कान शाने मारो ॥०॥

गायो भेंसो तारे हमणां थई छे, आगे न ती घरे बाकरी ॥१॥

पाट पीतांबर हमणां तु ंपहेरे, आगे ओढवा न ती धाबरी रे।।२।।
मेडी ने म्हेल तारे हमणां बन्या छे, आगे ता छाई न ती छापरी-रे ।३।
बाई मीरां कहे प्रभु गिरधर ना गुण, शरणे राखो तो करू ं चाकरी ।४।

११६—**विशेष:**—इसी भाव में बहते हुये महात्मा सूरदासजी अपने एक पद में किसी गोपी द्वारा गवाते है:—
"उधोजी मैंने सब कारे अजमाये" । मीरांबाई के उक्त पद की ३ री कड़ी के भावानुसार वह गोपी उद्धव जी से सुनाती है **"कारे भँवरा मद के लोभी कली देखि मंडराये, जब यह खिलकर गिरी धरनी पर फेर दरस नहीं पाये"** और जैसा कि मीरांबाई ने **"कारे को विश्वास न कीजै"** कह कर श्याम वर्ण के प्रति कटाक्ष रूप से अपना अरुचि का जो भाव व्यक्त किया है, अपने पद के अन्त में सूरदासजी भी इसी प्रकार गा उठते हैं **"कारे की परतीति न कीजे"** ।

१२६—पाठान्तर:—

मैया ले थारी लकरी, ले थांरी कांवरी
लेने लकडी रे लेने तुरी कामली
गायो तो चरावबा नहिं जाउं मावलडी ।।०।।
अंतमें—मीराँ.........................नागर
चरण कमल चित राख लडी रे ।।

१२७—कोइ क दिनां.........भरगार=किन्हीं दिनों जो हंस मोती चुगते थे आज उन्हें जुवार खाने को बाध्य होना पड़ रहा है, और जो हंस किन्हीं दिनों सागर के अनन्त जल में बिहार करते थे उन्हें ही अब नदी तट पर आना पड़ा है जहाँ कि जल के सूख जाने से केवल कादौं—कीच ही शेष रह पाया है अर्थात् किन्हीं दिनों श्याम सुन्दर की मधुर लीलाओं का आनन्द लेने वाली हम गोपियों को, आज उनके वियोग में तड़प तड़प कर रहना पड़ रहा है ।

१३१—कागद थोड़ा·········बनाय=सातों समुद्र की स्याही और वन वृक्षों की कलम बना कर लिखने बैठूँ तब भी छोटे से कागद के टुकड़े में हृदय के अनेकानेक भावों को किस प्रकार व्यक्त कर सकती हूँ।

विशेष:—प्रियतम की विरह व्यथा से हृदय में उमड़ उमड़ कर भावों की जो अनन्त हिलोरें उठती हैं उन्हें अनेकानेक साधनों द्वारा भी पत्र पर अक्षरों के रूप में व्यक्त करना नितान्त असम्भव है। यथा :—

असित गिरि समं स्यात् कज्जलं सिन्धु पात्रे
सुरतरुवर शाखा लेखिनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति।

तथा भक्त जन भी उसी भाव में अपना स्वर मिलाते हैं—

वो कहाँ प्रभु अगम अपारा और कहाँ तुं मुग्ध गँवारा
पृथ्वी यदि पत्र बनावे सागर दवात हो जावे।
बन वृक्ष की कलम चलावे गुण लिखते पार न पावे।
सब होकर रोम जबाँ करे यदि गान न लगे सुमारा॥

१३८—१. पाठान्तर:—

थें तो सावरिया म्हारे सिर का साहब ॥१॥
संकडी गली में मोहन मिलिया, कै फिरूँगी मैं तो पूठी ॥२॥

२. पाठान्तर:—

टेर—थारी बातां मीठी लागे म्हाने साँवरा॥
सासु ननँद म्हारी कबकी बैरण, जलबल होगई अँगीठी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चढ़ गयो रंग मँजीठी ॥४॥

१४३—भाल=भाला। सूर=बन का शूकर, वराह। बिना·······मारा=बिना शस्त्र के ही गोपियों को निर्जीव बना दिया अर्थात् विरह के

साथ-साथ कुब्जा से मन लगने की श्याम सुन्दर की बातें सुनकर ही गोपियाँ हताश होकर मृतवत् सी होगईं।

पाठान्तर:—

कुबजा ने जादू डारो, जेणे मोह्यो श्याम हमारो रे ॥०॥
निर्मल नीर जमुना को छांड्यो (नांख्यो)
जाय पिवे जल खारो रे (जई ने पीओ जल खारोरे) ॥२॥

ये तीन चरण नये पाये जाते हैं।

जादु की पूड़ियां भर भर मारे, क्या करे वद विचारो रे ॥१॥
मोर मुकुट पीतांबर शोभे, जीवन प्राण हमारो रे ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर
आखर श्याम हमारो रे (विरह समुन्दर सारो रे) ॥३॥

१५०—**विशेष:**—किसी भी परिस्थिति में अपने चित्त को संयत कर संतोष वृत्ति से सब सहते हुये संसार में निर्द्वन्द्व विचरना ही साधु सन्तों का प्रधान लक्षण है। इसी को लक्ष्य करके मीरां बाई के इस पद भावानुसार भक्त कविवर सूरदास जी ने भी यही गाया है—

"जैसे राखहु वैसे ही रहौं।
कबहुक भोजन लहौं कृपानिधी, कबहू भूख सहौं।
कबहुक चढ़ों तुरङ्ग महागज, कबहुक भार बहौं॥"

१५३—हमरो........दीनो=हमारा सख उन्हें दुःख रूप प्रतीत हुआ और कुबजा को जाकर सुखी किया।

१५५—**विशेष:**—श्री मद्भागवत के दशम स्कन्ध-रास पञ्चाध्यायी में, श्री कृष्ण भगवान की बंशी ध्वनि को सुनकर पगली सी होकर दौड़ी जाने वाली गोपियों का जो वर्णन है उसी भाव को लेकर मीरां बाई ने गोपियों की मनोदशा का इस पद में क्या ही सुन्दर व मार्मिक चित्रण किया है।

१६६—बाजी............ज्ञान की=इस संसार रूपी चौपड़ के खेल में गुरू के ज्ञान का दाँव लगावें अर्थात् गुरू ज्ञान के अनुसार साधन करके परमात्मा का साक्षात्कार पाकर दाँव को जीतें अथवा सांसारिक मोह पाश में अधिकाधिक फँसते जाकर दाँव को हारें।

१७७—पावांबा खुरताला=पैरों की आहट। जग में.........जोतजी=जिनके प्रभाव से सारे विश्व को जीवन तत्व प्राप्त होता है। झगड्या.....रात जी=इस प्रकार प्रेम संभाषण करते करते सारी रात्रि व्यतीत हो गई।

विशेषः—इसी भाव का एक संस्कृत श्लोक भी इस प्रकार है जिसमें कृष्ण सत्यभामा के परस्पर प्रश्नोत्तर हैं यथाः—

अँगुल्या कः कपाटे प्रहरति कुटिलो माधवः किं वसन्तो
नो चक्री किं कुलालो नहि धरणिधरः किं फणीन्द्रोद्विजिह्वः।
मुग्धे घोराहि मर्दी किमुत खगपति र्नो हरिः किं कपीन्द्रः
श्रुत्वेदं सत्यभामा प्रति वचन जितः पातु व श्चक्रपाणिः॥

श्री सत्यभामा जीः—कौन कुटिल अँगुली द्वारा द्वार खटखटाता है? श्री कृष्णः—माधव। श्री सत्यः—क्या ऋतुराज बसन्त! श्री कृष्णः—नहीं, चक्री। श्री सत्यः—क्या कुलाल (कुम्हार, चक्री) है! श्री कृष्णः—नहीं, धरणीधर। श्री सत्यः—क्या दो जिह्वा वाला भुजङ्ग! श्री कृष्णः—अयि मुग्धे! भयङ्कर भुजङ्ग का मर्दन करने वाला। श्रीसत्यः—तो क्या खगपति गरूड़! श्री कृष्णः—नहीं, हरि। श्री सत्यः—क्या कपीन्द्र! यह सुनकर सत्यभामाजी के प्रति वचन से हारे हुये चक्रपाणि श्री कृष्ण हमारी रक्षा करें।

इसी ढंग पर लक्ष्मी व गिरिजा के परस्पर बाणी विनोद का एक और दृष्टांत देखियेः—

भिक्षुक तिहारो कहाँ, बलि मख साला जहाँ।
सर्पनि को संगी, कहूँ ह्वै ह्वै क्षीर सर में।
एरी बहुरंगी बैल वारो कहाँ नाचत है।
कीन्हें-तिरभंगी कहूँ व्है है ग्वाल गन में।

चाउर चबैया, कहूँ है है सुदामा पास ।
विष को अहारी कहाँ, पूतना के घर में ।
सिन्धु-सुता आनि मिली तर्क सों तर्क करी ।
गिरिजा मुसिक्यात जात झारा लिये कर में ।

१७८—मैं बरजु·········दुर्लभ रे=जिन दिनों मेरे बरजने पर भी वे नहीं मानते थे और अपनी मनमानी नटखट पन भरी लीला जहाँ किया करते थे वही आँगन आज सूना-बैरी सा लग रहा है। तथा उनकी चञ्चलता को लेकर किये गये गोपियों के उलाहने सुन सुन कर माता जसोदा बार बार खीजती थी और सङ्कट के प्रसङ्गों में जिन्होंने अनेकों बार ब्रज की रक्षा की थी वे दिन अब दुर्लभ हो गये। कृष्ण ·········जान्यो रे=गोपियों को चिरकाल पर्यन्त त्यागने जैसे श्याम सुन्दर कठोर-निर्मोही हो जायँगे ऐसा उस समय हमने नहीं जाना था। जब·········बैरी रे=तभी से पराये वैरी से हो गये हैं।

१८०—अकन कुंवारी=अखण्ड कुँआरी।

१८२—राज·········थे ही=आपके निर्मोही पने की प्रतीति अब हमें हो गई, तुम्हारे समान निर्मोही तो तुम ही हो। घणा········· तोइ=तुम्हें प्रेम के बहुत गहरे रँग से रँग दूंगी।

१८८—जोता मां·········ठरी=दर्शन करते ही दृष्टि स्थिर हो गई।

१९१—चितवन·········सुवाट=मदन मोहन श्याम सुन्दर के नयन बाण कलेजे में घाव कर गये। मथुरा में···········हाट=हम गोपियों के प्रेम को छोड़कर श्याम सुन्दर मथुरा में जाकर उस कुब्जा पर रीझ गये जो कि कंस की एक तुच्छ दासी मात्र है और अपने व्यवसाय को लेकर जिसे कई मनुष्यों के सम्पर्क में आना पड़ता है। हम ब्रज गोपियों के प्रेम को तोड़ कर श्याम सुन्दर ने मथुरा में जाकर कुब्जा से प्रेम बाँधा यह उनकी कैसी अनोखी रीत! प्रेम भी क्या कोई महाजन की हाट के जैसे भाव-ताल-लेन देन की वस्तु है।

१९५—आवत······राती=श्याम सुन्दर की प्रतीक्षा में इधर उधर

घूमते फिरते पैर घिस गये और नेत्र भी थक कर लाल हो गये। नीरज=कमल। अंब=जल। गंगाबहि जाती=अश्रुधारा उमड़ पड़ी। साँचा कुछ.........मिल जाती=वास्तव में सच्चे प्रेम करने वाले तो चकोर ही होते हैं जो चन्द्रमा की ओर अनन्य प्रेम भरी एकाग्र दृष्टि से झाँक कर सुधारस पान करते हुये अपनी सुध बुध भूल जाते हैं, व्रज गोपियाँ भी यही प्रार्थना करती हैं कि कब हमें श्याम सुन्दर के दर्शन हों और चकोर के जैसे हम भी उनकी रूप सुधा के आस्वादन में अपने आपको भूल जाँय। साँकड़ारो=भीड़ पड़ने पर।

१८६—गिरधर.........ढोल=मेरे एक मात्र श्याम सुन्दर ही हैं और मैं उन्हीं की हूँ यह मैं डंके की चोट कह रही हूँ।

पाठान्तर:—

दुनियाँ क्यों दे बोल ॥०॥ ये करमन के भोग ॥१॥
हमको लिख दिया जोग ॥२॥ हमको पड़ गयो झोल ॥३॥

१६६—मथुरा.........बँटे=मथुरा में क्या स्वर्ग सुख लुट रहा है।

२०१—दुवरवाँ=द्वार पर। दुलरुवा=दुलारा, प्यारा। अरुझाय=उलझता है।

२०३—चाकरी में.........सरसी=यदि श्याम सुन्दर मुझे अपनी चाकर रख लेंगे तो दर्शन करना ही मेरा वेतन होगा, स्मरण ही मेरा नित्य खर्चा रहेगा और भक्ति भाव ही मेरी जागीर होगी, ये तीनों ही बातें एक से एक उत्तम हैं, अच्छी हैं। बारी=खिड़की।

पाठान्तर:—

चाकर राखोजी अमने चाकर राखोजी,
शामलीया गिरधारीलाल चाकर राखोजी।
हजुरी चाकर रहेशुं जी मोहन मुरली वाला ॥०॥
चाकरी मां समरण मांगु, दरशन मांगु खरची।
भाव भक्ति झाभेरी मांगु, चार बातो सरखी ॥

जप करवा ने ब्राह्मण सरज्या, तप करवा सन्यासी ।
भजन करवा संत सरज्या, वृन्दावन ना वासी ॥
चाकर रहेशुं ने बाग बनावशुं, नीत्य नीत्य सेवा करशुं ।
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, राधे गोविन्द गाशुं ॥६

विशेष:—निम्न तीन चरण अधिक पाये जाते हैं:—

चौकी देऊँगी झारी देऊँगी, गोबर उठाऊँगी बासी ।
साँझ सबेरे जल भरि लाऊँ, सब सन्तन की दासी ॥१॥
प्रेम प्रीत से ध्यान लगाया, राम कृष्ण लौ लाग्यां ।
सुरतमूरत जागीरी पाया, निरभय पटा लिखाया ॥२॥
राठोडा घेर दीकरी ने, राणा जी घेर नार ।
शामलीआ तारा कारणे में, छोड दीधो संसार ॥३॥

२०४—इन्द्र के········बागाँ आय=उद्धव जी द्वारा श्याम सुन्दर का सन्देश श्रवण करके उपस्थित गोपियों में से हताश होने के कारण कइयों के नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लग गई, कइयों के मुख मण्डल मलीन हो गये और कई गोपियों के हृदय में निराशात्मक भावों की बाढ़ सी आगई। इस प्रकार का दृश्य उपस्थित हो गया मानो घनघोर घटाओं से व्याप्त आकाश में बिजलियाँ कड़क रही हों और उपवन में (जहाँ उद्धवजी के समीप गोपियाँ बैठी हुई थीं) मूसलाधार वर्षा हो रही हो।

विशेष:—भक्त सूरदासजी ने भी यही गाया है—

श्याम का संदेशा उधो पाती लेके आयो रे ।
पाती तो उठाय लीनी छाती सों लगाय लीनी ।
घूँघट की ओट देके उधो समझायो रे ॥

मीरांबाई के इस पद की चौथी कड़ी का भाव भी सूरदासजी के उपरोक्त पद की :—

"बस्ती उजाड़ दीनी उजड़ी श्रणाय लीनी
कुब्जा पटरानी कीनी मोहि ना सुहायो रे" ।

इस दूसरी कड़ी के साथ सुन्दर मेल खाता है। श्याम सुन्दर के बिना बस्ती वास्तव में उजड़ी ही है और उन्हें पाकर उजाड़ बस्ती भी भरी-पूरी बसी हुई है—

'जहाँ राम तहँ अवध निवासू'

२०६—से गये······· चंदा=अब तो श्यामसुन्दर द्वितीया के चन्द्रमा के समान हो गये हैं जो बड़ी कठिनाई से दिखाई देते हैं और देखते देखते ही में अन्तर्धान हो जाते हैं।

२०७—जुल्फाँ कारियाँ = काले केश। वाखरियाँ = आँगन में। जरि राखूँ=बन्द कर रक्खूँ। इन······वारियाँ=इन घुंघराली अलकावलि पर न्यौछावर हो जाऊँ।

२०८—कोटी ने·········मारो छो जी=धनुष में से खींच कर तीर चलाते हो, नेत्र कटाक्ष करते हो।

२१०—दे सैंय्या=संकेतात्मक हाव भाव करके। अरदन पर=(अर्द्धाङ्ग) अंक में।

२११—बिगर=बगर, आँगन। सारा·········बुवारा=एक तुच्छ मात्र आँगन बुहारने वाली। मुठियो=टुकड़ा।

२१२—गोळी रे=सरा बोर कर। हमणां=अभी। वेणो=वेणी। शाख पुरे छे=साक्षी है। छांट्यां घोली=घोलकर उछाला, छिड़का। भदीओ=भरा हुआ। प्रेमदाने=नारी को। तर=अन्तर तल तक, हृदय की गहराई तक। गेबनी=रहस्य भरी।

२१४—मरघानेणी=मृगनयनी। मकनो सो·········कीनो जी =जिस प्रकार मदोन्मत्त हाथी को अंकुश द्वारा वश करके उस पर अम्बारी डाली जाती है त्यों तुमने (राधा जी ने) अपने नेत्र कटाक्ष रूपी अंकुश द्वारा मदन मोहन गिरिवर धारी को वश कर लिया। पाननां·········कीधुं जी=ताम्बूल में कुछ वशीकरण किया।

२१५—पांपण........कलगी तोरे=कलगी युक्त पाग भौंहों तक बँधी हुई।

पाठान्तरः—

चाल सखी तने श्याम देखाडुं।
रूप संभारं गुण संभारं, मन मारा ने हरतो जी।
पाघ कलंगी तोरो फुलनो, मोर मुकट सिर धरतो जी।

२१६—दाझे बळे=ईर्ष्या करती है। राड़ करे=हठ झगड़ा करता है।

२१७—कामण गारो........मेले=अपने मन माने ढँग से कामण करने वाला। आहीरडां=गुजरियाँ, गोपियाँ। सघलां=सब। मेलो=कपटी।

२१८—चन्दन........दीठड़ा रे=तिलक किये व पुष्प माला पहने हुए दुपट्टा वाले श्याम सुन्दर को बात करते हुए देखा।

२२३—गोती=ढूँढ कर। भळावी'ती=संभलाई थी। नो'ती=नहीं थी। आंखे........होतीरे=काली अंजन लगी सी आँखों और सुन्दर मुखवाली, देखते ही चित्त में समा जाय ऐसी वह गौ थी। सोना शिगडीओ=स्वर्णजटित सींग वाली। रूपानी खरीओ=रूपे के खुरवाली। हीरलानी........होतीरे=हीरों से गूँथी हुई रस्सी बँधी थी। गोठणमां=घुटनों में। घोंणीओ=दोहनी। लटके श=छटा से, नखरे के साथ। गाय........मोतीरे=प्रचुर लाभ कराने वाली गौ।

२२६—ठ्होर=हँसी ठट्ठा।

२३१—राधावर........कासी=श्री कृष्णचन्द्र का सान्निध्य प्राप्त कर लिया—एक मात्र जब उन्हीं का आश्रय लिया तब काशी आदि और धाम के आश्रय की आवश्यकता ही क्या!

२३२—झूँठी........कुबज्या सी=कंस की दासी कुब्जा को अपना कर उसे अपनी चहेती (पटरानी) बनाकर श्यामसुन्दर ने उच्छिष्ट थाली का जल पिया है।

२३९—बौरावे=उन्मत्त करती है।

२४१—म्हाँ के कानी=मेरी ओर। कोउ·········आवै रे=कहीं गलियों में लुकते छिपते मेरे पास चले आना।

२४२—माणूं=उपभोग करूं, मनाऊँ। टाँके=पुष्पों से सजाया।

२४३—गार=मिट्टी, कीचड़। चले उड़ार=उड़ने पर उतारू होगये। (देखिये पद १२७)

२४४—झोलो=अधिकता, बाहुल्य। घुलिगई=उलझगई। उँकी सर भर तोलो=उसके वश में हो गये हो, उसकी बातों में आ गये।

२४७—एक·········लगाया है=शीघ्र आने का कह कर बहुत अधिक विलंब लगाया। भुराया हे=बहकाया है। नैणाँ·········ल्याया हे=नेत्र की पुतली के समान प्यारी बनाकर लाये हैं।

२४८—सुवाफी=चिलम के नीचे लपेटने का कपड़े का छोटा टुकड़ा। अछक=अतृप्त। (देखिये-पद--५०)

२४९—सुमन·········सुमन=(पूर्वके) प्रसन्न चित्त को श्याम सुन्दर के विरह रूप बादल ने घेर लिया। समय·········झगरा=विरहावधि के पूर्ण होने के अनन्तर सब आपत्तियों का अन्त होता है।

२५०—दम्मा=इन्द्रिय दमन का सन्देश। राखाँ=रख। गम्मा=दुःख, चिन्ता। जम्मा=जमा, पूँजी। मीठा·········जम्मा=मधुर बोल कर चित्त चुराते हैं, फिर निष्ठुर होकर विरह द्वारा हृदय को तड़पाते हैं, उनमें सत्यांश तो है ही नहीं।

२५८—पाठान्तरः—

ग्वाल बाल सब ढूँढन लागे, एक गई दो पाई ॥२॥
·················लूंट बड़ी चतराई ॥३॥

२५९—उमाइया=आनंद-उत्साह उमड़ पड़ा है।

२६०—दसियो=बताओ। किसदानी=किस ओर। आवँदा जावँदा=आते जाते हुए। इसदानी=इसका। नसदानी=भाग जाता है। लूँ लूँ दे=बाल सखाओं के बीच रहने वाला।

विशेषः—गाते गाते पद की मूल भाषा पर पंजाबी भाषा का प्रभाव छाया दिखाई देता है।

२६२—पाठान्तरः—

कालों की रैंन बिहारी, महाराज कोण बिलमायो ॥०॥

२६६—चिल=चमक।

२६७—**विशेषः**—इस पद के समान भावात्मक भक्त सूरदास जी के भाव मय पद का यह अंश भी देखने जैसा है:—

मैया मोहि दाऊ बहुत खिजायो।
मोसों कहत मोलको लीनो तुहि जसुमति कब जायो।
पुनि पुनि कहत कौन है माता, को है तुमरो तातु।
गोरे नन्द जसोदा गोरी तुम कत श्याम सरीर। आदि।

२७२—नथी गोठतुं=चैन नहीं पड़ता। तम माटे=तुम्हारे लिये। खपी=कहलाई।

२७३—नंदाशे=फूटेगा। आळी=छेड़ छाड़। वहुवारूं=कुलिन वधुएँ। फुल········गुंथे=मूल में तो क्या बात होती है उस पर संसारी जन मनमाने तर्क-वितर्क, कुतर्क किया करते हैं।

पाठान्तरः—

मही ढोळाशे मारूं मोहन जी, मही ढोळाशे मारूं ॥०॥
लाख बे लाखनुं बेडुं नंदाशे, शोभित छे बहु सारूं ॥१॥

२७४—माने=माँ को। व्हाणा नो=प्रभात का। वढवाड करे छे=झगड़ा करता है। रवि·········भाण=सूर्योदय से सूर्यास्त पर्यंत। बीवडावे=डराने पर। लोढु·········पाषाण=लोहा और पाषाण जैसे कठोर हृदय वाली हैं। हलकुं·········पान=केवल सच्चे प्रेम-भाव के साधन से ही रीझने वाले। वाव्यां·········वान=हमारा किया हम ही को भोगना होगा।

पाठान्तरः—

वा' णानो वढ़ वाढ़ वडे छे, रवि उगमते भाण ॥१॥

बीवडावो ते बीजी नारी, खरू लोढ़ुं ने आरस पान ॥२॥

२७५—वेराया=ढुल गये। सेर=लड़। वळता=लौटते हुए। तोय हजी= तब भी।

२७६—झाली=पकड कर। साह्यो=पकड़ा। झुटी=छीन ली। केडो=पीछा। मुकता=छोड़ता है। न्हासी·········छुटी=छुटक भागा जा सकता नहीं।

२७८—वारीए=रोकें। दा' डाना=दिन से। ढाळीए=बहाती हैं। गाळीए=छान लेवें। कई पेरे=किस प्रकार। वीत्या वितक= अनुभूत प्रारब्ध भोग। टालीए=टालें।

विशेषः—गोपियाँ उद्धव जी को समझा रही हैं कि श्री कृष्णचंद्र का वियोग उनके लिए कोई साधारण नहीं, दुःख का मानों पहाड़ उन पर गिर पड़ा है।

२७९—ओवारी=न्यौछावर कर। करारी=गहरा, पक्का।

२८०—माछीडा=धींवर। होडी=नाव। हलकार=चलाव। हीरले=हीरों से। फरती=आसपास। मुकावुं=लगवाऊँ, रखाऊँ।

२८१—नौतम=नये, सुन्दर। पामरी=उपरका वस्त्र। तलाई=गद्दी, रजाई।

२८२—मचकारा=नखराले। मचके=झटके से। टमटम=टकटकी लगाये। गोततां=ढूँढते। जड़ीओ=मिला।

२८४—आरेडीरे=आडी रे, बाँकी है। एवड बेवड=एक हरी, दोहरी। वळ=आंटी। त्रेवडो=तिहरी। दोरडी=डोरी, रस्सी। बंधायना= नहीं बँधती।

२८७—झटक्यो·········बेडो=चीर झटक दिया जिससे मेरा बेडा फूट गया।

२९०—आरो=किनारा। त्रट·········लगो=यमुना के आस पास जहाँ श्याम गौएँ चराते हैं उसी का ध्यान बना रहता है।

२९७—बिडानीं=पराये।

३०५—भार········था=दीन-नम्र होकर स्वामी की शरण में जा, उन्हीं पर तेरी रक्षा का उत्तर दायित्व है।

३१०—नुगराथी=हरि विमुखसे।

३११—कलकी करी =आवाज दी, संकेत किया।

३१४—लता पताँ=मुग्ध। रपट झपट=झक झोर कर। खाय········पर=मूर्छित हो मैं पृथ्वी पर गिर पड़ी।

३१८—वगोई=निन्दित की। पेरे पेरे=युक्ति से, समझा बुझाकर।

३१९—कचोला मां=घिसे हुए चन्दन को रखने के पात्र विशेष में।

३२०—खीटलीआळा=घुँघराले।

३२७—रंग········झबोली=कृष्ण प्रेम-रंग में और उस मधुर रस में गोपियाँ सराबोर हो गईं।

पाठान्तरः—

हुं बात कहुं उभां रहोनी अलबेली।
हाँरे नथी जवाब देतां मन मेली
रूमक झुमक करतां आवो ने जाओ छो,
हाँरे नथी जवाब देतां मन मेली ॥१॥
हाँरे तारी कांहां गई ते संगनी सहेली।
हाँरे दाण आपे छे राधा घेली ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर।
हाँरे वाला चरण कमल चित चोरी ॥३॥

३३३—सजो जोग=योग के उपकरणों को-साधन को स्वीकार करो। वसती········जात=बसे हुए घरों को उजाड कर गये और उजडे हुए को बसा दिया अर्थात् गोपियों को निराधार बनाकर चले गये और मथुरा में कुब्जा को अपनाकर उसे सनाथ कर दिया।

३३४—तमे········लगाई=भांग पीकर ऐसे मतवाले बनो कि

आँखें मदभरी-रतनारी हो जाय मानों लाल रंग से रंग दी हो। देखिये पद-सं० ५० ।

३४३—सेवा······जासो रे = हमें प्रेम और आनंद में सराबोर करके ऐसी मोहिनी डाल कर नहीं जाना । डुंगर·········जाय रे= पहाड़ में हल कैसे चलाया जाय। काग·········नव जायरे = कौए को नहीं पाला जाता ।

३४४—रंग·········हलिये=आनंद से ताली बजाकर घूमें।

३४७—एक·········झगरो = कोई आता है तो कोई जाता है तो कोई झगड़ा करता है (दर्शन के लिये आगे बढ़ने को)

३५१—ओलंबो=दोष, लाञ्छन ।

३५३—पाधरे=सीधे । झाझुं=अधिक ।

३५६—मथुरा मां·········दऊं=मथुरा में, हरि तुम्हें जाने नहीं दूंगी। मने मुकीने=मुझे छोड़कर। मने·········गांठे नहि=तुम बिना मुझे चैन नहीं पड़ता ।

३५७—गारूडी=साँप का विष उतारने वाला, मांत्रिक। माग्युं आळुं=माँगा हुआ देऊँ । हारड़ी=माला ।

३५८—मलपति=मुसकुराती । गोळी = गागर। चणीयो=लहंगा। रंगमा रोळी = रंग में सरावोर कर दिया ।

३५९—सरखा रे सरखी=बराबरी की, समवयस्का । दीठां पहलां देखने के पहले । नजरो मां·········कर्यां=दृष्टि मात्र से ही निहाल कर दिया ।

३६०—मागेलो=माँगा हुआ। अमे·········रमीए = हम रंग भरी खेलेंगी। प्रभाते·········लेजो = प्रभात होते ही वापस ले लेना।

३६१—फिरती·········फाटाँ = फटे कपड़ों से घूमती थी। पहरे·········पाटाँ = (जो अब) रेशमी वस्त्र पहनती है।

३६५—ओल = बाधा । अब·········लोल = हाथ पकड़ कर उबारलो, अपना लो ।

३६६—कैसे·········ढोल=संकेतात्मक सन्देश के सिवा और अधिक कुछ किया भी क्या जाय, जो अपने हैं उन्हें संकेत से समझाने के अतिरिक्त और कुछ भी करना उचित नहीं जिससे कि समाज में लाञ्छना हो।

३७४—काकड़ी = कंकर। लाकरडी=लकड़ी। साथरली=साथिन। एकरली = अकेली। मयो = दहीं। बाकरली=कुछ महिनों की ब्याई अच्छा दूध देने वाली। साँकरली=शकर।

३७५—हो·········मासडली = मुग्ध हो गई, तन्मय होगई। कस·········पाबडली=(चलते चलते) पैर रुक गये। मतकर आकड़ली=अकड़ना मत।

३७६—थें·········प्रभुजीए=तुमने ऐसी समर्थ गौरी का पूजन किया है कि जिससे प्रभु तुम्हारे हृदय में बस गये। म्हारे············ गमतो=मेरे घर उसे सुहाता नहीं। पुठल=पीछे।

विभाग ६ सत्संग-उपदेश

समस्त साधनों के मूलभूत सत्संग एवं
संतोपदेश से ही मुमुक्षु जीव को मार्ग
दर्शन प्राप्त होता है ।

भूमिका

★

यावत्स्वस्थमिदं कलेवर गृहं यावच्च दूरे जरा ।
यावच्चेन्द्रिय शक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः ॥
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान् ।
प्रोद्दिप्ते भवने तु कूप खननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥

(भर्तृहरि)

जब तक यह देह स्वस्थ है, वृद्धावस्था अभी आई नहीं, इन्द्रियों की शक्ति अभी क्षीण नहीं हुई, आयु अभी शेष है तब तक विचारवान् पुरुष को आत्म कल्याण के लिये प्रयत्न पूर्वक साधन कर लेना चाहिये, नहीं तो घर को आग लगने पर, कुआ खोद कर उस जल से क्या आग बुझाना संभव है ? अर्थात् कालग्रस्त होने के पूर्व ही आत्मोद्धार का साधन कर लेना चाहिये ।

चेतोहराः युवतयः सुहृदोनुकूलाः
सद्बान्धवाः प्रणयगर्भ गिरश्च भृत्याः ।
वल्गन्ति दन्ति निवहा स्तरलास्तुरङ्गाः
सम्मीलने नयनयो र्नहि किञ्चिदस्ति ॥

चित्त को आकर्षित करने वाली युवतियाँ, अनुकूल मित्र, भले आत्मबंधु, मीठे वचन बोलने वाले सेवक, मदमत्त गजेन्द्र, चंचल अश्व समूह आदि भले ही सब कुछ है परन्तु जब प्राणान्त होकर आँखें बन्द हो जायँगी तब सभी यहीं धरा रह जायगा ।

घूमत द्वार मतंग अनेक जंजीर जरे मद अंबु चुआते ।
तीखे तुरंग मनोगति चंचल पौन की गौनहुँ को जो लजाते ॥

भीतर चंद्रमुखी अवलोकत बाहर भूप खरे न समाते ।
ऐसे भये तो कहा तुलसी जो पै जानकीनाथ के रंग न राते ॥

संसार के सभी प्राणी सुख-आनंद चाहते हैं परन्तु सुख प्राप्ति के साधन का विवेक न होने से सुख की अपेक्षा दुःख ही प्राप्त होता है। समर्थ रामदास स्वामी ने 'मनाचें श्लोक' में कहा है—

'जगीं सर्व सुखी असा कोण आहे ।
विचारी मना तूंचि शोधोनि पाहें ॥

हे मन ! तू ही विचार पूर्वक ढूँढ के देखले, संसार में क्या ऐसा भी कोई व्यक्ति है कि जो सर्वथा सुखी हो ?

कोई धन को सुख का साधन समझता है तो कोई सुन्दर स्त्री को, कोई पुत्र को तो कोई मित्र को, कोई सत्ता को तो कोई कीर्ति को, कोई स्वादिष्ट भोजन को, तो कोई भूमि को, कोई कला को तो कोई गुण को और कोई विद्या को तो कोई वैभव को ।

परन्तु भर्तृहरि जी ने कहा है,—

भोगे रोग भयं कुलेच्युति भयं वित्ते नृपालाद्भयम्
मौने दैन्य भयं बलेरिपुभयं रूपे जरायाः भयम् ॥
शास्त्रे बाद भयं गुणे खल भयं काये कृतान्ताद्भयम् ।
सर्वं वस्तु भयान्वितं भूवि नृणां वैराग्य मेवाभयम् ॥

वास्तव में सांसारिक विषय-भोगों से न कभी तृप्ति हो सकती है न कभी शांति ही मिलती है ।

अपने छोटे पुत्र से यौवन पाकर वैषयिक सुख में सहस्रों वर्ष पर्यन्त रचे-पचे रह कर राजा ययाति ने अंत में अपना यही अनुभव व्यक्त किया है, :—

न जातु कामः कामाना मुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥

भोगों से कभी भोग कामना का नाश नहीं होगा ! इससे तो वह उसी प्रकार बढ़ेगी, जिस प्रकार अग्नि, घी की आहुति डालने से बढ़ती है ।

श्री गोस्वामी तुलसीदास भी यही कह गये हैं,—

बुझै न काम अगिनी तुलसी कहुँ विषय भोग बहु घी ते ।

मन की चञ्चलता व उन्मत्तता से घबराकर कोई यह सोचे कि मन के वेग को दुर्बल अथवा शिथिल करने के लिये अन्नाहार वर्ज्य कर दें जिससे काया निर्बल हो जायगी । शरीर निर्बल होगया तो मन निर्बल हो जायगा । मन निर्बल हुआ तो इन्द्रियाँ निर्बल हो जाएँगी । इन्द्रियों के निर्बल हो जाने से वासना-कामना एवं विषयेच्छा न्यून पड़ जायगी जिससे मनको नियंत्रण में लाना सहज हो जायगा ।

परंतु ऐसा नहीं हो सकता । शनैः शनैः आहार को पाकर पुनः मन पूर्ववत् होता जायगा । किसी व्याघ्र को यदि भूखा रख कर इतना निर्बल बनाया जाय कि निकट आई हुई अपनी शिकार को भी उठकर न पकड़ सके तो इसका यह अर्थ थोड़े ही हो सकता है कि उसे शिकार के प्रति वैराग्य होगया कि फिर कदापि उसके मन में हिंसा का भाव ही नहीं आवेगा ?

भगवान् ने गीताजी में कहा है—

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रस वर्ज्यं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

(गीता २–५९)

इन्द्रियों को बलपूर्वक विषय भोग से रोकने से तथा निराहार रखने से आसक्ति नहीं मिटती है, आसक्ति तो तब मिटती है जब

हृदय में पर ब्रह्म की झलक आ जाती है। प्रभु के ध्यान, चिन्तन व स्मरण करने से एवं उनके आनंद मय रूप का प्रकाश होते ही हृदय के सारे विकार व अज्ञानांधकार नष्ट हो जाते हैं।

सारांश यह है कि भ्रमवश अपनी न्यारी न्यारी सुख प्राप्ति की धारणा करने वाले प्राणियों को किसी दिन अनुभव द्वारा अपने सुख के दृष्टि बिन्दु को बदलने को बाध्य होना पड़ता है। बालपन में खिलौने से सुख मानने वाला बालक युवावस्था में किसी और वस्तु में सुख देखता है, फिर वृद्धावस्था का सुख का अनुभव तो कुछ और ही होता है।

भला नाशवान् संसार में, नाशवान्, अस्थिर व क्षणिक विषय सुख से भी क्या कभी तृप्ति, शांति व आनन्द प्राप्त हो सकता है? नाशवान् वस्तु के चिन्तन से व उपभोग से नाशवान् पदार्थ ही प्राप्त होंगे जिसके लिये बार बार जन्म-मरण के चक्र में आना पड़ेगा जब कि अविनाशी के चिन्तन व ध्यान से मोक्ष व प्रभु की प्राप्ति होगी। यह प्रकृति का शाश्वत सिद्धान्त है।

'यद् दृष्टं तन्नष्टं' के अनुसार समस्त संसार व दीखने वाला नाम-रूपात्मक सब प्रपंच मिथ्या है। शरीर की एक दिन यह गति होगी—

यो देहः सुप्तोऽभूत्सु पुष्प शय्योपशोभिते तल्पे।
सम्प्रति स रज्जुकाष्ठै र्नियंत्रितः क्षिप्यते वन्हौ॥

जो शरीर किसी समय पुष्प शय्या पर सोता था, अब काष्ठ व डोरी में बाँधा जाकर वह अग्नि में डाला जा रहा है।

स्वयं के नष्ट होने के साथ-साथ 'आप मुए पीछे डुब गई दुनिया' के अनुसार उसका माना हुआ—भोगा हुआ सारा संसार भी उसके लिये नष्ट हो जाता है।

गूँजते थे-जिनके डंकों से जमीनों आसमाँ ।
चुप पड़े हैं मकबरों में हूँ व हाँ कुछ भी नहीं ॥

इसीलिये किसी संत ने कहा है कि—

कहा चुनावे मेड़िया ऊंची भींत पसार ।
घर तो सोड़े तीन हाथ घना तो पौने चार ॥

परन्तु यह मन मानता नहीं इसे तो विषयों में व रजोगुण-तमोगुण में ही सुख का अनुभव होता है ।

किसी भक्त कवि ने कहा—

चिरं ध्याता रामा क्षणमपि न राम प्रतिकृतिः
परं पीतं रामाधरमधु न रामाङ्घ्रि सलिलम् ।
नता रुष्टा रामा यदरचिन रामाय विनतिः
गतं मे जन्माग्र्यं न दशरथजन्मा परिगतः ॥

दीर्घावधि पर्यंत रामा—स्त्री का ध्यान-चिन्तन करता रहा परन्तु क्षणभर भी श्रीराम-भगवान् के श्री विग्रह का कभी ध्यान नहीं किया ! यथेष्ट स्त्री को अधर सुधा का पान किया परन्तु कभी भगवच्चरणामृत का पान नहीं किया। रूठी हुई स्त्री को मनाता रहा पर भगवान की प्रार्थना-विनय कभी नहीं की ! इसी में ही मानव-जन्म की बहुत सारी आयु बीत गई पर दशरथ-जन्मा राम-भगवान की शरण में नहीं गया ।

इन सब के मूल में मन ही काम करता है। यही भव बंधन अथवा मुक्ति का कारण है। यथा—

मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः ।
बंधोऽस्य विषया सङ्गो मुक्ते निर्विषयं स्मृतम् ॥

जिसका मन विषयों में रत है वही बद्ध है और विषयों से विरक्त है वही मुक्त है ।

श्री शंकराचार्य ने यही कहा है—

बद्धो हि को, यो विषयानुरागी ।
का वा विमुक्ति, र्विषये विरक्तिः ।।

किसी कवि ने मन पर क्या ही अच्छी कोटी की है ? श्वेत केश जो पहले काले थे, अपने कुटिल, कपटी काले मन को उपदेश करते हैं—

रे मन तज तू श्यामता, केश करें उपदेश ।
हम पलटे तू त्यों रहा, हा हा बड़ा अँदेश ।।

मनुष्य यदि अपने सम्बन्ध में विवेक विचार नहीं करेगा तो उसमें और पशु में अन्तर ही क्या ? क्योंकि——

खादते मोदते नित्यं शूनकः शूकरः खरः ।
तेषा मेषां को विशेषो वृत्ति-र्येषां तु तादृशी ।।

खाना, पीना, विषयोपभोग करना आदि तो मनुष्य क्या, पशु पक्षियों में भी हो जाता है परन्तु आध्यात्मिक उन्नति का अवसर मनुष्य योनि के सिवा और कहीं नहीं है ।

मनुष्य—जन्म बार बार नहीं मिलता ।

इसके खोने पर—

नर देहातिक्रमणात् प्राप्तौपश्वादि देहानां ।
स्वतनो रप्यज्ञानं परमार्थस्यात्र का वार्ता ।।

अर्थात् नरदेह के छूटने के बाद, पशु आदि योनि के प्राप्त होने पर जब स्वयं के शरीर का ही अज्ञान होता है तब फिर परमार्थ साधन की तो बात ही क्या !

ऐसी परिस्थिति में अपने कर्त्तव्य का विचार करना परमावश्यक है ।

भगवान् ने गीता में कहा है —

उद्धरेदात्मनात्मान मात्मान मवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धु रात्मैव रिपुरात्मनः ॥

(श्री गीता ६।५)

मनुष्य को चाहिये कि, अपने द्वारा संसार समुद्र से अपना उद्धार करे और अपने आत्मा को अधोगति में न पहुँचावे, क्यों कि यह जीवात्मा आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है। अर्थात् और कोई दूसरा शत्रु या मित्र नहीं है।

संसार के प्रतिकूल संघर्ष व उलझन भरे एवं कटु प्रसंगों पर से तो मनुष्य को अपना कर्त्तव्य स्पष्ट हो जाता है कि—

=संसार में अनासक्त रहकर कर्म करते रहना चाहिये।

=त्याग व परोपकार करते हुये संतोष पूर्वक रहना चाहिये।

='कोटिं त्यक्त्वा हरिं स्मरेत्' अर्थात् कोटि कार्यों को छोड़ कर भगवान का भजन करना चाहिये।

=हरि व्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम तें प्रकट होइ मैं जाना॥

इसलिये प्रभु से प्रेम करना चाहिये—क्योंकि प्रेम ही प्रभु का स्वरूप है और भगवान ही आनंदस्वरूप है। अनन्य निष्ठा और प्रेम पूर्वक प्रभु की शरण में जाना चाहिये।

वैसे तो अनेकानेक सम्प्रदाय की दृष्टि से साधन भी अनेका-नेक हैं परन्तु सब का सार यही है। भिन्न-भिन्न सब साधनों का लक्ष्य एक ही है।

परन्तु साधन के प्रति, लगन, निष्ठा, श्रद्धा, विश्वास, व प्रेम आदि का विवेक–विचार तो संत-महात्मा की कृपा व सत्संग

के बिना नहीं हो सकता। इसलिये सत्संग ही सर्वप्रधान साधन है।

सत्संग व कुसङ्ग का जीवन पर बड़ा ही प्रभाव पड़ता है। कहा भी है कि—

जैसा खावे अन्न वैसा बने मन। जैसा पीवे पानी वैसी बोले बानी। जैसा करे संग वैसा चढ़े रंग।

जिसकी संगति से सात्विकता की अपेक्षा रजोगुण व तमोगुण की ओर आत्मा का पतन होता हो उसे मित्र नहीं शत्रु समझना चाहिये। आवश्यक कर्त्तव्य जितना सम्पर्क रखने के अतिरिक्त उसका अधिक संग कदापि नहीं करना चाहिये। जो हित करने वाला है और उच्च विचारों की ओर जिसके मन की गति है, जिसकी संगति से मन को सात्विकता की ओर अग्रसर होने का अनुभव होता हो उसे ही अपना मित्र समझना चाहिये और उसी के सम्पर्क में रहना चाहिये।

बिना सत्संग के प्राणी का उद्धार नहीं। भले ही वह—

= 'मथुरा जावे द्वारिका जावे जावे जगन्नाथ।
साधु संगति हरि भक्ति बिन कछू न आवे हाथ'॥

सत्संग का माहात्म्य अपार है। भगवान वेदव्यास ने कहा है—

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं ना पुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गि सङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥
(श्रीमद्भागवत १।१८।१३)

अर्थात्

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिअ तुला इक संग।
तूल न ताहि सकल मिल, जो सुख लव सत्संग॥

सत्संग कई प्रकार से होता है। शास्त्रों और महापुरुषों के स्वानुभूत वचनों पर श्रद्धा कर उनके उपदेशानुसार आचरण

करना, महा-पुरुषों के दर्शन, उनके चरणों का स्पर्श, उनकी वाणी (धार्मिक काव्योपदेश रचना) का श्रवण करना, एवं शास्त्रादिकों का पठन व मनन करना ये सब सत्संग के ही अंग हैं। सत्सङ्ग से प्राणी की काया पलट होकर, अपने वास्तविक आनंदस्वरूप को पहचान कर वह इस भव सागर से पार हो जाता है, जन्म-मरण के चक्र से छूट जाता है।

परन्तु सत्संग बड़ा दुर्लभ होता है फिर संत समागम तो प्रभु की कृपा से ही प्राप्त होता है।

विभीषण ने भी श्री हनुमान के मिलने पर यही कहा था—

अब भा भरोस मोहि हनुमंता।
बिनु हरि कृपा मिले नहिं संता॥

देवर्षि नारद जी ने कहा है—

महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च।

(ना० भ० सू० ३६)

परन्तु महापुरुषों का संग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है।

लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव ॥४०॥

वह भी भगवत्कृपा से ही प्राप्त होता है।

तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात् ॥४१॥

क्योंकि भगवान में और उनके भक्तों में भेद का अभाव है।

अर्थात्—

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत्तेन जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥

(श्रीमद्भा० ६।४।६८)

साधु मेरे हृदय हैं और मैं उनका हृदय हूँ। वे मेरे सिवा और किसी को नहीं जानते और मैं उन्हें छोड़कर और किसी को नहीं जानता।

श्री भगवान ने स्वयं भक्तों की प्रशंसा करते हुये उद्धव जी से यहाँ तक कह दिया है—

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनि र्न शंकरः।
न च सङ्कर्षणो न श्री नैवात्मा च यथाभवान्॥
(श्रीमद्भा० ११।१४।१५)

मुझे तुम्हारे जैसे प्रेमी भक्त जितने प्रिय हैं उतने प्रिय मेरे पुत्र ब्रह्मा, शंकर, श्री बलरामजी और श्री लक्ष्मीजी भी नहीं हैं, अधिक क्या, मेरा आत्मा भी मुझे उतना प्रिय नहीं है।

वास्तव में संत महात्मा की कृपा से ही सत्संग का रहस्य समझ में आकर जीव भगवच्चरणारविन्दों का आश्रय-अनन्यभाव से शरण लेता है और तभी प्रापंचिक-मायिक जगत से छुटकारा होता है। ब्रह्मा ने कहा है—

तावद्भयं द्रविण गेह सुहृन्निमित्त
शोकः स्पृहा परि भवो विपुलश्च लोभः।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं
यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः॥
(श्रीमद्भा० ३।६।६)

जब तक पुरुष आपके अभयप्रद चरणारविन्दों का आश्रय नहीं ले लेता, तभी तक उसे धन, घर और बन्धुजनों के कारण प्राप्त होने वाले भय, शोक, लालसा, दीनता और अत्यन्त लोभ आदि सताते हैं और तभी तक मैं, मेरेपन का असत् आग्रह रहता है जो दुःख का एक मात्र कारण है।

भगवद् शरण लेने बाद तो जीवन की बागडोर समर्थ भगवान ही सम्हाल लेते हैं: –

> जो जाको शरणो लियो ता कहँ ताकी लाज।
> उलटे जल मछली चले बह्यो जात गजराज॥

और यह वही स्थिति है कि—

> यं लब्धा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः॥
> (श्री गीता ६।२२)

परमेश्वर की प्राप्ति रूप जिस लाभ को प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता है।

मीराँ की साधना का प्रधान अङ्ग सत्संग व सन्त-संगति था। इसके लिये लोक लाज व कुल मर्यादा की भी उसने उपेक्षा की। सन्तों के सत्संग द्वारा जो उसने पाया व अनुभव किया, सब अपने पदों में व्यक्त किया। इस विभाग में वही योग, ज्ञान, भक्ति आदि सत्संग व उपदेश के पद दिये हैं।

इस विभाग के–३, ७, १२, १३, १४, १५, १६, १८, २०, २८, २६, ३०, ३३, ३६, ४०, ४३, ५१, ६६, ६७, ६८, ६६, ७०, ७६, ७७, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ६०, ६२, ६३, ६४, ये ३३ पद गुजराती भाषा के हैं।

सं० ३, ६, ७, ८, ६, १५, १६, १८, २२, २३, २५, २८, २६, ३६, ४०, ५०, ५२, ५५, ५७, ५८, ६०, ६१, ६२, ७६, ८५, ८८, ६२, ६३, ६४, ६५, ये ३० पद निर्गुणी भाव-ज्ञान के हैं।

अन्य संत व शास्त्रों के 'सत्सङ्ग-उपदेश' वचन

=धर्मं भजस्व सततं त्यज लोक धर्मान्
सेवस्व साधु पुरुषान् जहि काम तृष्णाम्।
अन्यस्य दोष गुण चिन्तन माशु त्यक्त्वा
सेवा कथा रसमहो नितरां पिबत्वम्॥
(श्रीमद्भा० माहात्म्य ४।८०)

लोकाचार को अधिक महत्व न देकर धर्म की उपासना करो। कामना व तृष्णा का त्याग कर संत-महात्माओं की सेवा करो और अन्यों की निंदा-स्तुति को शीघ्र त्यागकर निरन्तर भगवत् सेवा व भगवत्कथामृत का पान करो।

=न भोगाद् राग शांति मुंनिवत्।
(सांख्य दर्शन)

मुनि के सदृश्य (सौभरि) भोग से राग की शांति नहीं होती।

=सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहंत्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
(श्री गीता १८।६६)

सब धर्मों को अर्थात् सम्पूर्ण कर्मों के आश्रय को त्यागकर केवल एक मुझ सच्चिदानंद घन वासुदेव परमात्मा की ही अनन्य शरण को प्राप्त हो, मैं तेरे को सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा, तू शोक मत कर।

=सुख दुःखेच्छा लाभादित्यक्ते काले
प्रतीक्ष्यमाणे क्षणार्द्धमपि व्यर्थं न नेयम्।
(ना. भ. सू. ७७)

सुख, दुःख, इच्छा, लाभ आदि का पूर्ण त्याग हो जाय ऐसे काल की बाट देखते हुए आधा क्षण भी (भजन बिना) व्यर्थ नहीं बिताना चाहिये ।

=विषाद्विषं किं, विषया समस्ताः ।
(श्री शङ्कराचार्य)

प्र०—विषों में घोर विष क्या है ?
उत्तर--समस्त सांसारिक विषय ।

=विस्मृत्य सकलान् भोगान्
मदर्थे त्यक्त जीवितान् ।
मदात्मकान् महा भागान्
कथं तांस्त्यक्तु मुत्सहे ॥
(भगवद्वचन)

समस्त विषयों को भूलकर जिन्होंने अपना जीवन मुझको समर्पित कर दिया है उन आत्म भाव से मुझ में स्थित हुए महाभागों का भला मैं कैसे त्याग करूँगा ।

=मरे एक त्याचा दूजा शोक वाहे
अकस्मात् तोही पुढे जात आहे ॥
(समर्थ रामदास)

एक मरता है दूसरा उसका शोक मनाता है परन्तु वह भी आगे काल कवलित हो जाता है ।

=एक घरी आधी घरी, आधी सों भी आध ।
कबिरा संगति साधु की, कटे कोटि अपराध ॥

'सत्सङ्ग-उपदेश' मीराँ की वाणी में

संसार के समस्त प्राणी कर्म के बन्धन में फँसे हुए हैं। क्योंकि—

(२७) कर्मन की जो गति न्यारी ॥ और—

(४२) करम गति टारे नांहि टरे ॥

अपने अपने शुभाशुभ कर्मों से प्राणी उलझता है व सुलझता है। उसको यह विवेक–विचार तो होता नहीं कि,

(७) जूठी रे काया ने जूठी रे माया, जूठो सब संसार ॥

(४६) जेताई दीसे धरण गगन बीच, तेताई सब उठ जासी

(१५) संसार सागर नो भे छे भारे, माँहे भरयो बहु भार॥

और इस संसार में वास्तव में कोई किसी का नहीं, न कुछ साथ में ही जायगा।

(६) जीव रा संगाथी जग में ना मिल्या हो जी ॥

(८१) स्वारथ नी रे सगाई संसार मां ॥

(६६) हाथी ने घोड़ा माल खजाना, कोई न आवे साथ ॥

प्राणी को यह भी ज्ञान नहीं कि—

(१) नहिं ऐसो जनम बारंबार। जीवणा दिन चार ॥

(४) जग में जीवणा थोड़ा। दिया लिया तेरे संग चलेगा। भज उतरो भव पार ॥

(११) आवो रूडो मनखो ते एळे गुमायो,
रामजी को नाम कायकुं न लियो ॥

(५६) काहे को देह धरी भजन बिन जननी भार भरी ॥

इसलिये जीव को चाहिये कि वह मानव जन्म को व्यर्थ न खोकर उसे सफल करे। न जाने किस समय काल आ जाय। क्यों न पहले से ही साधन कर जीवन को कृतकृत्य करे!—

(२०) पाळ बाँधो ने पाणी पहेली रे ॥

(९२) सूकें सरोवरे पाळ न बांधी, पाणी गयुं ज्यारे वहीने ॥

भगवत्प्राप्ति के किसी भी साधन को अपना कर नित्य उसका आचरण करना चाहिये एवं सात्विक गुणों युक्त भक्ति व प्रेम के आभूषण धारण करना चाहिये—

(३६) भक्ति का आभूषण सजो ॥

(१०) सज सोला सिणगार पहिर लीनी राखड़ी,
सॉंवलिया सूँ प्रीति औराँ सूँ आखड़ी ॥

इसके लिये सदैव सत्संग करना चाहिये—

(५९) धन आज की घरी सत्संग में परी।

(६६) सत्संग नो रस चाख प्राणी तूँ तो।
सत्संग थी बे घड़ीमां मुक्ति, वेद पुरे छे साख ॥

(१४) गोविन्द गाव मन सत्संग रूपी गंगा माँ प्रेमे करी न्हाव ॥

गुरु व संत पर श्रद्धा होनी चाहिये क्योंकि उनकी कृपा से ही बेड़ा भव सागर पार हो सकता है। मन रूप मैले वस्त्र को गुरुरूप हरि भक्त धोबी ही धोकर पवित्र कर देंगे—

(८) धोया न मैला होय, हरिजन धोबिया मन धोय,
जीवणा दिन दोय ॥

भगवद् मार्ग पर वही पैर रख सकता है जिसकी ऐसी अनन्य लगन है—

(२१) लगन लगी कौ पेडो (मार्ग) ही न्यारौ, पाँव धरत तन छीज्ये। जें तू लगन लगाई चावे, तो सीस की आस न कीज्ये।

निष्कपट भाव से प्रभु शरणागत होना चाहिये क्योंकि—

(४६) गिरधर के सरणौं जीव परम पद पावैं ॥

एक मात्र उन्हीं से हृदय से प्रेम करना चाहिये—

(६३) नेहडलो (प्रेम) करीये कोई साचा नी साथे।
आपने मळीये साँवरीया वरनी साथे ॥

इस मर्त्य संसार में एक मात्र भगवद्भजन व भगवत् प्रेम ही सार है।

(४५) कोउ उतरयो नहिं भजन बिना ॥

(३१) मीराँ कहे बिना प्रेम से नाँहि मिले नंदलाला।

(७५) ज्यों कुछ मजा भजन हरि के में, सो सुख नहीं अमीरी में। साहब मिलेगा सबूरी में।

(८६) कोई न दीठां में सुखिआँ, जगत में कोई न दीठां रे सुखिआँ। हरि को भजे सो नर सुखिया ॥

जो प्राणी इस प्रकार अनन्य प्रेम पूर्वक भगवद्भजन करते हुए प्रभु के पावन चरण कमलों की शरण लेता है, भक्तवत्सल भगवान की उस पर पूर्ण कृपा होती है। इतना ही नहीं उनकी तो यहाँ तक प्रतिज्ञा है कि—

(३५) जो जन ऊधो मोहि न बिसारे, ताहि ना बिसारूँ पल पाव घड़ी रे। वो मेरा मैं उनका रे ऊधो, भक्त काज मैं देह धरी रे ॥

८—सत्संग-उपदेश के पद

★

नर-जन्म-दुर्लभता १

नहिं ऐसो जनम बारम्बार ।

क्या जानूँ कछु पुण्य प्रगटे मानुसा अवतार ॥०॥

बढ़त पल पल घटत छिन छिन जात न लागे वार ।

बिरछ के ज्यों पात टूटे लगे नहीं पुनि डार ॥१॥

भौ सागर अति जोर कहिये विषम ऊँडी धार ।

राम नाम का बाँध बेड़ा उतर परले पार ॥२॥

ज्ञान चौसर मंडी चोहटे सुरत पासा सार ।

या दुनिया में रची बाजी जीत भावैं हार ॥३॥

साधु संत महंत ज्ञानी चलत करत पुकार ।

दास मीराँ लाल गिरधर जीवणा दिन च्यार ॥४॥

विनय २

स्वामी सब संसार के (हो) साँचे श्री भगवान ॥०॥

स्थावर, जंगम, पावक, पाणी, धरती बीच समान ।

सब में महिमा तेरी देखी, कुदरत के कुरबान ॥१॥

सुदामा के दारिद खोये, बारे की पहिचान ।

दो मुट्ठी तंदुल की चाबी, दीन्हों द्रव्य महान ॥२॥

भारत में अर्जुन के आगे, आप भये रथवान ।

उनने अपने कुल को देखा, छुट गये तीर कमान ॥३॥

ना कोई मारे ना कोई मरता, तेरा यह अज्ञान ।
चेतन जीव तो अजर अमर है, यह गीता को ज्ञान॥४॥
मुझ पर तो प्रभु किरपा कीजै, बंदी अपनी जान ।
मीराँ गिरधर सरण तिहारो, लगे चरण में ध्यान ॥५॥

निर्गुणभाव ३ (गुज०)

जूनु' थयु' रे देवळ जूनु' तो थयु' ।
म्हारो हंसलो नानो ने देवळ जूनु' तो थयु' ॥०॥
आरे काया रे हंसा डोलवाने लागी रे ।
पड़ी गया दांत मांयलु' रेखु' तो रह्यु' ॥१॥
तारे ने म्हारे हंसा प्रीत्यु' बंधाणी रे ।
उडी गयो हंस पांजर पड़ी रे रह्यु' ॥२॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण ।
प्रेम नो प्यालो तमने पाउँ ने पीउँ ॥३॥

वैराग्य ४

जग में जीवणा थोड़ा राम कुण कह रे जंजार ॥०॥
मात पिता तो जनम दियो है, करम दियो करतार ।
कइरे खाइयो कइरे खरचियो, कइरे कियो उपकार ॥१॥
दिया लिया तेरे संग चलेगा, और नहीं तेरी लार ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भज उतरो भव पार ॥२॥

गुणगान ५

भज केशव हरि नंदलाला । भज गिरिधारी गोपाला ॥०॥
मथुरा में हरि जनम लियो है, गोकुल झुले नन्दलाला ।
गोपी के कनैया बलभद्रजी के भैया, भक्तवत्सल रछपाला ॥१॥
मोर मुकुट पीतांबर सोहे, मुरली बजावे नंदलाला ।
यमुना के नीर तीर धेनु चरावत, गल बैजन्ती माला ॥२॥

पुतना को जननी गति दीन्हीं, अधम उधारे नन्दलाला।
मीराँ प्रभु चरणों की दासी, शरणागत प्रतिपाला ॥३॥

ज्ञान ६

राणा कुम्भाजी हो जी, जीवरा संगाथी जग में,
ना मिल्या हो जी ॥०॥
एक तो मायलड़ी रे दोय दोय दीकरा हो जी,
ज्याँरा न्यारा न्यारा लेख।
एक तो कँवरजी मान्यो कँवर पदे हो जी,
दूजो खेती करने खाय ॥जीव० १॥
एक तो गऊवारे दोय दोय बाछरूँ हो जी,
ज्याँरा न्यारा न्यारा भेद।
एक तो शंकर रे आगे नाँदियो हो जी,
दूजो तेलीड़ा रे द्वार ॥२॥
एक तो खाना रा दोय दोय कलसिया ओ जी,
ज्याँरा न्यारा न्यारा लेख।
एक तो शिवजी ने माथे जल चढ़े हो जी,
दूजो चमाराँ रे द्वार ॥३॥
एक तो बेलड़ली रे दोय दोय तूमड़ियाँ हो जी,
ज्याँरा न्यारा न्यारा लेख।
एक तो तूमड़ली तीरथ न्हावती हो जी,
दूजी कलालाँ रे द्वार ॥४॥
साँवरा चरणाँ में बाई मीराँ यूँ कहे हो जी,
राखो खरो धरम विश्वास

हरि ने भजवा सूँ सागे हरि मिले हो जी,
नहीं तो जासी जम के द्वार ॥५॥

निर्गुण-भाव ७ (गुज०)

वागे छे रे वागे छे तारी काया मां घडीयाल वागे छे ॥०॥
आरे काया ना दश दरवाजा, नीतिनीं नौबत गाजे छे ॥१॥
आरे काया मां बाग बगीचा, भमरो सुगन्धी मांगे छे ॥२॥
आरे काया मां जोत जले छे, तेजना झींझकार वागे छे ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, सन्तो अमरापुर म्हाले छे॥४॥

निर्गुण-भाव ८

धोया न मैला होय, हरिजन धोबिया मन धोय ॥०॥
मोह का फंदा काट मूरख, ताटी तन की तोड़ ।
पांच पचीसाँ ने गारद करले, मंदर दिवला जोय ॥१॥
सूरत साबू प्रीत जल से, कमियाँ शील संजोय ।
ऐसी धोवट धोय धोबिया, फेर न मैला होय ॥२॥
तन का पींजरा मन का सूआ, हिरदा में हरि गुण बोल ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जीवणा दिन दोय ॥३॥

निर्गुण-भाव ६

लग रहना, लग रहना, हरि भजन में लग रहना, लग रहना ॥०॥
साहेब का घर दूर है रे, जैसी लगी खजूर ।
चढ़े सो चाखे प्रेम रस, पड़े तो चकनाचूर ।१।भजन०॥
क्या बख्तर का पहरना रे, क्या ढालों की ओथ ।
शूरे पूरे का पारखा रे, लड़े धणी से जोर ॥२॥
ज्ञान कटारी बड़ी रे, गुरू गोविन्द तलवार ।
वैराग्य रूपी भाला बांध ले, कबहुँ न होवे हार ॥३॥

हाड चाम की देह बनी रे, नव नाडी दश कोर ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, लगी राम सों डोर ॥४॥

सद्‌गुण-आभूषण			१०

चालो अगम के देश, काल देखत डरे ।
वहाँ भरा प्रेम का हौज, हंस केल्यां करे ॥१॥
ओढ़न लज्जा चीर, धीरज को घांघरो ।
छिमता काँकण हाथ, सुमत को मूंदरो ॥२॥
पूंची है विश्वास, चूड़ो चित ऊजलो ।
दिल दुलड़ी दरियाव, साँच को दोवड़ो ॥३॥
दाँताँ अमृत मेख, दया को बोलणो ।
उबटन गुरू को-ज्ञान, ध्यान को धोवणो ॥४॥
कान अखोटा ज्ञान, जुगत को झूंठणो ।
बेसर हरि को नाम, काजल है धरम को ॥५॥
जौहर शील सन्तोष, निरत को घूंघरो ।
बिंदली गज मणि-हार, तिलक हरि-प्रेम को ॥६॥
सज सोला सिणगार, पहिर लीनी राखड़ी ।
साँवलिया सूँ प्रीति औराँ सूँ आखड़ी ॥७॥
पतिबरता की सेज प्रभुजी पधारिया ।
गावे मीरांबाई, दासी कर राखिया ॥८॥

नाम-माहात्म्य			११

काय कुं न लीयो तब तुं, काय कुं न लीयो,
रामजी को नाम तब तुं काय कुं न लीयो ॥०॥
नव नव मास तुंने उदर में राख्यो,
झुलणे झुलायो तुने पारणे पोढ़ायो ॥१॥

रतन सो जतन करी तुने राख्यो,
बड़ो रे भयो तबते कुल लजायो ॥२॥
गुनका को बेटो गली मांही डोले,
पिता बीन पुत्र ए गुनका को कहायो ॥३॥
बाइ मीराँ के प्रभु तिहारा भजन बीना,
आवो रूडो मनखो ते एळे गुमायो ॥४॥

ज्ञान १२ (गुज०)

भजीलोनी संतो, भजीलोनी साधो,
रामजी बीना कैसो जीवरण रे, हो जी ॥०॥
तन नो बनावुं तंबुरो, जीवनो तार तणावुं राम।
बन बन बाजे घूघरा, जीवने लाड लडावुं राम ॥१॥
आंगणे आंणीआरा आटला (?), मंदिर लीप्यां ना दीसे राम।
शेर अनाज ने सेवतां, जीवड़ो जातां ना हीसे राम ॥२॥
काया ने आणां आवीयां, जम पाछा ना फरे राम।
सात साहेलीना झुमख मां, जीवने आगळ वरावे राम ॥३॥
तल तल देह होमीयां, जरा आज्ञा न मोडुं राम।
जीवडो जाय तो जावा देउं, हरि नी भक्ति ना छोडुं राम ॥४॥
नदी रे किनारे ' ' नयणे नीर वहेवडावुं राम।
काया नी करूं वाडी हुं, नदी रे किनारे चंपो रोपावुं राम ॥५॥
कहानजीना हाथनी रेखा अडे, बीन चंपे कळियो आवे राम।
दास मीरांबाई नी विनति, ठाकोरदास तुज कहावुं राम ॥६॥

वैराग्य १३ (गुज०)

काम नहि आवे तारे काम नहि आवे,
प्रभु विना तारे काम नहि आवे ॥०॥

रूचि रूची अन्न नो भोजन बनायो,
ता परे तन ताप कर लगायो रे ।
रत्न जत्न करी एही पुतर जायो,
च्हणुं च्हणुं वाकुं लाड लडायो रे ॥१॥
तरीया कहे तोरी साथ चलुंगी, लुंटी लुंटी वाको धन खायो रे ।
काढ काढ करे घर थी बाहरी, च्हणुं रे रहेवा न पायो रे ॥२॥
बाइ मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरणे रही चरण न
धरायो रे ॥३॥

भक्ति-भाव १४ (गुज०)

गोविंद गाव मन गोविंद गाव । राम कृष्ण भजवा नो आव्यो छे
दाव ॥०॥
दुर्लभ नर देही तमे तत्पर थाव ।
भवसागर तरवा ने बेसवा ने नाव ॥१॥
भगवत्कथा सांभळो ने हृदे राखो भाव ।
सत्संग रूपी गंगा मां प्रेमें करी न्हाव ॥२॥
बाइ मीराँ कहे तमे हरिजन थाव ।
हरि के चरणा में चित्त लगाव ॥३॥

ज्ञान १५ (गुज०)

संसार सागर नो भे छे भारे, मांहे भरयो छे बहु भार ॥०॥
काम क्रोध बे कटाच्छ उमराव, मद ममता मोहवार ॥१॥
शील संतोशी सढ चढावो, हरि नाम ने हलकार ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, राम हृदय मनमां धार ॥३॥

ज्ञान १६ (गुज०)

मारे हरि भज्यानी छे वेळा रे, भेदु विना कोने कहीए ।

भेदुडा होय ते भेद पीछाणे संतो,
अगम नीगम नी खबरो लइए रे ॥०॥
उंडा रे नीर जोइने माँहे ना धसीए संतो ।
कांठडे बेठां बेठां नाहीए रे ॥१॥
मायानु रूप जोइने मन ना डगावीए संतो ।
प्रभु थी प्रीत लगावीए रे ॥२॥
बाइ मीराँ कहे प्रभु गिरिधर केरा व्हाला !
चरण कमळ चित लइए रे ॥३॥

भक्ति १७

भजले नंदकुमार मुरख मन में समझ कर भजले नंदकुमार ॥०॥
नंद के लाल सें हेत करले, उतर जा भव जल पार ॥१॥
ओर कछु तेरे काम न आवे प्राणजीवन आधार ॥२॥
निशदिन धावत ओर जगायें हरिभजन में नहि प्यार ॥३।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर चरण कमल चित सार ॥४॥

ज्ञान १८ (गुज०)

मंदिरया में दीवडा विनानु अंधारूं ॥०॥
खळमळ्यां देवळ उभी रही थांभली रे,
आडुं नहि झीले एनो भार रे ॥१॥
हाथ मां वाटकडी घरोघर घुमती रे,
कोइ द्यो तेल ओधारूं ॥२॥
उठि गयो वाणीयो ने पडी रही हाटडी रे,
जमडा करे छे धींगाणुं ॥३॥
बाइ मीराँ कहे प्रभु गिरिधर नागर,
आवतां जमडा ने पाछो वाळुं ॥४॥

संतोष १६

कछु लेना न देना मगन रहना ॥०॥
नाँय किसी की कानां सुनाणी । नांय किसी कूँ अपनी कहना ॥१॥
गहरी गहरी नदियाँ नाव पुरानी ।
खेवटिये सूँ मिलते रहना ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
साँवरा के चरणाँ में चित देना ॥३॥

वैराग्य २० (गुज०)

मरी जावुं माया मेली रे मरी जावुं ॥०॥
कोई तो बनावे बाग बगीचा ।
कोई तो बनावे हवेली रे ॥१॥
धाई ने धुती ने धन भेळं रे कीधूँ ।
पाँच पचीश नी थेली रे ॥२॥
आरे काया मां सखी केसर क्यारो ।
मांही तो उगेली विख वेली रे ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण ।
पाळ बाँधो ने पाणी पहेली रे ॥४॥

हरिनाम-सार २१

मनुवा बावरे सुमरले मन सीताराम ॥०॥
बड़े बड़े भूपति सुलतान उनके । डेरे भये मैदान ॥१॥
लंका के रावण काल ने खाया । तू क्या है कंगाल ।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर । भज गोपाल त्याग जंजाल ॥२॥

निर्गुण-भाव २२

सुरत सुहागण सुन्दरी ए, हे म्हारी सुरता हँसला री सेज बिछाय ।
हजारी हँसो पावणो है ॥०॥

गगन मण्डल बाजा बजै ए।

हे म्हारी सुरता बिन झालर झणकार ॥

सोवन शिखर दिवलो जगै ए।

हे म्हारी सुरता बिन वाती बिन तेल ॥१॥

परायो पुरष भाँव लाख को ए।

हे म्हारी सुरता आपणे रे किण काम ॥

घर को पुरष निरधन भलो ए।

हे म्हारी सुरता अड़योड़ा सुधारे काम ॥२॥

शाल दुशाला किण काम का ए।

हे म्हारी सुरता त्याग्यो है दिखणी रो चीर ॥

घर की तो गुदड़ी भली ए।

हे म्हारी सुरता ओढ़ करो बिसराम ॥३॥

अलूणा सलूणा भोजन किसा ए।

हे म्हारी सुरता त्याग्यो है जिनवारो भात ॥

घर का तो टुकड़ा भला ए।

हे म्हारी सुरता खाय करो बिसराम ॥४॥

हिंगलू रो ढोल्यो किण काम को ए।

हे म्हारी सुरता त्याग्यो है पिलंग निवार ॥

घर की तो मचली भली ए।

हे म्हारी सुरता पोढ़ करो बिसराम ॥५॥

महल मालिया किण काम का ए।

हे म्हारी सुरता त्याग्यो है रंग रो महल ॥

घर की तो टपरी भली ए।

हे म्हारी सुरता बैठ करो बिसराम ॥६॥

मीराँ का गिरधर भला ए ।
हे म्हारी सुरता शिर पर शालिगराम ॥७॥

ज्ञान   २३

लगन को नांव न लीज्यो री भोली ॥०॥
लगन लगी कौ, पैड़ो ही न्यारौ, पांव दरत तन छीज्ये ॥१॥
जें तू लगन लगाई चावे, तो सीस की आस न कीज्ये ॥२॥
लगन लगी जैसे पतंग दीपक सें, वारी फेर तन दीज्ये ॥३॥
लगन लगाई जैसे मिरघै नाद सें, सन्मुख होई सिर दीज्यै ॥४॥
लगन लगाई जैसे चकोर चंदा से, अग्नि भक्षण कीज्ये ॥५॥
लगन लगी जैसे जल मछीयन से, बिछड़त तन ही दीज्ये ॥६॥
लगन लगी जैसे पुष्प भंवर से फूलन बीच रहीज्ये ॥७॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित दीज्ये ॥८॥

हरि नाम-सार   २४

प्रभु से मिलना कैसे होय ॥०॥
पाँच पहर धंधे में बीते, तीन प्रहर रहे है सोय ॥१॥
मानुष जनम अमोलख पायो सो तैं सबही ढारयो खोय ।
मीराँ के प्रभु गिरधर भजीये होनी होय सो अबही होय ॥२॥

ज्ञान   २५

रेंटिया ने किस विध कातुं ए माय ॥०॥
हरि बिना जीवड़ो निकस्यो जाय ॥
सजन कारिगर म्हांने रेंटियो घड दीनो
मनसारी माल बनास्यां ए माय ॥१॥
प्रेम पीनारे म्हांने रूई पिन दीनी
ज्ञान केरि हाठ भराई ए माय ॥२॥
पांच सखियां मिल कातण बेठी ।
उलटाई तार चडावे ए माय ॥३॥

सुरत सवागण बड़ि कतवारण
तार गगन में लेजावे ए माय ॥४॥
ज्ञान सूत की बंधी गठडिया
सुधि सिखर गड जावे ए माय ॥५॥
सतगुरू म्हारा बड़ा हि सोदागर
सूगी वस्तु दिराइ ए माय ॥६॥
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर
हरखि निरखि गुण गावे ए माय ॥७॥

हरि भजन-सार २६

भजन विना जिवड़ा दुखी, मन तुं राम भजन करी ले ॥०॥
जीव तुं जायगो जहुर, मन तुं राम भजन करी ले ॥१॥
लख रे चौर्यासी फेरा फिरेगो, जीव जन्मी जन्मी मरे ॥२॥
मात पिता तेरा दास ने बंधु। वाळे कारज कछु ना सरे ॥३॥
हस्ती ने घोड़ा माल खजाना। धन भंडार भर्यो घर में ॥४॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। अरे मेरो चित भजन में ॥५॥

कर्म-गति २७

कर्मन की जो गति न्यारी। में कैसे लिखूँ मुरारी॥
खिंच गई कलम हमारी ॥०॥
नागरवेल फूल विन तरसे, फूलाँ लूम हजारी।
उजलो जी पंख बगुले को दीनो, कोयल किस विध कारी ॥१॥
मूरख राजा राज करत है, पंडित फिरे भिखारी।
पतिव्रता नार पुत्र विन बिलखे, फूवड़ जण जण हारी ॥२॥
बड़े बड़े नैन दिया मृगा ने, बन बन फिरत उजारी।
मीरां बाई के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणां बलिहारी ॥३॥

ज्ञान २८ (गुज०)

ज्ञान कटारी मारी, अमने प्रेम कटारी मारी, ॥०॥
मारे आंगणे रे रामजी तपसीओ तापे रे,
    काने कुंडळ ज़टाधारी रे, ॥ राणाजी, अमने ज्ञान० ॥१॥
मकनो सो हाथी रामजी, लाल अंबाडी रे,
    अंकुश दई दई हारी रे ॥२॥
खारा समुद्र मां अमृत नुं वहेळियुं रे,
    एवी छे भक्ति अमारी रे ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
    चरण कमळ बलिहारी रे ॥४॥

ज्ञान २६ (गुज०)

तमे जाणी ल्यो समुद्र सरीखा, मारा वीरा रे,
    आ दिल तो खोली ने दीवो करो रे, होजी ॥०॥
आरे काया मां छे वाडीओ रे होजी,
    मांहे मोर करे छे झींगोरा रे ॥१॥
आ रे कायामां छे सरोवर रे होजी,
    मांहे हंस तो करे छे कल्लोला रे ॥२॥
आ रे कायामां छे हाटडां रे होजी,
    तमे वणज वेपार करोने अपरंपारा रे ॥३॥
बाई मीरां के प्रभु गिरधरना गुण होजी,
    देजो अमने संत चरणे वासेरा रे ॥४॥

साधु-संगति ३० (गुज०)

आज मारे साधु जननो संग रे राणा, मारां भाग्य भर्यां रे ॥०॥
साधु जननो संग जो करीए पियाजी, चडे ते चोगणो रंग रे ॥१॥

साकुट जननो संग न करीए पियाजी, पाडे भजन मां भंग रे ।२।
अडसठ तिरथ संतो ने चरणे पियाजी कोटि काशी ने कोटि गंगरे।३।
निंदा करशे ते तो नर्क कुंड मां जाशे पियाजी,
थशे आंधळा अपंग रे ।।४।।
मीराँ कहे गिरधर ना गुण गायो पियाजी,
संतो नी रजमां शीर संग रे ।।५।।

प्रेम-वश भगवान ३१

साधन करना चाही रे मनवा, भजन करना चाही ।
प्रेम लगाना चाही रे मनवा, प्रीति करना चाही ।।०।।
नित नहान से हरी मिलें तो मैं जल जन्तू होई ।
फल मूल खाके हरी मिलें तो बानर बन्दर होई ।।१।।
तृण भक्षण से हरी मिलें तो बहुत है मिले अजा ।
नारि छोड़ि के हरी मिलें तो बहुत मिले खोजा ।।२।।
तुलसी पूजें हरी मिलें तो पूजूं तुलसी झाड़ ।
पत्थर पूजें हरी मिलें, तो मैं पूजूं पहाड़ ।।३।।
दूध पिये ते हरी मिलें तो बहुत हैं भक्तीवाला ।
मीराँ कहे बिना प्रेम से नांहि मिले नंदलाला ।।४।।

साधु-संगति ३२

भैय्या मोरे भाग जागे साधु आये पावना ।।०।।
चुवा चंदन घस लियो, अँग कूं लगावना ।।१।।
मथुरा में कंस मारा, लंकापति रावणा ।।२।।
राजा बली द्वारे ठहरो रूप लिया बावना ।।३।।
गोकुल में जाके ठहरो द्वारका बसावना ।।४।।
मीरां बाई हरि की दासी पद कूं लगावना ।।५।।

वैराग्य ३३ (गुज०)

सीताराम ने भजो ल्यो फोकट शीद भटको ॥
मालिक ने भजतां रात दिन नव अटको ॥०॥
काया ने माया तेरे काम नहीं आवे,
पड़ी रहे काया केरो कटको ॥१॥
पतंग केरो रंग उड़ी उड़ी जाय,
संसार छे चार दी नो चटको ॥२॥
बालपणा मां हरि ने नव भजिया,
बुढ़ापणा में उठे भड़को ॥३॥
बाई मीरां कहे प्रभु गिरधर ना गुण,
हरि ने भजवानो राखो खटको ॥४॥

वैराग्य ३४

हत्ती घोड़ा महाल खजोना दे दौलत पर लात रे,
करिये प्रभुजी की बात सब दिन करिये प्रभुजी की बात रे ॥०॥
मां बाप और बहन भाई कोई नहीं आवे साथ रे ॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर भजन करो दिन रात रे ॥१॥

भक्त-वत्सलता ३५

जो जन ऊधो मोहि ना विसारे
ताहि ना विसारूं पल पाव घड़ी रे ॥०॥
वो मेरा मैं उनका रे ऊधो भक्त काज मैं देह धरी रे ॥१॥
जन्म जन्म का संकट काटूं राखूं मैं आनन्द घड़ी रे ॥२॥
भारत में भंवरी का अंडा राख लिया गज घन्ट तली रे ॥३॥
द्रोपदी को चीर दुशासन खेंच्यो भक्त जान मैं साय करी रे ॥४॥
जल डूबत गजराज उबारियो ग्राह को मारियों तंत घड़ी रे ॥५॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर निसदिन सुमरन राम हरी रे ।६।

भक्ति भाव ३६

सुख पाओ रे प्राणी राम भजो, राम भजने भव पार उतरजो,
नीच कर्म परा तजो रे। प्राणी राम भजो० ॥०॥
साध संगत मांहि जाय सुधरजो, दुष्ट कर्म परा तजो रे ॥१॥सुख०
हरिजन मिले जांसुं हरखने मिलजो, दुर्जन से दूरा रीजो रे ॥२॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भक्ति का आभूषण सजो रे ॥३॥

हरिनाम-सार ३७

यो झूँठो रे संसार, सांचो म्हारो साँवरिया को नाम ॥०॥
कदीयन पाळी चालती रे, चाली सो सो कोस ।
काशीपुरी के चोहटे जी कईं हरीचंद बैंचे नार ॥१॥
माणक सोनो पहरती रे तुलती फूलन भार ।
एक दिन झोलो रामजी कांई, घर घर की पनीहार ॥२॥
सोने की लंका बनी रे सोने का दरबार ।
रत्ती भर सोनो ना मल्योजी कांई रावण मरतो बार ॥३॥
मीराँ ने तो गिरधरजी मल्या रे, छिन में कीन्हा निहाल ॥४॥

चेतावनी ३८

अब क्यों करे रे मूर्ख मोडो रे, बटाऊ (पंथी) वाट घणी
दिन थोड़ो रे ॥०॥
उगोरे सूरज पूरब, घर पुगो तो, दोड सके तो दोडो रे ।१।बटाऊ०
करलो किमत हिमत मति हारो, कर चिंता पिछे दोडो रे ॥२॥
नगर पुछ्यां निरभे होसी, बीच रमण को फोडो रे ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मार्ग म्हाने मिल्यो नेडो रे ।४।

ज्ञान ३६ (गुज०)

मान सरोवर जैये कूडी रे काया ॥०॥

हंसला नी साथे वीरा संग तू करिये,
भेळा बैसी ने मोती चणिये ॥१॥
साधू ने संगते वीरा साधू कहेवाये,
नित्य नित्य गंगाजी मां न्हैये ॥२॥
म्हाँएलाए मनडा केम भूल्यो वीरा,
दरसण गुरूजी ना करिये ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण,
भवसागर थी तरिये ॥४॥

ज्ञान ४० (गुज०)

वारू म्हाँरा वीरा रे संग न करिये नीच नो रे जी,
नीचपणो निश्चय नरके ले जाय ॥०॥
आकडिया ना दूध अति ऊजला रे जी,
तेने पीधे तरत मृत्यु थाय ॥१॥
गरवी गाय ना दूध अति मीठडा रे जी,
साकर भेळे स्वाद अदको थाय ॥२॥
बावल नो कांटो रे दीसे अलखमणो रे जी।
छांये बैसे अंग ने वस्त्र उजरडाय ॥३॥
आम्बलिया नी छाय रे दीसे रळियामणि रे जी।
तेने सेवे फळ नी प्राप्ति थाय ॥४॥
गुरू ना प्रतापे बाई मीराँ बोलिया रे।
राखो अमने संत ना चरणा नी मांय ॥५॥

मनः संयम ४१

अपने मन को बस करे।
घाट अवघट बिकट यह लाख में इक तरे ॥ १ ॥
काम क्रोध बिकार जगमें मोह मद से हरे ॥ २ ॥

सत्य परउपकार कर नर ध्यान प्रभु का धरे ॥३॥
दास मीराँ शरण प्रभु का चरण में आ परे ॥४॥

कर्म-गति ४२

करम गति टारे नाहिं टरे ॥०॥
सतबादी हरिचँद से राजा (सो तो) नीच घर नीर भरे ॥१॥
पाँच पांडु अरू सती द्रोपदी, हाड़ हिमालै गरे ॥२॥
जग्य कियो बलि लेण इन्द्रासणः सो पाताल धरे ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बिख से अमृत करे ॥४॥

हरिनाम-सार ४३ (गुज०)

नथी आवणो पाछो संसारिया में नथी आवणो पाछो ॥०॥
काया नगर में फूलों हन्दो भांडो, जामें भँवर लियो बासो ॥१॥
भाई बन्धु थारा कुटुम्ब कबीला, पड़ियो फन्द बासो ॥२॥
चुण चुण कंकर महल बनाया, ओ तो भवन भयो काचो ॥३॥
खायले पीले खूब खरचले, लारे बांधियो थे भातो ॥४॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, हरिजी रो नाम है सांचो ॥५॥

चेतावनी ४४

बन्दे बन्दगी मत भूल ॥०॥
चार दिनां की कर ले खूबी, ज्यूं दाड़िम रा फूल ॥१॥
आया था ए लोभ के कारण, मूल गमाया भूल ॥२।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, रहना, वे हजूर ॥३॥

हरिनाम-सार ४५

भजले रे मन गोपाल गुना ॥०॥
अधम तरे अधिकार भजन सूँ, जोइ आये हरि सरना ॥
अबिसवास तो साखि बताऊँ, अजामील गणिका सदना ॥१॥

जो कृपाल तन मन धन दीन्हों, नैन नासिका मुख रसना ।
जाको रचत मास दस लागे, ताहि न सुमरो एक छिना ॥२॥
बालापन सब खेल गमायो, तरुण भयो जब रूप घना ।
बृद्ध भयो जब आलस उपज्यो, माया मोह भयो मगना ॥३॥
गज अरू गीधहु तरे भजन सूँ, कोउ तर्यो नहिं भजन बिना ।
धना भगत पीपा मुनि सिवरीं, मीराँ की हू करो गणना ॥४॥

विवेक   ४६

भज मन चरणकँवळ अविनासी ॥०॥
जेताइ दीसे धरण गगन बिच, तेताइ सब उठ जासी ।
    कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हे, कहा लिये करवत-कासी ॥१॥
इण देही का गरब न करणा, माटी में मिल जासी ।
    यो संसार चहर की बाजी, साँझ पड़्याँ उठ जासी ॥२॥
कहा भयो है भगवा पहर्याँ, घर तज भये सन्यासी ।
    जोगी होय जुगत नहिं जाणी, उलट जनम फिर आसी ॥३॥
अरज करूँ अबला कर जोड़े, स्याम तुम्हारी दासी ।
    मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, काटो जम की फाँसी ॥४॥

प्रभु-चरण महिमा   ४७

मन रे परसि हरि के चरण॥०॥
सुभग सीतल कँवल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरण ।
    जिण चरण प्रहलाद परसे, इंद्र पदवी धरण ॥१॥
जिण चरण ध्रुव अटल कीन्हें, राख अपनी सरण ।
    जिण चरण ब्रह्मांड भेट्यो, नख सिखाँ सिरी धरण ॥२॥
जिण चरण प्रभु परसि लीने, तरी गोतम-घरण ।
    जिण चरण काळीनाग नाथ्यो, गोप-लीला-करण ॥३॥

जिण चरण गोबरधन धारचो, गर्व मघवा हरण ।
दासि मीराँ लाल गिरधर, अगम तारण तरण ॥४॥

पाखण्ड ४८

यहि बिधि भक्ति कैसे होय ॥०॥
मन की मैल हियतें न छूटी, दियो तिलक सिर धोय ॥०॥
काम कूकर लोभ डोरी, बाँधि मोहिं चंडाल ।
क्रोध कसाई रहत घट में, कैसे मिले गोपाल ॥१॥
बिलार बिषया लालची रे, ताहि भोजन देत ।
दीन हीन ह्वै छुधा रत से, राम नाम न लेत ॥२॥
आपहि आप पुजाय के रे, फूले अँग न समात ।
अभिमान टीला किये बहु कहु, जल कहाँ ठहरात ॥३॥
जो तेरे हिय अंतर की जानै, तासों कपट न बनै ।
हिरदे हरि को नाम न आवै, हाथ मनिया गनै ॥४॥
हरी हितु से हेत कर, संसार आसा त्याग ।
दास मीराँ लाल गिरधर, सहज कर वैराग ॥५॥

सांसारिक-मनोवृत्ति-राग ४९

रमइया बिन यो जिवड़ो दुख पावै । कहो कुण धीर बँधावै ॥०॥
यो संसार कुबध को भाँडो, साध-सँगत नहीं भावै ॥१॥
राम नाम की निंद्या ठाणै, करम-ही-करम कुमावै ॥२॥
राम नाम बिन मुकति न पावै, फिर चौरासी जावै ॥३॥
साध-सँगत में कबहुँ न जावै, मूरख जनम गुमावै ॥४॥
मीराँ प्रभु गिरधर के सरणैं, जीव परम पद पावै ॥५॥

ज्ञान ५०

रामा कहिये रे गोविन्द कहिये रे ॥०॥

कंकर हीरा एक सारसा हीरा किसकू कहिये रे ।
हीरा पण तो जद ही जाणूं, महंगा मोल बिकइये रे ॥१॥
कोयल कागा एक सरीसा, कोयल किसको कहिये रे ।
कोयल पण तो जब ही जाणूं, मोठा वचन सुणइये रे ॥२॥
हंसा बुगला एक सरीखा, हंसा किसकूं कहिये रे ।
हंसा पण तो जद ही जाणूं, चुग चुग मोती खइये रे ॥३॥
जगत भगत के आदि वैर है, भगत किसकूं कहिये रे ।
भगत पणो तो जब ही जाणूं, बोल सभी का सहिये रे ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ चित दइये रे ।
द्वारका के ठाकुर के, सरण में जाकर रहिये रे ॥५॥

सांसारिक मनोवृत्ति ५१ (गुज०)

लेताँ लेताँ राम नाम रे, लोकड़ियाँ तो लाजाँ मरे छै ॥०॥
हरि मंदिर जाताँ पाँवलिया रे दूखे, फिरि आवे सारो गाम, रे ॥१॥
झगड़ो थाय त्याँ दौड़ी ने जाय रे, मूकी ने घर ना काम, रे ॥२॥
भाँड भवैया गणिका नृत्य करताँ, बेसी रहे चारे जाम, रे ॥३॥
मीराँ ना प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित हाम, रे ॥४॥

निगुण-भाव ५२

सासू सूती परसाळ नणद चोबारा ।
म्हारा पिवजी महल रे मांय जगाय लीज्यो रे ॥०॥
हर की प्यारी रे म्हें थांरा पिव ने जगाया ।
अब म्हांने आवेला नींद जगाय लीज्यो ॥१॥
भँवर गफा रे मांय भंवरा भंव रीया ।
ज्यांरी महक महक आवे बास भंवर रंग भींजे ॥२॥
भँवर गफा रे मांय नारचां झूले
ज्यांरे पांच (तत्व) तंत घट मांय दिवलो संजोयो ॥३॥

मगन होया दोइ नैणा पिया पल खोलो ।
भटकत उड़ गई नींद पिया मुंडे बोलो ॥४॥
केवे मीराँ दास सुता नर जागो ।
मैं तो गया री सांवरिया री लार भरम सभी भागो ॥५॥

संतोष ५३

करना फकीरी तेरी क्या दिलगीरी, सदा मगन मां रहेना जी ॥०॥
कोई दिन गाडी ने कोई दिन बंगला,
कोई दिन जंगल बसना जी ॥१॥
कोई दिन हस्ती कोई दिन घोडा,
कोई दिन पाऊं चलना जी ॥२॥
कोई दिन खाजा ने कोई दिन लाडु,
कोई दिन फक्कम फक्का जी ॥३॥
कोई दिन ढोलीया कोई दिन तळाई,
कोई दिन भोंय पे लोटना जी ॥४॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर,
कछु आय पडे सो सहेना जी ॥५॥

साधन-रहस्य ५४

मना तू तो वृक्षन की लत लेइ रे, थारो कांई करे डर भव रे ॥०॥
काटन वाला सूं बेर नहीं है, नहीं सींचन को स्नेह रे ।
जे कोई बावे कंकर पत्थर, उनको ही भल देइ रे ॥१॥
पवन चलावे इन्द्र झकोले, दुख सुख आपहि सहि रे ।
सीत गहाम तो शिर पर सहि है, पन्छीन को सुख देइ रे ॥२॥
आसन अचल मनसा नहीं डोले, तो ध्यान धणी को धर रे ।
जे तूं चावे मोक्ष जीवको, तो नाम निरंजन लेइ रे ॥३॥

जैसे चात्रग घन को रटत है, वैसे चरण चित धर रे ।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, भक्ति का रस लेइ रे ॥४॥

ज्ञान ५५

ऐसा राम राम राम संतो हेरयो ना मिले ॥०॥
मूरख ने तो माला दीनी, फेंकतो फिरे ।
अज्ञानी ने ज्ञान दीनो केवतो फिरे ॥१॥
मूरख ने तो हीरा दीना घट्टी में दळे ।
केसर ने कस्तुरी मूरख तेल में तळे ॥२॥
बिच्छु को झाडो नहीं जाणे सांप सूं अडे ।
नाडुली नजरां नहीं देखी समंदर में तिरे ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर भजन सूं तिरे ।
मनख जमारो मूरख भूतां ने मिले ॥४॥

चेतावनी ५६

काहे को देह धरी, भजन बिन काहे को० ॥०॥
गर्भवास की त्रास दिखाई, वाकी पीड बुरी ॥१॥
कोल वचन करि बाहर आयो, अब तुम भूल परी ॥२॥
नोबत नगारा बाजे बधाई, कुटुम सब देखे ठरी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जननी भार भरी ॥४॥

ज्ञान ५७

कित गयो पंछी बोलतो ॥०॥
कचीरे मटीदा महल चुणाया, गोखाँ ही गोखाँ डोलतो ॥१॥
गुरू गोविन्द को कह्यो न मान्यों, ऐंडो ही ऐंडो डोलतो ॥२॥
ऐंडो रे टेढ़ी पाग झुकातो, छाया निरखतो चालतो ॥३॥
मीराँ के प्रभु हरि अबिनाशी, हरि चरणां चित ल्यावतो ॥४॥

ज्ञान ५८

तोती मैना राधा कृष्ण बोल । राधे कृष्ण बोल ॥०॥
एकहि तोती ढूँडत आई, लकट दिवानी मोल ॥१॥
दाना खावै पानी पीवै, पिंजरे में करत कलोल ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि के चरण चित डोल ॥३॥

सत्संग-महिमा ५९

धन आज की घरी, सतसंग में परी ॥०॥
श्रीमद् भागोत श्रवण सुनी, रसना रटत हरी ॥१॥
मन डूबत लीला सागर में, देही प्रीति धरी ॥२॥
गुरू संतन की सोहनि सूरति उर बिचि आइ अरी ॥३॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, सरणैं राखि हरी ॥४॥

ज्ञान ६०

पानी में मीन प्यासी, मोहे सुन सुन आवत हांसी ॥०॥
आतमज्ञान बिन नर भटकत है । कहां मथुरा कहां कासी ॥१॥
भवसागर सब हार भरा है। ढूंढत फिरत उदासी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर सहज मिले अविनासी ॥३॥

ज्ञान ६१

बोल सूत्रा राम राम बोलै तो बलि जाऊँ रे ॥०॥
सार सोना की सल्या मँगाऊँ, सूत्रा पींजरो बणाऊँ रे ।
पींजरा री डोरी सूवा, हाथ सूं हलाऊँ रे ॥१॥
कंचन कोटि महल सूत्रा, मोतियाँ बँधाऊँ रे ।
मालिया में आय सूत्रा, पींजरो बँधाऊँ रे ॥२॥
चंपला री डार सूवा, पींजरो बँधाऊँ रे ।
घृत घेवर, मोलमा लापसी परसाऊँ रे ॥३॥
आमला रो रस सूत्रा, घोलि घोलि पाऊँ रे ।
बैठक के तो कारणे सूत्रा, चानणी बिछाऊँ रे ॥४॥

प्रेम के प्रताप सूवा (पाँव में पहरान सूवा) झाँझण बणाऊँ रे ।
केसर भरियो बाटको तेरे अंग में लगाऊँ रे ॥५॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, सरणे आयां सुख पाऊँ रे ॥६॥

ज्ञान ६२

मन तू कह्यो हमारो मान, मैं देती हूँ तोहे ज्ञान ॥०॥
लाखाँ बाताँ तोहे समझाऊँ, (तेरे) नहीं कणोंकी काँण ।
हामळ भर कर पाछो बगदै, तू है बेईमान ॥१॥
सैल दिखाऊँ माल खवाऊँ और चबाऊँ (बीड़ा) पान ।
मेरो कह्यो एक तू करले हरि (जी) सूं कर पहचान ॥२॥
हरिमंदिर में हरि गुण गाले, मीठी सुणादे (तीखी) तान ।
स्वास चढ़ाय समाधि लगाले, करले प्रभु को ध्यान ॥३॥
भजन कियाँ सूँ तेज वधैलो, जैसे (ऊग्यो) सूरज भान ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, अब तू थारी जान ॥४॥

संत-महिमा ६३

माई म्हारै साधाँ रो इकत्यार है ॥०॥
साधु ही पीहर साधु ही सासरो, सांवरिया भरतार है ॥१॥
जात पाँत कुल कुटम कबीलो, साधू ही परवार है ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, रमस्यां साधाँरी लार है ॥३॥

संत-महिमा ६४

साधू म्हारै आइया हेली वे गिरधरजी रा प्यारा ॥ ० ॥
चरण धोय चरणामृत लेस्यां (हे) कलमल मेटनहारा ॥१॥
प्राण ते अति प्रिय लागै (हे) कबहुँ न करस्यां न्यारा ॥२॥
प्रभु कृपा कीनी अति (मो) पर सुधरचा जन्म हमारा ॥३॥

चेतावनी ६५

हरि को भजन नित करिए भोरी ॥०॥
देख पराई सुख सम्पति कूं, काहे झर कर मरिये री ॥१॥

नदिया गहरी नाव पुरानी, समझ समझ पग धरिये री ।।२।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,चरन कँवल चित धरिये री ।।३।।

सत्संग-महिमा ६६ (गुज०)

सत्संग नो रस चांख प्राणी तुं तो सत्संग नो रस चाख ।।०।।
प्रथम लागे तीखोने कडवो, पछी आंबा केरी शाख ।। १।।
आरे काया नो गर्व न कीजे, अंते थवानी छे खाख ।।२।।
हस्तीने घोड़ा माल खजाना, कांई न आवे साथ ।।३।।
सत्संगथी बे घडीमां मुक्ति, वेद पुरे छे साख ।।४।।
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, हरि चरणे चित राख ।।५।।

भगवद्-महिमा ६७ (गुज०)

हो भाग्यशाळी आवो तो राम रस पीजिए ।।०।।
तजी दुःसंग सत्संग मां वेसी, हरिगुण गाई ल्हावो लीजिये ।।१।।
ममता ने मोह जंजाळ जगकेरी, चित्त थकी दूर करी दीजिये ।।२।।
देवोने दुर्लभ देह मळी आ, तेने सफळ आज कीजिये ।।३।।
राम नामे रीजिए, आनन्द लीजिए,
दुरिजनीया थी न बीजिए ।।४।।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर , हेते हरि रंग मां भींजिए रे ।।५।।

भजन-महिमा ६८ (गुज०)

मन भजीले मोहन प्यारा ने, प्यारा ने, मोरली वारा ने ।।०।।
सात समुंदर तरी तरी आव्यो, डुबी मर मत आरामे ।।१।।
मनुखां देह मळी छूटवा,,शुं भूल्यो भमे घरबारा में ।।२।।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, हरि भजीले ये वारा में ।।३।।

भजन-महिमा ६९ (गुज०)

अब तेरो दाव लग्यो है, भजले सुन्दर श्याम ।।०।।

श्री राधेरानी दे डारो ना बाँसुरी [पृ० ६१२, पद ११०

शुनका तारण भील उधारण, मंगल पुरणकाम ॥१॥
प्रभु भजन करी राच सदा तुं, संतन कर प्रणाम ॥२॥
सेवा करी साधु संत प्रसन्न कर, नृत्य करी रट राम ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल निज धाम ॥४॥

चेतावनी ७० (गुज०)

भजतो नथी शा माटे, शामळाने भजतो नथी शा माटे ॥०॥
एक दिन एवो आवशे रे ज्यारे जमडा वहेशे वाटे ॥१॥
हरिनुं नाम तुं हीरो मूकी, बदले छे कोडी साटे ॥२॥
अर्थ गर्थ भंडार सहु रहेशे, कोई नहिं आवे तारी साथे ॥३॥
मात पिता निज बहेनी, मळीयां स्वारथ माटे ॥४॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चर्ण राखो दास माटे ॥५॥

सत्य-महिमा ७१

साचे राचे हरि, मेरे तो साचे राचे हरि ॥०॥
साचे सुदामा अति दुख पायो, दारिद्र दूर करी ॥१॥
साचे हरि निज हाथ बंधाये, मार खाय लकरी ॥२॥
साच बिना प्रभु स्वप्ने न आवे तप करो मरी मरी ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, बल जाउं घडी घडी ॥४॥

भक्ति-प्रभाव ७२

कोई नही है बडा प्रभु से कोई नही हैं बडा ॥०॥
प्रहलाद बेटा हरि से नेठा ताता खंभ खडा ॥१॥
पुण्डरीक ने सेवा कीनी बिठल ईंट पे खडा ॥२॥
गोपीचंद ने मान वचन को माल मुलक सब छोडा ॥३॥
हनूमान ने सेवा कीनी ले द्रोणागिर लडा ॥४॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणन चित लडा ॥५॥

चेतावनी ७३

लोभी जिवडा युंही जनम गमायो रे ॥०॥
जा दिनते तैं जनम लियो है, हरि को भजन नहिं गायो रे ॥१॥
भटकत फिर्यो लोभ के खातिर, हाथ कछू नहिं आयो रे ॥२॥
मात पिता अरू सुजन सनेही, वोहो जनम तैं पायो रे ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु हरि अविनासी, चरण कमल चित लायो रे ॥४॥

भक्ति-महिमा ७४

नहीं कोई जात को कारण, मन मानै की बात ॥०॥
बिना बीज खेती निपजाई, नरसीनो सार्यो काज ॥१॥
सैन भगत का सांसा मेट्या, आप दिखायो काच ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, भक्तवत्सल ब्रजराज ॥३॥

संतोष ७५

मन लाग्या मेरा राम फकीरी में ॥०॥
जो कुल मजा भजन हरि के में सो सुख नहीं अमीरी में ॥१॥
जो सुख तरूवर की छाया में सो सुख नहीं जगीरी में ॥२॥
सदा रहो मोहन के सरणें क्यों पड़ना दलगीरी में ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर साहब मिलेगा सबूरी में ॥४॥

सांसारिक मनोवृत्ति ७६ (गुज०)

नावडी नावडी नावडी रे, तने हरि भज्यानी रीत नावडी ॥०॥
मोंघो मुनखा देह तें तो धूळ माँ गुमाव्या ।
भारे मारी शीद मावडी रे ॥१॥
प्रभुनुं नाम लेता कदिये ना आवड्युं ।
निंदाओ करतां तने आवडी रे ॥२॥

नथी पूज्या देव अने नथी पूज्या देवता ।
नथी रे पूजी तें तो गावडी रे ॥३॥
बाई मीराँ कहे छे प्रभु गिरधर नागुण ।
प्रभुने भजील्योतमे आछडी रे ॥४॥

उपदेश ७७ (गुज०)

भजन कर भवसिंधु तरवा ।
खोवा जगत जंजाळ जूठा मां, भटके शुं करवा ॥
भक्ति नाव ग्रही ले प्राणी। सत्य चढावी था सुकानी
पार उतरवा ॥१॥
वृथा न जाये हरिनाम लीधुं ।
भक्त ने वश छे दयासिंधु सहाय जो करवा ॥२॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
चरण कमल चित धरवा ॥३॥

भक्त-लक्षण ७८

मैं ओळग्यो रामरो, जाकूं विलग न लागे कांईए ॥०॥
चढी विलोले नांव रे, जाको बाण न लागे आई ए ॥१॥
बायां ए बायां बेनड्यां- बायां थांसु भगतन होय ए ।
भगत कहे कोइ सूखा, ज्याका धड़ पर सीस न कोई ए ॥२॥
शूरा खेत वुहारणा, हरि मिलवा कै काज लडाई ए ।
कायर कायर भाजिया, शूरा रह्या रण मांह्य रे ॥३॥
मीराँ कहे जग जाय है, यामें रहतो न दीसे कोई ए ।
रहेसी रामजी रा साधवा, ज्यारे कुलवध्धा न होई ए ॥४॥

ज्ञान ७९

सुणीयो सरवरीया रो लोक, सरवरीयें पाणीडां ना जावुं ॥०॥

सरवर पाणी में गई रे, मींडक मारी लात।
चार महिना पडी रही रे, कोई न पूछी मारी बात ॥१॥
सरवर पाणी में गई रे, सरकर चीकट माटी।
घडो पटक पग रपटीओ रे सासु कहे बहु माठी ॥२॥
सरवर पाणी में गई रे, म्हांने गिरधर बोल्या बोल।
में गिरधर रो काहा बिगारचो, भर भर पाया में डोल ॥३॥
गिरधारी रो देवरो, राणे रो दरबार।
मीराँ नाचे प्रेमशु रे, तज सोळे सिणगार ॥४॥

संत-निष्ठा ८०

संताँ। काल रमीज्यो, म्हांरो इतनो जोर,
आज बसोनी म्हारा सहेर में ॥०॥
मारां तो करम कठण हूय लागा,
आप पधारो ज्यारा निरमळ होय ॥१॥
अंचलो बिछाव करूं परणाम,
सीस निवावुं म्हारा दोऊ कर जोड ॥२॥
सोमिका सफल जहां संत पधारे,
चरण पवित्तर कीनी मारी भोम ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर,
साधुडारो हिवडो बहु कठोर ॥४॥

सांसारिक-मनोवृति ८१ (गुज०)

स्वारथनी रे सगाई संसार मां स्वारथनी रे सगाई ॥०॥
पाडा ने कोई पाणी न पाये, पाडी उछेरे दूध पाई ॥१॥
दुबळा सगाने कोई ना बोलावे, ताजा ने भेटे छे धाई ॥२॥

मात पिता ए पुत्र जनम्यो, परणाव्यो धाळे मंगल गाई ।।३।।
तेरे पुत्र माने मारवा लाग्यो, वहुओ करे छे अदेखाई ।।४।।
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणां चित लाई ।।५।।

भव-चिन्ता   ८२ (गुज०)

शी गत थाशे हमारी, हरि हवे शी गत थाशे हमारी ।।०।।
अरू परू मुने कांइ न सूझे, जुओने दिल मां विचारी ।।१।।
घरनो रे धंधो घूमे घणेरो, काम कुटारो भारी ।।२।।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, लीयोनी हमने उगारी ।।३।।

पश्चात्ताप   ८३ (गुज०)

श्री हरि ! श्री हरि ! मारी शी गति थशे ।
कोण गति थशे रे, श्री हरि ! शी गति थशे ।।०।।
फोकट जन्म वृथा में तो खोयो, विश्वंभर गयो प्रभु बिसरी ।।१।।
अधर्म पाप कर्म बहु कीनो, पुण्य ना कीधुं (प्रभु) देह धरी ।।२।।
भाल तिलक कोटे तुलसी नी माळा,जगत ठग्यो प्रभु फरी फरी।३।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, प्रभु चर्णथी हुं तरी ।।४।।

विवेक   ८४ (गुज०)

अजाण्या माणसनो संग न करीए,
एना हाथ मां हीरो न दईये रे ।।०।।
मनडानी वातु रे दीलडानी वातु रे, भेद विना केने कहीए रे ।।१।।
ऊंचा झाडनी आल न करीए, हेठे थीं वीणीने फल खाईये रे ।।२।।
ऊंडा जलनो विश्वास न करीये, कांठे बेसी ने नाहीए रे ।।३।।
पारका धननी आश न करीये, प्रभु दीए तो खाईये रे ।।४।।
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, आपण हेते करीने गाइए रे ।५।

ज्ञान ८५ (गुज०)

करवो ए गजरो, काया फूलनो गजरो ।
पीआ दन को करवो गजरो ॥०॥
आ कायावाडीनां ए फूल करमावा लाग्यां ।
प्राणी लूंटवाने लाग्यो वेरी ओलो जमडो ॥१॥
आ बारे अटारीए भांखो भरूखो राणी ।
वसमो लागे आथमतो दीवड़ो ॥२॥
आ प्रीतुं करी अमने कां तरछोडो ।
प्राणी जोने विचारी तारो जुनो पींजरो ॥३॥
बाई मीराँ कहे ए प्रभु गिरधर ना गुण ।
प्राणी साचे दीले सीताराम ने समरो ॥४॥

दुःख रूप-संसार ८६

कोई न दीठां में सुखिआं, जगत में कोई न दीठां रे सुखिआं॥०॥
राजा भी दुखिया, प्रजा भी दुखिया,
दुखिया सबरे संसारा ॥१॥
जोगी भी दुखिया, जंगम भी दुखिया,
दुखिया भव वसनारा ॥२॥
पाणी भी दुखिया, पवन भी दुखिया,
दुखिया जळ केरी मछीयां ॥३॥
चन्द्र भी दुखिया, सुरज भी दुखिया,
दुखिया नव लख तारा ॥४॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर,
हरि को भजे सो नर सुखिया ॥५॥

मिथ्या-संसार ८७

कोन करे जंजाल, जग में जीवन थोरो ॥०॥
जूठी रे काया ने जूठी रे माया, जूठो सब संसार ॥१॥
मात पिता ने जन्म दियो है, कर्म दियो करतार ।
हाथी रे घोडा माल खजानो, जातां न लागे वार ॥२॥
संसार क तो माया मोटी, कोई न पाये पार ।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरन कमल चित धार ॥३॥

रहस्य ८८

तांडो तेरो लाद चल्यो बिणजारी अखियां खोल ॥०॥
लद गयो नायक खबर न पाई, मैं पापण रही सोय ।
जब जागु' जब नायक नांही, भर भर अखियाँ रोय ॥१॥
मैं विणजारी पिव विणजारो, और न दूजो कोय ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, राम मिल्या सुख होय ॥२॥

भजन-माहात्म्य ८६

धिःक है जग में जीवन जाको, भजन बिना देह धरी ॥०॥
जब माता की कूख जनम्यो, आनन्द हरख उचारी ।
जग में आय भजन नव कीन्हो, जननी को भारे मारी ॥१॥
काग कोयल तो सब रंग एके, कोई गोरी कोई कारी ।
वा बोले ताकु तीरज मारे, वा बोले जग प्यारी ॥२॥
वागल तो सिर ऊंधे भूले, वाकी कोन विचारी ।
फल सब कोई करणी का चाखे, मानो बात हमारी ॥३॥
जुनीसी नाव जमला खेवटिया, भवसागर बहु भारी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, प्रभु मोकु' पार उतारी ॥४॥

चेतावनी ६०

मरशे रे माया ने गळशे रे काया, टेक जाशे तारो त्रुटी ।
हो राम कृष्ण भजीले, जोबन जाय जरा फुंटी ॥०॥
सोना न मंदिर तारा मोल अवासु, जम ना किंकर लेशे फुंटी॥१॥
काचनो कुंपो जेम जळे रे भरियो, साचवतामां जाशे फूटो ॥२॥
बाई मीराँ कहे जेणे हरि नव जाणया,तेना जीवनडा मां आग उठी ३॥

भगवद्भाव ६१

पलक मत बिसरो रामै राम ॥०॥
गले में तुलसी की माला, मुख से राम राम ।
हिरदे में ठसावो श्री सारंगराम ॥१॥
हीरदे में तेरो रामजी बिराजे,
सीताजी की शोध में खेले हनुमान ॥२॥
नोकर चाकर बोत गुलाम रामा,
अंते नहिं आवे कोई तेरे काम ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागुण,
नयणां के पियारे मेरे सुन्दिरशाम ॥४॥

ज्ञान ६२ (गुज०)

पहेली प्रभु शुं प्रीत न बांधी, अन्ते संत मनावो रे ॥०॥
घर लाग्युं ने कूप खोदायो, केम अग्नि होलवाशे रे ।
चोरो तो धन हरी गया पछे, दीपकथी शुं थाशे रे ॥१॥
बालपणुं रमवामां खोयुं, जोबन जुवतीनी जोडे रे ।
वृद्ध थये छैयां छोकरां व्हालां, मरतां मागे मुक्ति मोटे रे ॥२॥
सूके सरोवरे पाळ न बांधी, वारी गयुं ज्यारे वहीने ।
शुं करवा पछी पाळ बांधो छो, साचीशी समजण सहीने रे ॥३॥
तुलसी मंगावोने तीलक बनावो, साहेब नाम सुणावो रे ।
मीराँ कहे अज्ञानी लोको, फोकट फंद करवो रे ॥४॥

ज्ञान ६३ (गुज०)

नेहड़लो करीये कोई साचा नी साथे आपणे मळीये
सांवरीया वर नी साथे ॥०॥
हंसलो ने बुगलो दोऊ जनम संगाती दोऊ मळी चाल्या वाटे ।
हंसला ने चारो रूड़ा मोती नो सोहै बुगलो भरमायो वणी
वाते ॥१॥
चोर ने साहुकार दोउ जनम संगाती दोऊ मळी चाल्या वाटे ।
सांज पड़ी साहुकार सो गयो रे एनो माल चुरायो वणी राते ॥२॥
साहुकार कहे छे मारो माल थे चोरीयो बतलायो तो आयो बाथे ।
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण आप मळीए सतगुरूजी नी
साथे ॥३॥

ज्ञान ६४ (गुज०)

कोई कहे तेने कहेवारे दईए, आपणे हरि भजन मां रहीए रे,
आपणे प्रभु भजन मां रहीए रे ॥०॥
जगत भक्त ने सदाय वैर छे, तेमां भक्तपणु ते कोने कहीए रे।
भक्तपणु त्यारे जाणीए, आपणे सौना मेणला सहीए रे ॥१॥
हीरा ने कंकर एकज रंगा, तेमा हीरापणु ते कोने कहीए रे ।
हीरापणु त्यारे जाणीए, आपणे घाव घणेरा सहीए रे ॥२॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण,
आपणे चरण कमल चित दइए रे ॥३॥

निर्गुणभाव-रहस्य ६५ (गुज०)

मारो हंसलो नानोने देवळ जुनु तो थयुं, जुनु थयु ने पिंजर
पडर्युं रह्युं रे ॥०॥

कुड़ी कुड़ी काया रामा, झूठी झूठी माया रे
कुडा तो दिलासा अमने दईने गयु ं रे ॥१॥
आरे कायानी साथे प्रीत बंधाणी रामा
पड़ी गया दांत रेखु ं पडी तो रह्यु ं रे ॥२॥
काया नो गढ़ हंस डोलवा ने लाग्यो रे
उड़ी गयो हंस पिंजर पड्यु ं तो रह्यु ं रे ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण वाला
भजन बिना तो आयुष्य एळे तो गयु ं रे ॥४॥

प्रेमपथ ९६ (गुज०)

प्रेम पीयालो में पीधो रे जीहो संतो प्रेम पीयालो में पीधो ॥०॥
आरे जगतड़ा ने, जोईने वारोरे, अमर पछेडो कोणे लीधो रे ॥१॥
आरे शरीर नां, शदवे सुखडा रे, छे अमे त्यागी दीधो रे ॥२॥
मारारे मनड़ाने बहुरे, समजाव्यो रे, जोग जंगलनो में
लीधो रे ॥ ३ ॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गीरधर ना गुण, स्वर्गपुरीनो मारग
लीधो रे ॥ ४ ॥

पदों के शब्दार्थ-भावार्थ-विशेष आदि
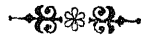
१—बढ़त ....डार=यह मानव देह वैसे तो शनैः शनैः बढ़ती हुई दृष्टिगत होती है पर वास्तव में एक एक दिन करते इसकी आयु घटती जाती है और अन्त में किसी दिन काल का ग्रास बन जाती है और ज्यों एक बार टूटा हुआ वृक्ष का पत्ता फिर डाल पर कभी नहीं लगता त्यों इस जन्म में मानव–देह के नष्ट होने पर फिर इसे प्राप्त करना असंभव है। ज्ञान चोसर........हार=इस संसार में मानव जीवन यह एक चौपड़ के खेल के समान है जिसके एक पक्ष में रजोगुण–तमोगुण व अज्ञान भरा है, दूसरी ओर सात्विक बुद्धि, भगवदभिमुखी वृत्ति एवं ज्ञान है। चाहे तो जीत कर अपने साधन पुरुषार्थ द्वारा प्रभु–प्राप्ति कर जीवन सार्थक कर लो या हार कर जन्म–मृत्यु के चक्र रूप–भव बंधन में ही फँसे रहो। जीवण...............च्यार=मनुष्य जीवन क्षण भङ्गुर है।

३—जूनु .... हंसलो.........देवल............ थयुं=यह देह जीर्ण हो गई, वृद्धावस्था आ गई परन्तु जीव रूप हंस की कामनाएँ–आशाएँ अभी तक अपूर्ण ही रह गई, देहा–सक्ति–मोह के कारण जीने की आशा अब तक बनी रही–तृप्ति नहीं हुई। आरे...... पडी............रह्यु=वृद्धावस्था के कारण काया काँपने लगी, मुख दंत विहीन हो गया। तारेने............पांजर ....रह्यु=जीवात्मा को देह में अत्यन्त आसक्ति हो जाती है परन्तु अन्त में किसी दिन जीव रूप हंस अपने शरीर रूप पिंजरे में से उड़ जाता है। प्रेमनो ....पीउँ=भगवत्प्रेम करना और कराना जीवन में यही लक्ष्य सत्य है।

विशेष :—अधिक चरण :—

कुडी कुडी काया तेनी, जुठी जुठी माया रामा।
कुडा तो दिलासा अमने दई तो गयुं रे॥

पाठान्तर :—

आरे कायानी साथे प्रीत बंधाणी रामा।
पडी गया दांत रेखुं, पडयुं तो रह्युं रे ॥
कायानो गढ हंसा डोलवाने लाग्यो रामा।
उडी गयो हंस पांजर पडयुं तो रह्युं रे ॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण व्हाला।
भजन विना आयुष्य एळे तो गयुं रे ॥

६—**विशेषः**—एक ही बीज से उत्पन्न हुए दो फलों में अपने अपने संस्कारों के अनुसार किस प्रकार परस्पर विरोधी भावों का परिणाम देखने में आता है इस पद में उसे मीरांबाई ने बड़े ही सुन्दर ढंग से अनेकानेक उदाहरणों द्वारा व्यक्त किया है। बहुत संभव है कुंभलगढ़ किले को देखते समय अथवा अपने मन्दिर के निकट के कुम्भ श्याम मन्दिर के दर्शन कर मीरांबाई को, उसके निर्माता उन महा पुरुषार्थी, अनेक गुण कलानिधि, महान भगवद् भक्त भूत-पूर्व महाराणा कुम्भाजी का स्मरण हो आया हो और तब, उनके पुत्र द्वारा ही किये गये उन जैसे पिता की हत्या जैसे घृणित कार्य की स्मृति आकर यह पद लिखने की स्फुरणा हुई हो। मेवाड़ के इतिहास में जगत् प्रसिद्ध सिसोदीया राज घराने में जो अनेकों विलक्षण और अपूर्व घटनाएँ घटी हैं, उनमें राणा लाखाजी के पुत्र कुमार चुंडा जी के, अपने पिता के लिये किये गये अद्भुत त्याग और उसके सर्वथा ही विपरीत राणा कुम्भा जी के पुत्र उदयसिंह (प्रथम—महाराणा प्रताप के पिता नहीं) द्वारा की गई पिता की नृशंस हत्या, ये दोनों ही घटनाएँ लोगों को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं। जहाँ पहली घटना हृदय में हर्ष और अत्यन्त आदर भाव उत्पन्न करती है तो दूसरी हृदय में शोक और घृणा को। एक मेवाड़ के गौरव को बढ़ाती है तो दूसरी कलंक रूप है। इसी भाव को लेकर मीरांबाई ने यह पद बनाया हो ऐसा प्रतीत होता है।

पद पाठान्तर :--

ओ राणा, जीवनो संगा थी हरि वीण कोई न थी,
मारे प्रभु भजवानी हामरे, मारे हरि भजवानी हामरे ॥०॥
एकरे गायना दो दो वाछडां तोय एना जुदा जुदा लेख।
एकरे शिवजी घरे पोठीयो, बीजो फरे घांचीडाने घेर ॥१॥
एकरे माटीना दो दो माटलां तोय एना जुदा जुदा लेख ।
एकरे माटलुं जशोदा मातनुं, बीजुं दीसे कलालने घेर ॥२॥
एकरे वेलाना बेबे तुंबडां, तोय एना जुदा जुदा लेख ।
एकरे तुंबडुं साधुना हाथमां, बीजुं गयुं रावलियाने घेर॥३॥
एकरे माताना दो दो बेटड़ा, तोय एना जुदा जुदा लेख ।
एकरे बेटो चोरासी धुणी तपे, बीजो धूमे लख चोरासी फेर॥४॥
एकरे बांसनी दो दो बांसली, तोय एना जुदा जुदा लेख ।
एकरे बांसली कान कुंवरनी, बीजी वागे वादीडा ने घेर ॥५॥
गुरूने प्रतापे मीराँ बोलियां, देजो अमने संतोंना चरणोंमांवास।६।

७—भावार्थ :—वागे छे······वागे छे=देह में निरंतर अनाहत नाद सुनाई देता है । आरे·········दश गाजे छे=इस शरीर के नवछिद्र और ब्रह्मरंध्र (जो योगियों के महासमाधि के समय प्राणाकर्षण का स्थान) दशम द्वार, इस प्रकार इस दस द्वार वाले देह में जिज्ञासु साधक को यमनियम आदि योग, भक्ति वा ज्ञानादि का साधन करते हुए अन्त में दशम द्वार में प्राण शक्ति को ले जाना होता है । आरे······ बाग·········मांगे छे=जिज्ञासु साधक को अपनी बाह्य वृत्ति को अंतराभिमुखी बनानी पड़ती है अर्थात् पंच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा भीतर के ही दिव्य विषयों का रसास्वादन करने योग्य बनना पड़ता है, जिससे चित्त वृत्ति स्थिरता को प्राप्त होती जाती है और जीवात्मा किसी अपूर्व आनन्द का अनुभव प्राप्त करता है। आरे········जोत········ वागे छे=योग साधन में त्राटक का अभ्यास करते करते जब भीतरी

साधन प्रारम्भ होता है तब साधक को दिव्य ज्योति के अनेकों चमत्कार दिखाई देते हैं। संतो·········म्हाले छे=संत व योगी जन इस प्रकार साधन भजन करके ही यह दुर्लभ मानव जन्म सार्थक करके बैकुण्ठ अथवा कैवल्यधाम-आनंद लोक को प्राप्त करते हैं।

विचारिए :—

बिन बाजा झनकार उठै जहँ, समुझि परै जब ध्यान धरै।
बिन ताल जहँ कमल फुलाने तेहि चढि हंसा केलि करै।
बिन चंदा उजियारी दरसै जहँ तहँ हंसा नजर परै।
दसवें द्वारे ताली लागी, अलख पुरुखता को ध्यान धरै।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, अमर होय कबहूँ न मरै।

८—धोयान ····· मन धोय=मन के विकारादि मैल धोने से ही चित्त निर्मल होता है और साधु व गुरु जन रूप धोबी ही इसे धोने में समर्थ हैं। ताटी·········तोड़=घट का आवरण खोल। पांच पचीसाँ ने=पंच महा भूत सकल इंद्रियाँ उनकी तन्मात्राएँ आदि प्रकृति के तत्व। गारद कर ले=रक्षा के निमित्त नियुक्त कर ले। मंदर ···जोय=देह में ज्ञान की ज्योति प्रदीप्त कर। शील संजोय=शीलादि गुणों को ग्रहणकर।

६—साहेब का ······चकनाचूर=ज्यों खजूर के वृक्ष पर बहुत ऊँचे खजूर लगती हैं, जिसे अत्यन्त परिश्रम और लगन पूर्वक ही कोई उस पर चढ़ कर प्राप्त कर सकता है, परन्तु कष्टों से घबरा कर तथा प्रमादवश बीच में ही लक्ष्य से च्युत होकर जो गिर कर नष्ट हो जाता है वैसे ही प्रभु को प्राप्त करने के लिये लगन और निरंतर दृढ़ साधन करने वाला साधक ही प्रभु को प्राप्त कर लेता है और बीच में ही साधन छोड़ कर श्रद्धा हीन और अकर्मण्य होने वाला तो भवबंधन में अधिकाधिक फँसता जाता है। क्या बख्तर·········धणी से जोर········· होवे हार=बख्तर और ढाल आदि स्थूल शस्त्रादिकों को धारण करना कोई विशेष महत्व नहीं रखता। उस सच्चे शूरवीर की तो तभी परीक्षा होती है कि जब वह ज्ञानरूपी कटारी, गुरू गोविन्द

रूप तलवार और वैराग्य रूप भाला आदि दिव्य शस्त्रादिकों को धारण कर भक्ति रूपी शक्ति और प्रेम रूप पराक्रम से अपने स्वामी से इस प्रकार लड़े कि कभी हारे नहीं उसे जीत कर ही छोड़े अर्थात् प्रभु की प्राप्ति कर ही ले। हाड..............डोर= दश इंद्रियाँ और नव छिद्रों युक्त अस्थि और चर्म का यह नर देह तभी सार्थक हो सकता है कि जब काया वाचा मनसा प्रभु से लगन लगावे।

१०—अगम के=परमात्मा के। केल्यां=बिहार, क्रीड़ा। छिमता= क्षमता। पूंची=पहुँची, कलई पर पहनने का आभूषण विशेष। दिल...... ...दरियाव=उदार हृदय रूप दुलड़ी—दो लड़ों की माला। दाँताँ .... बोलणो=दया युक्त अमृत सम मधुर बोलना ही दांतों की मेख है। अखोटा=कान का गहना, आभूषण विशेष। झूंठणो= कान का गहना। बेसर=नाक का गहना। निरत=तन्मयता। राखड़ी =रखड़ी, मस्तक पर पहनने का आभूषण, चूड़ामणि। आखड़ी= =उदासीनता।

विशेषः—जीव को इस जन्म मरण के चक्र से छूट कर उस प्रभु के देश में जाना है, जहाँ काल भी भय खाता है, जहाँ प्रेम-सुधा के सरोवर में आनन्द तरंगे हिलोरें ले रही हैं तथा जिसे प्राप्त करने पर जीव रूप हंस विविध प्रकार से आनन्द विहार करने लगता है। परन्तु उस देश में कैसे पहुँचा जाय, मीराँबाई ने उस साधन को इस पद में व्यक्त किया है। उस साधन के अनुसार जीवात्मा रूप पतिव्रता स्त्री को अपने प्रियतम-परम पुरुष को रिझाना होगा। संसार की ओर से चित्त को विरक्त करने पर एवं साधन, संयम, तप, शील व ज्ञानादि नाना प्रकार के सात्विक गुण रूपी आभूषणों को धारण करने पर ही उस पतिव्रता की सेज पर प्रभु पधारेंगे और उसे अपना कर अपनी अनन्य दासी बना कर अपने साथ उस अगम के देश-निजधाम-आनन्दलोक में ले जायँगे।

१२—तननो......लडावुं राम=इस देह का तंबूरा बना कर उसपर जीव का तार खींचवाऊँ अर्थात् काया को तपाऊँ और उसे लेकर मेरे प्यारे की शोध में नाचते गाते बन बन भटकते फिरते मन को बहलाऊँ। आंगणे...... हीसेराम=ऊपर से काया को बहुत

स्वच्छता पूर्वक सजाने से क्या होगा जब कि मन के मैल को अभी धोया नहीं। इसी प्रकार पर्याप्त आहार करके नाशवान शरीर को पुष्ट बनाने से ही क्या होगा जब कि हरि गुण गान कर जीवन को सार्थक नहीं किया। आणां-आवीयां=बुलाहट आई। झुमखमां=समूह में। कायाने.........वरावे राम=कितनी ही चेष्टा करने पर भी जीव यमपाश में फँसे बिना नहीं रहता। किसी दिन उसे पंच-तन्मात्राएँ, मन और जीव के साथ इहलोक को छोड़ कर परलोक गमन करना ही पड़ता है। तलतल.........छोडुं राम=यह देह क्षीण होकर छिन्न भिन्न भले ही हो जाय और परिणाम में प्राण भी चले जायँ तब भी प्रभु भक्ति नहीं छोड़ूँ। नदीरे.........रोपावुं राम=इस देह का बगीचा बनाऊँ अर्थात् संसार में अनेकानेक विविध कर्म करूँ और प्रभु प्रेम में नयनों द्वारा बहे हुए जल की नदी के किनारे, उपरोक्त बगीचे में चंपा रूप पुण्य कर्मों का बीज बोऊँ।

१३—रुचि.........लगायो=सुन्दर भोजन द्वारा तन मन का पोषण तो किया परन्तु प्रभु की ओर न मोड़ कर भवताप में ही तपाया। रत्न.........लड़ायो=रत्न के समान पुत्र की रक्षा का यत्न करते हुए क्षण क्षण में उसे मोह वश लाड लडाया। तरीया.........पायो रे=अपने पति के तन मन धन को सब प्रकार से लूट खाने वाली और अन्त तक पति के साथ चलने का दावा करने वाली स्वयं अर्द्धाङ्गिनी भी अपने पति के मर जाने पर 'इसे शीघ्र घर से बाहर निकालो' इस प्रकार बार बार कहती हुई वह एक क्षण भर भी अपने पति के शरीर को घर में नहीं टीकने देती। चरणे=चरणों में। रही=रह कर भी। चरण न धराया रे=चरणारविंदों की शरण न ली।

विशेषः—विचारिए :—

हरि बिन कोई काम न आयो।

तिरिया कहत मैं संग चलूँगी, धोंस धोंस धन खायो।

चलती बेर मोड़ मुख बैठी, कदम एक ना बढ़ायो।

आसा करि करि जननी जायो, बहु विधि लाड लडायो।

निकल गया जब तन का राजा, तुर्तहि बदन जलायो । परशराम

गुरु नानक भी यही भाव अपने पद में बताते हैं:—

सब कुछ जीवत को व्यौहार ॥०॥
मात पिता भाई सुत बांधव अरु पुनि गृह की नारि ।
तन तें प्रान होतं जब न्यारे, टेरत प्रेत पुकार ।
आध घरी कोई नहिं राखै, घर ते देत निकार ।
कहु नानक भजु राम नाम नित, जाते होत उधार ।

१५. काम······मद······वार=काम क्रोध अकेले ही नहीं उनके सेनापतित्व में मद, ममता, मोह आदि भी जीव पर आक्रमण करने को तैयार बैठे हैं। सढ़=बड़ी नावों पर (पाल) अनुकूल वायु के लिए बनाया गया कपड़े और लकड़ी आदि का साधन विशेष। हलकार=डांड ।

१६. डंडारे······नाहीएरे=गहरे जल को देख कर भीतर नहीं धँसना चाहिये, किनारे पर बैठ कर स्नान करना चाहिये अर्थात् संसार के माया मोहादि प्रापञ्चिक प्रलोभनों में लिप्त नहीं होना चाहिये, अनासक्त रहने की चेष्टा करनी चाहिये।

१८. मंदिरया······अंधारू—ज्ञान प्राप्ति के बिना हृदय मंदिर में केवल अंधेरा ही है। खळभल्यां······भार रे=शरीर के जीर्ण होने पर (वृद्धावस्था के आने पर) अस्थियों के ढाँचे पर चर्म से मढ़ी हुई क्षीण काया डगमगाने लगती है। हाथ मां······ओधारूँ=इस अवस्था (वृद्धावस्था) में प्राणी की आँखें खुलती हैं कि व्यर्थ ही जीवन खो दिया तब वह आत्म कल्याण के निमित्त घट में दीपक प्रकटाने के लिए भक्ति रूप तेल की शोध में घर घर अर्थात् गुरूजनों के प्राप्त्यर्थ घूमता फिरता है। उठि गयो·········धींगाणुं=परंतु 'अब पछताये होत का चिड़िया चुग गई खेत'—'प्रोदिप्ते भवने तु कूप खननं प्रत्युद्यमः कीदृशः' के अनुसार प्रयत्न करते करते बीच में ही यमदूत उसके प्राणों को हर ले जाते हैं, यहाँ उसका निर्जीव शरीर पड़ा रहता है। वालुं= फेरूँ, लौटाऊँ। आवतां·········वाळुं=मीरांबाई कहती है कि

शरीर में सर्व प्रकार की शक्ति रहते समय ही यदि जीव भगवद्भक्ति प्राप्त कर ले तभी अन्त समय में वह यम-यातनाओं से मुक्त होता है।

१९—गहरी············रहना=यह जीव जन्मों तक भटकता हुआ इस शरीर को प्राप्त हुआ है और यह भी अब जीर्ण हो गया है इसलिए इस भवसागर से पार होने के लिये भगवद्भक्ति का साधन करना चाहिये।

अधिक चरण:—

पांच तत्व को बन्यो पींजरो, मांहि सहलानी मैना।
राग द्वेष किनसे नहीं करना, तन मन से समता गहना॥

२०—कोई·········हवेली रे=बद्ध जीव हरि-भक्ति की ओर न मुड़ कर अपने भोग-विलास के लिए कोई बाग बगीचे तो कोई हवेली बनाते हैं अर्थात् विचारवान-जिज्ञासु जन कोई तो भक्ति का साधन करते हैं और कोई ज्ञान का। आरे·····वेली रे=इस देह में दया, धर्म, परोपकार आदि सात्विक-दैवी भावों का निवास है त्यों अधर्म, अनीति, काम, क्रोध, लोभ मोहादि रज व तमोगुण-आसुरी भावों का भी। किन्तु सात्विक भाव रूपी केसर का त्याग कर विषय रूप आसुरी भावों की विष वल्ली का ही प्रायः पोषण करता है। पाळ·········पहेली रे=मनुष्य को चाहिए कि अपने में रहे हुए सात्विक भावों को जागृत कर इस देह के कालग्रसित होने के पूर्व ही भक्ति ज्ञानादि साधन करते हुए निर्भय हो जाना चाहिए।

२२—हँसला री सेज=हंस की शय्या, हंस क्षीर विवेक की साधना। हजारी हँसो=सहस्त्र दल कमल स्थित जीव रूप हंस-प्राण। पावणो=पाहुना, स्थिरता से न टिकने वाला।

भावार्थः—सुरत············पावणो है=साधन क्रम में प्रथम चित्तवृत्ति में हंस के नीर क्षीर विवेकवत् सदसद्विवेक से संसार में व्यवहार करने का स्वभाव डालना चाहिये अर्थात् निरन्तर सहस्त्रोंश्वास-प्रश्वास करने वाले असत् शरीर व संसार की ओर से चित्तवृत्ति को मोड़ कर उसे सत् वस्तु-परमात्मा की ओर लगाना चाहिये।

गगन.........तेल = योग साधन के अभ्यास द्वारा अनाहतनाद के प्रकट होने पर नाना वाद्यों के शब्द सुनाई देते हैं और अन्तर्मुखी वृत्ति के कारण दिव्य ज्योति के भी दर्शन होते हैं।

विशेषः—भव बंधन में फंसे हुए जीवात्मा को किस साधन से बंधन मुक्त होना चाहिये यह मीरांबाई ने इस निर्गुण भाव के पद में व्यक्त किया है। जीवात्मा यह परमात्मा का अंश है परन्तु शरीर के बन्धन में पड़ा है। बन्धन मुक्त होकर उसे स्वदेश में अर्थात् परमात्मा के निर्गुण और अगम्य देश में जाना है इसलिए चित्तवृत्ति को हंस क्षीर न्याय की दृष्टि प्राप्त करनी चाहिये। संसार के विषय-भोग और प्रलोभन चाहे कितने ही आकर्षक और सुहावने दीखते हों उनसे अपने आपको अलिप्त रख कर मुक्त होने के लिये अर्थात् अपनी स्वरुप-स्थिति को प्राप्त करने के लिए, नीरस सा लगता हुआ भी उपर्युक्त साधन स्वीकार करना चाहिये। संसार के आकर्षक विषयों के लिए मीरांबाई ने—पराया पुरुष, शाल दुशाला, दिखणी-चीर, अलूणा-सलूणा भोजन-जिनवारो भात-हिंगलू रो ढोल्यो, पलंग निवार, महल मालिया-रंगरो महल इन नामों का प्रयोग किया है और नीरस लगने वाले पर वास्तव में मुक्ति की प्राप्ति कराने वाले साधन को—घर को पुरुष, घर की गुदड़ी, घर का टुकड़ा, घर की मचली, घर की टपरी इन नामों से व्यक्त किया है।

२३—विचारिए :—

हरिनो मारग छे शूरानो, नहिं कायरनुं काम जो ने।
परथम पहेलुं मस्तक मूकी, वळती लेवुं नाम जो ने॥

प्रीतमदास

२४—अधिक चरण :—

बालपनो तो खेल गमायो, तरुण पणे नारी संग सोय।
वृद्ध भये चिंता बहु बाकी, गये जनम सब खोय।
आगे पीछे नाह न चेत्यो, माया मोह में गयो विलोय।

२५—रँटिया······निकस्यो जाय=मनुष्य जीवन किस प्रकार व्यतीत किया जाय कि जिससे भव-बन्धन छूट सके। सजन·········बनास्यां ए माय=विधाता ने यह मनुष्य शरीर रूपी चरखा बना दिया है जिसमें सात्विक मन की माल बनावें। प्रेम ········भराई ए माय=त्रिगुण युक्त शुभाशुभ संस्कार दिये हैं सो सत्संग द्वारा ज्ञान प्राप्ति करें। पांच·········चडावे ए माय=चित्त की पांच वृत्तियों के कारण ही जीव संसार बन्धन में है परन्तु उसका विवेक न होने से बन्धन अधिक दृढ़ हो जाता है। सुरत······ ·· ···ले जावे ए माय=चित्तवृत्ति को प्रभु की ओर लगाने से ही आत्मा आकाशवत् अथवा जल-कमलवत् संसार से ऊपर उठ जाती है। ज्ञान सूत········ सूगी········दिराइ ए माय=पहुँचे हुये सद्‌गुरू की कृपा से सहज साध्य साधन द्वारा ज्ञान की प्राप्ति होने पर प्राण शक्ति के ऊर्ध्वमुखी हो जाने से साक्षात् भगवद् अनुभव होता है।

२८—मकनो·········हारी रे=इस मन रूप मदमत्त हाथी को सत्संगति-ज्ञान—प्रभु-प्रेम और वैराग्यादि विवेक विचार रूप अँकुश द्वारा प्रयत्न पूर्वक समझाती रहती हूँ।

२९—तमे······आदिल·········दीवो करो रे=ज्यों सागर में अनन्त रत्नादिकों का भण्डार है त्यों यह शरीर भी अनेको शुभा-शुभ संस्कार और भावों का भण्डार है इसलिए मुमुक्षु को चाहिये कि वह अपने शुभ संस्कारों और सात्विक भावों को जागृत करता हुआ ज्ञान प्राप्त करे। आरे········वाडीओ············झींगोरा=इस शरीर में अनन्त नाड़ियाँ है जिनकी अनाहत नाद निरन्तर सुनाई देती है। आरे····· ···सरोवर·········कल्लोला=इस देह रूप सरोवर में जीव रूप हंस नित्य आनन्द विहार करता है। आरे · ··· हाटडां········अपरंपारा छे=इस देह शरीर में अच्छे बुरे सभी संस्कार हैं परन्तु साधक को विवेक विचार द्वारा चित्त को प्रयत्न पूर्वक भगवदाभिमुख ही बनाना चाहिये।

३०—भव्यां=खुल गये। साकुट=खल।

विचारिए :—

आज दिवस लेऊँ बलिहारा। मेरे घर आया राम का प्यारा॥

(रैदास)

३१—बिना प्रेम…… ………नंदलाला=बाह्य आडम्बर चाहे कितना भी हो जब तक हृदय में प्रेम प्रकट नहीं हुआ है तब तक प्रभु की प्राप्ति नहीं हो सकती।

विचारिए :—

ज्यां लगी आतमा तत्त्व चीन्योनहीं, त्यां लगी साधना सर्व जूठी ॥
शुं थयुं स्नान पूजा ने सेवा थकी, शुं थयुं घेर रही दान दीधे।
शुं थयुं धरी जटा भस्म लेपन कर्ये, शुं थयुं बाल लोचन कीधे॥
शुं थयुं तप ने तीरथ कीधां थकी, शुं थयुं माल ग्रही नाम लीधे।
शुं थयुं तिलक ने तुलसी धार्या थकी, शुं थयुं गंग जलपान कीधे।
परपंच सहु पेट भरवातणा, आत्माराम परब्रह्म न जोयो।
भणे नरसैयो के तत्त्व दर्शन विना, रत्न चिन्तामणि जन्म खोयो॥

३४—विशेष:—इस पद के समान भावात्मक संत तुकाराम का यह मराठी पद विचारिए:—

भक्त ऐसे जाणा जे देही उदास। गेले आशा पाश निवारूनी।
विषय तो त्यांचाजाला नारायण।
नावड़े धन जन माता पिता॥ (तुकाराम)

३८—मोडो=देर। बटाऊ=प्रवासी। अब…………थोड़ो रे=प्रभु प्राप्ति का मार्ग अथवा भव बन्धन से छूटने का साधन लम्बा-कठिन और दुःसाध्य है और मानव शरीर क्षणभंगुर है इसलिए हे मूर्ख मन अब तनिक भी विलम्ब मत कर, प्रभु से प्रेम लगा ले। उगो रे…………दोड़ो=पूर्व के किसी शुभ संस्कार के फल-स्वरूप यह दुर्लभ नर जन्म प्राप्त हुआ है अथवा ज्ञान ज्योति का उदय हुआ है इसका यथा-शक्ति लाभ ले लो। नगर…… ……… फोड़ो रे=परमार्थ साधन में बाधक होने वाले माया मोहादि प्रलोभनों को जीत करके ही जीव प्रभु को प्राप्त होता है और तभी प्रभु के निजधाम को पाते ही जन्म-मरण के चक्र से छूट कर वह पूर्ण निर्भय और आनन्द स्वरूप मय हो जाता है।

३६—**विशेष**—अपने आनंद मय स्वरूप अर्थात् परमात्मा के अंश को लेकर मृत्यु-लोक में अवतरित हुवे जीव को इस पद में उपदेश किया है।

मान·········काया=अपने परमात्म रूपी अमृत भरे मान सरोवर को छोड़ कर हे जीव रूप हंस, तुम इस नाशवान देह रूपी भवसागर में कैसे आये ? इस खारे सागर को छोड़ कर तुम फिर लौट कर अपने मान सरोवर को चले जाओ। हंसलानी······चणिये=हंस क्षीर न्याय के विवेक को समझने वाले साधु संतों की संगति करनी चाहिये और उन्हीं में बैठ कर हरि भक्ति और ज्ञान चर्चादि सत्संग करना चाहिये।

४०—**विशेषः**—इस पद में उत्तम जनों की संगति को व्यक्त करने के लिए गरवी गाय ना दूध, आम्बलियानी छाय और नीच जनों की संगति के लिये आकड़ियाना दूध और बावलनो काँटो इन शब्दों का प्रयोग किया गया है।

४१—भावार्थः—भगवत्प्राप्ति का मार्ग और इंद्रियों को वश करने का काम बड़ा ही विकट-दुष्कर है। अपने पुरुषार्थ द्वारा भवसागर पार करने वाला लाखों में कोई बिरला ही पुरुष होता है, कबीर जी का भी एक पद इसी भाव का है:—

गुरु बिन कौन बतावे बाट। बड़ा विकट यम घाट ॥०॥
भ्रांति की पहाड़ी नदियाँ बिच मों, अहंकार की लाट ॥
काम क्रोध दो पर्वत ठाढ़े, लोभ चोर संघात ॥
मद मत्सर का मेहा बरसे, माया पवन बहे दाट ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, क्यों तरना यह घाट ॥

श्री गीता जी में भी भगवान ने कहा है:—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्तितत्वतः ॥

अर्थात् सहस्रों मनुष्यों में से कोई एक ही सिद्धयर्थ प्रयत्न

करता है—परमार्थ पथ में अग्रसर होता है और प्रयत्न करने पर भी सिद्धों में से कोई बिरला ही मुक्ति को प्राप्त होता है।

४३. काया······बासो = पूर्ण रूप से आसक्त हो कर ज्यों भ्रमर कमल में अपने आप बँध कर नष्ट हो जाता है त्यों क्षणभंगुर मानव शरीर में जीव सांसारिक मोहादि विषयों में फँस कर अपने आप को नष्ट कर देता है। चुण······काचो = अनेकों शुभाशुभ कर्म संस्कारों के परिणाम रूप मिला हुआ यह मनुष्य जन्म भी कोई स्थिर नहीं, कच्चे घट के समान यह क्षण भंगुर है। भातो = प्रवास के समय साथ में ली जाने वाली खाद्य सामग्री। खायले······भातो = संसार में जो इच्छा हो कर्म करलो अच्छे बुरे अपने उन्हीं कर्मों के संस्कार मृत्युलोक को छोड़ जाते समय जीव के साथ जायँगे जो तदनुरूप पुनर्जन्म में फल चखायँगे —भुगतायँगे।

४६. यो संसार······उठजासी = दिन भर मेले की हल चल के पश्चात् सायंकाल होते ही सब अपने अपने स्थान के लिये बिखर जाते हैं तद्वत् इस संसार में नाना प्रकार के कर्म करते करते ही काल का बुलावा आने पर चले जाना पड़ता है।

महंगा············बिकइये रे = भगवत् भक्ति आदि दुर्लभ गुणों को प्राप्त करके अपनी योग्यता को बढ़ा लेना चाहिये। मीठा··· ······सुणइये रे = किसी भी परिस्थिति में सर्वदा मधुर वचन बोलना चाहिये। चुग············खइये रे = जहाँ कहीं से प्राप्त हो ढूँढ कर उत्तम गुणों को ग्रहण करना चाहिये। बोल·········सहिये रे = संसारी जनों के राग द्वेष भरे वचनों को भी सहते हुए क्षमा शील बने रहना चाहिये।

विशेषः—संसार में मनुष्य सब बाह्य दृष्टि से एक से ही दीखते हैं परंतु इनमें से कोई सात्विक गुणों और भगवद् भक्ति युक्त होता है तो कोई रज व तमोगुणी भगवद् विरोधी भी होता है। यही भाव मीरांबाई ने इस पद में दृष्टांत देकर समझाया है। सात्विक गुणों के लिये हीरा, कोयल, हंस और भक्त की उपमा दी है जब कि रज व तमोगुण वालों को कंकर, काग, बगुला और जगत नामों का प्रयोग किया है।

पाठान्तरः—

कोई कहिये तेने कहेवा रे दइए ।
आपणे हरि भजन मां रहिये ॥०॥
हीरा पणुं तव जाणिये आपण घाव घणारे सहियेरे ।.१॥

सासू·········लीज्यो रे=योग साधन द्वारा चित्त वृत्ति रूप नारी को शून्य महल में पोढ़े हुए परमात्मा रूप पति को प्राप्त करना है परंतु वहाँ पहुँचने के मार्ग में सुषुम्ना और उसके द्वार पर सोई हुई कुण्डलिनी ये दोनों बाधायें हैं इन्हें पार करके ही जीव ऊपर उठकर अपने ध्येय को प्राप्त कर सकता है। हर को······लीज्यो=जैसे जैसे चित्त वृत्ति प्रभु मयी होती जाती है वैसे वैसे, स्थिर आसन में ध्यान मग्न बैठे हुए स्थूल शरीर के भीतर जीव अपनी सुध बुध भूल जाता है—योग निद्रा को प्राप्त होता है। भँवर·········रंग भींजे=सुषुम्ना साधन के अभ्यास करते समय जैसे जैसे भीतर के दिव्य विषयों का अनुभव होता जाता है वैसे वैसे आत्म प्रतीति होती जाकर जीव अधिकाधिक आनंद को प्राप्त होता है भँवर गफा·········संजोयो=सुषुम्ना के बीच न्यूनाधिक अंतर पर अनंत नाड़ी पुञ्ज हैं उनमें पञ्च तत्वों के स्थान बने हैं जिन्हें मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत और विशुद्ध चक्र कहते हैं। साधन द्वारा इन्हें जागृत करने की आवश्यकता होती है। मगन······ ······बोलो=समस्त अविद्यादि क्लेशों के मिटने के पश्चात् चित्त वृत्तियों का निरोध होते ही अपने प्रिय तम प्रभु को पाना होता है—अपने आनंद स्वरूप में स्थित होना होता है। केवे······भागो=मीरांबाई कहती है कि अज्ञान रूप घोर निद्रा में सोने वाले हे जीवो ! अब जग जाओ और सत्वर ही परमात्मा की शरण में चले जाओ। एक मात्र उन्हीं की कृपा से संसार के माया—भ्रमादि क्लेश छूट जाते हैं।

५४-लत=सिखावन गति विधि से शिक्षा। बावे=फेंकता है। पवन······सहिरे=आँधी—बर्षा आदि का सुख-दुःख सहता है। आसन·········धर रे=वृक्ष के समान स्थिर आसन व चित्त से प्रभु का ध्यान करना चाहिये।

५५—ढ्ळे=पीलता है । तळे=तलता है । झाडो=मंत्र । नाडुली=छोटी तलाई ।

५६—वाकी............बुरी=गर्भ से बाहर आने में घातक बाधाएँ भोगनी पड़ीं । अब........ परी=पीछे से उसे (गर्भ वास के अपने वचन को),जीव भूल जाता है । जननी.........भरी=भजन द्वारा जन्म सार्थक नहीं किया तो व्यर्थ ही जननी के लिये गर्भ का भार हुआ ।

५८—**विशेष:**—इस पद में, शरीर रूप पींजरे में फँसी हुई जीव रूप तोती—मैना को जो संसार के विषयों में रची-पची है, जीवन-सार्थकता के लिए प्रभु का नाम स्मरण करने का उपदेश है ।

६०—**विशेष:**—किसी गुफा का सहस्रों वर्षों का अन्धेरा ज्यों दीपक के प्रकाश के साथ ही नष्ट हो जाता है त्यों आत्म-ज्ञान होते ही जन्म-जन्मांतर के कर्म—वासना आदि के सकल-संस्कार मिट कर जीव जन्म-जरा-व्याधि रूप संसार से मुक्त होकर आनंद समुद्र में डूब जाता है । सत्संग रूप भगवत् प्राप्ति के ऐसे सहज-साधन को न अपना कर जीव व्यर्थ ही माया-भ्रम में भटकता हुआ दु:खी हो जाता है, यह हास्यास्पद नहीं तो और क्या ! इस पद में यही भाव व्यक्त है ।

६१—देखो पद विभाग १०—अभिलाषा में १३ वाँ पद तथा उसका अर्थ ।

६२—हामळ=स्वीकृति । बगदै=मुकर जाता है । सैल.........पान=भगवद् सृष्टि के चमत्कार बताऊँ, तत्व ज्ञान की बातें बताऊँ और भगवन्नामामृत पान कराऊँ ।

६५—नदिया.........पुरानी=भवसागर दुस्तर है व शरीर जीर्ण हो गया अथवा जीव इसके पूर्व कई जन्म ले चुका है ।

६६—शाख=डाल पर पका आम । प्रथम............शाख=प्रारम्भ में सत्संग अरुचि कर लगता है परन्तु परिणाम में अमृत-फल-दाई होता है । सात्विक सुख का लक्षण भी यही है यथा:—

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्म बुद्धिप्रसादजम् ॥

'वह सुख प्रथम साधन के आरम्भ काल में यद्यपि विष सदृश भासता है परन्तु परिणाम में अमृत के तुल्य है, इसलिये जो भगवत्-विषयक बुद्धि के प्रसाद से उत्पन्न हुआ सुख है वह सात्त्विक कहा गया है ।'

गीता १८-३६

वेद ·······साख = वेद में भी (इसके लिए प्रमाण है, वेद भी साक्षी है ।

७७—सुकानी = कर्णधार ।

७८—ओळग्यो = प्रभु प्रेमी । मैं············कांई = चित्त प्रभु में ऐसा तन्मय हो गया कि अब उनसे भिन्न कोई दिखाई ही नहीं देता । चढ़ी···········आई = ज्यों सागर की लहरों में बहती हुई नाव पर पृथ्वी की कोई बाधा प्रभाव नहीं डाल सकती त्यों प्रभु-प्रेम में मन के रंग जाने पर सांसारिक मनोवृत्ति का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता । ज्या का·········कोई = जिसमें अपने प्राणों को न्यौछावर करने का साहस है । शूरा·········मांह्य = रण में अविचल रहकर जूझने वाले ही शूर और रण से भागने वाले कायर होते हैं त्यों प्रभु-प्राप्ति के लिए भक्ति करते हुए सांसारिक प्रलोभनों से संघर्ष करने वाले ही वास्तव में पुरुषार्थी हैं । जग·········होई = संसार सब नाशवान है केवल प्रभु के प्यारे संत ही निश्चित, निर्बाध और कीर्ति रूप से अमर है ।

विशेषः—यह पद कुछ अंश में संत कबीर के पद से मिलता है, विचारिये ।

शूर संग्राम को देख भागे नहीं,
देख भागे सोई शूर नाहीं ॥०॥
कहत कबीर कोई जूझि है शूर मा,
कायरां भीड़ तहँ तुरत भाजै ॥३॥

७९—**विशेषः**—इस निगुर्णी ज्ञान के पद का भाव बड़ा ही रहस्य पूर्ण है । संसार को सरोवर की उपमा दी है । संसाराभिमुखी

चित्त वृत्ति किस प्रकार दुःखदाई होती है, यह बता कर अपने अनुभव द्वारा संसार और प्रभु, दोनों में से अखंड सुखदाई प्रभु का मार्ग स्वीकार कर, किस प्रकार जीव परम संतुष्ट और प्रसन्न हो उठता है, इसमें इसी का थोड़ा बहुत दिग्दर्शन कराया है।

भावार्थः—सुणीयो.........जावुं=संसारी जन भली भाँति यह जान लें कि मीराँ का मार्ग संसार की ओर जाने का नहीं। सरवर..............बात=कुछ समय के लिये विवश हो संसार के सम्पर्क में जाना पड़ा था तब संसार के क्षुद्र जीवों की ओर से कई अंतराय आये थे तब किसी ने सहानुभूति तक नहीं बताई। सरवर............माठी=सरवर से पाणी लाने का अर्थ संसार में भली-भाँति रम जाना परंतु क्योंकि मीराँ का चित्त तो प्रभु में लगा हुआ था सो उसके लिये चिकनी मिट्टी पर से पैर फिसल जाना और घड़ा फूटने से पानी न ला सकना अर्थात् सांसारिक कार्यों में रुचि न होना स्वाभाविक ही है। इस परिस्थिति में सासू को बहू भली कैसे लगेगी अर्थात् संसारासक्त जीवों को मीराँ का व्यवहार भला कैसे लगेगा ! सरवर.........डोल=सांसारिक जाल में उलझ गई थी परंतु प्रभु ने (अपनाने के लिए) वचन दिया था फिर भी जाने क्या-क्या चूक पड़ गई कि जन्म-जन्म उनसे बिछोह रहा। गिरधारी......... सिणगार=एक ओर राणा तथा तद् वृत्ति युक्त संसारी जन व दूसरी ओर प्रभु भक्ति इन दोनों में से, संसार की ओर से अनासक्त होकर मीरांबाई भक्ति पथ को स्वीकार कर प्रभु-प्रेम में आनन्द मग्न हो जाती है।

८०—मारां... .... लागा=मेरे कर्म-संस्कार ऐसे कठिन हैं जो संत-वियोग हो रहा है। आप............होय=जिनके कर्म-संस्कार पवित्र-निर्दोष है उसी के स्थान पर आपका पदार्पण होगा। चरण.........भोम=चरण स्पर्श द्वारा मेरी भूमि (स्थल) पवित्र कर दी।

८१—ताजा ने........धाई=सम्पन्न व्यक्ति को दौड़ कर मिलता है। माता.........अदेखाई=जिन माता पिता ने जन्म देकर जिस पुत्र

का बड़े उमंग से विवाह किया वही उन्हें दुःख देने लगा और बहुएँ भी ईर्षा करने लगीं।

८३—कोटे=गले में।

८४—एना········दईयेरे=उसके हाथ में हीरे जैसी अमूल्य वस्तु नहीं देनी चाहिये, उसे अपने रहस्य नहीं बताने चाहिये।

८५—करवो········गजरो=इस काया रूप बगीचे के फूलों का गजरा बना लेना चाहिये अर्थात् अपने भीतर के दया-परोपकारादि सात्विक गुणों की वृद्धि करनी चाहिए जिससे काया व मन की सार्थकता होने के साथ संसार में कीर्ति भी हो। आ काया वाड़ी नां·· ······ जमड़ो=काल की गति अव्याहत है। यदि विवेक द्वारा प्राणी शीघ्रता पूर्वक सात्विक गुणों को प्राप्त करने में पूर्ण प्रयत्नशील नहीं रहेगा तो निश्चय ही काल काया को ग्रसने के लिये निकट भविष्य में ही उपस्थित हो रहा है। वसमो लागे=कष्ट कर-असह्य लगता है। आथमतो=अस्त होने वाला। दीवड़ो=दीपक। आवारे·········दीवड़ो=सर्वथा माया मोहग्रस्त जीव एक बार भी तो यह अनुभव करले कि भव-व्याधि से छूटने के लिये कुछ भी उपाय न करते हुए प्राण-ज्योति का बुझ जाना कैसा आत्मघातकारी है। तरछोड़ो=तिरस्कार करते हो। आ प्रीतु····पींजरो=प्राणी को देहाशक्ति के कारण पहले के कई शरीरों को छोड़ते हुए नये धारण करने पड़ते रहे।

८६—भावार्थः—गुरु नानक के पद-चरण का सार भी यही है कि:—

नानक दुखिआ सब संसारा।
सो सुखिआ जिन नाम अधारा॥

८८—भावार्थः—युवावस्था मोह-माया के चक्र में बीत जाती है और जब इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं तब कहीं यह ध्यान आता है कि काल अब सिर पर मँडरा रहा है पर तब-'फिर पछताये होत का जब

चिड़िया चुग गई खेत'-जैसी परिस्थिति होती है। वास्तवमें प्रभु को अपना मानकर तत्प्राप्त्यर्थ साधना से ही परम सुख प्राप्त होता है।

८६—कूख=पेट से। नव=नहीं। भारे मारी=भार रूप हुआ। काग..............प्यारी=ज्यों काग व कोयल एक ही रंग के होते हैं पर बोली एक की कठोर व दूसरे की मधुर एवं प्रिय लगती है त्यों संसार में मनुष्य सब एक समान दिखाई देते हैं परंतु परोपकारी, मधुर भाषी एवं ईश्वर भक्त होने पर ही जीवन की सार्थकता है। वागल=चमगादड़। उंधे=उलटा।

९२—चोरो.........था शेरे=चोरों के धन लूट ले जाने पर दीपक से क्या होगा। बाळ......खोयु=बालपन खेलने में बिता दिया जोवन..........जोडेरे=युवावस्था स्त्री के संग में (बिता दी)। वृद्ध...........व्हाला=वृद्धावस्था में बाल बच्चे प्यारे लगते हैं। मरतां.........मोढ़ेरे=(बिना कुछ किये अब) मरते समय केवल मुख से मुक्ति माँगने से क्या होगा। वहीने=बहकर। सूके...............सहीने रे=जब सरोवर सूखा था तब पाल नहीं बांधा। जब पाणी बह के चला गया तब फिर पाल बाँधने से क्या होगा! वास्तविक समझदारी (विवेक) पहले से ही रख लेनी चाहिये थी। तुलसी..........करावो =(अंत समय में) तुलसी मंगवाने, तिलक बनाने, और प्रभु का नाम सुनाने से क्या होगा? मीराँ कहती है हे मूर्ख लोगो, अब ये सब चेष्टायें व्यर्थ है (पहले से ही प्रभु से प्रेम सत्संगादि साधन करना चाहिये था)। हंस लो.........वणी वाते=हंस व बगला दोनों एक समान दीखते हैं। दोनों के साथ रहने पर भ्रम खुल जाता है जब कि हंस सुंदर मोतियों का चारा चुगने लगता है। चोरने............ बाथे=बाहर से समान दिखाई देने वाले चोर व साहुकार दोनों साथ साथ प्रवास करते हैं परंतु सच्चे झूँठे का भ्रम तब खुल जाता है जब कि साहूकार के सो जाने पर रात में चोर उसका माल चुरा लेता है और पूछने पर उलटा लड़ने पर उतारू हो जाता है। आप............... साथे=किसी अनुभवी व सच्चे मनुष्य को ही सत गुरु बना कर उनके बताये मार्ग पर चलना चाहिये।

विशेषः—संसार सत्यासत्य मिश्रित है जिसका रहस्य अनुभव के अंत में परिणाम में ही प्रकट होता है।

६४—कोई..........रहीये=संसार कुछ भी कहे हमें हरि भजन में ही लगे रहना चाहिये। जगत........सहीए रे=संसारी और भक्त दोनों के सदा से भिन्न मार्ग हैं परंतु भक्त का भक्तपना तो संसारी जन के बोल सहने में ही है। हीरा ने........सहीए रे=हीरा व कंकर समान रंगी दीखते हैं परंतु अनेकानेक प्रहार सहने पर ही हीरे का हीरापन प्रकट होता है।

६५—(देखिये—पद-३)

६६—मारा.........लीधो रे=मन को अनेक प्रकार से विवेक पूर्वक समझा बुझा कर अब योग-वैराग्य के पथ को स्वीकार किया है।

विभाग १० अभिलाषा

भगवान को प्राणाधार एवं आत्मीय मान लेने पर तत्सुख सुखित्व की भावनानुसार, अनन्य प्रेमी के हृदय में सुन्दर, मधुर एवं रसमयी अभिलाषाओं का उमड़ना स्वाभाविक हो जाता है।

* भूमिका *

★

कदा वृन्दारण्ये विमल यमुना तीर पुलिने
चरन्तं गोविन्दं हलधर सुदामादि सहितम् ।
अये कृष्ण स्वामिन् मधुर मुरली वादन विभो
प्रसीदेत्याक्रोशन् निमिष मिव नेष्यामि दिवसान् ॥

सुन्दर यमुना तट पर, हलधर सुदामादि के साथ विचरते हुए गोविन्द को 'हे कृष्ण स्वामी, हे मधुर मुरली के बजाने वाले ! प्रसन्न होओ,' कब इस प्रकार वृन्दावन में पुकारता हुआ पल के समान दिवसों को व्यतीत करूँगा ।

अपने आराध्य की अनन्य लगन के साथ उपासना करने वाला प्रेमी साधक निश दिन अपने इष्ट ही के स्वप्न देखा करता है ।

अपने प्रियतम का मधुर स्मरण अखंड बनाये रखने की, विविध प्रकार के नूतन, दिव्य शृंगार युक्त उनके प्रिय दर्शन करने की, उस माधुरी छवि को सदा के लिये हृदय में समा लेने की, यम नियम आदि योग साधन से मन को वश करके भक्ति, प्रेम, साधुसेवा और सत्संग द्वारा उनकी देव-दुर्लभ सेवा के लिये अपने आपको योग्य बनाने की, हृदय के अन्तस्तल से प्रेमालाप द्वारा उन्हें पुकारने की, प्यारे के शुभागमन पर पुष्प मालादि विविध पूजा सामग्री और उपकरणों द्वारा उनका प्रेम भरा स्वागत करने की, शान्त दास्य और मधुरादि भावों द्वारा अत्यन्त आत्मीयता के साथ प्रेम और लाड़ पूर्वक अपनी सेवा द्वारा उन्हें रिझाकर उनमें तद्रूप हो जाने की और संक्षेप में ज्ञान, कर्म, योग

और भक्तिपथ के भिन्न साधकों को अपनी स्वीकृत साधन प्रणाली के अनुरूप भिन्न भिन्न भावों को उद्दीपन कराने वाली आदि अनेकों अभिलाषायें हुआ करती हैं।

भिन्न साधनों के कारण मात्र भिन्नता भले ही दृष्टि-गोचर होती हो पर उपर्युक्त अभिलाषाओं की चित्त में प्रेरणा होना भी स्वाभाविक और साधनान्तर्गत है।

अपने साधन की मन्द अथवा तीव्रगति के कारण, चाहे निकट भविष्य में अथवा जन्म जन्मान्तर में अपनी निष्ठा और लगन को धैर्य पूर्वक अखण्ड निभाने वाले साधक को, साधन की सिद्धि होने पर किसी दिन तो अवश्य ही अपनी इष्ट प्राप्ति होकर रहती है। अपनी चिर प्रतीक्षित साध के पूर्ण होने के समय अर्थात् प्रियतम के दिव्य दर्शन और मिलन के मधुरातिमधुर एवं परमानन्दमय मुहूर्त में उनमें सदा के लिये तद्रूप हो जाने की साधक मात्र की परम अभिलाषा रहा करती है। यों तो येन केन प्रकारेण परम दुःख रूप भव बन्धन से मुक्त होकर अपनी वास्त-विक आनन्द स्वरूप स्थिति को प्राप्त करने की मानव मात्र की अभिलाषा होती है। किसी भी परम यत्नवान् साधक की अभि-लाषाओं के स्वप्न किसी दिन तो अवश्य ही सत्य सिद्ध हो जाते हैं। तब वह पूर्ण काम बन जाता है। ध्याता-ध्येय, आराध्य-आराधक एक हो जाते हैं। प्रकृति पुरुष में लीन हो जाती है।

मीरांबाई के हृदय में भी समय-समय पर भिन्न-भिन्न सुन्दर और मधुर अभिलाषाओं की स्फुरणा हुई है जो कि इस विभाग के पदों से व्यक्त होती है।

इस विभाग में ३, ४, ५, ८, ११ ये५ पद गुजराती भाषा के तथा पद २, ६, १३, १५, और १६ ये ५ पद ज्ञान के—निर्गुण भाव के हैं।

इस विभाग के ६ तथा १० वें पदों में एवं अन्यत्र विभाग २—स्वजीवन के पद सं० ६२ में और विभाग ४—निश्चय के पद सं० ६२ में श्रीद्वारकापुरी का माहात्म्य वर्णित होने के उपरान्त वहाँ के वास की भी अभिलाषा व्यक्त है। श्रीमीरांबाई के लिये कहते हैं कि वे द्वारिकापुरी गई थीं और वहीं श्रीद्वारिकाधीशजी के श्रीविग्रह में समा गई थीं। यहाँ सहज प्रश्न उपस्थित होता है कि जो अपने किसी पूर्वजन्म में ब्रजजीवन से प्रगाढ़ सम्पर्क में आई थीं (जैसा कि उसके कई पदों की पंक्तियों से सिद्ध होता है) उसे गोकुल-वृन्दाबन में रह चुकने के पश्चात् अर्थात् बृजवास होने पर भी द्वारिका जाने की प्रेरणा अथवा आकर्षण क्योंकर हुआ ?

साधारण दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि भगवान् श्यामसुन्दर अपनी प्रेयसी ब्रजगोपियों को तड़फती-बिलखती छोड़ कर मथुरा के पश्चात् श्रीद्वारिकापुरी में जाकर बस गये थे। कृष्ण रहित ब्रज में भला गोपी के हृदय को चैन कहाँ ? हृदय को उद्वेलित करने वाली पूर्वानुभूति-विशेष रूप से विरह भाव को उद्दीप्त करने वाली पूर्व संस्कार-स्मृति के जागरित होने पर भला पूर्वजन्म की गोपी-श्रीकृष्ण की अनन्य प्रेयसी मीराँ, ब्रज में सुख से कैसे रह सकती है ? यही भाव विरह-विभाग—के पद-सं० १०२ व १२३ में विशेष रूप से व्यक्त होता है। इस परिस्थिति में वह अपने प्यारे के पीछे पीछे जोगिन बनकर भटकती फिरती द्वारिका चली जाती है तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

सूर्य ग्रहण के पर्व पर कुरुक्षेत्र में श्रीकृष्णचन्द्र ने द्वारिकापुरी से ही आकर विरहिणी गोपरमणियों को अपने द्दिव्य दर्शन आलिङ्गन द्वारा उन्हें परमानन्दमयी स्थिति का अनुभव कराकर कृतकृत्य कर दिया था।

महाराणीजी श्रीरुक्मिणी देवी ने भी दुष्ट शिशुपाल के हाथ से अपने को बचाने और अपना पाणिग्रहण करने के लिये विप्र के साथ श्रीकृष्ण को श्रीद्वारिकापुरी ही संदेश भेजा था।

द्रौपदी महाराणी ने भी दुष्ट दुशाःसन द्वारा चीर हरण के समय "गोविन्द द्वारिका वासिन् कृष्ण गोपीजन प्रिय" (महाभारत द्यूतपर्व अध्याय ६८ श्लोक ४१) कह कर द्वारिकावासी कृष्ण को ही पुकारा था।

सम्भव है कि उपरोक्त प्रसंगों का स्मरण होने पर मीरांबाई को द्वारिका जाने की प्रेरणा हुई हो। वैसे ब्रज की अनन्य निष्ठा को तो यह भी स्वीकार नहीं कि श्याम सुन्दर ब्रज वा वृन्दावन के बाहर एक भी पग धरते हैं।

मन का समाधान करने की चेष्टा करते हुए भले ही उपर्युक्त बातें कही जांय फिर भी वास्तव में देखा जाय तो मीरांबाई जैसी महान् विभूति को, उसके यथार्थ मानस को एवं उसके लीला रहस्य को भला ब्रजरस की साधना व अनुभव हीन सामान्य जन समझ ही कैसे सकते हैं!

श्री मद्भागवत् रूप प्रेम सुधा सागर में जिसने गोते लगाये हैं, गहराई में जाकर उसके रहस्य को पाया है और ब्रज की अलौकिक व अनन्त महिमा को तथा उसके वास्तविक व्यापक स्वरूप का अनुभव किया है वह प्रेमी भक्त तो स्थूल दृष्टि से ब्रज के बाहर रहते हुए भी वास्तव में ब्रज में ही रहता है।

ब्रजरस के परम अधिकारी प्रेमावतार श्रीचैतन्यदेव भी मीरांबाई के जैसे एक ही बार ब्रज में हो आने के पश्चात् १२ वर्ष तक श्री जगन्नाथपुरी में ही विराजे और कभी कृष्ण भाव में "राधा-राधा" तो कभी राधा भाव में "कृष्ण-कृष्ण" की रट लगाते हुये पूरे बारह वर्ष प्रेमोन्माद की दशा में रहकर अन्त में श्रीजगन्नाथ प्रभु में ही अन्तर्हित हो गये।

जो भी हो, मीरांबाई की द्वारिका जाने के पूर्व से ही वहाँ जाकर बास करने की अवश्य ही उत्कट अभिलाषा थी जो श्री-द्वारिकाधीश भगवान् की कृपा से पूर्ण हुई। यहाँ तक कि श्री-चैतन्य महाप्रभु के जैसे अन्त में श्रीद्वारिकाधीश ने उसे श्री अंगों में समा लिया।

सं० २-६-१३, इन तीन पदों में रहस्यवाद की झलक प्रतीत होती है। १३ वें पद में 'सुवा' एक रहस्य है। परमात्मा के अंशी जीवात्मा रूप 'सुवा' को गुण, कर्म, रूप, देह, बन्धन में फंस जाने पर उसे "शुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि संसार माया परिवर्जितोऽसि। संसार स्वप्नं त्यज मोह निद्राम्"। गाकर अपने पुत्र को लाड़-प्यार में ही अपनी स्वरूप स्थिति का भान कराने वाली मदालसा के समान, शनैः-शनै उसे (सुवा को) समझा बुझाकर विवेक वैराग्य द्वारा भौतिक बन्धन से मुक्तकर अपने मूल आनन्द स्वरूप को प्राप्त कराने की यह एक प्रक्रिया प्रयोग वा साधन है अथवा जैसा कि मीरांबाई ने अपने पद में (देखो २-स्वजीवन पद सं० १३) "राम रमकडुं जड़ियुं" कह कर प्रभु को खिलौने समान मानने का भाव व्यक्त किया है

वैसे ही यहाँ भी उस परमात्म तत्व रूप सुवा को अपने हृदय रूप पिंजर में बन्द कर, बड़े लाड़ से अपनी भिन्न प्रेम सेवाओं द्वारा रिझाकर उसे अपना बनाने की अभिलाषा इस पद से व्यक्त होती है।

सुवे और खिलौने के रूप में भले ही न हों पर उस परमात्मा को प्रबल प्रयत्न पूर्वक किसी भी प्रयोग द्वारा सन्त नामदेव भी रिझाते दिखाई देत हैं, यथाः—

प्रेम फांसा घालुनि गळां। जित धरिले गोपाळा ॥
एक्या मनाची करुनी जोड़ी। बिट्ठला पायीं घातली बेड़ी ॥
हृदय करुनी बन्दी खाना। विट्ठल कोंडुनि ठेविला जाणा ॥
सोहं शब्दे मार केला। विट्ठल काकुलति आला ॥
'नामा' ह्मणे विट्ठलासी। जीवेंन सोड़ी सायासी ॥ मराठी छं०॥

प्रेम पाश गले में डालकर गोपाल को पकड़ लिया है, मन की बेड़ी विट्ठल के पैर में डाल दी है, हृदय रूप कारागार में विट्ठल को बन्द कर दिया है। सोहं शब्द की ताड़ना से विट्ठल हत वीर्य हो त्राहि त्राहि पुकारने लगा। 'नामा' कहता है कि प्राण-पण से भी विट्ठल को नहीं छोड़ा जायगा।

दोनों में अन्तर यही है कि जहाँ उकताकर अधीर नामदेवजी अपने विट्ठल को किसी भी निर्गुण प्रयोग द्वारा नत-मस्तक कराने को कृत संकल्प दिखाई देते हैं, वहाँ मीरांबाई ने अपने सुवा को वश करने के लिये कितने सुन्दर और मधुर सेवा भाव के प्रयोग को अपनाया है और यह रहस्य नामदेव के पद में जितना प्रकट है उतना ही वह मीरां के पद में प्रछन्न (देखो पद १३ वाँ का विशेष-गूढ़ार्थ)।

अन्य संत के अभिलाषा के वचन

भक्त रसखान की ब्रजभाव की अभिलाषा का यह सुन्दर आदर्श भी देखने योग्य है:—

मानस हों तो वही रसखानि फिरौं मिलि गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पशु हों तो कहा बस मेरो चरौं नित नंद की धेनु मंझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को, जो धर्यो पुर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं नित कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन॥

'अभिलाषा' मीराँ की वाणी में

भगवान श्यामसुन्दर यदि हमारे नेत्रों में समा जायँ तो इस मिथ्या प्रपंचमय सांसारिक द्वन्दों में उलझ कर मन को अशान्त होने का अवसर ही न आवे, सर्वत्र एकमात्र वही दीखने लग जायँ, यही सुन्दर भाव मीरांबाई प्रकट करती है—

(१) बसो मेरे नैनन में नन्दलाल।
(२) नैनन बनज (कमल) बसाउंरी, जो मैं साहिब पाउं।
(३) आवोरे सलुणा मारा मीठड़ा मोहन,
आंखडलीयां तमने राखुं रे।

इस प्रकार जीवन-मरण के चक्र से छूटकर दुर्लभ मानव जीवन के कृतकृत्य करने की मुमुक्षु के समान मीरांबाई भी अपनी साध प्रकट करती है—

(१६) पारब्रह्म पूरण पुरुषोत्तम,
व्यापक रुप लखाऊं, आवागमन मिटाऊं।

जब श्याम-प्रेम रूप आभूषण को धारण कर लिया तब उसे भौतिक आभूषण का मोह कैसे हो सकता है—

(११) शामळोघरेणुं मारे साचुं रे ।

वह श्यामसुन्दर की है और श्यामसुन्दर उसके हैं, उसके प्रियतम हैं। एक बार इस प्रकार की श्याममयी भावदृष्टि जब मीराँ की बन गई तब वह साधारण साधक की भाँति केवल प्रभु के दर्शन मात्र से ही भला कैसे संतुष्ट रह सकती है ? वह तो स्पष्ट रूप से अधिकार पूर्वक ठाकुर जी को सुनाती है कि—

(१०) दरसन द्यो तो सनमुख दीज्यो,
जद आवे पतियारो ।

यही नहीं द्वारिका से डाकोर में पधारे हुए ठाकुरजी से वह अपने हृदय की, उनमें समा जाने की (सदेह सारूप्य मुक्ति की) अपनी परम अभिलाषा को व्यक्त करते हुए गाती है—

(५) हांरे चालो डाकोर मां जई बसिये ।
हांरे अंगों अंग जई मळियेरे ।

इसके लिये 'द्वारिकावास' और 'दासी' होकर सेवा करने की उसकी अभिलाषा है—

(६) द्वारिका को वास हो मोहि ।
(७) बन जाऊं चरण की दासी ।

१०–अभिलाषा के पद

★

रूपासक्ति १

बसो मेरे नैनन में नन्दलाल ॥०॥
मोहिनि मूरति साँवरि सूरति, नैना बने विशाल ॥१॥
अधर-सुधा-रस मुरली राजत, उर बैजन्ती-माल ॥२॥
छुद्र घन्टिका कटि तट शोभित, नूपुर शब्द रसाल ॥३॥
मीराँ प्रभु संतन सुखदाई, भक्त बछल गोपाल ॥४॥

निर्गुण-भाव २

नैनन बनज बसाऊँरी, जो मैं साहिब पाऊँ ॥०॥
इन नैनन मेरा साहिब बसता, डरती पलक न नाऊँ, री ॥१॥
त्रिकुटी महल में बना है झरोखा, तहाँ से झाँकी लगाऊँ, री ।२।
सुन्न महल में सुरत जमाऊँ, सुख की सेज बिछाऊँ, री ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँ, री ॥४॥

प्रार्थना ३ (गुज०)

आवो रे सलुणा मारा मीठडा मोहन,
आंखडली मां तमने राखुं रे ॥०॥
हरि जे रे जोइये ते तमने आणी आणी आपुं,
मीठाइ मेवा तमने खावा रे ॥१॥
ऊँची ऊँची मेडी साहेबा अजब झरूखा,
झरूखे चढी चढी झांखुं रे ॥२॥
चुंन चुंन कळीयां वाळी सेज बीछावुं,
भमर पलंग पर सुखवारी नांखुं रे ॥३॥

मीराँबाई के प्रभु गिरधर ना गुण,
तारा चरण कमळ पें मन राखु ं रे ॥४॥

भक्तिभाव ४ (गुज०)

ध्यान धणी केरूं धरवु ं रे, बीजु ं अमारे शु ं करवु ं ।
शु ं करवु ं रे सुंदिर श्याम बीजु ं अमारे शु ं करवु ं ॥०॥
नित्य उठीने अमे नाहीए ने धोइए रे,
ध्यान धणी तणु ं धरीए रे ॥१॥
संसार सागर महा जळ भरीयो रे,
तारे भरोसें अमे तरीये रे ॥२॥
साधुजनो ने व्हाला भोजन जमाडीये रे,
जुठु ं वधे ते आपण जमीए रे ॥३॥
वृन्दावन मां व्हाले रास रच्यो'तो रे,
रासमंडळ मां अमे रमीए रे ॥४॥
हीरना चीर अमने काम न आवे रे,
भगवां प्हेरीने अमे फरीए रे ॥५॥
बाइ मीराँ कहे प्रभु गिरिधर नागर,
चरण कमळ मां चित धरीए रे ॥६॥

रूपासक्ति ५ (गुज०)

हांरे चालो डाकोरमां जइ वसिये,
हांरे मने लेह लगाडी रंगरसिये रे ॥०॥
हांरे प्रभातना पहोरमां नोबत बाजे,
हांरे अमे दरशन करवा जइये रे ॥१॥
हांरे अटपटी पाघ केसरियो वाघो,
हांरे काने कुंडळ सोइये रे ॥२॥

हांरे पीलां पीताम्बर जरकशी जामो,
हांरे मोतनमाला थी मोहिये रे ॥३॥
हांरे चन्द्रबदन अणियाळी आंखो,
हांरे मुखडु सुंदर सोइये रे ॥४॥
हांरे रुमझुम रुमझुम नेपूर बाजे,
हांरे मन मोह्यु मारूं मोरलीए रे ॥५॥
हांरे मीराँबाई कहे प्रभु गिरिधर नागर,
हांरे अंगो अंग जइ मलिये रे ॥६॥

द्वारिकावास ६

द्वारिका को बास हो मोहि द्वारिका को बास ।
संख चक्रहुँ गदा पद्महूँ ते मिटै जम त्रास ॥१॥
सकल तीरथ गोमती में करत सदा निवास ।
संख झालरि झांझ बाजे सदा सुख की रास ॥२॥
तज्यो देसौ वेस पतिगृह तज्यो सम्पति राजि ।
दासि मीराँ सरन आई तुम्हें अब सब लाजि ॥३॥

अनन्यसेवाभाव ७

बन जाऊँ चरन की दासी रे । दासी मैं भई उदासी ॥०॥
और देव कोई न जाणूं । हरि बिन भई उदासी ॥१॥
नहीं न्हावु गंगा नहीं न्हावु जमुना । नहीं न्हावु प्रयाग कासी।२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर । चरन कमल की प्यासी ॥३॥

सेवाभाव ८ (गुज०)

सुंदर म्हारो सांवरो-म्हारे घेर आवजो वनमाली ॥०॥
नाना सुगंधी तेल लगाऊँ, उनुं उनुं पाणी मंगाइूँ ।
म्हारा मनमां येही बसे छे, अपने हाथ न्हवाइूँ ॥१॥

खीर खांड पकवान मिठाई, ऊपर घीना लाडूँ ।
म्हारा मनमां येही बसे छे, अपने हाथ जमाडूँ ॥२॥
सोना रूपा नो भूलो बंधावूँ, रेशम नो बँध बाँधूँ ।
म्हारा मनमां येही बसे छे, अपने हाथ झुलावूँ ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, नित नित ध्यान लगाऊँ ।
म्हारा मनमां येही बसे छे, चरण कमळ गुण गाऊँ ॥४॥

ज्ञान ९

भजन कटारी मारी रे मेवाड़ा राणा ॥०॥
म्हारे तो आंगण रामा तुलसी नो क्यारो भाई, सींचत २ हारी ॥१।
म्हारे तो आंगण रामा गुड़ला हींसे भाई, चाबुक दे दे हारी ।२।
म्हारे तो आंगण रामा हस्तीडा घूमे भाई, अंकुश दे दे हारी ।३।
म्हारे तो आंगण रामा तपसी तापे भाई, सेवा कर कर हारी ।४।
मीराँ ने प्रभु गिरधर मिलिया भाई, चरण कमल बलिहारी ।५।

द्वारिकावास-विनय १०

पुरी में श्याम है म्हारो ।
असी कोस की झाडी लगत है, चलणा रो काम करारो ।
पुरी में श्याम है म्हारो । जहां बसे मोहन मुरलीवारो ॥०॥
आस पास रतनागर सागर अध विच सोना रो क्यारो ॥१॥
दरसन द्यो तो सनमुख दीज्यो जद आवे पतियारो ॥२॥
मीराँबाई के हरि गिरधर नागर शरण हि राख उबारो ॥३॥

भगवद्‌भूषण ११ (गुज०)

मुज अबळा ने मिरांत मोटी शामळो घरेणुं मारे साचुं रे ॥०॥
वाळी घडावुं विट्ठलवर केरी, हार हरिनो मारे हइए रे ।
चित्त माळा चतुर्भुज चुडलो, शीद शोनी घेर जइए रे ॥१॥

झांझरियां जगजीवन केरां, कृष्णजी कडलां ने कांबी रे।
विछुवा घुघरा रामनारायण ना, अणवट अंतरजामी रे ॥२॥
पेटी घडावुं पुरुषोत्तम केरी, त्रिकम नाम नुं तालुं रे।
कुंची करावुं करुणानन्द केरी, तेमां घरेणुं मारूं घालुं रे।३।
सासरवासो राजीने बेठी, हवे नथी कांइ काचुं रे।
मीराँबाई कहे प्रभु गिरिधर नागर, हरि ने चरणे जाचुं रे॥४॥

चेतावनी १२

फूल मंगाऊँ हार बनाऊँ। मालिन बनकर आऊँ॥
कै गुनले समझावूं। राज कै गुनले समझावूं॥०॥
गला सेली हाथ सुमरनी। जपत जपत घर जाऊँ॥१॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। बैठत हरि गुन गाऊँ॥२॥

निगुंणभाव १३

कहो तो गुण गाउं रे भजै रामराम सुवा कहो तो गुण गाउं रे।०।
सार की सलीया को सूवा पींजरो बणाऊं रे।
पींजरा में आव सूवा हाथ सूं हलाऊं रे॥१॥
सूवा सूवा (सो) लापसी रँधाऊं रे।
आबही को रस सूवा घोल घोल पाऊं रे॥२॥
कंचन कोटि महल मन्दिर मालिया झुकाऊं रे।
मालिया में आव सूवा मोतीडा बंधाऊँ रे॥३॥
बैठक करो तो सूवा चांदणी रिलाऊं रे।
प्रेम ही प्रताप सूवा झाँझरी बजाऊँ रे॥४॥
जांई जांबू केतकी सूवा बाग भी लगाऊं रे।
बाग ही में आव सूवा फूलडा सुंघाऊँ रे॥५॥

केसर भरियो बाटको सूवा अंग चरचाऊं रे।
मीराँ दासी सूवा की राम राती चरणां चित्त लगाऊँ रे ॥६।

सेवाभाव (प्रभाती) १४

जागो कृष्ण जागोजी जागो हो बलदाऊ वीर ॥०॥
सोनारी तो झारी मंगाय दऊँ मांय गंगाजल नीर जी ।
मेरे मन में ऐसी आवे, मुख मंजन कराऊँ जी ॥१॥
जगमगियो थांरे जामो सिवाय दऊँ राता रंग की टोपी जी।
मेरे मन में ऐसी आवे, मेरे हाथ पेराऊँजी ॥२॥
माखन मंगाय दऊँ मिश्री मंगाय दऊँ, और मंगाय दऊँ मेवा जी।
मेरे मन में ऐसी आवे, अपने हाथ जिमाऊँजी ॥३॥
लाड्डू मंगाय दऊँ पेडा मंगाय दऊँ, और मंगाय दऊँ गुंजाजी।
मेरे मन में ऐसी आवे, अपने हाथ जिमाऊँ जी ॥४॥
सोनारी तो झारी मंगाय दऊँ, मांय गंगाजल नीर जी ।
मेरे मन में ऐसी आवे, अपने हाथ पिलाऊँ जी ॥५॥
काथो मंगाय दऊँ चूनो मंगाय दऊँ, और मंगाय दऊँ पानजी।
मेरे मन में ऐसी आवे, अपने हाथ जिमाऊँ जी ॥६॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ बलि जाऊँ जी।
मेरे मन में ऐसी आवे, चित चरणाँ में लाऊँजी ॥७॥

प्रेम १५

साँवरिया प्यारा मैं तेरे रंग राती।
गोविंदा प्यारा मैं तेरा गुण गाती ॥०॥
हाथाँ का तो ढफला बना दूँ, आँगल्या की जोदूँ बाती।
ज्ञान सुरत का तेल पुरादूँ, निरत करूं दिन राती ॥१॥

कोई केवे मीराँ हुई है बावरी, कोई केवे मदमाती ।
प्रेम भठी को पायोजी प्रेमरस, हुई है मीराँ मदमाती ॥२॥
मोर मुकुट सिर छत्र विराजे, चरण कमल बलिहारी ।
यो जश तो बाई मीराँ गायो, दे दे हाथाँ की तारी ॥३॥

निर्गुण-भाव (रहस्य) १९

रमता राम ने रिझाऊं, येजी मैं तो विमल-विमल यश गाऊं ।
येजी मैं तो गुण गोविन्द का गाऊं ॥ रमता० ॥
डाल पात में हाथ न लगाऊं, ना कोई वृक्ष सताऊं ।
पान पान में सायब मेरो, झुक कर शीश नवाऊं ॥१॥
गङ्गा न जाऊं यमुना ना नहाऊं, ना कोई तीरथ जाऊं ।
अड़सठ तीरथ है घट भीतर, जामें मल मल नहाऊं ॥२॥
औषधि खाऊं न बूटी खाऊं ना कोई वैद्य बुलाऊं ।
वैद्य बने आप कृष्ण सांवरो, जैने नबज दिखाऊं ॥३॥
ज्ञान कटारी कस कर बांधू, सुरत की म्यान चढाऊं ।
पांच चोरटा है घट भीतर, जाने मार हटाऊं ॥४॥
साधु ना होऊं, जटा ना बंधाऊं, ना कोई खाक रमाऊं ।
'ॐ' रंग से रंग चढ़े दुगुना, जामें आनन्द मनाऊं ॥५॥
पार ब्रह्म पूरण पुरुषोतम, व्यापक रूप लखाऊं ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आवागमन मिटाऊं ॥६॥

पदों के शब्दार्थ-भावार्थ-विशेष आदि

२—नैनन·········पाऊँ=जो मैं अपने प्रियतम श्यामसुन्दर को पालूं तो अपने नेत्र कमल में स्थिर करदूं। नाऊँ=गिराती हूँ। इन ······नाऊँरी=मेरे नेत्रों में प्रभु की ही छवि बसती है, इसलिए उस दर्शन सुख से कहीं वञ्चित न रह जाऊँ इस भय से पलकें भी नहीं गिराती हूँ। सुरत जमाऊँ=चित्तवृत्ति स्थिर करती हूँ। त्रिकुटी······ ···बिछाऊँ=जहाँ इड़ा पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियाँ मिलती हैं उस स्थान को त्रिकुटी महल-सुन्न महल-शून्य महल और ब्रह्म रन्ध्र भी कहते हैं। वहाँ प्राणों की शक्ति द्वारा चित्त वृत्ति को लेजाकर स्थिर करके अखण्ड सुख समाधि में मग्न हो जाऊँगी।

३—चुन-चुन·········नांखु रे=कलियों की शय्या पर भ्रमर जैसे रसिक श्यामसुन्दर के मिलन सुख पर और सब सुख वार डालूं।

५—विशेषः—किंवदन्ती है कि मीरांबाई जब ५ वर्ष की थी तब उसके पिताजी और दादाजी उसे श्री डाकोर जी ले गये थे। तब से श्री डाकोरनाथ जी के प्रति उसके हृदय में गहरा श्रद्धाभाव जम गया था। कहा जाता है कि मेवाड़ त्याग के समय ब्रज में जाने के पहले मीरांबाई के मन में श्री डाकोर जी जाने की लहर हो आई थी। उसी समय के भाव इस पद में व्यक्त हैं। पद की अंतिम कड़ी "अंगो अंग जइ मळियें रे" अर्थात् अपने स्थूल शरीर से साक्षात् श्री विग्रह में समा जाने की उसकी उत्कट अभिलाषा, अंत में अपनी अनन्य निष्ठा व प्रेम के बल पर द्वारिका में उसने पूर्ण करके ही छोड़ी।

६—विशेषः—मेवाड़ त्याग के पश्चात् श्री भगवान श्यामसुन्दर के शरण में श्री द्वारिकापुरी के वास के लिये मीरांबाई जी के हृदय में कितनी उत्कण्ठा थी वह इस पद से व्यक्त होती है।

६—भजन·········मारी=चित्त के अशुभ संस्कारों को छेदन करने के लिये भजन रूप तीक्ष्ण शस्त्र का उपयोग किया अथवा प्रभाव-

शाली साधन स्वीकार किया। म्हारे तो आंगण"......सींचत हारी =अन्तःकरण में जो प्रभु भक्ति के अंकुर उगकर विकसित हो चुके हैं उनकी, निन्दा स्तुति आदि की परमार्थ साधन में बाधक सांसारिक मनो-वृत्तियों से, बड़ी ही कठिनाई से रक्षा करती हुई, प्रेम का जल बार-बार सींच-सींच कर उनका पोषण करती हूँ। म्हारे तो.........गुडला.....चाबुक.........हारी=स्वजनों द्वारा प्रभु भक्ति का विरोध आदि की रजोगुणी व तमोगुणी प्रवृत्तियों का बड़ी कठिनाई से दृढ़ता व लगन द्वारा प्रतिकार करती हुई अपनी भजन ध्यान आदि सात्विक वृत्तियों की रक्षा करती हूँ। म्हारे.........हस्तीड़ा.........अंकुस.........हारी= मन रूप चंचल व मस्त हाथी को बड़े प्रयत्न से संयम में रखती हूँ। म्हारे.........तपस्वी.........सेवा.........हारी=प्रतिकूल परिस्थिति में बड़ी ही कठिनता से साधु संतों की सेवा और सत्संग करती हूँ।

१०—अध ....क्यारो=सागर के बीच में स्वर्ण की द्वारिकापुरी स्थित है। दरसन.........पतियारो=दर्शन देना हो तो साक्षात् ही देना तभी विश्वास होगा। राख=रखकर।

विशेषः—इस पद के द्वितीय और तृतीय चरण को विचारने पर प्रतीत होता है कि सर्वात्मभावेन अपने प्रियतम श्यामसुन्दर की शरण में जाकर साक्षात् दर्शन पाने की (अर्थात् इनमें विलीन हो जाने की) मीरांबाई की कैसी अपूर्व लगन, उत्कट अभिलाषा थी।

११—मिरांत=निश्चिंतता। वाळी, चुड़लो, झांझरियां, कडलां, कांबी, विछुवा, घुघरा, अणवट=आभूषणों के प्रकार विशेष। ताळु= ताला। काचुं=शेष, त्रुटि। जाचुं=याचना करती हूँ।

विशेषः—भिन्न २ भगवन्नाम के अनेकों आभूषणों को बनाकर उन्हें भगवन्नाम ही के पेटी ताले में सुरक्षित करने की अभिलाषा रखती हुई मीरांबाई कहती है:-सासरवासो.........कांचुं रे=अर्थात् इस

नूतन शृंगार पूर्ण संसार रूपी सुसराल में अब कोई त्रुटि नहीं रही, जीवन सार्थक हो गया।

१३—विशेष:—केशरी रंग आत्म बलिदान का द्योतक है इसीलिए वीर क्षत्रिय युद्ध में केशरिया बाना धारण कर मर मिटते थे परन्तु कभी शत्रु के अधीन नहीं होते थे। उनका आत्मोत्सर्ग "केशरिया करना" सर्वत्र विदित है। इस पद की अन्तिम कड़ी में भी यही भाव है। अंगों में केशरी रंग का लेपन करना ही अपने नाम रूप को मिटाना है।

गूढ़ार्थ:—अपने हृदय पिञ्जर में सुवा रूप परमात्मा को बसाने (च० १) श्रवण कीर्तनादि द्वारा उसे रसामृत पान कराने (च० २), प्रेम मन्दिर में पंधराकर हृदय के मधुर भावों द्वारा स्वागत करने (च. ३) संकीर्तनादि आनन्द महोत्सव मनाकर गीत वाद्य नृत्यादि द्वारा उसे रिझाने (च० ४) सात्विक गुणों को आत्मसात् करके तदानुसारी भावों द्वारा उपासना करने (च० ५) और इस प्रकार अन्त में अपनी कायापलट करके सर्वभावेन आत्मनिवेदन कर उसमें समाजाने की साधक की उपासना पद्धति इस पद में व्यक्त है अथवा हृदय रूप पिंजर में बद्ध हुए जीवात्मा को—उस प्राण तत्व को (च० १), प्राणायाम व खेचरी साधन द्वारा (च० २), मूर्च्छित कुण्डलिनी शक्ति को शनैः शनैः सुषुम्नान्तर्गत भिन्न चक्रों में प्रवेश कराने (च० ३), अनाहत नाद तथा दिव्य रूपादि द्वारा चित्त वृत्ति को सर्वथा अन्तराभिमुखी बनाकर (च० ४–५), अन्त में दशम द्वार ब्रह्म रन्ध्र में पहुँचाकर अहं शक्ति को क्रिया शून्य बनाकर परमात्मतत्व में एक रूप हो जाने की—वास्तविक आनन्द स्वरूप में मिला कर जीवात्मा को कैवल्य लाभ प्राप्त कराने की अभिलाषा इस पद में व्यक्त है।

पढ़ोरे पोपट राजा रामना, सती सीताः पढ़ावे,
पासे बांधी पांजरू, मुखे राम जपावे।
पोपट तारे कारणे, लीला वांस वेडावुं,
तेनुं घड़ावुं पोपट पांजरू, हीरे रतन जडावुं।
पौपट तारे कारणे, शीशी रसोई बनावुं,
साकरनां करी चूरमां, उपर घी पिरसावुं॥
पांख पीळो ने पग पांडुरा, कोटे कांठलो काळो।
नरसैंयाना स्वामी ने भजो, राग ताणी रुपाळो॥

(नरसिंह महेता)

१६—नवज=नाड़ी। पांच चोरटा=पंच महाभूत, जन्म-मरण का मूल कारण।

विशेषः—इस पद के भावों के साथ कबीर जी के निम्नलिखित पद के भाव कितने मिलते जुलते हैं, देखियेः—

अब मैं अपने राम को रिझाऊँ
भव भंजन गुण गाऊँ ॥०॥
बूँटी न खाऊँ औषधि न खाऊँ न कोई वैद्य बुलाऊँ।
पूर्ण वैद्य मिले अविनाशी, ताहि को नवज दिखाऊँ॥१॥
वन में जाऊँ पत्र न तोड़ूँ न कोई जीव सताऊँ।
पत्र-पत्र में साहिब मेरा, मुँड मुँड सीस नमाऊ॥२॥
गंगा न जाऊँ जमुना न जाऊँ, न कोई तीरथ नहाऊँ।
अठसठ तीरथ है घट भीतर, तिनमें मल मल नहाऊँ॥३॥

ज्ञान कटारा कस कर बांधूँ, सुरत कमान चढ़ाऊँ ।
कस कस बाण मारूँ भीतर को भरम के बुरज ऊडाऊँ ॥४॥
चन्द्र सूर्य दोउ समकर राखूँ, सुख मन सेज बिछाऊँ ।
कहत कबीर सुनौ भाई साधो, ज्योत से ज्योत मिलाऊँ ॥५॥

—****—

विभाग ११ सद्गुरु-महिमा

गुरु वा सद्गुरु के चरण कमलों का आश्रय ग्रहण किये बिना साधन पथ में प्रगति करना वा उन्नति साधना असंभव है अथवा यों कहा जाय कि अनंत व अखण्ड आनन्द की प्राप्ति कराने वाले अर्थात् अपने आनंदमय स्वरूप में स्थिति करा देने वाले एक मात्र सद्गुरु ही हैं।

* भूमिका *

★

॥ कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

तत्त्वज्ञानी व शास्त्रवेत्ता ऋषि-मुनियों ने इन तीन श्लोकों में जो श्रीगुरु की वन्दना की है वह ऐसी व्यापक, भावभरी व रहस्य-पूर्ण है कि उसमें श्री सतगुरु-महिमा का सम्पूर्ण सार अन्तर्हित हो जाता है।

> अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया ।
> चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

'अज्ञानांधकार ग्रस्त व मोहान्ध जीव के चक्षुओं को ज्ञान रूपी अञ्जनशलाका से दिव्य दृष्टि प्रदान करने वाले उस गुरु को नमस्कार हो।'

> अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
> तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

'जिससे समस्त चराचर प्रकृति अखण्ड मण्डलाकार रूप से व्याप्त है उस अनुभव का साक्षात्कार जिसने कराया, उस गुरु को नमस्कार हो।'

> गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः ।
> गुरुः साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

'वास्तव में गुरु ही ब्रह्मा, विष्णु और गुरु ही महेश्वर है, यही क्या जो गुरु साक्षात्परब्रह्म स्वरूप है, उस गुरु को नमस्कार हो।'

मानव मात्र में 'आनन्द' एवं 'स्वतंत्रता' का अभाव है। इस अभाव की निवृत्ति के लिये जीव अपने मन-बुद्धि तथा तर्क से नाना कर्मों में प्रवृत्त होता है परन्तु सुख के स्थान पर वह अधिकाधिक दुःखमयी स्थिति को प्राप्त होता जाता है। संसार नाशवान, क्षण भंगुर, असार और दुःख रूप है ऐसा ज्ञानोपदेश वृद्ध और अनुभवी संत-महात्मा करते आये हैं व शास्त्रों में भी यही लिखा है परन्तु यह सब सुनते-पढ़ते हुए भी जीव को जब तक स्वानुभव नहीं हो जाता तब तक उसकी प्रत्येक कर्म प्रवृत्ति के पीछे संसार के शाश्वत और सुखमय होने की ही भावना काम करती है। मानव अपने पुरुषाथ से मनोवाञ्छित सुखमयी परि-स्थिति का निर्माण कर अपने संसार को स्वर्ग बनाने की अभि-लाषा रखता है परन्तु अंत में इसके विपरीत उसे यह अनुभव होता है कि इस संसार में सुख की आशा रखना मृग-मरीचिका के समान है। मानव प्रयत्न ही केवल अपने वश की बात है कर्म फल नहीं, सुख मात्र के पीछे दुःख की परम्परा लगी है। प्रियजनों का सहवास स्थिर नहीं, देह के पीछे व्याधि अवश्य-म्भावी है और निरन्तर सिर पर काल-चक्र घूमता रहता है। तभी जीव को शाश्वत शान्ति एवं आनन्दानुसंधान करने की प्रवृत्ति होती है परन्तु तब उसे अपनी अल्पताओं का अनुभव होता है कि सांसारिक स्वार्थी मनोवृत्ति, मोहादिक प्रबल प्रलोभन, तृष्णा की दावाग्नि और माया की प्रचण्ड आंधी में अपने आपको अविचलित बनाये रखने की उसके मन की क्षमता नहीं और भवसागर के प्रलयंकर थपेड़ों के बीच में अपने आपको सुरक्षित और अक्षुण्ण बनाये रखने की साधना भी नहीं। इस प्रकार सर्वतोभावेन असहाय और दीन होकर वह मुमुक्षु प्राणी

श्रद्धा पूर्वक किसी ज्ञानी व अनुभवी मार्ग दर्शक पुरुष का समर्थ आश्रय ग्रहण करने को उद्यत होता है और अन्ततोगत्वा सद्गुरु द्वारा उपदिष्ट साधना द्वारा ही इस भव-बंधन से मुक्त होकर अपने आनन्दस्वरूप को प्राप्त होता है ।

भिन्न प्रसंग और समय पर, विद्या, कला, व्यवहार, युद्ध व राजनीति, शास्त्रादिक अनेकों सांसारिक-पारमार्थिक शिक्षा, विषय एवं गुणों का ज्ञान कराने वाले सब गुरु हैं और जो केवल मानव जीवन कल्याणार्थ अपने अमोघ उपदेश द्वारा जीव को सदसद् वस्तु विवेकानुभव कराकर उसे संसार-सागर से पार करा देते हैं वास्तव में वे ही सद्गुरु हैं । ब्रह्मवेत्ता श्री गुरु दत्तात्रेय का तो भृङ्ग, पतङ्ग, पशु, पक्षी व पंचमहाभूतादि को भी गुरु बनाने का "श्री मद्भागवत एकादश स्कंध" में दृष्टांत है। संक्षेप में यही कि जिस किसी से ज्ञान प्राप्ति हुई वही गुरु है । गुरु और सद्गुरु में विशेष अन्तर नहीं । अज्ञान अन्धकार से ज्ञान रूप प्रकाश की प्राप्ति कराने वाला जो भी हो वही गुरु है और वही सद्गुरु है ।

मनुष्य जीवन में कभी न कभी तो यह प्रसंग आ ही जाता है जब कि अनेकों उलझनों में फँसे हुये उसे गुरु की शरण में जाना पड़ता है । "अथा तो-ब्रह्म जिज्ञासा" इस ब्रह्म सूत्र के अनुसार साधक को सर्व प्रथम परमार्थ प्राप्ति के लिये उत्कट इच्छा होनी चाहिये तभी शनैः शनैः गुरुपदिष्ट साधन द्वारा वह आत्मोन्नति के पथ पर अग्रसर होता जाता है । संसार में जब कभी कटु अनुभव अथवा किसी अभाव का अनुभव होता है, वास्तव में तभी मनुष्य को स्वयं अपने, संसार के और प्रभु

के वास्तविक स्वरूप को समझने आदि की सच्ची पारमार्थिक जिज्ञासा उत्पन्न होती है। संसार में अब तक कोई ऐसा पुरुष उत्पन्न नहीं हुआ होगा कि जिसने प्रकट या अप्रकट रूप से कभी किसी को गुरु न बनाया हो। श्रीराम-कृष्णादि अवतार भी इसके अपवाद नहीं। १४०० वर्ष जीवित रहने वाले महान् योगीराज श्री चांगदेव को भी संत ज्ञानेश्वर की छोटी बहन ११ वर्षीय मुक्ताबाई से ज्ञान प्राप्ति करनी पड़ी थी और "नामदेव कीर्तन करी पुढ़ें नाचे पांडुरंग।" अर्थात् जिनके कीर्तन में स्वयं पांडुरंग भगवान प्रकट होकर नृत्य करते, उस योग्यता वाले भक्त नामदेव को भी भगवदादेश से श्री विसोबा खेचर को गुरु बनाना पड़ा था।

वास्तव में जो स्वधर्म परायण, दैवी संपत्ति युक्त, पूर्णानुभवी और साधन संपन्न होते हैं, वे ही गुरु हैं। ऐसे ही ज्ञानी महात्माओं की ओर संकेत करते हुए भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने आदेश किया है:—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्व दर्शिनः॥
(गीता अ० ४ श्लोक ३४)

"इसलिये हे अर्जुन! तत्त्व को जानने वाले ज्ञानी पुरुषों से भली प्रकार दण्डवत् प्रणाम तथा सेवा और निष्कपट भाव से किये हुए प्रश्न द्वारा उस ज्ञान को जान। मर्म को जानने वाले ज्ञानी जन तुझे उस ज्ञान का उपदेश करेंगे।"

उपर्युक्त लक्षणों से युक्त सद्गुरु की शरण में जाने की विधि का दिग्दर्शन कराते हुए भगवान श्री शंकराचार्य भी विवेक-चूड़ामणि में उपदेश करते हैं:—

तमाराध्य गुरू भक्त्या प्रह्वप्रश्रय सेवनैः ।
प्रसन्नं तमनुप्राप्य पृच्छेज्ज्ञातव्य आत्मनः ॥३९॥

"उन गुरुदेव की विनीत और विनम्र सेवा से भक्तिपूर्वक आराधना करके उनके प्रसन्न होने पर निकट जाकर अपना ज्ञातव्य इस प्रकार पूछेः—

कथं तरेयं भवसिंधु मेतं कावागतिर्मे कतमोऽस्त्यु पायः ।
जाने न किञ्चित् कृपयाव मां भो संसार दुःख चतिमातनुष्व ॥४२॥

"मैं इस संसार समुद्र को कैसे तरूँगा ? मेरी क्या गति होगी ? उसका क्या उपाय है ? यह मैं कुछ नहीं जानता । प्रभो ! कृपया मेरी रक्षा कीजिये और मेरे संसार दुःख के क्षय का आयोजन कीजिये ।"

समरांगण में अपने सम्बन्धी जनों को शत्रु पक्ष में देख कर मोह से किंकर्त्तव्य विमूढ़ होने वाले अर्जुन भी ठीक इसी प्रकार श्री कृष्ण भगवान् की शरण में जाकर प्रार्थना करते हैः—

कार्पण्य दोषोपहतः स्वभावःपृच्छामि त्वां धर्मसंमूढ़चेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥
(गीता अ० २ श्लोक ७)

"इसलिये हे भगवन् ! कायरता रूप दोष करके उपहत हुये स्वभाव वाला और धर्म के विषय में मोहित चित्त हुआ मैं, आपको पूछता हूँ, जो कुछ निश्चय किया हुआ कल्याणकारक साधन हो, वह मेरे लिये कहिये, क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये आपके शरण हुए मेरे को शिक्षा दीजिये ।"

सद्गुरु की प्राप्ति के लिये साधक को पूर्ण आस्तिक, श्रद्धा व निष्ठावान् सेवा-भावी, सदाचरणी व भगवत्प्रेमी होना चाहिये ।

अपनी अन्तर्वृत्ति को भगवदाभिमुखी बना लेना चाहिये। अपने आपको योग्य पात्र सत् शिष्य बना लेने पर ही प्रभु कृपा से सद्गुरु की प्राप्ति होना सुगम और सुलभ हो जाता है।

निःसन्देह गुरुभक्ति निष्ठ शिष्य ही अपने सेवा, अनन्य लगन और गुरु-उपदेशानुसार आचरण, कर्म कौशल और दृढ़ साधना द्वारा गुरु को प्रसन्न करके अपनी इष्ट प्राप्ति कर लेता है।

उसकी दृष्टि में तो गुरु और ईश्वर दोनों अभिन्न हैं। यही क्या एक प्रकार से गुरु ईश्वर से भी बढ़ कर है, यथा:--

गुरु गोविन्द दोनों खड़े किसके लागूँ पाय ॥
बलिहारी गुरुदेव की जिन गोविन्द दियो बताय ॥

और इसीलिये कहीं पराकाष्ठा की श्रद्धा भरा यह शास्त्र वचन भी सुना जाता है कि--'आज्ञा गुरुणाम् विचारणीया' गुरु आज्ञा के पालन में कोई भी विचार करने की आवश्यकता नहीं।

इस सम्बन्ध में उपनिषद् वाक्य भी विचारणीय है कि 'यानि अस्माकं सुचरितानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि' अर्थात् 'गुरु कहे सो करना गुरु करे सो नहीं।'

गुरु आज्ञा अथवा गुरु उपदेश के विपरीत आचरण करने वाले गुरु द्रोही अथवा गुरुनिंदक के लिये भी शास्त्र वा संत वचन प्रसिद्ध है:—

=कबिरा ते नर अन्ध है, गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहीं ठौर॥
=शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता, गुरौ रुष्टे न कश्चन।

अर्थात्

=हरि रूठ गुरु राखि हैं, गुरु रूठै नहिं कोय ।
उभय लोग नस जात हैं, जन्म जात है खोय ॥

वास्तव में गुरु तत्त्व की मीमांसा करना साधारण बुद्धि का कार्य नहीं । बड़े-बड़े विद्वानों की बुद्धि भी कुण्ठित हो जाती है।

श्री धोम्य-उपमन्यु, श्रीकृष्ण-सांदीपनी, द्रोणाचार्य-अर्जुन, निवृत्तिनाथ-ज्ञानेश्वर, श्री रामदास-शिवाजी, श्री विरजानन्द-दयानन्द और श्रीरामकृष्ण परमहंस-विवेकानन्द इत्यादि भारत-वर्ष के ऐसे कृतकृत्य हुए गुरु शिष्यों के अनेकों दृष्टांत इतिहास और शास्त्र पुराणों में भरे पड़े हैं, जिनके अमर नामों के स्मरण मात्र से ही दिव्य प्रेरणा प्राप्त होती है और जिनके चरित्रों के पठन और मनन करने से मनुष्य को पुरुषार्थ, साहस, आत्म-विश्वास और नाना प्रकार की महत्वाकांक्षाओं की स्फुरणा होती है।

भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से आषाढ़ शुक्ला १५ (गुरु पूर्णिमा) गुरु के प्रति अपनी श्रद्धा और कृतज्ञता निवेदन करने का निश्चित दिन है । शिक्षा प्राप्ति के लिये पौराणिक काल में जब गुरुकुल में रहने की प्रथा थी, उन दिनों शिष्य गुरु-दक्षिणा देकर उस दिन अपनी पूज्य भावना व्यक्त किया करता था। उस पूनम पर व्यास पूजा महोत्सव मनाया जाकर अपने अपने संप्रदाय के आचार्य अथवा जिनसे दीक्षा ली हो अथवा कण्ठी बन्धवाई हो उन गुरुओं का पूजन करने की प्रणाली आज तक भी चली आती है। इस परम्परागत प्रणाली का किसी समय अपूर्व महत्व था। परन्तु वर्तमान युग में उसका नाम मात्र

शेष रह गया है। न गुरु में ही शिष्य के प्रति वह प्रेम, अपने उत्तरदायित्व को वास्तविक रूप से समझने का विवेक विचार, पवित्रता, आत्मबल, साधन-सिद्धि और दिव्य सामर्थ्य है न शिष्य में ही गुरु के प्रति अनन्य श्रद्धा, सेवा-भाव, साधना को निभाने का धैर्य, चारित्र्य-बल, आत्मविश्वास और वह त्याग ही रह गया है। क्या गुरु में क्या शिष्य में अधिकतर स्वार्थ का ही संबंध देखा जाता है। किसी को कण्ठी बाँधने मात्र से ही उसके गुरु बनने का अधिकार प्राप्त हुआ समझा जाता है और वर्ष भर में गुरु पूर्णिमा के दिन गुरु को यथा शक्ति भेंट पूजा करने से ही शिष्य अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेता है। ऐसी परिस्थिति में आज का तर्क प्रधान और भौतिक वादी मानव यदि ऐसे ही धार्मिक और पवित्र कर्त्तव्यों को अश्रद्धा की दृष्टि से देखता है तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। अस्तु।

मीरांबाई के पदों में भी 'गुरु' व 'सद्‌गुरु' नाम का उल्लेख कई स्थानों में किया गया है, जिसमें यह 'सत्‌गुरु-महिमा' का पद-विभाग तो केवल तत्सम्बन्धी भावों का ही दिग्दर्शन है। उक्त उल्लेख जिन पदों में है वे विभाग इस प्रकार हैं:—

१—विरह	२२, ३४,	इन २३ पदों में
२—स्वजीवन	१, १८,	'सद्‌गुरु' नाम
४—निश्चय	२०, ३३, ३६, ८५,	का उल्लेख है।
११—सद्‌गुरु-महिमा	१, २, ४, ५, ६, ७, ६, ११, १२, १३, १५, १७, १८, १६,।	
१२—नाम-माहात्म्य	३,।	

४–निश्चय ९ इसमें 'परम गुरु' नाम का उल्लेख है।

१–विरह	२४	इन १९ पदों में
२–स्वजीवन	१९, २०, ४३, ५६, ७२	'गुरु' नाम का
४–निश्चय	१३, ३८	उल्लेख है।
९–सत्संग-उपदेश	१०, ३९, ४०, ५७, ५९	
११–सद्गुरु-महिमा	३, ८, १६	
१२–नाम माहात्म्य	१, ६	
१५–मुरली	१५	

२–स्वजीवन	२, ३५	इन ४ पदों में
४–निश्चय	९	सन्त 'रैदास' का
११–सद्गुरु-महिमा	१०	उल्लेख है।

ठीक ऊपर के चार पदों को (कोई इन्हें क्षेपक मानते हैं) देखते हुए कहा जा सकता है कि 'रैदास' ही मीरांबाई के गुरु रहे होंगे। परन्तु वास्तव में यह प्रश्न अभी संदिग्ध-सा ही है। यथा समय ज्यों स्वप्न में ज्ञान-लाभ करके सन्त चरणदास जी ने श्री शुकदेव को गुरु माना था त्यों किसी भी प्रकार मीरांबाई ने रैदास से ज्ञान प्रेरणा पाई हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।*

---

*इस तथा और भी मीराँ सम्बन्धी विवादास्पद प्रश्नों पर इसके पश्चात् प्रकाशित की जाने वाली 'मीराँ' (ऐतिहासिक दृष्टि से) नामक पुस्तक में विशेष रूप से प्रकाश डाला जायगा।

उपर्युक्त 'गुरु' 'सद्गुरु' वा 'परमगुरु' नामोल्लिखित पदों में से अधिकतर पद तो ऐसे हैं कि जिनमें मीराँ द्वारा अपने प्रियतम प्रभु के लिये ही 'गुरु' आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।

वस्तुतः देखा जाय तो मीरांबाई को अपने स्वामी वा प्रियतम के पास पहुँचने के लिये किसी मध्यस्थ-विशेष की ऐसी कोई अनिवार्य आवश्यकता ही नहीं थी, क्योंकि वह नारी है– भगवान् श्यामसुन्दर की अनन्य प्रेयसी है और वह स्वयं भी अपने को पूर्व जन्म की गोपिका समझती है जैसा कि ब्रजभाव के उसके कई पदों से व्यक्त होता है। अब यदि प्रेमिका-पत्नी अपने प्रियतम-पति को ही गुरु-सद्गुरु अथवा अपना सर्वस्व समझती है तो इसे किसी भी प्रकार अनुचित नहीं कहा जा सकता। साधक अपनी श्रद्धानुसार भाव प्रभु पर आरोपित कर उपासना करता है और 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी' के अनुसार वही फल पाता है।

भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने भी श्री गीता जी में यही आदेश किया है:—

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥
(श्री गीता अ० १७ श्लोक ३)

'हे भारत ! सभी मनुष्यों की श्रद्धा उनके अन्तःकरण के अनुरूप होती है, तथा यह पुरुष श्रद्धामय है, इसलिये जो पुरुष

जैसी श्रद्धा वाला है, वह स्वयं भी वही है अर्थात् जैसी जिसकी श्रद्धा है वैसा ही उसका स्वरूप है।'

इस प्रकार भगवान् भी अपने भक्त उपासक के लिये,—'ये यथा मां प्रपन्द्यते तांस्तथैव भजाम्यहम्' के अनुसार वैसे ही बन जाते हैं। गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने भी यही कहा है:— 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।' इसकी और भी इस प्रकार पुष्टि करते हैं:—

'ब्रह्म तू हौं जीव तू ठाकुर हौं चेरो।
तात मात गुरु सखा तू सब विधि हितु मेरो॥
तोहि मोहि नातें अनेक मानिये जो भावे।
ज्यों त्यों तुलसी कृपाल चरण शरण पावे॥'

वास्तव में परमात्मा ही सबका गुरु है। भगवान् श्री पतञ्जलि ने समाधिपाद सूत्र २६ में कहा है,—'स एषः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्' अर्थात् वह (ईश्वर) ब्रह्मा, विष्णु और महादेव जो कि अति पूर्व में हुए हैं, उनका भी गुरु है, क्योंकि उनसे भी वह प्राचीन है और काल करके भिन्न-भिन्न स्वरूप को प्राप्त नहीं होता है। वह अनादि, अनन्त और सर्वदा एक रस है इसलिये वही एक मात्र काल बन्धनातीत और गुरुओं का भी गुरु है।

सारांश यह है कि, 'त्वमेव सर्वं मम देव देव' के भाव से मीरांबाई का ईश्वर के प्रति 'गुरु' वा 'सद्गुरु' का भाव प्रदर्शित करना सर्वथा समुचित है। अस्तु।

———

'सद्गुरु-महिमा' पर सन्त-महात्मा व शास्त्र के उपदेश वचनः—

★

अविद्या हृदय ग्रन्थि बन्ध मोक्षो यतो भवेत्।
तमेव गुरु रित्याहु गुरुशब्देन योगिनः ॥

'हृदय में अविद्या ग्रन्थि के कारण हुआ भव-बन्धन जिसकी कृपा से छूट जाता है, योगी लोग उसी को गुरु कहते हैं।

=न गुरोरधिकंः कश्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
=नास्ति तत्वं गुरोः परम्।

—(योग शिखोपनिषत्)

=तीरथ न्हाये एक फल, संत मिले फल चार।
सद्गुरु मिले अनेक फल, कहें कबीर विचार ॥
=गुरु कुंभार शिष कुंभ। गुरु धोबी शिष कापड़ा ॥

—(कबीर)

=गुरू कृपा जेहि नर पर कीन्ही, तिन्ह जग जुगति पिछानी।
नानक लीन भयो गोविन्द सँग, ज्यों पानी में पानी ॥

—(नानक)

=चिंतामणि लोक सुखं सुरेन्द्रः स्वर्ग सम्पदम् ।
प्रयच्छति गुरुः प्रीतो वैकुण्ठं योगि दुर्लभम् ॥

श्री भागवत-माहात्म्य १।१८ ॥

'चिन्तामणि ऐहिक सुख को और सुरेन्द्र स्वर्गीय सम्पत्ति को दे डालता है किन्तु प्रसन्न हुए गुरु तो योगियों को भी दुर्लभ वैकुण्ठ की भी प्राप्ति करा देता है।

इस विभाग का ११ वाँ पद गुजराती भाषा का है और सं. ७, ६, १०, १३ व १५ ये ५ पद निर्गुण भाव के हैं जिनमें सं० १०, १३, १५ इन तीन पदों से तो मीरांबाई का रहस्यवाद प्रखर रूप से व्यक्त होता है।

'सद्गुरु-महिमा' मीराँ की वाणी में

जन्म जन्मान्तर से भव सागर में डूबते हुए जीव के पूर्व संस्कार 'सत्गुरु' शब्द से जाग उठे—(२) जनम जनम का सोया मनुआ, सतगुरू शब्द सुन जागा।

गुरु महिमा पर पूर्ण श्रद्धा हुई कि—(२२) अड़सठ तीरथ माता गुरु- चरणाँ में। मैं तो अरस परस गंगा न्हास्यां ये माय ॥

फिर अभिलाषा जग उठी कि—(२१) सतगुरु सरण में जास्यां।

तब सच्चे हृदय की पुकार हुई—(४) म्हाँरा सतगुरु वेगा आज्यो जी, म्हारे सुख री सीर बुवाज्यो जी अरज करे मीराँ दासी जी, गुरु पद रज की प्यासी जी।

अनन्य श्रद्धा भरी प्रार्थना सफल होने पर—(१८) सतगुरु मिलिया सुंज पिछाणी।

यह संतोष व समाधान प्राप्त होता है क्योंकि सतगुरु के ज्ञानोपदेश रूप वचन-बाण हृदय की गहराई तक पहुँच जाते हैं—(६) री मेरे पार निकस गया सतगुरु मारचा तीर।

भव व्याधि को मिटाने वाले वास्तव में सत्गुरु ही सच्चे वैद्य हैं:—(६) सत्गुरु औषध ऐसी दीन्ही, रूम रूम भइ चैना, सतगुरु बैद नहीं कोई पूछो वेद पुराना।

इस आत्म कल्याण की प्रतीति होने पर श्री गुरु चरणों के प्रति ऐसी लगन लग जाती है कि जिससे जीव भवबन्धन की मुक्ति का अनुभव पाकर निश्चित हो जाता है—(३) मोहि लागी लगन गुरु चरनन की। भौ सागर सब सूख गयो है फिकर नहीं मोहि तरनन की।

इस प्रकार—(७) सत्गुरु भेद बताइया खोली भरम किंवारी हो। सब घट दीसै आतमा, सबही सूं न्यारी हो ॥

श्री सतगुरु की कृपा से भेद बुद्धि व भ्रम की निवृत्ति होने पर भगवद्-लीला के रहस्य एवं आनन्दस्वरूप स्थिति का परम अनुभव पाकर जीव कृतार्थ हो जाता है।
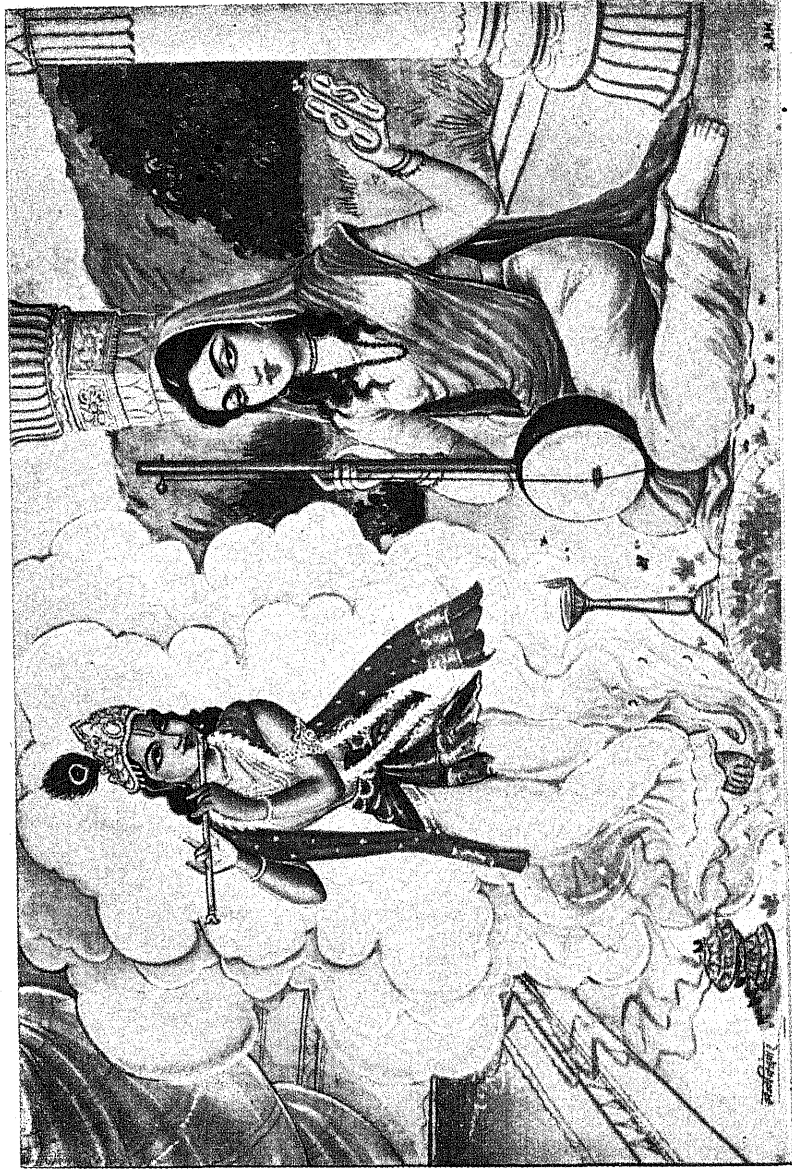
बसो मेरे नैनन में नंदलाल

[पृ० ८१३, पद ८

११—सद्गुरु-महिमा के पद

★

नाम-विश्वास १

कृपा भई सतगुरु अपने की बेर बेर हरि नाम लियो रे ॥०॥
माता को उपदेश भयो तब ठाड़ो ध्रुवजी वन में रह्यो रे।
मारग में मिल गये मुनि नारद तबसे ध्रुवजी अटल भयो रे।१।
हिरण्यकशिपु प्रहलाद सतायो जाय अग्नि बिच धरहि दियो रे।
पिता छाँडि हरिनाम न छाँड्यो खँभ फाड़ हरि दरस दियो रे।२।
सब भक्तन की सहाय करी प्रभु मेरी बेर कहा सोय रह्यो रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर बंशी बजा मन मोह लियो रे ॥३॥

निश्चय २

कोई कछू कहे मन लागा ॥०॥
ऐसी प्रीत लगी मनमोहन, ज्यूँ सोने में सुहागा ॥१॥
जनम जनम का सोया मनुआ, सतगुरु शब्द सुन जागा ॥२॥
मात पिता सुत कुटुंब कबीला, टूट गया ज्यूँ तागा ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भाग हमारा जागा ॥४॥

लगन ३

मोहि लागी लगन गुरू चरणन की ॥०॥
चरण बिना कछुवै नहिं भावै।
जग माया सब सपनन की ॥१॥
भौ सागर सब सूख गयो है।
फिक्र नहीं मोहि तरनन की ॥२॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
आस वही गुरू सरनन की ॥३॥

विरह ४

म्हाँरा सतगुरू बेगा आज्योजी, म्हारे सुखरी सीर बुवाज्यो जी ।
तुम बिछुड्याँ दुख पाउँ जी, मेरा मन माँही मुरझाउँ जी ॥१॥
मैं कोयल ज्यूँ कुरलाउँजी, कुछ बाहरि कहि न जणाउँ जी ।
मोहि बाघण विरह सतावैजी, कोई कहिया पार न पावै जी ॥२॥
ज्यूँ जल त्यागा मीना जी, तुम दरसन बिन खीना जी ।
ज्यूँ चकवी रैण न भावै जी, वा ऊगो भाण सुँहावै जी ॥३॥
ऊ दिन कबै करोलाजी, म्हारे आँगण पाँव धरोला जी ।
अरज करै मीराँ दासी जी, गुरु पद रज की प्यासी जी ॥४॥

दर्शनानन्द ५

मैं तो राजी भई मेरे मन में, मोहि पिया मिले इक छिन में ॥०॥
पिया मिल्या मोहि किरपा कीन्हीं, दीदार दिखाया हरि ने ॥१॥
सतगुरू सबद लखाया अंसरी, ध्यान लगाया धुन में ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मगन भई मेरे मन में ॥३॥

विरह ६

री मेरे पार निकस गया सतगुरू मारया तीर ।
विरह भाल लगी उर अंदर व्याकुल भया सरीर ॥०॥
इत उत चित चलै नहिं कबहूँ डारी प्रेम-जंजीर ।
कै जाणे मेरो प्रीतम प्यारो और न जाणै पीर ॥१॥
कहा करूँ मेरो बस नहिं सजनी नैन झरत दोउ नीर ।
मीराँ कहै प्रभु तुम मिलियाँ बिन प्राण धरत नहीं धीर ॥२॥

ज्ञान ७

लागी मोहिं राम खुमारी हो ॥०॥

रमझम बरसै मेहड़ा भीजै तन सारी हो ।
    चहुँ दिस दमकै दामणी गरजै घन भारी हो ॥१॥
सतगुरू भेद बताइया खोली भरम किंवारी हों ।
    सब घट दीसै आतमा सबही सूँ न्यारी हो ॥२॥
दीपक जोऊँ ग्यान का चढ़ूँ अगम अटारी हो ।
    मीराँ दासी राम की इमरत बलिहारी हो ॥३॥

विरह ८

मिलता जाज्यो हो गुरुज्ञानी, थाँरी सूरत देखि लुभानी ॥०॥
मेरो नाम बूझि तुम लीज्यो, मैं हूँ बिरह दिवानी ॥१॥
रात दिवस कल नाहिं परत है, जैसे मीन बिन पानी ॥२॥
दरस बिना मोहिं कछु न सुहावे, तलफ तलफ मर जाना ॥३॥
मीराँ तो चरणन की चेरी, सुन लीजे सुखदानी ॥४॥

ज्ञान ९

भर मारी रे बानाँ मेरे सतगुरू विरह लगाय के ॥०॥
पावन पंगा कानन बहिरा, सूझत नाहिं नैना ॥१॥
खड़ी खड़ी रे पंथ निहारूँ, मरम न कोई जाना ॥२॥
सतगुरू औषद ऐसी दीन्हीं, रूम रूम भइ चैना ॥३॥
सतगुरू जस्या वैद नहिं कोई, पूछो वेद पुराना ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, अमरलोक में रहना ॥५॥

ज्ञान १०

मीराँ मन मानी सुरत सैल असमानी ॥०॥
जब जब सुरत लगे वा घर की, पल पल नैनन पानी ।
ज्यों हिये पीर तीर सम सालत, कसक कसक कसकानी ॥१॥

रात दिवस मोहिं नींद न आवत, भावै अन्न न पानी ।
ऐसी पीर विरह तन भीतर, जागत रैन बिहानी ॥२॥
ऐसा वैद मिलै कोइ भेदी, देस विदेस पिछानी ।
तासों पीर कहूँ तनकेरी, फिर नहिं भरमों खानी ॥३॥
खोजत फिरों भेद वा घर को, कोई न करत बखानी ।
रैदास संत मिलै मोहि सतगुरू, दीन्हा सुरत सहदानी ॥४॥
मैं मिलि जाय पाय पिय अपना, तब मोरी पीर बुझानी ।
मीराँ खाक खलक सिर डारी, मैं अपना घर जानी ॥५॥

ज्ञान ११ (गुज०)

ए कहता जाजो, अमारा महियर नी वात-सद्गुरू कहता जाजो ।०॥
साधुड़ा ने जोइ रे तुलसी जी माळा-तिलक छाप तुलसी नी माळा
—सोहाये अमरापुर वाला ॥१॥
ए भवसागर मां भय घणेरो, नथी उतर्या नो आरो ।
मारा गुरू ने प्रेम जाइ कहेजो-आणां मोकलजो ने वहेलां ।२॥
बाइ मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण हरि चरणे चित राखो ।
संत शब्दों ने ओळखो ने प्रेम नो रस तमे चाखो ॥३॥

आनन्दोल्लास १२

आज मेरो भाग जागो साधू आये पावणा ॥०॥
अंग अंग फूल गये, तन की तपत गये ।
सद्गुरू लागे रामा, शब्द सुहावणा ॥१॥
नित्य प्रति नैणाँ निरखुं, आज अति मन में हरखूं ।
बाजत है ताल मृदंग, मधुर से गावणा ॥२॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, छबी देखी मन मोहे ।
मीरांबाई हरख निरख, आनंद बधामणा ॥३॥

ज्ञान   १३

गुंथ लावो ऐ सुरतां सेवरो, म्हारा साधु रां जोग ॥०॥
एक अचरज म्हां सुणियो, इण सरवरिया री पाळ ।
एक कमल दूजो केवडो, ज्यांरा फूल लवीजे (लीजे) ॥१॥
आज धराउँ दीसे धूँधलो, गेरोजी अंबर गाजे ।
मोटडीई बुन्दारो मेहो बरस्यो, बरस्यो है मूसल धारो ॥२॥
आज सतगुरू आसी पांवणा, डांवी आँख फरखे
गादी तकियां रा दीजो बैठणा, ज्यांरे चमर दुलीजे ॥३॥
हँस कर हाली नार, ज्यांरे पग नेवर बाजे ।
ठमक ठमक पगवा भरे, मुख परमेश्वर बोले ॥४॥
हालो ऐ पांचों बेनडयां, सतगुरू चोलो सिंवणे ।
आधो चोलो गुरू म्हारा सींवियो, आधो सिवियो नी जाय ॥५॥
डूंगर ऊपर डूंगरी, जण पर देवल पतीजे ।
देवल माहिला देवता, ज्यांरी सेवा करीजै ॥६॥
मीरॉं के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ चित दीजै ॥७॥

प्रेमालाप   १४

फूलां हंदी फूल माळा फूलां का बिछावणा ।
फूली फूली मैं फिरूँ म्हारा सतगुरू आया पावणा ।
आज तो आनंद भयो सतगुरू पावणा ॥०॥
सुरे गाय का दूध मंगावाँ, गुदळी खीर रंधावणा ।
खांड खीर का अमरत भोजन, साधां ने जीमावणा ॥१॥
हींगलु पाया को ढोलियो, रेसम बाण बणावणा ।
जींका ऊपर सतगुरू पोढ़े, पंखा बाव ढुलावणा ॥२॥
मथुराजी में कंस मारियो, लंकागढ़ में रावणा ।
बावन रूप धरचो मेरे दाता, बलि के द्वारे आवणा ॥३॥

जमुना के धोरे धोरे, गऊ का चरावणा ।
बाई मीराँ ने गिरधर मिलग्या, बंशी का बजावणा ॥४॥

ज्ञान १५

सुरता सवागण नार कुंवारी क्यूं रही ।
सतगुरू मिलिया नांय कुंवारी बीरा यूं रही ॥०॥
सतगुरू वेगि मिलाय छिन में सावा सोदिया ।
झटपट लगन लखाय ब्याव बेगो छेड़िया ॥१॥
अड़द सुड़द के बीच रतन चंवरी रची ।
हर हतलेवा जोड़ सुरत फेरा फरे ॥२॥
भाभल दीजो डाइजो रतन धन चार पदारथ प्रेम रा ।
गेणो म्हारे ज्ञान रो पैराव हार हर नाम रा ॥३॥
छोड़या छोड़या मामा मोसाल भुवा दूस बेनड़ी ।
छोड़यो म्हारी सहेल्यां रो साथ गुरां आगे जा खड़ी ॥४॥
परण परणाय घणा दिन रही म्हारा बाप रे ।
अब म्हूँ चढ़ गई ढोल बजाय घर चाली आपणे ॥५॥
भँवर गफा रे मांय पुरुष एक सार है ।
सत सत कह मीराँ दास वहीं भरतार है ॥६॥

प्रेम-लगन १६

लागन रा बोपार प्यारी करलो गुरां संग यारी ।
यारी हो कटारी मारी ॥०॥
प्रेम कटारी म्हारे अंगड़ा में बींदी बाला,
निकली कलेजा पार प्यारी, प्यारी हो कटारी० ॥१॥
काम काज म्हांने कछु न सुहावे बाला,
विरथा विघन कर डारी, डारी हो कटारी० ॥२॥
अनड़ो न भावे नैणा नींद न आवे बाला,
रात दिवस बिच जागी, जागी हो कटारी० ॥३॥

बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर बाला,
सांवरी सूरत पर वारी, वारी हो कटारी० ॥४॥

ज्ञान १७

नवां नवां चुड़ला पे'रो म्हारी सजनी नित उठ मंदिर जाती।
उस मंदिर में मेरा श्याम बिराजे नित उठ दरसण पाती ।
म्हारा जनम मरण रा साथी गुरांजी म्हें तो नहीं बोलां दिनराती ।०।
काई का दिवला काय की बतियाँ काई का तेल पुराती ।
कणी नाम से हुवा उजियाला कणी नाम से संजोती ॥१॥
तन का दिवला मन की बतियाँ प्रेम का तेल पुराती ।
सत वचना से हुवा उजियाला गुरू गम लेय संजोती ॥२॥
ओरां का पिउ परदेस बसत है लिख लिख भेजे पाती ।
मीराँ के प्रभु संग बसत है नित उठ दरसण पाती ॥३॥
नहीं म्हारे पीहर सासरो नाहीं सतगुरू पार लगाती ।
रँगमहल के बैठ झरोखे बोली मीराँ दासी ॥४॥

सत्संग १८

मनखा जनम पदारथ पायो, ऐसी बहुर न आती ॥०॥
अबके मोसर ज्ञान विचारो, रामनाम मुख गाती ।
सतगुरू मिलिया सुंज पिछाणी, ऐसा ब्रह्म मैं पाती ॥१॥
सगुरा सूरा अमृत पीवे, निगुरा प्यासा जाती ।
मगन भया मेरा मन सुख में, गोविंद का गुण गाती ॥२॥
साहब पाया आदि अनादि, नातर भव में जाती ।
मीराँ कहे इक आस आपकी, औराँ सूँ सकुचाती ॥३॥

ज्ञान १९

मीराँ होगई दिवानी, मैं कैसी करूं रे ॥०॥

अपने मंदिर में ढोलक बजावे,
ढोलक के नाद में राम नाम गावे ॥१॥
फूट गया कलसा बिखर गया पाणी,
उड़ गया हंसा ये काया बिरानी ॥२॥
हाट बजार में मीराँ की बानी,
सद्गुरू के चरणों में मीरांबाई राणी ॥३॥

निश्चय २०

कोई कछू कहे मन लागा रे ॥०॥
मीराँ तो संतो में मिल गयी, ज्यों सोने में सुहागा रे ॥१॥
मीराँजी तो ऐसी मिल गयी, ज्यों गुदड़ी में धागा रे ॥२॥
लोग कहे मीराँ बिगड़ चुकी है, वांका भरम वांने खागा रे ॥३॥
हंस की चाल हंस ही जाने, क्या जानेगा कागा रे ॥४॥
मीराँ तो सूती श्याम भवन में, सतगुरू आय जगागा रे ॥५॥
मानुष जन्म ले हरि नहीं गायो, काल उसको खागा रे ॥६॥
सतसंगत और राम भजन कर, जन्म जन्म भी भागा रे ॥७॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जन्म-मरण भव भागा रे ॥८॥

शरणागति २१

म्हाने संतां में रमती ने मती बरजो म्हारी माय ।
सतगुरू सरण में जास्याँ ॥०॥
राम नाम की जहाज बणास्याँ ।
में तो भवसागर तीर जास्याँ ए माय ।१
अड़सठ तीरथ गुरजी के चरणां ।
सड़सठ तीरथ न्हास्याँ ए माय ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर ।
म्हारे सतगुरू घणा दयालु ए माय ।३।

शरणागति २२

में तो रामजी रतन धन लास्याँ ये माँ,
गुरूजी रा चरणा में माँ जास्या ॥०॥
काम क्रोध विरोध ने तजस्याँ ये ।
में तो शील संतोष हृदय लास्याँ ये माँ ॥१॥
तन मन धन माता अर्पण करस्याँ ये ।
में तो मंहगी २ वस्तु मोलास्याँ ये माँ ॥२॥
राम नाम की जहाज बनास्याँ ।
भवसागर तर जास्याँ ये माँ ॥३॥
अड़सठ तीरथ माता गुरू चरणाँ में ।
में तो अरस परस गंगा न्हास्याँ ये माँ ॥४॥
कह बाई मीराँ प्रभु गिरधर नागर ।
में तो शीस नारेल चढास्याँ ये माँ ॥५॥

पदों के शब्दार्थ-भावार्थ-विशेषादि

३—पाठान्तर :—

मोहे लागी लटक गुरू चरनन की ।
गुरू चरनन की भव तरनन की ॥०॥
संत चरण बिन और न रुचे कछु ।
जुठ माया ये सब स्वप्नन की ॥१॥
संसार सागर सूक गया सब ।
फिकर मिटी है अब मरनन की ॥२॥
बाई मीरां कहे प्रभु गिरधर नागर ।
उलट भई मोरे नयनन की ॥३॥

४—सुख.........बुवाड्योजी=आनन्द का शीतल स्रोत बहा देना। कुरलाऊँ=व्यथित स्वर से पुकारती हूँ। खीना=खिन्न, क्षीण। भाण=सूर्य।

५—दीदार दिखाया=दर्शन दिये। सतगुरू.........धुन में=सद्गुरु ने कृपा करके परमात्मा-जीवात्मा में अभेद भाव की प्रतीति कराई, उस ज्ञान की धुन में ध्यान लगाया है।

७—खुमारी=नशे का मद। दामणी=बिजली। सतगुरू.........न्यारी हो=भिन्न-भिन्न देह में वर्तमान जीवात्मा वस्तुत: एक ही है और वह अलिप्त निर्द्वन्द्व और अविनाशी है, सद्गुरु ने ज्ञान के इस रहस्य का अनुभव करा कर भ्रम को मिटा दिया। जोऊँ=प्रज्वलित करूं। अगम=अगम्य। अटारी=शून्य-शिखर, भ्रकुटी महल।

९—भरमारी·········लगाय के=सद्गुरु ने हृदय में भगवद् विरह को जागृत कर ज्ञानरूपी बाण कस कर मारे। पावन·········जाना=जिससे कर्म करने में विरक्ति, सांसारिक बातों की ओर अनासक्ति तथा संसार के क्षणिक व प्रलोभनीय पदार्थों के प्रति निवृत्ति होगई। इस प्रकार चित्त वृत्तियों के निरोध हो जाने के रहस्य को किसी ने नहीं जाना।

१०—मीराँ·········असमानी=अपने ध्यान द्वारा अनन्त की ओर विहार करने की मीरांबाई के मन ने ठान ली हैं, अखण्ड आनन्दमयी सृष्टि में भ्रमण करने का मीरांबाई के मन में जँच गया है। जब·········पानी=परमात्मा की दिव्य लीलाओं के स्मरण से बार-बार नेत्रों में जल भर आया है। ज्यों·········कसकानी=उस अनन्त माधुर्यभरी उस अखण्ड प्रेममयी दिव्य निर्गुण सृष्टि का निरन्तर चिन्तन करते-करते अधीरता के कारण हृदय में रह-रह कर एक प्रकार की मीठी टीस उठ कर विकल बना देती हैं। ऐसा·········पिछानी=ऐसा कोई वैद्य अर्थात् सद्गुरु मिले जो शरीर के, ब्रह्माण्ड के और परम पुरुष की चिन्मय सृष्टि के भेदों का ज्ञाता हो और जो इहलौकिक तथा पारलौकिक साधन व कर्त्तव्यों का पूर्ण रूप से दिग्दर्शन कराने वाला तत्वज्ञानी हो। फिर·········खानी=जिससे भ्रम की खान रूप जन्म मरण का चक्र छूट जाय अथवा चौरासी का फेरा टल जाय। सहदानी=निशानी, चिह्न, संकेत। पीर बुझानी=व्यथा शान्त हो गयी। खाक·········डारी=संसार से विरक्त होगई। अपना·········जानी=परमपद को पहचान लिया=आनन्द स्वरूप को प्राप्त हो गई।

११—ए भव सागर·········आरो=इस दारुण भव सागर से पार उतरने का कोई उपाय नहीं। ए भवसागर·········वहेला=संसार के जीव मात्र की निर्माण परम्परा को ढूँढ़ते हुये अन्त में अनादि पुरुष परमात्मा तक सम्बन्ध जा पहुँचता है। इसलिये उस सकल प्राणीमात्र के उद्गम स्थान को मीरांबाई महियर के नाम से सम्बोधित करती है। और उस स्थान तक पहुँचाने के लिये सद्गुरु को आणा ले जाने के लिये साधु द्वारा सन्देश भेजती है अर्थात् सद्गुरु के उपदेश से-सत्संग से विवेक को प्राप्त होकर जीव निजानंद स्वरूप में स्थित हो जाय।

१३—सेवरो=सेहरा, पुष्पादि विनिर्मित मस्तक पर धारण करने का अलङ्कार विशेष। धराऊँ=उत्तर दिशा में। धूँधलो=अस्पष्ट। गेरोजी=गहरा। अम्बर=मेघ। मोटड़ीई=बड़ी-बड़ी। हाली=चली।

विशेषः—यह निर्गुण भाव का पद है। योगी सद्गुरु द्वारा योग साधन में दीक्षित साधक उनके निर्देशानुसार अपने साधन में उत्तरोत्तर प्रगति करता हुआ प्रत्याहार व धारणा के पश्चात् ध्यान साधन द्वारा समाधि के सन्निकट की स्थिति तक पहुँच गया है। इस अवसर पर सद्गुरु के शुभागमन की भनक सुनी जाती है, अर्थात् अविलंब आत्म साक्षात्कार अथवा भगवद् साक्षात्कार होने का आभास हो रहा है। इस परिस्थिति में सद्गुरु के पदार्पण करने पर उनके योग्य किस प्रकार उनका प्रयत्न पूर्वक भव्य स्वागत करना चाहिये सो मीरांबाई ने इस पद में बताया है। प्रकृति अपनी जीव सखी से अपने पुरुष (परमात्मा) के स्वागत के लिये अथवा जीवरूप साधिका अपनी सखी (सुरता) चित्तवृत्ति (जो भगवदाभिमुखी परमार्थ साधन में तत्पर है) से सद्गुरु (परमात्मा) के स्वागतार्थ आदेश करती है।

भावार्थः—गुंथ·········लबीजे (लीजे)=सर्व प्रथम वह सद्गुरु के योग्य एक ऐसा सेवरा गूँथ लाने को कहती है जो कमल और केवड़े के पुष्प लाकर बनाया गया हो। सद्गुरु का स्वागत करना क्या है, परमात्म-साक्षात्कार के लिये किये जाने वाला विधिक्रम-अथवा प्रक्रिया मात्र है। प्रभु-प्राप्ति पर आत्म निवेदन करने की साधना है। ज्यों भव सागर-भव नदी त्यों यह भव सरोवर। इस संसार रूप सरोवर की पालपर कमल और केवड़ा प्रफुल्लित हो रहे हैं। दोनों ही कादों-कीचड़ में उत्पन्न होते हैं। संसार में रह कर उससे अलिप्त रहना यह जल में रह कर जल से अलिप्त रहने वाले कमल के समान साधन है और चहुँ ओर तृष्णा और वासनाओं के बीच में रहकर भी प्रभु की ओर चित्तवृत्ति को अखंड लगाये रखने का यह साधन अपनी काया पर अनेकों सर्पों के लिपटे हुये होने पर भी अपनी ओर से सदा मधुर सुगंधि का प्रचार करने वाले केवड़े के समान है। वास्तव में यह आश्चर्य कारक और विलक्षण होने पर भी परमार्थ-साधन के लिये इसे अनिवार्य रूप

से अपनाने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं। आज धराऊँ.........
धारो=मेघावृत्त होने के कारण ज्यों उत्तर दिशा (लक्ष्य-स्थान) में स्वच्छ नहीं दिखाई पड़ता और पश्चात् गंभीर घन गर्जन के साथ मूसलाधार वर्षा होने पर तो आगे कुछ भी नहीं दिखाई देता त्यों नाद प्राप्ति होने के पश्चात् उत्तरोत्तर उसके विविध कर्ण प्रिय चमत्कारों का अनुभव करते करते अन्त में समाधि सिद्ध होने की पूर्वावस्था में जो मेघ गर्जना अथवा सिंह गर्जना के सदृश नाद सुनाई देता है उस समय चित्त एक ऐसी आनन्दमयी स्थिति में पहुँच जाता है कि जहाँ अविद्या जनित क्लेशों और द्वन्द्वों का नाम निशान तक नहीं। उपरोक्त साधन के परिपक्व होने पर किसी दिन अन्तस्तल में जब प्रभु कृपा का पूर्व संकेतानुभव होता है तब हृदय पुकार उठता है—आज सतगुरू.........ढुलीजे=मस्तिष्क के भीतर सुषुम्ना का जो कंदस्थान है उसके भी भीतर एक अति सूक्ष्म और कोमलातिकोमल स्थान है वहीं पर आत्म-साक्षात्कार परमात्म-साक्षात्कारादि का दिव्य अनुभव होता है। हंस कर.........बोले=जीवात्मा रूप साधिका प्राणों के साथ सोहं का उलटा जाप करती हुई आगे बढ़ती है और हालो.........नी जाय=अपने सतगुरु को चोला अर्पण करने के हेतु उसे सीने के लिये वह अपनी वृत्तियों रूप पाँच सखियों से सहायता लेती है ('वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टा क्लिष्टाः। व 'प्रमाण विपर्य्यय विकल्प निद्रा स्मृतयः') यो० सू० ४–५। परन्तु आधा ही चोला मात्र सो पाती है, शेषार्ध उनसे सीया नहीं जाता अर्थात् स्मृति और निद्रावृत्तियों का निरोध होने तक के बाह्य साधन के पश्चात् अन्तरंग सूक्ष्मतर साधन सिद्ध करने की प्रक्रिया अव्यक्त ही होती है। चोलासीना क्या है स्वयं अपने आपको परमात्मा के समर्पण करने योग्य बनाना है परन्तु आगे जीवात्मा को शनैः शनैः परमात्मा से अभेद भाव की प्रतीति होती जाती है। गुरु शिष्य-ईश्वर-जीव, परमात्मा-जीवात्मा का भेद भाव मिट जाने पर शिष्य का गुरु को भेंट करना कैसा। मेरूदंड के ऊपर मस्तिष्क के भीतर ब्रह्मरन्ध्र-शून्य महल में परमात्मा का अनुभव होता है उसी के लिये कहा है:—डूंगर ऊपर.........सेवा करीजै।

१४—फूलां हंदी=फूलों की। गुदली=लच्छेदार। हींगलु.........ढोलियो=लाल पाये का पलंग। बाण=निवार।

१५—**विशेषः**—जीव सद्गुरु द्वारा उपदिष्ट साधन को सिद्ध करके किस प्रकार प्रभु की प्राप्ति करता है, सुन्दर रूपक बांध कर यह भाव मीरांबाई ने बड़े ही मार्मिक ढङ्ग से इस पद में व्यक्त किया है।

भावार्थः—सुरता.........यू रही=मन का सुरता रूप सुहागिन नारी से प्रश्न है कि वह दीर्घकाल तक अविवाहित क्यों रही अर्थात् जो चित्तवृत्ति अब परमात्मा-साक्षात्कार का अनुभव कर रही है वह पहले दीर्घकाल तक भक्ति विहीन क्यों रही। इसके उत्तर में वह अपनी स्थिति को प्रकट करते हुए कहती है कि सांसारिक प्रपंच में फँसे रहने के कारण और योग्य अवसर पर साधन निष्णात सद्गुरु की प्राप्ति न होने से ही वह उस अवस्था में रही। सतगुरु.........छेड़िया=सद्गुरु की प्राप्ति होने पर उन्होंने सुमुहूर्त्त पर लग्न पत्रिका भेज कर विवाह समारंभ प्रारंभ कर दिया अर्थात् सद्गुरु की प्राप्ति होने पर उन्होंने अनुकूल संयोग में आवश्यक साधन सामग्री को जुटाकर यथा शीघ्र योग साधन का अभ्यास प्रारम्भ करा दिया। अड़द.........फरे=उबड़ खाबड़ भूमि को समतल बना कर उस पर सुन्दर रत्न जटित लग्न वेदिका बनाई गई जिस पर वर कन्या का पाणिग्रहण संस्कार होकर दोनों को फेरे फिराये गये अर्थात् वर्षों के संसारोन्मुख संस्कारों को यम नियम द्वारा क्षीण करते हुए, तथा शनैः शनैः आसन प्राणायाम द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को ऊर्द्ध्वमुखी बनाते हुए सुषुम्ना में प्राणशक्ति का संचार करा कर उसमें स्वतन्त्र रीति से विचरना सिखाया। भाभल.........नामरा=साधन करते करते जीव रूप पिता ने अपनी परिणित कन्या (चित्त वृत्ति) को दहेज में प्रेम से धर्म अर्थ काम व मोक्ष ये चार पदार्थ और ज्ञान वैराग्य हरि नामरूप रत्न धनादि बहुत आभूषण दिये अर्थात् सतगुरु के सत्संग और तन्निर्दिष्ट साधन के अभ्यास से ज्ञान वैराग्य के रहस्य को समझने की योग्यता प्राप्त हुई तथा प्रेम के चार पदार्थ-नाम (हरिनाम-प्रणव जप), रूप (दिव्य ज्योति का साक्षात्कार), लीला (नाद व प्रकाशादि सूक्ष्म सृष्टि के चमत्कार), और धाम (स्वरूप स्थिति) के रहस्यानुभव और विवेक की प्राप्ति हुई। छोड्या.........जाखड़ी=इस योग्यता को प्राप्त होने पर मन के भाव संस्कार व इन्द्रियादि सह-

कारिणी शक्तियाँ निस्सत्त्व हो जाती हैं। यहाँ तक कि सात्विक गुण में भी आसक्ति नहीं रह पाती और तब निज स्वरूप में स्थित चित्तवृत्ति परमात्म रूप सद्‌गुरु के सन्मुख होती है। परण.........आपणे=इस सबीज, सविचार और सविकल्प समाधि के सिद्ध होने के अनन्तर निरन्तर सूक्ष्म अभ्यास द्वारा चित्तवृत्ति निर्बीज, निर्विचार और निर्विकल्प समाधि को पा लेती है। भँवर.........भरतार है=ललाट चक्र के आगे ब्रह्मरंध्र में जहाँ परमात्मा का साक्षात्कार होता है वही एक मात्र योग साधक का लक्ष्य होता है। निर्बीज समाधि स्थिति को पा लेने पर ही जीव द्रष्टा के रूप को,—कैवल्यधाम को अर्थात् अपने आनंद स्वरूप को—पाता है। इस साधन की दो बार सत्य सत्य कह कर पुष्टि करती हुई मीरांबाई योगमार्ग की महिमा प्रकट करती है।

१६—यारी=प्रेम, लगन, श्रद्धा। कटारी मारी=सद्‌गुरु वचन रूप कटारी। प्रेम.........पार=सद्‌गुरु के उपदेश पूर्ण वचन बाण हृदय की गहराई तक पहुँच गये प्यारी=प्रिय, चुभने वाले होने पर भी गुरु वचन कल्याण कारी होने से वे इष्ट—प्रिय हैं।

१८—बहुरन आती=बारम्बार अवसर नहीं आता। मोसर=अवसर पर। विचारो=विचारा है, ज्ञान-पथ पर चलने का निश्चय किया है। सुंज पिछाणी=विवेक जागृति हुई, भेद-संकेत पालिया। निगुरा=गुरु का आश्रय न पाने वाले।

१६—फूट.........बिरानी=ज्यों कलश के फूटते ही जल बिखर जाता है त्यों जीवरूप हंस के उड़ जाते ही यह काया पराई-निरर्थक हो जाती है। हाट बजार में.........राणी=राणी मीरांबाई संसार में प्रकट रूप से घोषणा करती है कि उसने प्रभुरूप सद्‌गुरु के चरणों का आश्रय स्वीकार किया है।

२०—गुदड़ी=पुराने कपड़ों का बना बिछौना, कथरी। भरम=भ्रम। बांका.........खागारे=जिनके कर्म वे भोगेंगे (भ्रमवश निन्दा करने वाले)। हंस की.........कागारे=सात्विक=प्रकृति प्रभु भक्त को

भला तमोगुणी जीव कैसे जान सकता है। काल·········खागारे= जन्म वृथा चला जायगा।

२२—तन········मोलास्याँ=अपना तन-मन-धन-अर्पण करके बदले में सतगुरु-दर्शन, सत्संग व प्रभु-प्रेम आदि दुर्लभ वस्तुएँ पाउँगी। अड़सठ·········न्हास्याँ=अड़सठ तीर्थ सब गुरु के चरणों में हैं जिनके दर्शन, चरण-स्पर्श व सत्संग से ही गंगाजी नहाने का फल प्राप्त है। मैं तो···············चढास्याँ=अपने मस्तक रूप श्रीफल की भेंट चढ़ाऊँगी, आत्म-समर्पण करूँगी।

विभाग १२ नाम-माहात्म्य

अपने इष्टदेव परमात्मा वाचक नामों का स्मरण वाचा द्वारा करना, फिर श्वासों के साथ ध्यान द्वारा नाम जप करना जिसके परिणाम में यह भौतिक नाम रूपात्मक प्रपंच मिटकर भगवन्नाम का प्रभाव रोम रोम में समा जाता है। प्रभु प्राप्ति रूप मानव जीवन की सार्थकता के लिये यह प्रधान साधन है।

* भूमिका *

*

पुराणन को पार नहीं वेदन को अंत नहीं,
वाणी तो अपार कहाँ कहाँ चित्त दीजिये।
लाखन की एक कहूँ कहूँ एक क्रोरन की,
सब ही को सार एक राम नाम लीजिये ॥

=पढ़ने की हद समझ है समझण की हद ज्ञान।
ज्ञान की हद हरि नाम है यह सिद्धान्त उर आन ॥

=अनन्त शास्त्रं बहुलाश्च विद्या,
अल्पश्च कालो बहु विघ्नताच ।
यत्सार भूतं तदुपासनीयं,
हंसो यथा क्षीर मिवाम्बु मध्यात् ॥

'शास्त्र अनन्त है, विद्याएँ अनेक हैं, काल अल्प है और बाधाएँ बहुत सी हैं। इस परिस्थिति में जो सार तत्व है उसी की उपासना करनी चाहिये जिस प्रकार जल में से हंस केवल दुग्ध को ही ग्रहण करता है।'

विविध व्यवसाय, विद्या, कला तथा विज्ञानादि भौतिक ज्ञानोपार्जन एवं तत्सिद्धयर्थ भले ही मानव अपने जीवन में पूर्णतः प्रयत्नवान् बना रहे फिर भी वह कभी अन्त नहीं पा सकता। यही क्या केवल एक ही विद्या को पूर्ण रूपेण आत्मसात् कर तदनुसार आचरित करने के लिये भी यह मानव-जीवन अत्यल्प प्रतीत होता है। वास्तव में ही इस नाशवान् अपूर्ण संसार में मनुष्य प्राणी कितना क्षुद्र और कैसा परतंत्र है ! यहाँ पर किसी अनुभवी महापुरुष का यह कथन कितना यथार्थ और विचारणीय है:—

आलोड्य सर्वं शास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणो हरिः ॥

सब शास्त्रों को उलटा कर बार बार विचार करने पर यही सारभूत तत्व पाया कि नारायण-हरि ही एक मात्र ध्येय–उपासनीय हैं।'

उपरोक्त सार वस्तु भगवदुपासना के ध्येय को चाहे सगुण भक्ति की साधना से अथवा योग व ज्ञान की निर्गुण भक्ति की साधना से प्राप्त किया जाय, दोनों में नाम ही का प्रधान महत्व है और इसकी साधना अनिवार्य है। किसी महापुरुष का वचन कितना यथार्थ है:—

राम नाम को अंक है सब साधन है सून।
अंक गये कछु हाथ नहीं रहे साधन दश गून ॥

=नवधा भक्ति में भी प्रथम 'श्रवण' के पश्चात् (नाम) 'कीर्तन' और (नाम) 'स्मरण' भक्ति, यह भगवन्नाम का ही साधन है। देवर्षि नारद ने तो, 'नारदस्तु तदर्पिता खिलाचारता तद्विस्मरणे परम व्याकुलतेति ॥ (ना० भ० सू० १९) यह कह कर अखंड भगवत्स्मरण' को ही भक्ति का प्रधान लक्षण माना है। निर्गुण उपासना में प्रणव जप ही प्रधान साधन है, यथा 'तस्य वाचकः प्रणवः।' (यो० सू० २७) अर्थात् ईश्वर बोधक शब्द प्रणव है। एक मात्र प्रणव शब्द द्वारा ईश्वर-सम्बन्धीय सभी भावों का बोध होता है।' 'प्रणव' वह है जो नव से पर वा श्रेष्ठ है। नव शब्द से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन बुद्धि, अहंकार और जीव माने जाते हैं। श्री गीता के सातवें

अध्याय के ४ थे व ५ वे श्लोकों में यही सब परा और अपरा प्रकृति के नाम से वर्णित है। सम्पूर्ण संसार में जो कुछ है सो इन नव से भिन्न नहीं। सम्पूर्ण संसार से परे जो कुछ है वही प्रणव है—वही ईश्वर है।

श्री गीताजी में भगवान् 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' कहकर नाम जप की श्रेष्ठता प्रदान करते हैं। एक मात्र भगवन्नाम ही साधन है जो जीव को प्रारम्भिक से परावस्था तक ले जाता है।

श्री मद्भागवत में स्थान स्थान पर मुमुक्षु जनों के लिये भगवन्नाम–महिमा रूप कल्याण कारी मार्ग दर्शक स्तम्भ दिखाई पड़ते हैं यथाः—

एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम्।
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम्॥ (२।१।११)

परीक्षित्! पाप नाश और सांसारिक सुखों की प्राप्ति के लिये ही नहीं, जिन लोगों को संसार से वैराग्य हो गया है और जो निर्भय मोक्ष पद की प्राप्ति करना चाहते हैं, उन साधकों को तथा भगवत्प्राप्त सिद्ध योगियों को भी भगवान् श्री हरि के नामों का कीर्तन ही करना चाहिये। यही शास्त्रों का सार है।

अहोबत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या—
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥ (३।३३।७)

अहो! जिसकी जिह्वा पर आपका (भगवान् का) नाम विराजता है, वह चाण्डाल भी श्रेष्ठ है। जो भाग्यवान् पुरुष आपका नाम उच्चारण करते हैं उन्होंने तप यज्ञ, तीर्थ स्नान,

सदाचार का पालन और वेदों का अध्ययन–सब कुछ कर लिया। क्योंकि इन सब का परम फल 'नाम' जो उन्हें प्राप्त हो गया।

नाम सङ्कीर्तनं यस्य सर्वपाप प्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥ (१२।१३।२३)

जिन भगवान् का नाम संकीर्तन सारे पापों का नाश करता है और जिनको किया हुआ प्रणाम समस्त दुःखों को शान्त कर देता है, उन परमेश्वर श्री हरि को मैं नमस्कार करता हूँ।

कलियुग में नाम–माहात्म्य का विशेष महत्व बताते हुये श्री शुकदेव जी कहते हैः—

कलेर्दोषनिधेः राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्त संग परं व्रजेत्॥
कृतेयद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायांयंजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरि कीर्तनात्॥ (१२।३।५१।५२)

कलियुग यों तो दोषों का खजाना है, परन्तु उसमें एक बहुत बड़ा गुण यह है कि इसमें श्रीकृष्ण के नाम संकीर्तन मात्र से सारी आसक्तियाँ छूट जाती हैं और परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। सत्ययुग में ध्यान से, त्रेता में यज्ञों से, और द्वापर में पूजा-अर्चना से जो फल मिलता है वही कलियुग में केवल भगवन्नाम के कीर्तन से ही मिल जाता है।

भगवान् वेद्व्यास ने भी यही घोषणा की हैः

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौनास्त्यैव नास्त्यैव नास्त्यैव गतिरन्यथा॥

तथा

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना।
तत्फलं लभते सम्यक् कलौ केशव कीर्तनात्॥

भगवन्नाम यह मधुराति मधुर साधन है। उसका सुधा मधुर अनुभव भुक्त भोगी की वाणी में सुनियेः—

शेई के बा शुनाईल श्याम नाम।
कानेर भितर दिया मरमे पशिलगो,
आकुल करिल मोर प्राण ॥

ना जाने कतेक मधु श्याम-नाम आछेगो,
वदन छाड़िते नाहि पारे,
जपिते जपिते नाम अवश करिल गो,
अंगेर परशे किवा हय ॥

द्विज चण्डीदास

सखि ! यह श्याम नाम किसने सुनाया। यह कान के द्वारा मर्म स्थान में प्रवेश कर गया और इसने मेरे प्राणों को व्याकुल कर दिया। पता नहीं श्याम नाम में कितना माधुर्य है, इसे मुँह कभी छोड़ नहीं सकता। नाम जपते जपते इसने मुझे अवश कर दिया। सखि ! मैं अब उसे कैसे पाऊँगी। जिसके नाम ने मेरी यह दशा कर दी, उसके अङ्ग स्पर्श से तो पता नहीं क्या हो जायगा।

सभी शास्त्रों ने सभी सम्प्रदाय के आचार्यों ने तथा सभी प्रेमी संत-महात्माओं ने भगवन्नाम की एक मुख से महिमा गाई है यथाः—

—कहौं कहां लगी नाम बड़ाई।
राम न सकहि नाम गुण गाई ॥
कलजुग केवल नाम अधारा।
सुमिरि सुमिरि भव उतरहु पारा ॥
इहि कलि काल न साधन दूजा।
योग यज्ञ जप तप व्रत पूजा ॥

गोस्वामी तुलसीदास

=अपबल तपबल और बाहु बल
चौथा बल है दाम।
सूर किशोर कृपाते सब बल
हारे को हरिनाम ॥
सुन्योरी मैंने निर्बल के बल राम।

—(सूरदास)

=जब रामनाम कहि गावेगा तब भेद अभेद समावेगा।
जे सुख ह्वै या रस के परसे, सो सुख का कहि गावेगा।

—(रैदास)

= कहत कबीरा राम न जा मुख
ता मुख धूल परी
'जेहि घट नाम रह्यो भरपुर
तिनकी पग-पंकज हम धूर।'

—(कबीर)

='दादूनीको नाम है तीन लोक तत्सार'
नाम बिना किस काम की दाइ सम्पति सुकख

—(दादू)

='नाम घेतां वायां गेला, ऐसा कोणी ऐकिला।'

(हरिनाम लिया हुआ कभी निष्फल गया ऐसा भी क्या किसी ने सुना है ?)

—(समर्थ रामदास)

=नानक दुखिया सब संसारा।
सो सुखिया जिन नाम अधारा ॥

—(नानक)

मीरांबाई ने भी इस विभाग के पदों में केवल भगवन्नाम ही की महिमा गाई है। 'तत्प्राप्य तदेवावलोकयति, तदेव शृणोति तदेव भाषयति तदेव चिन्तयति।' (ना. भ. सू. ५५) के

अनुसार अपने प्रियतम के प्रेम-सुधा रस को पीकर छकी हुई मीरांबाई के मद भरे नेत्रों की, सर्वदा उसी मनमोहिनी छवि को निहारने की, कानों को वही-हृदय में अनेकों अनोखे भावों को जगाने वाली मुरली की तान सुनने की, जिह्वा को उन्हीं का मधुरातिमधुर नाम गाने और हृदय में निरन्तर एक मात्र उन्हीं के आनन्द स्वरूप का चिन्तन और स्मरण करने की बान पड़ गई थी। इस प्रकार उसके अंग-अंग में उछलती हुई पावन प्रेम की सुधा धारायें पदों का साकार रूप धारण कर भीतर से बाहर बह उठीं, जिनके प्रभाव से माया मोहादिक भ्रम में भूले भटके सहस्रों जीव तर गये और आज भी वह मुमुक्षु-भक्त-जीवों के लिये इस भव सागर में तरणी होकर वरदान रूप बनी हुई हैं। अस्तु।

इस विभाग के सं० ८ व १२ ये २ पद गुजराती भाषा के हैं। सं० २, १५, १८ और २० ये चार पद ज्ञान के हैं। और १, ३, ७, १३, १५, वे पदों में विशेष कर भगवन्नाम के प्रभाव तथा नामानुरागी व अनुभवी भक्तों के दृष्टांत दिये हैं, यथा—अजामिल, गणिका, गजराज, गौतम नारी, भीलनी, कुब्जा, प्रहलाद, भरत, गोपीचन्द, भर्तृहरि और गोरखनाथ आदि, आदि।

मीरांबाई ने किस आकर्षक, प्रभावशाली और सरल पद्धति से श्री भगवन्नाम-माहात्म्य गाया है सो तो पदों को देखते ही बन पड़ता है।

'नाम माहात्म्य' मीराँ की वाणी में

वेदों ने जिसकी महिमा गाई है ऐसा माहात्म्य जिस भगवन्नाम का है, गुरु की कृपा से मीराँ को उसकी प्राप्ति हुई—

(१) नाम महातम गुरू दियो सोइ वेद बखाणी हो।

भव बन्धन से छुड़ाने वाले इस भगवन्नाम रूप रत्न व धन की प्राप्ति पर वह डंके की चोट प्रकट करती है,—

(३) पायोजी म्हैं तो, राम रतन धन पायो।

शनैः शनैः नाम के साधन से नामी में (प्रभु में) चित्त-वृत्ति तन्मय होने लगती है। इस भगवन्नाम रूप खेती में बोये गये नाम-संस्कार रूप बीज से भगवद्भाव के सात्विक गुणों युक्त अमूल्य हीरे व मौक्तिक निपजते हैं—

(२०) राम नाम धन खेती मेरी सुरता प्रभु में रेती।
रामनाम का बीज पड़ा है निपजत हीरा मोती।

इस प्रकार 'सूत्रे मणिगणा इव' रस भरा नाम हृदय में बस जाता है–उसके प्रति पूर्ण प्रेम हो जाता है तभी जन्म-मरण का भय मिट जाता है—

(६) हरिनाम से नेह लाग्योरे। यो रसियो म्हारे मन में बसियो ज्युँ माला बिच तागो रे। जीवन मरण भय भागो रे।

हरिनाम बिना मानव जीवन शून्य है यथा—

(६) हरि नाम बिना नर ऐसा है, ज्यों जग में खोटा पैसा है। गुनिका घर पुत्र जैसा है।

भगवन्नाम मधुरातिमधुर है मानों सुधा रसास्वादन का सुख प्राप्त होता है—

(८ राम नाम साकर कटका, हांरे मुख आवे अमी रस घटका ।

भगवन्नाम का माहात्म्य अपार है। अलौकिक लाभ को प्राप्त करने वाला वह हरिनाम मीराँ की दृष्टि में--

(१७) माई म्हारे निरधन रो धन राम। विपति पड़्यां आवे काम ।

जो (२२) खरच्यो न खूटे चोर न लूटे ऐसो है हरिनाम। दिनदिन होत सवायो दोढ़ो अन्ते आवत काम ।

निज कल्याण के हेतु ऐसे शास्त्रोक्त व स्वानुभूत महिमा वाले भगवन्नाम को लेने के लिये मानव मात्र को मीराँ का यह उपदेश है—

(४) रामनाम रस पीजै मनुआँ। ताहिके रंग में भीजै।

(५) रामनाम जप लीजे प्राणी कोटि पाप कटैरे ।

(११) श्री राम नाम की हरिजस बूंटी भर भर प्याला पियां करो ।

(१२) बोल मां बोल मां बोल मां रे राधाकृष्ण बिना बीजूं बोल मां ।

(२४) संसार सागर भूंठो रे कोई रामनाम धन लूटो ।

११—नाम-माहात्म्य के पद

★

विश्वास   १

पिया तेरे नाम लुभाणी हो ।
नाम लेत तिरता सुण्या, जैसे पाहण पाणी हो ।।०।।
सुकिरत कोई ना कियो, बहु करम कुमाणी हो ।
    गणिका कीर पढ़ावतां, बैकुण्ठ बसाणी हो ।।१।।
अरध नाम कुँजर लियो, वाकी अवध घटाणी हो ।
    गरूड़ छाँड़ि हरि धाइया, पसु जूण मिटाणी हो ।।२।।
अजामील से ऊधरे, जम त्रास हटाणी हो ।
    पुत्र हेतु पदवी दई, जग सारे जाणी हो ।।३।।
नाम महातम गुरू दियो, सोइ वेद बखाणी हो ।
    मीराँ दासी रावली, अपणी कर जाणी हो ।।४।।

ज्ञान   २

राम नाम मेरे मन बसियो रसियो राम रिझाउँ ए माय ।
मैं मंदभागण करम अभागण कीरत कैसे गाउँ ए माय ।।१।।
बिरह पिंजर की बाड़ सखी री उठ कर जी हुलसाउँ ए माय ।
मन कूँ मार सजूँ सतगुरू सूँ दुरमत दूर गमाउँ ए माय ।।२।।
डंको नाम सुरत की डोरी कड़ियाँ प्रेम चढ़ाउँ ए माय ।
प्रेम को ढोल बण्यो अतिभारी मगन होय गुण गाउँ ए माय ।।३।।
तन करूँ ताल मन करूँ ढफली सोती सुरति जगाउँ ए माय ।
निरत करूँ मैं प्रीतम आगे तो प्रीतम पद पाउँ ए माय ।।४।।

मो अबला पर किरपा करज्यो गुण गोविन्द का गाउँ ए माय।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर रज चरणन की पाउँ ए माय ॥५॥

अमूल्यधन ३

पायो जी म्हें तो, राम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरू, किरपा कर अपनायो ॥०॥
जनम जनम की पूँजी पाई, जग में सभी खोवायो।
खरचै नहिं कोई चोर न लेवै, दिन दिन बढ़त सवायो ॥१॥
सत की नाव खेवटिया सतगुरू, भवसागर तर आयो।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरख हरख जस गायो ॥२॥

उपदेश ४

राम नाम रस पीजै मनुआँ, राम नाम रस पीजै ॥०॥
तज कुसंग सतसंग बैठ नित।
हरि चरचा सुनि लीजै ॥१॥
काम क्रोध मद लोभ मोह कूँ। बहा चित्त से दीजै ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। ताहि के रंग में भीजै ॥३॥

नाम-प्रभाव ५

मेरो मन रामहि राम रटै रे ॥०॥
राम नाम जप लीजे प्राणी। कोटिक पाप कटै रे ॥१॥
जनम जनम के खत जु पुराने। नामहि लेत फटै रे ॥२॥
कनक कटोरे इम्रत भरियो। पीवत कौन नटै रे ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु हरि अविनासी। तन मन ताहि पटै रे ॥४॥

उपदेश ६

हरि नाम बिना नर ऐसा है, ज्यों जग में खोटा पैसा है।
दीपक बिन मंदिर जैसा है ॥०॥

जैसे बिना पुरुष की नारी है, जैसे पुत्र बिना महतारी है।
जल बिना सरोवर जैसा है ॥हरि०॥१॥
जैसे शशी बिन रजनी सोई है, जैसे बिना निमक रसोई है।
घरधणी बिना घर जैसा है ॥हरि०॥२॥
ठुंठर बिन वृक्ष बनाया है, जैसे सूम संचरी माया है।
गुनिका घर पुत्र जैसा है ॥हरि० ॥३॥
मीरां बाइ कहे हरि में मिलना, जहाँ जन्म मरण की नहीं कलना।
बिन गुरु का चेला जैसा है ॥हरि०॥४॥

विनय ७

नामों की बलिहारी, गज गणिका तारी ॥०॥
गणिका तारी अजामील उद्धारी। तारी गौतम की नारी ॥१॥
जूठे बेर भीलनी के खाये। कुबजा नारी उद्धारी ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर। चरण कमल बलिहारी ॥३॥

उपदेश ८ (गुज०)

राम नाम साकर कटका, हांरे मुख आवे अमीरस घटका ॥०॥
हांरे जेने राम भजन प्रीत थोडी, तेनी जीभ लडी ल्योने तोडी॥१॥
हांरे जेणे रामतणा गुण गाया, तेणे जमना मार न खाया ॥२॥
हांरे गुण गाय छे मीरांबाई, तमे हरि चरणे जाओ धाई ॥३॥

निश्चय ९

हरि नाम से नेह लाग्यो रे, अब लाग्यो रे म्हारे
हरि नाम से नेह लाग्यो ॥०॥
यो रसियो म्हारे मन में बसियो। ज्यूँ माला बिच तागो रे ॥१॥
सबमें बसत सबहि से न्यारो। नहिं नेड़ो नहिं आगो रे ॥२॥
दासी मीराँ शरण श्याम की। जीवन मरण भय भागो रे ॥३॥

उपदेश १०

जपत क्यों नहीं हरिनाम ॥०॥
पांउ दिये तीरथ के तांई, हाथ दिये दे दान ॥१॥
दांत दिये मुख की शोभा को, जीभ दई भजि राम ॥२॥
नैन दिये निरखो राम को, कान दिये सुन ज्ञान ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ धर ध्यान ॥४॥

उपदेश ११

श्री राम नाम की हरि जस बूंटी भर भर प्याला पियां करो॥०॥
वणज करो व्यापार करो जी। बणज्यां वही भज्यां करो ॥१॥
कुसंगत कांटे की भारी। सत्संगत में जायां करो ॥२॥
भेरूं भोपा के संग मती जाजो। हरि के मन्दिर जायां करो ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर।
हरिके चरणां सीस नमायां करो ॥४॥

उपदेश १२ (गुज०)

बोल मां बोल मां बोल मां रे राधा कृष्ण विना बीजुं बोल मां॥०॥
साकर सेलडी नो स्वाद तजीने, कडवो लींबडो घोल मां रे ॥१॥
चांदा सूरज नु तेज तजी ने, आगिया संगाथे प्रीत जोड मां रे ॥२॥
हीरा माणेक जवेर तजी ने, कथीर संगाते मणि तोल मां रे ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, शरीर आप्यूं सम तोल मां रे ॥४॥

उपदेश १३

सबां ही मिल हरि हरि कहो नर नारी ॥०॥
हरि का भजन बिना कैसे उबरोगे, भवसागर यो भारी ॥१॥
इणी रे प्रहलाद पिता तज दीन्हो, भरत तज्यो महतारी ॥२॥
बाई मीराँ के प्रभु हरि अविनाशी, प्रभु के चरणाँ बलिहारी ॥३॥

विनय १४

मैं तो थांरे नाम भरोसे अविनासी ॥०॥
बानां की पत राख बिसरे मतजी । नहीं होवेला जद हाँसी ॥१॥
यो संसार काळ के फँद में । पड़ रह्यो मोह वाली फाँसी ॥२॥
जंतर जाणूं नहीं मंतर जाणूं नहीं । वेद पढ़े ना कासी ॥३॥
बाई मीराँ केवे हरि ने गिरधर नागर । मैं हूँ चरणों की दासी॥४॥

ज्ञान (नाम-मद) १५

मैं अमली हरि नाम का म्हांने बायड़ आवे ।
और अमल कई काम को चढ़न उतर जावे ॥०॥
यो मन मदवो मद में फिरे, गज हस्ती के दावे ।
दे अंकुश समझावियो, तोई यो मन भूल जावे ॥१॥
पनिहारी गागर ले चाले, सिर पर बोझ उठावे ।
दे ताली हँस बातां करे, तोई गागर भूल नहीं जावे ॥२॥
नट बादीगर वृत्त चढ़े, जग जोवन ने आवे ।
आसा लगी ज्यांरी बांस में, तोई डोरी भूल नहीं जावे ॥३॥
भूखा मन भोजन बसे, प्यासा मन पानी ।
माता मन बालक बसे, पल पल दूध पिलावे ॥४॥
अमल लियो गोपीचंद भरतरी, गुरू गोरख पावे ।
धन धन मां मेनांवती, पुत्र ने ज्ञान सिखावे ॥५॥
अमल लीनी मावा किया, डोढ़ा रंग चढ़ावे ।
अमल पुरै दीनानाथजी, यो जस मीराँ गावे ॥६॥

भक्ति-प्रभाव १६

ज्यो चित (मन) ल्याय हरि जप करै ।
अमर होय मरे न कबहूँ, काळ जासै डरै ॥०॥

भक्ति तो प्रहलाद कीनी, साँच उर में धरै ।
भक्ति के बस स्यामसुंदर, सिंह को वपु धरै ॥१॥
कोटि बैरी तृण बराबर, कहा वाको करै ।
ओट जिनकी नन्दनन्दन, कौन तासे अरै ॥२॥
भक्ति को परताप ऐसो, कुटिल गनिका तरै ।
दास मीराँ लाल गिरधर, शरण हरि की परै ॥३॥

हरि-नाम-धन १७

माई म्हारै निरधन रो धन राम ॥०॥
खाय न खूँटै चोर न लूटै, विपति पड्यां आवै काम ॥१॥
दिन दिन प्रीत सवाई दूणी, सुमरण आठों याम ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल विसराम ॥३॥

नाम-मद १८

मैं अमली हरिनांव की मुझि बाइडे आवै ।
पीया पियाला प्रेम का कुछि और न भावै ॥०॥
या तन की कूंडी करूं मन पोसत भेऊं ।
ग्यांन गलणीयां हाथिले इम्रत रस पीऊं ॥१॥
पीया जोगी भरथरी गुर गोरख पायो ।
धन माता मैणावती सुत पैं राज छुड़ायो ॥२॥
और अमल किस काम का, चढि उतर जावै ।
अमल करो इक नाम का, अमरापुर जावै ॥३॥
अमल किया मावा भया, सुष रैन बिहावै ।
अमलनु फल हरि पुरवै, जस मीराँ गावै ॥४॥

अमूल्य-धन १९

राम रतन धन पायो मैया, मैं तो राम रतन धन पायो ॥०॥

खरचे ना खूटे वाकूँ चोर न लूटे, दिन दिन होत सवायो ॥१॥
नीर न डूबै वाकूँ अग्नि न जाले, धरनी धायो न समायो ॥२॥
नाँव को नाँव भजन की बतियाँ, भवसागर से तारयो ॥३॥
मीराँ प्रभु गिरधूर के सरनें, चरण कमल चित लायो ॥४॥

ज्ञान   २०

राम नाम धन खेती मेरी सुरता प्रभु में रेती ॥०॥
एक साल मैंने खेती पाई गंगा जमुना रेती ।
राम नाम का बीज पडा है, निपजत हीरा मोती ॥१॥
प्राण अपान मिलाकर साधू करले नेती धोती ।
भृकुटि मंडल में हंस विराजे वहां दरशे एक जोती ॥२॥
सुरत निरत का बैल बनाया जब चाहै जब जोती ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरि के चरण पर प्रीती ॥३॥

दुर्लभ-हरि-नाम   २१

लेलो लेलो रे हरि नाम का लावा फेर न मिले ॥०॥
लेलो रे गोविन्द का लावा फेर न मिले ॥१॥
मूर्ख ने तो माला दी फेंकतो फरे ।
नुगरा ने तो ज्ञान दीदो केवतो फरे ॥२॥
माणक मोती लेन मूर्ख घटी दले ।
आछी तेरी मनखा देही भूत में पड़े ॥३॥
कस्तूरी ने लेन मूर्ख तेल में तले ।
बीछूड़ा ने झाड़ न जाणे नाग से अड़े ॥४॥
टोला में सू हरिण भागो खेत में पड़े ।
खेत को धणी आड़ो फरे फंद में पड़े ॥५॥
बाई मीराँ की वीनती हरि नाम से तरे ॥६॥

नाम-धन २२

कब सुमरोगे राम, अब तुम कब सुमरोगे राम ॥०॥
खरच्यो न खूटे, चोर न लूटे ऐसो है हरिनाम ॥१॥
दिन दिन होत सवायो दोढो, अंते आवत काम ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, दे दरसन को दाम ॥३॥

नामोपदेश २३

एक राम नाम हिरदा बीच राखो जब जागो जब लिया करो ॥०॥
राम नाम की खेती करलो ब्याज बदे सो भजा करो ॥१॥
राम नाम की प्रेम की बूंटी भर प्याला; पीया करो ॥२॥
कड़क बचन मुख से मती बोलो बन आवे सो भज्या करो ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणा चित धरचा करो ॥४॥

नाम धन २४

संसार सागर झूठो रे कोई राम नाम धन लूटो ॥०॥
राम नाम की लूट मची है सबही क्यूं नहि लूटो ।
अणी रे लूटयाँ सूं प्रेम घणेरो भरियो सागर फूटो रे ॥१॥
मन को मार इन्द्रियां जीते सो पहुँचे बैकुंठा ।
पांच चोर बसे मन मांही पेली उनको पहुँचो रे ॥२॥
अणी प्रभु की ऐसी रे माया जागे छे पण सूतो ।
माय बाप और कुटुम्ब कबीला यो जग सबही झूठो रे ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल रस लूटो रे.॥४॥

पदों के शब्दार्थ-भावार्थ-विशेषादि

★

२—पद-पाठान्तरः—राम नाम मारे मन बसिया।
विरह पीड़ की बात सखी री, कासूँ कहूँ समझाय ॥
तन करिताल मनकरि मरिदंग, सुण नहिं सुरति जगाऊँ।
सील सिंगार साज तन ऊपर, प्रभु के सन्मुख जाऊँ।
लोक लाज कुल संक निवारी, राम मिल्याँ सुख पाऊँ।
मीराँ के प्रभु तुम्हरे मिलनकूं, चरण कमल बलि जाऊँ।

अन्य पाठान्तरः—

मैं तो रसियो राम रिझाऊं ऐ माय, राम नाम मेरे मन बसियो ॥
विरह पंजर की बात सखीरी, कूंनसूं कहुं समझाऊ ऐ माय ॥
ममता मार मैं जाऊं सासरे, प्रेम मगन गुण गाऊँ ऐ माय ॥
यो तन को मैं ढोल मंढाऊं, कसणी फेर चढूँ ऐ माय ॥
ज्ञान को ढोल बजाय अति नीको, हरषि हरषि गुण गाऊँ ऐ माय ॥
तन कर ताल मन कर मोचंग, मैं सुति सूरत जगाऊँ ऐ माय ॥
सुरति नुरति सांई मैं राखूं, मै तब अमरापुर पाऊँ ऐ माय ॥
शील बरत शृंगार करूँ मैं, छापां तिलक बनाऊँ ए माय ॥
पगां घूंगरा रूमझुम बाजे मै, हरि आगे निरत कराऊँ ऐ माय ॥
मैं मंद भागिनि करम अभागिनि, कीरति किस विध गाऊँ ऐ माय ॥
मीराँकहै प्रभु हरि अविनाशी मै, संत जन चरण रज पाऊँ ए माय ॥

३—वस्तु अमोलक=भगवन्नाम। जनम..........सवायो= जन्मान्तरों के कर्म संस्कारों के अनुसार प्राप्त अनेकानेक साँसारिक सुख-साधनादि सब विषय नाशवान हैं परन्तु हरिनाम रूप धन में न कोई खर्च

करना पड़ता है, न उसे चोर चुरा पाते हैं न वह घटता ही है, अपितु प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है।

कबीर जी ने भी कहा है:—

कबीर सब जग निर्धना, धनवन्ता नहिं कोय।
धनवंता सो जाणिये, जाके राम नाम धन होय॥

५—तन.........पटै रे=तन और मन की उन्हीं से पटती है, तन और मन उन्हीं में रंग गया है।

विशेष:—कुछ ऐसा ही एक पद गो० तुलसीदास जी का भी सुना जाता है:—

हमारे मन रामहि राम रटे ॥०॥
अमरत भरीया रतन कटोरा, पीवत कौन नटे।
भाल तिलक तुलसी की माला, फेरत फंद कटे।
तुलसी-दास रघुबीर भजन से, यम के दूत हटे॥

विशेष:—शरीर के अंगों को भगवत भाव में स्थित करने के लिये संत कबीर भी यही उपदेश करते हैं:—

मत कर मोह तू, हरि भजन को मान रे।
नयन दिये दरसन करने को, स्रवन दिये सुन ज्ञान रे॥
बदन दिया हरिगन गाने को, हाथ दिये कर दान रे॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, कंचक निपजत खान रे।

१२—बोलमां..........बीजु बोलमां='राधा कृष्ण' इस भगवन्नाम के सिवाय मुख से और उच्चारण कुछ न करो। सेलड़ी=गन्ना, ईख। लींबड़ा=नीम। घोलमां=मत घोल, सेवन मत कर। आगिया जुगनू। कथीर=रांगा, धातु विशेष। तोलमां=मत तोल, तुलना मत कर।

विशेष:—हरिनाम माहात्म्य के साथ-साथ मीरांबाई ने इस पद में संसार की ओर से चित्त को हटा कर उसे भगवन्नाम में लगाने के लिये उपदेश किया है। एक ओर सांसारिक विषय हैं और दूसरी ओर भगवन्नाम। सांसारिक विषयों का भाव कड़वो लींबड़ो, आगिया और कथीर इन शब्दों द्वारा तथा भगवन्नाम का भाव साकर सेलड़ी, चाँदा, सूरज, हीरो, माणेक, जनेर इन शब्दों द्वारा व्यक्त किया है। शरीर.........तोल मां=यह मानव शरीर भव व्याधि से छुट कर प्रभु में मिल जाय उस प्रमाण में जीव को भक्ति करनी चाहिये।

अन्तिम कड़ी का पाठान्तर:—

बाईमीराँ के प्रभु गिरधर नागर ना गुण,
अमृत ढोळी ने विख घोळ मां रे ॥

ये दो चरण अधिक पाये जाते हैं:—

गंगा जमुनानुं नीर मुकीने, खाडा खबोचिया खोळ मां रे ॥
आम्रते वृत्तनी छाया छोड़ीने, थोरनुं थुलडुं ठोल मां रे ॥

१३—**विशेष:**—इस पद के २ चरण के ठीक यही भाव गो० श्री तुलसीदास जी अपनी विनय पत्रिका के पद में व्यक्त करते हैं:—'तज्यो पिता प्रहलाद विभीषण' इत्यादि।

१४—अमली=व्यसनी, प्रेमी। बायड़=नशे के लिये रह रह कर उठता हुआ चाव। वृत्त=रस्सी। पनिहारी.........डोरी.........नहीं जावे=ज्यों सिर पर घड़ा लिये पनिहारी ताली देकर हँस कर बातें करती हुई चलती है तब भी उसका लक्ष्य गागर पर ही रहता है और ज्यों अनेकों प्रेक्षकों के बीच नट डोरी पर चलता है फिर भी उसका लक्ष्य हाथ में लिये हुये बांस पर ही रहता है त्यों सांसारिक सब कार्य करते हुये भी हरिनाम के प्रेमी भगवन्नाम में ही अपना लक्ष्य बनाये रखते है। अमल.........किया=पूरे प्रमाण में अमल पान करने पर। डोढ़ा=ड्योढ़ा, अधिकाधिक।

विशेषः—हरिनाम का नशा ऐसा पक्का है कि और नशे जैसा कभी चढ़ता उतरता नहीं। यह चंचल मन, जो माया मोहादि के मद में हाथी जैसा मतवाला हो छका फिरता है और जो विवेक संयम आदि के अंकुश से भी वश नहीं हो पाता वह एक मात्र हरिनाम का नशा करके ही शान्त हो जाता है। एक बार जब इसका पूरा चस्का लग जाता है तब संसार व्यवहार के कार्य करते हुए भी वह निरन्तर हरिनाम में ही लगा रहता है। इस सारे पद में मीरांबाई ने यही भाव दृष्टान्तादि देकर बड़े ही सुन्दर ढंग से समझाया है। इस पद के दूसरे और तीसरे चरण पूर्ण रूप से कबीर जी के 'या विधी मन को लगावै।' इस पद की निम्न कड़ियों के समान-भावात्मक है:—

जैसे नटवा चढ़त बांस पर ढोलिया ढोल बजावै।
अपना बोझ धरे सिर उपर सुरति बरत पर लावै॥
जैसे कामिनी भरे कूप जल कर छोड़े बतरावै।
अपनो रंग सखी संग राचै सुरति गगर पर लावै॥

१६—वपु=शरीर।

१८—अमली=देखो पद १५।

१६—एक अधिक चरण मिलता है:—

सत संगत सद् गुरू की कृपा से, भाग्य बड़ो बनि आयो॥

२०—एक साल............हीरा मोती=निश्चित अवधि तक प्राणायाम द्वारा इड़ा पिंगला की समता साधने के समय अजपाजप द्वारा जो भगवन्नाम का बीज बोया जाता है वही अमूल्य धन, नर जन्म की सफलता का हेतु है। नेती धोती=योग साधन की क्रिया विशेष। प्राण ....धोती=नेती धोती और प्राणायामादि योगिक क्रियाओं द्वारा देह व चित्त की शुद्धि करना साधक का परम कर्त्तव्य है। देखो गीता, अध्याय ४, श्लोक २६ :—

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे ।
प्राणा पानगति रुद्ध्वा प्राणायाम परायणाः ॥

भावार्थः—(हे अर्जुन) और दूसरे योगीजन अपानवायु में प्राणवायु को हवन करते हैं, वैसे ही अन्य योगीजन प्राणवायु में अपानवायु को हवन करते हैं, तथा अन्य योगीजन प्राण और अपान की गति को रोक कर, प्राणायाम के परायण होते हैं । भृकुटि.........जोती=त्राटक साधन के (यौगिक-क्रिया विशेष) सध जाने पर साधक को जो ज्योति का साक्षात्कार होता है जिससे भी चित्त की स्थिरता होती है । कहा भी है :—

भृकुटि महल चढ़ देख पियारे जागे ज्योति अपारा ।
सोऽहं सोऽहं जपते जपते पहुँचो दश में द्वारा ॥

इसी भाव का एक सूत्र है 'विशोका वा ज्योतिष्मती' । (यो-सू-१-३६) 'शोक रहिता और ज्योतिवाली प्रवृत्ति भी मन की स्थिति को बाँधने वाली होती है' । सुरत.........जोती=ज्यों नाथे हुये बैल को चाहे जब अनायास काम में लाया जा सकता है त्यों ध्यान सिद्ध हो जाने पर चित्तवृत्ति चाहे जब प्रभु में लगाई जा सकती है ।

२१—लावा=लाभ, आनन्द । नुगराने=अविवेकी को (नगुरा=बिना गुरू का) । घटीदले=चक्की में पीसता है । विछूडाने.........अडे=विच्छू का विष उतारना न जानते हुए भी नाग को छेड़ने जाता है । खेत को.........पड़े=क्षेत्र के स्वामी द्वारा रोके जाने पर बन्धन में फँस जाता है ।

विशेषः—अविचार के कारण प्राणी की सांसारिक विषयों की ओर सहज ही प्रवृत्ति हुआ करती है जिससे वह भव बन्धन में फँसा रहता है । एक मात्र भगवन्नाम के माहात्म्य को समझकर तत्साधन द्वारा ही वह भव सागर से तर जाता है ।

४—भरियो............फूटोरे=संसार सागर फूट जाता है जिससे पार हो जाना अनायास हो जाता है। पाँच चोर=पंच तत्त्व जो शरीर के कारण रूप हैं। जागे छेरण सूतो=माया का प्रभाव ऐसा प्रबल होता है कि जिससे ज्ञानी पर भी अज्ञान का आवरण छा जाता है अथवा जाग्रतावस्था में सब दृश्य सत्य प्रतीत होते हैं परन्तु वास्तव में निद्रावस्था के स्वप्न समान वे सब मिथ्या हैं।

विभाग १३ होरी

अनुकूलता, प्रतिकूलता, सुविधा, वाधा, आशा, निराशा, विरह, मिलन, शोक व आनंद, उमंग, उत्साह व उदासी आदि सुख दुःखों के भावों का अनुभव प्राणिमात्र को अपने जीवन में करना ही पड़ता है। भक्त को भी भगवद् उपासना में प्रभु कृपा का आनंद वा प्रभु विरह की साधना का अनुभव अनिवार्य होता है। जीवात्मा की यह भिन्न भावोर्मियों की अथवा मनोवृत्तियों की प्रवृत्ति ही एक प्रकार से होरी का स्वरूप है।

* भूमिका *

*

फागुन लाग्यो सखी जबते,
तबते ब्रजमंडल धूम मच्यो है ।
नारि नवेली बचै नहिं एक,
विशेष इहैं सबै प्रेम अच्यो है ।।
सांझ-सकारे कहीं रसखान,
सुरंग गुलाल लै खेल रच्यो है ।
को सजनी निलजी न भई,
अरु कौन भटू जिहिं मान बच्यो है ।।

किसी भी राष्ट्र, देश, समाज व जाति की उन्नति-अवनति का स्तर अथवा वहाँ की धार्मिक व आध्यात्मिक परिस्थिति का परिचय वहाँ मनाये जाने वाले उत्सव, व्रत और पर्वों पर से मिलता है ।

विचार करने जैसी बात है जो हमारे पूर्वजों द्वारा किस विलक्षण बुद्धि-चातुर्य से उत्सव-पर्वादिकों का, उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक किस प्रकार समस्त देशव्यापी प्रचार हुआ कि परिणामतः एक प्रथा का रूप होकर सारे भारतवर्ष में इस निमित्त से लोक-संगठन व एकता आज भी दृष्टिगत होती है । बिना किसी प्रचार के ही लाखों संख्या में जनता कुम्भ के मेले पर उमड़ पड़ती है । रक्षा-बन्धन पर राखी (रक्षा-सूत्र) बांध कर परस्पर में पवित्र प्रेम-भावना प्रकट की जाती है । दीपावली में नगर-ग्राम व घर-घर में दीपकों को प्रकटाकर

ज्योति जाग्रत की जाती है और होली के पर्व पर चारों ओर वातावरण रंगीला बन जाता है। इसलिये ये सब राष्ट्रीय पर्व राष्ट्र के महोत्सव हैं। यही भारतीय संस्कृति का अमर इतिहास हैं। इनको मनाने से मानसिक दुर्बलता, खेद, परिश्रम व शिथिलता मिटकर, प्राचीन इतिहास व संस्कृति के संस्मरणों से नूतन प्रेरणाएँ पाकर जीवन उन्नति की ओर अग्रसर होता है।

वैसे तो भारतवर्ष में चार वर्णों के लिये रक्षा बन्धन, विजया-दशमी, दीपावली एवं होली—ये चार त्यौहार निश्चित किये गये हैं, फिर भी सभी वर्ण के लोग सभी त्यौहार पूर्ण उत्साह के साथ मनाते हैं। फिर होली का उत्सव तो सामाजिक, धार्मिक एवं मनोवैज्ञानिक आदि विविध दृष्टि से भी मनाने योग्य है।

संवतारम्भ और बसन्त के उपलक्ष्य में जो यज्ञ किया जाता है जिसमें अग्नि देवता की पूजा होती है, प्राचीन मान्यता के अनुसार यही "होलिका-दहन" का सर्व प्राथमिक स्वरूप है।

भक्त प्रहलाद तथा होलिका की पौराणिक कथा तो सर्वत्र प्रसिद्ध ही है। यही कथा होलिकोत्सव मनाने की प्रथा के मूल में विशेष प्रचलित है। प्रहलाद को मारने के अनेकानेक प्रयत्न जब विफल हुए तब हिरण्यकश्यपु के कहने से होलिका प्रह्लाद को अपनी गोद में लेकर अग्नि में बैठ गई। वैसे अग्नि में न जलने का उसे वरदान था परन्तु प्रभु पर अत्याचार करने के कारण वह तो जल गई और प्रह्लाद की रक्षा हुई। अनन्य भक्त की रक्षा होने के उपलक्ष्य में महोत्सव मनाने की प्रथा चल पड़ी। तब से आज भी यह महोत्सव सात्विक वृत्ति के लोग मंगलमय

उपकरणों द्वारा मनाते हैं, जब कि रजो-तमोगुणी अपने मन माने ढंग से।

विश्व के भिन्न देशों में यह होरी उत्सव किसी न किसी रूप से मनाया जाता है यथा अंग्रेज लोग अपने देश में April Fool मानते हैं।

प्राचीन काल में भारत में समय-समय पर भिन्न ऋतु-उत्सव मनाने की प्रथा थी यथा वसन्तोत्सव, शरदोत्सव आदि जिसमें वसन्तोत्सव-मदनोत्सव का अपना एक विशिष्ट स्थान होता था जो एक प्रकार से होलिका-उत्सव का ही रूप होता था। संस्कृत साहित्य में स्थान-स्थान पर इसके सम्बन्ध में पर्याप्त वर्णन देखने को मिलता है। शान्ति निकेतन में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लुप्त प्रायः-सी होती इस रसमयी प्रवृत्ति को फिर से सजीवित किया। काव्य-साहित्य रसिक समाज भी इन उत्सवों को किसी रूप से मनाया करता है और ऋतुराज के आगमन के उपलक्ष्य में तो अखिल जाति-वर्ण की जनता येन केन प्रकारेण उत्साह पूर्वक उत्सवानंद मनाया करती है।

फाल्गुन मास जैसी सुन्दर, रसमयी व सुहावनी ऋतु में जन-मानस उस प्राकृतिक आनन्द में डूबकर अपनी व्यथा व पीड़ा को भूल जाना चाहता है। इस ऋतु में प्राकृतिक सौन्दर्य पूरे बहार में होता है। वृक्षों पर कोमल लाल पल्लव और पलाश पर लाल फूल शोभित होते हैं, बगीचों में सुन्दर पुष्पों की मनोहर महक से वातावरण में मस्ती छा जाती है, आम के मौर पर मुग्ध हुई कोकिला की मधुर कुहुक जहाँ तहाँ सुनाई देती है, पीत वर्ण के गलीचे बिछे हों त्यों सरसों के खेतों का कैसा शोभा-

वैभव उपस्थित होता है, जलाशयों में कमल पुष्प पर भ्रमर गुंजारव करते हैं, और समशीतोष्ण वायु की मंद सुगन्ध व शीतल लहरें चित्त में आह्लाद उत्पन्न करती हैं। इन सरस दृश्यों का जन मानस पर अमोघ प्रभाव पड़ता है। मधुमास का यह नशीला आनन्द- सुधारस संसार के समस्त प्राणिय को, जड़-चैतन्य, गृहस्थी-विरक्त, बालक-वृद्ध, युवा नर-नारी आदि सबको हर्षोन्मत्त बना देता है और रोम-रोम में उमड़ता हुआ वह आनन्द और उत्साह किसी भी प्रकार बाहर छलकना चाहता है। इस प्रकार सर्वत्र मधुरता का साम्राज्य छाकर सबको नवजीवन प्राप्त होता है और प्रभु महिमा की अलौकिक झाँकी दिखाई देकर, 'ऋतुनां कुसुमाकरः' यह गीता-उक्ति सार्थक होती है।

होलिका उत्सव के उपलक्ष्य में लोग नाना प्रकार के रंग-राग करते हैं। अबीर-गुलाल उछालते और रंगों की पिचकारियाँ चलाते व परस्पर में रंग डालते हुए एवं होरी के गीत गाते हुए जहाँ-तहाँ जन समूह दिखाई देते हैं।

ज्यों भारत में विभिन्न प्रान्तों की, उत्सव विशेष के विशिष्ट रूप से मनाने के ढंग से प्रसिद्धि हो चुकी है, यथा महाराष्ट्र का गणेशोत्सव, बंगाल की दुर्गा पूजा, बम्बई की दीपावली त्यों ब्रज की और विशेष कर बरसाने की होरी बहुत प्रसिद्ध है। राजस्थान की होरी देखने जैसी होती है परन्तु वास्तव में ब्रज की होरी तो अपने ही ढंग की, एक अनोखे आकर्षण को लिये होती है। नर-नारी में उत्साह समाता नहीं, लोग जहाँ-तहाँ रसिया गाते-नृत्य करते, रंग भरी पिचकारियाँ चलाते हैं। ब्रज नारियाँ बड़े उमंग से लोक-गीत गाती हैं। यत्र तत्र श्री राधा-कृष्ण की

होरी-लीला का अभिनय किया जाता है। अधिकतर वैष्णव लोग इस होरी-उत्सव को ५००० वर्ष पूर्व की श्रीराधा व गोप-गोपियों के साथ की आनन्दमय स्वरूप श्रीकृष्ण की मधुर लीला की स्मृति के उपलक्ष्य में मनाते हैं। भक्त-कवियों ने ब्रजभाषा में 'होरी' पर बहुत सारा काव्य-साहित्य रच डाला है जो अपूर्व है। बरसाने की होरी तो आज भी हजारों रसिक-जनों का आकर्षण बनी हुई है। यह कोई साधारण नहीं, 'रंगीली होरी' कहलाती है। कन्हैया के रंग डालने के मनमाने ढंग पर किसी बरसाने की गोपी की यह झिड़की सुनकर ही रंगीली होरी की कुछ कल्पना की जा सकती है—

आन अबलान के समान जनि जानु मोहि,
हौं तो बरसाने की न तोसों नेक डरि हौं।
मेरे गाल लाल जो गुलाल से करोगे लाल,
तेरे गाल गुलचा लगाय लाल करि हौं।

इस विभाग में मीराँ के 'होरी के पद' संग्रहित हैं। अधिक-तर श्रीराधा-कृष्ण की होरी लीला पर हैं। प्रिय-मिलन प्रसंग के आनन्द भरे गीतों के साथ-साथ कुछ पद विरह के भी हैं। जिस नारी का प्रियतम पति होरी के उल्लास भरे दिनों में घर पर उसके पास न हो वह भला कैसे आनन्द मना सकती है! ऐसे समय में तो उसकी अनुपस्थिति और भी अधिक दुःख को उत्पन्न करती है और उसके साथ की पूर्व-मिलन स्मृति को अधिक तीव्र बनाती है। इन भावों के अतिरिक्त 'निगुर्णी' पद भी हैं जिनका भाव आत्मा-परमात्मा पर घटाया गया है।

इस विभाग के ३७, ४०, व ४५ ये तीन पद गुजराती भाषा के हैं।

सं० २ व १४ ये दो पद निर्गुणी भाव-ज्ञान के हैं।

'होरी' मीराँ की वाणी में

चराचर विश्व में जो विराट् प्रकृति की लीला होती है ज्ञान दृष्टि से वही निर्गुण 'होली' का व्यापक स्वरूप है। जैसे प्रस्तुत सगुण होली अनुकूल साधनों के अभाव में और प्रिय-वियोग में अरुचिकर होती है वैसे ही मानव जीवन की आत्मोन्नतिरूप निर्गुण होली भी सुख दुःख, अनुकूलता-प्रतिकूलता, राग-द्वेष, हर्ष-शोक आदि द्वंद्वों से असन्तोष जनक होती है। ऐसी परिस्थिति में शनैः शनैः मन को साधन द्वारा अनुकूल बनाकर ज्ञान-प्राप्ति द्वारा भगवद् साक्षात्कार के लक्ष्य तक पहुँचना पड़ता है अर्थात् उन ही बाधाओं को हटा कर जीव को अन्त में आनन्द स्वरूप आत्माराम-परमात्मा को प्राप्त होना पड़ता है। आत्मा-परमात्मा का यह मिलन ही होरी खेलना है। इसी प्रकार उपर्युक्त अन्तिम ध्येय की प्राप्ति पर्यन्त, प्राणि मात्र के मानस में रहे हुए शुभाशुभ भावों की उद्देश्य-पूर्त्ति के लिये जो-जो भी क्रियाएँ की जाती हैं, एक प्रकार से सभी होली के रूप हैं।

इस दृष्टि से मानव जीवन की कृतार्थता के लिये अर्थात् क्षणभंगुर यौवन काल को व्यर्थ न खोकर भगवद् भाव में स्थित होने के लिये मन को मीराँ उपदेश करती है—

(२) फागुन के दिन चार रे होरी खेल मना रे ॥

(१४) होरी खेलत चतर सुजाण (विवेकवान्) आतमा राम सूँ ॥

सगुण भाव से उपासना करने वाले भगवान के प्रेमी भक्त तो श्री राधाकृष्ण की होली-लीला के गुण गान करते हुए ब्रज-भाव में ही मग्न रहते हैं, यथा—

(२८) होरी खेलन कूँ आई राधा प्यारी, हाथ लिये पिचकारी ॥

(६) छैल छबीले नवल कान्ह संग, स्यामा प्राण पियारी। फागजु खेलत रसिक साँवरो बाढ़्यो रस ब्रज भारी ॥

जब कन्हैया ने होरी खेलते हुए बड़ी धूम मचाई तब राधा ने भी कमी नहीं की। लाला कन्हैया को गोपी बना कर ही छोड़ा—

(१५) व्रज में काना धूम मचाई। इतसे आई सुघर राधिका उतसे कुँवर कन्हाई। हिलमिल तो दोनों फाग रमत है। नक बेसर पहराय लालजी ने नाच नचाई ॥

इस प्रकार होरी का रंग जमा है—

(३७) वृन्दावन की कुंज मां, राधा मोहन खेले होरी हो। पिया प्यारी की बनी जोरी हो।

खेलते खेलते राधिका श्यामसुन्दर की ढीठता व नटखट-पन के लिये जैसे के साथ वैसा बनने की रसभरी चेतावनी देना भी चूकती नहीं—

(५) मत डारो पिचकारी। म्हारी सगरी भींज गई सारी। जिन डारो थिर ठाड़े रहियो, नहीं तो मैं देऊंगी गारी ॥

(२६) अँखियन में गुलाल न डारो लाल, होरी खेलूँगी तोर लार लार।

(३३) मारत मेरे नैन में पिचकारी, मैं तो ईं साँवरा जी सूँ हारी। नैन बचाकर डारो साँवरा, और बदन सब सारी ॥

(३४) मेरी चूनर भिंजोवै, भिजोउंगी पाग। जानन देउँगी आज। फैंट पकर के फगुवा ल्यौंगी, मुख मीडोँगी ब्रजराज ॥

(३८) फगुआ दिया बिना जाने न देऊँगी। हुँ मत जानो पिया भोरी हो ॥

अन्त में एक रहस्य भरी बात सुना देती है—

(४५) म्हारी मानो रे अहीर। भीजे सुरंग शरीर, पतपाड़ो छोजी लाखन में। मनड़ो लोभाणों भीणी भाँक में, अबीर उड़े छे म्हारी आँख में ॥

होली के उत्सव में अपने प्यारे यदि साथ में हैं तो आनंद का क्या ठिकाना ! परन्तु अपने प्यारे श्यामसुन्दर के वियोग में हताश हुई गोपी को यदि होली सूनी लगती है तो इसमें आश्चर्य ही क्या !

(७) घर आँगन न सुहावे। होली पिया बिन मोहि न भावे। सूनी सेज जहर ज्यूँ लागे। सिसक सिसक जिय जावे। नैण निंदरा नहीं आवे। वा बिरियाँ कद होसी मुझको, हरि हँस कंठ लगावे ॥

(८) होली पिया बिन लागे खारी। सूनी सेज अटारी। आयो बसंत कंथ घर नाहीं, तन में जर भया भारी। जनम जनम की मैं थारी। लगी दरसण की तारी ॥

(९) मैं किण संग खेलूँ होरी। तुम तो जाय विदेसाँ छाये मिलन की लग रही डोरी। रस बिन विरहन दोरी ॥

(१२) फागुन की ऋतु पियु घर नहीं है। तन मन झाल जलोरी। फाग में आग लगोरी। बिलखी फिरे राधा गोरी।

१३—होरी के पद

★

प्रार्थना १

हरि सों विनती करौं कर जोरी ॥

बरबस रचल धमारी, हम घर मातु पिता पारैं गारी ॥०॥

निपट अलप बुधि दीन गति थोरी ।

प्रेम मगन रस ले बरजोरी ॥

मीराँ के प्रभु सरण तिहारी ।

औचक आय मिलहुँ गिरधारी ॥१॥

ज्ञान २

फागुन के दिन चार रे, होरी खेल मना रे ॥०॥

बिन करताल पखावज बाजै, अणहद की झणकार रे ।

बिनि सुर राग छतीसूँ गावै, रोम रोम रणकार रे ॥१॥

सील सँतोख की केसर घोरी, प्रेम प्रीत पिचकार रे ।

उड़त गुलाल लाल भयो अंबर, बरसत रंग अपार रे ॥२॥

घट के सब पट खोल दिये हैं, लोक लाज सब डार रे ।

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल बलिहार रे ॥३॥

व्रजभाव ३

होरी खेलंन चलो बृजनारी, सखी नन्द पौर ठाडे हैं मुरारी ॥०॥

राधा चन्द्रभागा चन्द्रावली, भामा ललित सुशीले ।

शुभ सूचक सुवर्ण घट सिर धरि, अंग्र बोर बीच हीले ॥१॥

नये नये चीर कसुँभी सारी, भूषण बहु विधि सजिये ।

नागर केलि करन मोहन संग, नवल कान्ह प्रिय भजिये ॥२॥

चोवा चन्दन केसर अरगजा, उड़त गुलाल अबीर।
खेलत फाग नवल गोपी रँग, छिरकत श्याम शरीर ॥३॥
चंग मृदंग ढोल ढफ बहु विध, बाजत वेणु रसाल।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, नाचत दै दै ताल ॥४॥

उल्लास ४

रंग भरी रंग भरी रंग सूँ भरी री।
होली आई प्यारी रंग सूँ भरी री ॥०॥
उड़त गुलाल लाल भये बादल।
पिचकारिन की लगी झरी री ॥१॥
चोवा चन्दन और अरगजा।
केसर गागर भरी धरी री ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर।
चेरी होय पांयन में परी री ॥३॥

नटखटपन ५

मत डारो पिचकारी। म्हारी सगरी भिंज गई सारी ॥०॥
जिन डारो थिर ठाड़े रहियो। नहिं तो मैं देऊँगी गारी ॥१॥
लाल गुलाल उड़ावन लागे। तो मन में न बिचारी ॥२॥
भर पिचकारी मेरे मुख पर डारी। ढ़ीठ बने हो भारी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। चरण कमल बलिहारी ॥४॥

ब्रजभाव ६

होरी खेलत है गिरधारी ॥
मुरली चंग बजत डफ न्यारो, संग जुवती ब्रजनारी ॥०॥
चंदन केसर छिड़कत मोहन, अपने हाथ बिहारी।
भरि भरि मूठ गुलाल लाल, चहुँ देत सबन पै डारी ॥१॥

छैल छबीले नवल कान्ह संग, स्यामा प्राण पियारी ।
गावत चारु धमार राग तहँ, दै दै कल कर तारी ॥२॥
फाग जु खेलत रसिक साँवरो, बाढ्यो रस व्रज भारी ।
मीराँ कूँ प्रभु गिरधर मिलिया, मोहनलाल बिहारी ॥३॥

विरहभाव   ७

घर आँगण न सुहावे । होली पिया बिन मोहि न भावे ॥०॥
दीपक जोय कहा करूँ सजनी, पिय परदेश रहावे ।
सूनी सेज जहर ज्यूँ लागे, सिसक सिसक जिय जावे ॥
नैण निंदरा नहि आवे ॥१॥
कदकी ऊभी मैं मग जोऊँ, निसदिन बिरह सतावे ।
कहा कहूँ कछु कहत न आवे, हिवड़ो अति उकलावे ॥
हरि कब दरस दिखावे ॥२॥
ऐसो है कोई परम सनेही, तुरत सनेसो लावे ।
वा विरियाँ कद होसी मुझको, हरि हँस कँठ लगावे ॥
मीराँ मिलि होरी गावे ॥३॥

विरहभाव   ८

होली पिया बिन लागै खारी, सुनोरी सखी मोरी प्यारी ॥०॥
सूनो गाँव देस सब सूनो, सूनी सेज अटारी ।
सूनी विरहन पिव बिन डोलै, तज दइ पीव पियारी ।
भई हूँ या दुख कारी ॥१॥
देस विदेस सँदेस न पहुँचै, होय अँदेसा भारी ।
गिणताँ गिणताँ घस गइँ रेखा, आँगलियाँ की सारी ।
अजहूँ नहिं आये मुरारी ॥२॥

बाजत झाँझ मृदंग मुरलिया, बाज रही इकतारी।
आयो वसंत कंथ घर नाहीं, तन में जर भया भारी।
स्याम मन कहा विचारी ॥३॥
अब तो मेहर करो मुझ ऊपर, चित दे सुणो हमारी।
मीराँ के प्रभु मिलज्यो माधो, जनम जनम की मैं थारी।
लगी दरसण की तारी ॥४॥

विरहभाव ६

इक अरज सुणो पिय मोरी, मैं किण सँग खेलूँ होरी ॥०॥
तुम तो जाय विदेसाँ छाये, हमसे रहे चित चोरी।
तन आभूषण छोड़े सबही, तज दिये पाट पटोरी।
मिलन की लग रही डोरी ॥१॥
आप मिल्या बिन कल न पड़त है, त्यागे तलक तमोली।
मीराँ के प्रभु मिलज्यो माधो, सुणज्यो अरजी मोरी।
रस बिन बिरहन दोरी ॥२॥

व्रजभाव १०

झूलत राधा संग, गिरधर झूलत राधा संग ॥०॥
अबील गुलाल की धूम मचाइ, डारत पिचकारी रंग ॥१॥
लाल भयो वृंदावन जमना, केसर चुवत अनंग ॥२॥
नाचत ताल अधार सुन्दरी, बाजे ताल मृदंग ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागुण, चरण कमल बहे गंग ॥४॥

विरहभाव ११

किण सँग खेलूँ होली, पिया तज गये हैं अकेली ॥०॥
माणिक मोती सब हम छोड़े, गल में पहनी सेली।
भोजन भवन भलो नहिं लागै, पिया कारण भई गैली।
मुझे दूरी क्यूँ म्हेली ॥१॥

अब तुम प्रीत और से जोड़ी, हमसे करी क्यूँ पहिली ।
बहु दिन बीते अजहुँ नहिं आये, लग रही तालावेली ।
क्रिण बिलमाये हेली ॥२॥
स्याम बिना जिवड़ो मुरझावे, जैसे जल बिन बेली ।
मीराँ कूँ प्रभु दरसन दीज्यो, जनम जनम की चेली ।
दरसन बिन खड़ी दुहेली ॥३॥

ब्रजभाव-बिरह १२

साँवराजी ने कह दीज्यो मोरी ॥०॥
एक बन ढूँढ सकल बन ढूँढे ना मिले नंदकिशोरी ।
श्याम तुझे ढूँढूँ कुञ्जन में शीश जटा गल झोरी ।
श्याम सुध लीज्यो मोरी ॥१॥
फागन की ऋतु पियु घर नहीं है अब तो मैं क्या करूँरी ।
पियुजी बिना मोहि ऐसी लगत है, तन मन झाल जलोरी ।
फाग में आग लगोरी ॥२॥
भोजन भात सभी सुख त्याग्यो, खान पान बिसरोरी ।
भभूति रमाय जोगण होय बैठी, तेरो ही ध्यान धरूँरी ।
वेगा मिलो नंदकिशोरी ॥३॥
बन बन व्याकुल फिरत राधिका, लेख विधाता लिख्योरी ।
इतनी चूक कहा पड़ी मोंमें, प्रीत पाछली तोड़ी ।
श्याम बिना कैसे जियोंरी ॥४॥
जमुना किनारे फिरत राधिका, लै लै फूल हजारी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बिलखी फिरे राधा गोरी ।
सुरत लख भेजो तुम्हारी ॥५॥

व्रजभाव-गोपीभाव १३

स्याम म्हाँसूँ ऐंडो डोले हो, औरन सूँ खेलै धमाल।
म्हाँसूँ मुख हुँ न बोले हो, स्याम म्हाँसूँ ॥०॥
म्हाँरी गलियाँ नाँ फिरै, वाँके आँगण डोले, हो ॥१॥
म्हाँरी अँगुली ना छुवे, वाँकी बहियाँ मोरे, हो ॥२॥
म्हाँरो अँचरो ना छुवे, वाँको घूँघट खोले, हो ॥३॥
मीराँ के प्रभु साँवरो, रंग रसिया डोले, हो ॥४॥

ज्ञान १४

होरी खेलत चतुर सुजाण आतमाराम सूँ होरी ॥०॥
राजा खेले रीत भाँत से। प्रजा-खेले अजाण ॥१॥
पंडित खेले पोथी जो पाना। काजी खेले कुरान ॥२॥
पतिवरता पियु सँग खेले। वेश्या खेले अजाण ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। सत उतरे निजधाम ॥४॥

व्रजभाव-लीला १५

बृज में काना धूम मचाई। धूम मचाई ऐसी होरी रमाई ॥०॥
इतसे आई सुघड़ राधिका उतसे कँवर कन्हाई।
हिलमिल तो दोनों फाग रमत है, सब सखियाँ मन भाई।
सुघड़ घर बँटत बधाई ॥१॥
राधेजी सैन दई सखियन से झुँड-झुँड उठ आई।
रपट झपट कर पकड्यो श्याम ने, बैयाँ पकड़ ले जाई।
लालजी ने नाच नचाई ॥२॥
मुरली पीतांबर छीन लिया है सिर पर चुँदड़ी उढ़ाई।
बींदी तो भाल नैनाँ सोहे कजरो, नकबेसर पहराय।
लालजी ने नार बनाई ॥३॥

शेष हँसे मुख मोड़ मोड़ कर कहाँ जो गई चतुराई ।
कहाँ तो गया तेरा पिता वो नंदजी, कहाँ जसोदा माई ।
लाल थाने कोण छुड़ाई ॥४॥
हार चली चंद्रावल राधा जीत्या जदुपति राई ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मेवा से गोद भराई ।
नंद घर बँटत बधाई ॥५॥

ब्रजभाव नटखटपन　　　　　　१६

झाड़ तो लगायो ऐसो झाड़ लगायो ।
म्हाँसूं प्रेम को झाड़ लगायो ॥०॥
शूँडाँ की रेल पलेल सखीरी कुवे केशर कीच मचायो ।
अबीर गुलाल की उड़त पोटलियाँ, पिचकारयाँ झड़ लायो ।
बिरज सघलो रंग छायो ॥१॥
लहँगा सारी करयाजी बसंता, अंग रंग छड़कायो ।
अँगियाँ हमारी रंग से भींजोई, कंचन थाल संवारयो ।
कपुरन रोली लायो ॥२॥
ग्वाल बाल बलभद्र भीड़लियाँ बिगड़ नगर पर आयो ।
लाज लेत घूँघट पट खोले, विधना देख मलकायो ।
कारे वाँका दिल को चायो ॥३॥
ब्रज की सखी सब कहत परस्पर, राजयाँने घर आयो ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, नंदजी को छैल केवायो ।
हँस कर कण्ठ लगायो ॥४॥

ब्रजभाव-नटखटपन　　　　　　१७

एजी मुरारी सुणो गिरधारी । झपट्यो म्हारो चीर मुँरारी ॥०॥
सिर की गागरिआ झपट लई मूरख कई चतुराई ।

रेशम बंद बदन को छूटयो, झल रही कोर किनारी ।
देखे सब लोग अनारी ॥१॥
पाड़ पड़ोशण संग की सहेल्याँ विनती कर कर हारी ।
ऐसी सीख कहा दई कुबज्या, मानत नहीं गिरधारी ।
सहियाँ सगळी पचहारी ॥२॥
हार हटोक्यो चीर झटोक्यो, लड़ मोतियन की तोड़ी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, फगवा दिया भर झोरी ।
मोही सगळी ब्रजनारी ॥३॥

ब्रजभाव-नटखटपन १८

समझ डारोने पिचकारी, छैला भयोजी अनोखा खिलारी ॥०॥
बेर बेर तुझे क्या समझाऊँ, मानत नहिं गिरधारी ।
अबकी बेर रंग डार दियो है, अब डारोगा दूँगी गारी ।
अचानक मोरी बैंयाँ मरोरी ॥१॥
नार पराई गोकुल को बसवो, ऐसी न करिये मुरारी ।
तुम बालक हम बहुत सियानी, आप श्याम मैं तो गोरी ।
विधाता लेख लिख्योरी ॥२॥
कारा मोर कोकिला बोले, बोलत अमृत बानी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सुणो सरवण गति मोरी ।
अश्यो बर पायो किशोरी ॥३॥

ब्रजभाव-नटखटपन १९

साँवरो होरी खेल न जाने, खेल न जाने खेलाय न जाने ॥०॥
बनसे आवे धूम मचावे, भली बुरी नहीं जाणे ।
गोरस के मस सब रस चाखे, भोर ही आन जगावे ।
ऐसी रीत पर घर म्हाणे ॥१॥

कर कंकण कनक पिचकारी, भर पिचकारी ताणे ।
होरी को खेलैयो द्वारे ही ठाड़ो, अंग से अंग भडावे ।
दर्द दिल को नहीं जाणे ॥२॥

छैल छबीलो महाराज साँवरियो, दुहाई बाबा नंद की न माने ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, तट जमुना के टाँणे ।
मेरो दिल रह गयो ठिकाणे ॥३॥

ब्रजभाव-नटखटपन   २०

बावरी बन आई तुझे होरी कोन खिलाई ।
कोन खेलाई होरी कोन रमाई ॥०॥

सासुजी पूछे सुण म्हारी बहुअड़ तुझे होरी कोन खेलाई ।
मानत नहीं है जोबन को माती, अँगियाँ काँरे फड़ाई ।
चुँदड़ थारी कुण सरलाई ॥१॥

आज धेनू जो दोहावन मैं गई, बछवा लेकर आई ।
बिच में मिल गये छैल नंदजी के, वाँ म्हारी शरम गमाई ।
चुँदड़ म्हारी वाँ सरलाई ॥२॥

अध गोकुल अध मथुरा नगरी, अध बीच ख्याल बनाई ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, नंदजी को छैल कन्हाई ।
हँस कर कंठ लगाई ॥३॥

ब्रजभाव-राधाभाव   २१

होरी आईजी बालमजी के देश लख भेजूँ सनेसो होरी० ॥०॥
लख लख पतियाँ पिया संग भेजूं राधेजी वाली वेश ॥१॥
अंबवा पाक बहुरस भरिया और पाकी बडबोर ॥२॥
मीरांबाई के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणा चित मेल ॥३॥

व्रजभाव-रसिया २२

राधे राणी जी रे महलां रची ए होली, रची ए होली
रंग छोई ए गोरी ॥०॥

केशर भरियो अबीर वाटको झोली भरी गुलालन की ॥१॥
चुवा चुवा चंदन और अरगजा भोमि कसूमल छाय रही ॥२॥
मीरांबाई के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल छबि छाय रही ॥३॥

नटखटपन २३

होली काहे को खेलाई मेरी लाज लही, मेरी लाज लही ॥०॥
चुवा चन्दन और अरगजा झोली भरी रे गुलालन की ॥१॥
भर पिचकारी मोरे सनमुख डारी भींग गई म्हारी सारी तन की ॥२
अबीर गुलालाँ से बादल छायो केशर कीच मचाय रही ॥३॥
मीरांबाई के प्रभु गिरधर नागर तन मन तो पे वार रही ॥४॥

रसिया २४

ढफ काहे को बजायो मैं तो आवतडी, ओ मैं तो आवतडी ॥०॥
ढफ आवाज सुनी रे बागन में, फूलन की कलियां खील रही ॥१॥
ढफ आवाज सुनी रे महलन में, इन्द्र घटा घन छाय रही ॥२॥
चोवा चन्दन अबीर अरगजा, केशर कीच मचाय रही ॥३॥
भर पिचकारी मोरे सनमुख डारी, तनकी साडी मेरी भींज रही॥४॥
मीरांबाई के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित छाय रही ॥५॥

नटखटपन २५

ऐसे नटखट तूं ढीठ कन्हैया, रँग में भिंजोई वार वार ॥०॥
चोवा चंदन और अरगजा केशर को रंग डार डार ॥१॥
लपट झपट मोरी बैयां मरोडी अँगियाँ कर डारी तार तार ॥२॥
चंग बजावत गारी भी गावे बैठ कदम की डार डार ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल चित लार लार॥४॥

नटखटपन २६

अँखियन में गुलाल न डारो लाल। होरी खेलुँगी तोरी लार लार।०।
चोवा चन्दन अबीर अरगजा केशर को रंग डार डार ॥१॥
सास बुरी मेरी नणँद हठीली । सनमुख दे तोकूँ गार गार ॥२॥
गोरी गोरी बैंयाँ लाल चुडियाँ अँगियाँ को कर डारी तार तार।।३॥
बाई मीराँ के प्रभु प्रीतम प्यारा चरण कमल चित डार डार ॥४॥

व्रजभाव २७

होरी खेले किसन गिरिधारी ॥०॥
जमना के नीर तीर धेनु चरावत । खेलत राधा प्यारी ॥१॥
आलि कोरे गंगा ओली कोरे जमुना। बीच माँ राधा प्यारी ॥२॥
मोर मुकट पीतांबर शोभे । कुण्डल की छाबि न्यारी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । चरण कमल बलिहारी ॥४॥

व्रजभाव २८

होरी खेलन कूँ आई राधा प्यारी, हाथ लिये पिचकारी ॥०॥
कितना बरस के कुँवर कनैया, कितना बरस राधा प्यारी ॥
सात बरस के कुँवर कनैया, बारा बरस राधा प्यारी ॥१॥
अंगुलि पकड़ मेरो पोंच्यो पकड़्यो, बैंयाँ पकड़ झकझारी ।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, तुम जीते हम हारी ॥२॥

उमङ्ग २९

डारूँगी रंग डारूँगी रँग नाच नाच गिरिधारी ॥
सखी होरी आई मन भारी ॥०॥
नाच नाच कर मैं खेलूँगी प्रेम से भर पिचकारी ।
मोर मुकट पर केसर डारूँ मन कुंकुम हरि अंग पें मारूँ ।
प्रेम नयन से रूप देख मैं, जाउँगी बलिहारी ॥

गुलाल डारूँ चंद्रवदन पर धन्य होऊँ मैं चरणन छूकर ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर रंग दीजो मोही सारी ॥

उमङ्ग ३०

सखी खेलूँगी मैं होरी, श्री गिरधर नागर से ॥०॥
मैं प्रीतम को रंगाऊँ, आज प्रेम आदर से ॥
डारूँगी मन होरी रंग में, नाचूँगी मैं रंग रंग में ।
लिपट रहूँगी श्याम अंग के, गुलाल केसर से ॥
प्रीतम के सँग होरी गाऊँ, चरणन की रज माथ लगाऊँ ।
दासी मीराँ प्रीतम गिरधर, होवे जनम भर के ॥

ब्रजभाव ३१

कुंजबिहारी राधागोरी, नव निकुंज में खेलैं होरी ॥०॥
भरि भरि अरगजा लई कमोरी ।
छिरकत झकझोरी झकझोरी ॥१॥
अबीर गुलाल उडावत होरी ।
डफ दुंदुभी बाजत थोरी थोरी ॥२॥
पहुप पराग लिये भरि झोरी ।
पिय पर डारति हँसि मुख मोरी ॥३॥
आँखि आँजि सिर गूथत मोरी ।
झूमत गावत अंचल जोरी ॥४॥
मीराँ प्रभु रस सिंधु झकोरी ।
नवलहि गिरधर नवल किशोरी ॥५॥

ब्रजभाव ३२

चंचल चवैया री आली, यशोदा को लाल देखो ॥०॥
हौं दधि बेचन जात रही ब्रज, नाहक रार मचाई ।
मेरी चेरी मेरे चेरे की चेरी, ऐसे नाँच नँचाई ॥१॥

हमरे संग की दूर निकस गई, मोहन बइयाँ मरोरी ।
सास ननदिया रिसावेंगी मोसों, मुख मल दीनी रोरी ॥२॥
मैं तो हूं बरसाने की ग्वालिन, तुम हलधर के वीर ।
मीराँ के प्रभु फगुवा लीन्हों, मोहन श्याम शरीर ॥३॥

व्रजभाव   ३३

मारत मेरे नैन में पिचकारी, मैं तो ईं साँवराजी सूँ हारी ॥०॥
नैन बचा कर डारो सांवरा, और बदन सब सारी ।
भर पिचकारी गोरा मुख पर मारी, भींज गई सब सारी ॥१॥
रतन कटोरा में केशर कोरी, हाथ लिये पिचकारी ।
अबके तो रङ्ग डार दियो है, अबके डारो दूँगी गारी ॥२॥
घर मेरा दूर गागर सिर भारी, मैं नाजुक पनिहारी ।
पनघट घाट छाँड दे कनैया, बोभयाँ मरे थारी प्यारी ॥३॥
वृन्दावन की कुञ्जगलिन में, भीड भइ अति भारी ।
मैं तो साँवरा ने पाई अकेली, चूर मूर कर कर डारी ॥४॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, कुंडल की छबि न्यारी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, तुम जीते हम हारी ॥५॥

व्रजभाव   ३४

मेरी चूनर भिजोवै भिजोऊंगी पाग ॥०॥
नंदर महरनी को कुँवर कन्हैया, जान न देऊँगी (मैं) आज ॥१॥
फैंट पकर के फगुवा ल्यौंगी, मुख मीँडोँगी व्रजराज ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सदा रहौ सिरताज ॥३॥

व्रजभाव   ३५

साँवरो होरी खेलन आयो, आयो ॥०॥
नंद गाँव से संग सखाले, बरसाने में ध्यायो ।

इतसे निकसी कुँवरि राधिका, सखियन साज बनायो ॥
मानो सखी भाव न आयो ॥१॥
ताल पखावज मृदँग बाजे, मेघन ज्यूँ घररायो ।
दादुर मोर पपैया बोले, मोहन डौर लगयो ॥
सखी जाने सावन आयो ॥२॥
उड़त गुलाल अरुण भये अम्बर, अबीरन घटा घन छायो ।
दामिनि ज्यूँ दमके सब गोपी, पिचकारिन कर ल्यायो ॥
केशर को कीच मचायो ॥३॥
ब्रजमंडल में फाग रच्यो है, सखियन मोद बढ़ायो ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, केशर रंग करायो ॥
सखी मन आनँद छायो ॥४॥

ब्रजभाव ३६

ऐसी चतुर ब्रजनार, पीया संग खेले होरी ॥०॥
नवरंग उड़त गुलाल, सुगंधो केशर गोरी ।
राधे से परशत श्याम, श्याम सें राधे गोरी ॥१॥
उडत अबील गुलाल, केशर की भरी कटोरी ।
राधे चली मुखमोड़, श्याम मेरी बैयां मरोरी ॥२॥
जैसे बने नंदलाल, तेसी बनी राधे गोरी ।
मीरांबाई बल जाय, अविचल रहौ ये जोडी ॥३॥

राधा-भाव (ब्रजभाव) ९७ (गुज०)

होरी रमे राधा गोरी । राधा गोरीसी नवल किशोरी हो ॥०॥
हनी हो नौतम ओंढ्यां,ओढणां पेहेर्यां चीर चरणों ने चोली हो ।१
हनी हों चुवा चंदन घोळीआं, केसर चंदन छीकत गोरी हो ॥२॥
हनी हो हाथमां थाल कनकतणा, कुमकुम लीधां गोरी हो ॥३॥

हनी हो वृंदावन की कुंज मां, राधा मोहन खेले होरी हो ॥४॥
हनी हो मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, पिया प्यारी की बनी
जोरी हो ॥५॥

प्रेम ३८

खेलन दो रंग होरी हो रसिया ॥०॥
काळ गुलाल भरयो अंखियन में।
हजुना भई पिया कोरी हो ॥१॥
उडत गुलाल लाल भये बादुल।
केसर गागेर ढोरी हो ॥२॥
फगुआ दिया बिना जाने न दऊँगी।
हुं मत जानो पिया भोरी हो ॥३॥
मीरांबाई कहे प्रभु गिरधर नागर।
फगुआ दिया भर जोरी हो ॥४॥

प्रेम ३९

होरी खेलन दे रे होरी खेलन दे।
मेरी आछी नणदिआं हो हो होरी ॥०॥
जोई कहोगे तुम जोई कहोगे। सोई सुनेगी हां हां।
ऐसे फागुन में। रस लेरी नणदियाँ हो हो ॥१॥
सास लडेगी मेरे सास लडेगी। मेरी खीज पडेगी हां हां।
मेरो दीअरियो मेरो दीअरियो। गांडी गेरी नणदियां, हो हो ॥२॥
मीरांबाई कहे प्रभु गिरधर नागर हां हां,
हरि चरण कमल चीत लेरी नणदियां हो हो ॥३॥

व्रजभाव ४० (गुज०)

चालो सखी वृंदावन जईए, मोहन खेले होरी ॥०॥
सरखी सयांणी तेव तेवडी। मळी छे भंमर भोळी ॥१॥

चुवा चंदन और अगरजा । गुलाल लीए भर झोरी ॥२॥
मीरांबाई के प्रभु गिरधर नागुण । मिली भावत टोली ॥३।

विरह (ब्रजभाव) ४१

हाथ मटकियां रंग की भरी रे, पिया की बाट जोऊं
कबकी खरी रे ॥०॥
भांत भांत को भेस बनायो,
पियाजी आवे मोरे कबकी घरी रे ॥१॥
घाट बाट बृंदावन ढूंढ्यो, ढूंढ लई गोकुल नगरी रे ॥२॥
अबीर गुलाल की धूम मची है, पिय कारण की
लागी झरीरे ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, पिया बिन होरी जावो जरीरे ॥४॥

वियोग ४२

बिन दरसन महाराज, होरी मैं ना खेलूंगी ॥०॥
सब सखियन मिल फाग रमत है, मोकुं आवत लाज ॥१॥
गोरी गोरी भोरी सब मिल टोरी, फाग बंधावन काज ॥२॥
बाजत ताल मृदंग मधुर धुन, झंझर होत अवाज ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, बांह गह्या की लाज ॥४॥

ब्रजभाव ४३

जिते सुघर सकल त्रिभुवन के प्यारी तिं राग अलाप्यो टोरी ॥०॥
तान तरंगिनी को भेद पाये रसीक लालन संगि
खेलत होरी ॥१॥
रस के गीधे सुर ठठ कीनो एही रस सिध करत झकझोरी ।
मीराँ प्रभु गिरधर रस क्रीडत मन मथ कोज
धरम द्वार छोरी ॥२॥

रसिया   ४४

रंग चुवेरे रंग लाल तेरे नैनन में ओ आपरा नैनन में ॥०॥
अगर कुंकुम महल छंटाऊँ फूलन सेज बनाई सजनी ॥१॥
चुवा चुवा चंदन अतर अरगजा केशर कीच मचायो
सजनी ॥२॥
मीराँ बाई के प्रभु गिरधर नागर वेग पधारो मेरे महलों में ॥३॥

नटखटपन (व्रजभाव)   ४५

म्हारी मानो रे अहीर म्हारी मानो रे अहीर अबीर उड़े म्हारी
आँख में ॥०॥
हा हा करूँ पैयाँ परूँ रे छेला डारो मा नीर ।
मार्ग में न बोलिये रे धरिये मन धीर ॥१॥
पिचकारी डारो कुबान करी छेल, रंग बरसावो छो लालजी ।
भीजे सुरंग शरीर पत पाडो छोजी लाखन में ॥२॥
छाने खेंचो म्हारो चीर अबीर उडे छे म्हारी आँख में ।
देखे नणदी रा बीर आवो जमुना तीर ॥३॥
मनडो लोभाणो भीणी भाँक में अबीर उड़े छे म्हारी आँख में ।
मीराँ के प्रभु गिरधर लाल हरि चरणां लवलीन ॥४॥

राधाभाव (व्रजभाव)   ४६

सांवरिया के संग, रंग में कैसे होली खेलूंगी ॥०॥
कोरो कोरो माट भरायो जामे घोरे रंग ।
भर पिचकारी तन पर मारी अंगिया होगई तंग ॥१॥
ताल मृदंग भांझ ढफ बाजत और बाजत मृदंग ।
सांवरिया की बंशी बाजी सुनकर हो गई तंग ॥२॥

एक तो आई राधा प्यारी गोविंदा लिये सङ्ग ।
ग्वाल बाल लिये कृष्णजी सोहे मीराँ के आनंद ॥३॥

ब्रजभाव ४७

गेरा करलो बलदाउजी भांग पाणी गेरा करलो ॥०॥
वृन्दा तो बन की कुंज गलियन में, भांग मिरचं की
मौजमानी ॥१॥
चोबा चन्दन और अरगजा, केशर कीच मच्या भारी ॥२॥
अबीर गुलाल से बादल छायो, भूम कझूमल भई भारी ॥३॥
मीराँ बाई के प्रभु गिरधर नागर, आनन्द उर न
समायो भारी ॥४॥

पदों के शब्दार्थ-भावार्थ-विशेषादि

★

१—बरबस=बल पूर्वक। रचल धमारी=फाग खेलते समय रंग से रेल पेल कर देना। पारे गारी=गाली देते-उलाहना देते हैं।

२—**विशेष:**—यह निर्गुण भाव का पद है। प्राणी मात्र के घट-घट में अपने-अपने गुण-धर्मानुसार भिन्न-भिन्न भावों और समस्त इन्द्रियों के व्यापारों के रूप में बाहर और अभ्यन्तर किस प्रकार की होली खेली जा रही है और किस प्रकार खेलने से यह दुर्लभ नर जन्म सफल होता है, मीरांबाई ने यह रहस्य इस पद में व्यक्त किया है।

भावार्थ:—फागन.........मनारे=फाग खेलने के दिन ज्यों देखते-देखते बीत जाते हैं त्यों मानव जीवन में युवावस्था के दिन भी अति चंचल क्षण भंगुर होते हैं इसलिये हे मन, देह में शक्ति शेष है तब तक इस प्रकार की होली खेल ले (ऐसी साधना करले) कि यह जन्म सार्थक हो जाय। बिन करताल.........रणकार रे=काया की अनंत नाड़ियो में रक्त व प्राण संचार होते हुए, अनायास जो झँकार होता है, (कानों में अंगुलि डालने से कुछ सुनाई देता है) वही अनाहत नाद है, हे मन! चित्त को एकाग्र करने वाले उस नाद में प्रभु का ध्यान करते समय अपने को लय कर दो। सील.........अपार रे=शील और संतोषादि सद्गुण रूपी केशर को घोल कर, भगवत्प्रेम व भावों की पिचकारियों द्वारा, उस रंग को खेलते व गुलाल उछालते हुए ऐसी धूमधाम मचा दो कि समस्त गगन मंडल राग-रंजित हो जाय अर्थात् यह मानव-जीवन सात्विक और भगवद्-रंग में रंग जाय। घट के.........डार रे=लोक लाज को छोड़ कर वह साधन करो, जिससे शरीर की सब इन्द्रियाँ भगवदाभिमुखी हो जाय।

विशेष:—महात्मा कबीरजी ने भी उपर्युक्त भावों का संकेत करते हुए कहा है:—

बिन बाजा झनकार उठै जहँ समुझि परै जब ध्यान धरै।

१४—सत………निज धाम="सत्यमेव जयते नानृतम्"।

विशेष:—संसार में सभी प्राणियों को अपने वर्ण, आश्रम, धर्म, विचार, बुद्धि, संस्कार व अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति के अनुसार अपने अपने कर्त्तव्य क्षेत्र में जूझना पड़ता है। इसी नित्य संघर्ष रूप होली को लक्ष्य करके इस पद में भाव निर्दिष्ट हैं।

१६—शूँडाँ की………मच्यो=केशर तथा टेसू फूलों के रंगों की रेल-पेल होगई।

३२—चवैवा=चुगलखोर, निन्दा फैलाने वाला। नाहक=व्यर्थ। रार मचाई=झगड़ा किया। फगुवा……… शरीर=फाग के उपहार में साक्षात् श्यामसुन्दर को पा लिया।

४०—सखी=समान स्वभाव वाली। सयांणी वय: प्राप्ता, चतुर। तेव तेवड़ी=समान वयस्का। टोली=समुदाय।

४३—जिते………टोरी=त्रिभुवन की जो भी सब सुन्दर हैं उनमें जो प्यारी है (राधा) वह तोड़ी रागिनी अलापने लगी। तान……होरी=तान-आलापादि संगीत कला भेद प्रवीण रसिक शिरोमणि कृष्ण के साथ होरी खेलने लगीं। रसके………झोरी=रस के परम अनुरागी उनके स्वर-तालादि संगीत से ऐसा समा बंध गया मानो रस का सागर उमड़ कर हिलोरें लेने लगा हो। रस………छोरी=नीति-मर्यादा के बंधन को तोड़ कर साक्षात् कामदेव प्रकट हो गया हो त्यों रस-क्रीड़ा करने लगें।

४७—गेरा………करलो=फागोत्सव में अधिक रंग लाने के लिये भंग-अमल आदि नशा-प्राशी करने की कहीं कहीं प्रथा है अथवा बसंतोत्सव को सफल बनाने के लिए प्रेम-विनोद रूप नशे की भी आवश्यकता होती है। भांग………मीजमानी=प्रेम-क्रीड़ा, हँसी-विनोद एवं उत्साह-उमंग आदि भावों रूप भोज का आयोजन किया गया।

विभाग १४ जोगी

प्राणीमात्र में स्वतन्त्रता व आनन्द का अभाव है। किसी भी साधन द्वारा इस अभाव की निवृत्ति करने का ही नाम योग है। परमात्मा के समान निर्लिप्त, निर्द्वन्द्व एवं अविचल होना ही योगी का आदर्श है। योगी वही जोगी है। भक्त भी जोगी होता है।

* भूमिका *

★

=योगीश्वरं शिवं वन्दे वन्दे योगेश्वरं हरिम् ।।

=तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपिमतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ।।

योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है और शास्त्र के ज्ञान वालों से भी श्रेष्ठ माना गया है तथा सकाम कर्म करने वालों से भी श्रेष्ठ है, इससे हे अर्जुन ! तू योगी हो ।

=योगीनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते योमां समे युक्त तमोमतः ।।

सम्पूर्ण योगियों में जो श्रद्धावान् योगी मेरे में लगे हुए अन्तरात्मा से मेरे को निरन्तर भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है ।

(गीता अ० ६, श्लो० ४६-४७)

'योग' शब्द संस्कृत के 'युज्' धातु से बना है (युज्यतेऽसौयोगः) जिसका अर्थ जोड़ना, सम्बन्ध करना, मिलाना आदि होता है, अथवा यों कहा जाय कि किसी में किसी प्रकार का जो अभाव है, उसकी निवृत्ति को योग कहते हैं । अभाव अनेक प्रकार के हैं इसलिये योग भी अनेक प्रकार के हैं । परन्तु प्राणीमात्र में प्रधानतः आनन्द व स्वतन्त्रता का अभाव होता है अतएव इसकी निवृत्ति के साधन को 'योग' कहते हैं अर्थात् परमात्मा सर्व तंत्र,

स्वतन्त्र और आनन्द स्वरूप होने से जीवात्मा-परमात्मा की एकता वा मिलने की प्रक्रिया को योग कहते हैं। योग का साधन करने वाला ही 'योगी' (जोगी) है।

योग शास्त्र का माहात्म्य अपार है। वेद-शास्त्र, उपनिषद् व पुराणादि में भी इसकी बहुत कुछ महिमा गाई गई है। साक्षात् योगेश्वर श्रीकृष्णचंद्र मुख निर्गत श्री गीता जी में तो यत्र-तत्र योग का ही समर्थन देखने को मिलता है। इसीलिये अध्याय की समाप्ति में 'ब्रह्म विद्यायां योग शास्त्रे' कहा जाता है। वास्तव में यह सर्व सम्प्रदाय मान्य, सर्व सम्मत और सर्व प्रिय है। श्रीमद्‌भागवत और वेदान्त दर्शनकार भगवान् वेद-व्यासजी ने तो योग-सूत्रों पर योग-भाष्य लिखकर योग के प्रति अपनी रुचि व सम्मति प्रकट की है।

सब शास्त्रों से पातंजल योग शास्त्र की एक विशिष्टता है। महर्षि पतंजलि की यह बड़ी ही अद्भुत रचना है। कल्पना व भावना के आधार पर इसकी नींव न होकर, अपने चरम ध्येय तक की साधन की प्रणाली प्रत्यक्ष अनुभव गम्य है। कहीं टटोलना नहीं पड़ता। मनोवैज्ञानिक ढंग पर अंतर्मानस का विश्लेषण कर सिद्धान्त पूवक उसे सूत्र बद्ध किया है।

योग दर्शन के तत्वों को जान लेने के बाद फिर कुछ जानने को बाकी नहीं रह जाता जैसा कि 'यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्य ज्ज्ञातव्यमवशिष्यते' (जिसको जान लेने पर फिर नया जानने को कुछ शेष नहीं रहता।)

स्वरूपतः मन के गुण धर्म, संकल्प-विकल्प शक्ति कैसी क्या है, हठधर्मी करने वाले मन को नियंत्रण में किस प्रकार

लाया जाता है, जिससे प्रकृति के अनेकानेक रहस्य भरे तत्वों को समझ लेने की क्षमता प्राप्त हो जाती है, योग दर्शन ने भली भाँति समझा दिया है।

किसी भी धर्म संप्रदाय का व्यक्ति हो, नास्तिक हो या आस्तिक, योगदर्शन का द्वार सबके लिये खुला है। जो जन्म लेकर भव बन्धन में आया है उसे उससे मुक्त होने का भी अधिकार है, योग का यही सिद्धान्त है।

ऐहिक धन वैभव कोई मानव जीवन का लक्ष्य नहीं। जिसका यह लक्ष्य है वह कदापि आध्यात्मिक क्षेत्र में उन्नति नहीं कर पाता। इच्छा व स्वार्थ के कारण जीव संसार में उलझा रहता है। यही अज्ञान का कारण है। योग-साधन द्वारा प्रकृति व मन पर अधिकार पाने पर ही आध्यात्मिक सामर्थ्य प्राप्त होता है। सब ओर से मुँह मोड़कर चित्त की अविचलता सिद्ध होने पर ही आत्मा-परमात्मा का समत्व अर्थात् आत्मबल की अक्षय निधि प्राप्त होती है। इसके आगे सिद्धियों का कोई मूल्य नहीं।

अपने मन को निश्चल एवं शांत बनाकर तथा अनात्म पदार्थों की ओर से अनासक्त होकर आत्मा का साक्षात्कार करना यही योग का उद्देश्य है। योग के आठ अंग हैं, यथा-- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि। जैसे जैसे साधक योगाङ्गों का आदर पूर्वक अनुष्ठान करता है वैसे वैसे उसके चित्त की मलिनता का क्षय होता है और ज्ञान की उत्कृष्टता बढ़ती जाती है,। अष्टांग योग में ही- मंत्रयोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, हठयोग, लययोग, भक्तियोग,

ध्यान योग एवं समाधि योग आदि योगों का समावेश हो जाता है। योग साधन से प्राप्त होने वाली सिद्धियों व चमत्कारों का मोह न रखते हुए, उसे और आगे ही आगे प्रगति करते हुए एवं बीच में ही न रुकते हुए आगे बढ़ते रहना चाहिये।

योग पथ पर आरुढ़ होने वाले को अथवा योग साधन सिद्ध को ही 'योगी' यह संज्ञा दी जाती है। योगी का ही अपभ्रंश 'जोगी' है। 'जोगी' इस शब्द का सम्बन्ध नाथ संप्रदाय से माना जाता है। और नाथ संप्रदाय की परम्परा भगवान् शंकर से मानी जाती है। मंत्र–तंत्रादि शास्त्र सभी शिवजी को परम आश्रय मानकर चलते हैं, इसलिये ये 'आदिनाथ' कहलाते हैं। कहते हैं कि इन्होंने सर्व प्रथम पार्वती के आगे रहस्यपूर्ण योग-तत्व को प्रकट किया था। महाराष्ट्र के सिद्ध-प्रसिद्ध संत निवृत्तिनाथ महान् योगी थे। संत ज्ञानेश्वर को उन्हीं से दीक्षा मिली थी। अपनी 'ज्ञानेश्वरी' नामक श्रीगीता के टीका ग्रंथ में ज्ञानेश्वरजी ने अपनी गुरु-परम्परा के प्रति इस प्रकार निर्देश किया है—(१) आदिनाथ (२) मत्स्येन्द्रनाथ (३) गोरखनाथ, (४) गहनीनाथ, (५) निवृत्तिनाथ, (६) ज्ञानेश्वर।

११ वीं शताब्दी में गोरखनाथ काल माना जाता है। तभी से हिन्दी में नाथ संप्रदाय द्वारा योग सम्बन्धी साहित्य की रचना होने लगी।

योग-साहित्य की रचना संस्कृत में तो बहुत प्राचीन काल से पर्याप्त मात्रा में हुई है एवं थोड़ी बहुत नाथ संप्रदाय द्वारा भी हुई। हिन्दी भाषा में भक्ति के साहित्य में सगुण और

निर्गुण धारा बहती आई, जिनमें निर्गुण धारा तो किसी सीमा तक योग तत्वों से ही मिली जुली है। निर्गुण भाव का साहित्य तो बनता रहा पर केवल शुद्ध योग पर साहित्य विशेष नहीं बन सका। श्री रामानन्द के शिष्य कबीर ने निर्गुण सृष्टि में स्वतंत्र रूप से विचरते हुए अपनी मस्ती में निर्गुण साहित्य बना डाला जो उनकी वाणी के रूप में अमर है। संत रैदास व दादूजी का साहित्य भी बहुत सा निर्गुण भाव पर है।

सारांश कि मीराँ के समय के पहले से ही इसी साहित्य का प्रबल प्रचार था जिसका प्रभाव मीराँ के पदों पर भी पड़े बिना नहीं रहा। परन्तु कृष्ण प्रेम में पगली—पूर्व जन्म की ब्रज गोपिका–मीराँ जीवन भर सगुण उपासना में ही रत रही। इसलिये सगुण भक्ति साहित्य रचना ही प्रधान रूप से उसकी बनी रही। भक्त कवि जयदेव की राधाकृष्ण की प्रेमाभक्ति के नशे का रंग उसके भावों पर चढ़ा था। उसकी भक्ति में भी यह सामर्थ्य रहा कि नाथ पंथी संतों के चमत्कार के समान प्रभाव का संसार ने अनुभव किया—साक्षात्कार किया।

महर्षि पतंजलि ने ईश्वर की व्याख्या की है,—'क्लेश कर्म विपाकाशयै रपरामृष्टः पुरुष विशेषः ईश्वर :' (१ समाधिपाद् सू० २४)। जन्म-मरण मूलक वासना संस्कारों से जो रहित ईश्वर है वही परमात्मा मीराँ का 'जोगी' है, और वही निर्मोही, निर्लेप और निसङ्ग है। उसके हृदय में निर्गुणी भाव में रमते समय उस समय के धार्मिक वातावरण के प्रभाव के कारण इसी रमते जोगी का ध्यान था। इसलिये उसने जोगी के उपकरण—सेली, शृंगी, खप्पर, भस्म, कुडंल, जटा, कंथा,

भगवावेष, मृगछाला, मुद्रा और अलख आदि शब्दों का अपने पदों में उल्लेख किया है। परन्तु सगुण भाव से तो उसमें योगेश्वर श्रीकृष्ण को ही 'जोगी' के रूप में देखा। क्योंकि वही श्यामसुंदर जोगी का भी भेष लेकर श्रीराधा व मीराँ के पास जाया-आया करते थे। और मीराँ भी जोगी के पीछे महल, वैभव और अपने सर्वस्व को तिलांजलि देकर जोगिन-वैरागिन बन चुकी थी। उसके पदों में भी यही भाव व्यक्त है। उसके प्रियतम होने पर भी जोगी-योगी-योगेश्वर-श्री कृष्ण भगवान् तो अनासक्त और निर्द्वन्द्व है तभी तो जीवन भर उनके दर्शन के लिये तरसती-तड़पती व रोती रही, तब कहीं जाकर उनकी उस पर कृपा हुई।

मीराँ के इस पद-विभाग में जोगी के ही पद हैं जो विशेष कर परमात्मा और उसके प्रियतम श्री कृष्ण को लक्ष्य करके ही बनाये हैं। जिस प्रकार 'सद्गुरु-महिमा' के अधिकतर पदों में ईश्वर को लक्ष्य करके ही गुरु भाव व्यक्त किया है त्यों इस जोगी विभाग में भी परमात्मा को लक्ष्य करके ही जोगी भाव पदों में व्यक्त किया है। यह कहा जा सकता है कि मीराँ का निर्गुण भाव—रहस्यवाद, गुरु, सतगुरु और जोगी भाव के पदों में ही विशेष रूप से झलकता है। वैसे और भावों के पदों में भी कहीं कहीं है। इन पदों में भाव साम्यता देखी जाती है। सद्गुरु और जोगी दोनों भावों के पदों में रहस्य भरा है। अपने सद्-गुरु व जोगी के विरह में व्याकुल होना, दर्शन व मिलन की उत्कंठा, तथा दासी व जोगिन-वैरागिनी होने का भाव है। सद्गुरु व जोगी सम्बन्धी पदों में निर्गुण भाव से ईश्वर को पुकार है, प्रार्थना है।

=इस विभाग के १२, २५ (मिश्र) ये २ पद गुजराती भाषा के हैं।

=सं० १३ व २६ ये २ पद ज्ञान के–निगुर्णी भाव के हैं।

'जोगी' मीराँ की वाणी में

अखिल ब्रह्माण्ड में एक मात्र सर्वव्यापी सत् चित् आनन्द स्वरूप परमात्मा ही व्याप्त है। वह निर्लेप, निसंग है, इसलिये वह साधु और जोगी है क्योंकि यह विरक्त का स्वभाव होता है यथा––

(२६) निरंजन बन में साधु अखेला राम रमता ॥

परन्तु वह स्थूल इन्द्रियों के अनुभव का विषय नहीं। वेदादि भी 'नेति नेति' कह गये, उसके रहस्य को भला कौन समझ सकता है—

(१) तेरो मरम नहिं पायो रे जोगी ॥

अपने आनन्दस्वरूप परमात्म अंश से बिछड़ा हुआ जीव, पुनः उस परम आनन्द रूप में तद्रूप होने को स्वाभाविक रूप से व्याकुल हो जाता है, परन्तु जोगी के दर्शन भी ऐसे सुलभ कहाँ? बीच में कितना अंतर, कितनी बाधाएँ! वह कहाँ, यह कहाँ—

(१८) जोगिया जी छाइरह्या परदेस। जब का बिछड़्या फेर न मिलिया, बहोरि न दियो संदेस ॥

(२३) जोगियारे तु कबहु मिलेगो मोंकु आय। तेरे कारण जोग लियो है घर घर अलख जगाय। मिलकर तपत बुझाय ॥

इस प्रकार जोगी से प्रेम करना क्या एक दुःख मोल लेना है। भला जो भूल जाय वह हित चिंतक मित्र कैसा—

(४) जोगियारी प्रीतड़ी है दुख डारो मूल। हिलमिल बात बणावत मीठी, पीछे जावत भूल ॥

(५) जोगिया से प्रीत कियाँ दुख होई, जोगी मिंत न कोई ॥

जोगी से कोई सुख की आशा भी तो नहीं। क्या विश्वास की प्रेम को निभायेगा ? अधबीच में छोड़ जाने वाले का क्या भरोसा ? यह क्या मित्रता का लक्षण है ?—

(७) मैं तो जाणुँ जोगी संग चलेगा, छोड़ गया अधबीच।

आत न दीसे जात न दीसे, जोगी किसका मीत ॥

(१४) जावा देरी जावादे जोगी किसका मीत। बोलत बचन मधुर अति प्यारे, जोरत नाहीं प्रीत ॥

सगुण उपासना की दृष्टि से सम्बन्ध देखा जाय तो मीराँ साक्षात् पूर्वजन्म की श्रीकृष्ण की प्रेयसी-गोपी थी, तब भला प्रियतम का दूर रहना अथवा अबोली रखना कैसे सहा जाय ?

(८) राजेश्वर जोगी अब तेरी मौनज खोल ॥ पूरब जनम की तेरी मैं गोपिका, बीच माँही पड़ गई झोल। पूरब जनम का कौल ॥

इसी जन्म में भी तो बालावस्था में जोगी के भेष में मंदिर में पूजा करने को जाते समय प्रेम-कटाक्ष करके योगेश्वर श्याम-सुन्दर ने पूर्व प्रेम का स्मरण दिलाया था—

(१२) मल्यो जटाधारी योगेश्वर बावो । हाथ मां झारी
　　　　हुँ तो बाल कुंवारी

वाला, देवळ पूजवाने चाली । प्रेम नी कटारी मुने (मुझे) मारी ॥

यही नहीं युवावस्था में भी उस प्राण प्यारे ने जोगी के भेष में दर्शन दिये पर अपनी अनन्य दासी को फिर छोड़कर चले जाना यह कोई अच्छी बात है ? परन्तु मीराँ द्वारा उन्हें ठहराकर अपना मार्ग दर्शन कराने के लिये प्रार्थना करने के सिवाय और उपाय ही क्या है !—

(१५) जोगी मत जा मत जा मत जा, पाँव परूँ मैं तेरी ।
　　　　प्रेम भक्ति को पेंडो ही न्यारो, हमकूँ गैल बताजा ।
　　　　जोत में जोत मिला जा ॥

(३३) धुतारा (धूर्त) जोगी एक बेरिया मुख बोल ।
　　　　चेरी भई बिन मोल ॥

अन्त में जनम जनम के उन प्रेमी जोगी प्राणेश्वर से जब मिलन होता है तब भला उस आनन्द की सीमा ही क्या ?—

(२६) आँण मिल्यो अनुरागी जोगियो । जनम जनम
　　　　को साहिब मेरो, वाही सों लौं लागी । अपणाँ
　　　　पिया सँग झिलमिल खेलूँ, अधर सुधा रस पागी ॥

१४—जोगी के पद

★

रहस्य · १

तेरो मरम नहिं पायो रे जोगी ॥०॥
आसन माँडि गुफा में बैठो, ध्यान हरी को लगायो ॥१॥
गल बिच सेली हाथ हाजरियो, अंग भभूति रमायो ॥२॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, भाग लिख्यो सोही पायो ॥३॥

प्रेम-लगन २

जोगियारी सूरत मन में बसी ॥०॥
नित प्रति ध्यान धरत हूँ दिल में, निसदिन होत कुसी ॥१॥
कहा करूँ कित जाउँ मोरी सजनी, मानो सरप डसी ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु कबरे मिलोगे, प्रीत रसीली बसी ॥३॥

विरह ३

म्हारे घर रमतो ही आई रे तू जोगिया ॥०॥
कानाँ बिच कुंडल गले बिच सेली, अंग भभूत रमाई रे ॥१॥
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, ग्रिह अंगणो न सुहाई रे ॥२॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, दरसण द्यो मोकूँ आई रे ॥३॥

निर्मोहीपन ४

जोगिया री प्रीतड़ी है दुखड़ा रो मूल ॥०॥
हिल मिल बात बणावत मीठी, पीछे जावत भूल ॥१॥
तोड़त जेज करत नहिं सजनी, जैसे चँमेली के फूल ॥२॥
मीराँ कहै प्रभु तुमरे दरस बिन, लगत हिवड़ा में सूल ॥३॥

निर्मोहीपन ५

जोगिया से प्रीत कियाँ दुख होइ ॥०॥
प्रीत कियाँ सुख ना मोरी सजनी, जोगी मित न कोइ ॥१॥
राति दिवस कल नाहिं परत है, तुम मिलियाँ बिनि मोइ ॥२॥
ऐसी सूरत या जग माँही, फेरि न देखी सोइ ॥३॥
मीराँ के प्रभु कबरे मिलोगे, मिलियाँ आँणद होइ ॥४॥

विरहालाप ६

जोगियाजी निसिदिन जोऊँ बाट ।
पाँव न चालै पंथ दुहेलो, आडा ओघट घाट ॥०॥
नगर आइ जोगी रम गया रे, मो मन प्रीत न पाइ ।
मैं भोली भोलापन कीन्हौ, राख्यौ नहिं बिलमाइ ॥१॥
जोगिया कूँ जोवत बोहो दिन बीता, अजहूँ आयो नाहिं ।
बिरह बुझावण अन्तरि आवो, तपत लगी तन माहिं ॥२॥
कै तो जोगी जग में, नहीं, कैर बिसारी मोइ ।
काँइ करूं कित जाऊँरी सजनी, नैण गुमायो रोइ ॥३॥
आरति तेरी अंतरि मेरे, आवो अपनी जाणि ।
मीराँ व्याकुल विरहिणी रे, तुम बिनि तलफत प्राणि ॥४॥

निर्मोहीपन ७

कोई दिन याद करोगे रमता राम अतीत ॥०॥
आसण माँड अडिग होय बैठा, याही भजन की रीत ॥१॥
मैं तो जाणूँ जोगी संग चलेगा, छाँड गया अधबीच ॥२॥
आतन दीसे जातन दीसे, जोगी किसका मीत ॥३॥
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, चरणन आगे चीत ॥४॥

पूर्व-संस्कार (व्रजभाव) ८

राजेश्वर जोगी अब तेरी मौनज खोल ॥०॥

पूरब जनम की तेरी मैं गोपिका ।
बीच माँही पड़गई झोल ॥१॥
सहस्त्र गोप्याँ संग रमताजी मोहन ।
कई मैं बजाउँ अब ढोल ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
पूरब जनम का कोल ॥३॥

निर्मोहीपन ९

मैंने सारा जंगल ढूंडा रे, जोगीडा न पाया ॥०॥
कानु बीच कुंडल गले बीच शैली, घर घर अलेक जगाया रे।२।
अगर चंदन की धुणी धखाई, अंग बीच भभुत लगाया रे ॥२॥
बाइ मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, शबद का ध्यान लगाया रे ॥३॥

विरह १०

जोगिया तें जुगत न जाणी हो ।
मैं तो आसिक तेरड़ी तोने दया न आणी हो ॥०॥
तूं भी स्वारथ को सगो परदुःख न जाणी हो ।
तो मो बीच बिछोह भो कोई दाणा पाणी हो ॥१॥
तुम बिन कल मोइ ना पड़े मच्छी बिन पाणी हो ।
तुम बिन मैं कैसे जियूं रैन तलफ बिहानी हो ॥२॥
जा दिन ते तुम बिछड़े मेरे भई हानी हो ।
तो कारण बन बन फिरूँ होय प्रेम दीवाणी हो ॥३॥
खान पान की सुध नहीं काया कुम्हलाणी हो ।
अब तो बाकी ना रही पिंड त्यागे प्राणी हो ॥४॥
पतित पावन तो बिड़द है (याही) बेद बखानी हो ।
मीराँ कू द्यौ दरस प्रभुजी अब सुखदानी हो ॥५॥

विरह ११

जोगियाजी, दरसण दीज्यो आइ ॥०॥
तेरे कारण सब जब ढूँढ्या घर-घर अलख जगाइ ।
खान पान सब फीको लागै नैणाँ नीर न माइ ॥१॥
बहुत दिनाँ के बिछुरे प्यारे तुम देख्याँ सुख पाइ ।
मीराँ दासी तुम चरणाँ की मिलज्यो कंठ लगाइ ॥२॥

छद्मवेश-प्रेमलग्न १२ (गुज०)

मल्यो जटाधारी, जोगेश्वर बावो, मल्यो रे जटाधारी ॥०॥
हाथमां झारी हुं तो बाळकुंवारी वा'ला,
देवळ पूजवा ने चाली ॥१॥
साडी फाडी में कफनी कीधी वा'ला,
अंग पर विभूति लगाडी ॥२॥
आसन वाळी बावो मढीमां बेठो वा'ला,
घेर घेर अलख जगाडी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर नागुण वा'ला,
प्रेमनी कटारी मुने मारी ॥४॥

ज्ञान १३

कोई दिन याद करोगे रमते राम अतीत ॥०॥
झिरमिर झिरमिर मेहा बर्षे, आंगन मच गई कीच ॥१॥
लोहा ओढ़ैं लोहा पहिरैं, अग्नि कुन्ड अधबीच ॥२॥
इत गोकुल उत मथुरा नगरी, मंदिर बना अधबीच ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरना दिया चीत ॥४॥

निर्मोहीपन १४

जाबादे री जाबादे जोगी किसका मीत ॥०॥

सदां उदासि रहै मोरी सजनी, निपट अटपटी रीत ॥१॥
बोलत बचन मधुर अति प्यारे, जोरत नाहीं प्रीत ॥२॥
मैं जाणूँ या पार निभैगी, छाँड़ि चले अधबीच ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर स्याम मनोहर, प्रेम पियारा मीत ॥४॥

विरह-तीव्रता १५

जोगी मतजा मतजा मत जा पाँव परूँ मैं तेरी ॥०॥
प्रेम-भक्ति को पैंड़ो हि न्यारो, हमकूँ गैल बताजा ॥१॥
अगर चँदन की चिता रचाऊँ, अपने हाथ जला जा ॥२॥
जल बल भई भस्म की ढेरी, अपने अंग लगाजा ॥३॥
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, जोत में जोत मिलाजा ॥४॥

विरह १६

जोगी म्हाँने दरस दियाँ सुख होइ ॥०॥
नातरि दुखी जग माहिं जीवड़ो, निस दिन झूरै तोइ ॥१॥
दरस दिवानी भई बावरी, डोली सब ही देस ॥२॥
मीराँ दासी भई हैं पंडर, पलट्या काला केस ॥३॥

विरहालाप १७

जोगिया ने कहियो रे अदेस ।
आऊँगी मैं नाहिं रहूँ रे कर जटाधारी भेस ॥०॥
चीर को फाड़ कंथा पहिरूँ लेऊँगी उपदेस ।
गिनते गिनते घिस गई रे मेरी उंगलियों की रेख ॥१॥
मुद्रा माला भेष लूँ रे, खप्पड़ लेऊँ हाथ ।
जोगिन होय जग ढूंढ़ सूँ रे, सांवलिया के साथ ॥२॥
प्राण हमारा वहाँ बसत है यहाँ तो खाली खोड़ ।
मात पिता परिवार सूँ रे, रही तिनका तोड़ ॥३॥

पांच पचीसो बस किये, मेरा पल्ला न पकड़े कोय ।
मीराँ व्याकुल बिरहिनी, कोइ आन मिलावै मोय ॥४॥

विरहालाप   १८

जोगिया ने कहज्यो जी आदेस ॥०॥
जोगियो चतर सुजाण सजनी, ध्यावै संकर सेस ॥१॥
आऊँगी मैं नाह रहूँगी (रे म्हारा), पीव बिना परदेस ।
करि किरपा प्रतिपाल मोपरि, रखो न अपणैं देस ॥२॥
माला मुद्रा मेखला रे बाला, खप्पर लूँगी हाथ ।
जोगणि होइ जुग ढूँढसूँ रे म्हाँरा, रावलिया री साथ ॥३॥
सावण आवण कह गया बाला, कर गया कौल अनेक ।
गिणता-गिणता घिस गई रे म्हाँरा, आँगलियाँ री रेख ॥४॥
पीव कारण पीली पड़ी बाला, जोबन वाली बेस ।
दास मीराँ राम भजिकै, तन मन कीन्हौं पेस ॥५॥

विरहालाप   १६

जोगियाजी छाइ रह्या परदेस ॥०॥
जबका बिछड़्या फेर न मिलिया, बहोरि न दियो संदेस ॥१॥
या तन ऊपरि भसम रमाऊँ, खोर करूँ सिर केस ॥२॥
भगवाँ भेख धरूँ तुम कारण, ढूँढत च्यारूँ देस ॥३॥
मीराँ के प्रभु राम मिलणकूँ, जीवनि जनम अनेस ॥४॥

विरहालाप,   २०

जोगियाजी आवो नें या देस ।
नैणज देखूँ नाथ मेरो, ध्याइ करूँ आदेस ॥०॥
आया सावण मास सजनी, भरे जल थल ताल ।
रावल कुण बिलमाइ राखो, बिरहनि है बेहाल ॥१॥

बीछड़ियाँ कोइ भौ भयो (रे जोगी), ऐ दिन अहला जाय ।
एक बेरी देह फेरी, नगर हमारे आइ ॥२॥
वा मूरति मेरे मन बसे (रे जोगी); छिन भरि रह्यौ न जाइ ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, दरसण द्यौ हरि आइ ॥३॥

विरहालाप २१

धूतारा जोगी एकर सूँ हँसि बोल ॥०॥
जगत बदीत करी मनमोहन, कहा बजावत ढोल ।
अंग भभूति गले मृगछाला, तू जन गुढियाँ खोल ॥१॥
सदन सरोज बदन की सोभा, ऊभी जोऊँ कपोल ।
सेली नाद बभूत न बटवो, अजूँ मुनी मुख खोल ॥२॥
चढती बैस नैण अणियाले, तूँ धरि धरि मत डोल ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, चेरी भई बिन मोल ॥३॥

अनन्यभाव २२

जोगिया मेरे तेरी मनसा वासा करमणा, प्रभु,
पूरवौ मेरी ॥०॥
मैं पतिवरता पीव की हो मोल लयी चेरी ।
तुम बिना कोऊ दूजो देवा, सुपनै नहिं हेरी ॥१॥
मात पिता सुत बंधु दारा, औ पांव में बेरी ।
तुम बिना कोऊ नाहीं मेरो, प्रगट कहूं टेरी ॥२॥
एक बिरियाँ मेरे नगर प्रभु, दे जावो फेरी ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, रखो चरण नेरी ॥३॥

विरह २३

जोगियारे तू कबहु मिलेगो मोकूँ आय ॥०॥
तेरे कारण जोग लियो है, घर घर अलख जगाय ॥१॥

दिवस नं भूख रैण नहि निद्रा, तुज बिन कछु न सुहाय ॥२॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, मिल कर तपत बुझाय ॥३॥

पूर्वसंस्कार   २४

माई म्हाने रमइयो दे गयो भेष ॥०॥
हम जानै हरि परम सनेही पूरब जनम कौ लेष ॥१॥
अंग भभूत गले मृगछाला घर घर जपत अलेष ॥२॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनाशी सांई मिलण की टेक ॥३॥

ज्ञान   २५

उठ तो चले अवधूत, मढीमा कोइ ना बिराजे,
उठ चले अवधूत ॥०॥
पंथी हतो ते पंथे लाग्यो, आसन पड़ रही बिभूत ॥१॥
चेलो साथी कोई ना सुधर्यो, सबही नीवड्या कपूत ॥२॥
बाइ मीराँ के प्रभु गिरधर नागुण, टूट तो गये घर सूत ॥३॥

ज्ञान   २६

निरंजन बन में साधु अकेला राम रमता ॥०॥
गढ़ परबत से गऊ ब्याई, उनका मही बिलोता।
माखन माखन आप अरोगे, छाछ जगत को पाता ॥१॥
कागद की तो फूतली बनाई, उनका नाच नचाता।
आप ही गावे आप ही बजावे, आपही तान मिलाता ॥२॥
निरगुण रोटी सबसे मोटी, उनका भोग लगाता।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणां चित लाता ॥३॥

विरह   २७

जोगिया दरस दीज्यो राज।
कर जोड्याँ करुणा करूं म्हारी, बांह गह्यां की लाज ॥०॥

लोक लाज बिसारि डारी, छांड्यौ जग उपदेस ।
विरह अगनि में प्राण दाझै, सुणि लीज्यौ आदेस ॥
पांच मुद्रा भाव कंथा, नख सिख साजे साज ।
जोगणि होइ जग ढूँढिस्यूं, म्हारी घरि घरि फेरी आज ॥२॥
दरद दिवानी तन जानि अपनी, मिलिया राम दयाल ।
मीराँ कै मन आनंद उपज्यौ, रोम रोम खुसियाल ॥३॥

वैराग्यभाव २८

बाई म्हारे नैना रावल भेष ॥०॥
वे स्यामी व हो जटाधारी । अबही अंजन रेख ॥१॥
स्वेत वरण रँग कंथा पहरया । भिक्षा माँगी देस ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । करहुँ अलख अलेख ॥३॥

दर्शनानंद २९

आँण मिल्यो अनुरागी, जोगियो (आँण मिल्यो अनुरागी) ॥०॥
साँसो सोच अंग नहिं अब तो । तिस्ना दुबध्या त्यागी ॥१॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै । स्याम बरण बड़भागी ॥२॥
जनम जनम को साहिब मेरो । वाहीसों लौं लागी ॥३॥
अपणाँ पिया सँग हिल मिल खेलू । अधर सुधारस पागी ॥४॥
मीराँ गिरधर के मन मांनी । अब मैं भई सुभागी ॥५॥

बिरह ३०

जोगिया हो, दरसण दो महाराज ।
करजो रे करूणा करूं रे वा'ला, बांय गह्या की लाज ॥०॥
साच मुद्रा सीलकंता, तन मन राखूं साज ।
जोगण होय जग ढूंढसांरे वा'ला, घर घर फेरी आज ॥१॥
लोक लाज बिसार बैठी, छोर्यो कुल उपदेश ।
बिहे अंग जले प्रान जरत हे, सुण लीज्यो आदेश ॥२॥

प्रेम भगत मेरे हिरदे बसत हे, दरसे दीनदयाल ।
दास मीराँ लाल गिरधर, रोम रोम खुसियाल ॥३॥

विरहालाप ३१

जोगी मेरा सांवला कहाँ गयो री ॥०॥
न जानुं आर गयो न जानुं पार गयो ।
न जानुं जमुना में डूब गयो री ॥१॥
इत गोकुल उत मथुरा नगरी ।
बीच जमुना में बह गयो री ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर ।
चरन कमल चित हार गयो री ॥३॥

प्रार्थना ३२

कणी दशा में रावळ आविया रावळिया जोगी ।
कणी दशा में रावळ जांसी नाव लिया तर जासी ।
भजन करयां मोज पासी । म्हे जी म्हें देखिया अबिनासी ॥०॥
पच्छिम दशा सूं रावल आविया रावळिया जोगी,
अगम दशा ने रावल जासी ॥१॥
पग में घड़ा दूं थांरे पावड़ो रावळिया जोगी,
माथे थांरे जालर वाली टोपी ॥२॥
ढोल्यो ढलादूं रंग महल में रावळिया जोगी,
बायरो ढोले मीराँ दासी ॥३॥
लूँग डोडां की धूणी घाल दो रावळिया जोगी
अठ तापो ने बन रा बासी ॥४॥
बाई मीराँ तो थांने गाविया रावळिया जोगी,
काटो म्हारा काल जम की फाँसी ॥५॥

व्रजभाव (पूर्व संस्कार) ३३

धुतारा जोगी एक बेरीया मुख बोल रे ।।०।।
कानन कुंडल गल बिच सेली अब तेरी मुन खोल रे ।।१।।
रास रच्यो बंसीबट जमुना ता दिन कीनो कोल रे ।।२।।
पूरब जनम की मैं हूँ गोपिका अब बिच पड़ गयो झोल रे ।।३।।
जगत बंदि ते तुम करो मोहन अब क्यों बजाऊँ ढोल रे ।।४।।
तेरे कारन सब जग त्यागो अब मोहें कर सों लोल रे ।।५।।
'मीराँ' के प्रभु गिरधर नागर चेरी भई बिन मोल रे ।।६।।

पदों के शब्दार्थ-भावार्थ-विशेषादि

★

१—सेली = नाथ पंथी साधुओं के गले में पहनने की माला विशेष। हाजरिओ = साधुओं का वस्त्र विशेष।

६—दुहेलो = दुर्गम, विकट। औघट = अटपटा, अतिकष्ट साध्य। पाँव·· ······घाट = सांसारिक रजोगुणी प्रकृति के अर्थात् आधि-व्याधि एवं मृग तृष्णा के कारण परमार्थ साधन में बाधाएँ पड़ती हैं। नगर········पाइ = मेरे हृदय का अनन्य प्रेम न पाकर, नगर में आया हुआ जोगी कहीं अन्यत्र रम गया। मैं·········बिलमाय = भोले स्वभाव वश मैं उसे रोक न सकी।

६—अलेक जगाया = विशेष कर नाथ पंथी साधु भिक्षार्थ नगर में घर घर पर 'अलख' शब्द का उच्चारण करते हुए फेरी देते हैं, उसे 'अलख जगाना' कहते हैं।

१२—बावो = जोगी, साधु। कफनी = साधू के पहनने का वस्त्र विशेष, चोला। मढ़ीयां = कुटिया में।

१३—झिरमिर·········कीच = ज्यों झरमर झरमर जल बरसने से आँगन के भीतर बाहर कादों-कीचड़ हो जाता है, त्यों संसार की अनेकानेक इष्टानिष्ट परिस्थितियों के कारण चित अस्थिर और मायाच्छन्न होकर परमार्थ-पथ सूझता नहीं। लोहा·········अधबीच = आप ऐसे सामर्थ्यवान हैं जो चहुँ ओर रज और तमोगुण प्रकृति की अनिष्टकारी लीलाओं को देखते हुए, यही नहीं मोह-मायादि प्रपञ्चयुक्त घोर प्रलोभनों के बीच में भी अपने को अविचलित, निर्लेप और स्थितप्रज्ञ रख पाते हैं। इत·········बीच = आप सर्वदा अन्तर्मुख वृत्ति से रहते हैं—इड़ा व पिंगला नाड़ियों के चन्द्र व सूर्य स्वर की समता साधकर सुषुम्ना में स्वतंन्त्र रूप से विचरते हैं और ध्यान द्वारा अन्नमय शरीर का संयमन कर सुषुम्ना के कंद स्थान में-विशुद्ध चक्र के शून्य महल में ही निवास करते हैं—समाधिमग्न रहते हैं।

१५—पाठान्तरः—जोगी मतजा, उलटो ही तू आजा।
जोगी आजा आजा, जोगी पाँइ परूँ।

च-२ (रचाऊँ) चिणाऊँ। च ४ जोत में जोत मिलाजा।

नये चरण:—

तेरे कारण प्रेम भक्ति की, मढी रची तुं आजा।
पाय परूं मैं चेरी तेरी, जातो चिता में जलाजा।

भावार्थ:—जोगी.........बताजा = प्रेमियों के सुख-सहवास के दिन पंख लगा कर उड़ जाते हैं तत्पश्चात् वियोग की घड़ी उपस्थित होती है। वियोग की व्यथा से प्राण व्याकुल हो उठते हैं, तब जिसके कारन असह्य विरह-ताप को सहना पड़ रहा है, उस प्रेम पथ का दिग्दर्शन कराने के हेतु, जोगी के भेष में आये हुए और अब बिछुड़ते हुए अपने ही प्यारे श्याम सुन्दर को रुकने के लिये मीरांबाई बार-बार 'मतजा' कहती हुई चरणों में प्रार्थना करती है। अगर.........जलाजा = हे मेरे प्यारे जोगी! तुम्हारे विरह में एक क्षण भर भी मेरे प्राण देह में नहीं रह पाएँगे यह निश्चित है! इसलिये जाने के पहले मेरे निर्जीव शरीर को मेरे ही द्वारा रची हुई अगर-चन्दन की चिता में अपने ही हाथों से जलाकर जाओ जिससे मेरा यह भौतिक शरीर भी अंतिम क्षण तक तुम्हारे कोमल कर कमलों के स्पर्श सुख के सौभाग्य को प्राप्त करे। जल.........लगाजा = (परन्तु) हे जोगी! अगर-चन्दन की उस मेरी चिता में केवल अग्नि प्रज्ज्वलित करके ही न चले जाना! जिस तन के रोम-रोम में एक मात्र तुम्हीं समाये रहे और जिस काया मन द्वारा अन्तिम क्षण तक एक मात्र तुम्हारा ही ध्यान-स्मरण होता रहा, भला उस काया की भस्म को क्या यों ही वायु द्वारा इतस्ततः निराधार उड़ती हुई छोड़कर चले जाओगे? ऐसा तो नहीं करना जोगी! मेरी इस अन्तिम प्रार्थना को अवश्य ही कृपा कर स्वीकार कर लेना! जब चिता पूर्ण रूप से जलकर मेरे शरीर की सर्वथा राख बन जायगी तब उसे यत्न पूर्वक बटोरकर अपनी झोली में भर लेना और नित्य उसे अपने अङ्ग में रमाया करना जिससे चित्त को यह सुख समाधान होगा कि जीवित रहते तो प्राण प्यारे के सहवास के लिये तड़फती रही परन्तु मरने के बाद भस्म रूप से ही सही प्यारे के श्री अङ्गों में लिपटी रहूँगी, और बरबस उन्हें भी भस्म रमाते समय

मेरी याद आती रहेगी। मेरे लिये यह क्या कम सौभाग्य की बात है? जोत········मिलाजा=यदि यह तुमसे नहीं हो सकता हो तो अभी इसी क्षण, अपनी प्रेम-सुधा झरती दृष्टि से निहारते-निहारते ही अपनी दिव्य-आत्मा की ज्योति में इस तुम्हारी दासी की प्राणज्योति को समा लेना। हे समर्थ जोगी! यही करके भले ही जाओ अन्यथा, मत जाओ, मत जाओ, जोगी, मुझे छोड़कर कहीं मत जाओ।

१६—यह भी अधिक चरण मिलता है:—

पहर चोला भस्म कंथा भेष धरिया दर वेस।
साईं तेरे कारणे मैं उलटी किया परवेस।

१७—अदेस=नाथ-सम्प्रदाय में परस्पर मिलते समय कहा जाने वाला प्रणाम सूचक शब्द-संकेत। कंथा=चोला, विरक्तों के पहनने का वस्त्र विशेष। मुद्रा=योग साधने वालों के कानों में पहनने की घुंडी। खप्पड़=खप्पर, साधु विशेष के भिक्षा माँगने का एक प्रकार का पात्र। खोड़=निर्जीव, ढाँचा। रही············तोड़=सम्बन्ध छोड़ दिया। पांच पचीसो=पंच तत्व, दशेन्द्रियों और उनकी तन्मात्राएँ आदि प्रकृति के तत्व। मेरा············कोय=मुझे कोई रोक नहीं सकता, किसी अंतराय की अब कोई संभावना नहीं।

पाठान्तर-(जटाधारी) जोगन को।

ये दो चरण अधिक पाये जाते हैं:—

दंड कमंडल गूदड़ी रेवाला, कियो नवेलो नेह।
प्रीतम ओजूं न आइया म्हारे, हिवड़े बड़ो संदेह॥
गुरु को शब्द कान में पहरूँ, अंग विभूत रमाऊँ।
जा कारण मैं जग तजोरे वाला, वाही पास मैं जाऊँ॥

२०—पाठान्तर—टेरः—जोगिया आवरे इण देस ।
आवत देखूँ नाथ मेरा ध्यान करूँ आदेस ॥

चरण-३:—वा सुरत मेरे मन बसैरे पल भर रह्यो न जाइ ।
मीराँ के कोई नहिं दूजो दरस द्यो हरि आय ॥

२१—एक रसूँ=एक बार भी तो। गुढ़ियाँ=गूढ़, रहस्य। नाद=योगी के बजाने का सींग बाजा।

२२—मेरे तेरी=मुझे तेरी लगन लगी है—तेरा ही आधार है।

२६—निरंजन=माया रहित। फूतली=पुतली, माया नटी।

भावार्थः—निरंजन·········रमता=अखिल ब्रह्मांड में-सकल चराचर में एक मात्र परमात्मा ही सर्वत्र व्याप्त है। गढ़·········पाता=परमात्मा अपनी प्रकृति द्वारा चराचर सृष्टि की रचना कर स्वयं निर्लेप रहता है और प्रकृति द्वारा प्रकृति के निर्माण एवं विनाश की कार्य-परंपरा चला करती है। श्री गीता में भगवान ने कहा है :—

अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥७–६॥

'मैं संपूर्ण जगत का उत्पति तथा प्रलय-रूप हूँ—सम्पूर्ण जगत का मूल कारण हूँ।' तथा:—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥ ६–१० ॥

'हे अर्जुन ! मुझ अधिष्ठाता के सकाश से यह मेरी माया चराचर सहित सर्व जगत को रचती है और इस ऊपर कहे हुए हेतु से ही (त्रिगुण प्रकृति निर्मित स्वभाव वश कृत कर्मानुसार सृष्टि

रचना) यह संसार आवागमन रूप चक्र में घूमता है । कागद······ ·······मिलाता = जो वास्तव में कुछ भी नहीं ऐसी अपनी माया नटी द्वारा जागतिक प्रपंच निर्माण कराकर, इस प्रकार, 'एकोऽहं बहुस्याम' के न्याय से लीलाधारी परमात्मा स्वयं अपनी ही लीला में मग्न रहता है, जैसे कि:—

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनंजय ।
मयि सर्व मिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥ गीता ७–७ ॥

'हे धनंजय ! मेरे सिवाय किंचित मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है, यह सम्पूर्ण जगत सूत्र में सूत्र के मणियों के सदृश मेरे में गूँथा हुआ है । 'तथा:—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानिमायया ॥गीता १८–६१॥

'हे अर्जुन, शरीर रूपी यन्त्र में आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से उनके कार्यों के अनुसार भ्रमाता हुआ सब भूत-प्राणियों के हृदय में स्थित है । निरगुण······ ··········लगाता = निर्गुण ब्रह्म—परमात्मा की प्राप्ति गुणातीत होने पर ही होती है, जैसे कि:—

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देह समुद्भवान् ।
जन्म मृत्यु जरा दुःखै विमुक्तोऽमृत मश्नुते ॥ गीता १४–२० ॥

'यह पुरुष, इन स्थूल शरीर की उत्पत्ति के कारण रूप, तीनों गुणों को उल्लङ्घन करके जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और सब प्रकार के दुःखों से मुक्त हुआ, परमानन्द को प्राप्त होता है ।'

२७—पांच मुद्रा = १ ध्यानमुद्रा, २ अभय मुद्रा, ३ वरद मुद्रा, ४ व्याख्यान मुद्रा, ५ ज्ञान मुद्रा। पांच..............आज = पांचों भाव—मुद्रारूप कंथा तथा भेष के योग्य आवश्यक सब साज सज कर जोगिन होकर आज से घर घर फेरी देती हुई संसार में विचरण करूँगी।

विभाग १५ मुरली

निर्गुण वा सगुण उपासक ज्यों ज्यों ध्येय प्राप्ति के समीप पहुंचता है, उसे किसी न किसी रूप से प्रभु कृपा का जो संकेतानुभव होता है वही अव्यक्त दिव्य वाणी ही मुरली का स्वर है। उपासना भेद से मुरली के स्वर का साधकों को भिन्न प्रकार से अनुभव होता है।

अनन्य प्रेमी भक्त के लिये श्रीकृष्ण भगवान की मुरली का सुनना कदापि असंभव नहीं।

* भूमिका *

*

ध्यानं। बलात्परमहंस कुलस्य भिन्दन
निन्दन्सुधामधुरिमानमधीर-धर्मा ।
कन्दर्प शासन धुरां मुहुरेव शंसन्
वंशी ध्वनि र्जयति कंस निषूदनस्य ॥
(भक्ति रसामृत सिन्धु)

'जय हो कंस-निषूदन श्री हरि की वंशी ध्वनि की ! यह ध्वनि सनक, सनातन, सनन्दन, सनत्कुमार-प्रभृति परमहंस कुल के निर्गुण निरूपाधि अद्वैत ब्रह्म विषयक ध्यान को भंग कर डालती है । सुधा के अलौकिक माधुर्य को चूर-चूर कर देती है । आज से इस संसार में कन्दर्प पर शासन होगया, और इस शासन का भार वंशी-ध्वनि ने अपने सिर ले लिया है, जगत में प्रचार होते-होते यह बात चारों ओर फैल गई ।'

लोकानुद्धरयन् श्रुतिन्मुखरयन् क्षोणिरुहान्हर्षयन् ।
शैलान् विद्रवयन् मृगान् विवशयन् गोवृन्दमानन्दयन् ॥
गोपान्सम्भ्रमयन् मुनीन्मुकुलयन् सप्तस्वरान् जृम्भयन् ।
ॐकारार्थ मुदीरयन् विजयते वंशीनिनाद शिशोः ॥
(बिल्व मंगल)

'समस्त लोकों का उद्धार करती हुई, श्रुतियों के गर्भितार्थ को प्रस्फुटित करती हुई, लतावृक्षादिकों को प्रमुदित करती हुई, पर्वतों को द्रवीभूत करती हुई, मृगादिक पशुओं को विवश करती

हुई, गौओं को आनन्दित करती हुई, गोपजनों को सम्भ्रम में डालती हुई, मुनियों की समाधि भंग करती हुई, सप्तस्वरों को विस्तारित करती हुई और ॐकारार्थ को प्रकट करती हुई .श्यामसुन्दर की वंशी-ध्वनि की सदा सर्वदा विजय है।

सनातन धर्म में ज्यों प्रायः अधिकतर देवी-देवता शस्त्रधारी हैं त्यों साथ ही साथ अथवा स्वतन्त्र रूप से वाद्यों को भी धारण करते हैं, यथा शिवजी का त्रिशूल के साथ डमरू को, श्रीकृष्ण का सुदर्शन चक्र के साथ मुरली को और सरस्वती का वीणा को धारण करना इत्यादि।

संगीत शास्त्र में वाद्यों के चार प्रकार माने जाते हैं।

(१) 'तत' अर्थात् तंतुवाद्य-यथा बीन, सारंगी, वीणा, स्वरमंडलादि,

(२) 'वितत'—अर्थात् चर्म से मढ़ा हुआ यथा मृदंङ्ग, डफ, डमरू, खंजरी, ढोल, ढोलक आदि, (३)—'घनवाद्य'—अर्थात् ठोसवाद्य यथा—करताल, झांझ, मजीरा, जलतरंग आदि और (४) 'सुषिर'—अर्थात् वायुवाद्य यथा मुरली, शहनाई आदि। इसी मुरली को श्रीकृष्ण भगवान् ने अपनाया था। साधारण बांस के बने इस मुरली वाद्य को ही श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् ने क्यों अपनाया, इस पर सामान्य दृष्टि से तो यह कहा जा सकता है कि सभी वाद्यों में एक मात्र वेणु ही सर्वानुकूल वाद्य है। बोझ नहीं, बड़ा आकार नहीं, तार आदि बाह्य उपकरणों की आवश्यकता नहीं, दूर तक सुनाई देने वाली,

स्वरों के मिलाने की खटपट नहीं, बजाने के लिये किसी स्थान अथवा प्रसंग विशेष की आवश्यकता नहीं और खड़े, चलते अथवा बैठे हुये भी बजाने में किसी प्रकार की बाधा नहीं, सारांश कि जहाँ जाया जाय साथ में रखी जाने जैसी, किसी भी स्थान, प्रसंग, परिस्थिति और अवस्था में बजाने जैसी यह 'मुरली' सर्वदा प्रस्तुत, सरल, सुलभ तथा स्वतंत्र वाद्य है। फिर गौ चराने वाले ग्वाल, गोपाल, अहीर, कृषिकार, बनवासी आदि लोगों के लिये तो वह सर्व प्रकार से उपादेय है। आज भी इन लोगों में यह बात देखी जाती है कि जब वे गौ चराने जंगल् में जाते हैं अथवा और कार्य करते हैं तब बंशी और पावा (छोटा सा वाद्ययंत्र विशेष जो मुँह पर रख कर बजाया जाता है) बजाकर अपना मनोरंजन करते हैं। जो भी हो पर श्रीकृष्ण भगवान् ने मुरली को अपना देव- दुर्लभ आश्रय दिया, जिससे श्यामसुन्दर मुरली मनोहर-मुरलीधर कहलाये और तभी से मुरली ने श्रीकृष्ण-लीलाक्षेत्र में महत्व का स्थान पा लिया।

श्री राधा व ब्रजगोपियों ने तो कुञ्जबिहारी की मुरली को अजरामर कर दिया। श्री राधा व गोपीभाव की उपासना जिसके भी हृदयं के द्वारा सिद्ध होती है उसे ही श्याम की मुरली की मधुरीतान का साक्षात् अनुभव हुआ करता है। श्री जयदेव, विद्यापति, चंडीदास, नामदेव, श्री नरसी महेता, श्री चैतन्य महाप्रभु और मीरांबाई आदि के समान संत-महात्मा ही वास्तव में इस भगवदनुग्रह के अधिकारी होते हैं।

मनस्तूलिका द्वारा यदि अपने कल्पना पट पर यह चित्र-लेखन किया जाय तो वह दृश्य कितना मनोरम और प्रभावशाली

प्रतीत होगा ! विस्तृत प्राङ्गण, निरन्तर रजत धाराओं से पृथ्वी को धवलित करता हुआ नक्षत्र मण्डल का सूत्र संचालक सुधाकर, चाँद के चमकीले वैभव के साथ तद्रूप होकर अठखेलियाँ करती हुई लहरियों से छलकती सरिता का मन्थर प्रवाह उस पार वनराजि, तथा शांत मध्य-रजनी ऐसे सुन्दर समय में किसी निकटवर्तिनी पहाड़ी पर से कोई संगीत-सिद्ध कलाकार समयोचित राग रागिणी में भावोन्मत्त होकर वंशी की तान छेड़ता हो तो उस नीरव वातावरण में बहती हुई उन मधुर स्वर लहरियों को सुनकर, कौन ऐसा प्राणी होगा कि जिसका चित्त एक बार भी फड़क न उठे ! कौन ऐसा मानव-हृदय होगा जो उस अनोखी सृष्टि के भावों में रंग नहीं जायगा ।

जब सामान्य मानव-कला का यह चमत्कार है तो पूर्णावतार योगेश्वर, रसिक-शिरोमणि, नटवर और रास बिहारी, मुरलीधर, श्यामसुन्दर जब स्वयं वंशी बजाते हों तब तो भला कहना ही क्या ! 'रन्ध्रान्वेणोरधर सुधया पूरयन्' अर्थात् ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र की सुधामयी स्वर परम्परा को प्रचारित करने वाली उस वंशी के बजने पर देव, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, योगी-मुनि, नर-नारी, एवं पशु-पक्षी आदि मोहित होकर अपने कर्त्तव्य तथा काया-वाचा-मन की सुधि भूल जायँ तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? वंशी के प्रभाव से जड़-प्रकृति में भी किस प्रकार रस-संचार होता है देखिये—रसोई बनाते समय वंशी-ध्वनि सुनकर कोई गोपी कृष्ण से प्रार्थना करती है:—

मुरहर ! रन्धन समये मा कुरू मुरलीरवं मधुरम् ।
नीरसं मेधो रसतां कृशानुरप्येति कृशतरताम् ।।

हे मुरारे ! अरे मेरे रसोई बनाते समय तो तुम पाकर अपनी मुरली की मधुर तान न छेड़ा करो, क्योंकि उस ध्वनि के आते ही, मेरी सूखी लकड़ियाँ सरस अर्थात् गीली होकर रस टपकाने लगती हैं और आग बुझ जाती है, जिससे रसोई भी नहीं हो पाती है। अस्तु।

वास्तव में मुरली के बिना समस्त ब्रजरस-वैभव ही नीरस हो जायगा अथवा यों कहा जाय कि श्री राम के अनन्योपासक के लिये रामबाण और पवनपुत्र हनुमान् का जो महत्व है वही श्रीकृष्ण के मधुर उपासक के लिये मुरली और गोपी का है।

देखा जाय तो यह 'मुरली विभाग' ८ वें 'ब्रजभाव' के ही अन्तर्गत है, परन्तु केवल 'मुरली' पर ही मीरांबाई के भाव-सरसता भरे बहुत से पद होने के कारण इन्हें पृथक् विभाग में रखना उचित समझा गया। मधुर लीलाओं में श्रीकृष्ण की प्रधान सहायिका इस वंशी का प्रभाव ऐसा मनोमुग्धकारी व् रस-वैविध्ययुक्त है कि स्वयं भगवान् श्री वेदव्यास को भी वेणु-महिमा प्रदर्शन करने के लिये 'वेणु गीत' के स्वतंत्र अध्याय की आवश्यकता प्रतीत हुई। वैसे तो प्रसंग-प्रसंग पर मुरली प्रभाव का वर्णन श्री भागवत जी में किया गया है, पर 'वेणुगीत' के केवल २० ही श्लोकों में रस समृद्धि का ऐसा अद्भुत भाव-चमत्कार है कि देखते ही बन पड़ता है। देखिये, अपने प्यारे श्यामसुन्दर का लीला गुणगान करती हुई ब्रज गोपियाँ उनकी मुरली के लिये क्या-क्या अन्तरंग भाव परस्पर में कहती सुनती हैं:—

गोप्यः किमाचरदयं कुशलंस्मवेणु—
दामोदराधर सुधामपि गोपिकानाम्।
भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्ट रसं..................

(श्रीमद्भा० १०। २१। ६)

हे सखि! न जाने इस वंशी ने क्या पुण्य किया जो गोपियों के भोग्य दामोदर के अधरामृत का स्वच्छन्दता पूर्वक पान कर रही है! वह भी सब का सब पी जाती है, तनिक भी शेष नहीं रहने देती।

गोविन्द वेणु मनुमत्त मयूर नृत्यं।
प्रेक्ष्याद्रिसान्व परतान्य समस्त सत्वम्॥
(श्रीमद्भा० १०।२१।१०)

गोविन्द की वंशी सुनकर मयूर मत्त होकर नृत्य कर रहे हैं और उनका नृत्य देखकर पर्वतों की चोटियों पर रहने वाले समस्त जीव (मृग प्रभृति) मारे आनन्द के निश्चेष्ट हो रहे हैं।

श्रुत्वा च तत्क्वणित वेणु विचित्र गीतम्।
देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्न सारा।
भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहु र्विनीव्यः······ ·· ॥
(श्रीमद्भा० १०।२१।१२)

अपने पतियों के पास बैठी हुई, विमानों में जाती हुई, देवाङ्गनायें जब वंशी का विचित्र स्वर सुनती हैं तो वे प्रेमावेश के कारण धैर्य खोकर मोहित हो जाती हैं, उनके बंधे हुए बालों की चोटियों के पुष्प गिर पड़ते हैं और उन्हें अपने वस्त्रों की भी सुधि नहीं रहती।'

गावश्च कृष्ण मुखनिर्गत वेणुगीत
पीयूषमुत्तभित कर्णपुटैः पिबन्त्यः।
शावाः स्नुतस्तनपयः कवलाः स्म तस्थु-
र्गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः॥
(श्री मद्भा० १०।२१।१३)

गौएँ भगवान् की मुख से बजाई गई बंशी की अमृतध्वनि को अपने कानों को ऊपर उठाकर दोना-सा बनाकर पी लेती

हैं और गोविन्द को नेत्रों द्वारा मन में ले जाकर आनन्द को प्राप्त हो आनन्द के आँसू बहाती हुई अपना कार्य (चरना आदि) भूल जाती हैं। वैसे ही छोटे बछड़े भी दूध पीने के लिये प्रवृत्त होते ही वंशी की ध्वनि को सुनकर दोने की भांति खड़े किये गये कानों से उसे पीते हुये अपनी सुधि भूल जाते हैं और थनों से गिरता हुआ दूध उनके मुँह में ही रह जाता है।

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीत—
मावर्त लक्षित मनोभव भग्नवेगाः।
आलिङ्गनस्थगितमूर्मि भुजैर्मुरारे
गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः॥
(श्रीमद्भा० १०।२१।१५)

भगवान की वंशी का शब्द सुनकर नदियों में काम का संचार होने लगा और उनकी गति रुक गई, वे अपनी लहर-रूपी भुजाओं से कमल की भेंट देती हुई आलिंगन से आच्छादित भगवान के चरण युगल को धारण करती हैं।

रासलीला के समय तो श्री कृष्ण की मुरली का प्रभाव पराकाष्ठा को पहुँच जाता है। देखिये, रास के आरम्भ में वंशी-ध्वनि का लक्ष्य कर श्री रूप गोस्वामी क्या कहते हैं:—

भिन्दन्नम्बुभृतश्चमत्कृति परं कुर्वन्मुहुस्तुम्बरुं
ध्यानादन्तरयत्सनन्दनमुखात् संस्तम्भयन् वेधसम्।
औत्सुक्यावलिभिर्बलिं चटुलयन् भोगीन्द्रमाघूर्णयन्
भिन्दन्नण्ड कटाह भित्ति मभितो बभ्राम वंशीध्वनिः॥

वंशी का यह पवित्र संगीत अपनी सुधामयी स्वरलहरी से समस्त वृन्दावन को आप्लावित करता हुआ, आकाश में पहुँचकर

जलद समूह को स्तम्भित करता हुआ, स्वर्ग में देव-गायक तुम्बरु को पुनः पुनः चकित करता हुआ, स्वयं प्रजापति ब्रह्मा को विस्मित करता हुआ, यों उर्ध्वलोक में अपनी विजय-पताका फहराकर नीचे पाताल की ओर चला और वहाँ राजा बलि को चौंका कर नागराज अनन्त शेषनाग के सहस्रफणों को कँपाकर, अखिल ब्रह्माण्ड कटाह को भेदकर श्रीकृष्ण का वह बंशी संगीत सब ओर फैल गया।

'निशम्य गीतं तदनङ्ग वर्द्धनम्'—

अर्थात् बंशी के उस दिव्य अनङ्ग-वर्द्धक और आनन्दमय संगीत को सुनकर, गृहकाज एवं लोकलाज आदि को तिलांजलि देकर प्रेम-विह्वल हुई गोप-ललनाएँ किस प्रकार श्यामसुन्दर के पास दौड़ी हुई चली जाती हैं, श्रीरास-पञ्चाध्यायी में इसका बड़ा ही भाववाही, अलौकिक और रोचक वर्णन है।

मुरली के अमोघ प्रभाव के कारण ब्रज गोपियों की दशा ही दयनीय हो जाती है। शरीर, मन, वचन की सुधि नहीं रह पाती, क्या करने जाती हैं और क्या हो जाता है। कैसी विवशता! वास्तव में बंशी की ध्वनि का कानों से सुनना ही लोक-लाज मर्यादा का हठात् त्याग होजाना है। इसका उपाय एक गोपी दूसरी गोपी से सुनाती है:—

सुनती हो कहा भज जाहु घरै,
बिध जाओगी नैनन के बानन में।
यह बंशी निवाज भरी विष सों,
बगरावत है विष प्रानन में॥
अबही सुधि भूलि हो भोरी भटू,
भँवरो जब मीठीसी तानन में।

कुलकान जो आपनि राख चहो,
दै रहो आंगुरी दोउ कानन में ॥

उस मुरली के देव दुर्लभ भाग्य का भी कोई पार है ! जिन श्यांम सुन्दर के दर्शन व क्षणिक सान्निध्य ही गोपियों के लिये अति दुर्लभ है उनके कर कमलों का स्पर्श व अधर सुधा का निरंतर रसास्वादन और उनके प्यार व लाड़ की अधिकारिणी बंशी के इस वैभव को भला गोपियाँ कैसे सह सकती हैं ! ईर्षा के भाव में कह उठती हैं:—

=सूरदास प्रभु हम पर याको कीन्ही सौति बजाई।
सुनरी सखी जदपि नन्दनन्दहिं नाना भाँति नचावति !
राखत एक पांव ठाडे करि, अति अधिकार जनावति।
आपुन पौढ़ि अधर सज्जा पर कर पल्लव सों कर पलुटावति !
=मुरली मोहे कुँवर कन्हाई।

अंचवति अधर सुधा बस कीन्हें
अब हम कहा करैं कहि भाई ॥

श्री राधा ने तो यहाँ तक कह दिया:—

'मोरपखा सिर ऊपर राखि हों,
गुञ्ज की माल गरै पहिरौंगी।
ओढ़ि पीताम्बर ले लकुटि बन,
गोधन ग्वालन संग फिरौंगी ॥
भाव तो सोई मेरो 'रसखान' सो,
तेरे कहे सब स्वांग करौंगी।
पै या मुरली मुरली धरकी,
अधरान धरी अधरा न धरौंगी ॥

इस अन्तिम 'अधरान धरी अधरा न धरौंगी' ने तो गजब ढा दिया ! कितना विलक्षण भाव चमत्कार ! परन्तु मुरली के

प्रति इस सौतियाडाह की मनोवृत्ति के रहते हुऐ भी कभी राधा मुरली पर कृपा की वर्षा भी करती सी दिखाई देती हैं, यथाः —

> श्याम तेरी बंसरी नेक बजाऊँ।
> जो तुम तान लहो मुरली में, सोई सोई गाय सुनाऊँ ॥

न जाने यह भाव-परिवर्तन समझौते का लक्षण है अथवा उतने समय के लिये ही सही मुरली को श्यामसुंदर से वियुक्त कर देने की भावना का द्योतक।

बंशी-ध्वनि को सुनकर वास्तव में गोपियों की श्रीकृष्ण दर्शन की उत्कण्ठा उस सीमा तक पहुँच जाती है कि जहाँ माया–मोहादिक प्रलोभन का कोई आकर्षण नहीं, सांसारिक प्रवृत्तियाँ सारहीन प्रतीत होती हैं एवं आत्मीयजनों का कोई ममत्व नहीं रह पाता। न भय, न शङ्का, न लज्जा, न संकोच! चित्त में कोई भोग-स्पृहा की मलिनता नहीं, न आत्मतृप्ति की संकीर्णता ही। इस प्रकार 'यादुस्त्यजं स्वजनमार्य पथं च हित्वा' अर्थात् कठिनाई से भी नहीं छोड़े जा सकने वाले ऐसे, अपने बान्धव और कुल की श्रेष्ठ रीतियों को त्यागकर परमानन्द विभोर हो उन दिव्य भावोन्मादिनी ब्रज-गोपियों ने अन्त में, 'भेजुमुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्' अर्थात् श्रीकृष्ण भगवान् का भक्ति मार्ग पाया जिसको श्रुतियाँ भी ढूँढा करती हैं।

भगवान का बंशी वादन यह वास्तव में संगीत के एकाधिपत्य और सार्वभौम प्रभाव का प्रकटीकरण है या यों कहा जाय कि अखिलविश्व की उत्पत्ति, स्थिति, और लय की समस्त स्थूल एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म क्रिया की गति में नाद व्याप्त है—और

वह नाद द्वारा ही नियंत्रित होती है, अतएव नाद–स्वर ही संगीत है।

महारास में संगीत अर्थात् गीत, वाद्य और नृत्य यह अनिवार्य तत्व हैं, अथवा संगीत द्वारा ही महारास का नियन्त्रण होता है।

वृन्दावन के मुख्य ठाकुर जी श्री बाँके बिहारी जी के प्रातः मंगला के दर्शन नहीं होते जैसे और मंदिरों में हुआ करते हैं। वहाँ ११ बजे दर्शन होते हैं। भावुक हृदय द्वारा कहा सुना व माना जाता है कि श्री बिहारी जी महाराज रात्रि को नित्य महारास के लिये पधार जाते हैं सो मध्यरात्रि के पश्चात् देरी से शयन होने के कारण, देरी से अपौढ़ि होती है।

जो भी हो पर वास्तव में अखिल चराचर विराट-प्रकृति में नित्य निरंतर महारास हुआ करता है। ज्ञान-दृष्टि से स्वरूपतः भले हो वह भिन्न हो।

सारांश यह है कि स्थूल एवं सूक्ष्म सृष्टि का सूत्र–संचालन एक मात्र संगीत के ही आधीन है। पंच महाभूतों का संगठन, हर्ष-विषाद, भय-करुणा आदि भावों की गति-ध्वनि, तथा सृजन व लय इंत्यादि प्रकृति के समस्त कार्य संचालन में संगीत विद्यमान है। किसी तार में कम्पन होते ही ज्यों स्वर उत्पन्न होता है, भले ही कम्पन की गति तीव्र न होने से वह अल्प सुनाई दे अथवा अत्यधिक मंद कम्पन हो तो स्थूल श्रवणेन्द्रिय को सुनाई ही न दे, तथापि स्वर ही संगीत का मूलतत्व है, वैसे ही चराचर प्रकृति की स्थिति के लिये, क्रिया, गति वेग, विचार, सङ्कल्प एवं भावना इत्यादिक के सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से प्रादुर्भाव के होते

ही कम्पन अनिवार्य होता है और कम्पन से नाद की उत्पत्ति होती है, चाहे नाद मंद्रातितम ही क्यों न हो! संम्भव है भविष्य में कभी विज्ञान इस रहस्य का अनेकों अनुभव कराने जैसे स्तर को प्राप्त करे। इस प्रकार प्रकृति के समस्त व्यापार में एक मात्र संगीत ही व्याप्त है।

सागर की उत्ताल तरंगें, मेघगर्जन, झरने की कलकल-ध्वनि, वायु के झकोर, झिल्लियों की झनकार, जल-प्रपात का गंभीर घोष एवं देह में नाड़ियों का तद्गतिजन्य अनाहत-नाद आदि प्रकृति का दिव्य संगीत भी भावोर्मियों को जगाकर हृदय को प्रभावित किये बिना नहीं रहता। इस प्रकार अखिल प्रकृति नाद-ब्रह्ममय है।

जगत के सभी साहित्यों में संगीत का प्रभाव माना गया है। पाश्चात्य साहित्य में एक प्रार्थना गीत में ड्रायडन ने बताया है कि संगीत में निर्माण की ही नहीं अपितुलय की भी शक्ति वर्तमान है। स्टीवेन्सन ने अपनी कल्पना द्वारा एक प्रकृति-निर्माता को चित्राङ्कित किया है, जो बंशी बजा रहा है।

भगवान का बंशी-वादन क्या है, विश्व कल्याणार्थ प्रेम संदेश है, प्रेमी भक्तों को उनकी ओर जाने के लिये आह्वान है, सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज, के सिद्धान्तानुसार त्यागमय कर्तव्य की स्मृतिदायिनी प्रेरणा है, भक्त की हार्दिक पुकार और चिर-साध की पूर्ति के लिये मंगल वरदान है। प्राणियों के लौकिक दिव्य बंधनों से सहज त्राण पाकर भगवदाश्रय ग्रहण करने के लिये शक्ति-दान है और जन्म जन्मांतरों से प्रिय मिलन के हेतु तड़पते हुए प्रेमाभक्ति के अन्तरंग उपासकों

पर प्रभु की अनन्त कृपा का मूक प्रदर्शन है। भगवान् की बंशी नित्य बजती है पर भगवान् के अनन्य प्रेमी भक्त प्रेम की साधना द्वारा ही उसके अखण्ड आनन्दमय नाद को सुन सकते हैं, और कृत-कृत हो जाते हैं।

वास्तव में प्रेमोन्माद भरे आत्मा के इस दिव्य संगीत अनहदनाद को सुन कर ही जीव कृत-कृत हो जाता है। इसी को सुनने के लिये ही मनुष्य-प्राणी अपना सर्वस्व त्याग देने को और आत्म-समर्पण करने को कटिबद्ध होता है। कोई योगी बन गुफा का आश्रय लेता है, तो कोई भक्त नाम स्मरण करता है। कोई ध्यान समाधि, तो कोई भजन-कीर्तन करता है! इस साधना में प्रयत्नशील रहने वालों में से कोई निरन्तर प्रेम पूर्वक अखंड निभाने वाला बिरला ही प्रेमी श्याम की बंसी को सुन और उसके रहस्य को जान पाता है। गोप वधुऐं उस कोटि तक पहुँची हुई थीं। पूर्व जन्म की गोपी मीरांबाई ने भी यह जन्म सिद्ध अधिकार पाया था जो उसके पदों पर से समझा जाता है।

भगवान की बंशी की तथा वेणुगीत की ओर आकर्षित होकर भारत के प्रायः सभी देश के कवियों ने एवं ब्रजरस के मर्मज्ञ प्रेमी भक्तों ने उस पर अनेकानेक काव्य बना डाले हैं और आज भी बंशी वैसी ही प्रेरणास्पद बनी हुई है। इस प्रकार जीवन के धार्मिक एवं रसमय साहित्य-निर्माण में 'वेणु-गीत' का पूरा हाथ रहा है। कहीं राजनीति के विशृंखल वातावरण के पुनः निर्माण में शक्ति और प्रेरणा के लिये मोहन के बंशी-वादन की अपेक्षा की जाती है तो कही मानव के सुप्त संस्कारों

की जागृति के लिये। कहीं वीरता संचार के लिये तो कहीं धार्मिक भावोद्दीपन के लिये। कहीं गोपियों में इर्ष्या-प्रेम-अभ्यर्थना-अनुराग-करुणा एवं उत्कंठा आदि विविध भावों को उकसाकर मुरली उनकी मनःसृष्टि में खलबली मचा देती है तो कभी उसके मानस को यथार्थ रूप से समझने के लिये जिज्ञासा करने के लिये उन्हें बाध्य करती है। निगुंण साधन में भी नाद के प्रकट होने पर 'मुरली' का शब्द सुना जाता है और समाज में कोई सुखी प्राणी भी चैन की बंशी बजाता है सारांश कि जीवन-क्षेत्र में कई दृष्टि से साहित्य और कला के उपासकों ने मुरली को अपनाया है।

भगवान की इस 'बंशी' पर मीरांबाई ने भी बहुत से पद बनाये हैं जो 'मुरली' के इस स्वतंत्र विभाग में दिये गये हैं। मीराँ जैसी प्रेम-योगिनी और श्रीकृष्ण की जन्म-जन्म की प्रेयसी के लिये तो ब्रजभाव उसकी आत्मा और 'मुरली' उसके प्राणों के समान है। उसके रोम रोम में बंशी-ध्वनि समा गई थी और उसके श्रवण युगल निरन्तर एक मात्र अपने प्यारे की मुरली की तान मधुरी को ही सुना करते थे। उसके ब्रज जीवन की अभिलाषाओं में मुरली ने जो रस-सिञ्चन किया है उससे उसके पदों में सजीवता आगई है।

पद संख्या २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, १५, १६, २०, २१, ३२ एवं ३४ ये १३ पद गुजराती भाषा के हैं।

पद संख्या १३, १८, २३, २५, ३०, ३१, ३३, ३४, ३५, ३६ एवं ३८ इन ११ पदों में बछड़े गौएँ व मृगादिक पशु पक्षियों का मोहित हो कर खाना पीना भूल जाना, ॐ की सुरता

जगाना, रात्रि-चंद्र व सूर्य का स्तम्भित हो जाना, ब्रह्मा इन्द्रादि देवता व तथा वृक्षादि जड़ सृष्टि पर भी बंशी के अलौकिक प्रभाव की महिमा का एवं तज्जनित राधा व गोपियों आदि की विक्षिप्त सी दशा का वर्णन एवं शरद पूर्णिमा में रासोत्सव का व भगवान शंकर का गोपी भेष धारण का उल्लेख है।

'मुरली' मीराँ की वाणी में

मुरली के लिये मीरांबाई ने २ प्रकार के भाव व्यक्त किये हैं:—सर्वदा अपने प्रियतम श्यामसुन्दर के निकट उनकी श्रीमुख पर तथा समय-समय पर अपने नाद—संकेत से गोपियों को श्याम-सुन्दर के पास जाने की प्रेरणा करने वाली मुरली के प्रति उसके प्रेम और प्रशंसा के भाव जब कि श्यामसुन्दर के अधर-कमलों पर रह कर अपने प्रभाव द्वारा उन्हें वश करके गोपियों को उनके सान्निध्य सुख से वंचित करने वाली मुरली के प्रति उसने व्यंग उलाहना व तिरस्कार के भाव व्यक्त किये हैं। यह उसकी गोपी भाव की स्वानुभूति है।

मीराँ मुरली को—

(१५) रूडी, रंगीली, मीठी व मधुरी कहती है, क्योंकि-

(३५) 'बंशी में कछु टोना' है जिससे,

(१७) सुनत बाँसुरी भई बावरी निकसन लागी साँसुरी।

(११) मुरली सुनत सब सुद बुद खोई, भूल पड़ी घर दारों मों।

(७) भई हों बावरी सुनके बांसुरी।

(२७) कलेजे म्हारे बांसुरी की धुन लागी, खान पान की सुधि न सखी री, कल न पड़े निसि जागी।

(५) मन रे मारुं मोरली ए मोह्युं, पेला बांस तणे कटके' उसकी ऐसी स्थिति होगई।

मुरली वृन्दावन में बजती है पर त्रिलोक भर में उसका स्वर गूँज उठता है—

(१६) वागे छे रे वागे छे वृन्दावन मुरली वागेछे, तेना शब्द त्रिलोक मां गाजे छे।

उस मुरली ने—

(६) मीराँ के प्रभु वश कर लीने' है ऐसी वह ब्रज गोपियों के लिये—

(६) सप्त सुरन तानिन की फाँसुरी, बनी हुई है।

यह सब कुछ होते हुए भी मुरली दुःख देने वाली भी है,

(२०) कानुड़ा तारी मोरली अमने दुःखड़ां दीए छे दोडी दोड़ी।'

ऐसी स्वार्थ और गर्व भरी मुरली को मीराँ खरी खोटी सुनाने से भी नहीं चूकती—

(१६) बन्सी तुम कवन गुमान भरी, तुम राधा से झगरी, जात पात हुँ तोरी मैं जानूँ, तू बन की लकरी।

(२२) चार आंगल की लाकड़ी, कोड़ी वाँको मोल। कृष्ण बजाई बाँसरी, व्हेगी मोला मोल।

यही नहीं जिसके कारण श्यामसुन्दर उसे व गोपियों को भूल भी जाते हैं उस कुटिल मुरली के प्रति सौतिया डाह के मारे हिंसात्मक भाव भी कुछ काल के लिये मीराँ के हृदय में आ जाता है—

(२२) जो मैं थाँने अशी जाणती तो लेती तोड़ मरोड़।

(२६) यहाँ मधुबन के कटा डारूँ बाँस, उपजे न बांस न बाजे मुरलिया।

१९—मुरली के पद

★

ब्रजभाव-प्रभाव　　　　　　　　१

मुरलियाँ कैसे धरे जिया धीर ।।०।।
मधुवन बाज वृन्दावन बाजी, तट जमुना के तीर ।
बैठ कदंब पर बंसी बजाई, थिर भयो जमुना नीर ।।१।।
दरद न जाने पीर ना पिछाने, श्याम बड़ा बेपीर ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आखिर जात अहीर ।।२।।

ब्रजभाव-उत्कंठा　　　　　　　　२ (गुज०)

चालोनी जोवा जइये रे, मा मोरली वागी ।।०।।
भर निद्रामां हुं रे सुतीती, झबकी ने जोवा जागी ।।१।।
वृंदावन ना मारग जातां, सामो मळ्यो सुहागी ।।२।।
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमल लेहे लागी ।।३।।

ब्रजभाव-प्रभाव　　　　　　　　३ (गुज०)

ए रे मोरली वृंदावन वागी, वागी छे जमनाने तीरेरे ।।०।।
मोरली ने नादे घेलां कीधां, मने कांइ कांइ कामण कीधां रे ।।१।।
जमना ने नीर तीर धेन चरावे, कांधे काळी-कांबळी रे ।।२।।
मोर मुगट पितांबर शोभे, मधुरीसी मोरली बजावे रे ।।३।।
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमळ बलीहारी रे ।।४।।

विनय　　　　　　　　४ (गुज०)

मोरलीए मन मोह्यां, मोहन तारी मोरलीए मन मोह्यां ।।०।।
तारे कारण व्हाला सर्वस त्यागी, त्रणे भुवन में तो जोयां ।।१।।

तारा सरखां प्रभु कोई नव दीठा, मुखडे मनडा मोह्यां ॥२॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमले चित प्रोया॥३॥

प्रेमालाप ५ (गुज०)

लीधां रे लटके, म्हारां मन लीधां रे लटके ॥०॥
गात्र भंग कीधां गिरधारी ए, जो मार्यां झटके ॥१॥
मन रे मारूं मोरली से मोह्युं, पेला वांस तणे कटके॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, हो रंग लाग्यो चटके ॥३॥

आतुरता ६ (गुज०)

वागे छे रे, वागे छे, पेला वनडामां मीठी वेणुं वागे छे,
दुर्जन नो डर लागे छे ॥०॥
सासु सुती मारी सुख निद्रामां, जाउंतोरे नणदल जागे छे ॥१॥
ससरो हमारो परम सोहागी,
दीयेरीओ छणछणो दिलमां दाझे छे ॥२॥
मीरां बाइ के प्रभु गिरधर ना गुण, जन्म मरण भे लागे छे ॥३॥

प्रभाव ७ (गुज०)

एक दिन मोरली बजाइ, कनैया एक दीन मोरली बजाइ ॥०॥
मोरली ना नादे मारो मन हर लीनो, ओम् की सुरता उठाइ॥१॥
गौओ तो सब घास ना खाये, × × × × ॥२॥
शर्वरी तो वळी स्तंभ भइ है, चंद्र गयो छुपाइ रे ॥३॥
मेघ घटाघट थई रही छे, बादरी कारी गैं वाही रे ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमळ चित्त धाइ रे ॥५॥

व्रजभाव-प्रेम ८ (गुज०)

मार्यां छे मोहनां बाण, वा'लीडे अमने मार्यां छे मोहनां बाण ॥०॥
तमारी मोरलीए मारां मनडां विंधायां, विंधायां तन मन प्राण॥१॥

वृन्दावन ने मारग जातां, हांरे मारो पालवडो यो ताण ॥२॥
जळ जमना जळ भरवा गयां'तां कांठले उभो पेलो का'न ॥३॥
मीरांबाई के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमळ चित्त आण ॥४॥

प्रेमालाप

भई हौं बांवरी सुनके बाँसुरी ॥०॥
श्रवण सुनत मेरी सुध बुध बिसरी।
लगी रहत तामें मनकी गाँसुरी ॥१॥
नेम धरम कोन कीनी ।
मुरलिया, कोन तिहारे पासुरी ॥२॥
मीराँ के प्रभु वश कर लीने।
सप्त सुरन तानिन की फाँसुरी ॥३॥

ब्रजभाव १०

बाजन दे गिरधरलाल मुरलिया बाजन दे॥०॥
सप्त सुरन सों मुरली बाजी कहुँ कालिन्दी तीर ।
सोर सुनत सुधि ना रही मेरी कित गागर कित चीर ॥१॥
बैठि कदम के चौंतरा सब ग्वालन लियो बुलाई ।
खेलत रोकत ग्वालिनी मुरली सबद सुनाई ॥२॥
पासा डाले प्रेमके मेरो मन धन लैगयो लूटि ।
मीराँ के प्रभु साँवरे तुम अब कहँ जैहो छूटि ॥३॥

ब्रजभाव ११

श्याम मुरली बजाई कुंजन मों ॥०॥
देश बिहाग बसंत किदारा । श्री नट कान्हर के सुरमों ॥१॥
मुरली सुनत सब सुद बुद खोई । भूल पड़ी घरदारों मों ॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । वारी जाउँ तोरे चरणन मों ॥

ब्रजभाव १२

मुरली बाजी तो सही, मेरे राधे गोपीनाथ की,

मुरली बाजी तो सही ॥०॥

अध गोकुल अध मथुरा नगरी, आसा लाग रही।
म्हारा नैणाँ में नीर भर आयो, जमुना उलट रही ॥१॥
एक दिन घर मेरे आयो साँवरियो, म्हें दधि मथत रही।
लूट लूट दधि खायो साँवरिया- हमने कछु न कही ॥२॥
मोर मुकुट कानों बिच कुंडल, पहिरो तो सही।
सज सोलह शृँगार श्याम घर, आवो तो सही ॥३॥
मैं दासी तोरे जनम जनम की, अब हरि शरण गही।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरणे लिपट रही ॥४॥

ब्रजभाव (प्रभाव) १३

कुण है सखी प्यारी कुण है सखी।

ऐसी बंशी बजाय रह्यो कुण है ॥०॥

बछवा खीर नीर तज दीनो, गउ तो चरे नहीं तृण है ॥१॥
खग मृग तो दोये पंछी मोह्या, मोह्या बनका बन है ॥२॥
शेष नाग भवन तजि आयो, सुण मुरली की धुन है ॥३॥
मीरांबाई के हरि गिरधर नागर, हरि के चरण चित लीन है ॥४॥

ब्रजभाव (प्रेमालाप) १४

बाँसुरी सुनौंगी मैं तो बाँसुरी सुनौंगी।

वो बंशीवाले को जाने न दूँगी ॥०॥

बंशीवाला मुझे एक कहेगा। एक के लाख सुनावौंगी ॥१॥
बिंद्राबन की कुञ्ज गलिन में भर भर फूल चुनौंगी ॥२॥
इत गोकुल उत मथुरा नगरी। बीचमें आय अड़ावौंगी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। चरण कमल बलि जावौंगी ॥४॥

प्रभाव   १५ (गुज०)

रूड़ी ने रंगी ली रे वहाला तारी वांसळीरे जी,
मीठीने मधुरीरे, मावा तारी मोरलीरे जी
एतो मारे मंदोरीये संभळाय-॥०॥
कानुडो ए काळोरे; बाइओ मारे रूदीये वस्यो ।
मुकी देने कान कुंवर मारां चीर ॥१॥
सरखी ने साहेली रे साथे पाणी नीसर्यारे जी ।
बेडलुं मेल्यु, सरोवरीयां तीरे पाळ ॥२॥
इंढोणी वळगाडी आंबलीआनी डाळमां रे जी ।
उभी नीरखु, नटवर दीनदयाल ॥३॥
हुं ते॰कांइ सुती रे, बाइओ भर नींदमारे जी ।
मोरली वागी झबकीने जागी माझम रात ॥४॥
गुरू ने प्रतापेरे, बाइ मीराँ बोलीयारे जी ।
देजो अमने साधुना चरणोमां वास ॥५॥

व्रजभाव-राधाभाव   १६

बन्सी तुम कवन गुमान भरी ॥०॥
अपने तन पर छेद पराये । बाला ते बिछुरी ॥१॥
जात पात हुँ तोरी मैं जानूँ । तू बनकी लकरी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । राधा से झगरी ॥३॥

व्रजभाव-विरह   १७

रस भरियां महाराज मोको आय सुनाई बांसुरी ।
सुनत बांसुरी भई बावरी निकसन लागी सांसुरी ॥१॥
रकत रती भर ना रह्यो रह्यो न मासा मांसुरी ।
तन तोरा भर ना रह्यो रही निगोड़ी सांसुरी ॥२॥
मैं जमुना जल भरन जातही सासु ननद की त्रासुरी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर मिलगे पूरी मनकी आसुरी ॥३॥

ब्रजभाव-प्रभाव १८

मन मेरा मोह्याजी बजाई कौन बैन ॥०॥
पट आभूषण सोई मैं भूली, अंजना भूल गई नैन ॥१॥
इन्द्रलोक चतर गुण भूल्या, चंदा भूल गया रैन ॥२॥
शेषरीनाग भवन तज आयो, सुणरियो मुरली की तानं ॥३॥
गावत बजावत गंधर्व भूल्या, वे पण भूल गया तान ॥४॥
ठौड़ ही ठौड़ आसन मुनि-जन का, वे पण भूल गया ध्यान ॥५॥
मीरांबाई के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणां में म्हारो ध्यान ॥६॥

ब्रजभाव-लीला १६ (गुज०)

वागे छे रे वागे छे, वृन्दावन मोरली वागे छे,
तेनो शब्द गगनमां गाजे छे ॥०॥
वृंदा ते वनने मारग जातां, वा'लो दाण दधिनां मागे छे ॥१॥
वृंदा ते वनमां रास रच्यो छे, वा'लो रासमंडळ मां बिराजे छे ॥२॥
पीळां पीतांबर जरकसी जामा, वा'ला ने पीळो ते पटको बिराजे छे।६।
काने ते कुंडळ मुस्तके मुगट,हांरे वा'ला मुख पर मोरली विराजे छे।४।
वृंदा ते वननी कुंजगलन मां, वा'लो थनक थै थै नाचे छे ॥५॥
बाइ मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण,वा'ला दर्शनथी दुःखडां भागेछे ।६।

ब्रजभाव-प्रेमालाप २० (गुज०)

कानुडा तारी मोरली अमने दुःखडां दीए छे दा'डी दा'डी ॥०॥
माझम रातनो,मधुर स्वरनो, व्हालाजी मुरलो कोणे वगाडी ।
हुंरे सुती'ती मारा शयन भुवन मां, मुंने निंद्रामाथी जगाडी॥१॥
कयोरे कबाडी तुने कापीने लाव्यो,व्हालाजी कयोरे सुतारे तुंने सँवारी
शरीर जोने ताडुं संघाडे चडावी,तारा,पंडडा मां छेद पडावी ॥२॥
मोरली कहे हुं कामणगारी व्हालाजो, छुं हुँ ब्रजकेरी नारी ।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, तनडा मां ताप समावी ॥३॥

ब्रजभाव (प्रभाव) २१

मेरे अंगना में मुरली बजाय गयो रे ॥०॥
छोटे छोटे चरण बड़े बड़े नैनाँ
वृंदावन की कुञ्जगलिन में मारी गयो सैना ॥१॥
मेरी आली मेरी आली कहो कित जाउँ ।
मुरली में गावै लै लै मेरो नाम ॥२॥
ऊँची नीची घाटी मोसे चढ़योई न जाय ।
मुरली की धुनी सुनी रह्योई न जाय ॥३॥
कित गई गैया कित गये ग्वाल,
कित गये बंशी बजावनहार ॥४॥
गोकुल गई गैया वृन्दावन ग्वाल ।
मथुरा में बंशी बजावनहार ॥५॥
घर आई गैया घर आये ग्वाल ।
अजहुँ न आये मेरे मदनगोपाल ॥६॥
मीराँ के प्रभु गिरधरलाल ।
पाये हैं दर्शन भई है निहाल ॥७॥

ब्रजभाव (प्रेमालाप) २२

बंशी वाजी मेरे दिल बस रही रा-लेचाल विरज का साँवरा ॥०॥
हरिया वनकी बंशरी रे निकली पर्वत फोड ।
जो मैं थाँने अशी जाणती तो लेती तोड मरोड ॥१॥
चार आँगल की लाकडी कोडी वाँको मोल ।
कृष्ण बजाई बंसरी व्हेगी मोलामोल ॥२॥
पीपल पूजन म्हें गई री अपणा कुलकी काज ।
पीपल पूज्याँ हरि मिले एक पंथ दो काज ॥३॥

थूँ से बृजकी बंशरी म्हें हूँ बृज की नार ।
दोनों एकाँ गाँव की रैस्याँ मतो विचार ।।४।।
बंशीवाला मोहना बंशी फेर बजाय ।
आ बंशी मनमोहनी लहर लहर जीव जाय ।।५।।
मीराँ मन माती फरे बाँध भक्त को मोड़ ।
दर्शन दीजो कृपा करजो नागर नंदकिशोर ।।६।।

ब्रजभाव (प्रभाव) २३

श्याम की बंशी जमुना पर बाज रही ।।०।।
नेवर हाथ में हाँस जो पग में ।
तो सुध बुध सघली बिसराई ओ ।।१।।
बेसर हाथ में मुनडी जो नाक में ।
तो करणफूल भुल आई ओ ।।२।।
साडी जो हाथ में लेहंगो जो गले में ।
तो चोली की कस तडकाई ओ ।।३।।
दाल अलूणी लूण खीर में ।
हरि उलट पुलट कर आई ओ ।।४।।
जल मांहि जावण दूध मांहि अणती ।
तो सुध बुध सघली बिसराई ओ ।।५।।
बालक ठाण में बछडा खाँख में ।
तो सुध बुध सघली बिसराई ओ ।।६।।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
चरण कमल लपटाई ओ ।।७।।

ब्रजभाव (प्रेम) २४

जमुना किनारे बंशरी महाराज ने बजाई ।
महाराज ने बजाई घनश्याम ने बजाई ।।०।।

सुती थी सुख सेज में भर नींद जगाई।
झबके उठी, जागत गोपाल पास आई ॥१॥
पुत्र छोड़ पति छोड प्रीत आपसे लगाई ।
सासु नणंद त्याग नेह आपसे लगाई ॥२॥
वृन्दावन की कुञ्जगली में गोपियां दोड आई।
रास के बिहारी मुझे रास तो रमाई ॥३॥
मीराँ दासी श्याम की सब संतन के मन भाई।
चलने की है तैयारी देर काहे को लगाई ॥४॥

व्रजभाव (प्रभाव) २५

बंसीने राधा मोही मोहि रे तोरी बंसी ने-बंसी ने राधा मोही ॥०॥
बछड़ाँ सब छाड़िके गैया बन जाय भजी,
पंछी सब सुनत गान कानन बस होई ॥१॥
ग्वालबाल विकल हाल तजके सब गोद वाल,
सुनत सुनत हो निहाल तानबान जोही ॥२॥
मीराँ के गिरधर गोपाल दरस देत नन्दलाल,
रैन दिवस ढूंढ़न को फिरत कान तोही ॥३॥

सेवाभाव २६

गिरधर की बंसी (मुरली) प्यारी जी ॥०॥
थारे थारे खातिर प्रभु बाग लगायो,
बाई केसर क्यारी जी ॥१॥
थारे थारे खातिर प्रभु महल चुणायो,
राखी चौसठ वारी जी ॥२॥
उण बारयाँ में राधेजी झाँके,
तब्बे खडे बनवारी जी ॥३॥

थारे थारे खातिर प्रभु सेज बिछाई,
थें पुरुष में नारी जी ॥४॥
आओ आओ प्रभुजी चौपड़ खेलाँ,
थें पासा में स्यारी जी ॥५॥
जो मोरे प्रभुजी कु भूख लगेगी,
बण जाऊँ छप्पन त्यारी जी ॥६॥
जो मेरे प्रभुजी कु प्यास लगेगी,
भर ल्याऊँ गंगाजळ झारी जी ॥७॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
चरण कमल बलिहारी जी ॥८॥

उत्कं. २७

कलेजे म्हारे बाँसुरी की धुन लागी ॥०॥
हौं अपने गृह काज करत रही । श्रवण सुनत उठ भागी ॥१॥
खान पान की सुधि न सखी री । कल न पडे निसि जागी ॥२॥
रैन दिनां गिरधरनलाल के । मीराँ रहै रंग पागी ॥३॥

लीला २८

इन काना की बंशी म्हांने लागे प्यारी माय ॥०॥
आज बिरज पर इन्दर कोप्यो, बरसे मूसलधारा ।
बाँवां नख पर गिरवर धारयो, डूबत बिरंज उबारा ॥
गऊ बछड़ा भीजे री माय ॥१॥
पाँव पयादे सब चल आये, सुन मुरली का बाजा ।
मृत्युलोक में टटियां छाई, जहाँ देवन का बासा ॥
ब्रह्मा विष्णु खडेरी माय ॥२॥

कूद पड़े कालीदह माँही, नागज्यो नाथ्यो काली ॥
जमुनाँ के नीराँ तीराँ धेनु चरावे, ओढे कम्मल काली ॥
तट जमुना कढेरी माय ॥३॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, गले बैजन्ती माला ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, ठाकुर बंसी वाला ॥

याकी सूरत पर बलिहारी माय ॥४॥

ब्रजभाव २६

कुरका कुरका तो बाजे हरि की मुरलियां, सुनोरी सखी
मेरा मन हर लिया ॥०॥
गोकुल बाजी बृन्दाबन बाजी, और बाजी जहाँ मथुरा नगरिया ।१।
तुम तो बेटे नंद बाबा के, हम बृखभान पुरा की गुजरिया ॥२॥
यहाँ मधुबन के काटा डारूँ बांस, उपजे न बांस न बाजे मुरलिया ।३।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल की लेऊंगी बलैया ।४।

शारदोत्सव (ब्रजभाव) ३०

बंशीवारा हो म्हांने लागे मुरली प्यारी ॥०॥
शरदपुनम की रेण सांवरा ऐसी मुरली बजाई ।
बंशीवट पे बंशी बाजी गगन मगन कर डारी ॥१॥
पग में हांश गले में पायल उलटे भूषणधारी ।
खीर में लूण दाल में मीठो उलट पुलट कर डारी ।२।
नर में रूप धरयो नारी को शंकर जटाधारी ।
मीराँ ने श्री गिरधर मिलिया चरण कमल बलिहारी ॥३॥

ब्रजभाव ३१ (गुज०)

नाचे नाचे नंदनो नानडीयो, ता थनक थनक ता थई ॥०॥
ताळ बंध ताळ वागे घुघरा घमके,
हांरे लाल मोरली बजावें लई ॥१॥

नारद नृत्य करंता आगे, हांरे नाचे राधा सखीओ लई ॥२॥
ब्रह्मा वेद भणंता आगे, हांरे त्यां सुर्यस्थंभी रह्यो मोही ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, हांरे एवी कृष्णजी ए मोरली
बजाई ॥४॥

व्रजभाव   ३२ (गुज०)

ए मोरली शीद वाई, धुतारा ए मोरली शीद वाई ॥०॥
ए मोरली मारे मंदिर संभळाई, काळजडुं गयुं कोराई ॥१॥
जल जमुना ना भरवा गया त्यां, पालव पकडी शीद साई ॥२॥
पर घेर वात पडी चर्चाय छे, सैयरो मां लजवाई ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमळ चित लाई ॥४॥

शरत्पुनम-व्रजभाव   ३३

घर छोडी दोडी वन जाय, शरदपून की बंसी बाजी ॥०॥
हींग डार्यो भात में, लुण खीर के मांहीं ।
कर कंकण पग में सोहे, घुंघर गले झबकाई ॥१॥
वांस में से निपजी, निकसी परवत फोड़ ।
जो जाणुं तुं वाजती तो, देती तोड़ मरोड़ ॥२॥
बृंदावन की कुंज गलि में, बोले दादुर मोर ।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, मील गयो नंदकिशोर ॥३॥

व्रजभाव   ३४ (गुज०)

दुःखडा दीये छे अमरे भारी रे, कानुडा तारी मोरली,
दुःखडा० ॥०॥
हुंरे सूतीती मारा भवन मां, सुतेला ने एणे जगाडी,
माजम रात नी झब्की ने जागी मोरली आ कोणे वगाडी ॥१॥

कोणे रबाडी कापीने लाव्यो कोणे संघाडे चडावी,
सूरो कबाडी लई आव्यो कापी ने, वन ना वृक्षेथी उतारी रे ॥२॥
सासु ससराथी छानी रे उठी, हळवे उघाडी बारी,
लाग जोई बहार नीसरी घर मां थी, शरद तणी रेन सारी रे ॥३॥
मोरली कहे ओ व्रजतणी नारी, वींध थी हुं छुं विंधनारी ।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, तुं जीतीने हुं हारी ॥४॥

व्रजभाव ३५

तेरी बंसी में कछु टोना, बंसरी बजाय मन मोहना ॥०॥
बेठ कदम पर बंसी बजाई, ठाडी रही यमुना ॥१॥
विंद्रावन में रास रच्यो है, राधे संग रमना ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चित्त लाग्यो चरना ॥३॥

प्रभाव ३६

श्याम सुन्दर गोपीनाथ बृन्दावन राजे, साजन मोरली वाजे ।०।
सप्त सुर सहीत राग अति तान जगावें ।
मोहे पशु पंछी द्रुम मुनिजी ध्यान भुलावे ॥१॥
मुरली को घोर सुनत गोपी उठी धाई ।
मीराँ प्रभु गिरधर मिले तन की ताप बुझाई ॥२॥

सेवा-भाव ३७

बंसरी बजावे घनश्याम कदम के नीचे ॥०॥
जमुना के ओरे धोरे धेनु चरावे, धेनु चरावे घनश्याम ॥१॥
जमुना के ओरे धोरे गैंद रमावे, गैंद रमावे घनश्याम ॥२॥
सोने की थाली में भोजन परोसूँ, जीमे जीमावे घनश्याम ॥३॥
सोने की झारी में गंगाजल पानी, पीले पीलावे घनश्याम ॥४॥
हिंगळु को ढोल्यो मशरू की सीरक, पोढे पोढावे घनश्याम ॥५॥

सोने की थाली में पान सुपारी, चाबे चबावे घनश्याम ॥६॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरणों में शीश नमावें घनश्याम ।७।

ब्रजभाव ३८

प्यारी मैं ऐसे देखे श्याम । बांसुरी बजावत गावत कल्याण ॥०॥
कब की मैं ठाढी भैयां सुध बुध भूल गैयां ।
छौने जैसे जादू डारा भूलै मोसैं काम ॥१॥
जब धुन कान पैया देह की ना सुध रहिया ।
तन मन हर लीनो विरहों वाले कान्ह ॥२॥
मीराँ बाई प्रेम पाया गिरिधर लाल ध्याया ।
देह सों विदेह भैयां लागो पग ध्यान ॥३॥

पदों के शब्दार्थ-भावार्थ-विशेषादि

—(ः)★(ः)—

३—विशेषः—इस पद में मीरांबाई ज्यों 'मोरली ने नादे घेलां कीधां, मने कांई कांई कामण कीधां रे' तथा 'मधुरी सी मुरली' इन शब्दों द्वारा मुरली के प्रभाव को व्यक्त करती है त्यों गुजरात के ब्रजरस-मर्मज्ञ भक्तकवि दयाराम भी बंशी के लिये ठीक ऐसे ही शब्दों का प्रयोग करते हैं ।

यथा—'कामणगारी तारी वांसळी, कामण कीधुं छे भारी रे, मोरली ने नादे मन मोही लीधुं छे' तथा 'मुरली नाद मधुरो' ।

४—विशेषः—इस पद की टेर के लिये 'नादे वेधी छे मारी पांसळीरे लोल', प्रथम चरण के लिये, 'तालाबेली लागी छे मारा तनमां रे लोल, गोठतुं न थी कंई भुवन मां रे लोल' एवं द्वितीय चरण के लिये 'सखी, मने मोहन लागे छे घणो मीठडोरे लोल, अवर एवो तो नथी दीठड़ोरे लोल' कहकर भक्त कवि दयाराम भी इस पदानुगत भाव को ही व्यक्त करते हैं ।

६—विशेषः—श्यामसुन्दर की मुरली सुनकर अनुरक्त हुई किसी गोपी को अपने प्रियतम के दर्शन को जाने में घर की एवं सांसारिक परिस्थिति किस प्रकार प्रतिकूल-बाधक है, यह गोपी भाव मीरांबाई ने इस पद में व्यक्त किया है ।

मुरली की मधुर तान से मोहित होकर कोई गोपी चुपके से जाना चाहती है पर आत्मीयजनों का भय तथा दुष्टजनों द्वारा ईर्ष्या की आशंका उसके हृदय को अस्थिर कर देती है, देखिये भक्त दयाराम के ये शब्द-प्रयोग भी कितने समान भावात्मक हैं;:—

'सासरिआमां सासुजी ठपको आले,
नणदी मारी बोल बोले घणुं बाळे,
मारे मारा प्रभुजी बिना नव चाले,' तथा
'अदेखा लोक करे अदेखाई' ।

७—विशेषः—इस पद का प्रथम चरण निर्गुण-साधन की ओर लक्ष्य करके कहा गया है। ॐ की सुरता जगाना, जीव-हंस का 'सोहं-सोहं' यह उलटा जाप जपना, शांभवी मुद्रा द्वारा अनाहत नाद को सुनना आदि सब निर्गुण उपासना के ही अन्तर्गत है अथवा यों कहा जाय कि एक ही प्रकार के साधन के पर्यायवाची शब्द हैं। इस भाव को लक्ष्य करके भक्त दरियाव साहब ने गाया है:—

मुरली कौन बजावे हो, गगन मंडळ के बीच ।
त्रिकुटी-संगम होयकर, गंगजमुन के घाट ।
या मुरली के शब्द से, सहज रचा वैराट ॥
गंग जमुन बीच मुरली बाजै, उत्तर दिसिधुन होहि,
वा मुरली की टेरहि सुनसुन, रही गोपिका मोहि···॥

१५—विशेषः—इस पद में मीरांबाई ने मुरली के लिये ४ विशेषण लगाये हैं। रूड़ी, रंगीली, मीठी एवं मधुरी। देखा जाय तो इन चारों शब्दों में कोई विशेष अन्तर नहीं। प्रायः एक ही अर्थ के ये पर्यायवाची शब्द हैं फिर भी मीरांबाई ने किसी उद्देशपूर्वक ही यह प्रयोग किया है ऐसा प्रतीत होता है।

संचरदधर सुधा मधुरध्वनि मुखरित मोहन वंशम् ॥(गी.गो.)

'निकसती है अधर की सुधा जिससे ऐसी मधुर-ध्वनि से जिन्होंने बंशी बजाई है।' ऐसी कृष्ण-मुरली के बजने पर भला कौन ऐसा प्राणी होगा जिसके काया, वाचा, मन परमानन्द से सरावोर नहीं होंगे? फिर और भक्तों में, और मीरांबाई में बहुत अन्तर भी तो है। और भक्तों को भले ही ध्यानावस्था में अथवा कल्पना द्वारा बंशी का कुछ अनुभव हुआ हो परन्तु पूर्वजन्म की गोपिका मीराँ तो व्रजरस की प्रत्यक्ष भुक्त भोगिनी थी। उसने जो मुरली का अलौकिक आनन्द लूटा वह औरों के भाग्य में कहां से! परन्तु तब भी 'मूकास्वादनवत्' सूत्र के अनुसार बंशी की अनन्त महिमा को और उसके अनुभूत आस्वादन को भला वह पूर्ण-रूप से कैसे व्यक्त कर सकती है। शब्दों में इतनी सामर्थ्य

ही कहाँ ! वह अपनी ही धुन में अमृतवर्षिणी मुरली के लिये विशेषण प्रयोग किये ही जाती है पर उसे तृप्ति ही नहीं होती। 'रुड़ी, रंगीली, मीठी और मधुरी, यह प्रयोग इसी भावना का ही द्योतक है।

अन्तर्मोहनमौलिघूर्णनचलन्मन्दार विस्रंसन
स्तब्धाकर्षण दृष्टिहर्षण महामन्त्रः कुरङ्गीदृशाम।
दृप्यद्दानवदूयमानदिविषद् र्वारदुःखापदां
भ्रंशः कंसरिपोर्व्यपोहयतुवोऽश्रेयांसि वंशीरवः॥

नवम सर्ग (गीत गोविन्द)

भावार्थः—मृगनयनी स्त्रियों के अन्तःकरण के मोहित हो जाने से 'साधु साधु कह कर शिर कंपाते समय गूँथे हुए पारिजात के पुष्पों को नीचे गिराने वाला, कठोर को भी द्रवित करने वाला, दृष्टि को प्रसन्न करने वाला, उन्मत्त दानवों के द्वारा दुःखित हुए देवताओं की अपरिहार्य कष्टापत्ति को नाश करने वाला महामन्त्र स्वरूप कंस निसूदन कृष्णचन्द्र का वंशीरव तुम्हारे अमंगलों को नाश करे।

कविवर-भक्त जयदेव के उपरोक्त श्लोकों के भावों द्वारा मीराँ का शब्द प्रयोग समझमें आने जैसा है। देवों के दुःखों का एवं भक्तों के भय का नाश करने वाली बंशी के मंगल और वरदान रूप भाव को मीराँ ने 'रुडी' कह कर, इच्छा से रहित जो स्तब्ध हैं उनके भी आकर्षक एवं उन गोपियों के नेत्रों के उत्साह प्रेरक व उमंग जनक प्रभाव के लिये 'रंगीली' कहकर, मृगनयनी स्त्रियों के मन का मोहक और 'साधु साधु' कहकर शिर के कँपाने से गूंथे हुये पारिजात पुष्पों को नीचे गिरानें वाले मुरली के इस मनोमुग्धकारी और सुधासम रसास्वादक प्रभाव के लिये 'मीठी' एवं बंशी ध्वनि सुनकर सब नायिकाओं का कामदेव से युक्त हो जाने के मद भरे प्रभाव को मीरांबाई ने 'मधुरी' कहकर व्यक्त किया है।

१६—**विशेषः**—भक्तवर सूरदासजी भी मीराँ के स्वर में स्वर मिलाते हैं:—

'मुरलिया काहे गुमान भरी ।
जात पात हुँ तोरी मैं जानूँ, तूँ बनकी लकरी ।।

भक्त कवि दयाराम भी गोपी द्वारा यही कहलाते हैं:—

तूं तो जंगल काष्ट तणों कटको, रंग रसिये कीधो रंग
चटको, अली ते पर आवड़ो शो लटको ।

भावार्थ:—हे बंशी ! तूं तो वन के बांस का टुकड़ा मात्र है। परन्तु रसिक शिरोमणि श्याम सुन्दर ने तुझे अपना लिया इसी से तेरा महत्व बढ़ गया है, इस पर क्यों इतना इतरा रही है !

१७—**विशेष:**—कहीं बंशी-ध्वनि गोप रमणियों के आनन्दोल्लास का कारण बनती है तो कहीं विरह भाव को भी उकसाती है। इस पद में उस रस भरी मुरली ने किसी गोपी की विरह में कैसी दयनीय दशा करदी है, यहाँ तक कि देह का रक्त-माँस भी सूख गया है पर निर्लज्ज-प्राण अभीतक प्रिय मिलन की आशा में अटके ही रह गये । अन्त में गोपी के प्रेम की विजय होती है जब कि वह जमुना जल लेने जाती है वहाँ श्याम सुन्दर से मिलन होकर उसकी आशा पूर्ण होती है ।

१६—**विशेष:**—यह गरवी गुजरात में बहुत प्रसिद्ध है। इसकी टेर 'तेनो शब्द गगन मां गाजे छे' और भक्त दयाराम के पद की 'एनो शब्द गगन मां गाजे छे' ये दोनों कड़ियाँ समान प्राय हैं।

२०—**विशेष:**—इस पद की 'मीझम रातनी, मधुर स्वरनी, व्हालानी, मुरली कोणे वगाड़ी' कड़ी से तुलना करिए:—

'मध्य रात्रिए, मधुरीरे, वहालजीए, वांसलड़ी वाही (बजाई) रे ।

नरसिंह मेहता

२२—**विशेष:**—इस पद के द्वितीय चरण के लिये देखिए १६ वें पद की विशेष टिप्पणी ।

५ वें चरण में एक ही साथ मुरली के दो गुण बताये हैं, प्रथम मन मोहिनी तो है ही साथ ही 'लहर लहर जीव जाय' अर्थात् विष-ज्वाला में जलाकर प्राण त्याग कराने वाली भी। इसके साथ तुलना करिये:—

'चटको लाग्योरे फेरी डंक थी ना उतरे।' कवि दयाराम।

मुरली का यही प्रभाव भक्त रसखानजी के शब्दों में देखिए:—

ज्योंही नर त्योंही नारी तैसी यै तरुनि बारी,
कहिये कहारी सब व्रज बिललायगो।
जानिये न आली यह छोहरा जसोमति को,
बाँसुरी बजायगो कि विष बगरायगो॥

मीराँ की गोपी की वेदना:—

'लहर लहर जीव जाय' के साथ रसखान की गोपी का 'विष बगरायगो' का कैसा विलक्षण भाव साम्य है जिसे भावना भरा हृदय ही कुछ अनुभव कर सकता है।

२३—नेवर······ ···तड़काई ओ=मुरली ध्वनि सुनकर गोपियाँ कृष्ण-दर्शन की आतुरता में अधीर होकर किस प्रकार अपना शृंगार उलट पलट पहन लेती हैं उस भाव को तीन चरणों में व्यक्त किया है। अणति=विरोधी द्रव्य की वस्तु। ठाण में=स्थान में (ढोरों के बांधने के) खाँख में=काँख में। दाल··· ·····खाँख में=उसी प्रकार भोजनादि बनाने में सामग्रियों का किस भांति अव्यवस्थित उपयोग करती हैं तथा उसी व्याकुलता में बालक और बछड़े का भेद तक भूल जाती हैं यह चौथे, पाँचवे व छठे चरणों में बताया है।

२५—**विशेष:**—इस पद के प्रथम चरण की तुलना करिए १३ वें पद के प्रथम व दूसरे चरण के साथ।

इन्हीं भावों को बंगाली-भक्त कवि प्रेमदास के शब्दों में सुनिये:—

सब धेनु-नाम कइया अधरे मुरली लइया
डाकिया पुरिल उच्च स्वरे।
सुणिया वेणुर रव धाय धेनु वत्स सब
पुच्छ फेली पिठेर उपरे॥
धेनु सब सारि सारि हाम्बा हाम्बा रव करि
दाँडाइल कृष्णेर निकटे।
दुग्ध स्रवि पड़े बाँटे, प्रेमेर तरङ्ग उठे,
स्नेहे गाबी श्याम-अङ्ग चाटे॥

२६—कुरका कुरका=रह रह कर।

विशेष:—अपने प्रियतम के प्रेम में भाग बटाना कोई भी सहधर्मिणी-अनन्य प्रेमिका सहन नहीं कर सकती। समस्त नारी-मानस में यह भाव पूर्ण रूप से जाग्रत रहता है। अपने प्रियतम को वश करके उनकी अधर-सुधा का आकण्ठ पान करने वाली बंशी को, भला एक नारी सहानुभूति पूर्ण दृष्टि से देख ही कैसे सकती है। भक्त सूरदासजी के शब्दों में तो गोपी वंशी को चुरा लेना ही पर्याप्त समझती है यथा:—

'सखी वाकी बन्सी लीजे चोर।
जिन गोपाल किये अपने वश प्रीतिसबन की तोर।
अधरन को रस पियत मुरलिया हम तरसत निशि भोर॥

परन्तु मीराँ जैसी श्याम सुन्दर की अनन्य प्रेयसी इतने ही से भला कैसे सन्तोष कर लेती। उसके लिये तो उस वैरिणी बंशी का अस्तित्व ही कण्टक समान हो रहा है। देखिये वह क्या कहती है:—

'यहाँ मधुबन के कटा डारूँ बाँस, उपजे बांस न बाजे मुरलिया।
(इस पद का ३रा चरण)

'जो मैं थाँने अशी जाणती तो लेती तोड़ मरोड़।'

देखिए, भक्त वर रसखानजी ने भी यही भाव-चित्र कितना सरस खींचा है:—

जलकी न घट भरैं मग की न पग धरैं,
घर की न कछु करैं बैठी भरैं साँसुरी।
एकै सुनि लोट गई एकै लोट-पोट भई
एकनिके दृगन निकसि आये आँसुरी॥
कहे रसनायक सो व्रजबनितानि विधि,
बधिक कहाये हाय हुई कुल हाँसुरी।
करिये उपाय बांस डारिये कटाय, नाहिँ
उपजैगो बाँस नाहिँ बाजै फेरि बाँसुरी॥

३०—नरमें.........जटाकारी=मुरली की दिव्य तान सुनकर रास-मण्डल में प्रवेश पाने की लालसा से स्वयं शंकर भगवान ने गोपीश्वरी का स्वांग लिया।

३२—**विशेष:**—इस पद की टेर व प्रथम चरण के भाव को भक्त-नरसिंह मेहता के शब्दों में सुनिये:—

'बांसलड़ी वाई मारे वहाले, मंदिरयां न रहेवायरे।
व्याकुल थई ने वहाला ने जोवा शु करुं उपायरे॥'

भक्तवर रसखानजी के निम्न सवैये में देखिए कैसा भाव साम्य है:—

कौन ठगोरी करी हरी आजु बजाय के बाँसुरिया रस भीनी।
कान परी जिनके तिनके तिन लोक की लाज बिदा कर दीनी॥
घूमै घरी घरी नंद के द्वार नवीनी कहा कहौं बाल प्रवीनी।
जा व्रजमंडल में रसखानसु कौन भटूजो लटू नहिं कीनी॥

३४—**विशेष:**—जब गोपी को विश्वास हो जाता है कि मुरली ही श्याम सुन्दर को मिलाने में सहायिका हो रही है, इसीसे उनकी गति विधि जानी जाती है और एक प्रकार से प्रियतम के पास लेजाने के लिये यह निमन्त्रण रूप है तब उसके उपकारों को मानों याद करती हुई अन्तिम चरण में गोपी कह उठती है:—

तुं जीती ने हुं हारी'।

कवि दयाराम भी गोपी द्वारा इसी भावना को व्यक्त करते हैं:—

'दयाना स्वामी ! तमो शामला ! जीत्या ने अमो हारी रे।

विभाग १८ प्रकीर्ण

• समस्त प्रकृति में एक मात्र परमात्मा की अनन्त शक्तियाँ अपना कार्य कर रही हैं। वे ही सब देवी देवता हैं। इनमें से किसी भी अपने इष्ट की उपासना करते हुए औरों के प्रति सम्मान, श्रद्धा व पूज्यभाव के रहने से एक इष्ट की अर्थात् अनन्योपासना कदापि खंडित नहीं होती।

* भूमिका *

*

इस प्रकीर्ण विभाग के पदों में विशेषकर देवी-देवताओं एवं महापुरुषों के लीला-चरित्र-प्रसंग वर्णित हैं।

यहाँ पर यह प्रश्न हो सकता है कि विवाह के पश्चात् कुल देवी पूजन के प्रसंग पर, जब मीरांबाई ने स्पष्ट रूप से दृढ़ता पूर्वक यह कह कर पूजा करना अस्वीकार कर दिया था कि—

"म्हारे गुरू गोविंद री आण गौर ने ना पूजां" (देखो वि० २ पद सं० २) अर्थात् उसके आराध्य एक मात्र गिरिधर गोपाल ही थे और एक इष्ट की ही उसकी उपासना थी, तो अन्य देवी-देवताओं पर उसने पद रचना क्यों की ?

इसी प्रकार श्री गोस्वामी तुलसीदासजी के सम्बन्ध में यह किंवदन्ती प्रचलित है कि एक बार बृन्दावन में श्री कृष्ण मंदिर में श्री विग्रह के सन्मुख उन्होंने यह कहा था:—

कहा कहौं छवि आपकी, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक जब नवै, धनुष बाण लो हाथ॥

कहते हैं कि उनकी अनन्य निष्ठा से प्रसन्न होकर भगवान् ने भक्त भावनानुसार दर्शन दिये थे, जैसे कि:—

मुरली मुकुट दुराय के, नाथ भये रघुनाथ।
लखि अनन्यता भक्ति की, जन को कियो सनाथ॥

यही श्रीराम के अनन्योपासक गुसाँईजी विनय पत्रिका में कई देवी-देवताओं की प्रारम्भ में स्तुति-विनय करते हैं। यही

नहीं उन्होंने श्री कृष्ण गीतावली की भी रचना की है जिसमें श्री कृष्ण-लीला का सुन्दर वर्णन है।

श्री मीराँदेवी और गुसाँई तुलसीदासजी के उपयुक्त पद एवं दोहे के प्रसंगों को कुछ लोग इसलिये 'क्षेपक' मानते हैं कि सामान्य स्तर से ऊपर उठे हुए महापुरूषों में लौकिक भेद और संकीर्णता का होना संभव नहीं। वास्तव में यह ठीक भी है। तभी गोस्वामी द्वारा 'श्रीकृष्ण गीतावली' और मीरांबाई द्वारा अन्य देवी-देवताओं के पदों की रचना की गई।

मीरांबाई का यह कहना कि:—

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके शिर मोर मुकुट मेरो पति सोई॥

(विं० ४ पद सं० १०)

अवश्य ही यह उसकी एक इष्ट उपासना अथवा अनन्यता का द्योतक है, और इसीलिये जब उसने सीधा अपने प्राणप्यारे श्यामसुन्दर से ही सम्बन्ध बाँध लिया और वे ही सर्व-समर्थ, उसके परम प्रियतम एवं सर्वस्व हो चुके तब केवल अपने लौकिक सुहाग के लिये उसे अन्य देवी-देवता की पूजा की आवश्यकता ही क्या! इस परिस्थिति में यदि वह लौकिक जातीय प्रथा के अनुसार की जाने वाली पूजा का विरोध करती है तो कोई अस्वाभाविक प्रतीत नहीं होता। और मीरांबाई की अन्य देवी-देवताओं की पद-रचना के लिये तो यही दृष्टांत पर्याप्त है कि जिस प्रकार एक मात्र अपने स्वामी से अनन्य प्रेम सम्बन्ध के होते हुए भी कुलवधू, अपने पति के अन्य सम्बन्धी जनों के प्रति भी आदर एवं सेवा का भाव रखती है, वैसे ही मीरांबाई

ने यदि, जैसा कि स्वरचित 'नरसी के मायरे' में प्रारम्भिक मंगलाचरण में श्रीगणेशजी की स्तुति की है एवं प्रसंग-प्रसंग पर अपनी अन्य रचना के समय अथवा यात्रा में देवी-देवता के दर्शन करने पर उनके गुणगान किये हैं तो कोई असंगत नहीं कहा जा सकता। क्योंकि तत्त्वज्ञानी और अभेद बुद्धि संत-महात्मा यह पूर्ण रूप से जानते हैं कि:—

आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम् ।
सर्व देव नमस्कारं केशवं प्रति गच्छति ।।

के अनुसार सब देवताओं को किया गया प्रणाम एक मात्र उस परमात्मा को ही प्राप्त होता है। अस्तु।

इस विभाग के पदों में श्री गणेश, श्री राम-सीता, श्रीशिव-अंबा, श्री कृष्ण-सत्यभामा व रुक्मिणी, श्री जगदीश एवं श्री प्रज्ञाजी आदि देवी-देवताओं तथा श्री ध्रुव, सुदामा, शबरी एवं श्रीचैतन्य महाप्रभु आदि भक्तों के लीला प्रसंग वर्णित हैं।

पद सं०, २, १७, २०, २६, २७ व २८ ये ६ पद गुजराती भाषा के हैं।

१७ वें गुजराती पद में, पारिजात वृक्ष को लेकर जो महारानी सत्यभामा श्री कृष्ण पर रूठ गई थीं, वास्तव में मीरांबाई ने उसका सरल और व्यावहारिक भाषा में बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्र खींचा है। वस्तु स्थिति का यह यथार्थ भाव-प्रदर्शन वास्तव में इतना प्रभावशाली है कि इसे पढ़ते-पढ़ते हृदय उमड़ आता है, मर्मस्थान पर कोमल आघात सा अनुभूत

होता है और परस्पर विरोधी भाव भीतर ही भीतर टकरा कर अन्त में अनायास ही मन सत्यभामा के पक्ष की पुष्टि करता हुआ उसके साथ पूर्ण हार्दिक सहानुभूति प्रदर्शित करने लग जाता है और साथ ही साथ श्री कृष्ण पर उनके निष्ठुर और निर्मोही होने का आक्षेप करने को बाध्य हो जाता है।

कोई भी नारी अपने पति के प्रेम को बँटता हुआ देख कदापि मूक रह कर सह नहीं सकती। मानव स्वभाव में ही नहीं अपितु देवादिकों में भी यही मनोवृत्ति देखने में आती है। ऐसे अनेकों दृष्टांत पुराणादि ग्रंथों में देखे जा सकते हैं। नारी के भाव संस्कारों को—उसके यथार्थ मानस को वास्तव में तो केवल नारी ही समझ सकती है।

मीरांबाई ने किस सरसता के साथ सत्यभामा के हृदय की मर्मव्यथा की इस पद में अभिव्यक्ति की है सो देखते ही बन पड़ता है।

१६—प्रकीर्ण के पद

★

श्री चैतन्य महाप्रभु १

अब तौ हरी नाम लौ लागी ।
सब जग को यह माखन चोरा, नाम धरयो बैरागी ॥०॥
कित छोड़ी वह मोहन मुरली, कित छोड़ी सब गोपी ।
मूँड मुँडाई डोरि कटि बाँधी, माथे मोहन टोपी ॥१॥
मात जसोमति माखन कारन, बाँधै जाके पाँव ।
स्याम किसोर भयो नव-गौरा, चैतन्य जाको नाँव ॥२॥
पीतांबर को भाव दिखावै, कटि कोपीन कसै ।
गौर-कृष्ण की दासी मीराँ, रसना कृष्ण बसै ॥३॥

देव-आवाहन २ (गुज०)

बोलो मेरी रसना हरी हरी तुम बोलो मेरी रसना हरी हरी ॥०॥
गरूडे बेसीने गोवींदजी पधार्या शंख चक्र गदा धरी धरी ॥१॥
हंस वाहन करी ब्रह्माजी पधार्या साथे सुध बुध सुंदरी ॥२॥
उंदरे बेसीने गणपति पधार्या साथे सुध बुध सुंदरी ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गीरधर नागर एक वार कहोने श्री हरी ॥४॥

देव-आवाहन ३

निज मंदिरया में घूमता पधारो गनपत ॥०॥
ब्रह्मा भी आवो विष्णु भी आवो, संग में पधारो सरस्वती ॥१॥
नांदे चढ़्या शिव शंकर पधारो, संग में पधारो पार्वती ॥२॥
राम भी आवो लच्छमण आवो, संग में पधारो सिया सती ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, म्हाने देवो प्रभु भक्ती ॥४॥

श्रीगणेश स्तुति ४

विघ्न हरण गवरी के नन्दन, सुमर सदा सुख पाई ॥०॥
जो नर उठ गणपति को सुमरे, विघ्न व्याधि मिटाई।
अन्न धन लक्ष्मी वधे चोगणा, मन वाँछित फल पाई ॥१॥
भाल तिलक अरू छत्र विराजे, कुंडल की छब छाई।
गल सोहे मोतियन की माला, केशर तिलक बनाई ॥२॥
थाल भर्यो कंचन को मोदक, मेवा और मिठाई।
रिद्धि सिद्धि तो चमर ढुलावे, जीमो गजानन्द राई ॥३॥
अष्ट सिद्धि नव निधि द्वारे, रहे सदा थिरताई।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सुमर सदा सुखपाई ॥४॥

श्रीजानकी-स्तुति ५

ऊभा ऊभा जानकीजी गणपत सुमरे, मारा पिताजी की बदनामी,
धनुष नहीं टूटो, राजदुलारी धनुष नहीं टूटो, रेउँला कुंवारी ॥०॥
दोई दोई भाई अयोध्या से आया।
नरखण गई जनकपुर की नारी ॥१॥
दोई दोई भाई हरख्या जो फरे।
बलखी फिरे जनकपुर की नारी ॥२॥
डांवा कर से धनुष उठायो। तीन टूक कर डार्या ॥३॥
धनुष अब टूटो । परण्यां जी धनु धारी ॥४॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। हरि चरणा बलिहारी ॥५॥

श्रीजगदीश ६

आप तो सांचा छो जी जगदीश।
आप तो बड़ा हो जगदीश, दर्शन देवो विसवावीस ॥०॥
सनमुख तो गरूडजी विराज्यां, भक्ति देवो ने जगदीश ॥१॥

झाड खंड आप विराज्यां, रतना सागर बीच ।
दस बीस तो भजा चढ़े, भक्ति देवो ने जगदीश ॥२॥
झाड खंड आप विराज्यां, करी दुष्ट पर रीस ।
सींग पोळ पर पंडा लोटे, दाल भात खीर ॥३॥
शबरी वन में सेवा कीन्ही, बोर आरोग्या विसवावीस ।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणा म्हारो सीस ॥४॥

शबरी ७

अच्छे मीठे चाख चाख, बोर लाई भीलणी ॥०॥
ऐसी कहा अचारवती, रूप नहीं एक रती ।
नीच कुल ओछी जात, अति ही कुचीलणी ॥१॥
झूठे फल लीन्हें राम, प्रेम की प्रतीत जाण ।
ऊँच नीच जाने नहीं, रस की रसीलणी ॥२॥
ऐसी कहा वेद पढ़ी, छिन में विमाण चढ़ी ।
हरिजी सूँ बाँध्यो हेत, वैकुण्ठ में झूलणी ॥३॥
ऐसी प्रीत करे सोई, दास मीराँ तरै जोई ।
पतित-पावन प्रभु, गोकुल अहीरणी ॥४॥

ध्रुवजी ८

ध्रुवजी राजा बैठ चाल्या विमान ॥ भक्ति के परमांण ॥०॥
अन्न पांणी ध्रुवजी त्याग्या, खावे सूखा पान ॥१॥
सात समँद के परिक्रमा जो दीन्ही, तार्यो सौ परिवार ॥२॥
सामाँ जो मलिया नारद मुनि, सन्मुख मल्या है भगवान ॥३॥
माता तारी उपदेश लग्योरी, लगा विरह का बान ॥४॥
मीरांबाई के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ में ध्यान ॥५॥

सुदामा ९

देखत राम हँसे सुदामाँ कूँ देखत राम हँसे ।।०।।
फाटी तो फूलड़ियाँ पाँव उभाणे, चलतैं चरण घसे ।।१।।
बालपणे का मित सुदामाँ, अब क्यूँ दूर बसे ।।२।।
कहा भावज ने भेंट पठाई, ताँदुल तीन पसे ।।३।।
कित गई प्रभु मोरी टूटी टपरिया, हीरा मोती लाल कसे ।।४।।
कित गईं प्रभु मेरी गउअन बछिया,
द्वारा बिच हसती फसे ।।५।।
मीराँ के प्रभु हरि अबिनासी, सरणे तोरे बसे ।।६।।

तुलसीदास १०

स्वस्ति श्री तुलसी गुण-भूषण दूषण हरण गोसाँई ।
बारहिं बार प्रणाम करहुँ अब हरहु शोक-समुदाई ।।१।।
घर के स्वजन हमारे जेते सबन उपाधि बढ़ाई ।
साधुसंग और भजन करत मोहिं देत कलेश महाई ।।२।।
सो तो अब छूटत नहिं क्यों हूँ लगी लगन बरियाई ।
बालपने में मीराँ कीन्हीं गिरधरलाल मिताई ।।३।।
मेरे मात तात सम तुम हो हरिभक्तन सुखदाई ।
मोकों कहा उचित करिबो अब सो लिखिये समुझाई ।।४।।

प्रभु पद-महिमा ११

चरण रज महिमा मैं जानी ।।०।।
जिहि चरणन से गंगा प्रकटी, भगीरथ कुल को तारी ।।१।।
जिहि चरणन से विप्र सुदामा, कंचनपुरी कर डारी ।।२।।
जिहि चरणन से अहल्या उधारी, गौतम की पटरानी ।।३।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल लिपटानी ।।४।।

रुक्मिणी-विनय १२

माधोजी आयां ही सरैगो राणी रूकमणि को भरतार ॥०॥
लिखि पतिया द्विज हाथ पठावो द्वारका नै गमन करैगो ॥१॥
बड़े बड़े भूप महाबल जोधा कुणसैं कोंण घटैगो ॥२॥
यो सिसपाल चंदेरी को राजा कूड़ी साखि भरैगो ॥३॥
मीराँ कहै यूँ रूकमणि कहत हैं थांको ही बिड़द बजैगो ॥४॥

श्री राम-स्तुति १३

मेरे तो एक रामसिया जजमान ॥०॥
कौन बने जन जन का भिक्षुक, घर घर करत बखान ॥१॥
राम लखन अरू भरत शत्रुहन, अगवाणी हनुमान ॥२॥
मीराँ के प्रभु राम सियावर, तुमही कृपानिधान ॥३॥

रूक्मिणी-विनय १४

रुकमणी री लाज राखो, राखोला म्हाराजि आजि
रूकमण की लाज राखो ॥०॥
माता कै मैं घणीं पियारी, नाहीं दोस पिता को ॥१॥
रूकमइयौ सिसपाल बुलायौ, नहिं मुख देखूं वाको ॥२॥
थाँका बिड़द कूं लोग हँसैयो, जिव जावैगो म्हाँको ॥३॥
मेरा स्याम कूँ कृष्ण बतावै, नारद मुनियों भाखो ॥४॥
मीराँ कहै यूं रूकमणि कहत है, ऊंच नीच प्रति राखो ॥५॥

श्री शिव-स्तुति १५

भोळानाथ दिगंबर शंभु, ये दुःख मेरा हरो रे ॥०॥
चंदन चढ़ावुं बिल्व पतियां चढावुं मैं,
विनती कृपानिधान चित्त धरो रे ॥१॥
अर्धांगे पार्वती गजानन,
शिर पे गंगा व्हे मेरे उर भरो रे ॥२॥

मीराँ कहे प्रभु पैया परूं तेरी,

एक भरोसो मोपे कृपा करो रे ॥३॥

विनय १६

सुरत पर वारी जाऊं नागरनंदा ॥०॥

सब देवन में कृष्ण बड़ा है, तारन में ज्युं चंदा।

सब सखियन में राधा बड़ी है, तीर्थन में बड़ी गंगा ॥१॥

सब भक्तन में भरत बडा है, जोधन में हनुमंता।

मीराँ कहे प्रभु तुम्हरे दरश से, मिट जाय चोरासी की चिंता ॥२॥

सत्यभामानुं रूसणुं १७ (गुज०)

जाणयुं जाणयुं हेत तमारूं जादवा,

हेत होय तो हैडा मां वरतावजो ॥०॥

अमे तमारी आखडीये अळखामणा,

प्रेम छुपे ना नयणा मां झलकावजो ॥१॥

पारीजातक फूल नारदजी लावीया,

जइ सोंप्यु राणी रुकमणी रे द्वारजो।

अेके पांखडी मारे मंदिर न मोकली,

कीधी मुजथी ए अदकेरी नारजो ॥२॥

अचरत पामो शुं आनंद माणु नहिं,

जाओ जाओ नहि बोलुं सुन्दरश्यामजो।

रुकमणी ने मन्दिरे जइ रंगे रमो,

हवे तमारे अम साथे शुं कामजो ॥३॥

अळगा रहो अलबेला अडशो नहिं मने,

तम साथे करूं वात न नंदकुमारजो।

म्होले तो पधारो मानीती तणे,

आज पछी नव आवशो मारे द्वारजो ॥४॥

नारदजी कहे सतभामा तमे सांभळो,
अे निर्लज ने नथी तमारूं कामजो ।
काला ने वाला करतो ने आवशे,
मोटा कुळनी मुकशो मा तमे माजजो ॥५॥
उतार्यां आभरणो सर्व अंगथी,
कह्युं श्यामने लईल्यो आ शणगारजो ।
मारा रे मैयर नी ओढुं ओढणी,
अन्य आपो मानीतीने दरबारजो ॥६॥
चरणाचीर उतारी चोळी चुंदडी,
उरथकी उतार्यो नवसरो हारजो ।
कांबी ने कडला ने झोटी दामणी,
सर्व संभाळील्यो नंदकुमारजो ॥७॥
आगळ थी न जाण्युं मे तो आवडुं,
वरथी न जाण्यो धुतारो ठगजो ।
बालपणानी प्रीती आजे पालटी,
अेवा साथे शाने रमीअे रंगजो ॥८॥
धीरज नी वातो घरथी जाणी नहिं,
प्रीत करीने परवश कीधा प्राणजो ।
काळजडां कोरीने भीतर भेदियां;
मीटडली मां मार्या मोहना बाणजो ॥९॥
प्रीत करी परहरवुं नोतुं पाधरूं,
थोडा दिवस ना शुं दीधा सुखजो ।
स्वप्नां सुखडांरे स्वप्ने वही गयां,
देंहलडीमां प्रगट्या दारूण दुःखजो ॥१०॥

पूरण पाप मल्यां रे अे अबळातणां,
जेनो परण्यो पर घेर रमवा जायजो ।
अबोलडा लीधा रे बाळे वेष थी,
ते नारीनुं जोबन झोलां खायजो ॥११॥
पाणीडां पीने पछी घर शुं पुछीअे,
वेरी बापे पूरण साध्यां वेरजो ।
उछेरी आपी अेवानां हाथमां,
गळथुलीमां घोळीन पायां झेरजो ॥१२॥
शोकलडीना वेण मने बहु सांभरे,
नयणामां छूटे आंसुधारजो ।
हैडुं केम नथी फाटतुं हजी अमतणुं,
उर उपर वह्या जाय मेघ मल्लारजो ॥१३॥
अेवां ते मेणां शुं बोलो मुख थकी,
भोळा मननी शुं आणो छो भ्रांतजो ।
नारी मन शुं राखो नारद ने कहे,
कुळवंती तमे केम करो कल्पांतजो ॥१४॥
पटराणी तमथी बीजी प्यारी नथी,
शुं सतभामा कुडो आव्यो क्रोधजो ।
कपटी नारदियानां केहेण न मानिये,
घणो वधारे घेर घेर विरोधजो ॥१५॥
साचुं जो कहुं तो तमे नव सांभळो,
कहो सतभामा खाउं तमारा समजो ।
काळुडा नागने आपुं जइ आंगळी,
तोय तमारूं मन नवं माने केमजो ॥१६॥

मोहन तुं कह्युं मानो साचुं सांभळो,
कहो तो मंगावुं पारिजातक झाड़जो ।
आणीने रोपावुं तमारे आंगणे,
राणी रोष तजीने मुको राडजो ॥१७॥
हरखीने बोल्या पछी हरिथी हेतशुं,
सतभामा ने सौको लाग्या पायजो ।
वाजां ने बजवा लागी बहु वांशळी,
गीत गान ने नौतम उच्छव थायजो ॥१८॥
कुमकुमने कस्तुरी बेहेके केवडो,
चुवाचंदन उडे अबिल गुलालजो ।
आनंद मंगल वर्त्यो सगळे अति घणो,
भेरी भुगळ वाग्यां मृदंग तालजो ॥१६॥
रूशणुं गायुं छे आ रूडी रीत शुं,
सतभामा ना मनाव्या हरिए मनजो ।
मीराँ नो स्वामी मोले पधारियो,
सतभामा ना जीवन कीधां धन्यजो ॥२०॥

श्रीगणेश-स्तुति   १८

जसोदा मैया गणपति ने पधरावूँ ॥०॥
जमना जल झारी भर लावू जल से सनान करावूँ ॥१॥
पीला पीतांबर पीली जनोई केसर तिलक बणावूँ ॥२॥
चुन चुन कलियाँ गेंद गुँथाँवाँ आभूषण पहरावूँ ॥३॥
धूप दीप और नैवेद्य आरती लडुआरा भोग लगाऊँ ॥४॥
मूसा'री असवारी सोहे रिध सिध चमर ढुलाऊँ ॥५॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरख निरख गुण गाऊँ ॥६॥

श्रीजगन्नाथ-स्तुति १६

होजी म्हारा लटकाळा जगन्नाथ दरशन म्हाने वेगा दीजो जी ॥०॥
दरशन दीजो साँवरा किरपा करीजो,
होजी म्हारा सांवरा जगन्नाथ० ॥१॥
आपरा दरशन बिना कल न पडत है ।
होजी म्हारो तडप तडप जीव जाय, तलफूं सुध वेगा लीजो जी ॥२॥
गुण तो प्रभुजी म्हांमें एक नहीं छे ।
होजी म्हारो ओगुण भरयो सरीर, ओगुण गुना माफ करीजो जी ॥३॥
बाई मीराँजी री विनती ।
होजी म्हारे सरणे आया री लज्जा राखजो ॥४॥

सीता-हरण २० (गुज०)

सीता कोणे हरी—ओ लच्मण सीता कोणे हरी ॥०॥
सीता हरी पेला लंकापति रावणे । गई छे रोष भरी रे ॥१॥
कोने सीवडावुं मृगचर्मनी चोळी । कंइ एक खूणे पडी ॥२॥
आ पर्णकुटी मां सज्यां छे । ते तो सुनी पडी ॥३॥
जोगी ने वेषे रावण आव्यो । लई गयो लंका भणी ॥४॥
क्रोधे भराई लच्मणजी रे आव्या । खांधे धनुष धरी ॥५॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर । रैयत सुनी रे पडी ॥६॥

राम-बनवास २१

लछुमन धीरे चलो मैं हारी ॥०॥
राम लछमन दोनों भ्रातर, बीच में सीता प्यारी ॥१॥
चाल चलत मोहे छाली पड गई, तुम जीते मैं हारी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल बलिहारी ॥३॥

शिव-स्तुति २२ (गुज०)

गांजा पीने वाले जन्म को लहेरी रे ।।०।।
स्मशान वासी भूषणें भयंकर, पागट जटा शिरी रे ।।१।।
बाघ्र कडासन आसन ज्यांये, भस्म दिगम्बर धारी रे ।।२।।
तृतीय नेत्रीं अग्नि दुर्धर, विष हैं प्राश्न करी रे ।।३।।
मीराँ प्रभु की ध्यानी निरन्तर, चरण कमल की प्यारी रे ।।४।।

तुलसी-माहात्म्य २३

नमो नमो तुलसी महारानी, नमो नमो हरि की पटरानी ।।०।।
जाके दरस परम अघ नासे, महिमा वेद बखानी ।।१।।
शाखा पत्र मंजरी कोमल, श्रीपति चरण कमल लपटानी ।।२।।
धन्य तुलसी पूरण तप कीन्हा, शालिगराम भई पटरानी ।।३।।
शिव सनकादिक अरू ब्रह्मादिक,
खोजत फिरते महामुनि ज्ञानी ।।४।।
छप्पन भोग धरे हरिआगे, बिन तुलसी प्रभू एक न मानी ।।५।।
धूप दीप नैवेद्य आरती पुष्पन की वर्षा बरखानी ।।६।।
प्रेम प्रीति कर हरि वश कीन्हे सांवरि सूरत हृदय समानी ।।७।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर भक्ति दान दीजै महारानी ।।८।।

श्रीराम-स्तुति २४

सहेल्यां ! म्हाने रघुवर घनो लागे प्यारो ।।०।।
क्या कहुं उन मुख की शोभा । फूल्यो फूलन हजारो ।।१।।
मोर मुकुट केसरीआ वागा । सिर फूलन को भारो ।।२।।
जनकराय घर ब्यावन आयो । दशरथराय-दुलारो ।।३।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । जीवन प्राण हमारो ।।४।।

श्रीराम-स्तुति २५

आ तो सांवरी सुरत मारा मनमां वसी ।
कांई मधुरी मूरत मारा दिल मां ठसी ॥०॥
छोटे छोटे चरण, कमल दल लोचन ।
ए तो धनुष उठावत कमर कसी ॥१॥
तोडत धनुष, जनक यज्ञ पूरण ।
ए तो असुरन के मन शंक धसी ॥२॥
मालती डालीनी, फूल माळा ।
ए तो रघुवर कुं, पेराय हसी ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर ।
एना चरण कमल मारी सुरत ठसी ॥४॥

श्री अंबाजी-स्तुति २६ (गुज०)

कीरपा करजो अंबा आज मने कीरपा करजो ॥०॥
बारे गत्रीसी रसोई करूं मा । भोजे भावे जमवा ॥१॥
चोंसठे जोगणी टोळे वळी मा । आवजो गरबे रमवा ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर । शुंभ निशुंभ ने दमवा ॥३॥

श्री गणेश-स्तुति २७ (गुज०)

गणपति नमो रे नमो, जय जय गणपति नमो रे नमो ॥०॥
सरस्वति साधक गणपति दायक,
मोदक लाडु जमो रे जमो ॥१॥
तीन लोक के तुम हो दाता,
अवगुण मारा खमो रे खमो ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
भक्त उद्धारण तमो रे तमो ॥३॥

श्री गणेश-स्तुति   २८ (गुज०)

प्रथमे समरूं श्री गणपति देवा, तमे छो गरीब निवाज रे ॥०॥
उंचा रे नीचां देवल चणावुं, त्यां त्हारी मूर्ति पधरावुं ॥१॥
तेल मोगरेल तने नित्ये चडावुं, दुर्वाए करूं तारी सेवा रे ॥२॥
मीसरी रे भोग तने नित्ये धरावुं, मोदक धरावुं तने मेवा रे ॥३॥
जमणा हाथमां फरसो धरावुं, उंदर वाहन चडवा रे ॥४॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, सिंदुरे करूं तारी सेवा रे ॥५॥

शिवजी   २९

शिव मठ पर सोहै लाल ध्वजा ॥०॥
कौन के सोहै हरी पीरी चुरियाँ, कौन के सोहै भसम गोला।
गौरी के सोहैं हरी पीरी चुरियाँ, शिव के सोहै भसम गोला ॥१॥
कौन शिखर पर गौरि बिराजैं, कौन शिखर पर बम भोला।
उत्तर शिखर पर गौरि बिराजैं, दक्षिण शिखर पर बमभोला ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि के चरण पर चित मोरा ॥३॥

शिवजी   ३०

शिव के मन माहिं बसी कासी ॥०॥
आधी काशी ब्राह्मण बनिया, आधी काशी संन्यासी ॥१॥
काह करन को ब्राह्मण बनिया, काह करन को संन्यासी ॥२॥
नेम धरम को ब्राह्मण बनिया, तप करने को संन्यासी ॥३॥
कौन शिखर पर गौरि बिराजैं, कौन शिखर पर अविनाशी ॥४॥
उत्तर शिखर पर गौरि बिराजैं, दक्षिण शिखर पर अविनाशी ॥५॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि के चरण पर मैं दासी ॥६॥

सन्त-समाज   ३१

माई मेरो मन मानियो माधउ सिङ्ग रहिये रामु तेरी सरना ॥०॥

बुनिन तनिन को कबीरा लीजै मति बुधि जांकी चेरी ।
खेति बोवन को धनरा लीजै थोड़ी माहिं बहुतेरी ।।१।।
पढ़िनि गुनिन को जैदेउ लीजै वाचत बेद पुराना ।
रंग रंगनि कौ सीवन सीवन को लीजै छीपा नामा ।।२।।
खिचड़ी करन कौ करमाबाई लीजै कलस भरन कौ रंकी-बंका ।
तोलन जोखन कौ सधना लीजै तेग वाहन कौ पीपा ।।३।।
तेल लावन कौ सैना लीजै हरि चरना लपटाना ।
पनीआ गढ़न कौ बोझ ढोरन कौ लीजै रविदासा सरना ।।४।।
सभ भगतनि मिल बेड़ा लादियो सूर भली गत पाई ।
अगम निगम को जहाज ठिलियो है जसु गावै मीराँबाई ।।५।।
सुत के हेतु अजामलु तारिओ नाराइन बोलाई ।
जहिर कटोरि राणे भेजी पीवै मीराँबाई ।।६।।

श्रीराम ३२

नमो नमो रचना रघुवर की ।
शिव विरंची सनकादिक मोहे,जो सोचे तो कहाँ गति नर की ।।०।।
दीन धनाढ्य दीन करे लागत, चार पलक नहि करकी ।
संपति विपद विपद करी संपति, अकथ कथा दशरथ सुत करकी।।१।।
राणाजी की मति सब बिगरी, मैं तो गई बुद्ध मुनिवर की ।
मीराँ के प्रभु तुम हो रच्छक, मैं तो शरण गई सियवर की ।।२।।

श्रीराम ३३

मोरे तो मन राम-चरण सुखदाई ।।०।।
जिन चरणन सों निकसी सुरसरि शंकर जटा समाई ।
जटा शंकरी नाम धरयो है, त्रिभुवन तारन आई ।।१।।
जिन चरणन की विमल पादुका, भरत रहे लवलाई ।
जो केवट कहँ पावन कीन्हों, जब प्रभु नाव चढ़ाई ।।२।।

दंडक बन राम पावन कीन्हों, मुनियन दुःख मिटाई ।
जो ठाकुर तिहुँ लोक को स्वामी, कपट कुरँग सँग धाई ।।३।।
कपि सुग्रीव बंधु-भय ब्याकुल, जा शिर छत्र धराई ।
रिपु को अनुज विभीषण भेंट्यो, मीराँ की बारी आई ।।४।।

शिवजी ३४

भोलानाथ दिगंबर यह दुख मेरा हरो रे ।।०।।
शीतल चन्दन बेल पतरवा मस्तक गंगा धरो रे ।।१।।
अर्धांगी गौरी पुत्र गजानन, चंद्रकी रेख धरो रे ।।२।।
शिवशंकर को तीन नैत्र हैं अद्भुत रूप धरो रे ।।३।।
आसन मार सिंहासन बैठे, शान्त समाधि धरो रे ।।४।।
मीराँ के प्रभु का जस गावत, शिवजी के पैयां परो रे ।।५।।

पदों के शब्दार्थ-भावार्थ-विशेषादि

१—**विशेषः**—मीरांबाई जब बृन्दावन गई तब वहाँ बंगाली परम वैष्णव महात्मा श्री जीव गोस्वामी के सत्संग में कुछ काल रही थीं यह महात्मा श्री चैतन्य महाप्रभु के शिष्य श्री रूप और सनातन के भतीजे थे। प्रतीत होता है। श्री चैतन्य महाप्रभु की अपूर्व प्रेमाभक्ति की महिमा को सुन कर उनकी स्तुति में यह पद बनाया है। वैष्णव भक्त-जनों में श्री गौराङ्ग महाप्रभु के श्रीकृष्ण के अवतार होने की जो श्रद्धा-भरी मान्यता प्रचलित है उसका प्रभाव पद पर स्पष्ट व्यक्त होता है।

७—**विशेषः**—देवर्षि नारद ने अपने नारद भक्ति सूत्र (सू.सं.७२) में कहा है-"नास्ति तेषु जाति विद्या रूप कुल धन क्रियादि भेदः" अर्थात् भक्त के लिये उपयुक्त गुणों में से किसी की भी प्रधानता कोई आवश्यकीय नहीं। भक्तों में कोई भेद नहीं। जिसके भी हृदय में काया वाचा मनसा अखण्ड भगवद् प्रेम बहता हो वही भक्त है। चाहे वह कैसा भी हो। इसी भाव को शबरी में घटाते हुए मीरांबाई ने इस पद में कहा है—'ऐसी कहा अचारवती' (क्रिया -'रूप नहीं एक रती' (रूप) 'नीचकुल' (कुल) 'ओछीजात' (जाति) 'अति ही कुचीलणी' (धन) धनहीन, दारिद्रयवती-'ऐसी कहा वेद पढी' (विद्या) अर्थात् उक्त सभी गुणों से हीन होने पर भी वह प्रभु प्रेम के प्रताप से ही भव सागर से तर गई।

इस पद की और विशेषता यह है कि इसकी टेर को बाद करने पर शेष प्रायः कवित्त छंद रह जाता है।

६—फूलड़ियाँ=जूतियाँ। पाँव उभाणो=नङ्गे पैर।

विशेषः—इस पद में सुदामा चरित्र का सार आ गया है। "काटी तो फूलड़ियाँ" 'पाँव उभाणो' 'चलतैं चरण घसे' 'ताँदुल तीन पसे' आदि शब्दों द्वारा मीरांबाई ने सुदामा की दारिद्रय पूर्ण परिस्थिति और मनोदशा का निर्दोष विनोदयुक्त बड़ा ही सुन्दर, मार्मिक और यथार्थ भाव चित्रण किया है।

१०—बरियाई=बड़ी। मिताई=मित्रता।

विशेषः—कहा जाता है कि पति के देहान्त होने के पश्चात् देवर विक्रमाजित द्वारा मीराँ को अविचार पूर्वक सताया जा रहा था तब उसने उपरोक्त पद श्री गोस्वामी तुलसीदास जी को लिख कर भेजा था।

११—विशेष:—श्री गो० तुलसीदास जी का "भज मन राम चरण सुखदाई" इस टेर का एक अति लोक प्रचलित पद पाया जाता है। मीराँ के इस पद का ही भाव कुछ विस्तार से उसमें वर्णित है।

१२—कूडी······भरैगो=अपने को अन्यायी प्रमाणित करेगा।

१४—थाँका ············म्हाँको=तुम्हारे विरद की हँसाई होती हुई मुझसे सही नहीं जायगी।

१७—भावार्थ :—पारीजातक=स्वर्गलोक का वृक्ष, वृक्षविशेष। जइ·······द्वार जो=जाकर राणी रुक्मिणी जी के (द्वार पर) आंगन में लगा दिया। कीधी··········नार जो=मुझसे भी (रुक्मिणी को) अधिक प्रिय कर के माना ॥२॥ अचरत·········माणु नहीं=आश्चर्य क्यों हो रहा है, (सचमुच) मैं आनन्दोपभोग नहीं करूंगी। रुक्मणी ने···········रमो=रुक्मिणी के भवन पर जाकर रंग विहार करो। काला (ने) वाला=अनुनय-विनय। अन्य ·········दरबार=दूसरी साड़ी अपनी प्रियतमा को भेंट करना ॥६॥ आगळ थी············ ठग जो=पहले से मैंने नहीं जाना था कि घर का ही (पुरुष) अथवा घर से भी नहीं सुना कि (वह) ऐसा धूर्त और ठग होगा। प्रीत···· ··········सुख जो=प्रीति लगाकर और थोड़े दिन सुख लुटाकर फिर इस प्रकार छोड़ देना उचित नहीं था। स्वप्नां·············दुःखजो= स्वप्नों के सुख स्वप्नों ही के साथ चले गये और अब देह में दारुण दुःख प्रकट होगया है ॥१०॥ पूरण············रमवा जाय=उस नारी के सब पाप उदय हुए समझो जिसका पति परदाररत है अथवा वह स्त्री अभागिनी है जिसका विवाहित पति किसी अन्य स्त्री से प्रेम करता हो। अबोलडा··············खाय जो=मुग्धावस्था में ही जिसके पति ने प्रेम खींच लिया हो उस नारी का यौवन मानों झूले पर झूल रहा है ॥११॥ गळ थुंली मां=जन्म होने बाद बच्चे के गले में रूई द्वारा गुड़ का पानी टपकाने की क्रिया करते समय। पाणीडां·········फेर जो=जल पी लेने बाद घर क्या पूछना! वास्तव में बैरी पिता ने पूर्ण रूप से अपना बैर साधा जो पालन पोषण कर बड़ी करके मुझे ऐसे छली के हाथ सौंप दिया, इससे तो अच्छा होता कि जन्मते ही मुझे विष घोल कर पिला देते ॥१२॥ शोकलडी ना·········मलार जो=सौत के वचनों को याद

करके नेत्रों से अश्रुपात हो रहा है पर हाय ! सौत के उन व्यङ्ग रूप मेघ मल्हार के प्रभाव से नेत्रों से वर्षा की झड़ी लगने पर भी अभी तक हमारा हृदय क्यों न फट गया ? ॥१३॥ एवां ··· ·········कल्पांत जो=(श्रीकृष्ण) ऐसे उपालंभ भरे वचन मुख से बोलना उचित नहीं ! अपने भोले मन को तर्क-वितर्क द्वारा भ्रम में क्यों डाल रही हो ! नारद के कहने से, अपने उदार स्वभाव और सरल चित्त में साधारण स्त्री सुलभ भावों को जगाकर इस प्रकार दुःखित होना व क्लेश करना, क्या तुम जैसी उच्च कुलवधू को शोभा देता है ॥१४॥ पटराणी············विरोध जो= तुम पटरानी से बढ़ कर और कोई मुझे प्यारी नहीं—सत्यभामे ! व्यर्थ क्रोध न करो । घर घर में कलह बढ़ाने वाले उस कपटी नारद की बातों में न आओ ॥१५॥ साचुं जो············केमजो=मैं सत्य कहता हूँ तो तुम सुनती नहीं हो ! सत्यभामे, कहो तो तुम्हारी शपथ खाऊँ अथवा काले नाग द्वारा अपनी अंगुली को डसवालूँ ! इस पर भी तुम्हारा मन क्यों नहीं मानता है ! ॥१६॥

विशेषः—गुजराती भाषा का यह बड़ा ही भाव पूर्ण और रोचक 'गरबी' का पद है। स्त्री सुलभ संस्कार वश सत्यभामा की जो मनोदशा हुई थी, इस पद में उसे बहुत ही सुन्दर ढंग से चित्रित किया है। सरल भाषा में भी इस प्रकार सरसता भरी है कि पढ़ते-पढ़ते मन उन्हीं भावों में तन्मय हो जाता है। यह गरबी गुजरात में बहुत प्रचलित है और वहाँ के स्त्री समाज में बड़ी ही रुचि पूर्वक गाई जाती है।

३१—सभ············मीरांबाई=प्रभु के उस सुदुर्लभ धाम की ओर जिन सब भक्त वीरों का बेड़ा चल पड़ा और अन्त में जिन्हें सद्‌गति प्राप्त हुई मीरांबाई उनके गुणगान करती है।

सारे पद का भावार्थः—प्रभु की शरण में जाने को मेरा जी चाहता है क्योंकि वे समदर्शी हैं जो जाति, वर्ण और व्यवसाय आदि की ओर न देख केवल प्रेम और भक्ति से ही रीझ कर भक्त को अपनी अभय शरण में ले लेते हैं। (दृष्टांत में बताए गए) सब भक्तों को प्रभु ने उनके प्रेम-भाव से ही रीझ कर उन्हें अपना लिया।

३२—**विशेषः**—इस पद का बहुत कुछ अंश श्री गो० तुलसीदासजी के 'भज मन राम चरन सुखदाई' पद से मिलता जुलता है।

—: समाप्त :—

शुद्धि पत्र

पृष्ठ संख्या	पैरा पद सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
ट	ऊपर से	१	मात्र	मातृ
१	१	६	आपने	अपने
१८०	६१	३	नींद न	नींद न आवै
१८३	ऊपर से	२	केड	केड़ा लेइ
१६४	६५	२	आवा	आँवा
१६४	६६	३	कळो	काळो
१६८	१०६	१	पाया	पीया
२०१	११७	१	कर्णा	कोंण
२२१	ऊपर से	५	योग्य	भोग्य
२२४	पद	पाठान्तर	मन सारी	मनसा री
२२६	उपर से	६	स्थिर	अस्थिर
२२७	"	१८	पुनवरि	पुनर्वार
२५५	नीचे से	६	क्री	की
२६२	३	३	राणा	राणा का
३३२	ऊपर से	१४	दासो	दासी
३५४	१०३	१	कंसत	कंसन
"	"	५	गिरधरी	गिरधर
३५६	१०६	२	मले	न मले
४३७	नीचे से	१	जिससे…है	लाईन निकाल कर पढ़ें।
४५६	१	४	साक्षेप	सापेक्ष
४८८	नीचे से	३	नजर रया	नजर न
५०७	५८	३	साक्षात्कार	साक्षात
५१३	१५	१	मजमोहन	मनमोहन
५१६	ऊपर से	१	कलको रे	पलकां रे
५२२	४३	१	ढाडो	ढाडी
५२७	५७	१०	तोरे	तीरे
५३२	पद	५	बसावगा	बसावंगा
५४१	दोहा	२	लग्ने	लगे
५४२	ऊपर से	४	प्रमाण	प्रमाण

पृष्ठ संख्या	पैरा पद सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५४३	नीचे से	६	विपय में	विपम एवं
५४५	३	३	हँसती	हँसाती
,,	,,	७	प्रणाय	प्रणाङ्ग
५४६	ऊपर से	११	राजचरण	चरण
५५१	,,	४	में	में है।
५५२	,,	४	मिली	मिति
,,	नीचे से	२	प्रिय	प्रिया
५५७	दोहा	१	मो	तो
५५६	संस्कृत	२	नर्तती	नर्तकी
५८३	२६	३	यथा छे	थया छे
६०६	६१	३	टोटो	ढोटो
६१७	१२५	५	वाछकू ने	वाछरडां
६३८	१८५	२	सहेजी	सहेळी
६८६	३३१	१२	'ख	कंस
७४०	४	३	माचिक	मायिक
७५८	२६	२	जहुर	जरूर
८३२	४	२	...णाम विचार...	...णा मविचा...
८६१	श्लोक	१	...मिच्छ तामूकुतो...	...मिच्छता मकुतो...
८७६	२३	३	भर	भर-भर
८७८	भजन नं० २	३	हरिगन	हरिगुन
,,	,,	४	कंचक	कंचन
८७६	ऊपर से	६	जनेर	जवेर
८६६	१६	११	कारे	करे
,,	१७	२	लई	लई है
६०६	ऊपर से	४	लगयो	लगायो
६२७	११	२	जब	जग
६५४	ऊपर से	३	का अनेकों	का प्रत्यक्ष
६५८	२०	२	दोडी दोडी	दा'डी दा'डी
६६४	२०	५	ताड्डु	तारू
६७६	नीचे से	५	साम्फ	साम्य